महावीर-वाणी, भाग 1

प्रवचन-क्रम

1. मंत्रः दिव्य-लोक की कुंजी (पंच-नमोकार-सूत्र)...............................3
2. मंगल व लोकोत्तर की भावना (मंगल-भाव-सूत्र)...................................17
3. शरणागतिः धर्म का मूल आधार (शरणागति-सूत्र)..................................34
4. धर्मः स्वभाव में होना (धम्म-सूत्र)...48
5. अहिंसाः जीवेषणा की मृत्यु (धम्म-सूत्रः 1 (अहिंसा))...................65
6. संयमः मध्य में रुकना (धम्म-सूत्रः 2 (संयम)).................................81
7. संयम की विधायक दृष्टि (धम्म-सूत्र)...98
8. तपः ऊर्जा का दिशा-परिवर्तन (धम्म-सूत्र)....................................114
9. तपः ऊर्जा-शरीर का अनुभव (धम्म-सूत्र)..130 10..अनशनः मध्य के क्षण का अनुभव (धम्म-सूत्र)
.... 145
11..ऊणोदरी एवं वृत्ति-संक्षेप (धम्म-सूत्र)
.... 163
12..रस-परित्याग और काया-क्लेश (धम्म-सूत्र)
.... 180
13................................संलीनताः अंतर-तप का प्रवेश-द्वार (धम्म-सूत्र)
.... 197
14..प्रायश्चित्तः पहला अंतर तप (धम्म-सूत्र)
.... 211
15.....................................विनयः परिणति निर-अहंकारिता की (धम्म-सूत्र)
.... 230
16...वैयावृत्य और स्वाध्याय (धम्म-सूत्र)
.... 248
17.......................................सामायिकः स्वभाव में ठहर जाना (धम्म-सूत्र)
.... 265
18....................कायोत्सर्गः शरीर से विदा लेने की क्षमता (धम्म सूत्र)
.... 281
19..धर्मः एक मात्र शरण (धम्म सूत्रः 2)
.... 297
20.....................धर्म का मार्ग: सत्य का सीधा साक्षात् (धम्म सूत्र: 3)
.... 312
21...सत्य सदा सार्वभौम है (सत्य-सूत्र)
.... 327
22..............................कामवासना है दूसरे की खोज (ब्रह्मचर्य-सूत्रः 1)
.... 345
1

23..................ब्रह्मचर्यः कामवासना से मुक्ति (ब्रह्मचर्य-सूत्रः 2)
.... 361

24....................................संग्रहः अंदर के लोभ की झलक (अपरिग्रह-सूत्र)
.... 377

25..............अरात्रि भोजनः शरीर-ऊर्जा का संतुलन (अरात्रि-भोजन-सूत्र)
.... 394

26..विनय शिष्य का लक्षण है (विनय-सूत्र)
.... 412

27...........................मनुष्यत्वः बढ़ते हुए होश की धारा (चतुरंगीय-सूत्र)
.... 433

2

महावीर-वाणी, भाग 1
पहला प्रवचन

मंत्रः दिव्य-लोक की कुंजी (पंच-नमोकार-सूत्र)

नमो अरिहंताणं।
नमो सिद्धाणं।
नमो आयरियाणं।
नमो उवज्झायाणं।
नमो लोए सव्वसाहूणं।
एसो पंच नमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं।।

अरिहंतों (अर्हतों) को नमस्कार। सिद्धों को नमस्कार। आचार्यों को नमस्कार। उपाध्यायों को नमस्कार। लोक संसार में सर्व साधुओं को नमस्कार।
ये पांच नमस्कार सर्व पापों के नाशक हैं और सर्व मंगलों में प्रथम मंगल रूप हैं।

जैसे सुबह सूरज निकले और कोई पक्षी आकाश में उड़ने के पहले अपने घोंसले के पास परों को तौले, सोचे, साहस जुटाए; या जैसे कोई नदी सागर में गिरने के करीब हो, स्वयं को खोने के निकट, पीछे लौट कर देखे, सोचे क्षण भर, ऐसा ही महावीर की वाणी में प्रवेश के पहले दो क्षण सोच लेना जरूरी है। जैसे पर्वतों में हिमालय है या शिखरों में गौरीशंकर, वैसे ही व्यक्तियों में महावीर हैं। बड़ी है चढ़ाई। जमीन पर खड़े होकर भी गौरीशंकर के हिमाच्छादित शिखर को देखा जा सकता है। लेकिन जिन्हें चढ़ाई करनी हो और शिखर पर पहुंच कर ही शिखर को देखना हो, उन्हीं बड़ी तैयारी की जरूरत है। दूसरे से भी देख सकते हैं महावीर को, लेकिन दूर से जो परिचय होता है वह वास्तविक परिचय नहीं है। महावीर में तो छलांग लगा कर ही वास्तविक परिचय पाया जा सकता है। उस छलांग के पहले जो जरूरी है वे कुछ बातें आपसे कहूं। बहुत बार ऐसा होता है कि हमारे हाथ में निष्पत्तियां रह जाती हैं, कनक्लूजंस रह जाते हैं--प्रक्रियाएं खो जाती हैं। मंजिल रह जाती है, रास्ते खो जाते हैं। शिखर तो दिखाई पड़ता है, लेकिन वह पगडंडी दिखाई नहीं पड़ती जो वहां तक पहुंचा दे। ऐसा ही यह नमोकार मंत्र भी है। यह निष्पत्ति है। इसे पच्चीस सौ वर्ष से लोग दोहराने चले आ रहे हैं। यह शिखर है, लेकिन पगडंडी जो इस नमोकार मंत्र तक पहुंचा दे, वह न मालूम कब की खो गई है।
इसके पहले कि हम मंत्र पर बात करें, उस पगडंडी पर थोड़ा सा मार्ग साफ कर लेना उचित होगा। क्योंकि जब तक प्रक्रिया न दिखाई पड़े तब तक निष्पत्तियां व्यर्थ हैं। और जब तक मार्ग न दिखाई पड़े, तब तक मंजिल बेबूझ होती है। और जब तक सीढ़ियां न दिखाई पड़ें, तब तक दूर दिखते हुए शिखरों का कोई भी मूल्य नहीं--वे स्वप्नवत हो जाते हैं। वे हैं भी या नहीं, इसका भी निर्णय नहीं किया जा सकता। कुछ दो-चार मार्गों से नमोकार के रास्ते को समझ लें। उन्नीस सौ सैंतीस में, तिब्बत और चीन के बीच बोकान पर्वत की एक गुफा में सात सौ साल के रिकार्ड मिले हैं--पत्थर के। और वे रिकार्ड हैं महावीर से दस हजार साल पुराने यानी आज से कोई साढ़े बारह हजार पुराने। बड़े आश्चर्य के हैं, क्योंकि वे रिकार्ड ठीक वैसे ही हैं जैसे ग्रामोफोन का रिकार्ड होता है। ठीक उनके बीच में एक छेद है, और पत्थर पर ग्रूव्ज हैं--जैसे कि ग्रामोफोन के रिकार्ड पर होते हैं। अब तक राज नहीं खोला जा सका है कि वे किस यंत्र पर बजाए जा सकेंगे। लेकिन एक बात तय हो गई है--रूस के एक बड़े वैज्ञानिक डाक्टर सर्जिएव ने वर्षों तक मेहनत करके यह प्रमाणित किया है कि वे हैं तो रिकार्ड ही। किस यंत्र पर और किस सुई के माध्यम से वे पुनरुज्जीवित हो सकेंगे, यह अभी तय नहीं हो सका। अगर एकाध पत्थर का टुकड़ा होता तो सांयोगिक भी हो सकता था। सात सौ सोलह हैं। सब एक जैसे, जिनमें बीच में छेद हैं। सब पर ग्रूव्ज हैं और उनकी पूरी तरह सफाई, धूल-धवांस जब अलग

कर दी गई और जब विद्युत यंत्रों से उनकी परीक्षा की गई तब बड़ी हैरानी हुई, उनसे प्रतिपल विद्युत की किरणें विकीर्णित हो रही हैं।
लेकिन क्या आदमी के पास आज से बारह हजार साल पहले ऐसी कोई व्यवस्था थी
कि वह पत्थरों में कुछ रिकार्ड कर सके? तब तो हमें सारा इतिहास और ढंग से लिखना पड़ेगा।
जापान के एक पर्वत शिखर पर पच्चीस हजार वर्ष पुरानी मूर्तियों का एक समूह है। वे मूर्तियां "डोबू" कहलाती हैं। उन मूर्तियों ने बहुत हैरानी खड़ी कर दी, क्योंकि अब तक उन मूर्तियों को समझना संभव नहीं था--लेकिन अब संभव हुआ। जिस दिन हमारे यात्री अंतरिक्ष में गए उसी दिन डोबू मूर्तियों का रहस्य खुल गया; क्योंकि डोबू मूर्तियां उसी तरह के वस्त्र पहने हुए हैं जैसे अंतरिक्ष का यात्री पहनता है। अंतरिक्ष में यात्रियों ने, रूसी या अमरीकी एस्ट्रोनाट्स ने जिन वस्तुओं का उपयोग किया है, वे ही उन मूर्तियों के ऊपर हैं, पत्थर में खुदे हुए। वे मूर्तियों पच्चीस हजार साल पुरानी हैं। और अब इसके सिवाय कोई उपाय नहीं है मानने का कि पच्चीस हजार साल पहले आदमी ने अंतरिक्ष की यात्रा की है या अंतरिक्ष के किन्हीं और ग्रहों से आदमी जमीन पर आता रहा है।
आदमी जो आज जानता है, वह पहली बार जान रहा है, ऐसी भूल में पड़ने का अब कोई कारण नहीं है। आदमी बहुत बार जान लेता है और भूल जाता है। बहुत बार शिखर छू लिए गए हैं और खो गए हैं। सभ्यताएं उठती हैं और आकाश को छूती हैं लहरों की तरह और विलीन हो जाती है। जब भी कोई लहर आकाश को छूती है तो सोचती हैः उसके पहले किसी और लहर ने आकाश को नहीं छुआ होगा।
महावीर एक बहुत बड़ी संस्कृति के अंतिम व्यक्ति हैं, जिस संस्कृति का विस्तार कम से कम दस लाख वर्ग है। महावीर जैन विचार और परंपरा के अंतिम तीर्थंकर हैं--चौबीसवें। शिखर की, लहर की आखिरी ऊंचाई। और महावीर के बाद वह लहर और वह सभ्यता और वह संस्कृति सब बिखर गई। आज उन सूत्रों को समझना कठिन है; क्योंकि वह पूरा का पूरा "मिल्यू", वह वातावरण जिसमें वे सूत्र सार्थक थे, आज कहीं भी नहीं है।
ऐसा समझें कि कल तीसरा महायुद्ध हो जाए, याददाश्त रह जाएगी। वह याददाश्त हजारों साल तक चलेगी और बच्चे हंसेंगे, वे कहेंगे कि कहां है हवाई जहाज, जिनकी तुम बात करते हो? ऐसा मालूम होता है कहानियां हैं, पुराण-कथाएं हैं, "मिथ" हैं।
जैन चौबीस तीर्थंकरों की ऊंचाई--शरीर की ऊंचाई--बहुत काल्पनिक मालूम पड़ती है। उनमें महावीर भर की ऊंचाई आदमी की ऊंचाई है, बाकी तेईस तीर्थंकर बहुत ऊंचे हैं, जैसे-जैसे जमीन सिकुड़ती गई है, वैसे-वैसे जमीन पर ग्रेवीटेशन, गुरुत्वाकर्षण भारी होता गया है। और जिस मात्रा में गुरुत्वाकर्षण भारी होता है, लोगों की ऊंचाई कम होती चली जाती है। आपकी दीवाल की छत पर छिपकली चलती है, आप कभी सोच नहीं सकते कि छिपकली आज से दस लाख साल पहले हाथी से बड़ा जानवर थी। वह अकेली बची है, उसकी जाति के सारे जानवर खो गए।
उतने बड़े जानवर अचानक क्यों खो गए? अब वैज्ञानिक कहते हैं कि जमीन के गुरुत्वाकर्षण में कोई राज छिपा हुआ मालूम पड़ता है। अगर गुरुत्वाकर्षण और सघन होता गया तो आदमी और छोटा होता चला जाएगा। अगर आदमी चांद पर रहने लगे तो आदमी की ऊंचाई चौगुनी हो जाएगी, क्योंकि चांद पर चौगुना कम है गुरुत्वाकर्षण पृथ्वी से। अगर हमने कोई और तारे और ग्रह खोज लिए जहां गुरुत्वाकर्षण और कम हो तो ऊंचाई और बड़ी हो जाएगी। इसलिए आज एकदम कथा कह देनी बहुत कठिन है।
नमोकार को जैन परंपरा ने महामंत्र कहा है। पृथ्वी पर दस-पांच ऐसे मंत्र हैं जो नमोकार की हैसियत के हैं। असल में प्रत्येक धर्म के पास एक महामंत्र अनिवार्य है, क्योंकि उसके इर्द-गिर्द ही उसकी सारी व्यवस्था, सारा भवन निर्मित होता है।
ये महामंत्र करते क्या हैं, इनका प्रयोजन क्या है, इनसे क्या फलित हो सकता है? आज साउंड इलेक्ट्रानिक्स, ध्वनि-विज्ञान बहुत से नये तथ्यों के करीब पहुंच रहा है। उसमें एक तथ्य यह है कि इस जगत में पैदा की गई कोई भी

ध्वनि कभी भी नष्ट नहीं होती--इस अनंत आकाश में संगृहीत होती चली जाती है। ऐसा समझें कि जैसे आकाश भी रिकार्ड करता है, आकाश पर भी किसी सूक्ष्म तल पर अग्रूव्ज बन जाते हैं। इस पर रूस में इधर पंद्रह वर्षों से बहुत काम हुआ है। उस काम पर दो-तीन बातें ख्याल में ले लेंगे तो आसानी हो जाएगी।
अगर एक सदभाव से भरा हुआ व्यक्ति, मंगलकामना से भरा हुआ व्यक्ति आंख बंद करके अपने हाथ में जल से भरी हुई एक मटकी ले ले और कुछ क्षण सदभावों से भरा हुआ उस जल की मटकी को हाथ में लिए रहे--तो रूसी वैज्ञानिक कामेनिएव और अमरीकी वैज्ञानिक डा.रुडोल्फ किर, इन दो व्यक्तियों ने बहुत से प्रयोग करके यह प्रमाणित किया है कि वह जल गुणात्मक रूप से परिवर्तित हो जाता है। केमिकली कोई फर्क नहीं होता। उस भली भावनाओं से भरे हुए, मंगल-आकांक्षाओं से भरे हुए व्यक्ति के हाथ में जल का स्पर्श जल में कोई केमिकल, कोई रासायनिक परिवर्तन नहीं करता, लेकिन उस जल में फिर भी कोई गुणात्मक परिवर्तन हो जाता है। और वह जल अगर बीजों पर छिड़का जाए तो वे जल्दी अंकुरित होते हैं, साधारण जल की बजाय। उनमें बड़े फूल आते हैं, बड़े फल लगते हैं। वे पौधे ज्यादा स्वस्थ होते हैं, साधारण जल की बजाय।
कामेनिएव ने साधारण जल भी उन्हीं बीजों पर, वैसी ही भूमि में छिड़का है
और यह विशेष जल भी। और रुग्ण, विक्षिप्त, निगेटिव इमोशंस से भरे हुए व्यक्ति, निषेधात्मक भाव से भरे हुए व्यक्ति, हत्या का विचार करने वाले, दूसरे को नुकसान पहुंचाने का विचार करने वाला, अमंगल की भावनाओं से भरे हुए व्यक्ति के हाथ में दिया गया जल भी बीजों पर छिड़का है--या तो वे बीज अंकुरित ही नहीं होते, या अंकुरित होते हैं तो रुग्ण अंकुरित होते हैं। पंद्रह वर्ष हजारों प्रयोगों के बाद यह निष्पत्ति ली जा सकी कि जल में अब तक हम सोचते थे केमिस्ट्री ही सब कुछ है, लेकिन केमिकली तो कोई फर्क नहीं होता, रासायनिक रूप से तीनों जलों में कोई फर्क नहीं होता, फिर भी कोई फर्क होता है; वह फर्क क्या है? और वह फर्क जल में कहां से प्रवेश करता है? निश्चित ही वह फर्क, अब तक जो भी हमारे पास उपकरण हैं, उनसे नहीं जांचा जा सकता। लेकिन वह फर्क होता है, यह परिणाम से सिद्ध होता है। क्योंकि तीनों जलों का आत्मिक रूप बदल जाता है। केमिकल रूप तो नहीं बदलता, लेकिन तीनों जलों की आत्मा में कुछ रूपांतरण हो जाता है।
अगर जल में यह रूपांतरण हो सकता है तो हमारे चारों ओर फैले हुए आकाश में भी हो सकता है। मंत्र की प्राथमिक आधारशिला यही है। मंगल भावनाओं से भरा हुआ मंत्र, हमारे चारों ओर के आकाश में गुणात्मक अंतर पैदा करता है। क्वालिटेटिव ट्रांसफार्मेशन करता है। और उस मंत्र से भरा हुआ व्यक्ति जब आपके पास से भी गुजरता है, तब भी वह अलग तरह के आकाश से गुजरता है। उसके चारों तरफ शरीर के आस-पास एक भिन्न तरह का आकाश, ए डिफरेंट क्वालिटी ऑफ स्पेस पैदा हो जाती है।
एक दूसरे रूसी वैज्ञानिक किरलियान ने हाई फ्रिक्वेंसी फोटोग्राफी विकसित की है। वह शायद आने वाले भविष्य में सबसे अनूठा प्रयोग सिद्ध होगा। अगर मेरे हाथ का चित्र लिया जाए, हाई फ्रिक्वेंसी फोटोग्राफी से, जो कि बहुत संवेदनशील प्लेट्स पर होती है, तो मेरे हाथ का चित्र सिर्फ नहीं आता, मेरे हाथ के आस-पास जो किरणें मेरे हाथ से निकल रही हैं, उनका चित्र भी आता है। और आश्चर्य की बात तो यह है कि अगर मैं निषेधात्मक विचारों से भरा हुआ हूं तो मेरे हाथ के आस-पास जो विद्युत-पैटर्न, जो विद्युत के जाल का चित्र आता है, वह रुग्ण, बीमार, अस्वस्थ और केआटिक, अराजक होता है-- विक्षिप्त होता है। जैसे किसी पागल आदमी ने लकीरें खींची हों। अगर मैं शुभ भावनाओं से, मंगल-भावनाओं से भरा हुआ हूं, आनंदित हूं, पाजिटिव हूं, प्रफुल्लित हूं, प्रभु के प्रति अनुग्रह से भरा हुआ हूं, तो मेरे हाथ के आस-पास जो किरणों का चित्र आता है, किरलियान की फोटोग्राफी से, वह रिदमिक, लयबद्ध, सुंदर, सिमिट्रिकल, सानुपातिक, और एक और ही व्यवस्था में निर्मित होता है।
किरलियान का कहना है--और किरलियान का प्रयोग तीस वर्षों की मेहनत है-- किरलियान का कहना है कि बीमारी के आने के छह महीने पहले शीघ्र ही हम बताने में समर्थ हो जाएंगे कि यह आदमी बीमार होनेवाला है। क्योंकि इसके पहले कि

शरीर पर बीमारी उतरे, वह जो विद्युत का वर्तुल है उस पर बीमारी उतर जाती है। मरने के पहले, इसके पहले कि आदमी मरे, वह विद्युत का वर्तुल सिकुड़ना शुरू हो जाता है और मरना शुरू हो जाता है। इसके पहले कि कोई आदमी हत्या करे किसी की, उस विद्युत के वर्तुल में हत्या के लक्षण शुरू हो जाते हैं। इसके पहले कि कोई आदमी किसी के प्रति करुणा से भरे, उस विद्युत के वर्तुल में करुणा प्रवाहित होने के लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं।
किरलियान का कहना है कि कैंसर पर हम तभी विजय पा सकेंगे जब शरीर को पकड़ने के पहले हम कैंसर को पकड़ लें। और यह पकड़ा जा सकेगा। इसमें कोई विधि की भूल अब नहीं रह गई है। सिर्फ प्रयोगों के और फैलाव की जरूरत है। प्रत्येक मनुष्य अपने आस-पास एक आभामंडल लेकर, एक आरा लेकर चलता है। आप अकेले ही नहीं चलते, आपके आस-पास एक विद्युत-वर्तुल, एक इलेक्ट्रो डाइनैमिक फील्ड प्रत्येक व्यक्ति के आस-पास चलता है। व्यक्ति के आस-पास ही नहीं, पशुओं के आस-पास भी, पौधों के आस-पास भी। असल में रूसी वैज्ञानिकों का कहना है कि जीव और अजीव में एक ही फर्क किया जा सकता है, जिसके आस-पास आभामंडल है वह जीवित है और जिसके पास आभामंडल नहीं है, वह मृत है।
जब आदमी मरता है तो मरने के साथ ही आभामंडल क्षीण होना शुरू हो जाता है। बहुत चकित करने वाली और संयोग की बात है कि जब कोई आदमी मरता है तो तीन दिन लगते हैं उसके आभामंडल के विसर्जित होने में। हजारों साल से सारी दुनिया में मरने के बाद तीसरे दिन का बड़ा मूल्य रहा है। जिन लोगों ने उस तीसरे दिन को--तीसरे को इतना मूल्य दिया था, उन्हें किसी न किसी तरह इस बात का अनुभव होना ही चाहिए, क्योंकि वास्तविक मृत्यु तीसरे दिन घटित होती है। इन तीन दिनों के बीच, किसी भी दिन वैज्ञानिक उपाय खोज लेंगे, तो आदमी को पुनरुज्जीवित किया जा सकता है। जब तक आभामंडल नहीं खो गया, तब तक जीवन अभी शेष है। हृदय की धड़कन बंद हो जाने से जीवन समाप्त नहीं होता। इसलिए पिछले महायुद्ध में रूस में छह व्यक्तियों को हृदय की धड़कन बंद हो जाने के बाद पुनरुज्जीवित किया जा सका। जब तक आभामंडल चारों तरफ है, तब तक व्यक्ति सूक्ष्म तल पर अभी भी जीवन में वापस लौट सकता है। अभी सेतु कायम है। अभी रास्ता बना है वापस लौटने का।
जो व्यक्ति जितना जीवंत होता है, उसके आस-पास उतना बड़ा आभामंडल होता है। हम महावीर की मूर्ति के आस-पास एक आभामंडल निर्मित करते हैं--या कृष्ण, या राम, क्राइस्ट के आस-पास--तो वह सिर्फ कल्पना नहीं है। वह आभामंडल देखा जा सकता है। और अब तक तो केवल वे ही देख सकते थे जिनके पास थोड़ी गहरी और सूक्ष्म दृष्टि हो--मिस्टिक्स, संत; लेकिन उन्नीस सौ तीस में एक अंग्रेज वैज्ञानिक ने अब तो केमिकल, रासायनिक प्रक्रिया निर्मित कर दी है जिससे प्रत्येक व्यक्ति--कोई भी--उस माध्यम से, उस यंत्र के माध्यम से दूसरे के आभामंडल को देख सकता है।
आप सब यहां बैठे हैं। प्रत्येक व्यक्ति का अपना निजी आभामंडल है।
जैसे आपके अंगूठे की छाप निजी-निजी है वैसे ही आपका आभामंडल भी निजी है।
और आपका आभामंडल आपके संबंध में वह सब कुछ कहता है जो आप भी नहीं जानते।
आपका आभामंडल आपके संबंध में बातें भी कहता है जो भविष्य में घटित होंगी।
आपका आभामंडल वे बातें भी कहता है जो अभी आपके गहन अचेतन में निर्मित हो रही हैं, बीज की भांति, कल खिलेंगी और प्रकट होंगी।
मंत्र आभामंडल को बदलने की आमूल प्रक्रिया है। आपके आस-पास की स्पेस,
और आपके आस-पास का इलेक्ट्रो डाइनैमिक फील्ड बदलने की प्रक्रिया है। और प्रत्येक धर्म के पास एक महामंत्र है। जैन परंपरा के पास नमोकार है-- आश्चर्यकारक घोषणा--एसो पंच नमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो। सब पाप का नाश कर दे, ऐसा महामंत्र है नमोकार। ठीक नहीं लगता। नमोकार से कैसे पाप नष्ट हो जाएगा? नमोकार से सीधा पाप नष्ट नहीं होता, लेकिन नमोकार से आपके आस-पास इलेक्ट्रो डाइनैमिक फील्ड रूपांतरित होता है और पाप करना असंभव हो जाता है। क्योंकि पाप करने के लिए आपके पास एक खास तरह का आभामंडल चाहिए। अगर इस मंत्र को सीधा ही सुनेंगे तो लगेगा कैसे हो सकता है? एक चोर यह मंत्र पढ़ लेगा तो क्या होगा? एक हत्यारा यह मंत्र पढ़ लेगा तो क्या होगा?

कैसे पाप नष्ट हो जाएगा? पाप नष्ट होता है इसलिए, कि जब आप पाप करते हैं, उसके पहले आपके पास एक विशेष तरह का, पाप का आभामंडल चाहिए--उसके बिना आप पाप नहीं कर सकते--वह आभामंडल अगर रूपांतरित हो जाए तो असंभव हो जाएगी बात, पाप करना असंभव हो जाएगा।
यह नमोकार कैसे उस आभामंडल को बदलता होगा? यह नमस्कार है, यह नमन का भाव है। नमन का अर्थ है समर्पण। यह शाब्दिक नहीं है। यह नमो अरिहंताणं, यह अरिहंतों को नमस्कार करता हूं, यह शाब्दिक नहीं है, ये शब्द नहीं हैं, यह भाव है। अगर प्राणों में यह भाव सघन हो जाए कि अरिहंतों को नमस्कार करता हूं, तो इसका अर्थ क्या होता है? इसका अर्थ होता है जो जानते हैं उनके चरणों में सिर रखता हूं। जो पहुंच गए हैं, उनके चरणों में समर्पित करता हूं। जो पा गए हैं, उनके द्वार पर मैं भिखारी बनकर खड़ा होने को तैयार हूं। किरलियान की फोटोग्राफी ने यह भी बताने की कोशिश की है कि आपके भीतर
जब भाव बदलते हैं तो आपके आस-पास का विद्युत-मंडल बदलता है। और अब तो ये फोटोग्राफ उपलब्ध हैं। अगर आप अपने भीतर विचार कर रहे हैं चोरी करने का, तो आपका आभामंडल और तरह का हो जाता है--उदास, रुग्ण, खूनी रंगों से भर जाता है। आप किसी को, गिर गए को उठाने जा रहे हैं--आपके आभामंडल के रंग तत्काल बदल जाते हैं।
रूस में एक महिला है, नेल्या माइखालोवा। इस महिला ने पिछले पंद्रह वर्षों में रूस में आमूल क्रांति खड़ी कर दी है। और आपको यह जान कर हैरानी होगी कि मैं रूस के इन वैज्ञानिकों के नाम क्यों ले रहा हूं। कुछ कारण हैं। आज से चालीस साल पहले अमरीका के एक बहुत बड़े प्रोफेट एडगर केयसी ने, जिसको अमरीका का स्लिपिंग प्रोफेट कहा जाता है; जो कि सो जाता था गहरी तंद्रा में, जिसे हम समाधि कहें, और उसमें वह जो भविष्यवाणियां करता था वह अब तक सभी सही निकली हैं। उसने थोड़ी भविष्यवाणियां नहीं कीं, दस हजार भविष्यवाणियां कीं। उसकी एक भविष्यवाणी चालीस साल पहले की है--उस वक्त तो सब लोग हैरान हुए थे--उसने यह भविष्यवाणी की थी कि आज से चालीस साल बाद धर्म का एक नवीन वैज्ञानिक आविर्भाव रूस से प्रारंभ होगा। रूस से? और एडगर केयसी ने चालीस साल पहले कहा, जब कि रूस में तो धर्म नष्ट किया जा रहा था, चर्च गिराए जा रहे थे, मंदिर हटाए जा रहे थे, पादरी-पुरोहित साइबेरिया भेजे जा रहे थे। उन क्षणों की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी कि रूस में जन्म होगा। रूस अकेली भूमि थी उस समय जमीन पर जहां धर्म पहली दफे व्यवस्थित रूप से नष्ट किया जा रहा था, जहां पहली दफा नास्तिकों के हाथ में सत्ता थी। पूरे मनुष्य-जाति के इतिहास में जहां पहली बार नास्तिकों ने एक संगठित प्रयास किया था--आस्तिकों के संगठित प्रयास तो होते रहे हैं। और केयसी की यह घोषणा कि चालीस साल बाद रूस से जन्म होगा!
असल में जैसे ही रूस पर नास्तिकता अति आग्रहपूर्ण हो गई तो जीवन का एक नियम है कि जीवन एक तरह का संतुलन निर्मित करता है। जिस देश में बड़े नास्तिक पैदा होने बंद हो जाते हैं, उस देश में बड़े आस्तिक भी पैदा होने बंद हो जाते हैं। जीवन एक संतुलन है। और जब रूस में इतनी प्रगाढ़ नास्तिकता थी तो अंडरग्राउंड, छिपे मार्गों से आस्तिकता ने पुनः आविष्कार करना शुरू कर दिया। स्टैलिन के मरने तक सारी खोज-बीन छिप कर चलती थी, स्टैलिन के मरने के बाद वह खोज-बीन प्रकट हो गई। स्टैलिन खुद भी बहुत हैरान था। वह मैं बात आपसे करूंगा।
यह माइखालोवा पंद्रह वर्ष से रूस में सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व है। क्योंकि माइखालोवा सिर्फ ध्यान से किसी भी वस्तु को गतिमान कर पाती है। हाथ से नहीं, शरीर के किसी प्रयोग से नहीं। वहां दूर, छह फीट दूर रखी हुई कोई भी चीज, माइखालोवा सिर्फ उस पर एकाग्र चित्त होकर उसे गतिमान--या तो अपने पास खींच पाती है, वस्तु चलना शुरू कर देती है, या अपने से दूर हटा पाती है, या मैग्नेटिक नीडल लगी हो तो उसे घुमा पाती है, या घड़ी हो तो उसके कांटे को तेजी से चक्कर दे पाती है, या घड़ी हो तो बंद कर पाती है--सैकड़ों प्रयोग। लेकिन एक बहुत हैरानी की बात है कि अगर माइखालोवा प्रयोग कर रही हो और आस-पास संदेहशील लोग हों तो उसे पांच घंटे लग जाते हैं, तब वह हिला पाती है। अगर आस-पास मित्र हों, सहानुभूतिपूर्ण हों, तो वह

आधे घंटे में हिला पाती है। अगर आस-पास श्रद्धा से भरे लोग हों तो पांच मिनट में। और एक मजे की बात है कि जब उसे पांच घंटे लगते हैं किसी वस्तु को हिलाने में तो उसका कोई दस पौंड वजन कम हो जाता है। जब उसे आधा घंटा लगता है तो कोई तीन पौंड वजन कम होता है। और जब पांच मिनट लगते हैं तो उसका वजन कम नहीं होता है।
ये पंद्रह सालों में बड़े वैज्ञानिक प्रयोग किए गए हैं। दो नोबल प्राइज विनर वैज्ञानिक डाक्टर वार्सीलिएव और कामेनिएव और चालीस और चोटी के वैज्ञानिकों ने हजारों प्रयोग करके इस बात की घोषणा की है कि माइखालोवा जो कर रही है, वह तथ्य है। और अब उन्होंने यंत्र विकसित किए हैं जिनके द्वारा माइखालोवा के आस-पास क्या घटित होता है, वह रिकार्ड हो जाता है। तीन बातें रिकार्ड होती हैं। एक तो जैसे ही माइखालोवा ध्यान एकाग्र करती है, उसके आस-पास का आभामंडल सिकुड़ कर एक धारा में बहने लगता है--जिस वस्तु के ऊपर वह ध्यान करती है, जैसे लेसर रे की तरह, एक विद्युत की किरण की तरह संगृहीत हो जाता है। और उसके चारों तरफ किरलियान फोटोग्राफी से, जैसे कि समुद्र में लहरें उठती हैं, ऐसा उसका आभामंडल तरंगित होने लगता है। और वे तरंगें चारों तरफ फैलने लगती हैं। उन्हीं तरंगों के धक्के से वस्तुएं हटती हैं या पास खींची जाती हैं। सिर्फ भाव मात्र--उसका भाव कि वस्तु मेरे पास आ जाए, वस्तु पास आ जाती है। उसका भाव कि दूर हट जाए, वस्तु दूर चली जाती है।
इससे भी हैरानी की बात जो तीसरी है वह यह कि रूसी वैज्ञानिकों का ख्याल है कि यह जो एनर्जी है, यह चारों तरफ जो ऊर्जा फैलती है, इसे संगृहीत किया जा सकता है, इसे यंत्रों में संगृहीत किया जा सकता है। निश्चित ही जब एनर्जी है तो संगृहीत की जा सकती है। कोई भी ऊर्जा संगृहीत की जा सकती है। और इस प्राण-ऊर्जा का, जिसको योग "प्राण" कहता है, यह ऊर्जा अगर यंत्रों में संगृहीत हो जाए, तो उस समय जो मूलभाव था व्यक्ति का, वह गुण उस संगृहीत शक्ति में भी बना रहता है।
जैसे, माइखालोवा अगर किसी वस्तु को अपनी तरफ खींच रही है, उस समय उसके शरीर से जो ऊर्जा गिर रही है--जिसमें कि उसका तीन पौंड या दस पौंड वजन कम हो जाएगा--वह ऊर्जा संगृहीत की जा सकती है। ऐसे रिसेप्टिव यंत्र तैयार किए गए हैं कि वह ऊर्जा उन यंत्रों में प्रविष्ट हो जाती है और संगृहीत हो जाती है। फिर यदि उस यंत्र को इस कमरे में रख दिया जाए और आप कमरे के भीतर आएं तो वह यंत्र आपको अपनी तरफ खींचेगा। आपका मन होगा कि पास जाएं--यंत्र के, आदमी वहां नहीं है। और अगर माइखालोवा किसी वस्तु को दूर हटा रही थी और शक्ति संगृहीत की है, तो आप इस कमरे में आएंगे और तत्काल बाहर भागने का मन होगा। क्या भाव शक्ति में इस भांति प्रविष्ट हो जाते हैं?
मंत्र की यही मूल आधारशिला है। शब्द में, विचार में, तरंग में भाव संगृहीत और समाविष्ट हो जाते हैं। जब कोई व्यक्ति कहता है--नमो अरिहंताणं, मैं उन सबको जिन्होंने जीता और जाना अपने को, उनकी शरण में छोड़ता हूं, तब उसका अहंकार तत्काल विगलित होता है। और जिन-जिन लोगों ने उस जगत में अरिहंतों की शरण में अपने को छोड़ा है, उस महाधारा में उसकी शक्ति सम्मिलित होती है। उस गंगा में वह भी एक हिस्सा हो जाता है। और इस चारों तरफ आकाश में, इस अरिहंत के भाव के आस-पास जो ग्रूव्ज निर्मित हुए हैं, जो स्पेस में, आकाश में जो तरंगें संगृहीत हुई हैं, उन संगृहीत तरंगों में आपकी तरंग भी चोट करती है। आपके चारों तरफ एक वर्षा हो जाती है जो आपको दिखाई नहीं पड़ती। आपके चारों ओर एक और दिव्यता का, भगवत्ता का लोक निर्मित हो जाता है। इस लोक के साथ, इस भाव लोक के साथ आप दूसरे तरह के व्यक्ति हो जाते हैं। महामंत्र स्वयं के आस-पास के आकाश को, स्वयं के आस-पास के आभामंडल को बदलने की कीमिया है। और अगर कोई व्यक्ति दिन-रात जब भी उसे स्मरण मिले, तभी नमोकार में डूबता रहे, तो वह व्यक्ति दूसरा ही व्यक्ति हो जाएगा। वह वही व्यक्ति नहीं रह सकता, जो वह था।
पांच नमस्कार हैं। अरिहंत को नमस्कार। अरिहंत का अर्थ होता हैः जिसके सारे शत्रु विनष्ट हो गए; जिसके भीतर अब कुछ ऐसा नहीं रहा जिससे उसे लड़ना पड़ेगा। लड़ाई समाप्त हो गई। भीतर अब क्रोध नहीं है, जिससे लड़ना पड़े; भीतर अब

काम नहीं है, जिससे लड़ना पड़े; अज्ञान नहीं है। वे सब समाप्त हो गए जिनसे लड़ाई थी।
अब एक नॉन-कानफ्लिक्ट, एक निर्द्वंद्व अस्तित्व शुरू हुआ। अरिहंत शिखर है, जिसके आगे यात्रा नहीं है। अरिहंत मंजिल है, जिसके आगे फिर कोई यात्रा नहीं है। कुछ करने को न बचा जहां, कुछ पाने को न बचा जहां, कुछ छोड़ने को भी न बचा जहां-जहां सब समाप्त हो गया--जहां शुद्ध अस्तित्व रह गया, प्योर एक्झिस्टेंस जहां रह गया, जहां ब्रह्म मात्र रह गया, जहां होना मात्र रह गया, उसे कहते हैं अरिहंत।
अदभुत है यह बात भी कि इस महामंत्र में किसी व्यक्ति का नाम नहीं है-- महावीर का नहीं, पार्श्वनाथ का नहीं, किसी का नाम नहीं है। जैन परंपरा का भी कोई नाम नहीं। क्योंकि जैन परंपरा यह स्वीकार करती है कि अरिहंत जैन परंपरा में ही नहीं हुए हैं और सब परंपराओं में भी हुए हैं। इसलिए अरिहंतों को नमस्कार है--किसी अरिहंत को नहीं है। यह नमस्कार बड़ा विराट है।
संभवतः विश्व के किसी धर्म ने ऐसा महामंत्र--इतना सर्वांगीण, इतना सर्वस्पर्शी--विकसित नहीं किया है। व्यक्तित्व पर जैसे ख्याल ही नहीं है, शक्ति पर ख्याल है। रूप पर ध्यान ही नहीं है, वह जो अरूप सत्ता है, उसी का ख्याल है--अरिहंतों को नमस्कार।
अब महावीर को जो प्रेम करता है, कहना चाहिए महावीर को नमस्कार; बुद्ध
को जो प्रेम करता है, कहना चाहिए बुद्ध को नमस्कार; राम को जो प्रेम करता है, कहना चाहिए राम को नमस्कार--पर यह मंत्र बहुत अनूठा है। यह बेजोड़ है। और किसी परंपरा में ऐसा मंत्र नहीं है, जो सिर्फ इतना कहता है--अरिहंतों को नमस्कार; सबको नमस्कार जिनकी मंजिल आ गई है। असल में मंजिल को नमस्कार। वे जो पहुंच गए, उनको नमस्कार।
लेकिन अरिहंत शब्द निगेटिव है, नकारात्मक है। उसका अर्थ है--जिनके शत्रु समाप्त हो गए; वह पाजिटिव नहीं है, वह विधायक नहीं है। असल में इस जगत में जो श्रेष्ठतम अवस्था है उसको निषेध से ही प्रकट किया जा सकता है, "नेति-नेति" से उसको विधायक शब्द नहीं दिया जा सकता। उसके कारण हैं। सभी विधायक शब्दों में सीमा आ जाती है, निषेध में सीमा नहीं होती। अगर मैं कहता हूं--"ऐसा है", तो एक सीमा निर्मित होती है। अगर मैं कहता हूं--"ऐसा नहीं है", तो कोई सीमा नहीं निर्मित होती। नहीं की कोई सीमा नहीं है, "है" की तो सीमा है। तो "है" तो बहुत छोटा शब्द है। "नहीं" है बहुत विराट। इसलिए परम शिखर पर रखा है अरिहंत को। सिर्फ इतना ही कहा है कि जिनके शत्रु समाप्त हो गए, जिनके अंतर्द्वंद्व विलीन हो गए--नकारात्मक--जिनमें लोभ नहीं, मोह नहीं, काम नहीं--क्या है, यह नहीं कहा; क्या नहीं है जिनमें, वह कहा।
इसलिए अरिहंत बहुत वायवीय, बहुत एब्सट्रेक्ट शब्द है और शायद पकड़ में
न आए, इसलिए ठीक दूसरे शब्द में पाजिटिव का उपयोग किया है--नमो सिद्धाणं। सिद्ध का अर्थ होता है वे, जिन्होंने पा लिया। अरिहंत का अर्थ होता है वे, जिन्होंने कुछ छोड़ दिया। सिद्ध बहुत पाजिटिव शब्द है। सिद्धि, उपलब्धि, अचीवमेंट, जिन्होंने पा लिया। लेकिन ध्यान रहे, उनको ऊपर रखा है जिन्होंने खो दिया। उनको नंबर दो पर रखा है जिन्होंने पा लिया। क्यों? सिद्ध अरिहंत से छोटा नहीं होता--सिद्ध वहीं पहुंचता है जहां अरिहंत पहुंचता है, लेकिन भाषा में पाजिटिव नंबर दो पर रखा जाएगा। "नहीं", "शून्य" प्रथम है, "होना" द्वितीय है, इसलिए सिद्ध को दूसरे स्थल पर रखा। लेकिन सिद्ध के संबंध में भी सिर्फ इतनी ही सूचना हैः पहुंच गए, और कुछ नहीं कहा है। कोई विशेषण नहीं जोड़ा। पर जो पहुंच गए, इतने से भी हमारी समझ में नहीं आएगा। अरिहंत भी हमें बहुत दूर लगता है--शून्य हो गए जो, निर्वाण को पा गए जो, मिट गए जो, नहीं रहे जो। सिद्ध भी बहुत दूर हैं। सिर्फ इतना ही कहा है, पा लिया जिन्होंने। लेकिन क्या? और पा लिया, तो हम कैसे जानें? क्योंकि सिद्ध होना अनभिव्यक्त भी हो सकता है, अमेनिफेस्ट भी हो सकता है।
बुद्ध से कोई पूछता है कि आपके ये दस हजार भिक्षु--हां, आप बुद्धत्व को
पा गए--इनमें और कितनों ने बुद्धत्व को पा लिया है? बुद्ध कहते हैंः

बहुतों ने। लेकिन वह पूछने वाला कहता है--दिखाई नहीं पड़ता। तो बुद्ध कहते हैंः मैं प्रकट होता हूं, वे अप्रकट हैं। वे अपने में छिपे हैं, जैसे बीज में वृक्ष छिपा हो। तो सिद्ध तो बीज जैसा है, पा लिया। और बहुत बार ऐसा होता है कि पाने की घटना घटती है और वह इतनी गहन होती है कि प्रकट करने की चेष्टा भी उससे पैदा नहीं होती। इसलिए सभी सिद्ध बोलते नहीं, सभी अरिहंत बोलते नहीं। सभी सिद्ध, सिद्ध होने के बाद जीते भी नहीं। इतनी लीन भी हो सकती है चेतना उस उपलब्धि में कि तत्क्षण शरीर छूट जाए। इसलिए हमारी पकड़ में सिद्ध भी न आ सकेगा। और मंत्र तो ऐसा चाहिए जो पहली सीढ़ी से लेकर आखिरी शिखर तक, जहां जिसकी पकड़ में आ जाए, जो जहां खड़ा हो वहीं से यात्रा कर सके। इसलिए तीसरा सूत्र कहा है, आचार्यों को नमस्कार।
आचार्य का अर्थ हैः वह जिसने पाया भी और आचरण से प्रकट भी किया। आचार्य का अर्थः जिसका ज्ञान और आचरण एक है। ऐसा नहीं है कि सिद्ध का आचरण ज्ञान से भिन्न होता है। लेकिन शून्य हो सकता है। हो ही न, आचरण--शून्य ही हो जाए। ऐसा भी नहीं है कि अरिहंत का आचरण भिन्न होता है, लेकिन अरिहंत इतना निराकार हो जाता है कि आचरण हमारी पकड़ में न आएगा। हमें फ्रेम चाहिए जिसमें पकड़ में आ जाए। आचार्य से शायद हमें निकटता मालूम पड़ेगी। उसका अर्थ हैः जिसका ज्ञान आचरण है। क्योंकि हम ज्ञान को तो न पहचान पाएंगे, आचरण को पहचान लेंगे।
इससे खतरा भी हुआ। क्योंकि आचरण ऐसा भी हो सकता है जैसा ज्ञान न हो।
एक आदमी अहिंसक न हो, अहिंसा का आचरण कर सकता है। एक आदमी अहिंसक हो तो हिंसा का आचरण नहीं कर सकता--वह तो असंभव है--लेकिन एक आदमी अहिंसक न हो और अहिंसा का आचरण कर सकता है। एक आदमी लोभी हो और अलोभ का आचरण कर सकता है। उलटा नहीं है, द वाइस वरसा इ.ज नॉट पासिबल। इससे एक खतरा भी पैदा हुआ। आचार्य हमारी पकड़ में आता है, लेकिन वहीं से खतरा शुरू होता है; जहां से हमारी पकड़ शुरू होती है, वहीं से खतरा शुरू होता है। तब खतरा यह है कि कोई आदमी आचरण ऐसा कर सकता है कि आचार्य मालूम पड़े। तो मजबूरी है हमारी। जहां से सीमाएं बननी शुरू होती हैं, वहीं से हमें दिखाई पड़ता है, वहीं से हमारे अंधे होने का डर है।
पर मंत्र का प्रयोजन यही है कि हम उनको नमस्कार करते हैं जिनका ज्ञान उनका आचरण है। यहां भी कोई विशेषण नहीं है। वे कौन? वे कोई भी हों।
एक ईसाई फकीर जापान गया था और जापान के एक झेन भिक्षु से मिलने गया। उसने पूछा झेन भिक्षु को कि जीसस के संबंध में आपका क्या ख्याल है? तो उस भिक्षु ने कहाः मुझे जीसस के संबंध में कुछ भी पता नहीं, तुम कुछ कहो ताकि मैं ख्याल बना सकूं। तो उसने कहा कि जीसस ने कहा है, जो तुम्हारे गाल पर एक चांटा मारे, तुम दूसरा गाल उसके सामने कर देना। तो उस झेन फकीर ने कहाः आचार्य को नमस्कार। वह ईसाई फकीर कुछ समझ न सका। उसने कहाः जीसस ने कहा है कि जो अपने को मिटा देगा, वही पाएगा। उस झेन फकीर ने कहाः सिद्ध को नमस्कार। वह कुछ समझ न सका। उसने कहा, आप क्या कह रहे हैं? उस ईसाई फकीर ने कहा कि जीसस ने अपने को सूली पर मिटा दिया, वे शून्य हो गए, मृत्यु को उन्होंने चुपचाप स्वीकार कर लिया, वे निराकार में खो गए। उस झेन फकीर ने कहाः अरिहंत को नमस्कार।
आचरण और ज्ञान एक हैं जहां, उसे हम आचार्य कहते हैं। वह सिद्ध भी हो सकता है, वह अरिहंत भी हो सकता है। लेकिन हमारी पकड़ में वह आचरण से आता है। पर जरूरी नहीं है, क्योंकि आचरण बड़ी सूक्ष्म बात है और हम बड़ी स्थूल बुद्धि के लोग हैं। आचरण बड़ी सूक्ष्म बात है! तय करना कठिन है कि जो आचरण है... अब जैसे महावीर को खदेड़ कर भगाया गया, गांव-गांव महावीर पर पत्थर फेंके गए। हम ही लोग थे, हम ही सब यह करते रहे। ऐसा मत सोचना कोई और। महावीर की नग्नता लोगों को भारी पड़ी, क्योंकि लोगों ने कहा यह तो आचरणहीनता है। यह कैसा आचरण? आचरण बड़ा सूक्ष्म है। अब महावीर का नग्न हो जाना इतना निर्दोष आचरण है, जिसका हिसाब लगाना कठिन है। हिम्मत अदभुत है। महावीर इतने सरल हो गए कि छिपाने को कुछ न बचा। अब महावीर को इस चमड़ी और हड्डी की देह का बोध मिट गया और वह जो, जिसको रूसी वैज्ञानिक इलेक्ट्रोमैग्नेटिक-फील्ड कहते हैं, उस प्राण-शरीर का बोध इतना सघन हो गया कि उस पर तो कोई कपड़े

डाले नहीं जा सकते, कपड़े गिर गए। और ऐसा भी नहीं कि महावीर ने कपड़े छोड़े, कपड़े गिर गए।
एक दिन गुजरते हुए एक राह से चादर उलझ गई है एक झाड़ी में, तो झाड़ी के फूल न गिर जाएं, पत्ते न टूट जाएं, कांटों को चोट न लग जाए, तो आधी चादर फाड़ कर वहीं छोड़ दी। फिर आधी रह गई शरीर पर। फिर वह भी गिर गई। वह कब गिर गई, उसका महावीर को पता न चला। लोगों को पता चला कि महावीर नग्न खड़े हैं। आचरण सहना मुश्किल हो गया।
आचरण के रास्ते सूक्ष्म हैं, बहुत कठिन हैं। और हम सब के आचरण के संबंध में बंधे-बंधाए ख्याल हैं। ऐसा करो--और जो ऐसा करने को राजी हो जाते हैं, वे करीब-करीब मुर्दा लोग हैं। जो आपकी मान कर आचरण कर लेते हैं, उन मुर्दों को आप काफी पूजा देते हैं। इसमें कहा है, आचार्यों को नमस्कार। आप आचरण तय नहीं करेंगे, उनका ज्ञान ही उनका आचरण तय करेगा। और ज्ञान परम स्वतंत्रता है। जो व्यक्ति आचार्य को नमस्कार कर रहा है, वह यह भाव कर रहा है कि मैं नहीं जानता क्या है ज्ञान, क्या है आचरण, लेकिन जिनका भी आचरण उनके ज्ञान से उपजता और बहता है, उनको मैं नमस्कार करता हूं।
अभी भी बात सूक्ष्म है; इसलिए चौथे चरण में, उपाध्यायों को नमस्कार। उपाध्याय का अर्थ है--आचरण ही नहीं, उपदेश भी। उपाध्याय का अर्थ है--ज्ञान ही नहीं, आचरण ही नहीं, उपदेश भी। वे जो जानते हैं, जान कर वैसा जीते हैं; और जैसा वे जीते हैं और जानते हैं, वैसा बताते भी हैं। उपाध्याय का अर्थ है-- वह जो बताता भी है। क्योंकि हम मौन से न समझ पाएं। आचार्य मौन हो सकता है। वह मान सकता है कि आचरण काफी है। और अगर तुम्हें आचरण दिखाई नहीं पड़ता तो तुम जानो। उपाध्याय आप पर और भी दया करता है। वह बोलता भी है, वह आपको कह कर भी बताता है।
ये चार सुस्पष्ट रेखाएं हैं। लेकिन इन चार के बाहर भी जानने वाले छूट जाएंगे। क्योंकि जानने वालों को बांधा नहीं जा सकता कैटेगरी.ज में। इसलिए मंत्र बहुत हैरानी का है। इसलिए पांचवें चरण में एक सामान्य नमस्कार है-- नमो लोए सव्वसाहूणं। लोक में जो भी साधु हैं, उन सबको नमस्कार। जगत में जो भी साधु हैं, उन सबको नमस्कार। जो उन चार में कहीं भी छूट गए हों, उनके प्रति भी हमारा नमन न छूट जाए। क्योंकि उन चार में बहुत लोग छूट सकते हैं। जीवन बहुत रहस्यपूर्ण है, कैटेगराइज नहीं किया जा सकता, खांचों में नहीं बांटा जा सकता। इसलिए जो शेष रह जाएंगे, उनको सिर्फ साधु कहा--वे जो सरल हैं। और साधु का एक अर्थ और भी है। इतना सरल भी हो सकता है कोई कि उपदेश देने में भी संकोच करे। इतना सरल भी हो सकता है कोई कि आचरण को भी छिपाए। पर उसको भी हमारे नमस्कार पहुंचने चाहिए।
सवाल यह नहीं है कि हमारे नमस्कार से उसको कुछ फायदा होगा, सवाल यह है
कि हमारा नमस्कार हमें रूपांतरित करता है। न अरिहंतों को कोई फायदा होगा, न सिद्धों को, न आचार्यों को, न उपाध्यायों को, न साधुओं को--पर आपको फायदा होगा। यह बहुत मजे की बात है कि हम सोचते हैं कि शायद इस नमस्कार में हम सिद्धों के लिए, अरिहंतों के लिए कुछ कर रहे हैं, तो इस भूल में मत पड़ना। आप उनके लिए कुछ भी न कर सकेंगे, या आप जो भी करेंगे उसमें उपद्रव ही करेंगे। आपकी इतनी ही कृपा काफी है कि आप उनके लिए कुछ न करें। आप गलत ही कर सकते हैं। नहीं, यह नमस्कार अरिहंतों के लिए नहीं है, अरिहंतों की तरफ है, लेकिन आपके लिए है। इसके जो परिणाम हैं, वह आप पर होने वाले हैं। जो फल है, वह आप पर बरसेगा।
अगर कोई व्यक्ति इस भांति नमन से भरा हो, तो क्या आप सोचते हैं उस व्यक्ति में अहंकार टिक सकेगा? असंभव है।
लेकिन नहीं, हम बहुत अदभुत लोग हैं। अगर अरिहंत सामने खड़ा हो तो हम पहले इस बात का पता लगाएंगे कि अरिहंत है भी? महावीर के आस-पास भी लोग यही पता लगाते-लगाते जीवन नष्ट किए--अरिहंत है भी? तीर्थंकर है भी? और आपको पता नहीं है, आप सोचते हैं कि बस तय हो गया, महावीर के वक्त में बात इतनी तय न थी। और भी भीड़ें थीं, और भी लोग थे जो कह रहे थे--ये अरिहंत नहीं हैं, अरिहंत और हैं। गोशालक है अरिहंत। ये तीर्थंकर नहीं हैं, यह दावा झूठा है।

महावीर का तो कोई दावा नहीं था। लेकिन जो महावीर को जानते थे, वे दावे
से बच भी नहीं सकते थे। उनकी भी अपनी कठिनाई थी। पर महावीर के समय पर चारों ओर यही विवाद था। लोग जांच करने आते कि महावीर अरिहंत हैं या नहीं, वे तीर्थंकर हैं या नहीं, वे भगवान हैं या नहीं। बड़ी आश्चर्य की बात है, आप जांच भी कर लेंगे और सिद्ध भी हो जाएगा कि महावीर भगवान नहीं हैं, आपको क्या मिलेगा? और महावीर भगवान न भी हों और आप अगर उनके चरणों में सिर रखें और कह सकें, नमो अरिहंताणं, तो आपको मिलेगा। महावीर के भगवान होने से कोई फर्क नहीं पड़ता।
असली सवाल यह नहीं है कि महावीर भगवान हैं या नहीं, असली सवाल यह है कि कहीं भी आपको भगवान दिख सकते हैं या नहीं--कहीं भी--पत्थर में, पहाड़ में। कहीं भी आपको दिख सके तो आप नमन को उपलब्ध हो जाएं। असली राज तो नमन में है, असली राज तो झुक जाने में है--असली राज तो झुक जाने में है। वह जो झुक जाता है, उसके भीतर सब कुछ बदल जाता है। वह आदमी दूसरा हो जाता है। यह सवाल नहीं है कि कौन सिद्ध हैं और कौन सिद्ध नहीं हैं--और इसका कोई उपाय भी नहीं है कि किसी दिन यह तय हो सके--लेकिन यह बात ही इररिलेवेंट है, असंगत है। इससे कोई संबंध ही नहीं है। न रहे हों महावीर, इससे क्या फर्क पड़ता है। लेकिन अगर आपके लिए झुकने के लिए निमित्त बन सकते हैं तो बात पूरी हो गई। महावीर सिद्ध हैं या नहीं, यह वे सोचें और समझें, वह अरिहंत अभी हुए या नहीं यह उनकी अपनी चिंता है, आपके लिए चिंतित होने का कोई भी तो कारण नहीं है। आपके लिए चिंतित होने का अगर कोई कारण है तो एक ही कारण है कि कहीं कोई कोना है इस अस्तित्व में जहां आपका सिर झुक जाए। अगर ऐसा कोई कोना है तो आप नये जीवन को उपलब्ध हो जाएंगे।
यह नमोकार, अस्तित्व में कोई कोना न बचे, इसकी चेष्टा है। सब कोने जहां-जहां सिर झुकाया जा सके--अज्ञात, अनजान, अपरिचित--पता नहीं कौन साधु है, इसलिए नाम नहीं लिए। पता नहीं कौन अरिहंत है। पर इस जगत में जहां अज्ञानी हैं, वहां ज्ञानी भी हैं। क्योंकि जहां अंधेरा है, वहां प्रकाश भी है। जहां रात, सांझ होती है, वहां सुबह भी होती है। जहां सूरज अस्त होता है, वहां सूरज उगता भी है। यह अस्तित्व द्वंद्व की व्यवस्था है। तो जहां इतना सघन अज्ञान है, वहां इतना ही सघन ज्ञान भी होगा ही। यह श्रद्धा है। और इस श्रद्धा से भरकर जो ये पांच नमन कर पाता है, वह एक दिन कह पाता है कि निश्चय ही मंगलमय है यह सूत्र। इससे सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं।
ध्यान ले लें, मंत्र आपके लिए है। मंदिर में जब मूर्ति के चरणों में
आप सिर रखते हैं, तो सवाल यह नहीं है कि वे चरण परमात्मा के हैं या नहीं, सवाल इतना ही है कि वह जो चरण के समक्ष झुकने वाला सिर है वह परमात्मा के समक्ष झुक रहा है या नहीं। वे चरण तो निमित्त हैं। उन चरणों का कोई प्रयोजन नहीं है। वह तो आपको झुकने की कोई जगह बनाने के लिए व्यवस्था है। लेकिन झुकने में पीड़ा होती है। और इसलिए जो भी वैसी पीड़ा दे, उस पर क्रोध आता है। जीसस पर या महावीर पर या बुद्ध पर जो क्रोध आता है, वह भी स्वाभाविक मालूम पड़ता है। क्योंकि झुकने में पीड़ा होती है। अगर महावीर आएं और आपके चरण पर सिर रख दें तो चित्त बड़ा प्रसन्न होगा। फिर आप महावीर को पत्थर न मारेंगे! फिर आप महावीर के कानों में कीले न ठोकेंगे; कि ठोकेंगे? लेकिन महावीर आपके चरणों में सिर रख दें तो आपको कोई लाभ नहीं होता। नुकसान होता है। आपकी अकड़ और गहन हो जाएगी।
महावीर ने अपने साधुओं को कहा है कि वह गैर-साधुओं को नमस्कार न करें। बड़ी अजीब सी बात है! साधु को तो विनम्र होना चाहिए। इतना निर-अहंकारी होना चाहिए कि सभी के चरणों में सिर रखे। तो साधु गैर-साधु को, गृहस्थ को नमस्कार न करे--यह तो महावीर की बात अच्छी नहीं मालूम पड़ती। लेकिन प्रयोजन करुणा का है। क्योंकि साधु निमित्त बनना चाहिए कि आपका नमस्कार पैदा हो। और साधु आपको नमस्कार करे तो निमित्त तो बनेगा नहीं, आपकी अस्मिता और अहंकार को और मजबूत कर देगा। कई बार दिखती है बात कुछ और, होती है कुछ और। हालांकि, जैन साधुओं ने इसका ऐसा प्रयोग किया है, यह मैं नहीं कह रहा हूं। असल में साधु का तो लक्षण यही है कि जिसका सिर अब सबके चरणों पर है। साधु का लक्षण तो यही है कि जिसका सिर अब सबके चरणों पर है। फिर भी साधु आपको

नमस्कार नहीं करता है। क्योंकि निमित्त बनना चाहता है। लेकिन अगर साधु का सिर आप सबके चरणों पर न हो और फिर वह आपको अपने चरणों में झुकाने की कोशिश करे तब वह आत्महत्या में लगा है। पर फिर भी आपको चिंतित होने की कोई भी जरूरत नहीं है। क्योंकि आत्महत्या का प्रत्येक को हक है। अगर वह अपने नरक का रास्ता तय कर रहा है तो उसे करने दें। लेकिन नरक जाता हुआ आदमी भी अगर आपको स्वर्ग के इशारे के लिए निमित्त बनता हो तो अपना निमित्त लें, अपने मार्ग पर बढ़ जाएं। पर नहीं, हमें इसकी चिंता कम है कि हम कहां जा रहे हैं, हमें इसकी चिंता ज्यादा है कि दूसरा कहां जा रहा है।
नमोकार नमन का सूत्र है। यह पांच चरणों में समस्त जगत में जिन्होंने
भी कुछ पाया है, जिन्होंने भी कुछ जाना है, जिन्होंने भी कुछ जीया है, जो जीवन के अंतर्तम गूढ़ रहस्य से परिचित हुए हैं, जिन्होंने मृत्यु पर विजय पाई है, जिन्होंने शरीर के पार कुछ पहचाना है, उन सबके प्रति--समय और क्षेत्र दोनों में। लोक दो अर्थ रखता है। लोक का अर्थः विस्तार में जो हैं वे, स्पेस में, आकाश में जो आज हैं वे--लेकिन जो कल थे वे भी और जो कल होंगे वे भी। लोक--सव्व लोएः सर्व लोक में, सव्वसाहूणंः समस्त साधुओं को। समय के अंतराल में पीछे कभी जो हुए हों वे, भविष्य में जो होंगे वे, आज जो हैं वे, समय या क्षेत्र में कहीं भी जब भी कहीं कोई ज्योति ज्ञान की जली हो, उस सबके लिए नमस्कार। इस नमस्कार के साथ ही आप तैयार होंगे। फिर महावीर की वाणी को समझना आसान होगा। इस नमन के बाद ही, इस झुकने के बाद ही आपकी झोली फैलेगी और महावीर की संपदा उसमें गिर सकती है।
नमन है रिसेप्टिविटी, ग्राहकता। जैसे ही आप नमन करते हैं, वैसे ही आपका हृदय खुलता है और आप भीतर किसी को प्रवेश देने के लिए तैयार हो जाते हैं। क्योंकि जिसके चरणों में आपने सिर रखा, उसको आप भीतर आने में बाधा न डालेंगे, निमंत्रण देंगे। जिसके प्रति आपने श्रद्धा प्रकट की, उसके लिए आपका द्वार, आपका घर खुला हो जाएगा। वह आपके घर, आपका हिस्सा होकर जी सकता है। लेकिन ट्रस्ट नहीं है, भरोसा नहीं है, तो नमन असंभव है। और नमन असंभव है तो समझ असंभव है। नमन के साथ ही अंडरस्टेंडिंग है, नमन के साथ ही समझ का जन्म है।
इस ग्राहकता के संबंध में एक आखिरी बात और आपसे कहूं। मास्को यूनिवर्सिटी में उन्नीस सौ छांछट तक एक अदभुत व्यक्ति था--डाक्टर वार्सिलिएव। वह ग्राहकता पर प्रयोग कर रहा था। माइंड की रिसेप्टिविटी, मन की ग्राहकता कितनी हो सकती है। करीब-करीब ऐसा हाल है जैसे कि एक बड़ा भवन हो और हमने उसमें एक छोटा सा छेद कर रखा हो और उसी छेद से हम बाहर के जगत को देखते हैं। यह भी हो सकता है कि भवन की सारी दीवालें गिरा दी जाएं और हम खुले आकाश के नीचे समस्त रूप से ग्रहण करने वाले हो जाएं। वार्सिलिएव ने एक बहुत हैरानी का प्रयोग किया--और पहली दफा। उस तरह के बहुत से प्रयोग पूरब में--विशेषकर भारत में, और सर्वाधिक विशेष कर महावीर ने किए थे। लेकिन उनका डायमेंशन, उनका आयाम अलग था। महावीर ने जाति-स्मरण के प्रयोग किए थे कि प्रत्येक व्यक्ति को आगे अगर ठीक यात्रा करनी हो तो उसे अपने पिछले जन्मों को स्मरण और याद कर लेना चाहिए। उसको पिछले जन्म याद आ जाएं तो आगे की यात्रा आसान हो जाए।
लेकिन वार्सिलिएव ने एक और अनूठा प्रयोग किया। उस प्रयोग को वे कहते हैंः आर्टिफिशियल रि-इनकारनेशन। आर्टिफिशियल रि-इनकारनेशन, कृत्रिम पुनर्जन्म या कृत्रिम पुनरुज्जीवन--यह क्या है? वार्सिलिएव और उसके साथी एक व्यक्ति को बेहोश करेंगे, तीस दिन तक निरंतर सम्मोहित करके उसको गहरी बेहोशी में ले जाएंगे, और जब वह गहरी बेहोशी में आने लगेगा, और अब यह यंत्र हैं--ई ई जी नाम का यंत्र है, जिससे जांच की जा सकती है कि नींद की कितनी गहराई है। अल्फा नाम की वेव्स पैदा होनी शुरू हो जाती हैं, जब व्यक्ति चेतन मन से गिर कर अचेतन में चला जाता है। तो यंत्र पर, जैसे कि कार्डियोग्राम पर ग्राफ बन जाता है, ऐसा ई ई जी भी ग्राफ बना देता है, कि यह व्यक्ति अब सपना देख रहा है, अब सपने भी बंद हो गए, अब यह नींद में हैं, अब यह गहरी नींद में है, अब यह अतल गहराई में डूब गया। जैसे ही कोई व्यक्ति अतल गहराई में डूब जाता है, उसे सुझाव देता था वार्सिलिएव। समझ लें कि वह

एक चित्रकार है, छोटा-मोटा चित्रकार है, यह चित्रकला का विद्यार्थी है, तो वार्सिलिएव उसको समझाएगा कि तू माइकल एंजिलो है, पिछले जन्म का, या वॉनगाग है। या कवि है तो वह समझाएगा कि तू शेक्सपियर है, या कोई और। और तीस दिन तक निरंतर गहरी अल्फा वेव्स की हालत में उसको सुझाव दिया जाएगा कि वह कोई और है, पिछले जन्म का। तीस दिन में उसका चित्त इसको ग्रहण कर लेगा।
तीस दिन के बाद बड़ी हैरानी के अनुभव हुए, कि वह व्यक्ति जो साधारण सा चित्रकार था, जब उसे भीतर भरोसा हो गया कि मैं माइकल एंजलो हूं तब वह विशेष चित्रकार हो गया--तत्काल। वह साधारण सा तुकबंद था, जब उसे भरोसा हो गया कि मैं शेक्सपियर हूं तो शेक्सपियर की हैसियत की कविताएं उस व्यक्ति से पैदा होने लगीं।
हुआ क्या? वार्सिलिएव तो कहता था--यह आर्टिफिशियल रि-इनकारनेशन है। वार्सिलिएव कहता था कि हमारा चित्त तो बहुत बड़ी चीज है। छोटी सी खिड़की खुली है, जो हमने अपने को समझ रखा है कि हम यह हैं, उतना ही खुला है, उसी को मान कर हम जीते हैं। अगर हमें भरोसा दिया जाए कि हम और बड़े हैं, तो खिड़की बड़ी हो जाती है। हमारी चेतना उतना काम करने लगती है।
वार्सिलिएव का कहना है कि आने वाले भविष्य में हम जीनियस निर्मित कर सकेंगे। कोई कारण नहीं है कि जीनियस पैदा ही न हों। सच तो यह है कि वार्सिलिएव कहता है, सौ में से कम से कम नब्बे बच्चे प्रतिभा की, जीनियस की क्षमता लेकर पैदा होते हैं, हम उसकी खिड़की छोटी कर देते हैं। मां-बाप, स्कूल, शिक्षक, सब मिल-जुल कर उनकी खिड़की छोटी कर देते हैं। बीस-पच्चीस साल तक हम एक साधारण आदमी खड़ा कर देते हैं, जो कि क्षमता बड़ी लेकर आया था, लेकिन हम उसका द्वार छोटा करते जाते हैं, छोटा करते जाते हैं। वार्सिलिएव कहता है, सभी बच्चे जीनियस की तरह पैदा होते हैं। कुछ जो हमारी तरकीबों से बच जाते हैं वह जीनियस बन जाते हैं, बाकी नष्ट हो जाते हैं। पर वार्सिलिएव का कहना है--असली सूत्र है रिसेप्टिविटी। इतना ग्राहक हो जाना चाहिए चित्त कि जो उसे कहा जाए, वह उसके भीतर गहनता में प्रवेश कर जाए।
इस नमोकार मंत्र के साथ हम शुरू करते हैं महावीर की वाणी पर चर्चा। क्योंकि गहन होगा मार्ग, सूक्ष्म होंगी बातें। अगर आप ग्राहक हैं--नमन से भरे, श्रद्धा से भरे--तो आपके उस अतल गहराई में बिना किसी यंत्र की सहायता के--यह भी यंत्र है, इस अर्थ में, नमोकार--बिना किसी यंत्र की सहायता के आप में अल्फा वेव्स पैदा हो जाती हैं। जब कोई श्रद्धा से भरता है तो अल्फा वेव्स पैदा हो जाती हैं--यह आप हैरान होंगे जान कर कि गहन सम्मोहन में, गहरी निद्रा में, ध्यान में या श्रद्धा में ई ई जी की जो मशीन है वह एक सा ग्राफ बनाती है। श्रद्धा से भरा हुआ चित्त उसी शांति की अवस्था में होता है जिस शांति की अवस्था में गहन ध्यान में होता है, या उसी शांति की अवस्था में होता है, जैसा गहन निद्रा में होता है, या उसी शांति की अवस्था में होता है, जैसा कि कभी भी आप जब बहुत रिलैक्स्ड और बहुत शांत होते हैं।
जिस व्यक्ति पर वार्सिलिएव काम करता था, वह है निकोलिएव नाम का युवक, जिस पर उसने वर्षों काम किया। निकोलिएव को दो हजार मील दूर से भी भेजे गए विचारों को पकड़ने की क्षमता आ गई है। सैकड़ों प्रयोग किए गए हैं जिसमें वह दो हजार मील दूर तक के विचारों को पकड़ पाता है। उससे जब पूछा जाता है कि उसकी तरकीब क्या है तो वह कहता है--तरकीब यह है कि मैं आधा घंटा पूर्ण रिलैक्स, शिथिल होकर पड़ जाता हूं और एक्टिविटी सब छोड़ देता हूं, भीतर सब सक्रियता छोड़ देता हूं, पैसिव हो जाता हूं। पुरुष की तरह नहीं, स्त्री की तरह हो जाता हूं। कुछ भेजता नहीं, कुछ आता हो तो लेने को राजी हो जाता हूं। और आधा घंटे में ई ई जी की मशीन जब बता देती है कि अल्फा वेव्स शुरू हो गईं, तब वह दो हजार मील दूर से भेजे गए विचारों को पकड़ने में समर्थ हो जाता है। लेकिन जब तक वह इतना रिसेप्टिव नहीं होता, तब तक यह नहीं हो पाता। वार्सिलिएव और दो कदम आगे गया। उसने कहा--आदमी ने तो बहुत तरह से अपने
को विकृत किया है। अगर आदमी में यह क्षमता है तो पशुओं में और भी शुद्ध होगी। और इस सदी का अनूठे से अनूठा प्रयोग वार्सिलिएव ने किया कि एक मादा चूहे को, चुहिया को ऊपर रखा और उसके आठ बच्चों को पानी के भीतर, पनडुब्बी के भीतर हजारों फीट नीचे सागर में भेजा। पनडुब्बी का इसलिए उपयोग किया कि

पानी के भीतर पनडुब्बी से कोई रेडियो वेव्स बाहर नहीं आती हैं, न बाहर से भीतर जाती हैं। अब तक जानी गई जितनी वेव्स वैज्ञानिकों को पता हैं, जितनी तरंगें, वे कोई भी पानी के भीतर इतनी गहराई तक प्रवेश नहीं करतीं। एक गहराई के बाद सूर्य की किरण भी पानी में प्रवेश नहीं करती।
तो उस गहराई के नीचे पनडुब्बी को भेज दिया गया, और उस चुहिया की खोपड़ी
पर सब तरफ इलेक्ट्रोड्स लगा कर ई ई जी से जोड़ दिए गए--मशीन से, जो चुहिया के मस्तिष्क में जो वेव्स चलती हैं उसको रिकार्ड करे। और बड़ी अदभुत बात हुई। हजारों फीट नीचे, पानी के भीतर एक-एक उसके बच्चे को मारा गया खास-खास मोमेंट पर नोट किया गया--जैसे ही वहां बच्चा मरता, वैसे ही यहां उसकी ई ई जी की वेव्स बदल जातीं--दुर्घटना घटित हो गई। ठीक छह घंटे में उसके बच्चे मारे गए--खास-खास समय पर, नियत समय पर। उस नियत समय का ऊपर कोई पता नहीं है। नीचे जो वैज्ञानिक है उसको छोड़ दिया गया है कि इतने समय के बीच वह कभी भी, पर नोट कर लें मिनट और सेकेंड। जिस मिनट और सेकेंड पर नीचे चुहिया के बच्चे मारे गए, उस मां ने उसके मस्तिष्क में उस वक्त धक्के अनुभव किए। वार्सिलिएव का कहना है कि जानवरों के लिए टेलिपैथिक सहज सी घटना है। आदमी भूल गया है, लेकिन जानवर अभी भी टेलिपैथिक जगत में जी रहे हैं।
मंत्र का उपयोग है, आपको वापस टेलिपैथिक जगत में प्रवेश--अगर आप अपने
को छोड़ पाएं, हृदय से, उस गहराई से कह पाएं जहां कि आपकी अचेतना में डूब जाता है सब--नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं, नमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्वसाहूणं, यह भीतर उतर जाए तो आप अपने अनुभव से कह पाएंगेः सव्वपावप्पणासणो, यह सब पापों का नाश करने वाला महामंत्र है।

आज इतनी ही बात।
फिर अब इस महामंत्र का उदघोष करेंगे। इसमें आप सम्मिलित हों--नहीं, कोई जाएगा नहीं। कोई जाएगा नहीं। जिन मित्रों को खड़े होकर सम्मिलित होना हो, वे कुर्सियों के किनारे खड़े हो जाएं, क्योंकि संन्यासी नाचेंगे और मंत्र के उदघोष में डूबेंगे। इस मंत्र को अपने प्राणों में उतार कर ही यहां से जाएं। जिनको बैठ कर साथ देना हो, वे बैठ कर ताली बजाएंगे और उदघोष करेंगे।

महावीर-वाणी, भाग 1
दूसरा प्रवचन

मंगल व लोकोत्तर की भावना (मंगल-भाव-सूत्र)

अरिहंता मंगलं।
सिद्धा मंगलं।
साहू मंगलं।
केवलिपन्नत्तो धम्मो मंगलं।।
अरिहंता लोगुत्तमा।
साहू लोगुत्तमा।
केवलिपन्नत्तो धम्मा लोगुत्तमा।।

अरिहंत मंगल हैं। सिद्ध मंगल हैं। साधु मंगल हैं। केवलीप्ररूपित अर्थात आत्मज्ञकथित धर्म मंगल है। अरिहंत लोकोत्तम हैं। सिद्ध लोकोत्तम हैं। साधु लोकोत्तम हैं। केवलीप्ररूपित अर्थात आत्मज्ञकथित धर्म लोकोत्तम है।

महावीर ने कहा है--जिसे पाना हो उसे देखना शुरू करना चाहिए। क्योंकि
हम उसे ही पा सकते हैं जिसे हम देखने में समर्थ हो जाएं। जिसे हमने देखा नहीं, उसे पाने का भी कोई उपाय नहीं। जिसे खोजना हो, उसकी भावना करनी प्रारंभ कर लेनी चाहिए। क्योंकि इस जगत में हमें वही मिलता है, जो मिलने के भी पहले, जिसके लिए हम अपने ह्नदय में जगह बना लेते हैं। अतिथि घर आता हो तो हम इंतजाम कर लेते हैं उसके स्वागत का। अरिहंत को निर्मित करना हो स्वयं में, सिद्ध को पाना हो कभी, किसी क्षण स्वयं भी केवली बन जाना हो तो उसे देखना, उसकी भावना करनी, उसकी आकांक्षा और अभीप्सा की तरफ चरण उठाने शुरू करने जरूरी हैं।
महावीर से ढाई हजार साल पहले चीन में एक कहावत प्रचलित थी। और वह कहावत थी--लाओत्से के द्वारा कही गई और बाद में संगृहीत की गई चिंतन की धारा का पूरा का पूरा सार--वह कहावत थी--"दि सुपीरियर फिजिशियन क्योर्स दि इलनेस बिफोर इट इ.ज मैनिफेस्टेड"--जो श्रेष्ठ चिकित्सक है वह बीमारी के प्रकट होने के पहले ही उसे ठीक कर देता है। "द इनफीरियर फिजिशियन ओनली केयर्स फॉर द इलनेस व्हिच ही वा.ज नॉट एबल टु प्रिवेंट"--और, जो साधारण चिकित्सक है वह केवल बीमारी को दूर करने में थोड़ी बहुत सहायता पहुंचाता है, जिसे वह रोकने में समर्थ नहीं था।
हैरान होंगे जान कर आप यह बात कि महावीर से ढाई हजार साल पहले, आज से पांच हजार साल पहले चीन में चिकित्सक को बीमारी के ठीक करने के लिए कोई पुरस्कार नहीं दिया जाता था। उलटा ही रिवाज था, या हम समझें कि हम जो कर रहे हैं वह उलटा है। चिकित्सक को पैसे दिए जाते थे इसलिए कि वह किसी को बिमार न पड़ने दे। और अगर कभी कोई बीमार पड़ जाता तो चिकित्सक को उलटे उसे पैसे चुकाने पड़ते थे। तो हर व्यक्ति नियमित अपने चिकित्सक को पैसे देता था ताकि वह बिमार न पड़े। और बिमार पड़ जाए तो चिकित्सक को उसे ठीक भी करना पड़ता और पैसे भी दने पड़ते। जब तक वह ठीक न हो जाता, तब तक बीमार को फीस मिलती चिकित्सक के द्वारा। यह जो चिकित्सा कि पद्धति चीन में थी उसका नाम है--एक्युपंक्चर। इस चिकित्सा कि पद्धति को नया वैज्ञानिक समर्थन मिलना शुरू हुआ है।
रूस में वे इस पर बड़े प्रयोग कर रहे हैं और उनकी दृष्टि है कि इस सदी
के पूरे होते-होते रूस में चिकित्सक को बीमार को बीमार न पड़ने देने की तनख्वाह देनी शूरू कर दी जाएगी। और जब भी कोई बीमार पड़ेगा तो चिकित्सक जिम्मेवार और अपराधी होगा। एक्युपंक्चर मानता है कि शरीर में खून ही नहीं बहता, विद्युत ही नहीं बहती--एक और तीसरा प्रवाह है, प्राण है--ऊर्जा का, एलन वाइटल का--वह प्रवाह भी शरीर में बेहता है। सात सौ स्थानों पर शरीर के अलग-अलग वह प्रवाह है, चमड़ी को स्पर्श करता है। इसलिए एक्युपंक्चर में चमड़ी पर जहां-जहां प्रवाह अव्यवस्थित हो गया है, वहीं सुई वहीं सुई चोभ कर

प्रवाह को संतुलित करने की कोशिश की जाती है। बीमारी के आने के छह महीने पहले उस प्रवाह में असंतुलन शुरू हो जाता है। यह जान कर आपको हैरानी होगी कि नाड़ी की जानकारी भी वस्तुतः खून के प्रवाह की जानकारी नही है। नाड़ी के द्वारा भी उसी जीवन-प्रवाह को समझने की कोशिश की जाती है। और छह महीने पहले नाड़ी अस्त-व्यस्त होनी शुरू हो जाती है--बीमारी के आने के छह महीने पहले।
हमारे भीतर जो प्राण-शरीर है उसमें पहले बीज रूप में चीजें पैदा होती हैं और फिर वृक्ष रूप में हमारे भौतिक शरीर तक फैल जाती हैं। चाहे शुभ को जन्म देना हो, चाहे अशुभ को। चाहे स्वास्थ्य को जन्म देना हो, चाहे बीमारी को। सबसे पहले प्राण शरीर में बीज आरोपित करने होते हैं। यह जो मंगल की स्तुति है कि अरिहंत मंगल हैं, यह प्राण-शरीर में बीज डालने का उपाय है। क्योंकि जो मंगल है उसकी कामना स्वाभाविक हो जाती है। हम वही चाहते हैं जो मंगल है। जो अमंगल है वह हम नहीं चाहते। इसमें चाह की तो बात ही नहीं की गई है, सिर्फ मंगल का भाव है।
अरिहंत मंगल हैं, सिद्ध मंगल हैं, साहू मंगल हैं। केवलीपन्नत्तो धम्मो मंगल--वह जिन्होंने स्वयं को जाना और पाया, उनके द्वारा विरूपित धर्म मंगल है--सिर्फ मंगल का भाव।
यह जानकर हैरानी होगी कि मन का नियम है, जो भी मंगल है, ऐसा भाव गहन हो जाए तो उसकी आकांक्षा शूरू हो जाती है। आकांक्षा को पैदा नहीं करना पड़ता। मंगल की धारणा को पैदा करना पड़ता है। आकांक्षा मंगल की धारणा के पीछे छाया की भांति चली आती है।
धारणा पतंजलि योग के आठ अंगों में कीमती अंग है जहां से अंतर्यात्रा शुरू होती है--धारणा, ध्यान, समाधि--छठवां सूत्र है धारणा, सातवां ध्यान, आठवां समाधि। यह जो मंगल की धारणा है, यह पतंजलि योग-सूत्र का छठवां सूत्र है, और महावीर के योग-सूत्र का पहला। क्योंकि महावीर का मानना यह है कि धारणा से सब शूरू हो जाता है। धारणा जैसे ही हमारे भीतर गहन होती है, हमारी चेतना रूपांतरित होती है। न केवल हमारी, हमारे पड़ोस में जो बैठा है उसकी भी। यह जानकर आपको आश्चर्य होगा कि आप अपनी ही धारणाओं से प्रभावित नहीं होते, आपके निकट जो धारणाओं के प्रवाह बहते हैं उनसे भी प्रभावित होते हैं। इसलिए महावीर ने कहा है--अज्ञानी से दूर रहना मंगल है, ज्ञानी के निकट रहना मंगल है। चेतना जिसकी रुग्ण है उससे दूर रहना मंगल है। चेतना जिसकी स्वस्थ है उसके निकट, सान्निध्य में रहना मंगल है। सत्संग का इतना ही अर्थ है कि जहां शुभ धारणाएं हों, उस मिल्यू में, उस वातावरण में रहना मंगल है। रूस के एक विचारक, जो एक्युपंक्चर पर काम कर रहे हैं--डाक्टर सिरोव, उन्होंने यांत्रिक आविष्कार किए हैं जिनसे पड़ोसी की धारणा आपको कब प्रभावित करती है और कैसे प्रभावित करती है, उसकी जांच की जा सकती है। आप पूरे समय पड़ोस की धारणाओं से इम्पोज किए जा रहे हैं। आपको पता ही नहीं है कि आपको जो क्रोध आया है, जरूरी नहीं है कि आपका ही हो। वह आपके पड़ोसी का भी हो सकता है। भीड़ में बहुत मौकों पर आपको ख्याल नहीं है--भीड़ में एक आदमी जम्हाई लेता है और दस आदमी, उसी क्षण, अलग-अलग कोनों में बैठे हुए जम्हाई लेने शुरू कर देते हैं। सिरोव का कहना है कि वह धारणा एक के मन में जो पैदा हुई उसके वर्तुल आस-पास चले गए और दूसरों को भी उसने पकड़ लिया। अब इसके लिए उसने यंत्र निर्मित किए हैं, जो बताते हैं कि धारणा आपको कब पकड़ती है और कब आप में प्रवेश कर जाती है। अपनी धारणा से तो व्यक्ति का प्राण-शरीर प्रभावित होता है। कुछ घटनाएं इस संबंध में आपको कहूं तो बहुत आसान होगा। उन्नीस सौ दस में जर्मनी की एक ट्रेन में एक पंद्रह-सोहल वर्ष का युवक बैंच के नीचे छिपा पड़ा है। उसके पास टिकट नहीं है। वह घर से भाग खड़ा हुआ है। उसके पास पैसा भी नहीं है। फिर तो बाद में वह बहुत प्रसिद्ध आदमी हुआ और हिटलर ने उसके सिर पर दो लाख मार्क की घोषणा की कि जो उसका सिर काट लाए। वह तो फिर बहुत बड़ा आदमी हुआ और उसके बड़े अदभुत परिणाम हुए, और स्टैलिन और आइंस्टीन और गांधी सब उससे मिल कर आनंदित और प्रभावित हुए। उस आदमी का बाद में नाम हुआ--वुल्फ मैसिंग। उस दिन तो उसे कोई नहीं जानता था, उन्नीस सौ दस में।

वुल्फ मैसिंग ने अभी अपनी आत्मकथा लिखी है जो रुस में प्रकाशित हुई
है और बड़ा समर्थन मिला है। अपनी आत्म-कथा उसने लिखी है--"अबाउट माईसेल्फ"।" उसमें उसने लिखा है कि उस दिन मेरी जिंदगी बदल गई। उस ट्रेन में नीचे फर्श पर छिपा हुआ पड़ा था बिना टिकट के कारण। मैसिंग ने लिखा है कि वे शब्द मुझे कभी नहीं भूलते--टिकट चेकर का कमरे में प्रवेश, उसके जूतों की आवाज और मेरी श्वास का ठहर जाना और मेरी घबड़ाहट और पसीने का छूट जाना, ठंडी सुबह, और फिर उसका मेरे पास आकर पूछना--यंगमैन, यौर टिकट?
मैसिंग के पास तो टिकट थी नहीं। लेकिन अचानक पास में पड़ा हुआ एक कागज
का टुकड़ा--अखबार की रद्दी का टुकड़ा मैसिंग ने हाथ में उठा लिया। आंख बंद की और संकल्प किया कि यह टिकट है, और उसे उठा कर टिकट चैकर को दे दिया। और मन में सोचा कि हे परमात्मा, उसे टिकट दिखाई पड़ जाए। टिकट चेकर ने उस कागज को पंच्कर किया, टिकट वापस लौटाई और कहा--व्हेन यू हैव गाट दि टिकट, वाई यू आर लाइंग अंडर दि सीट? पागल हो! जब टिकट तुम्हारे पास है तो नीचे क्यों पड़े हो? मैसिंग को खुद भी भरोसा नहीं आया। लेकिन इस घटना ने उसकी पूरी जिंदगी बदल दी। इस घटना के बाद पिछली आधी सदी में पचास वर्षों में जमीन पर सबसे महत्वपूर्ण आदमी था जिसे धारणा के संबंध में सर्वाधिक अनुभव थे।
मैसिंग की परीक्षा दुनिया में बड़े-बड़े लोगों ने ली। उन्नीस सौ चालीस में एक नाटक के मंच पर जहां वह अपना प्रयोग दिखला रहा था--लोगों में विचार संक्रमित करने का--अचानक पुलिस ने आकर मंच का परदा गिरा दिया और लोगों से कहा कि यह कार्यक्रम समाप्त हो गया। क्योंकि मैसिंग गिरफ्तार कर लिया गया। मैसिंग को तत्काल बंद गाड़ी में डाल कर क्रेमलिन ले जाया गया और स्टैलिन के सामने मौजूद किया गया। स्टैलिन ने कहाः मैं मान नहीं सकता कि कोई किसी दूसरे की धारणा को सिर्फ आंतरिक धारणा से प्रभावित कर सके। क्योंकि अगर ऐसा हो सकता है तो फिर
आदमी सिर्फ पदार्थ नहीं रह जाता। तो मैं तुम्हें इसलिए पकड़कर बुलाया हूं कि तुम मेरे सामने सिद्ध करो।
मैसिंग ने कहाः आप जैसा भी चाहें। स्टैलिन ने कहा कि दो बजे तक तुम यहां बंद रहो। दो बजे आदमी तुम्हें ले जाएंगे मास्को के बड़े बैंक में। तुम क्लार्क को एक लाख रुपया सिर्फ धारणा के द्वारा निकलवा कर ले आओ।
पूरा बैंक मिलिटरी से घेरा गया। दो आदमी पिस्तौलें लिए हुए मैसिंग के पीछे, ठीक दो बजे उसे बैंक में ले जाया गया। उसे कुछ पता नहीं था कि किस काउंटर पर उसे ले जाया जाएगा। जाकर ट्रेजरर के सामने उसे खड़ा कर दिया गया। उसेन एक कोरा कागज उन दो आदमियों के सामने निकाला। कोरे कागज को दो क्षण देखा। ट्रेजरर को दिया, और एक लाख रुबल। ट्रैजरर ने कई बार उस कागज को देखा, चश्मा लगाया, वापस गौर से देखा और फिर एक लाख रुपया, एक लाख रुबल निकाल कर मैसिंग को दे दिए। मैसिंग ने बैग में वे पैसे अंदर रखे। स्टैलिन को जाकर रुपये दिए। स्टैलिन को बहुत हैरानी हुई! वापस मैसिंग लौटा। जाकर क्लर्क के हाथ में वह रुपये वापस दिए और कहा--मेरा कागज वापस लौटा दो। जब क्लर्क ने वापस कागज देखा तो वह खाली था। उसे हार्ट अटैक का दौरा पड़ गया और वह वहीं नीचे गिर पड़ा। वह बेहोश हो गया। उसकी समझ के बाहर हो गई बात कि क्या हुआ।
लेकिन स्टैलिन इतने से राजी न हुआ। कोई जालसाजी हो सकती है। कोई क्लर्क और उसके बीच तालमेल हो सकता है। तो क्रेमलिन के एक कमरे में उसे बंद किया गया। हजारों सैनिकों का पहरा लगाया गया और कहा कि ठीक बारह बज कर पांच मिनट पर वह सैनिकों के पहरे के बाहर हो जाए। वह ठीक बारह बज कर पांच मिनट पर बाहर हो गया। सैनिक अपनी जगह खड़े रहे, वह किसी को दिखाई नहीं पड़ा। वह स्टैलिन के सामने जाकर मौजूद हो गया।
इस पर भी स्टैलिन को भरोसा नहीं आया। और भरोसा आने जैसा नहीं था, क्योंकि स्टैलिन की पूरी फिलासफी, पूरा चिंतन, पूरे कम्युनिज्म की धारणा, सब बिखरती है। यही एक आदमी कोई धोखाधड़ी कर दे और सारा का सारा मार्क्स चिंतन का आधार गिर जाए। लेकिन स्टैलिन प्रभावित जरूर इतना हुआ कि उसने तीसरे प्रयोग के लिए और प्रार्थना की।

उसकी दृष्टि में जो सर्वाधिक कठिन बात हो सकती थी, वह यह थी--उसने कहा
कि कल रात बारह बजे मेरे कमरे में तुम मौजूद हो जाओ, बिना किसी अनुमति पत्र के। यह सर्वाधिक कठिन बात थी। क्योंकि स्टैलिन जितने गहन पहरे में रहता था उतना पृथ्वी पर दूसरा कोई आदमी कभी नहीं रहा। पता भी नहीं होता था कि स्टैलिन किस कमरे में है क्रेमलिन के। रोज कमरा बदल दिया जाता था ताकि कोई खतरा न हो, कोई बम न फेंका जा सके, कोई हमला न किया जा सके। सिपाहियों की पहली कतार जानती थी कि पांच नंबर कमरे में है, दूसरी कतार जानती थी कि छह नंबर कमरे में है, तीसरी कतार जानती थी कि आठ नंबर कमरे में है। अपने ही सिपाहियों से भी बचने की जरुरत थी स्टैलिन को। कोई पता नहीं होता था कि स्टैलिन किस कमरे में है। स्टैलिन की खुद पत्नी भी स्टैलिन के कमरे का पता नहीं रख सकती थी। क्रेमलिन के सारे कमरे, जिनमें स्टैलिन अलग-अलग होता था, करीब-करीब एक जैसे थे, जिनमें वह कहीं भी किसी भी क्षण हट सकता था। सारा इंतजाम हर कमरे में था।
ठीक रात बारह बजे पहरेदार पहरा देते रहे और मैसिंग जाकर स्टैलिन की मेज के सामने जाकर खड़ा हो गया, स्टैलिन भी कंप गया। और स्टैलिन ने कहाः तुमने यह किया कैसे? यह असंभव है!
मैसिंग ने कहाः मैं नहीं जानता। मैने कुछ ज्यादा नहीं किया मैने सिर्फ एक ही काम किया कि मैं दरवाजे पर आया और मैने कहा कि आई एक बैरिया। बैरिया रूसी पुलिस का सबसे बड़ा आदमी था, स्टैलिन के बाद नंबर दो की ताकत का आदमी था। बस मैने सिर्फ इतना ही भाव किया कि मैं बैरिया हूं, और तुम्हारे सैनिक मुझे सलाम बजाने लगे और मैं भीतर आ गया।
स्टैलिन ने सिर्फ मैसिंग को आज्ञा दी कि वह रूस में घूम सकता है, और प्रामाणिक है। उन्नीस सौ चालीस के बाद रुस में इस तरह के लोगों की हत्या नहीं की जा सकी तो वह सिर्फ मैसिंग के कारण। उन्नीस सौ चालीस तक रूस में कई लोग मार डाले गए थे जिन्होंने इस तरह के दावे किए थे। कार्ल आटोविस नाम के एक आदमी की उन्नीस सौ सैंतीस में रूस में हत्या की गई, स्टैलिन की आज्ञा से। क्योंकि वह भी जो करता था वह ऐसा था कि उससे कम्युनिज्म की जो मैटीरियलिस्ट--भौतिकवादी धारणा है, वह बिखर जाती है।
अगर धारणा इतनी महत्वपूर्ण हो सकती है तो स्टैलिन ने आज्ञा दी अपने वैज्ञानिकों को कि मैसिंग की बात को पूरा समझने की कोशिश करो, क्योंकि इसका युद्ध में भी उपयोग हो सकता है। और जो आदमी मैसिंग का अध्ययन करता रहा, उस आदमी ने, नामोव ने कहा है कि जो अल्टीमेट वैपन है युद्ध का, आखिरी जो अस्त्र सिद्ध होगा, वह यह मैसिंग के अध्ययन से निकलेगा। क्योंकि जिस राष्ट्र के हाथ में धारणा को प्रभावित करने के मौलिक सूत्र आ जाएंगे, उस राष्ट्र को अणु की शक्ति से हराया नहीं जा सकता। सच तो यह है कि जिनके हाथ में अणुबम हों उनको भी धारणा से प्रभावित किया जा सकता है कि वह अपने ऊपर ही फेंक दें। एक हवाई जहाज बम फेंकने जा रहा हो उसके पायलट को प्रभावित किया जा सकता है कि वापस लौट जाए, अपनी ही राजधानी पर गिरा दे।
नामोव ने कहा है कि दि अल्टीमेट वैपन इन वार इज गोइंग टु बी साइकिक पॉवर। यह धारणा की जो शक्ति है, यह आखिरी अस्त्र सिद्ध होगा। इस पर रोज काम बढ़ता चला जाता है। स्टैलिन जैसे लोगों की उत्सुकता तो निश्चित ही विनाश की तरफ होगी। महावीर जैसे लोगों की उत्सुकता निर्माण और सृजन की ओर है। इसलिए मंगल की धारणा, महावीर ने कहा है--भूल कर भी स्वप्न में भी कोई बुरी धारणा मत करना, क्योंकि वह परिणाम ला सकती है।
आप राह से गुजर रहे हैं, आप सोचते हैं, मैने कुछ किया भी नहीं। एक मन में ख्याल भर आ गया कि इस आदमी की हत्या कर दूं। आपने कुछ किया नहीं। कि इस दुकान से फलां चीज चुरा लूं, आप चोरी करने नहीं भी गए। लेकिन क्या आप निश्चिंत हो सकते है कि राह पर किसी चोर ने आपकी धारणा न पकड़ ली होगी? मास्को में एक हवा पिछले दो साल में प्रचलित हुई है कि कोई भी आदमी अपनी गर्दन खुजलाने के पहले चारों तरफ देख लेता है। क्योंकि यह प्रयोग चल रहा है दो साल से। मानेन नाम का वैज्ञानिक सड़कों पर प्रयोग कर रहा है। वह आपके पीछे आकर कहेगा, "आपकी गर्दन पर कीड़ा चढ़ रहा है", --मन में अपने--"गर्दन खुजला रही है, खुजलाओ जल्दी" और लोग खुजलाने लगते हैं। अब तो यह खबर इतनी

फैल गई है क्योंकि उसने हजारों लोगों पर प्रयोग किया है--राह के चौरस्तों पर खड़े होकर, होटल में बैठ कर, ट्रेन में चढ़ कर। और मानेन इतना सफल हुआ है कि नाइनटी एट परसेंट, अठ्ठान्नबे प्रतिशत सही होता है। जिसके पीछे खड़े होकर, वह भावना करता है कि गर्दन खुजला रही है, कीड़ा चढ़ रहा है, जल्दी खुजलाओ। वह जल्दी खुजलाता है। अब तो लोगों को पता चल गया है। सच में भी कीड़ा चढ़ा हो तो लोग पहले देख लेते हैं कि वह मानेन नाम का आदमी आस-पास तो नहीं है! जब से मानेन का प्रयोग सफल हुआ है तब से मस्तिष्क के बाबत एक नई जानकारी मिली है। और वह यह कि मस्तिष्क सामने से जितनी शक्ति रखता है, उससे चौगुनी शक्ति मस्तिष्क के पीछे के हिस्से में है।
तो पीछे से व्यक्ति को जल्दी प्रभावित किया जा सकता है। सामने सिर्फ
एक हिस्सा है, चार गुना पीछे है। और जो लोग, जैसे कि मैसिंग, या कल मैंने आपको कहा नेल्या नाम की महिला, जो वस्तुओं को सरका सकती है--इनके मस्तिष्क के अध्ययन से पता चलता है कि इनका मस्तिष्क पीछे पचास गुनी शक्ति से भरा हुआ है--सामने एक तो पीछे पचास। योग की निरंतर धारणा रही है कि मनुष्य का असली मस्तिष्क छिपा हुआ पीछे पड़ा है। और जब तक वह सक्रिय नहीं होता तब तक मनुष्य अपनी पूर्ण गरिमा को उपलब्ध नहीं होगा।
यह भी हैरानी की बात है कि अगर आप कोई बुरा विचार करते हैं, तो प्रकृति
का अदभुत नियम है कि आप मस्तिष्क के अगले हिस्से से करते हैं। मस्तिष्क का प्रत्येक हिस्सा अलग-अलग काम करता है। अगर आपको हत्या करनी है तो उसका विचार आपके मस्तिक के ऊपरी, सामने के हिस्से में चलता है। और अगर आपको किसी की सहायता करनी है तो पीछे, अंतिम हिस्से में चलता है। प्रकृति ने इंतजाम किया हुआ है कि शुभ की ओर आपको ज्यादा शक्ति दी हुई है, अशुभ की ओर कम शक्ति दी हुई है। लेकिन शुभ जगत में दिखाई नहीं पड़ता और अशुभ जगत में बहुत दिखाई पड़ता है। हम शुभ की कामना ही नहीं करते। या अगर हम कामना भी करते है तो हम तत्काल विपरीत कामना करके उसे काट देते हैं। जैसे एक मां अपने बच्चे के जीने की कितनी कामना करती है--बड़ा हो, जीए। लेकिन किसी क्षण क्रोध में कह देती है: तू तो होते से ही मर जाता तो बेहतर था। उसे पता नहीं है कि चार दफा उसने कामना की हो शुभ की और यह एक दफा अशुभ की, तो भी विषाक्त हो जाता है सब, कट जाती है कामना।
महावीर अपने साधुओं को कहते थे की मंगल की कामना में डुबे रहो चौबीस घंटे--उठते, बैठते, श्वास लेते, छोड़ते। स्वभावता मंगल की कामना शिखर से शुरू करनी चाहिए इसलिए वे कहते हैं--"अरिहंत मंगल हैं।" वे जिनके आंतरिक समस्त रोग समाप्त हो गए, वे मंगल हैं। सिद्ध मंगल हैं, साधु मंगल हैं, और जाना जिन्होंने--जैन परंपरा केवली उन्हें कहती है जो जानने की दिशा में उस जगह पहुंच गए जहां जानने वाला भी नहीं रह जाता, जानी जाने वाली वस्तु भी नहीं रह जाती, सिर्फ जानना रह जाता है, सिर्फ केवल ज्ञान मात्र रह जाता है-- ओनली नोइंग। केवली, जैन परंपरा उसे कहती है जो केवल ज्ञान को उपलब्ध हो गया। मात्र ज्ञान रह गया है जहां। जहां कोई जानने वाला न बचा, जहां मैं का कोई भाव न बचा, जहां कोई ज्ञेय न बचा, जहां कोई तू न बचा। जहां सिर्फ जानने की शुद्ध क्षमता, प्योर कैपेसिटी टु नो।
इसे ऐसा समझें कि हम एक कमरे में दीया जलाएं। दीये की बाती है, तेल है, दीया है। फिर कमरे में दीये का प्रकाश है और उस प्रकाश से प्रकाशित होती चीजें हैं--कुर्सी है, फर्नीचर है, दीवाल है, आप हैं। अगर हम ऐसी कल्पना कर सकें कि कमरा शून्य हो गया--न दीवाल है, न फर्नीचर है, कुछ भी नहीं है। दीये में तेल भी न रहा, दीये की देह भी न रही--सिर्फ ज्योति रह गई, प्रकाश मात्र रह गया, न कोई दीया बचा और न प्रकाशित वस्तुएं बचीं--मात्र प्रकाश रह गया। अलोक, स्रोत-रहित, कोई तेल नहीं, कोई बाती नहीं। और ऐसा आलोक जो किसी पर नही पड़ रहा है, शून्य में फैल रहा है, ऐसी धारणा है जैन चिंतन की केवली के संबंध में। जो परम ज्ञान को उपलब्ध होता है वहां ज्ञान अकारण हो जाता है, कोई सोर्स नाहीं होता। क्योंकि बात बहुत कीमती है। जैन परंपरा कहती है कि जिस चीज का भी सोर्स होता है वह कभी न कभी चुक जाती है। चुक ही जाएगी। कितना ही बड़ा स्रोत क्यों न हो। सूर्य भी चुक जाएगा एक दिन--बड़ा है स्रोत हो, अरबों वर्षों से रोशनी दे रहा है। वैज्ञानिक कहते हैं--अभी और अंदाजन चार हजार,

पांच हजार साल रोशनी देगा, लेकिन चुक जाएगा। कितना ही बड़ा स्त्रोत हो, स्त्रेत की सीमा है--चुक जाएगा।
महावीर कहते हैं--यह जो चेतना है, यह अनंत है, यह कभी चुक नहीं सकती। यह स्त्रोतरहित है इसमें जो प्रकाश है वह किसी मार्ग से नहीं आता, वह बस "है"-- इट जस्ट इ.ज। कहीं से आता नहीं, अन्यथा एक दिन चुक जाएगा। कितना ही बड़ा हो, चुक जाएग। महासागर भी चम्मचों से उलीचकर चुकाए जा सकते हैं--कितना ही लंबा समय लगे। महासागर भी चम्मचों से उलीच कर चुकाए जा सकते हैं। एक चम्मच थोड़ा तो कम कर ही जाती है। फिर और ज्यादा कम होता जाएगा। महावीर कहते हैं--यह जो चेतना है, यह स्रोत-रहित है। इसलिए महावीर ने ईश्वर को मानने से इनकार कर दिया। क्योंकि अगर ईश्वर को मानें तो ईर्श्वर स्त्रोत हो जाता है। और हम सब उसी के स्त्रोत से जलने वाले दीये हो जाते हैं तो हम चुक जाएंगे।
सच यह है कि महावीर से ज्यादा प्रतिष्ठा आत्मा को इस पृथ्वी पर और किसी व्यक्ति ने कभी नहीं दी है। इतनी प्रतिष्ठा कि उन्होंने कहा कि परमात्मा अलग नहीं, आत्मा ही परमात्मा है। इसका स्रोत अलग नहीं है, यह ज्योति ही स्वयं स्रोत है। यह जो भीतर जलने वाला जीवन है, यह कहीं से शक्ति नहीं पाता यह स्वयं ही शक्तिवान है। यह किसी के द्वारा निर्मित नहीं है, नहीं तो किसी के द्वारा नष्ट हो जाएगा। यह किसी पर निर्भर नहीं है, नहीं तो मोहताज रहेगा। यह किसी से कुछ भी नहीं पाता, यह स्वयं में समर्थ और सिद्ध है। जिस दिन ज्ञान इस सीमा पर पहुंचता है, जहां हम स्रोत-रहित प्रकाश को उपलब्ध होते हैं, सोर्सलेस--उसी दिन हम मूल को उपलब्ध होते हैं। जैन परंपरा ऐसे व्यक्ति को केवली कहती है। वह व्यक्ति कहीं भी पैदा हो--वे क्राइस्ट हो सकते हैं, वे बुद्ध हो सकते हैं, वे कृष्ण हो सकते हैं, वे लाओत्से हो सकते हैं। इसलिए इस सूत्र में यह नहीं कहा गया--महावीर मंगलं, कृष्ण मंगलं--ऐसा नहीं कहा। "जैन धर्म मंगल है", ऐसा नहीं कहा। "हिंदू धर्म मंगल है", ऐसा नहीं कहा। "केवली पन्नत्तो धम्मो मंगलं"--वे जो केवल-ज्ञान को उपलब्ध हो गए, उनके द्वारा जो भी प्ररूपित धर्म है, वह मंगल है। वह कहीं भी हो, जिन्होंने भी शुद्ध ज्ञान को पा लिया, उन्होंने जो कहा है, वह मंगल है।
यह मंगल की धारणा गहन प्राणों के अतल में बैठ जाए तो अमंगल की संभावना
कम होती चली जाती है। जैसी जो भावना करता है, धीरे-धीरे वैसा ही हो जाता है। जैसा हम सोचते हैं, वैसे ही हम हो जाते हैं। जो हम मांगते हैं, वह मिल जाता है।
लेकिन हम सदा गलत मांगते हैं, वही हमारा दुर्भाग्य है। हम उसी की तरफ आंख उठा कर देखते हैं जो हम होना चाहते हैं। अगर आप एक राजनैतिक नेता के आस-पास भीड़ लगा कर इकट्ठे हो जाते हैं, तो यह भीड़ सिर्फ इसकी ही सूचना नहीं है कि राजनैतिक नेता आया है। गहन रूप से इस बात की सूचना है कि आप कहीं राजनैतिक पद पर होना चाहते हैं। हम उसी को आदर देते हैं जो हम होना चाहते हैं, जो हमारे भविष्य का माडल मालूम पड़ता है। जिसमें हमें दिखाई पड़ता है कि काश, मैं हो जाऊं। हम उसी के आसपास इकट्ठे हो जाते हैं। अगर सिने- अभिनेता के पास भीड़ इकट्ठी हो जाती है तो वह आपकी भीतरी आकांक्षा की खबर देती है--आप भी वही हो जाना चाहते हैं।
अगर महावीर ने कहा है कि कहा--"अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं" तो वे यह कह रहे हैं कि यह तुम कह ही तब पाओगे जब तुम अरिहंत होना चाहोगे। या तुम जब यह कहना शुरू करोगे, तो तुम्हारे अरिहंत होने की यात्रा शुरू हो जाएगी। और बड़ी से बड़ी यात्रा बड़े छोटे से कदम से शुरू होती है। और पहले कदम से कुछ भी पता नहीं चलता। धारणा पहला कदम है।
कभी आपने सोचा कि आप क्या होना चाहते हैं? नहीं भी सोचा होगा सचेतन रूप से तो भी अचेतन में चलता है कि आप क्या होना चाहते हैं। जो आप होना चाहते हैं उसी के प्रति आपके मन में आदर पैदा होता है। न केवल आदर, जो आप होना चाहते हैं उसी संबंध में आपके मन चिंतन के वर्तुल चलते हैं, वही आपके स्वप्नों में उतर आता है; वही आपकी श्वासों में समा जाता है; वही आपके खून में प्रवेश कर जाता है। और जब मैं कहता हूं--खून में प्रवेश कर जाता है, तो

मैं कोई साहित्यिक बात नहीं कह रहा हूं--मैं मेडिकल, मैं बिल्कुल शारीरिक तथ्य की बात कह रहा हूं।
इधर प्रयोग किए गए हैं और चकित करने वाले सूचन मिले हैं। आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में डिलाबार प्रयोगशाला में विचार का खून पर क्या प्रभाव पड़ता है--दूसरे की धारणा का भी, आपकी धारणा तो छोड़ दें, आपकी धारणा का तो पड़ेगा ही--
दूसरे की धारणा का भी, अप्रकट धारणा का भी आपके खून पर क्या प्रभाव पड़ता है? अगर आप ऐसे व्यक्ति के पास जाते हैं जिसके हृदय से बहती करुणा और मंगल की भावना है, जो आपके लिए शुभ के अतिरिक्त और कुछ नहीं सोच पाता--तो डिलाबार लेबोरेटरी के प्रयोगों का दस वर्षों का निष्कर्ष यह है कि आपके खून में--ऐसे व्यक्ति के पास जाते ही, जो आपके प्रति मंगल की भावना रखता है--सफेद कण, पंद्रह सौ की तादाद में तत्काल बढ़ जाते हैं, इमिजिएटली। दरवाजे के बाहर आपके खून की परीक्षा की जाए और फिर आप भीतर आ जाएं और मंगल की कामना से भरे हुए व्यक्ति के पास बैठ जाएं और फिर आपके खून की परीक्षा की जाए, आपके खून में सफेद, व्हाइट ब्लड सेल्स--सफेद जो कोश हैं खून के--वे पंद्रह सौ बढ़ जाते हैं। जो व्यक्ति आपके प्रति दुर्भाव रखता है उसके पास जाकर सोलह सौ कम हो जाते हैं--तत्काल, इमिजिएटली।
और मेडिकल साइंस कहती है कि आपके स्वास्थ की रक्षा का मूल आधार सफेद कणों की अधिकता है। वे जितने ज्यादा आपके शरीर में होते हैं उतना आपका स्वास्थ्य सुरक्षित है। वे आपके पहरेदार हैं। आपने देखा होगा, ख्याल नहीं किया होगा, चोट लग जाती है तो चोट लग कर जो आपको मवाद पड़ जाती है वह मवाद सिर्फ रक्षक है, आपके शरीर के सफेद कण। वे भाग कर फौरन एक पर्त पहरेदारी की खड़ी कर देते हैं। जिसको आप मवाद समझते हैं वह मवाद नहीं है, वे आपके दुश्मन नहीं हैं, वे खून के सफेद कण हैं जो तत्काल दौड़ कर घाव को चारों तरफ से घेर लेते हैं, जैसे कि पुलिस ने पहरा लगा दिया हो। क्योंकि उनके पर्त को पार करके कोई भी कीटाणु शरीर में प्रवेश नहीं कर सकता है। वे रक्षक हैं। डिलाबार प्रयोगशाला में किए गए प्रयोगों ने चकित कर दिया है वैज्ञानिकों को कि क्या शुभ की भावना से भरे व्यक्ति का इतना परिणाम हो सकता है कि दूसरे के खून का अनुपात बदल जाऐ! आयतन बदल जाए! खून की गति बदल जाए! हृदय की गति बदल जाए! रक्तचाप बदल जाए! सह संभव है? अब तो इनकार करना कठिन है।
डाक्टर जगदीशचंद्र बसु के बाद दूसरा एक बड़ा नाम एक अमरीकन का है, क्लीब बैक्स्टर का। जगदीशचंद्र ने तो कहा था कि पौधों में प्राण हैं। बैक्स्टर ने सिद्ध किया है--सिद्ध हो गया है कि पौधों में भावना भी है। और पौधे अपने मित्रों को पहचानते हैं और शत्रुओं को भी। पौधा अपने मालिक को भी पहचानता है और अपने माली को भी। और अगर मालिक मर जाता है तो पौधे की प्राण-धारा क्षीण हो जाती है, वह बीमार हो जाता है। पौधों की स्मृति को भी बैक्स्टर ने सिद्ध किया है कि उनकी भी मैमोरी है। और आप जब अपने गुलाब के पौधे के पास जाकर प्रेम से खड़े हो जाते हैं तब वह कल फिर आपकी उसी समय प्रतीक्षा करता है। वह याद रखता है कि आज आप नहीं आए। या जब आप पौधे के पास प्रेम से भरकर खड़े हो जाते हैं, फिर अचानक एक फूल तोड़ लेते हैं तो पौधे को बड़ी हैरानी होती है, बड़ा कनफ्यूजन होता है। इस सबकी प्राणधाराओं को रिकॉर्ड करने वाले यंत्र तैयार किए हैं बैक्स्टर ने कि पौधा एकदम कनफ्यूज्ड हो जाता है, उसकी समझ में नही आता कि जो आदमी इतने प्रेम से खड़ा था, उसने फूल कैसे तोड़ लिया। वह ऐसे ही कनफ्यूज्ड हो जाता है जैसे कोई बच्चा आपके पास खड़ा हो, प्रेम करते-करते एकदम गर्दन तोड़ लें कि चेहरा बहुत अच्छा लगता है। पौधे की समझ में बिल्कुल नहीं आता कि यह हो क्या गया! उसके भीतर बड़ा कनफ्यूजन पैदा होता है।
बैक्स्टर कहता है--हमने हजारों पौधों को कंफ्यू.ज किया, उनको हम बड़ी परेशानी में डाले हुए हैं। वे समझ ही नहीं पाते कि यह हो क्या रहा है! जिसको मित्र की तरह अनुभव कर रहे थे वह एकदम शत्रु की तरह हो जाता है। बैक्स्टर का यह भी कहना है कि जिन पौधों को हम प्रेम करते हैं वे हमारी तरफ बड़ी पाजिटिव भावनाएं छोड़ते हैं।

और बैक्स्टर ने सुझाव दिया है अमरीकन मेडिकल एसोसिएशन को कि शीघ्र ही
हम विशेष तरह के मरीजों को विशेष पौधों के पास ले जाकर ठीक करने में समर्थ हो जाएंगे--अगर उन पौधों को हमने इतना प्राणवान कर दिया--प्रेम से, भाव से, संगीत से, प्रार्थना से, ध्यान से। उनको इतना प्राण-शक्ति से भर दिया है तो उनके पास विशेष तरह के मरीज ले जाने से फायदा होगा। फिर हर पौधों में अपनी- अपनी प्राण-ऊर्जा की विशेषताएं हैं। जैसे रेड रोज, लाल जो गुलाब है, वह क्रोधी लोगों के लिए बड़े फायदे का है। हो सकता है पंडित नेहरू को इसीलिए उससे प्रेम रहा हो। क्रोध के लिए रेड रोज बहुत फायदे का है बैक्सटर के हिसाब से। वह क्रोध को कम करता है, वह अक्रोध की धारणा को अपने चारों तरफ फैलता है। उसका भी अपना आभामंडल है।
पौधों के पास भी हृदय है। माना कि वे अशिक्षित हैं, लेकिन उनके पास हृदय है। आदमी बहुत शिक्षित होता चला जाता है लेकिन हृदय खोता चला जाता है।
यह धारणा, हृदय को जन्माने का आधार बन सकती है--मंगल की धारणा, निश्चित
ही मंगल की धारणा। हम इतने कमजोर हैं और अमंगल हमें इतना सहज है कि हम अरिहंत पर भी मंगल की धारणा कर पाएं तो चमत्कार है। हम यह भी कह पाएं कि अरिहंत मंगल हैं तो भी मिरेकल है। पत्थर मंगल है, इसके लिए तो कठिनाई पड़ेगी।
दुश्मन मंगल है, इसके लिए तो बहुत कठिनाई पड़ेगी। शत्रु मंगल है, इसके लिए तो बहुत कठिनाई पड़ेगी। महावीर आपको भलीभांति जानते हैं। जो श्रेष्ठतम है, उस पर भी आपको कठिनाई पड़ेगी, मंगल की धारणा करने में। उससे शुरू करते हैं--अरिहंत, सिद्ध, साधु और जिन्होंने जाना उनके द्वारा प्ररूपित धर्म।
"धर्म" का जैन परंपरा में वैसा अर्थ नहीं है जैसा अंग्रेजी के "रिलीजन" का है या उर्दू के "म.जहब" का है। और वैसा अर्थ भी नहीं है जैसा हिंदू "धर्म" का। जैन परंपरा में धम्म का जो अर्थ है वह समझ लेना चाहिए--वह बहुत खूबी का है, विशिष्ट है और जैन दृष्टि को एक नये आयाम में फैलाता है। मजहब का अर्थ तो होता हैः क्रीड, एक मत, एक पंथ। अंग्रेजी के रिलीजन शब्द का अर्थ होतो है करीब-करीब वही जो योग का अर्थ तो होता है। वह जिस सूत्र से बना है रिलीगेयर, उसका अर्थ होता है जोड़ना, आदमी को परमात्मा से जोड़ना। योग का भी वही अर्थ होता है, आदमी को परमात्मा से जोड़ना।
लेकिन जैन चिंतन परमात्मा के लिए जगह ही नहीं रखता। इसलिए आप यह जान
कर हैरान होंगे कि जैन योग का अच्छा अर्थ नहीं मानते। जैन कहते हैं--केवली अयोगी होता है--अयोगी, योगी नहीं। इसलिए महावीर को कुछ नासमझ, कुछ भूल से भरे लोग महायोगी कहते हैं, --वे गलत कहते हैं। जैन परंपरा के शब्द का उन्हें पता नहीं। महावीर कहते हैं--जुड़ना नहीं है किसी से, जो गलत है उससे टूटना है, अलग होना है। अ-योग--संसार से अ-योग, तो स्वरुप उपलब्ध हो जाता है। योग कहता है--परमात्मा से मिलन, तो स्वरूप उपलब्ध होता है। महावीर कहते हैं--स्वरूप उपलब्ध ही है। जो हमें पाना है, वह हमें मिला ही हुआ है। सिर्फ हम गलत चीजों से चिपके खड़े हैं, इसलिए दिखाई नहीं पड़ रहा है। गलत को छोड़ दें, अयुक्त हो जाएं, अलग हो जाएं। इसलिए जैन परंपरा में अयोग का वही मूल्य है जो हिंदू परंपरा में योग का है। धर्म का बड़ा अनूठा अर्थ जैनों का है। महावीर कहते हैं कि वस्तु का जो स्वभाव है वही धर्म है, नेचर। धर्म का महावीर का वही अर्थ है जो लाओत्से ताओ का।
वस्तु का जो स्वभाव है, जो उसकी स्वयं की अपनी परिणति है--अगर कोई व्यक्ति बिना किसी से प्रभावित हुए सहज वरण-चरण कर पाए तो धर्म को उपलब्ध हो जाता है--अगर कोई व्यक्ति बिना प्रभावित हुए। इसलिए प्रभाव को महावीर अच्छी बात नहीं मानते। किसी से भी प्रभावित होना बंधना है। सब इंप्रेशंस बांधने वाले हैं। पूर्णतया अप्रभावित हो जाना निज हो जाना है, स्वयं हो जाना है। इस निजता को, इस स्वयं होने को वे धर्म कहते हैं। केवली प्ररूपित धर्म का अर्थ होता है, जब कोई व्यक्ति केवल ज्ञान मात्र रह जाता है, चेतना मात्र रह जाता है। तब वह जैसे जीता है वही धर्म है। उसका जीवन, उसका उठना, उसका बैठना, उसका हलन-चलन, उसका सोना--वह जो भी करता है--उसकी आंख की पलक का

उठना और हिलना, उसकी समस्त अस्तित्व में प्रकट होती हुई जो भी किरणें हैं-- वही धर्म है।
जैसे अग्नि अपने शुद्ध रूप में जलती हो तो धुआं पैदा नहीं होता। आप कहेंगे--अग्नि तो जहां भी जलती है, वहां धुआं पैदा होता है। और तर्क की किताब में लिखा हुआ है--जहां-जहां धुआं, वहां-वहां अग्नि। इसलिए जहां धुआं दिखे, मान लेना कि अग्नि है। लेकिन धुआं अग्नि से पैदा नहीं होता, केवल ईंधन के गीलेपन से पैदा होता है। अग्नि से उसका कोई लेना-देना नहीं है। अगर इंर्धन बिल्कुल गीला न हो तो धुआं पैदा नहीं होता। धुआं अग्नि का स्वभाव नहीं है, ईंधन का प्रभाव है--जब ईंधन गीला होता है तब पैदा होता है। तो कहना चाहिए--वह पानी से पैदा होता है, वह अग्नि से पैदा नहीं होता-- धुआं। अगर बिल्कुल सूखा ईंधन है, जिसमें पानी जरा भी नहीं है तो धुआं पैदा नहीं होगा। और अगर पैदा होता है तो जानना कि थोड़ा-बहुत ईंधन गीला है। अग्नि जब अपने शुद्ध रूप में होती है, जब उसमें कोई दूसरा विजातीय, फारिन एलीमेंट नहीं होता--तब उसमें कोई धुआं नहीं होता।
महावीर कहते हैं--तब अग्नि अपने धर्म में है, जब कोई धुआं नहीं है। जब चेतना बिल्कुल शुद्ध होती है और पदार्थ का कोई प्रभाव नहीं होता, शरीर का पता भी नहीं होता--जब चेतना इतनी शुद्ध होती है कि शरीर का पता भी नहीं होता है। तब महावीर कहते हैं कि, जानना कि चेतना अपने धर्म में है। इसलिए महावीर कहते हैं--प्रत्येक का अपना धर्म है--अग्नि का अपना है; जल का अपना है; पदार्थ का अपना है; चेतना का अपना है। शुद्ध हो जाना अपने धर्म में-- आनंद है; अशुद्ध रहना अपने धर्म में दुख है। तो धर्म का यहां अर्थ है, स्वभाव। अपने स्वभाव में चले जाना धार्मिक हो जाना है, और अपने स्वभाव के बाहर भटकते रहना अधार्मिक बने रहना है।
लोक में इन चारों को उत्तम भी इस सूत्र में कहा है। अरिहंत उत्तम हैं लोक में, सिद्ध उत्तम हैं लोक में, साधु उत्तम हैं लोक में, केवली प्ररूपित धर्म उत्तम है लोक में। मंगल कह देने के बाद उत्तम की क्या जरुरत है? कारण है हमारे भीतर। ये सारे सूत्र हमारे मनस के ऊपर आधारित हैं। यह हमारे मन की गहराइयों के अध्ययन पर आधारित है। मंगल कहने के बाद भी हम इतने नासमझ हैं कि जो उत्तम नहीं है उसे भी हम मंगलरूप मान सकते हैं। हमारी वासनाएं ऐसी हैं कि जो निकृष्ट है लोक में उसी की तरफ बहती हैं। ऐसा भी कह सकते हैं कि वासना का अर्थ ही यही होता है--नीचे की तरफ बहाव। जो निकृष्ट है उसी की तरफ।
रामकृष्ण कहा करते थे कि चील आकाश में भी उड़े तो तुम यह मत समझना कि उसका ध्यान आकाश में होता है। वह आकाश में उड़ती है, लेकिन उसकी नजर नीचे, कहीं कूड़े-कबाड़ पर, किसी कचरेघर पर पड़े हुए मांस पर, किसी सड़ी मछली पर, उस पर लगी रहती है। उड़ती आकाश में है और उसकी दृष्टि तो नीचे कहीं किसी मांस के टुकड़े पर लगी रहती है। तो रामकृष्ण कहते थे--भूल में मत पड़ जाना कि चील आकाश में उड़ रही है इसलिए आकाश में ध्यान होगा। ध्यान तो उसका नीचे लगा रहता है।
इसलिए दूसरे सूत्र में महावीर का यह जो मंगल सूत्र है, यह तत्काल जोड़ता है--"अरिहंत लोगुत्तमा!" अरिहंत उत्तम हैं। यह सिर्फ इशारे के लिए है। "सिद्ध उत्तम हैं, साधु उत्तम हैं।" उत्तम का अर्थ है कि शिखर हैं जीवन के--श्रेष्ठ हैं, पाने योग्य हैं, चाहने योग्य हैं, होने योग्य है।
किसी ने पूछा है श्वीत्जर को--क्या है पाने योग्य? क्या है आनंद? तो श्वीत्जर ने कहा--"टु बी मोर एण्ड मोर, टु बी डीप एण्ड डीप, टु बी इन एण्ड इन, एण्ड कांस्टेंटली टर्निंंग इन टु समथिंग मोर एण्ड मोर।" कुछ ज्यादा में रूपांतरित होते रहना, कुछ श्रेष्ठ में बदलते रहना, कुछ गहरे और गहरे जाते रहना, कुछ ज्यादा होते रहना।
लेकिन हम ज्यादा तभी हो सकते हैं जब ज्यादा की, श्रेष्ठ की, उत्तम की धारणा हमारे निकट हो। शिखर दिखाई पड़ता हो तो यात्रा भी हो सकती है। शिखर ही न

दिखाई पड़ता हो तो यात्रा का कोई सवाल नहीं। भौतिकवाद कहता है--कोई आत्मा नहीं है। शिखर को तोड़ देता है। और जब कोई आत्मा नहीं हैं, ऐसा कोई मान लेता है--तो आत्मा को पाना है, इसका तो कोई सवाल ही नहीं रह जाता। फ्रायड यदि कह देता है कि आदमी वासना के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है--
तो आदमी तो वासना है ही--वह तत्काल मान लेता है। फिर वह कहता है जब वासना के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं तब बात खत्त्म हो गई, बात समाप्त हो गई।
एक व्यक्ति कह रहा था किसी को कि मैं बहुत परेशान था, क्योंकि मेरी कांशियंस मुझे बहुत पीड़ा देती थी, मेरा अंतःकरण बहुत पीड़ा देता था--झूठ बोलूं तो, चोरी करूं तो, किसी स्त्री की तरफ देखूं तो--बड़ी पीड़ा होती थी। तो फिर मैं मनोचिकित्सक के पास गया। और मैंने इलाज करवाया और दो साल में बिल्कुल ठीक हो गया।
तो उसके मित्र ने पूछाः क्या अब चोरी का भाव नहीं उठता? स्त्री को देख
कर वासना नहीं जगती? सुंदर को देख कर पाने का भाव पैदा नहीं होता?
उसने कहाः नहीं-नहीं, तुम मुझे गलत समझे। दो साल में मनोचिकित्सक ने मुझे मेरी कांशियंस से छुटकारा दिला दिया। अब पीड़ा नहीं होती, अब चिंता नहीं होती, अब अपराध अनुभव नहीं करता हूं।
पिछले पचास सालों में पश्चिम का मनोचिकित्सक लोगों को अपराध से मुक्त नहीं करवा रहा है, अपराध के भाव से मुक्त करवा रहा है। वह कह रहा है--यह तो स्वाभाविक है, यह तो बिल्कुल स्वाभाविक है, यह तो होगा ही। अगर आज पश्चिम में जीवन ऐसे नीचे तल पर सरक रहा है--चल रहा है कहना ठीक नहीं, सरक रहा है, जैसे सांप सरकता है--तो उसका बड़े से बड़ा जिम्मा पश्चिम के मनोवैज्ञानिकों को है क्योंकि वह निकृष्ट को कहता है कि यही स्वभाव है। और कठिनाई यह है कि निकृष्ट को स्वभाव मान लना हमें आसान है, क्योंकि हम परिचित है, और वह दलील ठीक लगती है।
जब महावीर कहते हैं, "अरिहंता लोगुत्तमा", तो समझ में नहीं पड़ता कि ऐसे लोग होते हैं। अरिहंत को हम जानते नहीं, सिद्ध को हम जानते नहीं। कौन हैं ये? हमारे भीतर तो हमने सिद्ध जैसा कभी कोई क्षण अनुभव नहीं किया; अरिहंत जैसी हमने कभी कोई लहर नहीं जानी; साधु जैसा हमने कभी कोई भाव नहीं जाना; केवली-प्ररूपित धर्म में हमने कभी प्रवेश नहीं किया। क्या हवा की बातें हैं?
तो अगर हम मान भी लें तो मजबूरी में मानते हैं और उस मजबूरी का नाम हमने धर्म रखा हुआ है। किसी घर में पैदा हो गए, जैन, मजबूरी है, आपका कोई कृत्य नहीं है। पर्युषण है तो मजबूरी है। तो आप जाते हैं मंदिर में, नमस्कार करते हैं। साधु को नमस्कार करते हैं, उपवास कर लेते हैं, व्रत कर लेते हैं--मजबूरी है। किसी का कसूर नहीं, आप पैदा हो गए जैन घर में। इसमें किसी का कोई हाथ तो है नहीं। खोपड़ी में बचपन से सुनाया जा रहा है वह भर गया है, उसको निपटा लेते हैं। बाकी कहीं स्फुरणा नहीं है उसमें। कहीं कोई ऐसा सहज भाव नहीं है।
क्या आपने ख्याल किया है मंदिर जाते वक्त आपके पैर और सिनेमा-गृह में जाते वक्त आपके पैरों की गति में बुनियादी भेद होता है--गुणात्मक, क्वालिटेटिव। मंदिर जैसे आप घसीटे जाते हैं, सिनेमा-गृह जैसे आप जाते हैं। मंदिर जैसे एक मजबूरी है, एक काम है। प्रफुल्लता नहीं है चरण में, नृत्य नहीं है चरण में जाते समय। किसी तरह पूरा कर देना है--लेकिन निकृष्ट जीवन है, पूरा--नहीं, कर देना है।
सुना है मैंने मुल्ला नसरुद्दीन जिस दिन मरा, उस दिन पुरोहित उसे परमात्मा की प्रार्थना कराने आए और कहा कि मुल्ला! पश्चाताप करो, रिपेंट। पश्चात्ताप करो उन पापों का, जो तुमने किए हैं। मुल्ला ने आंख खोली और कहा कि मैं दूसरा ही पश्चात्ताप कर रहा हूं। जो पाप मैं नहीं कर पाया, उनका पश्चात्ताप कर रहा हूं। अब मर रहा हूं, और कुछ पाप करने का मेरा मन था, वे नहीं कर पाया।
वह पुरोहित फिर भी नहीं समझ पाया, क्योंकि पुरोहितों से कम समझदार आदमी आज जमीन पर दूसरे नहीं हैं। उसने कहाः मुल्ला, यह क्या तुम कहते हो?

अगर तुम्हें दुबारा जन्म मिले तो क्या तुम वही पाप करोगे? वैसा ही जीओगे, जैसा अभी जीए?
मुल्ला ने कहा कि नहीं, बहुत फर्क करुंगा। मैंने इस जिंदगी में पाप बड़ी देर से शुरू किए, अगली जिंदगी में जरा जल्दी शुरू कर दूंगा।
यह मुल्ला हम सब मनुष्यों के बाबत खबर दे रहा है। यह व्यंग्य है, यह आदमी पूरा व्यंग्य है हम सब पर। यह हमारी मनोदशा है। मरते वक्त हमें भी पश्चात्ताप होगा। पश्चात्ताप होगा उन औरतों का जो नहीं मिलीं। पश्चात्ताप होगा उस धन का जो नहीं पाया। पश्चात्ताप होगा उन पदों का जो चूक गए। पश्चात्ताप होगा उस सबका जो निकृष्ट था, जो पाने योग्य ही नहीं था। लेकिन क्या मरते वक्त पश्चात्ताप होगा कि अरिहंत न मिले? सिद्ध न मिले? केवली-प्ररूपित धर्म में प्रवेश न मिला?
नहीं, हो सकता है नमोकार आपके आसपास पढ़ा जा रहा होगा, लेकिन आपके भीतर उसका कोई प्रवेश नहीं हो पाएगा। क्योंकि जिन्होंने जीवन भर उसके प्रवेश की तैयारी नहीं की, वे अगर सोचते हों कि क्षण भर में उसका प्रवेश हो जाएगा तो वे नासमझ हैं। जिन्होंने जीवन भर उस मेहमान के आने के लिए इंतजाम नहीं किया, वे सोचते हैं--अचानक वह मेहमान भीतर आ जाएगा तो वे गलती पर हैं। वे दुराशाएं कर रहे हैं, वे हताश होंगे।
लेकिन जो व्यक्ति निरंतर, "अरिहंत मंगल हैं, लोक में उत्तम हैं, श्रेष्ठ हैं", वही जीवन में पाने का, ऐसा सूत्र ख्याल में रखता है--और कभी- कभी न भी समझ में आता हो फिर भी रिचुअल रिपीटीशन करता है; न भी समझ में आता हो, न भी ख्याल में आता हो, ऐसे ही दोहराए चला जाता है; तो भी तो ग्रूव्ज बनते हैं। ऐसे भी दोहराए चला जाता है तो भी चित्त पर निशान बनते हैं। वे निशान किसी भी क्षण, किसी प्रकाश के क्षण में सक्रिय हो सकते हैं। जिसने निरंतर कहा है कि अरिहंत लोक में उत्तम हैं, उसने अपने भीतर एक धारा प्रवाहित की है--कितनी ही क्षीण। लेकिन अब वह अरिहंत होने के विपरीत जाने लगेगा तो उसके भीतर कोई उससे कहेगा कि तुम जो कर रहे हो वह उत्तम नहीं है, वह लोक में श्रेष्ठ नहीं है।
जिसने कहा है, "सिद्ध लोक में श्रेष्ठ हैं", जब वह अपने को खोने जा रहा होगा तब कोई उसके भीतर स्वर कहेगा कि सिद्ध तो अपने को पाते हैं, तुम अपने को खोते हो, बेचते हो। जिसने कहा है, "साधु लोकोत्तम हैं", उसको किसी क्षण असाधु होते वक्त यह स्मरण रोकने वाला बन सकता है। जान कर, समझ कर किया गया, तब तो परिणामदायी है ही। न जान कर, न समझ कर किया हुआ भी परिणामदायी हो जाता है। क्योंकि रिचुअल रिपीटीशन भी, सिर्फ पुनरुक्ति भी, हमारे चित्त में रेखाएं छोड़ जाती है--मृत, लेकिन फिर भी छोड़ जाती है। और किसी भी क्षण वे सक्रिय हो सकती है। यह नियमित पाठ के लिए है, यह नियमित भाव के लिए है, यह नियमित धारणा के लिए है।
इसमें अंतिम बात थोड़ा और ठीक से समझ लें। महावीर ने जिस परंपरा और जिस स्कूल, जिस धारा का उपयोग किया है उसमें श्रेष्ठतम पर मनुष्य की ही शुद्ध आत्मा को रखा है। मनुष्य की ही शुद्ध आत्मा परमात्मा मानी है। इसलिए महावीर के हिसाब से इस जगत में जिनते लोग हैं उतने भगवान हो सकते हैं। जितने लोग हैं--लोग ही नहीं, जितनी चेतनाएं हैं वे सभी भगवान हो सकती हैं। महावीर की दृष्टि में भगवान का एक होने का जो ख्याल है वह नहीं हैं। अगर ठीक से समझें तो दुनिया के सारे धर्मों में भगवान की जो धारणा है वह अरिस्टोक्रेटिक है, एक की है। सिर्फ महावीर के धर्म में वह डेमोक्रेटिक है, सबकी है।
प्रत्येक व्यक्ति स्वभाव से भगवान है। वह जाने न जाने; वह पाए न पाए;
वह जन्म-जन्म भटके; अनंत जन्म भटके; फिर भी इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, वह भगवान है। और किसी न किसी दिन वह जो उसमें छिपा है, प्रकट होगा। और किसी न किसी दिन जो बीज है वह वृक्ष होगा। जो संभावना है वह सत्य बनेगा।
महावीर अनंत भगवत्ताओं में मानते हैं--अनंत भगवत्ताओं में, इनफिनिट डिइटीज। एक-एक आदमी डिवाइन है। और जिस दिन सारा जगत अरिहंत तक पहुंच जाए, उस दिन जगत में अनंत भगवान होंगे।

महावीर का अर्थ "भगवान" से है--जिसने अपने स्वभाव को पा लिया। स्वभाव भगवान है। भगवान की यह बहुत अनूठी धारणा है। जगत को बनाने वाले का सवाल नहीं है भगवान से, जगत को चलाने वाले का सवाल नहीं है भगवान से। महावीर कहते हैं--कोई बनाने वाला नहीं है, क्योंकि महावीर कहते हैं--बनाने की धारणा ही बचकानी है। और बचकानी इसलिए है कि उससे कुछ हल नहीं होता है। हम कहते हैं जगत को भगवान ने बनाया। फिर सवाल खड़ा हो जाता है कि भगवान को किसने बनाया? सवाल वहीं का वहीं बना रहता है। एक कदम और हट जाता है। जो कहता है "भगवान ने जगत को बनाया", वह कहता है, भगवान को किसी ने नहीं बनाया। महावीर कहते हैं--जब भगवान को किसी ने नहीं बनाया, ऐसा मानना ही पड़ता है कि कुछ है जो अनबना है, अनक्रिएटेड है, तो इस सारे जगत को ही अनक्रिएटेड मानने में कौन सी अड़चन है? अड़चन तो एक ही थी मन को कि बिना बनाए कोई चीज कैसे बनेगी?
इसलिए यह समझ लेने जैसा है कि महावीर के पास नास्तिक के लिए जो उत्तर
है वह तथाकथित ईश्वरवादी के पास नहीं है। क्योंकि नास्तिक ईश्वरवादी से यही कहता है कि तुम्हारे भगवान ने क्यों बनाया? बड़ी कठिनाई खड़ी होती है। और बड़ी कठिनाई यह खड़ी होती है कि ईश्वरवादी को मानना पड़ता है कि उसमें वासना उठी जगत को बनाने की। जब भगवान तक में वासना उठती है तो आदमी को वासना से मुक्त करने का फिर कोई उपाय नहीं है। भगवान ने चाहा, ही डिजायर्ड। जब भगवान भी चाहता है, और भगवान भी बिना चाह के शांत नहीं रह सकता, तो फिर आदमी को अचाह में कैसे ले जाओगे? क्या भगवान परेशान था, जगत नहीं था, तो? कोई पीड़ा होती थी? वैसी ही जैसे एक चित्रकार को चित्र न बने, तो होती है? एक कवि को कविता निर्मित न हो पाए, तो होती है? क्या ऐसा ही परेशान और चिंतित होता था? क्या उसमें भी चिंता और तनाव घर करते है? ईश्वरवादी दिक्कत में रहा है। उसको स्वीकार करना पड़ता है कि भगवान ने चाहा।
और तब बहुत बेहूदी बातें उसको स्वीकार करनी पड़ती हैं। उसे स्वीकार करना पड़ता है--ब्रह्मा ने स्त्री को जन्म दिया और फिर उसी को चाहा। क्योंकि उसे ब्रह्मा और चाह में कोई तालमेल बिठाना पड़ेगा। तो एक बहुत एब्सर्ड घटना घटी। और वह यह कि ब्रह्मा ने जिसे पैदा किया वह तो उसका पिता हो गया। फिर उसने अपनी बेटी को चाहा। फिर वह संभोग के लिए आतुर हो गया, और फिर वह अपनी बेटी के पीछे भागने लगा। फिर बेटी उससे बचने के लिए गाय बन गई, तो वह बैल हो गया। फिर बेटी उससे बचने के लिए कुछ और हो गई, तो वह कुछ और हो गया। वह बेटी जो-जो होती चली गई, वह ब्रह्मा फिर वही-वही जीव का नर होता चला गया। तो अगर ब्रह्मा भी ऐसा चाह में भाग रहा हो, तो आप जब सिनेमा-गृह जाते हैं तो बिल्कुल ब्रह्मस्वरूप हैं। बिल्कुल ठीक चले जा रहे हैं। आपको कोई अड़चन नहीं होनी चाहिए। आप उचित ही कर रहे हैं। वह स्त्री फिल्म अभिनेत्री हो गई तो आप फिल्म-दर्शक हो गए--आप चले जा रहे हैं। तब फिर सारा जगत वासना का फैलाव हो जाता है।
महावीर ने इसे जड़ से काट दिया। महावीर ने कहा कि नहीं, अगर भगवत्ता की तरफ ले जाना है लोगों को तो भगवान को शून्य करो। बड़ी अजीब बात है। अगर लोगों को भगवान बनाना है तो यह भगवान की धारणा को अलग करो। बहुत अजीब, क्योंकि महावीर ने कहा--भगवान में ही चाह को रख दोगे पहले, डिजायर को रख दोगे पहले--क्योंकि उसके बिना तो जगत का निर्माण न होगा। तो फिर आदमी से चाह को शून्य करने का कारण क्या बचेगा? तो महावीर ने कहा--जगत अनिर्मित है, अनक्रिएटेड है। किसी ने बनाया नहीं है--"है।" और विज्ञान के लिए भी यही लॉजिकल, तर्कयुक्त मालूम पड़ता है। क्योंकि इस जगत में कोई चीज बनाई हुई नहीं मालूम पड़ती--है ही। और न इस जगत में कोई चीज नष्ट होती मालूम पड़ती है, न कोई चीज निर्मित होती मालूम पड़ती है--सिर्फ रूपांतरित होती मालूम पड़ती है।
इसलिए महावीर ने जो परिभाषा की है पदार्थ की, वह इस जगत में की गई सर्वाधिक वैज्ञानिक परिभाषा है। अदभुत शब्द महावीर ने खोजा है--पुदगल-- मैटर के लिए। और ऐसा शब्द जगत की किसी भाषा में नहीं है। पदार्थ के लिए महावीर ने पदार्थ नहीं कहा, नया शब्द गढ़ा--पुदगल। पुदगल का अर्थ है--जो

बनता और मिटता रहता है और फिर भी है। जो प्रतिपल बन रहा है और मिट रहा है, और है। जैसे नदी प्रतिपल भागी जा रही है, चली जा रही है, हुई जा रही है और फिर भी है। फ्लोइंग एण्ड इ.ज, बह रही है और है। महावीर ने कहा कि जो चीज बन रही है, मिट रही है, न बन कर सृजन होता है उसका, न मिट कर समाप्त होती है-- बिकमिंग। पुदगल का अर्थ हैः बिकमिंग। नैवर बीइंग एण्ड आलवेज बिकसिंग। कभी "है" की स्थिति में भी नहीं आती पूरी कि ठहर जाए। बस होती रहती है। तो महावीर ने कहा--पुदगल वह है जो प्रतिपल जन्म रहा, प्रतिपल मर रहा, फिर भी कभी निर्मित नहीं होता, फिर भी कभी समाप्त नहीं होता, चलता रहता है-- गत्यात्मक।
पदार्थ--डेड कंसेप्ट है। अंग्रेजी का मैटर भी डेड वर्ड है, मरा हुआ शब्द है। अंग्रेजी के मैटर का कुल मतलब होता है जो नापा जा सके। वह मेजर से बना हुआ शब्द है। संस्कृत या हिंदी के पदार्थ का अर्थ होता है--जो अर्थवान है, अस्तित्ववान है, "है।" पुदगल का अर्थ होता है--जो हो रहा है, इन दि प्रोसेस। प्रोसेस का नाम पुदगल है, क्रिया का नाम पुदगल है। जैसे आप चल रहे हैं। एक कदम उठाया, दूसरा रखा।
दोनों कभी आप ऊपर नहीं उठाते। एक उठता है तो दूसरा रख जाता है। इधर एक बिखरता है तो उधर दूसरा तत्काल निर्मित हो जाता है। प्रोसेस चलती रहती है। पदार्थ का एक कदम हमेशा बन रहा है, और एक कदम हमेशा मिट रहा है।
आप जिस कुर्सी पर बैठे हैं वह मिट रही है। नहीं तो पचास साल बाद राख कैसे हो जाएगी। जिस शरीर में आप बैठे हैं, वह मिट रहा है। लेकिन बन भी रहा है। चौबीस घंटे आप उसको खाना दे रह हैं, वायु दे रहे हैं। वह निर्मित हो रहा है। निर्मित होता चला जा रहा है और बिखरता भी चला जा रहा है। लाइफ एण्ड डेथ बोथ साइमलटेनियस, जीवन और मरण एक साथ दो पैर की तरह चल रहे हैं। महावीर ने कहा--यह जगत पुदगल है। इसमें सब चीजें सदा से हैं--बन रही हैं, मिट रही हैं। ट्रांसफार्मेशन चलता रहता है। न कोई चीज कभी समाप्त होती है, न कभी निर्मित होती है। इसलिए निर्माता का कोई सवाल नहीं है। इसलिए परमात्मा में वासना की कोई जरुरत नहीं है।
सारे धर्म परमात्मा को जगत हे पहले रखते हैं। महावीर परमात्मा को जगत
के अंत में रखते हैं। इसका फर्क समझ लें। सारे धर्म परमात्मा को कहते हैं-- काज, कारण है। महावीर कहते हैं--इफेक्ट, परिणाम। महावीर का अरिहंत अंतिम मंजिल है। भगवान तब होता है व्यक्ति, जब वह सब पा लिया। पहुंच गया वहां जिसके आगे और कोई यात्रा नहीं। दूसरे धर्मों का भगवान बिगनिंग में है, दुनिया जब शुरू होती है, वहां। जहां दुनिया समाप्त होती है, महावीर की भगवत्ता की धारणा वहां है। तो वे--सब कहते हैं कि दुनिया को बनाने वाला भगवान है--महावीर कहते हैं--दुनिया को पार कर जाने वाला भगवान है, वन हू गो.ज बियांड। महावीर प्रथम नहीं रखते, अंतिम रखते हैं। का.ज नहीं इफेक्ट, कारण नहीं कार्य।
दुनिया का भगवान बीज की तरह है, महावीर का भगवान फूल की तरह है।
दुनिया कहती है--भगवान से सब पैदा होता है। महावीर कहते हैं--जहां जाकर सब खुल जाता है और प्रकट हो जाता है, खिल जाता है, वहां। तो महावीर के जो अरिहंत की, सिद्ध की, भगवान की, भगवत्ता की धारणा है वह चेतना के पूरे खिल जाने की, फ्लॉवरिंग की है, जहां सब खिल जाता है। इस खिले हुए फूल से जो झरती है सुवास, इस खिले हुए फूल से "केवलिपन्नत्तो धम्मो", इसको उन्होंने कहा। इस खिले हुए फूल से जो झरती है सुवास खिले हुए फूल से जो आनंद प्रकट होता है, इस खिले हुए फूल का जो स्वभाव है वह केवली द्वारा प्ररूपित धर्म है। और असे वे कहते हैं--वह लोक में उत्तम है, वह जो फूल की तरह अंत में खिलता है--क्लाइमेक्स, शिखर।
शास्त्र में लिखा हुआ धर्म लोक में उत्तम है, ऐसा महावीर नहीं कहते। नहीं तो वे कहते--शास्त्र प्ररूपित धर्म लोकोत्तम है। वेद को मानने वाला कहता है, वेद में जो प्ररूपित धर्म है वह लोक में उत्तम है। बाइबिल को मानने वाला कहता है, बाइबिल में जो धर्म प्ररूपित है वह उत्तम है। कुरान को मानने वाला कहता है, कुरान में जो धर्म प्ररूपित है वह उत्तम है। गीता को मानने वाला कहता है, गीता में जो धर्म की प्रारूपना हुई है, वह उत्तम

है। महावीर कहते हैं--केवलिपन्नतो धम्मो--नहीं, शास्त्र में कहा हुआ नहीं--केवल ज्ञान के क्षण में जो झरता है वही, जीवंत। लिखे हुए का क्या मूल्य है? लिखा हुआ पहले तो बहुत सिकुड़ जाता है। शब्द में बांधना पड़ता है। जीवंत धर्म--अब इसके बहुत अर्थ होंगे। लेकिन केवली प्ररूपित जो धर्म
है वह शास्त्र में लिख लिया गया है। तो जैन अब उस शास्त्र को सिर पर ढोए चले जाते हैं, वैसे ही जैसे कुरान को कोई ढोता है, गीता को कोई ढोता है। यह महावीर के साथ ज्यादती है। ज्यादती इसलिए है कि महावीर ने कभी कहा नहीं कि शास्त्र में प्ररूपित धर्म। ऐसा भी नहीं कहा कि मेरे शास्त्र में कहा हुआ धर्म। लेकिन बड़ी कठिनाई है। और महावीर ने खुद कोई शास्त्र निर्मित नहीं किया। महावीर ने कुछ लिखवाया भी नहीं। महावीर के मरने के सैकड़ों वर्ष बाद महावीर के वचन लिखे गए। महावीर ने लिखवाया नहीं, लिखा नहीं।
और भी कठिन बात है और वह यह कि महावीर ने कहा नहीं। वह जरा कठिन है। वह जरा कठिन है कि महावीर ने का नहीं। महावीर तो मौन रहे। महावीर तो बोले नहीं। तो महावीर की जो वाणी है, वह कही हुई नहीं, सुनी हुई है। महावीर का जो धर्म का प्ररूपण है वह मौन, टेलिपैथिक ट्रांसमिशन है। और इसलिए बहुत पुराण जैसी लगती है बात, आपसे कहूं--कथा जैसी, लेकिन जल्दी ही सही वैज्ञानिक आधार उसको मिलते चले जाते हैं। महावीर जब बोलते, तो बोलते नहीं थे--बैठते। उनको... अंतर आकाश में जरूर ध्वनि गूंजती। ओंठ का भी उपयोग न करते, कंठ का भी उपयोग न करते।
अगर मैसिंग, एक साधारण व्यक्ति, जो कोई अरिहंत नहीं है--अगर एक कागज के टुकड़े को सिर्फ अंतर-वाणी के द्वारा कह सकता है--"यह टिकट है"--बोला तो नहीं, कहा तो नहीं, लेकिन टिकट कलेक्टर ने तो, चेकर ने तो जाना, सुना कि टिकट है। अगर एक कोरे कागज पर एक लाख रुपया दिए जा सकते हैं, तो पढ़ा तो गया, लिखा नहीं गया। ट्रेजरर ने पढ़ा तो कि लाख रुपये देने हैं। तो महावीर ने टेलिपैथिक कम्युनिकेशन का गहन प्रयोग किया। बोले नहीं, सुने गए। ही वा.ज हर्ड। मौन बैठे, पास लोग बैठे, उन्होंने सुना। और इसीलिए जो जिस भाषा में समझ सकता था उसने उस भाषा में सुना। इसमें भी थोड़ा समझ लेना जरूरी है। क्योंकि हम जो भाषा नहीं समझते उसमें कैसे सुनेंगे? और जानवर भी इकट्ठे थे, पशु भी इकट्ठे थे और पौधे भी खड़े थे, और कथा कहती है--उन्होंने भी सुना। तो अगर बैक्स्टर कहता है कि पौधों के भाव हैं, और वे समझते हैं आपकी भावनाएं। आप जब दुखी होते हैं--पौधों को प्रेम करने वाला व्यक्ति जब दुखी होता है तब वे दुखी हो जाते हैं। जब घर में उत्सव मनाया जाता है तो वे प्रफुल्लित हो जाते हैं। जब अनके पास खड़े होते हैं तो आनंद की धाराएं बहती हैं। जब घर में कोई मर जाता है तब वे भी मातम मनाते हैं। इसके जब अब वैज्ञानिक प्रमाण हैं तब क्या बहुत कठिनाई है कि महावीर के हृदय का संदेश पौधों की स्मृति तक न पहुंच जाए!
अभी सारी दुनिया में जो प्रयोग किए जा रहे हैं, अनकांशस पर, अचेतन पर, उनसे सिद्ध होता है कि हम अचेतन में कोई भी भाषा समझ सकते हैं--कोई भी भाषा।
जैसे आपको बेहोश किया जाए, हिप्नोटाइज किया जाए गहन। इतना बेहोश किया जाए कि आपको अपना कोई पता न रह जाए तो फिर आपसे किसी भी भाषा में बोला जाए, आप समझेंगे।
अभी एक चेक वैज्ञानिक डाक्टर राज डेक इस पर काम करता है--भाषा और अचेतन पर। तो वह एक महिला पर, जो चेक भाषा नहीं जानती, उसको बेहोश करके बहुत दिन तक, उससे चेक भाषा में बातें करता था, और वह समझती थी। जब वह बेहोश होती है, उससे वह चेक भाषा में कहता है--उठ कर वह पानी का गिलास ले आओ, तो वह ले आती है। बड़ी हैरानी की बात है। जब वह होश में आती, तब उससे कहे तो वह नहीं सुनती, समझ में नहीं आता। उसने उस महिला से पूछा कि बात क्या है? जब तू बेहोश होती है तब तू पूरा समझती है, जब तू होश में आती है तब तू कुछ भी नहीं समझती।
उस महिला ने कहा--मुझे भी थोड़ा-थोड़ा ख्याल रहता है बेहाशी का, कि मैं समझती थी। लेकिन जैसे-जैसे मैं होश में आती हूं तो मुझे सुनाई पड़ता है, चा, चा, चा, चा और कुछ समझ में नहीं आता। तुम जो बोलते हो, उसमें चा, चा, चा, चा

मालूम पड़ता है, और कुछ नहीं मालूम पड़ता। लेकिन बेहोशी में मुझे भी थोड़ी स्मृति रहती है कि तुम जो बोलते हो, मैं समझती हूं।
राज डेक का कहना है कि आदमी की भाषा का अध्ययन उसके अचेतन के अध्ययन
से यह खबर लाता है कि हम महासागर में निकले हुए छोटे-छोटे द्वीपों की भांति हैं। ऊपर से अलग-अलग, नीचे उतर जाएं तो जमीन से जुड़े हुए। ऊपर हमारी सबकी भाषाएं अलग-अलग, जितने गहरे उतर जाएं उतनी एक। आदमी की ही नहीं, और गहरे उतर जाएं तो पशु की भी एक। और गहरे उतर जाएं तो पशु की ही नहीं, पौधों की भी एक। और कोई नहीं कह सकता कि और गहरे उतर जाएं तो पत्थर की भी एक। जितने हम अपने नीचे गहरे उतरते है, उतने हम जुड़े हुए हैं--एक महा कांटिनेंट से, एक महाद्वीप से जीवन के, और वहां हम समझते हैं।
तो महावीर का यह जो प्रयोग था--निःशब्द विचार-संचरण का, टेलिपैथी का,
यह आने वाले बीस वर्षों में विज्ञान कहेगा कि पुराण कथा नहीं है। इस पर काम तेजी से चलता है और स्पष्ट होती जाती हैं बहुत सी अंधेरी गलियां, बहुत से गलियारे जो साफ नहीं थे। इसका अर्थ यह हुआ कि अगर हमें किसी व्यक्ति को दूसरी भाषा सिखानी हो तो राज डेक कहता है कि चेतन रूप से सिखाने में व्यर्थ कठिनाई हम उठाते हैं। इसलिए राज डेक ने एक संस्था खोली है। और एक दूसरा वैज्ञानिक है बल्गेरिया में डाक्टर लौरेंजोव। उसने एक इंस्टिट्यूट खोली है--लौरेंजोव के इंस्टिट्यूट का नाम है--इंस्टिट्यूट ऑफ सजेस्टोलॉजी। अगर हम उसे ठीक अनुवाद करें तो उसका अर्थ होगा--मंत्र महाविद्यालय। सजेस्टोलॉजी का अर्थ होता है मंत्र। आप जाते हैं न! सलाह देने वालों को हम मंत्री कहते हैं। सुझाव देने वाले को मंत्री कहते हैं। मंत्र का अर्थ हैः सुझाव, सजेशन। लौरेंजोव की इंस्टिट्यूट सरकार के द्वारा स्थापित है और बल्गेरियन सरकार कम्युनिस्ट है। इसमें तीस मनोवैज्ञानिक लौरेंजोव के साथ काम कर रहे हैं।
और लौरेंजोव का कहना है कि दो साल का कोर्स हम बीस दिन में पूरा करवा देते हैं, कोई भी दो साल का कोर्स। जो भाषा आप दो साल में सीखेंगे चेतन रूप से, वह लौरेंजोव आपको सम्मोहित--रेस्ट हालत में छोड़ कर बीस दिन में सिखा देता है। और एक नई शिक्षा की पद्धति लौरेंजोव ने विकसित की है जो कि जल्दी सारी दुनिया को पकड़ लेगी और वह बिल्कुल उलटी है जो अभी आप करवा रहे हैं। और उसके हिसाब से--और मैं मानता हूं कि वह ठीक है--मेरे हिसाब से भी, हम जिसको शिक्षा कह रहे हैं वह शिक्षा नहीं है, निपट नासमझही है।
लौरेंजोव ने जो स्कूल खोला है उस स्कूल में बच्चों के बैठने के लिए आराम कुर्सियां हैं--कुर्सियां नहीं, आराम कुर्सियां हैं--जैसा कि हवाई जहाज में होती हैं, जिन पर वे आराम से लेट जाते हैं। डिफ्यूज कर दिया जाता है प्रकाश, जैसा कि हवाई जहाज उड़ता है, तब कर दिया जाता है--तेज रोशनी नहीं। और विशेष संगीत कमरे में बजता रहता है। कोई स्कूल रहा यह! मामला सब खराब हो गया। पूरे वक्त संगीत बजता रहता है। और विद्याथियों से कहा जाता है कि आंख चाहे तो आधी बंद कर लो, चाहे पूरी बंद कर लो, और संगीत पर ध्यान दो--संगीत पर। और शिक्षक पढ़ा रहा हैं, उस पर ध्यान मत दो। डोंट गिव एनी अटेंशन टु दि टीचर। शिक्षक पढ़ा रहा है, उस पर भूल कर ध्यान मत देना, उसी से गड़बड़ हो जाती है। तुम तो संगीत सुनते रहना, तुम शिक्षक को सुनना ही मत।
यह तो उलटा हो गया। क्योंकि शिक्षक, यहीं तो बेचारा परेशान है कि हमको सुन नहीं रहे हैं तो वह डंडा बजा रहा है पूरे वक्त कि हमें सुनो। लड़के कहीं बाहर देख रहे हैं, कहीं पक्षियों को सुन रहे हैं, कहीं कुछ और कर रहे हैं, और शिक्षक कह रहा है, हमें सुनो। वह तो सारा, तीन हजार साल का शिक्षक और विद्यार्थी का झगड़ा है जो अब अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया है कि हमें सुनो। और लौरेंजोव कहता है कि इसीलिए तो दो साल लग जाते हैं सिखाने में। क्योंकि जब कोई व्यक्ति सचेतन रूप से सुनता है, तो उसका ऊपरी मन सुनता है। तो वह कहता है, ऊपरी मन को तो लगा दो संगीत सुनने में। तब उसका भीतरी मन का द्वार सुनता रहेगा। और दो साल का कोर्स वह बीस दिन में पूरा कर लेता है किसी भी भाषा का। और बीस दिन में आदमी उतना कुशल हो जाता है दूसरी भाषा बोलने में, जितना दो साल में नहीं हो पाता है।

बात क्या है? बात कुल इतनी ही है कि नीचे गहरे में हमारी बड़ी क्षमताएं छिपी हैं। आप अपने घर से यहां तक आए हैं। अगर आप पैदल चल कर आए हैं तो क्या आप बता सकते हैं कि रास्ते पर कितने बिजली के खंभे पड़े थे? आप कहेंगे कि मैं कोई पागल हूं! मैं उनकी गिनती नहीं करता। लेकिन आपको बेहोश करके पूछा जाए तो आप संख्या बता सकते हैं, ठीक संख्या। आप जब चले आ रहे थे इधर, तब आपका ऊपरी मन तो इधर आने में लगा था। हार्न बज रहा था, उसमें लगा था। कोई टकरा न जाए, उसमें लगा था। लेकिन आपके नीचे का मन सब कुछ रिकार्ड कर रहा है, रास्ते पर पड़े हुए लैंप पोस्ट भी, लोग निकले वह भी, हार्न बजा वह भी, कार का नंबर दिखाई पड़ गया वह भी--वह सब नोट कर रहा है। वह सब आपको याद हो गया है। आपके चेतन को कोई पता नहीं है। कहना चाहिए आपको कोई पता नहीं। वह जो पानी के ऊपर निकला हुआ द्वीप, आईलैंड है उसको कुछ पता नहीं। लेकिन नीचे जो जुड़ी हुई भूमि का विस्तार है, वहां सब पता है।
तो महावीर बोले नहीं, चुपचाप बैठे हैं। और इसीलिए यही कारण है कि महावीर का धर्म बहुत व्यापक नहीं हो पाया। बहुत लोगों तक नहीं पहुंच पाया। क्योंकि महावीर बोलते तो सबकी समझ में आता। महावीर नहीं बोले तो उनकी ही समझ में आया जो उतने गहरे जाने को तैयार थे। इसलिए महावीर का धर्म बहुत सिलेक्टिव, बहुत "चूजन फ्यू" के लिए है। जो उस जगत में महावीर के वक्त श्रेष्ठतम लोग थे, वे ही महावीर को सुन पाए। वे श्रेष्ठतम चाहे पौधों में हों और चाहे पशुओं में और चाहे आदमियों में। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। महावीर को सुनने के पहले बड़े प्रशिक्षण से गुजरना पड़ता था। ध्यान की प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता, ताकि जब आप महावीर के सामने बैठें तब आपका जो वाचाल मन है, वह जो निरंतर उपद्रव से ग्रस्त बीमार मन है वह शांत हो जाए, और आपकी जो गहन आत्मा है, वह महावीर के सामने आ जाए। संवाद हो सके उस आत्मा से।
इसलिए महावीर की वाणी को पांच सौ वर्ष तफ फिर रिकार्ड नहीं किया गया।
तब तक रिकॉर्ड नहीं किया गया, जब तक ऐसे लोग मौजूद थे जो महावीर के शरीर के गिर जाने के बाद भी महावीर से संदेश लेने में समर्थ थे। जब ऐसे लोग भी समाप्त होने लगे, तब घबड़ाहट फैली, और तब संगृहीत करने की कोशिश की गई। इसलिए जैनों का एक वर्ग दिगंबर महावीर की किसी भी वाणी को आथेंटिक नहीं मानता।
उसका मानना है कि चूंकि वह उन लोगों के द्वारा संगृहीत की गई है जो दुविधा में पड़ गए थे और जिन्हें शक पैदा हो गया था कि महावीर से अब संबंध जोड़ना संभव है या नहीं, इसलिए वह प्रामाणिक नहीं कही जा सकती। इसलिए दिगंबर जैनों के पास महावीर का कोई शास्त्र नहीं है--कोई शास्त्र ही नहीं है। वे कहते हैं, सब खो गया। श्वेतांबरों के पास जो शास्त्र है वह भी पूर्ण नहीं है। क्योंकि जिन्होंने संगृहीत किया उन्होंने कहा--हम थोड़ी सी बातें भर प्रामाणिक लिख सकते हैं। बाकी और सब अंग खो गए हैं। उनको जानने वाले अब कोई भी नहीं है। इसलिए वह भी अधूरा है।
लेकिन महावीर की पूरी वाणी को कभी भी पुनः पाया जा सकता है और उसके पाने का ढंग यह नहीं होगा कि महावीर के ऊपर जो किताबें लिखी रखी हैं उनमें खोजा जाए। उसके पुनः पाने का ढंग यही होगा कि वैसा ग्रुप, वैसा स्कूल, वैसे थोड़े से लोग जो चेतना की उस गहराई तक जा सकें जहां से महावीर से आज भी संबंध जोड़ा जा सकता है। इसलिए महावीर ने कहा--"केवलिपन्नतो धम्म"--शास्त्र नहीं। वही धर्म उत्तम है जो तुम केवली से संबंधित होकर जान सको, बीच में शास्त्र से संबंधित होकर नहीं। और केवली से कभी भी संबंधित हुआ जा सकता है। लेकिन शास्त्र बाजार में मिल जाते हैं। केवली से संबंधित होना हो तो बड़ी गहरी कीमत चुकानी पड़ती है। फिर स्वयं के भीतर बहुत कुछ रूपांतरित करना पड़ता है। महावीर कहते थे--बिना कीमत चुकाए कुछ भी नहीं मिलता है। और जितनी बड़ी चीज पानी हो, उतनी बड़ी कीमत चुकानी चाहिए।
इसलिए आखिरी बात--
जब वे बार-बार कहते हैं कि अरिहंत उत्तम हैं, सिध्द उत्तम हैं, साधु उत्तम हैं, केवली-प्ररूपित धर्म उत्तम है; तब वे यह भी कह रहे हैं कि इतने उत्तम को पाने के लिए तैयारी रखना सब कुछ चुकाने की। क्योंकिं मूल्य है,

मुफ्त नहीं मिल सकेगा। हम सब मुफ्त लेने के आदी हैं। हम कुछ भी चुकाने को तैयार नहीं हैं। सड़ी-गली चीज को खरीदने के लिए हम सब कुछ चुकाने को तैयार हैं। धर्म मुक्त मिलना चाहिए। असल में इससे पता चलता है--हम मुफ्त उसी चीज को लेने को तैयार होते हैं जिसको हम लेने को आग्रहशील नहीं हैं। जिसको हम कहते हैं कि मुफ्त देते हैं तो दे दें वरना क्षमा करें। महावीर कहते हैं-- जो इतना उत्तम है, लोक में जो सर्वश्रेष्ठ है, उसे चुकाने को सब कुछ खोना पड़ेगा, स्वयं को। और जब भी कोई स्वयं को खोने को तैयार है तो वह केवलीप्ररूपित धर्म से सीधा, डायरेक्ट संबंधित, संयुक्त हो जाता है। वही धर्म, जो जानने वाले से सीधा मिलता हो, बिना मध्यस्थ के, वही श्रेष्ठ है।

आज इतना ही।
बैठेंगे पांच-सात मिनट... !

महावीर-वाणी, भाग 1
तीसरा प्रवचन

शरणागतिः धर्म का मूल आधार (शरणागति-सूत्र)

अरिहंते सरणं पवज्जामि।
सिद्धे सरणं पवज्जामि।
साहू सरणं पवज्जामि।
केवलिपन्नत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि।

अरिहंत की शरण स्वीकार करता हूं। सिद्धों की शरण स्वीकार करता हूं।
साधुओं की शरण स्वीकार करता हूं। केवली प्ररूपित अर्थात आत्मज्ञ--कथित धर्म की शरण स्वीकार करता हूं।

कृष्ण ने गीता में कहा है--"सर्वधर्मान परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज"... अर्जुन, तू सब धर्मों को छोड़ कर मुझ एक की शरण में आ।
कृष्ण जिस युग में बोल रहे थे, वह युग अत्यंत सरल, निर्दोष, श्रद्धा का युग था। किसी के मन में ऐसा नहीं हुआ कि कृष्ण कैसे अहंकार की बात कह रहे हैं कि तू छोड़ कर मेरी शरण में आ। अगर कोई घोषणा अहंकारग्रस्त मालूम हो सकती है तो इससे ज्यादा अहंकारग्रस्त घोषणा दूसरी मालूम नहीं होगी-- अर्जुन को यह कहना कि छोड़ दे सब और आ मेरी शरण में। पर वह युग अत्यंत श्रद्धा का युग रहा होगा, जब कृष्ण बेझिझक, सरलता से ऐसी बात कह सके और अर्जुन ने सवाल भी न उठाया कि क्या कहते हैं आप? आपकी शरण में और मैं आऊं? अहंकार से भरे हुए मालूम पड़ते हैं।
लेकिन बुद्ध और महावीर तक आदमी की चित्त दशा में बहुत फर्क पड़े। इसलिए जहां हिंदू चिंतन "मामेकं शरणं व्रज" पर केंद्र मान कर खड़ा है वहीं बुद्ध और महावीर की दृष्टि में आमूल परिवर्तन करना पड़ा। महावीर ने नहीं कहा कि तुम सब छोड़ कर मेरी शरण में आ जाओ, न बुद्ध ने कहा। दूसरे छोर से पकड़ना पड़ा सूत्र को। तो बुद्ध का सूत्र है, वह साधक की तरफ से है। महावीर का सूत्र है, वह भी साधक की तरफ से है, सिद्ध की तरफ से नहीं। अरिहंत की शरण स्वीकार करता हूं, सिद्ध की शरण स्वीकार करता हूं, साधु की शरण स्वीकार करता हूं, केवली प्ररूपित धर्म की शरण स्वीकार करता हूं--यह दूसरा छोर है शरण और गति का। दो ही छोर हो सकते हैं। या तो सिद्ध कहे कि मेरी शरण में आ जाओ, या साधक कहे कि मैं आपकी शरण में आता हूं।
हिंदू और जैन विचार में मौलिक भेद यही है। हिंदू विचार में सिद्ध कह रहा है, आ जाओ मेरी शरण में; जैन विचार में साधक कहता है, मैं आपकी शरण में आता हूं। इससे बहुत पापों का पता चलता है। पहली तो यही बात पता चलती है कि कृष्ण जब बोल रहे थे तब बड़ा श्रद्धा का युग था और जब महावीर बोल रहे हैं तब बड़े तर्क का युग है। महावीर कहें--मेरी शरण आ जाओ, तत्काल लोगों को लगेगा, बड़े अहंकार की बात हो गई।
दूसरे छोर से शुरू करना पड़ेगा। पर बुद्ध और महावीर... बुद्ध के परंपरा में भी सूत्र है--बुद्धं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि--बुद्ध की शरण जाता हूं, संघ की शरण जाता हूं, धर्म की शरण जाता हूं। लेकिन महावीर और बुद्ध के सूत्र में भी थोड़ा सा फर्क है, वह ख्याल में ले लेना जरूरी है। ऊपर से देखें तो दोनों एक से मालूम पड़ते हैं--गच्छामि हो कि पवज्जामि हो, शरण जाता हूं या शरण स्वीकार करता हूं--एक से ही मालूम पड़ते हैं, पर उनमें भेद है। जब कोई कहता है, बुद्धं शरणं गच्छामि--बुद्ध की शरण जाता हूं, तो यह शरण जाने की शुरुआत है, पहला कदम है। और जब कोई कहता है, "अरिहंत सरणं पवज्जामि"--तब यह शरण जाने की अंतिम स्थिति है। शरण स्वीकार करता हूं, अब इसके आगे और कोई गति नहीं है। जब कोई कहता है--शरण जाता हूं, तब वह पहला कदम उठाता है और जब कोई कहता है--शरण स्वीकार करता हूं, तब वह अंतिम कदम उठाता है। जब कोई कहता है--शरण जाता हूं, तो बीच से लौट भी सकता है। और शरण तक न पहुंचे, यह भी हो सकता है। यात्रा का प्रारंभ है, यात्रा पूरी न हो, यात्रा के बीच में व्यवधान आ जाए। यात्रा के मध्य में ही तर्क समझाए और

लौटा दे। क्योंकि तर्क शरण जाने के नितांत विरोध में है। बुद्धि शरण जाने के नितांत विरोध में है। बुद्धि कहती है--तुम! और किसी की शरण! बुद्धि कहती है--सबको अपनी शरण में ले जाओ। तुम और किसी की शरण में जाओगे! तो अहंकार को पीड़ा होती है।
महावीर का सूत्र है--अरिहंत की शरण स्वीकार करता हूं। इससे लौटना नहीं हो सकता। यह पॉइंट ऑफ नो रिटर्न है। इसके पीछे लौटने का उपाय नहीं है। यह टोटल, यह समग्र छलांग है। शरण जाता हूं, तो अभी काल का व्यवधान होगा, अभी समय लगेगा, शरण तक पहुंचते-पहुंचते। अभी बीच में समय व्यतीत होगा। और आज जो कहता है--शरण जाता हूं, हो सकता है, न मालूम कितने जन्मों के बाद शरण में पहुंच सके। अपनी-अपनी मति पर निर्भर होगा। लेकिन पवज्जामि के सूत्र की खूबी यह है कि वह सडन जंप है। उसमें बीच में फिर समय का व्यवधान नहीं है। स्वीकार करता हूं। और जिसने शरण स्वीकार की, उसने स्वयं को तत्काल अस्वीकार किया। ये दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं। तो अगर आप अपने को स्वीकार करते हैं तो शरण को स्वीकार न कर सकेंगे। अगर आप शरण को स्वीकार करते हैं तो अपने को अस्वीकार कर सकेंगे--करना ही होगा। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
शरण की स्वीकृति अहंकार की हत्या है। धर्म का जो भी विकास है चेतना में, वह अहंकार के विसर्जन से शुरू होता है। चाहे सिद्ध कहे कि मेरी शरण आ जाओ--जब युग होते हैं श्रद्धा के तो सिद्ध कहता है मेरी शरण आ जाओ, और जब युग होते हैं अश्रद्धा के तो फिर साधक को ही कहना पड़ता है कि मैं आपकी शरण स्वीकार करता हूं। महावीर बिल्कुल चुप हैं। वे यह भी नहीं कहते कि तुममें जो मेरी शरण आए हो तो मैं तुम्हें अंगीकार करता हूं। वे यह भी नहीं कहते। क्योंकि खतरा तर्क के युग में यह है कि अगर महावीर इतना भी कहें, सिर भी हिला दें कि हां, स्वीकार करता हूं तो वह दूसरे का अहंकार फिर खड़ा हो जाता है, कि अच्छा... ! यह तो अहंकार हो गया। महावीर चुप ही रह जाते हैं। यह एकतरफा है, साधक की तरफ से।
निश्चित ही बड़ी कठिनाई होगी। इसलिए जितना आसान कृष्ण के युग में सत्य
को उपलब्ध कर लेना है, उतना आसन महावीर के युग में नहीं रह जाता। और हमारे युग में तो अत्याधिक कठिनाई खड़ी हो जाती है। न सिद्ध कह सकता है, मेरी शरण आओ, न साधक कह सकता है कि मैं आपकी शरण आता हूं। महावीर चुप रह गए। आज अगर साधक किसी सिद्ध की शरण में जाए, और सिद्ध इनकार न करे कि नहीं-नहीं, किसी की शरण में जाने की जरूरत नहीं; तो साधक समझेगा, अच्छा, तो मौन सम्मति का लक्षण है, तो आप शरण में स्वीकार करते हैं।
तर्क अब और भी रोगग्रस्त हुआ। आज महावीर अगर चुप भी बैठ जाएं और आप जाकर कहें कि अरिहंत की शरण आता हूं--और महावीर चुप रहें, तो आप घर लौट कर सोचेंगे कि यह आदमी चुप रह गया। इसका मतलब, रास्ता देखता था कि मैं शरण आऊं, प्रतीक्षा करता था। मौन तो सम्मति का लक्षण है। तो यह आदमी तो अहंकारी है तो अरिहंत कैसे होगा? नहीं, अब एक कदम और नीचे उतरना पड़ता है। और महावीर को कहना पड़ेगा कि नहीं, तुम किसी की शरण मत जाओ। महावीर जोर देकर इनकार करें कि नहीं, शरण आने की जरूरत नहीं, तो ही वह साधक समझेगा कि अहंकारी नहीं है। लेकिन उसे पता नहीं, इस अस्वीकार में साधक के सब द्वार बंद हो जाते हैं।
कृष्णमूर्ति की अपील इस युग में इसीलिए है। न वे कहते--सब धर्म छोड़ कर मेरी शरण आओ, न कोई साधक कहे उनसे कि मैं आता हूं तुम्हारी शरण। तो वे इनकार करते। वे कहते--मेरे पैर में मत गिर जाना, दूर रहो। और तब अहंकारी साधक बड़ा प्रसन्न होता है कि... पर उसकी अस्मिता घनी होती है। और उसे सहयोग नहीं पहुंचाया जा सकता। हमारा युग आध्यात्मिक दृष्टि से किसी को सहयोग पहुंचाना हो तो बड़ी कठिनाई का युग है। बुला कर सहयोग देना तो कठिन, जैसा कृष्ण देते हैं; आए हुए को सहयोग देना भी कठिन, जैसा कि महावीर देते हैं। और कुछ आश्चर्य न होगा कि और थोड़े दिनों बाद सिद्ध को कहना पड़े साधक से, आपकी शरण में आता हूं, स्वीकार करें! शायद तभी साधक मानें कि ठीक, यह आदमी ठीक है। यह आध्यात्मिक विकृति है। शरण का इतना मूल्य क्या है--इसे हम दो- तीन दिशाओं से समझने की कोशिश करें।

पहले तो शरीर से ही समझने की कोशिश करें। मैं कल आपको बल्गेरियन डाक्टर लौरेंजोव ने शिक्षा पर यह जो अनूठे प्रयोग किए हैं, उससे जब पिछले एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में पूछा गया कि तुम्हें इस अदभुत क्रांतिकारी शिक्षा के आयाम का कैसे स्मरण आया, किस दिशा से तुम्हें संकेत मिला? तो लौरेंजोव ने कहा कि मैं योग के--भारतीय योग के शवासन का प्रयोग करता था, और उसी से मुझे यह दृष्टि मिली।
शवासन से! शवासन की खूबी क्या है? शवासन का अर्थ है पूर्ण समर्पित शरीर की दशा, जब आपने शरीर को बिल्कुल छोड़ दिया। पूरा रिलैक्स छोड़ दिया। जैसे ही आप शरीर को पूरा रिलैक्स छोड़ देते हैं--और शरीर को अगर पूरा रिलैक्स छोड़ना हो तो जमीन पर जो भारतीयों की पुरानी पद्धति है साष्टांग प्रणाम की, उस स्थिति में पड़ कर ही छोड़ा जा सकता है। वह शरणागति की स्थिति है शरीर के लिए। अगर आप भूमि पर सीधे पड़ जाएं, सब हाथ-पैर ढीले छोड़ कर सिर रख दें, सारे अंग भूमि को छूने लगें तो यह सिर्फ नमस्कार की एक विधि नहीं है, यह बहुत ही अदभुत वैज्ञानिक सत्यों से भरा हुआ प्रयोग है।
लौरेंजोव कहता है कि रात निद्रा में हमें जो विश्राम मिलता है और शक्ति मिलती है, उसका मूल कारण हमारा पृथ्वी के साथ समतुल लेट जाना है। लौरेंजोव कहता है--जब हम समतल पृथ्वी के साथ समानांतर लेट जाते हैं तो जगत की शक्तियां हममें सहज ही प्रवेश कर पाती हैं। जब हम खड़े होते हैं तो शरीर ही खड़ा नहीं होता, भीतर अहंकार भी उसके साथ खड़ा होता है। जब हम लेट जाते हैं तो शरीर ही नहीं लेटता--उसके साथ अहंकार भी लेट जाता है। हमारे डिफेंस गिर जाते हैं, हमारे सुरक्षा के जो आयोजन हैं, जिनसे हम जगत को रेसिस्ट कर रहे हैं, वे गिर जाते हैं।
चेक यूनिवर्सिटी प्राग का एक व्यक्ति अनूठे प्रयोगों पर पिछले दस वर्षों से अनुसंधान करता है। वह व्यक्ति है--राबर्ट पावलिटा। थके हुए आदमियों को पुनः शक्ति देने के उसने अनूठे प्रयोग किए हैं। आदमी थका है-- आप बिल्कुल थके टूटे पड़े हैं तो आपको एक स्वस्थ गाय के नीचे लिटा देता है, जमीन पर। पांच मिनट उससे कहता है--सब छोड़ कर पड़े रहें और भाव करें कि स्वस्थ गाय से आपके ऊपर शक्ति गिर रही है। पांच मिनट में यंत्र बताना शुरू कर देते हैं कि उस आदमी की थकान समाप्त हो गई। वह ताजा होकर गाय के नीचे से बाहर आ गया। पावलिटा से बार-बार पूछा गया कि अगर हम गाय के नीचे बैठें तो? पावलिटा ने कहा कि जो काम लेट कर क्षण भर में होगा वह बैठ कर घंटों में भी नहीं हो पाएगा। वृक्ष के नीचे लिटा देता है। पावलिटा कहता है--जैसे ही आप लेटते हैं, आपका जो रेसिस्टेंस है आपके चारों ओर, आपने अपने व्यक्तित्व की जो सुरक्षा की दीवालें खड़ी कर रखी हैं, वे गिर जाती हैं।
वैज्ञानिक कहते हैं कि मनुष्य की बुद्धि विकसित हुई उसके खड़े होने से। यह सच है। सभी पशु पृथ्वी के समानांतर जीते हैं, आदमी भर वर्टिकल खड़ा हो गया। सभी पशु पृथ्वी की धुरी से समानांतर होते हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि आदमी का पैर पर खड़ा हो जाना ही उसकी तथाकथित बुद्धि का विकास है। लेकिन साथ ही--यह बुद्धि तो जरूर विकसित हो गई, लेकिन साथ ही जीवन के अंतर्तम से कास्मिक, जागतिक शक्तियों से उसके और गहरे सब संबंध शिथिल और क्षीण हो गए। उसे वापस लेट कर वे संबंध पुनर्स्थापित करने पड़ते हैं। इसलिए अगर मंदिरों में मूर्तियों के सामने, गिरजाघरों में, मस्जिदों में, लोग अगर झुक कर जमीन में लेटे जा रहे हैं तो उसका वैज्ञानिक अर्थ है। झुक कर लेटते ही डिफेंस टूट जाते हैं।
इसलिए फ्रायड ने जब पहली बार मनोचिकित्सा शुरू की तो उसने अनुभव किया
कि अगर बीमार को बैठ कर बात की जाए तो बीमार अपने डिफेंस मेजर नहीं छोड़ता। इसलिए फ्रायड ने कोच विकसित की, मरीज को एक कोच पर लिटा दिया जाता है। वह डिफेंसलेस हो जाता है। फिर फ्रायड ने अनुभव किया कि अगर उसके सामने बैठा जाए तो लेट कर भी वह थोड़ा अकड़ा रहता है। एक परदा डाल कर फ्रायड परदे के पीछे बैठ गया। कोई मौजूद नहीं रहा, मरीज लेटा हुआ है। वह पांच-सात मिनट में अपने डिफेंस छोड़ देता है। वह ऐसी बातें बोलने लगता है जो बैठ कर वह कभी नहीं बोल सकता था। वह अपने ऐसे अपराध स्वीकार करने लगता है जो खड़े होकर उसने कभी भी स्वीकार न किए होते।

अभी अमरीका के कुछ मनोवैज्ञानिक फ्रायड के कोच के खिलाफ अभियान चला रहे हैं। वे यह आंदोलन चला रहे हैं कि यह आदमी को बहुत असहाय अवस्था में डालने की तरकीब है। उनका कहना ठीक है। आंदोलन, कि गलत है--उनका कहना ठीक है। आदमी असहाय अवस्था में पड़ जाता है निश्चित ही लेट कर। असहाय इसलिए हो जाता है कि उसने अपने तरफ सुरक्षा का जो इंतजाम किया था वह गिर जाता है। पर शरणागत को हमने मूल्य दिया है। और अगर परमात्मा की तरफ, अरिहंत की तरफ, सिद्ध की तरफ, भगवान की तरफ शरणागति हो तो वह तो सदा परदे के पीछे ही है एक अर्थ में। अगर महावीर मौजूद भी हों तो महावीर का शरीर परदा बन जाता है और महावीर की चेतना तो परदे के पीछे होती है। और कोई उनके समक्ष जब समर्पण कर देता है तो वह अपने को सब भांति छोड़ देता है, जैसे कोई नदी की धार में अपने को छोड़ दे और धार बहाने लगे--तैरे नहीं, बहाने लगे। शरणागति भाव है, फ्लोटिंग है, और जैसे ही कोई बहता है, वैसे ही चित्त के सब तनाव छूट जाते हैं।
एक फ्रेंच खोजी, इजिप्त के पिरामिडों में दस वर्षों तक खोज करता रहा है। उस आदमी का नाम है--बोविस। वह एक वैज्ञानिक और इंजीनियर है। वह यह देख कर बहुत हैरान हुआ कि कभी-कभी पिरामिड में कोई चूहा भूल से या बिल्ली घुस जाती है और फिर निकल नहीं पाती--भटक जाती और मर जाती है। पर पिरामिड के भीतर जब भी कोई चूहा या बिल्ली या कोई प्राणी मर जाता है तो सड़ता नहीं। सड़ता नहीं, उसमें से दुर्गंध नहीं आती। वह ममीफाइड हो जाता है--सूख जाता है, सड़ता नहीं।
यह हैरानी की घटना है और बहुत अदभुत है। पिरामिड के भीतर इसके होने का कोई कारण नहीं है। और ऐसे पिरामिड के भीतर जो कि समुद्र के किनारे हैं जहां कि ह्युमिडिटी काफी है, जहां कि कोई भी चीज सड़नी ही चाहिए, और जल्दी सड़ जानी चाहिए, उन पिरामिड के भीतर भी कोई मर जाए तो सड़ता नहीं। तो बहुत चकित हो गया। इसका तो कोई कारण दिखाई नहीं पड़ता। बहुत खोज-बीन की। आखिर यह ख्याल में आना शुरू हुआ कि शायद पिरामिड का जो शेप है, वही कुछ कर रहा है। लेकिन शेप, आकार कुछ कर सकता है! सब खोज के बाद कोई उपाय नहीं था। दस साल की खोज के बाद बोविस को ख्याल आया कि कहीं पिरामिड का जो शेप, जो आकृति है, वह तो कुछ नहीं करती! तो उसने एक छोटा पिरामिड माडल बनाया--छोटा सा, तीन-चार फीट का बेस लेकर, और उसमें एक मरी हुई बिल्ली रख दी। वह चकित हुआ, वह ममीफाइड हो गई, वह सड़ी नहीं। तब तो एक बहुत नये विज्ञान का जन्म हुआ, और वह नया विज्ञान कहता है--ज्यामिट्री की जो आकृतियां हैं उनका जीवन ऊर्जाओं से बहुत संबंध है। और अब बोविस की सलाह पर यह कोशिश की जा रही है कि सारी दुनिया के अस्पताल पिरामिड की शक्ल में बनाए जाएं। उनमें मरीज जल्दी स्वस्थ होगा।
आपने सर्कस के.जोकर को, हंसोड़े को जो टोपी लगाए देखा है, वह फूल्स कैप कहलाती है। उसी की वजह से कागज--जितने कागज से वह टोपी बनती है, वह फूल्स कैप कहलाता है। लेकिन बोविस का कहना है कि कभी दुनिया के बुद्धिमान आदमी वैसी टोपी लगाते थे। वह वाइ.ज-कैप है, क्योंकि वह टोपी पिरामिड के आकार की है। और अभी बोविस ने प्रयोग किए हैं, फूल्स कैप के ऊपर। और उसका कहना है कि जिन लोगों को भी सिरदर्द होता है, वे पिरामिड के आकार की टोपी लगाएं, तत्क्षण उनका सिरदर्द दूर हो जाता है। जिनको भी मानसिक विकार हैं वे पिरामिड के आकार की टोपी लगाएं, उनके मानसिक विकार दूर हो सकते हैं। अनेक चिकित्सालयों में जहां मानसिक चिकित्सा की जाती है, बोविस की टोपी का प्रयोग किया जा रहा है, और प्रमाणित हो रहा है कि वह ठीक कहता है।
क्या टोपी के भीतर का आकर, आकृति इतना भेद ला दे सकती है! अगर बाह्य आकृतियां इतना भेद ला सकती हैं तो आंतरिक आकृतियों में कितना भेद पड़ सकेगा, वह मैं आपसे कहना चाहता हूं। शरणागति आंतरिक आकृति को बदलने की चेष्टा है, इनर ज्यामेट्री को। जब आप खड़े होते हैं तो आपके भीतर की चित्त-आकृति और होती है, और जब आप पृथ्वी पर शरण में लेट जाते हैं तो आपके भीतर की चित्त आकृति और होती है। चित्त में भी ज्यामेट्रिकल फिगर्स होते हैं। चित्त की आकृतियों में दो विशेष आकृतियां हैं, आपके खड़े होने का ख्याल जमीन से नब्बे का कोण बनाता है। और जब आप जमीन पर लेट जाते हैं तो आप जमीन

से कोई कोण नहीं बनाते, पैरेलल, समानांतर हो जाते हैं। अगर कोई परिपूर्ण भाव से कह सके कि मैं अरिहंत की शरण आता हूं, सिद्ध की शरण आता हूं, धर्म की शरण आता हूं, तो यह भाव उसकी आंतरिक आकृति को बदल देता है। और आंतरिक आकृति बदलते ही, आपके जीवन में रूपांतरण शुरू हो जाते हैं। आपके अंतर में आकृतियां हैं। आपकी चेतना भी रूप लेती है। और आप जिस तरह का भाव करते हैं, चेतना उसी तरह का रूप ले लेती है।
चार साल पहले, सारे पश्चिम के वैज्ञानिक एक घटना से जितना धक्का खाए, उतना शायद पिछले दो सौ वर्षों में किसी घटना से नहीं खाए। दिमित्री दोजोनोव नाम का एक चेक किसान जमीन से चार फीट ऊपर उठ जाता है। और दस मिनट तक जमीन से चार फीट ऊपर, ग्रेवीटेशन के पार, गुरुत्वाकर्षण के पार दस मिनट तक रुका रह जाता है। सैकड़ों वैज्ञानिकों के समक्ष अनेकों बार यह प्रयोग दिमित्री कर चुका है। सब तरह की जांच-पड़ताल कर ली गई है। कोई धोखा नहीं है, कोई तरकीब नहीं है।
दिमित्री से पूछा जाता है कि तेरे इस उठने का राज क्या है, तो वह दो बातें कहता है। वह कहता है--एक राज तो मेरा समर्पण भाव, कि मैं परमात्मा को कहता हूं कि मैं तेरे हाथ में अपने को सौंपता हूं, तेरी शरण आता हूं। मैं अपनी ताकत से ऊपर नहीं उठता, उसकी ताकत से ऊपर उठता हूं। जब तक मैं रहता हूं, जब तक मैं ऊपर नहीं उठ पाता।
दो-तीन बार उसके प्रयोग असफल भी गए। पसीना-पसीना हो गया। सैकड़ों लोग देखने आए हैं दूर-दूर से, और वह ऊपर नहीं उठ पा रहा है। आखिर में उसने कहा कि क्षमा करें। लोगों ने कहा--क्यों ऊपर नहीं उठ पा रहे हो? उसने कहा--नहीं उठ पा रहा इसलिए कि मैं अपने को भूल ही नहीं पा रहा हूं। और जब तक मुझे मेरा ख्याल जरा सा भी बना रहे तब तक ग्रेवीटेशन काम करता है, तब तक जमीन मुझे नीचे खींचे रहती है। जब मैं अपने को भूल जाता हूं, मुझे याद ही नहीं रहता कि मैं हूं, ऐसा ही याद रह जाता है कि परमात्मा है--बस, तब तत्काल मैं ऊपर उठ जाता हूं।
शरणागति का अर्थ ही है समर्पण। क्या यह दिमित्री जो कह रहा है, क्या परमात्मा पर छोड़ देने पर जीवन के साधारण नियम भी अपना काम करना छोड़ देते हैं? जमीन अपनी कशिश छोड़ देती है! अगर जमीन अपनी कशिश छोड़ देती है तो क्या आश्चर्य होगा कि जो व्यक्ति अरिहंत की शरण जाए, सेक्स की कशिश उसके भीतर छूट जाए! जीवन का सामान्य नियम छूट जाए! शरीर की जो मांग है वह छूट जाए! क्या यह हो सकता है कि शरीर भोजन मांगना बंद कर दे! क्या यह हो सकता है कि शरीर बिना भोजन के, और वर्षों रह जाए! अगर जमीन कशिश छोड़ सकती है तो कोई भी तो कारण नहीं है। प्रकृति का अगर एक नियम भी टूट जाता है तो सब नियम टूट सकते हैं।
अब दिमित्री दूसरी बात यह कहता है कि जब मैं ऊपर उठ जाता हूं तब एक बात
भर असंभव है ऊपर उठ जाने के बाद--जब तक मैं नीचे न आ जाऊं, मेरी शरीर की जो आकृति होती है उसमें मैं जरा भी फर्क नहीं कर सकता। अगर मेरा हाथ घुटने पर रखा है, तो मैं उसे हिला नहीं सकता, उठा नहीं सकता। मेरा सिर जैसा है फिर उसको मैं आड़ा-तिरछा नहीं कर सकता। मेरा शरीर उस आकृति में बिल्कुल बंध जाता है। और न केवल मेरा शरीर, बल्कि मेरे भीतर की चेतना भी उसी आकृति से बंध जाती है।
आपको ख्याल में नहीं होगा--क्योंकि हमारे पास ख्याल जैसी चीज ही नहीं बची है। आपके विचार में भी नहीं आया होगा कि सिद्धासन, पिरामिड की आकृति पैदा करना है शरीर में। बुद्ध की, महावीर की सारी मूर्तियां जिस आसन में हैं, वह पिरामिडिकल हैं। जमीन पर बेस बड़ी हो जाती है दोनों पैर की और ऊपर सब छोटा हो जाता है, सिर पर शिखर हो जाता है। एक ट्राएंगल बन जाता है--उस अवस्था में। उस आसन को सिद्धासन कहा है। क्यों? क्योंकि उस आसन में सरलता से प्रकृति के नियम अपना काम छोड़ देते हैं और प्रकृति के ऊपर जो परमात्मा के गहन, सूक्ष्म नियम हैं, वे काम करना शुरू कर देते हैं। वह आकृति महत्वपूर्ण है। दिमित्री कहता है--जमीन से उठ जाने के बाद फिर मैं आकृति नहीं बदल सकता, कोई उपाय नहीं है। मेरा कोई वश नहीं रह जाता। जमीन पर लौट कर ही आकृति बदल सकता हूं।

यह शरणागति की अपनी आकृति है, अहंकार की अपनी आकृति है। अहंकार को आप जमीन पर लेटा हुआ सोच सकते हैं? कंसीव भी नहीं कर सकते। अहंकार को सदा खड़ा हुआ ही सोच सकते हैं। बैठा हुआ अहंकार, सोया हुआ अहंकार कोई अर्थ नहीं रखता। अहंकार सदा खड़ा हुआ होता है। तो शरण के भाव को आप खड़ा हुआ सोच सकते हैं? शरण का भाव लेट जाने का भाव है। किसी विराटतर शक्ति के समक्ष अपने को छोड़ देने का भाव है। मैं नहीं, तू--वह भावना उसमें गहरी है।
मैंने आपसे कहा कि प्रकृति के नियम काम करना छोड़ देते हैं, अगर हम परमात्मा के नियम में अपने को समाविष्ट करने में समर्थ हो जाएं। इस संबंध में कुछ बातें कहनी जरूरी हैं।
महावीर के संबंध में कहा जाता है--पच्चीस सौ साल में महावीर के पीछे चलने वाला कोई भी व्यक्ति नहीं समझा पाया कि इसका राज क्या है। महावीर ने बारह वर्षों में केवल तीन सौ पैंसठ दिन भोजन किया। इसका अर्थ हुआ कि ग्यारह वर्ष भोजन नहीं किया। कभी तीन महीने बाद एक दिन किया, कभी महीने बाद एक दिन किया। बारह वर्ष के लंबे समय में सब मिला कर तीन सौ पैंसठ दिन, एक वर्ष भोजन किया। अनुपात अगर लें तो बाहर दिन में एक दिन भोजन किया और ग्यारह दिन भूखे रहे। लेकिन महावीर से ज्यादा स्वस्थ शरीर खोजना मुश्किल है, शक्तिशाली शरीर खोजना मुश्किल है। बुद्ध या क्राइस्ट या कृष्ण या राम, सारे स्वास्थ्य की दृष्टि से महावीर के सामने कोई भी नहीं टिकते। हैरानी की बात है! बहुत हैरानी की बात है! और महावीर के शरीर के साथ जैसे--जैसे नियम बाह्य-काम कर रहे हैं, उसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल है। बारह साल तक यह आदमी तीन सौ पैंसठ दिन भोजन करता है। इसके शरीर को तो गिर जाना चाहिए कभी का। लेकिन क्या हुआ कि शरीर गिरता नहीं।
अभी मैंने नाम लिया है--राबर्ट पावलिटा का कि इसकी प्रयोगशाला में बहुत अनूठे प्रयोग किए जा रहे हैं। उनमें एक प्रयोग भोजन के बाहर सम्मोहन के द्वारा हो जाने का भी है। जो व्यक्ति इस प्रयोगशाला में काम कर रहा है उसने चकित कर दिया है। पावलिटा की प्रयोगशाला में कुछ लोगों को दस-दस साल के लिए सम्मोहित किया गया। वह दस साल तक सम्मोहन में रहेंगे--उठेंगे, बैठेंगे, काम करेंगे, खाएंगे, पीएंगे, लेकिन उनका सम्मोहन नहीं तोड़ा जाएगा। वह गहरी सम्मोहन की अवस्था बनी रहेगी। और कुछ लोगों ने तो अपना पूरा जीवन सम्मोहन के लिए दिया है जो पूरे जीवन के लिए सम्मोहन किए गए हैं, उनका सम्मोहन जीवन भर नहीं तोड़ा जाएगा।
उनमें एक व्यक्ति है बरफिलाव। उसको तीन सप्ताह के लिए पिछले वर्ष सम्मोहित किया गया और तीन सप्ताह पूरे समय उसे बेहोश, सम्मोहित रखा गया। और उसे तीन सप्ताह में बार-बार सम्मोहन में झूठा भोजन दिया गया। जैसे उसे बेहोशी में कहा गया कि तुझे एक बगीचे में ले जाया जा रहा है। देख, कितने सुगंधित फूल हैं और कितने फल लगे हैं, सुगंध आ रही है? उस व्यक्ति ने जोर से श्वास खींची और कहा--अदभुत सुगंध है! प्रतीत होता है, सेव पक गए। पावलिटा ने उन झूठे, काल्पनिक, फैंटेसी के बगीचे से फल तोड़े; उस आदमी को दिए और कहा कि लो बहुत स्वादिष्ट हैं। उस आदमी ने शून्य में, शून्य से लिए गए, शून्य सेवों को खाया। कुछ था नहीं वहां। स्वाद लिया, आनंदित हुआ। पंद्रह दिन तक उसे इसी तरह का भोजन दिया गया--पानी भी नहीं, भोजन भी नहीं--झूठा पानी कहें, झूठा भोजन कहें। दस डाक्टर उसका अध्ययन करते थे। उन्होंने कहा है--रोज उसका शरीर और भी स्वस्थ होता चला गया। उसको जो शारीरिक तकलीफें थीं वे पांच दिन के बाद विलीन हो गईं। पेशाब या पाखाना, मलमूत्र विसर्जन सब विदा हो गया, क्योंकि उसके शरीर में कुछ जा ही नहीं रहा है। तीन सप्ताह के बाद जो सबसे बड़े चमत्कार की बात थी, वह यह कि वह परिपूर्ण स्वस्थ अपनी बेहोशी के बाहर आया। बड़े आश्चर्य की बात--जो आप कल्पना भी नहीं कर सकते, वह यह कि उसका वजन बढ़ गया।
यह असंभव है। जो वैज्ञानिक वहां अध्ययन कर रहा था--डाक्टर रेजलिव, उसने वक्तव्य दिया है--दिस इ.ज साइंटिफिकली इंपासिबल। पर उसने कहा-- इंपासिबल हो या न हो, असंभव हो या न हो, लेकिन यह हुआ है, मैं मौजूद था। और दस रात और दस दिन पूरे वक्त पहरा था कि उस आदमी को कुछ खिला न दिया जाए कोई तरकीब से; कोई इंजेक्शन न लगा दिया जाए; कोई दवा न डाल दी जाएः कुछ भी उसके

शरीर में नहीं डाला गया। वजन बढ़ गया। तो रेजलिव उस पर साल भर से काम कर रहा है और रेजलिव का कहना है कि यह मानना पड़ेगा कि देयर इ.ज समथिंग लाइके ऐन अननोन एक्स-फोर्स। कोई एक शक्ति है अज्ञात एक्स नाम की, जो हमारी वैज्ञानिक रूप से जानी गई किन्हीं शक्तियों में समाविष्ट नहीं होती--वही काम कर रही है। उसे हम भारत में प्राण कहते रहे हैं।
इस प्रयोग के बाद महावीर को समझना आसान हो जाएगा। और इसलिए मैं कहता हूं कि जिन लोगों को भी उपवास करना हो वे तथाकथित जैन साधुओं को सुन-समझ कर उपवास करने के पागलपन में न पड़ें। उन्हें कुछ भी पता नहीं है। वे सिर्फ भूखा मरवा रहे हैं। अनशन को उपवास कह रहे हैं। उपवास की तो पूरी, और ही वैज्ञानिक प्रक्रिया है। और अगर उस भांति किया जाए तो वजन नहीं गिरेगा, वजन बढ़ भी सकता है।
पर महावीर का वह सूत्र खो गया। संभव है, रेजलिव उस सूत्र को चेकोस्लोवाकिया में फिर से पुनः पैदा करे--कर लेगा। यहां भी हो सकता है-- लेकिन हम अभागे लोग हैं। हम व्यर्थ की बातों में और विवादों में इतना समय को नष्ट करते हैं और करवाते हैं कि सार्थक को करने के लिए समय और सुविधा भी नहीं बचती। और हम ऐसी ही मूढ़ताओं में लीन होते हैं, जिन्होंने विद्वता का आवरण ओढ़ रखा है। और हम बंधी हई अंधी गलियों में भटकते रहते हैं जहां रोशनी की कोई किरण भी नहीं है।
यह प्रकृति के नियम के बाहर जाने की महावीर की तरकीब क्या होगी? क्योंकि महावीर तो सम्मोहित या बेहोश नहीं थे। यह पावलिटा और रेजलिव का जो प्रयोग है, यह तो एक बेहोश और सम्मोहित आदमी पर है। महावीर तो पूर्ण जाग्रत पुरुष थे, वह तो बेहोश नहीं थे। वह तो उस जाग्रत लोगों में से थे जो कि निद्रा में भी जाग्रत रहते, जो कि नींद में भी सोते नहीं। जिन्हें नींद में भी पूरा होश रहता है कि यह रही नींद। नींद भी जिनके आस-पास ही होती है-- अराउंड दि कार्नर--कभी भीतर नहीं होती। वह उसे जांचते हैं, जानते हैं कि यह रही नींद और... और वह सदा बीच में जागे हुए होते हैं।
तो महावीर ने कैसे किया होगा? फिर महावीर का सूत्र क्या है? असल में सम्मोहन में और महावीर के सूत्र में एक आंतरिक संबंध है, वह ख्याल में आ जाए। सम्मोहित व्यक्ति बेहोशी में विवश होकर समर्मित हो जाता है। उसका अहंकार खो जाता है और तो कुछ फर्क नहीं है। अपने आप जान कर वह नहीं खोता, इसलिए उसे बेहोश करना पड़ता है। बेहोशी में खो जाता है। महावीर जान कर उस अस्मिता को, उस अहंकार को खो देते हैं और समर्मित हो जाते हैं। अगर आप होशपूर्वक भी, जागे हुए भी समर्पित हो सकें, कह सकें--अरिहंत शरणं पवज्जामि, तो आप उसी रहस्य लोग में प्रवेश कर जाते हैं जहां का रेजलिव और पावलिटा प्रयोग करता है। पर केवल बेहोशी में प्रवेश कर पाते हैं। होश आने पर तो उस आदमी को भी भरोसा नहीं आया कि यह हो सकता है। उसने कहा--कुछ न कुछ गड़बड़ हुई होगी। मैं नहीं मान सकता। होश में आने के बाद तो वह एक दिन बिना भोजन के न रह सका। उसने कहा कि मैं मर जाऊंगा। अहंकार वापस आ गया। अहंकार अपने सुरक्षा आयोजन को लेकर फिर खड़ा हो गया। उस आदमी को समझा रहे हैं डाक्टर कि नहीं मरेगा; क्योंकि इक्कीस दिन तो हम देख चुके कि तेरा स्वास्थ्य और बढ़ा है। पर उस आदमी ने कहा--मुझे तो कुछ पता नहीं। मुझे भोजन दें। भय लौट आया।
ध्यान रहे, मनुष्य के चित्त में जब तक अहंकार है, तब तक भय होता है। भय
और अहंकार एक ही ऊर्जा के नाम हैं। तो जितना भयभीत आदमी, उतना अहंकारी। जितना अहंकारी, उतना भयभीत। आप सोचते होंगे कि अहंकारी बहुत निर्भय होता है, तो आप बहुत गलामी में हैं। अहंकारी अत्यंत भयातुर होता है। यद्यपि अपने भय को प्रकट न होने देने के लिए वह निर्भयता के कवच ओढ़े रहता है। तलवारें लिए रहता है हाथ में कि सम्हल कर रहना। महावीर कहते हैं--अभय तो वही होता है जो अहंकारी नहीं होता। क्योंकि फिर भय के लिए कोई कारण नहीं रहा। भयभीत होने वाला भी नहीं रहा। इसलिए महावीर कहते हैं कि जो निर्भय अपने को दिखा रहा है, वह तो भयभीत है ही। अभय... अभय का अर्थ? वही हो सकता है अभय, जो समर्पित, शरणागत; जिसने छोड़ा अपने को। अब कोई भय का कारण न रहा।

यह सूत्र शरणागति का है। इस सूत्र के साथ नमोकार पूरा होता है। नमस्कार से शुरू होकर शरणागति पर पूरा होता है। और इस अर्थ में नमोकार पूरे धर्म की यात्रा बन जाता है। उस छोटे से सूत्र में पहले से लेकर आखिरी कदम तक सब छोड़ दें कहीं किसी चरण में, छोड़ दें। यह बात प्रयोजनहीन है--कहां छोड़ दें। महत्वपूर्ण यही है कि छोड़ दें।
तो शरणागति का पहला तो संबंध है--आंतरिक ज्यामिती से कि वह आपके भीतर
की चेतना की आकृति बदलती है। दूसरा संबंध है--आपको प्रकृति के साधारण नियमों के बाहर ले जाती है। किसी गहन अर्थ में आप दिव्य हो जाते हैं, शरण जाते हैं।
आप ट्रांसेंड कर जाते हैं, अतिक्रमण कर जाते हैं--साधारण तथाकथित नियमों का--जो हमें बांधे हुए हैं। और तीसरी बात--शरणागति आपके जीवन द्वारों को परम ऊर्जा की तरफ खोल देती है जैसे कि कोई अपनी आंख को सूरज की तरफ उठा ले। सूरज की तरफ पीठ करने की भी हमें स्वतंत्रता है। सूरज की तरफ पीठ करके भी हम खड़े हो सकते हैं। सूरज की तरफ मुंह करके भी आंख बंद रख सकते हैं। सूरज का अनंत प्रकाश बरसता रहेगा और हम वंचित रह जाएंगे। लेकिन एक आदमी सूरज की तरफ घूम जाता है, जैसे कि सूरजमुखी का फूल घूम गया हो। आंख खोल लेता है, द्वार खुले छोड़ देता है। सूरज का प्रकाश उसके रोएं-रोएं, रंध्र-रंध्र में पहुंच जाता है। उसके हृदय के अंधकारपूर्ण कक्षों तक भी प्रकाश की खबर पहुंच जाती है। वह नया और ताजा, पुनरुज्जीवित हो जाता है। ठीक ऐसे ही विश्व-ऊर्जा के स्रोत हैं और उन विश्व-ऊर्जा के स्रोतों की तरफ स्वयं को खोलना हो तो शरण में जाने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। इसलिए अहंकारी व्यक्ति दीन से दीन व्यक्ति है, जिसने अपने को समस्त स्रोतों से तोड़ लिया है। जो सिर्फ अपने पर ही भरोसा कर रहा है। वह ऐसा फूल है जिसने जड़ों से अपने संबंध त्याग दिए। और जिसने सूरज की तरफ मुंह फेरने से अकड़ दिखाई। वर्षा आती है तो अपनी पंखुड़ियां बंद कर लेता है। सड़ेगा, उसका जीवन सिर्फ सड़ने का एक क्रम होगा। उसका जीवन मरने की एक प्रक्रिया होगी। उसका जीवन परम जीवन का मार्ग नहीं बनेगा। लेकिन फूल पाता है रस-- जड़ों से, सूर्यों से, चांद-तारों से। अगर फूल समर्पित है तो प्रफुल्लित हो जाता है। सब द्वारों से उसे रोशनी, प्रकाश, जीवन मिलता है।
शरणागति का तीसरा और गहनतम जो रूप है, वह प्रकाश, जीवन-ऊर्जा के जो परम स्रोत हैं, जो एनर्जी सोर्सेज हैं--उनकी तरफ अपने को खोलना है।
इस पावलिटा का मैंने नाम लिया, इसके नाम से एक यंत्र वैज्ञानिक जगत में प्रसिद्ध है। वह कहलाता है, पावलिटा जनरेटर। बड़े छोटे-छोटे उसने यंत्र बनाए हैं। बहुत संवेदनशील पदार्थों से बहुत छोटी-छोटी चीजें बनाई हैं, और अभूतपूर्व काम उन यंत्रों से पावलिटा कर रहा है। वह उन यंत्रों पर कहता है कि आप सिर्फ अपनी आंख गड़ा कर खड़े हो जाएं, पांच क्षण के लिए--कुछ न करें, सिर्फ आंख गड़ा कर उन यंत्रों के सामने खड़े हो जाएं। वह यंत्र आपकी शक्ति को संगृहीत कर लेते हैं और तत्काल उस शक्ति का उपयोग किया जा सकता है। और जो काम आपका मन कर सकता था, बहुत दूर तक वही काम अब वह यंत्र कर सकता है। पांच मिनट पहले उस यंत्र को आप हाथ में उठाते तो वह मुर्दा था। पांच मिनट बाद आप उसको हाथ में उठाएं तो आपके हाथ में उस शक्ति का अनुभव होगा। पांच मिनट पहले आप जिसे प्रेम करते हैं, अगर आपने वह यंत्र उसके हाथ में दिया होता तो वह कहता, ठीक है। यह व्यक्ति कहता या वह स्त्री कहती कि ठीक है। लेकिन पांच मिनट उसे आप गौर से देख लें और आपकी ध्यान-ऊर्जा उससे संयुक्त हो जाए तो आप उस यंत्र को अपने प्रेमी के हाथ में दे दें--वह फौरन पहचानेगा कि आपकी प्रतिध्वनि उस यंत्र से आ रही है। अगर क्रोध और घृणा से भरा हुआ व्यक्ति उस यंत्र को देख ले तो आप उसको हाथ से अलग करना चाहेंगे। अगर प्रेम और दया और सहानुभूति से भरा व्यक्ति देख ले तो आप उसे सम्हाल कर रखना चाहेंगे।
पावलिटा ने तो एक बहुत अदभुत घोषणा की है। उसने कहा--बहुत शीघ्र भीड़
को छांटने के लिए गोली और लाठी चलाने की जरूरत न होगी। हम ऐसे यंत्र बना सकेंगे जो पंद्रह मिनट में वहां खड़े कर दिए जाएं तो लोग भाग जाएंगे। इतनी घृणा विकीर्णित की जा सकेगी। अभी उसके प्रयोग तो सफल हुए हैं उसने प्रयोग

बताए हैं, लोगों को करके, और वे सफल हुए हैं। अब उसने नवीनतम जो यंत्र बनाया है वह ऐसा है कि आपको देखने की भी जरूरत नहीं है। आप सिर्फ एक विशेष सीमा के भीतर उसके पास से गुजर जाएं, वह आपको पकड़ लेगा।
मैंने कल कहा था कि स्टैलिन ने एक आदमी की हत्या करवा दी थी--कार्ल आटोविच झीलिंग की, उन्नीस सौ सैंतीस में। वह आदमी उन्नीस सौ सैंतीस में यही काम कर रहा था, जो पावलिटा अब कर पाया है। बीस साल, तीस साल व्यर्थ पिछड़ गई बात। झीलिंग अदभुत व्यक्ति था। वह अंडे को हाथ में रख कर बता सकता था कि इस अंडे से मुर्गी पैदा होगी या मुर्गा, और कभी गलती नहीं हुई। पर यह तो बड़ी बात नहीं, क्योंकि अंडे के भीतर आखिर जो प्राण हैं, स्त्री और पुरुष की विद्युत में फर्क हैं, उनके विद्युत कंपन में फर्क है। वही उनके बीच आकर्षण है। वह निगेटिव-पाजिटिव का फर्क है। तो अंडे के ऊपर अगर संवेदनशील व्यक्ति हाथ रखे तो जो ऊर्जा-कण निकलते रहते हैं, वह बता सकता है।
लेकिन झीलिंग--चित्र को ढंक दें आप--वह चित्र, ढंके हुए चित्र पर हाथ
रख कर बता सकता था कि चित्र नीचे स्त्री का है कि पुरुष का। झीलिंग का कहना था कि जिसका चित्र लिया गया है, उसके विद्युत-कण उस चित्र में समाविष्ट हो जाते हैं, जितनी देर लिया जाता है। और इसलिए समाविष्ट हो जाते हैं कि जब किसी का चित्र लिया जाता है, तो वह कैमरा कांशस हो जाता है, उसका ध्यान कैमरे पर अटक जाता है और धारा प्रवाहित हो जाती है। वह जो पावलिटा कह रहा है कि एक तरफ देखने से आपकी ऊर्जा चली जाती है; आपके चित्र में भी आपकी ऊर्जा चली जाती है।
पर यह तो कुछ भी नहीं है। झीलिंग की सबसे अदभुत बात जो थी, वह यह है कि किसी आईने पर हाथ रख कर वह बता सकता था कि आखिरी जो व्यक्ति, इस आईने के सामने से निकला, वह स्त्री थी या पुरुष। क्योंकि आईने के सामने भी आप मिरर कांशस हो जाते हैं। जब आप आईने के सामने होते हैं तब जितने एकाग्र होते हैं, शायद और कहीं नहीं होते। आपके बाथरूम में लगा आईना आपके संबंध में किसी दिन इतनी बातें कह सकेगा कि आपको अपना आईना बचाना पड़ेगा कि कोई ले न जाए उठा कर। वे सब रहस्य खुल जाएंगे, जो आपने किसी को नहीं बताए। जो सिर्फ आपका बाथरूम और आपके बाथरूम का आईना जानता है। क्योंकि जितने ध्यानमग्न होकर आप आईने को देखते हैं, शायद किसी चीज को नहीं देखते। आपकी ऊर्जा प्रविष्ट हो रही है।
अगर आपसे ऊर्जा प्रविष्ट होती है ध्यानमग्न होने से, तो क्या इससे विपरीत नहीं हो सकता? वह विपरीत ही शरणागति का राज है। कि अगर आप ध्यानमग्न होते हैं, बहुत छोटे से ऊर्जा के केंद्र हैं आप। और अगर आपसे भी ऊर्जा प्रवाहित हो जाती है, तो क्या परम शक्ति के प्रति आप समर्पित होकर, उसकी ऊर्जा को अपने में समाविष्ट नहीं कर सकते? ऊर्जा के प्रवाह हमेशा दोनों तरफ होते हैं। जो ऊर्जा आपसे बह सकती है, वह आपकी तरफ भी बह सकती है। और अगर गंगाएं सागर की तरफ बहती हैं तो क्या सागर गंगा की तरफ नहीं बह सकता? यह शरणागति, सागर को गंगा की गंगोत्री की तरफ बहाने की प्रक्रिया है।
हम तो सब बह-बह कर सागर में गिर ही जाते हैं, लड़-लड़ कर बचाने की कोशिश में हैं। जीसस ने कहा है--"जो भी अपने को बचाएगा, वह मिट जाएगा। और धन्य हैं वे जो अपने को मिटा देते हैं, क्योंकि उनको मिटाने की फिर किसी की सामर्थ्य नहीं है।" गंगा तो लड़ती होगी, झगड़ती होगी, सागर में गिरने के पहले, सभी झगड़ते और लड़ते हैं। भयभीत होती होगी, मिटी जाती होगी। मौत से हमारा डर यही तो है। मौत का मतलब, सागर के किनारे पहुंच गई गंगा। मरे, बचा रहे हैं। लड़ते-लड़ते गिर जाते हैं। तब गिरने का जो मजा था, उससे भी चूक जाते हैं और पीड़ा भी पाते हैं।
शरणागति कहती है, लड़ो ही मत। गिर ही जाओ, और तुम पाओगे कि जिसकी शरण में तुम गिर गए हो, उससे तुमने कुछ नहीं खोया-पाया। सागर आया गंगोत्री की तरफ--वह जो अमृत का स्रोत है, चारों तरफ, जीवन का रहस्य स्रोत। ये तो प्रतीक शब्द हैं--अरिहंत, सिद्ध, साधु। ये हमारे पास आकृतियां हैं, उस अनंत स्रोत की। ये हमारे निकट, जिन्हें हम पहचान सकें। परमात्मा निराकार में खड़ा है, उसे पहचानना बहुत मुश्किल होगा। जो पहचान सके, धन्यभागी है।

लेकिन आकार में भी परमात्मा की छवि बहुत बार दिखाई पड़ती है--कभी किसी महावीर में, कभी किसी बुद्ध में, कभी किसी क्राइस्ट में, कभी उस परमात्मा की, उस निराकार की छवि दिखाई पड़ती है। लेकिन हम उस निराकार को तब भी चूकते हैं, क्योंकि हम आकृति में कोई भूल निकाल लेते हैं। कहते हैं कि जीसस की नाक थोड़ी कम लंबी है। यह परमात्मा की नहीं हो सकती। या महावीर को तो बीमारी पकड़ती है, ये परमात्मा कैसे हो सकते हैं? कि बुद्ध भी तो मर जाते हैं, ये परमात्मा कैसे हो सकते हैं? आपको ख्याल नहीं कि यह आप आकृति की भूलें निकाल रहे हैं और आकृति के बीच जो मौजूद था, उससे चूके जा रहे हैं। आप वैसे आदमी हैं, जो कि दीये की मिट्टी की भूलें निकाल रहे हैं, तेल
की भूलें निकाल रहे हैं और वह जो ज्योति चमक रही है, उससे चूके जा रहे हैं। होगी दीये में भूल। नहीं बना होगा पूरा सुघड़। पर प्रयोजन क्या है? तेल भर लेता है, काफी सुघड़ है। वह जो ज्योति बीच में जल रही है, वह जो निराकार ज्योति है, स्रोत-रहित--उसे तो देखना कठिन है। उसे भी देखा जा सकता है। लेकिन अभी तो प्रारंभिक चरण में उसे अरिहंत में, उसे सिद्ध में, उसे साधु में, उसे जाने हुए लोगों के द्वारा कहे गए धर्म में देखने की कोशिश करनी चाहिए। लेकिन हम ऐसे लोग हैं कि अगर कृष्ण बोल रहे हों तो हम यह फिकर कम करेंगे कि उन्होंने क्या कहा। हम इसकी फिकर करेंगे कि कोई व्याकरण की भूल तो नहीं थी।... ऐसे लोग हैं!
हम जिद्द किए बैठे हैं, चूकने की कि हम चूकते ही चले जाएंगे। और जिनको
हम बुद्धिमान कहते हैं, उनसे ज्यादा बुद्धिहीन खोजना मुश्किल है, क्योंकि वे चूकने में सर्वाधिक कुशल होते हैं। वे महावीर के पास जाते हैं तो वे कहते हैं कि सब लक्षण पूरे हुए कि नहीं? पहले लक्षण जो शास्त्र में लिखे हैं--वे पूरे होते हैं कि नहीं। वे दीयों की नाप-जोख कर रहे हैं, तेल का पता लगा रहे हैं। और तब तक ज्योति विदा हो जाएगी। और जब तक वे तय कर पाएंगे कि दीया बिल्कुल ठीक है, तब तक ज्योति जा चुकी होगी। और तब दीये को हजारों साल तक पूजते रहेंगे। इसलिए मरे हुए दीयों का हम बड़ा आदर करते हैं। क्योंकि जब तक हम तय कर पाते हैं कि दीया ठीक है, या अपने को तय कर पाते हैं कि चलो ठीक है, तब तक ज्योति तो जा चुकी होती है।
इस जगत में, जिंदा तीर्थंकर का उपयोग नहीं होता, सिर्फ मुर्दा तीर्थंकर का उपयोग होता है। क्योंकि मुर्दा तीर्थंकर के साथ, भूल-चूक निकालने की सुविधा नहीं रह जाती। अगर महावीर के साथ आप रास्ते पर चलते हों, और देखें कि महावीर भी थक कर और वृक्ष के नीचे विश्राम करते हैं, शक पकड़ेगा कि अरे महावीर तो कहते थे अनंत ऊर्जा है, अनंत शक्ति है, अनंत वीर्य है। कहां गई अनंत ऊर्जा? यह तो थक गए। दस मील चले और पसीना निकल आया। साधारण आदमी हैं। दीया थक रहा है। महावीर जिस अनंत ऊर्जा की बात कर रहे हैं वह ज्योति की बात है। दीये तो सभी के थक जाएंगे और गिर जाएंगे।
लेकिन ये सारी बातें हम क्यों सोचते हैं? यह हम सोचते हैं, इसलिए कि शरण से बच सकें। इसके सोचने का लाजिक है। इसके सोचने का तर्क है। इसके सोचने का रेशनेलाइजेशन है। यह हम सोचते इसलिए हैं ताकि हमें कोई कारण मिल सके और कारण के द्वारा, हम अपने को रोक सकें--शरण जाने से। बुद्धिमान वह है जो कारण खोजता है शरण जाने के लिए। और बुद्धिहीन वह है जो कारण खोजता है शरण से बचने के लिए। दोनों खोजे जा सकते हैं।
महावीर जिस गांव से गुजरते हैं, सारा गांव उनका भक्त नहीं हो जाता। उस गांव में भी उनके शत्रु होते ही हैं। जरूर वे भी अकारण नहीं होते होंगे। उनको भी कारण मिल जाता है। वे भी खोज लेते हैं कि महावीर को, कहते हैं कि जो ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है वह सर्वज्ञ हो जाता है। और अगर महावीर सर्वज्ञ हैं तो वे उस घर के सामने भिक्षा क्यों मांगते थे, जिसमें कोई है ही नहीं? इन्हें तो पता होना ही चाहिए न कि घर में कोई भी नहीं है! सर्वज्ञ? ये खुद ही कहते हैं, जो ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है, वह सर्वज्ञ हो जाता है। और हमने इनको ऐसे घर के सामने भीख मांगते देखा, जिसमें पता चला कि घर खाली है। घर में कोई है ही नहीं। नहीं, सर्वज्ञ नहीं है। बात खत्म हो गई। शरण से रुकने का उपाय हो गया।

क्योंकि महावीर के लिए तो लोग कहते हैं, शास्त्र कहते हैं, तीर्थंकरों के लक्षण कहे गए हैं कि इतने-इतने दूरी तक, इतने-इतने फासले तक, जहां महावीर चलते हैं--वहां घृणा का भाव नहीं रह जाता, वहां शत्रुता का भाव नहीं रह जाता। लेकिन फिर महावीर के कान में ही कोई कीलें ठोंक पाता है। तो ये तीर्थंकर नहीं हो सकते। क्योंकि जब शत्रुता का भाव ही नहीं रह जाता-- जहां महावीर चलते हैं, उनके मिल्यू में, उनके वातावरण में, कोई शत्रुता का भाव नहीं बचता--तो फिर कोई इनके कान में कीलें ठोंक देता है, इतने पास आकर? कान में कीलें तो बहुत दूर से नहीं ठोंकी जा सकतीं। बहुत पास होना पड़ता है। इतने पास आकर भी शत्रुता का भाव बचा रहता है! बात गड़बड़ है। संदिग्ध है मामला, ये तीर्थंकर नहीं हैं।
मगर महावीर तीर्थंकर हैं या नहीं, इससे आप क्या पा लेंगे? हां, एक कारण
आप पा लेंगे कि एक अरिहंत उपलब्ध होता था तो उसकी शरण जाने से आप बच सकेंगे। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे आपके शरण जाने से महावीर को कुछ मिलने वाला था, जो आपने रोक लिया। भूल रहे हैं, शरण जाने से आपको ही कुछ मिल सकता था, जो आप ही चूक गए। ये बहाने हैं, और आदमी की बुद्धिहीनता इतनी प्रगाढ़ है कि वह बहाने खोजने में बड़ा कुशल है। खोज लेता है बहाना।
बुद्ध के पास आकर लोग पूछते हैं--चमत्कार दिखाओ, अगर भगवान हो तो? क्योंकि कहा है कि भगवान तो मुर्दों को जिला सकता है। तो मुर्दे को जिला कर दिखाओ। जीसस को सूली दी जा रही थी लोग खड़े होकर देख रहे थे कि सूली न लगे तो मानें कुछ। सूली लग जाए और जीसस न मरें, हाथ-पैर कट जाएं और जीसस जिंदा रहें तो मानें कुछ। फिर जीसस मर गए। लोग बड़े प्रसन्न लौटे। हम तो पहले ही कहते थे, लोगों ने कहा होगा आस-पास कि यह आदमी धोखाधड़ी दे रहा है। यह कोई ईश्वर का पुत्र नहीं है। नहीं तो ईश्वर का पुत्र ऐसे मरता? परीक्षा के लिए जीसस को सूली दी तो दो चोरों को भी दोनों तरफ लटकाया था। तीन आदमियों को इकट्ठी सूली दी थी। जैसे चोर मर गए। तो फर्क क्या रहा? कोई चमत्कार होना था। यह मौका चूक गए।
जीसस ईश्वर पुत्र हैं या नहीं, इसकी जांच-पड़ताल हमारे मन में क्यों चलती हैं? चलती है इसलिए कि अगर हैं, तो ही हम शरण जाएं। न हों तो हम शरण न जाएं। लेकिन अगर आपको शरण नहीं जाना है तो आप कारण खोज लेंगे। और अगर आपको शरण जाना है तो एक पत्थर की मूर्ति में आप कारण खोज सकते हैं कि शरण जाने योग्य है। और मजा यह है कि शरण जाएं तो पत्थर की मूर्ति भी आपके लिए उसी परम-स्रोत का द्वार खोल देगी। और शरण न जाएं तो खुद महावीर सामने खड़े रहें तो भी द्वार बंद रहेगा। धार्मिक आदमी मैं उसे कहता हूं जो शरण जाने का कारण खोजता रहता है, कहीं भी। जहां भी उसे लगता है कि यहां शरण जाने जैसा है, वह शरण चला जाता है। जहां भी मौका मिलता है, अपने को छोड़ता और तोड़ता और मिटाता है। बचाता नहीं। एक दिन निश्चित ही उसकी गंगोत्री में सागर गिरना शुरू हो जाता है। और जिस दिन सागर गिरता है, उसी दिन उसे पता चलता है कि शरणागति का पूरा रहस्य क्या था। इसकी पूरी कीमिया, इसका पूरा चमत्कार क्या था।
एक बात आखिरी--अगर जीसस सूली का चमत्कार दिखा दें और तब आप शरण जाएं तो ध्यान रखना, वह शरणागति नहीं है--ध्यान रखना, वह शरणागति नहीं है। अगर बुद्ध किसी मुर्दे को जिंदा कर दें और आप उनके चरण पकड़ लें तो समझना कि वह शरणागति नहीं है। क्योंकि उसमें कारण बुद्ध हैं, कारण आप नहीं हैं। वह सिर्फ चमत्कार को नमस्कार है। उसमें कोई शरणागति नहीं है। शरणागति तो तब है, जब कारण बुद्ध हैं, कारण आप नहीं हैं। वह सिर्फ चमत्कार को नमस्कार है। उसमें कोई शरणागति नहीं है। शरणागति तो तब है, जब कारण आप हैं, बुद्ध नहीं। इस फर्क को ठीक से समझ लें, नहीं तो सूत्र का राज चूक जाएगा। शरणागति तो तब है, जब कारण आप हैं, बुद्ध नहीं। इस फर्क को ठीक से समझ लें, नहीं तो सूत्र का राज चूक जाएगा। शरणागति तो तब होती है जब आप शरण गए हैं। और शरणागति भी उसी मात्रा में गहन होती है, जिस मात्रा में शरणागति जाने का कोई कारण नहीं होता। जितना कारण होता है उतना ही बार्गेन हो जाता है, उतना तो सौदा हो जाता है। शरणागति नहीं रह जाती। बुद्ध मुर्दे को उठा रहे हैं तो नमस्कार तो करना ही पड़ेगा। इसमें आपकी खूबी नहीं है। इसमें तो कोई भी

नमस्कार कर लेगा। इसमें अगर कोई खूबी है तो बुद्ध की है। आपका इसमें कुछ भी नहीं है। लेकिन अदभुत लोग थे, इस दुनिया में। एक वृक्ष को जाकर नमस्कार करते थे, एक पत्थर को। तब-तब खूबी आपकी होनी शुरू हो जाती है। अकारण, जितनी अकारण होगी--शरण की भावना--उतनी गहरी होगी। जितनी सकारण होगी, उतनी उथली हो जाएगी। जब कारण बिल्कुल साफ होते हैं तब बिल्कुल तर्कयुक्त हो जाते हैं, उसमें कोई छलांग नहीं रह जाती। और जब बिल्कुल कारण नहीं होता, तभी छलांग घटित होती है।
तर्तूलियन ने, एक ईसाई फकीर ने कहा है कि मैं परमात्मा को मानता हूं क्योंकि उसके मानने का कोई भी कारण नहीं है, कोई प्रमाण नहीं है, कोई तर्क नहीं है। अगर तर्क होता, प्रमाण होता, कारण होता--तो जैसे आप कमरे में रखी कुर्सी को मानते हैं, उससे ज्यादा मूल्य परमात्मा का भी नहीं होता। मार्क्स मजाक में कहा करता था कि "मैं तब तक परमात्मा को न मानूंगा, जब
तक प्रयोगशाला में, टेस्ट-ट्यूब में उसे पकड़ कर सिद्ध करने का कोई प्रमाण न मिल जाए। जब हम प्रयोगशाला में उसकी जांच-परख कर लेंगे, थर्मामीटर लगा कर सब तरफ से नाम-तौल कर लेंगे, मेजरमेंट ले लेंगे, तराजू पर रख कर नाप लेंगे, एक्सरे से आप बाहर-भीतर सब उसको देख लेंगे, तब मैं मानूंगा।" और वह कहता था, "लेकिन ध्यान रखना, अगर हम परमात्मा के साथ यह सब कर सके, तो एक बात तय है कि वह परमात्मा नहीं रह जाएगा--एक साधारण वस्तु हो जाएगी। क्योंकि, जो हम वस्तु के साथ कर पाते हैं--वस्तुओं का तो पूरा प्रमाण है। यह दीवार पूरी तरह है।
लेकिन इससे क्या होगा? महावीर के सामने खड़े होकर शरीर तो पूरी तरह होता है। दिखाई पड़ रहा है, पूरे प्रमाण होते हैं। लेकिन वह जो भीतर जलती ज्योति है, वह उतनी पूरी तरह नहीं होती है। उसमें तो आपको छलांग लगानी पड़ती है--तर्क के बाहर, कारण के बाहर। और जिस मात्रा में वह आपको नहीं दिखाई पड़ती है और छलांग लगाने की आप सामर्थ्य जुटाते हैं, उसी मात्रा में आप शरण जाते हैं। नहीं तो सौदे में जाते हैं।
एक आदमी आपके बीच आकर खड़ा हो जाए मुर्दों को जिला दे, बीमारों को ठीक
कर दे, इशारों से घटनाएं घटने लगें तो आप सब उसके पैर पर गिर ही जाएंगे। लेकिन वह शरणागति नहीं है। लेकिन महावीर जैसा आदमी खड़ा हो जाता है, कोई चमत्कार नहीं है। कुछ भी ऐसा नहीं है कि आप ध्यान दें। कुछ भी ऐसा नहीं है जिससे आपको तत्काल लाभ दिखाई पड़े। कुछ भी ऐसा नहीं जो आपके सिर पर पत्थर की चोट पर, प्रमाण बन जाए। बहुत तरल अस्तित्व, बहुत अदृश्य अस्तित्व और आप शरण चले जाते हैं। तो आपके भीतर क्रांति घटित होती है। आप अहंकार से नीचे गिरते हैं। सब तर्क, सब प्रमाण, सब बुद्धिमान की बातें अहंकार के इर्द-गिर्द हैं। अतर्क्य, विचार के बाहर छलांग, अकारण समर्पण के इर्द-गिर्द है। बुद्ध के पास एक युवक आया था। चरणों में उनके गिर गया। बुद्ध ने उससे पूछा कि मेरे चरण में क्यों गिरते हो? उस युवक ने कहाः क्योंकि गिरने में बड़ा राज है। आपके चरण में नहीं गिरता, आपके चरण मात्र बहाना हैं। मैं गिरता हूं क्योंकि खड़े रह कर बहुत देख लिया, सिवाय पीड़ा के और दुख के कुछ भी न पाया।
तो बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से कहा कि "भिक्षु, देखो! अगर तुम मुझे मानते हो कि मैं भगवान हूं, तब मेरे चरण में गिरते हो, तब तुम्हें इतना लाभ न होगा, जितना लाभ यह युवक मुझे बिना भगवान माने उठाए लिए जा रहा है। यह कह रहा है कि मैं गिरता हूं, क्योंकि गिरने का बड़ा आनंद है। और मेरी इतनी सामर्थ्य नहीं है कि शून्य में गिर जाऊं, इसलिए आपको निमित्त बना लिया है। किसी दिन जब मेरी सामर्थ्य आ जाएगी कि जब मैं शून्य में गिर पाऊंगा--उन चरणों में, जो दिखाई भी नहीं पड़ते; उन चरणों में, जिन्हें छुआ भी नहीं जा सकता। लेकिन जो चरण चारों तरफ मौजूद हैं--जब मैं उस कास्मिक--उस विराट अस्तित्व, निराकार को सीधा ही गिर पाऊंगा। पर जरा गिरने का मुझे आनंद लेने दो। अगर इन दिखाई पड़ते हुए चरणों में इतना आनंद है, उसका मुझे थोड़ा स्वाद आ जाने दो, तो फिर मैं उस विराट में भी गिर जाऊंगा।
इसलिए बुद्ध का जो सूत्र है--"बुद्धं शरणं गच्छामि" वह बुद्ध से शुरू होता है, व्यक्ति से। "संघं शरणं गच्छामि"--समूह पर बढ़ता। संघ का अर्थ है--

उन सब साधुओं का, उन सब साधुओं के चरणों में। और फिर धर्म पर--"धम्मं शरणं गच्छामि" फिर वह समूह से भी हट जाता है। फिर वह सिर्फ स्वभाव में, फिर निराकार में खो जाता है। वही, अरिहंत के चरण गिरता हूं; स्वीकार करता हूं, अरिहंत की शरण। सिद्ध की शरण स्वीकार करता हूं, साधु की शरण स्वीकार करता हूं। और अंत में केवलिपन्नत्तं धम्मं शरणं पवज्जामि--धर्म की, जाने हुए लोगों के द्वारा बताए गए ज्ञान की शरण स्वीकार करता हूं। सारी बात इतनी है कि अपने को अस्वीकार करता हूं। और जो अपने को अस्वीकार करता है वह स्वयं को पा लेता है और जो स्वयं को ही पकड़ कर बैठा रह जाता है वह सब तो खो देता है, अंत में स्वयं को भी नहीं पाता। स्वयं को पाने की यह प्रक्रिया बड़ी पैराडाक्सिकल है, बड़ी विपरीत दिखाई पड़ेगी। स्वयं को पाना हो तो स्वयं को छोड़ना पड़ता है। और स्वयं को मिटाना हो तो स्वयं को खूब जोर से पकड़े रहना पड़ता है।
दो सूत्र अब तक विकसित हुए हैं जैसा मैंने कहा--एक, सिद्ध की तरफ से कि मेरी शरण आ जाओ। दो, साधक की तरफ से कि मैं तुम्हारी शरण आता हूं। तीसरा कोई सूत्र नहीं है। लेकिन हम तीसरे की तरफ बढ़ रहे हैं। वह तीसरे की तरफ बढ़ते हुए हमारे कदम जीवन में जो भी शुभ है, जीवन में जो भी सुंदर है, जीवन में जो भी सत्य है, उसमें खोने की तरफ बढ़ रहे हैं।
समर्पण यानी श्रद्धा। समर्पण यानी शरणागति। समर्पण यानी अहंकार विसर्जन। नमोकार इस पर पूरा होता है।
कल से हम महावीर की वाणी में प्रवेश करेंगे। लेकिन वे ही प्रवेश कर पाएंगे जो अपने भीतर शरण की आकृति निर्मित कर पाएंगे। चौबीस घंटे के लिए एक प्रयोग करना। जब भी ख्याल आए तो मन में कहना--"अरिहंते शरणं पवज्जामि, सिद्धे शरणं पवज्जामि, साहू शरणं पवज्जामि, केवलिपन्नत्तं धम्मं शरणं पवज्जामि"। इसे दोहराते रहना चौबीस घंटे। रात सोते समय इसे दोहरा कर सो जाना। रात नींद टूट जाए तो इसे दोहरा लेना। सुबह नींद खुले तो पहले इसे दोहरा लेना। कल यहां आते वक्त इसे दोहराते आना। अगर वह शरण की आकृति भीतर बन जाए तो महावीर की वाणी में हम किसी और ढंग से प्रवेश कर सकेंगे--जैसा पच्चीस सौ वर्ष में संभव नहीं हुआ है।

आज इतना ही।
अब हम यह शरण की आकृति और इसकी ध्वनि में थोड़ा प्रवेश करें। कोई जाए न, बैठ जाएं और सम्मिलित हों।

महावीर-वाणी, भाग 1
चौथा प्रवचन

धर्मः स्वभाव में होना (धम्म-सूत्र)

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मे सया मणो।।

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है--तो अमंगल क्या है, दुख क्या है, मनुष्य की पीड़ा और संताप क्या है? उसे न समझें तो "धर्म मंगल है, शुभ है, आनंद है"--इसे भी समझना आसान न होगा। महावीर कहते हैं--धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। जीवन में जो भी आनंद की संभावना है, वह धर्म के द्वार से ही प्रवेश करती है। जीवन में जो भी स्वतंत्रता उपलब्ध होती है वह धर्म के आकाश में ही उपलब्ध होती है। जीवन में जो भी सौंदर्य के फूल खिलते हैं वे धर्म की जड़ों से ही पोषित होते हैं। और जीवन में जो भी दुख है वह किसी न किसी रूप में धर्म से च्युत हो जाने में, या अधर्म में संलग्न हो जाने में है। महावीर की दृष्टि में धर्म का अर्थ है--जो मैं हूं, उस होने में ही जीना है। जो मैं हूं, उससे जरा भी, इंच भर भी च्युत न होना है।
जो मेरा होना है, जो मेरा अस्तित्व है उससे जहां मैं बाहर जाता हूं, सीमा का उल्लंघन करता हूं। जहां मैं विजातीय से संबंधित होता हूं, जहां मैं उससे संबंधित होता हूं जो मैं नहीं हूं, वहीं दुख का प्रारंभ हो जाता है। और दुख का प्रारंभ इसलिए हो जाता है कि जो मैं नहीं हूं, उसे मैं कितना ही चाहूं, वह मेरा नहीं हो सकता। जो मैं नहीं हूं, उसे मैं कितना ही बचाना चाहूं, उसे मैं बचा नहीं सकता। वह खोएगा ही। जो मैं नहीं हूं, उस पर मैं कितना ही श्रम और मेहनत करूं, अंततः मैं पाऊंगा वह मेरा नहीं सिद्ध हुआ। श्रम हाथ लगेगा, चिंता हाथ लगेगी, जीवन का अपव्यय होगा और अंत में मैं पाऊंगा कि मैं खाली का खाली रह गया हूं। मैं केवल उसे ही पा सकता हूं जिसे मैंने किसी गहरे अर्थ में सदा से पाया ही हुआ है। मैं केवल उसका ही मालिक हो सकता हूं जिसका मैं जानूं न जानूं, अभी भी मालिक हूं। मृत्यु जिसे मुझसे नहीं छीन सकेगी, वही केवल मेरा है। देह मेरी गिर जाएगी तो भी जो नहीं गिरेगा, वही केवल मेरा है। रुग्ण हो जाएगा सब कुछ, दीन हो जाएगा सब कुछ, नष्ट हो जाएगा सब कुछ--फिर भी जो नहीं म्लान होगा, वही मेरा है। गहन अंधकार छा जाए, अमावस आ जाए जीवन में चारों तरफ--फिर भी जो अंधेरा नहीं होगा वही मेरा प्रकाश है।
लेकिन हम सब, जो मैं नहीं हूं, वहां खोजते हैं स्वयं को। वहीं से विफलता, वहीं से फ्रस्ट्रेशन, वहीं से विषाद जन्मता है। जो भी हम चाहते हैं, वह स्वयं को छोड़ कर सब हम चाहते हैं। हैरानी की बात है, इस जगत में बहुत कम लोग हैं जो स्वयं को चाहते हैं। शायद आपने इस भांति नहीं सोचा होगा कि आपने स्वयं को कभी नहीं चाहा, सदा किसी और को चाहा।
वह और, कोई व्यक्ति भी हो सकता है; वस्तु भी हो सकती है, कोई पद भी हो सकता है, कोई स्थिति भी हो सकती है; लेकिन सदा कोई और है, अन्य है--दि अदर। स्वयं को हममें से कोई भी कभी नहीं चाहता। और केवल एक ही संभावना है जगत में कि हम स्वयं को पा सकते हैं, और कुछ पा नहीं सकते। सिर्फ दौड़ सकते हैं। जिसे हम पा नहीं सकते और केवल दौड़ सकते हैं, उससे दुख आएगा। उससे डिसइल्युजनमेंट होगा, कहीं न कहीं भ्रम टूटेगा और ताश के पत्तों का घर गिर जाएगा। और कहीं न कहीं नाव डूबेगी, क्योंकि वह कागज की थी। और कहीं न कहीं हमारे स्वप्न बिखरेंगे और आंसू बन जाएंगे। क्योंकि वे स्वप्न थे।

सत्य केवल एक है, और वह यह कि मैं स्वयं के अतिरिक्त इस जगत में और कुछ
भी नहीं पा सकता हूं। हां, पाने की कोशिश कर सकता हूं। पाने का श्रम कर सकता हूं, पाने की आशा बांध सकता हूं, पाने के स्वप्न देख सकता हूं। और कभी- कभी ऐसा भी अपने को भरमा सकता हूं कि पाने के बिल्कुल करीब पहुंच गया हूं। लेकिन कभी पहुंचता नहीं, कभी पहुंच नहीं सकता हूं।
अधर्म का अर्थ है, स्वयं को छोड़कर और कुछ भी पाने का प्रयास। अधर्म का अर्थ है, स्वयं को छोड़ कर "पर" पर दृष्टि। और हम सब "दि अदर ओरिएंटेड" हैं। हमारी दृष्टि सदा दूसरे पर लगी है। और कभी अगर हम अपनी शक्ल भी देखते हैं तो वह भी दूसरे के लिए। अगर आईने के सामने खड़े होकर भी अपने को देखते हैं तो वह किसी के लिए--कोई जो हमें देखेगा--उसके लिए हम तैयारी करते हैं। स्वयं को हम सीधा कभी नहीं चाहते। और धर्म तो स्वयं को सीधे चाहने से उत्पन्न होता है। क्योंकि धर्म का अर्थ है स्वभाव--दि अल्टीमेट नेचर। वह जो अंततः, अंततोगत्वा मेरा, मेरा होना है, जो मैं हूं।
सार्त्र ने बहुत कीमती सूत्र कहा है। कहा है--दि अदर इ.ज हैल। वह जो दूसरा है, वही नरक है हमारा। सार्त्र ने किसी और अर्थ में कहा है। लेकिन महावीर भी किसी और अर्थ में राजी हैं। वे भी कहते हैं कि दि अदर इ.ज हैल, बट दि इंफेसिस इ.ज नॉट ऑन दि अदर ए.ज हैल, बट ऑन वनसेल्फ ए.ज दि हैवन। दूसरा नरक है, यह महावीर नहीं कहते हैं क्योंकि इतना कहने में भी दूसरे को चाहने की आकांक्षा और दूसरे से मिली विफलता छिपी है। महावीर कहते हैं--"स्वयं होना मोक्ष है। धर्म है मंगल"।
सार्त्र के इस वचन को थोड़ा समझ लें। सार्त्र का जोर है यह कहने में कि दूसरा नर्क है। लेकिन दूसरा नर्क क्यों मालूम पड़ता है, यह शायद सार्त्र ने नहीं सोचा। दूसरा नर्क इसीलिए मालूम पड़ता है कि हमने दूसरे को स्वर्ग मानकर खोज की। हम दूसरे के पीछे गए, जैसे वहां स्वर्ग है। वह चाहे पत्नी हो, चाहे पति, चाहे बेटा हो, चाहे बेटी। चाहे मित्र, चाहे धन, चाहे यश। वह कुछ भी हो दूसरा, जो मुझसे अन्य है। सार्त्र को कहने में आता है कि दूसरा नरक है क्योंकि दूसरे में स्वर्ग खोजने की कोशिश की गई है। अगर स्वर्ग नहीं मिलता तो नरक मालूम पड़ता है। महावीर नहीं कहते कि दूसरा नरक है। महावीर कहते हैं--"धम्मो मंगलमुक्किट्ठं"--धर्म मंगल है। अधर्म अमंगल है, ऐसा भी नहीं कहते। कि यह "दूसरा" नरक है, ऐसा भी नहीं कहते हैं। स्वयं का होना मुक्ति है, मोक्ष है, मंगल है, श्रेयस है।
इसमें फर्क है। इसमें फर्क यही है कि दूसरे नरक हैं यह जानना दूसरे में स्वर्ग को मानने से दिखाई पड़ता है। अगर मैंने दूसरे से कभी सुख नहीं चाहा तो मुझे दूसरे से कभी दुख नहीं मिल सकता। हमारी अपेक्षाएं ही दुख बनती हैं--एक्सपेक्टेशंस डिसइल्यूजंड। अपेक्षाओं का भ्रम जब टूटता है तो विपरीत हाथ लगता है। दूसरा नरक नहीं है। अगर महावीर को ठीक समझें तो सार्त्र से कहना पड़ेगा कि दूसरा नरक नहीं है। लेकिन तुमने चूंकि दूसरे को स्वर्ग माना इसलिए दूसरा नरक हो जाता है। लेकिन तुम स्वयं स्वर्ग हो।
और स्वयं को स्वर्ग मानने की जरूरत नहीं है। स्वयं का स्वर्ग होना स्वभाव है। दूसरे को स्वर्ग मानना पड़ता है और इसलिए फिर दूसरे को नरक जानना पड़ता है। वह हमारे ही भाव हैं। जैसे कोई रेत से तेल निकालने में लग गया हो, तो उसमें रेत का तो कोई कसूर नहीं है। और जैसे कोई दीवार को दरवाजा मान कर निकलने की कोशिश करने लगे तो दीवार का तो कोई दोष नहीं है। और अगर दीवार दरवाजा सिद्ध न हो और सिर टूट जाए और लहूलुहान हो जाए तो क्या आप नाराज होंगे? और कहेंगे कि दीवार दुष्ट है? सार्त्र वही कह रहा है। वह कह रहा है, दूसरा नरक है। इसमें दूसरे का कंडेमनेशन है, इसमें दूसरे की निंदा है और दूसरे पर क्रोध छिपा है।
महावीर यह नहीं कहते। महावीर का वक्तव्य बहुत पाजिटिव है। महावीर कहते हैं--धर्म मंगल है, स्वभाव मंगल है, स्वयं का होना मोक्ष है और स्वयं को मानने की जरूरत नहीं है कि मोक्ष है। ध्यान रहे, मानना हमें वही पड़ता है, जहां नहीं होता। समझना हमें वहीं पड़ता है, जहां नहीं होता। कल्पनाएं हमें वहीं करनी होती हैं जहां कि सत्य कुछ और है। स्वयं को सत्य या स्वयं को धर्म या स्वयं को आनंद मानने की जरूरत नहीं है। स्वयं का होना आनंद है।

लेकिन हम जो दूसरे पर दृष्टि बांधे जीते हैं, उन्हें पता भी कैसे चले कि स्वयं कहां है? हमें वही पता चलता है जहां हमारा ध्यान होता है। ध्यान की धारा, ध्यान का फोकस, ध्यान की रोशनी जहां पड़ती है वही प्रकट हो जाता है। दूसरे पर हम दौड़ते हैं, दूसरे पर ध्यान की रोशनी पड़ती है; नरक प्रकट होता है। स्वयं पर ध्यान की रोशनी पड़े तो स्वर्ग प्रकट होता है। दूसरे में मानना पड़ता है और इसलिए एक दिन भ्रम टूटता है--टूटता ही है। कोई कितनी देर भ्रम को खींच सकता है, यह उसकी अपने भ्रम को खींचने की क्षमता पर निर्भर है। बुद्धिमान है, क्षण भर में टूट जाता है। बुद्धिहीन है, देर लगा देता है। और एक से छूटता है भ्रम हमारा तो तत्काल हम दूसरे की तलाश में लग जाते हैं।
लेकिन यह ख्याल ही नहीं आता कि एक "दूसरे" से टूटा हुआ भ्रम का यह अर्थ नहीं है कि दूसरे "दूसरे" से मिल जाएगा स्वर्ग। जन्मों-जन्मों तक यही पुनरुक्ति होती है। स्वयं में है मोक्ष, यह तब दिखाई पड़ना शुरू होता है जब ध्यान की धारा दूसरे से हट जाती है और स्वयं पर लौट आती है। "धर्म मंगल है"--यह जानना हो तो जहां-जहां अमंगल दिखाई पड़े वहां से विपरीत ध्यान को ले जाना। दि अपोजिट इ.ज दि डायरेक्शन, वह जो विपरीत है। धन में अगर न दिखाई पड़े, मित्र में अगर न दिखाई पड़े, पति-पत्नी में यदि न दिखाई पड़े, बाहर अगर दिखाई न पड़े, दूसरे में अगर दिखाई न पड़े तो सब्स्टीट्यूट खोजने मत लग जाना। कि इस पत्नी में नहीं मिलता है तो दूसरी पत्नी में मिल सकेगा। इस मकान में नहीं बनता स्वर्ग, तो दूसरे मकान में बन सकेगा। इस वस्त्र में नहीं मिलता तो दूसरे वस्त्र में मिल सकेगा। इस पद पर नहीं मिलता तो थोड़ा और दो सीढ़ियां चढ़ कर मिल सकेगा। ये सब्स्टीट्यूट हैं।
यह एक कागज की नाव डूबती नहीं है कि हम दूसरे कागज की नाव पर सवार होने
की तैयारी करने लगते हैं, बिना यह सोचे हुए कि जो भ्रम का खंडन हुआ है वह इस नाव से नहीं हुआ, वह कागज की नाव से हुआ है। वह इस पत्नी से नहीं हुआ, वह पत्नी-मात्र से हो गया है। वह इस पुरुष से नहीं हुआ, वह पुरुष-मात्र से हो गया है। वह इस "पर" से नहीं हुआ, वह "पर-मात्र" से हो गया है। महावीर की घोषणा कि धर्म मंगल है, कोई हाइपोथिटिकल, कोई परिकल्पनात्मक सिद्धांत नहीं है, और न ही यह घोषणा कोई फिलासफिक, कोई दार्शनिक वक्तव्य है। महावीर कोई दार्शनिक नहीं हैं। पश्चिम के अर्थ में--जिस अर्थ में हीगल या कांट या बर्ट्रेंड रसल दार्शनिक हैं, उस अर्थों में महावीर दार्शनिक नहीं हैं। महावीर का यह वक्तव्य सिर्फ एक अनुभव, एक तथ्य की सूचना है। ऐसा महावीर सोचते नहीं कि धर्म मंगल है, ऐसा महावीर जानते हैं कि धर्म मंगल है। इसलिए यह वक्तव्य बिना कारण के दिए गए वक्तव्य हैं।
और जब पहली बार पूरब के मनुष्यों के विचार पश्चिम में अनूदित हुए तो उन्हें बहुत हैरानी हुई क्योंकि पश्चिम के सोचने का जो ढंग था--अरस्तू से लेकर आज तक--अभी भी वही है। वह यह है कि तुम जो कहते हो, उसका कारण भी तो बताओ। इस वक्तव्य में कहा है कि "धम्मो मंगल मुक्किट्ठम"--धर्म मंगल है। अगर पश्चिम में किसी दार्शनिक ने यह कहा होता तो दूसरा वक्तव्य होता-- क्यों, व्हाय? लेकिन महावीर का दूसरा वक्तव्य व्हाय नहीं है, वॉट है। महावीर कहते हैं, धर्म मंगल है। (कौन सा धर्म?) "अहिंसा संजमो तवो।" वे यह नहीं कहते, क्यों? अगर पश्चिम में अरस्तू ऐसा कहता तो अरस्तू तत्काल बताता कि क्यों मैं कहता हूं कि धर्म मंगल है। महावीर कहते हैं कि मैं कहता हूं, धर्म मंगल है। कौन सा धर्म? यह अहिंसा, संयम और तप वाला धर्म मंगल है। कोई कारण नहीं दिया जा रहा है, कोई कारण नहीं बता या जा रहा है। कोई प्रमाण नहीं दिया जा रहा है। अनुभूति के लिए कोई प्रमाण नहीं होता, सिद्धांतों के लिए प्रमाण होते हैं। सिद्धांतों के लिए तर्क होते हैं, अनुभूति स्वयं ही अपना तर्क है। अनुभूति को जानना हो कि वह सही है या गलत, तो अनुभूति में उतरना पड़ता है। सिद्धांत को जानना हो कि सही है या गलत, तो सिद्धांत के सिलौसिज्म में, सिद्धांत की जो तर्कसरणी है, उसमें उतरना पड़ता है। और हो सकता है, तर्कसरणी बिल्कुल सही हो और सिद्धांत बिल्कुल गलत हो। और हो सकता है, प्रमाण बिल्कुल ठीक मालूम पड़े, और जिसके लिए दिए गए हैं, वह बिल्कुल ठीक न हो। गलत बातों के लिए भी ठीक प्रमाण दिए जा सकते हैं। सच तो यह है कि

गलत बातों के लिए ही हमें ठीक प्रमाण खोजने पड़ते हैं। क्योंकि गलत बातें अपने पैर से खड़ी नहीं हो सकतीं। उनके लिए ठीक प्रमाणों की सहायता की जरूरत पड़ती है।
महावीर जैसे लोग प्रमाण नहीं देते, सिर्फ वक्तव्य देते हैं। वे कहते हैं--ऐसा है। उनके वक्तव्य वैसे ही वक्तव्य हैं जैसे कि किसी आइंस्टीन के या किसी और वैज्ञानिक के। आइंस्टीन से अगर हम पूछें कि पानी हाइड्रोजन और आक्सीजन से क्यों मिल कर बना है, तो आइंस्टीन कहेगा, क्यों का कोई सवाल नहीं है--बना है। इट इ.ज सो। यह हम नहीं जानते कि क्यों बना है। हम इतना ही कह सकते हैं कि ऐसा है। और जिस भांति आइंस्टीन कह सकता है कि पानी का अर्थ है, एच टू ओ--हाइड्रोजन के दो अणु और आक्सीजन का एक अणु, इनका जोड़ पानी है। वैसे महावीर कहते हैं कि धर्म--अहिंसा, संयम, तप--इनका जोड़ है। यह "अहिंसा संजमो तवो", यह वैसा ही सूत्र है जैसे एच टू ओ। यह ठीक वैसा ही वक्तव्य है, वैज्ञानिक का। विज्ञान दूसरे के, पर के संबंध में वक्तव्य देता है, धर्म स्वयं के संबंध में वक्तव्य देता है। इसलिए अगर वैज्ञानिक के वक्तव्य को जांचना हो तो तर्क से नहीं जांचा जा सकता, उसकी प्रयोगशाला में जाना पड़ेगा। स्वभावतः उसकी प्रयोगशाला बाहर है क्योंकि उसके वक्तव्य पर के संबंध में हैं। और अगर महावीर जैसे व्यक्ति का वक्तव्य जांचना हो तो भी प्रयोगशाला में जाना पड़े। निश्चित ही महावीर की प्रयोगशाला बाहर नहीं है, वह प्रत्येक व्यक्ति के अपने भीतर है। लेकिन थोड़ा बहुत हम जानते हैं कि महावीर जो कहते होंगे, ठीक कहते होंगे। हमें यह तो पता नहीं है कि धर्म मंगल है, लेकिन हमें यह भलीभांति पता है कि अधर्म अमंगल है--कम से कम इतना हमें पता है। यह भी कुछ कम पता नहीं है। और अगर बुद्धिमान आदमी हो तो इतने ज्ञान से परमज्ञान तक पहुंच सकता है। हमें यह तो पता नहीं है कि धर्म मंगल है, लेकिन हमें यह पूरी तरह पता है कि अधर्म अमंगल है। क्योंकि अधर्म हमने किया है। अधर्म को हम जानते हैं।
इसे थोड़ा सोचें। क्या आपको पता है, जब भी आपके जीवन में कोई दुख आता है
तो दूसरे के द्वारा आता है? दूसरे के द्वारा आता हो या न आता हो, आपके लिए सदा दूसरे के द्वारा आता मालूम पड़ता है। क्या आपके जीवन में जब कोई चिंता आती है तो कभी आपने ख्याल किया है कि चिंता भीतर से नहीं, बाहर से आती मालूम पड़ती है। क्या कभी आप भीतर से चिंतित हुए हैं? सदा बाहर से चिंतित हुए हैं। सदा चिंता का केंद्र कुछ और रहा है, आपको छोड़ कर। वह धन हो, वह बीमार मित्र हो, वह डूबती हुई दुकान हो, वह खोता हुआ चुनाव हो, वह कुछ भी हो, दूसरा है--सदा दूसरा है। कुछ और, आपको छोड़ कर आपके दुख का कारण बनता है। लेकिन एक भ्रांति हमारे मन में है जो टूट जानी जरूरी है। कभी-कभी ऐसा लगता है कि दूसरा सुख का भी कारण बनता है। उसी से सब उपद्रव जारी रहता है। ऐसा तो लगता है कि दूसरा दुख का कारण बनता है, लेकिन ऐसा भी लगता है कि दूसरा सुख का कारण बनता है। चिंता तो दूसरे से आती है, दुख भी दूसरे से आता है, लेकिन सुख भी दूसरे से आता हुआ मालूम पड़ता है। ध्यान रखें, वह जो दूसरे से दुख आता है वह इसीलिए आता है कि आप इस भ्रांति में जीते है कि दूसरे से सुख आ सकता है। ये संयुक्त बातें हैं। और अगर आप आधे पर ही समझते रहे कि दूसरे से दुख आता है और यह मानते चले गए कि दूसरे से सुख आता है तो दूसरे से दुख आता चला जाएगा। दूसरे से दुख आता ही इसलिए है कि दूसरे से हमने एक भ्रांति का संबंध बना रखा है कि सुख आ सकता है। आता कभी नहीं। आ सकता है, इसकी संभावना हमारे आस-पास खड़ी रहती है। आ सकता है, इसकी संभावना हमारे आसपास खड़ी रहती है। आ सकता है, सदा भविष्य में होता है। इसे भी थोड़ा खोजें तो आपके अनुभव के कारण मिल जाएंगे।
कभी किसी क्षण में आपने जाना कि दूसरे से सुख आ रहा है--सदा ऐसा लगता है, आएगा। आता कभी नहीं। जिस मकान को आप सोचते हैं, मिल जाने से सुख आएगा, वह जब तक नहीं मिला है तब तक "आएगा" है। वह जिस दिन मिल जाएगा उसी दिन आप पाएंगे कि उस मकान की अपनी चिंताएं हैं, अपने दुख हैं, वे आ गए। और सुख अभी नहीं आया। और थोड़े दिन में आप पाएंगे कि आप भूल ही गए यह बात कि इस मकान से कितना सुख सोचा था कि आएगा, वह बिल्कुल नहीं आया।

लेकिन मन बहुत चालाक है, वह लौट कर नहीं देखता। वह रिट्रोस्पेक्टिवली कभी नहीं सोचता कि जिन-जिन चीजों से हमने सोचा था कि सुख आएगा, उनमें से कुछ आ गई, लेकिन सुख नहीं आया। इसलिए, अगर किसी दिन पृथ्वी पर ऐसा हो सका कि आप जो-जो सुख चाहते हैं, आपको तत्काल मिल जाएं तो पृथ्वी जितनी दुखी हो जाएगी, उतनी उसके पहले कभी नहीं थी। इसलिए जिस मुल्क में जितने सुख की सुविधा बढ़ती जाती है उसमें उतना दुख बढ़ता जाता है। गरीब मुल्क कम दुखी होते हैं, अमीर मुल्क ज्यादा दुखी होते हैं। गरीब आदमी कम दुखी होता है, जब मैं यह कहता हूं तो आपको थोड़ी हैरानी होगी क्योंकि हम सब मानते हैं कि गरीब बहुत दुखी होता है। पर मैं आपसे कहता हूं, गरीब कम दुखी होता है। क्योंकि अभी उसकी आशाओं का पूरा का पूरा जाल जीवित है। अभी वह आशाओं में जी सकता है। अभी वह सपने देख सकता है। अभी कल्पना नष्ट नहीं हुई है, अभी कल्पना उसे संभाले रखती है। लेकिन जब उसे सब मिल जाए, जो-जो उसने चाहा था, तो सब आशाओं के सेतु टूट गए। भविष्य नष्ट हुआ।
और वर्तमान में सदा दुख है, दूसरे के साथ। दूसरे के साथ सिर्फ भविष्य में सुख होता है। तो अगर सारा भविष्य नष्ट हो जाए, जो-जो भविष्य में मिलना चाहिए वह आपको अभी मिल जाए, इसी क्षण, तो आप सिवाय आत्महत्या करने के और कुछ भी नहीं कर सकेंगे। इसलिए जितना सुख बढ़ता है उतनी आत्महत्याएं बढ़ती हैं। जितना सुख बढ़ता है उतनी विक्षिप्तता बढ़ती है। जितना सुख बढ़ता है--बड़ी उलटी बात है क्योंकि सब वैज्ञानिक कहते हैं कि साधन बढ़ जाएंगे तो आदमी बहुत सुखी हो जाएगा। लेकिन अनुभव नहीं कहता। आज अमेरिका जितना दुखी है, उतना कोई भी देश दुखी नहीं है। और महावीर अपने घर में जितने दुखी हो गए, महावीर के घर के सामने जो रोज भीख मांगकर चला जाता भिखारी होगा, वह भी उतना दुखी नहीं था। महावीर का दुख पैदा हुआ है इस बात से कि जो भी उस युग में मिल सकता था, वह मिला हुआ था। महावीर के लिए कोई भविष्य न बचा, नो फ्यूचर। और जब भविष्य न बचे तो सपने कहां खड़े करिएगा? जब भविष्य न बचे तो कागज की नाव किस सागर में चलाइएगा? भविष्य के सागर में ही चलती है कागज की नाव। अगर भविष्य न बचे तो किस भूमि पर ताशों का भवन बनाइएगा? अगर ताशों का भवन बनाना हो तो भविष्य की नींव चाहिए। तो महावीर का जो त्याग है, वह त्याग असल में भविष्य की समाप्ति से पैदा होता है। नो फ्यूचर, कोई भविष्य नहीं है, तो महावीर अब कहां जाए, किस पद पर चढ़ें जहां सुख मिलेगा? किस स्त्री को खोजें जहां सुख मिलेगा? किस धन की राशि पर खड़े हो जाएं जहां सुख होगा? वह सब है।
महावीर के फ्रस्ट्रेशन को, महावीर के विषाद को हम सोच सकते हैं। और हम
उन नासमझों की बात भी सोच सकते हैं जो महावीर के पीछे दूर तक गांव के बाहर गए और समझाते रहे कि इतना सुख छोड़ कर कहां जा रहे हो? ये वे लोग थे जिनका भविष्य है। वे कह रहे थे कि पागल हो गए हो! जिस महल के लिए हम दीवाने हैं और सोचते हैं, किसी दिन मिल जाएगा तो मोक्ष मिल जाएगा--उसे छोड़ कर जा रहे हो! दिमाग तो खराब नहीं हो गया है! सभी सयाने लोगों ने महावीर को समझाया, मत जाओ छोड़ कर। लेकिन महावीर और उनके बीच भाषा का संबंध टूट गया। वे दोनों एक ही भाषा अब नहीं बोल सकते हैं, क्योंकि उनका भविष्य अभी बाकी है और महावीर का कोई भविष्य न रहा।
हमें भी अनुभव है, लेकिन हम पीछे लौट कर नहीं देखते हैं। हम आगे ही देखे चले जाते हैं। जो आदमी आगे ही देखे चला जाता है, वह कभी धार्मिक नहीं हो सकेगा। क्योंकि अनुभव से वह कभी लाभ नहीं ले सकेगा। भविष्य में कोई अनुभव नहीं है, अनुभव तो अतीत में है। जो आदमी पीछे लौट कर देखेगा--लेकिन पीछे लौट कर देखने में भी हम यह भूल जाते हैं कि हमने पीछे जब हम खड़े थे उस स्थानों पर, तब क्या सोचा था? वह भी हम भूल जाते हैं।
आदमी की स्मृति भी बहुत अदभुत है। आपको ख्याल ही नहीं रहता कि जो कपड़ा
आज आप पहने हुए हैं, कल वह कपड़ा आपके पास नहीं था और रात आपकी नींद खराब हो गई--किसी और के पास था, या किसी दुकान पर था या किसी शो-विंडो में था और आप रात भर नहीं सो सके थे। और न मालूम कितनी गुदगुदी मालूम पड़ी थी भीतर कि कल जब यह कपड़ा आपके शरीर पर होगा तो न मालूम दुनिया में कौन सी क्रांति घटित हो जाएगी! और कौन सा स्वर्ग उतर आएगा। आप भूल ही गए हैं बिल्कुल। अब वह कपड़ा आपके शरीर पर है। कोई स्वर्ग नहीं उतरा है, कोई क्रांति घटित नहीं

हुई। आप उतने के उतने दुखी हैं। हां, अब दूसरे दुकान की शो-विंडो में आपका सुख लटका हुआ है। अभी भी वहीं हैं। कहीं किसी दूसरी दुकान की शो-विंडो अब आपकी नींद खराब कर रही है।
पीछे लौट कर अगर देखें तो आप पाएंगे, जिन-जिन सुखों को सोचा था, सुख सिद्ध होंगे--वे सभी दुख सिद्ध हो गए। आप एक भी ऐसा सुख न बता सकेंगे जो आपने सोचा था कि सुख सिद्ध होगा और सुख सिद्ध हुआ हो। फिर भी आश्चर्य कि आदमी फिर भी वही पुनरुक्त किए चला जाता है। और कल के लिए फिर योजनाएं बनाता है। कल की बीती सब योजनाएं गिर गईं, लेकिन कल के लिए फिर वही योजनाएं बनाता है। अगर महावीर ऐसे व्यक्तियों को मूढ़ कहें तो तथ्य की ही बात कहते हैं। हम मूढ़ हैं! मूढ़ता और क्या होगी? कि मैं जिस गड्ढे में कल गिरा था, आज फिर उसी गड्ढे की तलाश करता हूं किसी दूसरे रास्ते पर। और ऐसा नहीं कि कल ही गिरा था, रोज-रोज गिरा हूं। फिर भी वही!
सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन एक रात ज्यादा शराब पीकर घर लौटा। टटोलता था रास्ता घर का, मिलता नहीं था। एक भले आदमी ने, देख कर कि बेचारा राह नहीं खोज पा रहा है, हाथ पकड़ा। पूछा कि इसी मकान में रहते हो?
मुल्ला ने कहाः हां। किस मंजिल पर रहते हो?
उसने कहाः दूसरी मंजिल पर।
उस भले आदमी ने बामुश्किल करीब-करीब बेहोश आदमी को किसी तरह सीढ़ियों
से घसीटते-घसीटते दूसरी मंजिल तक लाया। फिर यह सोच कर कि कहीं मुल्ला की पत्नी का सामना न करना पड़े, नहीं तो वह सोचे कि तुम भी संगी-साथी हो, कहीं उपद्रव न हो, पूछाः यही तेरा दरवाजा है?
मुल्ला ने कहाः हां।
उसने दरवाजे के भीतर धक्का दिया और सीढ़ियों से नीचे उतर गया। नीचे जाकर बहुत हैरान हुआ कि ठीक वैसा ही आदमी, थोड़ी और बुरी हालत में, फिर दरवाजा टटोलता है। ठीक वैसा ही आदमी! थोड़ा चकित हुआ। अपनी ही आंखों पर हाथ फेरा कि मैं तो कोई नशा नहीं किए हूं। थोड़ी बुरी हालत में ठीक वैसा ही आदमी। फिर से टटोल रहा है तो जाकर पूछा कि भाई तुम भी ज्यादा पी गए हो?
उस आदमी ने कहाः हां।
इसी मकान में रहते हो? उसने कहाः हां। किस मंजिल पर रहते हो?
उसने कहाः दूसरी मंजिल पर। (हैरानी!)
पूछा--जाना चाहते हो? बामुश्किल, इस बार और कठिनाई हुई क्योंकि वह आदमी और भी लस्त-पस्त था। उसे ऊपर जाकर, पहुंचा कर पूछा--इसी दरवाजे में रहते हो? उसने कहाः हां।
वह आदमी बहुत हैरान हुआ कि क्या नशेड़ियों के साथ थोड़ी सी देर में मैं
भी नशे में हूं? फिर धक्का दिया और नीचे उतर कर आया। देखा कि तीसरा आदमी और भी थोड़ी बुरी हालत में है। सड़क के किनारे पड़ा रास्ता खोज रहा है। लेकिन ठीक वैसा ही। उसे डर भी लगा कि भाग जाना चाहिए। यह झंझट की बात मालूम पड़ती है। यह कब तक चलेगा? यह आदमी वही मालूम पड़ता है। वही कपड़े हैं, ढंग वही है। थोड़ा और परेशान पूछा कि भाई इसी मकान में रहते हो? उसने कहाः हां।
किस मंजिल पर?
दूसरी मंजिल पर।
ऊपर जाना चाहते हो?
उसने कहाः हां।
उसने कहाः बड़ी मुसीबत है। अब इसको और पहुंचा दें। ले जाकर दरवाजे पर धक्का दिया। भाग कर नीचे आया कि चौथा न मिल जाए, लेकिन चौथा आदमी नीचे मौजूद था। अब उसमें हिलने-चलने की गति भी नहीं थी। लेकिन जैसे ही उसे पास आकर देखा, वह आदमी चिल्लाया कि "मुझे बचाओ। यह आदमी मुझे मार डालेगा।" मैं तुझे मार डालने की कोशिश नहीं कर रहा हूं। तू है कौन?
उसने कहाः तू मुझे बार-बार जाकर लिफ्ट के दरवाजे से धक्का देकर नीचे पटक रहा है।
उस आदमी ने पूछाः भले आदमी! तीन बार पटक चुका, तुमने कहा क्यों नहीं?
उसने सोचा कि शायद अब की बार न पटके यह सोच कर। नसरुद्दीन ने कहाः कौन जाने, अब की बार न पटके!

लेकिन दूसरा पटकता हो तो हम इतना हंस रहे हैं। हम अपने को ही पटकते चले जाते हैं। वही का वही आदमी, दूसरी बार और थोड़ी बुरी हालत होती है। और कुछ नहीं होता है। जिंदगी भर ऐसा चलता है। आखिर में दुख के घाव के अतिरिक्त हमारी कोई उपलब्धि नहीं होती। ये घाव ही घाव रह जाते हैं, पीड़ा ही पीड़ा रह जाती है।
इतना हम जानते हैं, कि अधर्म अमंगल है। और अधर्म से मतलब समझ लेना-- अधर्म से मतलब है, दूसरे में सुख को खोजने की आकांक्षा। वह दुख है, वह अमंगल है, और कोई अमंगल नहीं है। जब भी दुख आपको मिले तो जानना कि आपने दूसरे से कहीं सुख पाना चाहा। अगर मैं अपने शरीर से भी सुख पाना चाहता हूं तो भी मैं दूसरे से सुख पाना चाहता हूं। मुझे दुख मिलेगा। कल बीमारी आएगी, कल शरीर रुग्ण होगा, कल बूढ़ा होगा, परसों मरेगा। अगर मैंने इस शरीर से जो इतना निकट मालूम होता है, फिर भी पराया है--महावीर से अगर हम पूछने जाएं तो वे कहेंगे कि जिससे भी दुख मिल सकता है, जानना कि वह और है। इसे क्राइटेरियन, उसे मापदंड समझ लेना कि जिससे भी दुख मिल सके, जानना कि वह और है, वह तुम नहीं हो। तो जहां-जहां दुख मिले, वहां-वहां जानना कि "मैं" नहीं हूं।
सुख अपरिचित है क्योंकि हमारा सारा परिचय "पर" से है, "दूसरे" से है। सुख सिर्फ कल्पना में है, दुख अनुभव है। लेकिन दुख, जो कि अनुभव है, उसे हम भुलाए चले जाते हैं। और सुख जो कि कल्पना में है, उसके लिए हम दौड़ते चले जाते हैं। महावीर का यह सूत्र इस पूरी बात को बदल देना चाहता है। वे कहते हैं--धम्मो मंगलमुक्किट्ठं। धर्म मंगल है। आनंद की तलाश स्वभाव में है। कभी-कभी अगर आपके जीवन में आनंद की कोई किरण छोटी-मोटी उतरी होगी, तो वह तभी उतरती है जब आप अनजाने-जाने किसी भांति एक क्षण को स्वयं के संबंध में पहुंच जाते हैं--कभी भी। लेकिन हम ऐसे भ्रांत हैं कि वहां भी हम दूसरे को ही कारण समझते हैं।
सागर के तट पर बैठे हैं। सांझ हो गई है, सूर्यास्त होता है। ढलते सूरज में सागर की लहरों की आवाजों में एकांत में अकेले तट पर बैठे हैं। एक क्षण को लगता है जैसे सुख की कोई किरण कहीं उतरी। तो मन होता है कि शायद इस सागर, इस डूबते सूरज में सुख है। कल फिर आकर बैठेंगे। फिर उतनी नहीं उतरेगी। परसों फिर आकर बैठेंगे। अगर रोज आकर बैठते रहे तो सागर का शोरगुल सुनाई पड़ना बंद हो जाएगा। सूरज का डूबना दिखाई न पड़ेगा।
वह जो पहले दिन अनुभव हमें आया था वह सागर और सूरज की वजह से नहीं था।
वह तो केवल एक अजनबी स्थिति में आप पराए से ठीक से संबंधित न हो सके और थोड़ी देर को अपने से संबंधित हो गए। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें। इसीलिए परिवर्तन अच्छा लगता है एक क्षण को। क्योंकि परिवर्तन का, एक संक्रमण का क्षण, जो ट्रांजिशन का क्षण है, उस क्षण में आप दूसरे से संबंधित होने के पहले और पिछले से टूटने के पहले बीच में थोड़े से अंतराल में अपने से गुजरते हैं। एक मकान को बदल कर दूसरे मकान में जा रहे हैं। इस मकान को बदलने में और दूसरे मकान में एडजेस्ट होने के बीच एक क्षण को अव्यवस्थित हो जाएंगे। न यह मकान होगा, न वह मकान होगा। और बीच में क्षण भर को उस मकान में पहुंच जाएंगे जो आपके भीतर है।
वह क्षणभर को उस बीच जो थोड़ी सी सुख की झलक मिलेगी--वह शायद आप सोचेंगे, इस नये मकान में आने से मिली है, इस पहाड़ पर आने से मिली है, इस एकांत में आने से मिली है, इस संगीत की कड़ी को सुनने से मिली है, इस नाटक को देखने से मिली है। आप भ्रांति में हैं। अगर इस नाटक को देखने से वह मिला है तो फिर रोज इस नाटक को देखें, जल्दी ही पता चल जाएगा। कल नहीं मिलेगा, क्योंकि कल आप एडजेस्ट हो चुके होंगे, ना टक परिचित हो चुका होगा। परसों नाटक तकलीफ देने लगेगा। और दो-चार दिन देखते गए तो ऐसा लगेगा, अपने साथ हिंसा कर रहे हैं। एक पत्नी को बदल कर दूसरी पत्नी के साथ जो क्षण भर को सुख दिखाई पड़ रहा है, वह सिर्फ बदलाहट का है। और बदलाहट में भी सिर्फ इसलिए कि दो चीजों के बीच में क्षणभर को आपको अपने भीतर से गुजरना पड़ता है। बस, और कोई कारण नहीं है।

अनिवार्य है, जब मैं एक से टूटूं और दूसरे से जुडूं तो एक क्षण को मैं कहां रहूंगा? दूटने और जुड़ने के बीच में जो गैप है, जो अंतराल है, उसमें मैं अपने में रहूंगा। वही अपने में रहने का क्षण प्रतिफलित होगा और लगेगा कि दूसरे में सुख मिला। सभी बदलाहट अच्छी लगती है। बस बदलाहट, चेंज का जो सुख है, वह अपने से क्षण भर को अचानक गुजर जाने का क्षण है। इसलिए आदमी शहर से जंगल भागता है। जंगल का आदमी शहर आता है। भारत का आदमी यूरोप जाता है, यूरोप का आदमी भारत आता है। दोनों को वही क्षण परिवर्तन का... भारतीय को हैरानी होती है, पश्चिमी को देख कर अपने बीच में कि इधर आए हो सुख की तलाश में! इधर हम जैसा सुख पा रहे हैं, हम ही जानते हैं। पाश्चात्य को, भारतीय को वहां देख कर हैरानी होती है कि तुम यहां आए हो, सुख की तलाश में! यहां जो सुख मिल रहा है, उससे हम किस तरह बचें, हम इसकी चेष्टा में लगे हैं। पर कारण हैं, दोनों को क्षण भर को सुख मिलता है। वैज्ञानिक कहते हैं कि नई कोई भी चीज से व्यवस्थित होने में थोड़ा अंतराल पड़ता है। एक रिदम है हमारे जीवन की।
गोकलिन ने एक किताब लिखी है, दि काज्मिक क्लाक। लिखा है कि सारा अस्तित्व एक घड़ी की तरह चलता है। अदभुत किताब है, वैज्ञानिक आधारों पर। और मनुष्य का व्यक्तित्व भी एक घड़ी की तरह चलता है। जब भी कोई परिवर्तन होता है तो घड़ी डगमगा जाती है। अगर आप पूरब से पश्चिम की तरफ यात्रा कर रहे हैं तो आपके व्यक्तित्व की पूरी घड़ी गड़बड़ा जाती है। क्योंकि सब बदलता है। सूरज का उगने का समय बदल जाता है, सूरज के डूबने का समय बदल जाता है। वह इतनी तेजी से बदलता है कि आपके शरीर को पता ही नहीं चलता। इसलिए भीतर एक अराजकता का क्षण उपस्थित हो जाता है। सभी बदलाहटें आपके भीतर एक ऐसी स्थिति ला देती हैं कि आपको अनिवार्यरूपेण कुछ देर को अपने भीतर से गुजरना पड़ता है। उसका ही रिफ्लेक्शन, उसका ही प्रतिबिंब आपको सुख मालूम पड़ता है। और जब क्षण भर को अनजाने गुजर कर भी सुख मालूम पड़ता है, तो जो सदा अपने भीतर जीने लगता है--अगर महावीर कहते हैं, वे मंगल को, परम मंगल को, आनंद को उपलब्ध हो जाते हैं--तो हम नाप सकते हैं, हम अनुमान कर सकते हैं। यह हमारा अनुभव अगर प्रगाढ़ होता चला जाए कि जिसे हमने जीवन समझा है वह दुख है, जिस चीज के पीछे हम दौड़ रहे हैं वह सिर्फ नरक में उतार जाती है। अगर यह हमें स्पष्ट हो जाए तो हमें महा वीर की वाणी का आधा हिस्सा हमारे अनुभव से स्पष्ट हो जाएगा। और ध्यान रहे, कोई भी सत्य आधा सत्य नहीं होता--कोई भी सत्य--आधा सत्य नहीं होता। सत्य तो पूरा ही सत्य होता है। अगर उसमें आधा भी सत्य दिखाई पड़ जाए, तो शेष आधा आज नहीं कल दिखाई पड़ जाएगा। और अनुभव में आ जाएगा।
आधा सत्य हमारे पास है कि "दूसरा" दुख है। कामना दुख है, वासना दुख है। क्योंकि कामना और वासना सदा दूसरे की तरफ दौड़ने वाले चित्त का नाम है। वासना का अर्थ है दूसरे की तरफ दौड़ती हुई चेतन धारा। वासना का अर्थ है, भविष्य की ओर उन्मुख जीवन की नौका। अगर "दूसरा" दुख है, तो दूसरे की तरफ ले जानेवाला जो सेतु है वह नरक का सेतु है। उसको "वासना", महावीर कहते हैं। उसको बुद्ध "तृष्णा" कहते हैं। उसे हम कोई भी नाम दें। दूसरे को चाहने की जो हमारे भीतर दौड़ है, हमारी ऊर्जा का जो वर्तन है दूसरे की तरफ, उसका नाम वासना है, वह दुख है।
और मंगल, जो आनंद, जो धर्म है, जो स्वभाव है, निश्चित ही वह उस क्षण में मिलेगा जब हमारी वासना कहीं भी न दौड़ रही होगी। वासना का न दौड़ना आत्मा का हो जाना है। वासना का दौड़ना आत्मा का खो जाना है। आत्मा उस शक्ति का नाम है जो नहीं दौड़ रही है, अपने में खड़ी है। वासना उस आत्मा का नाम है जो दौड़ रही है अपने से बाहर, किसी और के लिए। इसलिए इसी सूत्र के दूसरे हिस्से में महावीर कहते हैं--कौन सा धर्म? अहिंसा, संयम और तप। यह अहिंसा, संयम और तप दौड़ती हुई ऊर्जा को ठहराने की विधियों के नाम हैं। वह जो वासना दौड़ती है दूसरे की तरफ, वह कैसे रुक जाए, न दौड़े दूसरे की तरफ? और जब रुक जाएगी, न दौड़ेगी दूसरे की तरफ--तो स्वयं में रमेगी, स्वयं में ठहरेगी, स्थिर होगी। जैसे कोई ज्योति हवा के कंप में कंपे न, वैसी। उसका उपाय महावीर कहते हैं।

तो धर्म स्वभाव है, एक अर्थ। धर्म विधि है, स्वभाव तक पहुंचने की, दूसरा अर्थ। तो धर्म के दो रूप हैं--धर्म का आत्यंतिक जो रूप है वह है स्वभाव, स्वधर्म। और धर्म तक, इस स्वभाव तक--क्योंकि हम इस स्वभाव से भटक गए हैं, अन्यथा कहने की कोई जरूरत न थी। स्वस्थ व्यक्ति तो नहीं पूछता चिकित्सक को कि मैं स्वस्थ हूं या नहीं। अगर स्वस्थ व्यक्ति भी पूछता है कि मैं स्वस्थ हूं या नहीं, तो वह बीमार हो चुका है। असल में, बीमारी न आ जाए तो स्वास्थ्य का ख्याल ही नहीं आता।
लाओत्सु के पास कनफ्यूशियस गया था और उसने कहा कि धर्म को लाने का कोई उपाय करें। तो कनफ्यूशियस से लाओत्सु ने कहा कि धर्म को लाने का उपाय तभी करना होता है जब अधर्म आ चुका होता है। तुम कृपा करके अधर्म को छोड़ने का उपाय करो, धर्म आ जाएगा। तुम धर्म को लाने का उपाय मत करो। इसलिए स्वास्थ्य को लाने का कोई उपाय नहीं किया जा सकता है, सिर्फ केवल बीमारियों को छोड़ने का उपाय किया जा सकता है। जब बीमारियां छूट जाती हैं तो जो शेष रह जाता है--दि रिमेनिंग।
तो धर्म का आखिरी सूत्र तो यही है, परम सूत्र तो यही है कि स्वभाव। लेकिन वह स्वभाव तो चूक गया है। वह तो हमने खो दिया है। तो हमारे लिए धर्म का दूसरा अर्थ महावीर कहते हैं--जो प्रयोगात्मक है, प्रक्रिया का है, साधन का है--पहली परिभाषा साध्य की, अंत की, दूसरी परिभाषा साधन की, मीन्स की। तो महावीर कहते हैं--कौन सा धर्म? अहिंसा, संजमो, तवो। इतना छोटा सूत्र शायद ही जगत में किसी और ने कहा हो जिसमें सारा धर्म आ जाए। अहिंसा, संयम, तप--इन तीन की पहले हम व्यवस्था समझ लें, फिर तीन के भीतर हमें प्रवेश करना पड़ेगा।
अहिंसा धर्म की आत्मा है, कहें केंद्र है धर्म का, सेंटर है। तप धर्म
की परिधि है, सरकमफ्रेंस है। और संयम केंद्र और परिधि को जोड़ने वाला बीच का सेतु है। ऐसा समझ लें, अहिंसा आत्मा है, तप शरीर है और संयम प्राण है। वह दोनों को जोड़ता है--श्वास है। श्वास टूट जाए तो शरीर भी होगा, आत्मा भी होगी, लेकिन आप न होंगे। संयम टूट जाए, तो तप भी हो सकता है, अहिंसा भी हो सकती है--लेकिन धर्म नहीं हो सकता। वह व्यक्तित्व बिखर जाएगा। श्वास की तरह संयम है। इसे थोड़ा सोचना पड़ेगा। इसकी पहले हम व्यवस्था को समझ लें, फिर एक-एक की गहराई में उतरना आसान होगा।
अहिंसा आत्मा है महावीर की दृष्टि से। अगर महावीर से हम पूछें कि एक
ही शब्द में कह दें कि धर्म क्या है? तो वे कहेंगे अहिंसा। कहा है उन्होंने-अहिंसा परम धर्म है। अहिंसा पर क्यों महा वीर इतना जोर देते हैं? किसी ने नहीं कहा, ऐसा अहिंसा को। कोई कहेगा, परमात्मा; कोई कहेगा, आत्मा। कोई कहेगा, सेवा; कोई कहेगा, ध्यान। कोई कहेगा, समाधि; कोई कहेगा, योग। कोई कहेगा, प्रार्थना; कोई कहेगा, पूजा। महावीर से अगर हम पूछें, उनके अंतर्तम में एक ही शब्द बसता है और वह है अहिंसा। क्यों? तो जिसको महावीर के मानने वाले अहिंसा कहते हैं, अगर इतनी ही अहिंसा है तो महावीर गलती में हैं। तब बहुत क्षुद्र बात कही जा रही है। महावीर को मानने वाला अहिंसा से जैसा मतलब समझता है, उससे ज्यादा बचकाना, चाइल्डिश कोई मतलब नहीं हो सकता। उससे वह मतलब समझता है--दूसरे को दुख मत दो। महावीर का यह अर्थ नहीं है। क्योंकि धर्म की परिभाषा में दूसरा आए, यह महावीर बरदाश्त न करेंगे। इसे थोड़ा समझें।
धर्म की परिभाषा स्वभाव है, और धर्म की परिभाषा दूसरे से करनी पड़े कि दूसरे को दुख मत दो, यही धर्म है। तो यह धर्म भी दूसरे पर ही निर्भर और दूसरे पर ही केंद्रित हो गया है। महावीर यह भी न कहेंगे कि दूसरे को सुख दो, यही धर्म है। क्योंकि फिर वह दूसरा तो खड़ा ही रहा। महावीर कहते हैं-- धर्म तो वहां है, जहां दूसरा है ही नहीं। इसलिए दूसरे की व्याख्या से नहीं बनेगा। दूसरे को दुख मत दो--यह महावीर की परिभाषा इसलिए भी नहीं हो सकती, क्योंकि महावीर मानते नहीं कि तुम दूसरे को दुख दे सकते हो, जब तक दूसरा लेना न चाहे। इसे थोड़ा समझना। यह भ्रांति है कि मैं दूसरे को दुख दे सकता हूं और यह भ्रांति इसी पर खड़ी है कि मैं दूसरे से दुख पा सकता हूं, मैं दूसरे से सुख पा सकता हूं, मैं दूसरे को सुख दे सकता हूं। ये सब भ्रांतियां

एक ही आधार पर खड़ी हैं। अगर आप दूसरे को दुख दे सकते हैं तो क्या आप सोचते हैं, आप महावीर को दुख दे सकते हैं? और अगर आप महावीर को दुख दे सकते हैं तो फिर बात खत्म हो गई। नहीं, आप महावीर को दुख नहीं दे सकते। क्योंकि महावीर दुख लेने को तैयार ही नहीं हैं। आप उसी को दुख दे सकते हैं जो दुख लेने को तैयार है। और आप हैरान होंगे कि हम इतने उत्सुक हैं दुख लेने को, जिसका कोई हिसाब नहीं। आतुर हैं, प्रार्थना कर रहे हैं कि कोई दुख दे। दिखाई नहीं पड़ता दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन खोजें अपने को। अगर एक आदमी आपकी चौबीस घंटे प्रशंसा करे, तो आपको सुख न मिलेगा, और एक गाली दे दे तो जन्मभर के लिए दुख मिल जाएगा। एक आदमी आपकी वर्षों सेवा करे, आ पको सुख न मिलेगा, और एक दिन आपके खिलाफ एक शब्द बोल दे और आपको इतना दुख मिल जाएगा कि वह सब सुख व्यर्थ हो गया। इससे क्या सिद्ध होता है?
इससे यह सिद्ध होता है कि आप सुख लेने को इतने आतुर नहीं दिखाई पड़ते हैं जितना दुख लेने को आतुर दिखाई पड़ते हैं। यानी आपकी उत्सुकता जितनी दुख लेने में है उतनी ही सुख लेने में नहीं है। अगर मुझे किसी ने उन्नीस बार नमस्कार किया और एक बार नमस्कार नहीं किया, तो उन्नीस बार नमस्कार से मैंने जितना सुख नहीं लिया है, एक बार नमस्कार न करने से उतना दुख ले लूंगा। आश्चर्य है! मुझे कहना चाहिए था, कोई बात नहीं है, हिसाब अभी भी बहुत बड़ा है। कम से कम बीस बार न करे तब बराबर होगा। मगर वह नहीं होता है। तब भी बराबर होगा, तब भी दुख लेने का कोई कारण नहीं है, मामला तब तराजू में तुल जाएगा। लेकिन नहीं, जरा सी बात दुख दे जाती है।
हम इतने सेंसिटिव हैं दुख के लिए, उसका कारण क्या है? उसका कारण यही है
कि हम दूसरे से सुख चाहते हैं इतना ज्यादा कि वही चाह, उससे हमें दुख मिलने का द्वार बन जाती है, और तब दूसरे से सुख तो मिलता नहीं--मिल नहीं सकता। फिर दुख मिल सकता है, उसको हम लेते चले जाते हैं। महावीर नहीं कह सकते कि अहिंसा का अर्थ है दूसरे को दुख न देना। दूसरे को कौन दुख दे सकता है, अगर दूसरा लेना न चाहे। और जो लेना चाहता है उसको कोई भी न दे तो वह ले लेगा। यह भी मैं आपसे कह देना चाहता हूं। कोई वह आपके लिए रुका नहीं रहेगा कि आपने नहीं दिया तो दुख कैसे लें। लोग आसमान से दुख ले रहे हैं। जिन्हें दुख लेना है, वे बड़े इंवेंटिव हैं। वे इस-इस ढंग से दुख लेते हैं, इतना आविष्कार करते हैं कि जिसका हिसाब नहीं है। वे आपके उठने से दुख ले लेंगे, आपके बैठने से दुख ले लेंगे, आपके चलने से दुख ले लेंगे, किसी चीज से दुख ले लेंगे। अगर आप बोलेंगे तो दुख ले लेंगे, अगर आप चुप बैठेंगे तो दुख ले लेंगे कि आप चुप क्यों बैठे हैं, इसका क्या मतलब?
एक महिला मुझसे पूछती थी कि मैं क्या करूं, मेरे पति के लिए। अगर बोलती हूं तो कोई विवाद, उपद्रव खड़ा होता है। अगर नहीं बोलती हूं तो वे पूछते हैं, क्या बात है? न बोलने से विवाद खड़ा होता है। अगर न बोलूं तो वे समझते हैं कि नाराज हूं। अगर बोलूं तो नाराजगी थोड़ी देर में आने ही वाली है, वह कुछ न कुछ निकल आएगा। तो मैं क्या करूं? बोलूं कि न बोलूं? अब मैं उसको क्या सलाह दूं?
जितने दुख आपको मिल रहे हैं उसमें से निन्यानबे प्रतिशत आपके आविष्कार हैं। निन्यानबे प्रतिशत! जरा खोजें कि किस-किस तरह आप आविष्कार करते हैं, दुख का। कौन-कौन सी तरकीबें आपने बिठा रखी हैं! असल में बिना दुखी हुए आप रह नहीं सकते। क्योंकि दो ही उपाय हैं, या तो आदमी सुखी हो तो रह सकता है, या दुखी हो तो रह सकता है। अगर दोनों न रह जाएं तो जी नहीं सकता। दुख भी जीने के लिए काफी बहाना है। दुखी लोग देखते हैं आप, कितने रस से जीते हैं? इसको जरा देखना पड़ेगा। दुखी लोग कितने रस से जीते हैं? वह अपने दुख की कथा कितने रस से कहते हैं? दुखी आदमी की कथा सुनें, कैसा रस लेता है। और कथा को कैसा मैग्निफाई करता है, उसको कितना बड़ा करता है। सुई लग जाए तो तलवार से कम नहीं लगती है उसे।
कभी आपने ख्याल किया है कि आप किसी डाक्टर के पास जाएं और वह आपसे कह
दे कि नहीं, आप बिल्कुल बीमार नहीं हैं, तो कैसा दुख होता है! वह डाक्टर ठीक नहीं मालूम पड़ता। किसी और बड़े एक्सपर्ट को खोजना पड़ता है, इससे काम नहीं चलेगा। यह कोई डाक्टर है! आप जैसे बड़े आदमी, और आपको कोई बीमारी ही नहीं

है। या कोई छोटी-मोटी बीमारी बता दे, कि कह दे, गर्म पानी पी लेना और ठीक हो जाओगे। तो भी मन को तृप्ति नहीं मिलती। इसलिए डाक्टरों को, बेचारों को अपनी दवाइयों के नाम लैटिन में रखने पड़ते हैं, चाहे उसका मतलब होता हो अजवाइन का सत। लेकिन लैटिन में जब नाम होता है, तब मरीज अकड़ कर घर लौटता है, प्रिसक्रिप्शन लेकर कि ये कुछ काम हुआ! जीएंगे कैसे, अगर दुख न हो तो जीएंगे कैसे! या तो आनंद हो तो जीने की वजह होती है। आनंद न हो तो दुख तो हो ही!
मार्क ट्वेन ने कहा है, और अनुभवी था आदमी और मन के गहरे में उतरने की क्षमता और दृष्टि थी। उसने कहा है, तुम चाहे मेरी प्रशंसा करो, या चाहे मेरा अपमान करो, लेकिन तटस्थ मत रहना। उससे बहुत पीड़ा होती है। तुम चाहो तो गाली ही दे देना, उससे भी तुम मुझे मानते हो कि मैं कुछ हूं। लेकिन तुम मुझे बिना देखे ही निकल जाओ, तुम न मुझे गाली दो, न तुम मेरा सम्मान करो, तब तुम मुझे ऐसी चोट पहुंचाते हो संघातक कि मैं उसका बदला लेकर रहूंगा। उपेक्षा का बदला लोग जितना लेते हैं उतना दुख का नहीं लेते। आपने भी अपने पर ख्याल करेंगे तो आपको पता चल जाएगा कि आपको सबसे ज्यादा पीड़ा वह आदमी पहुंचाता है जो आपकी उपेक्षा करता है, इनडिफरेंट है। इसलिए अगर महा वीर या जीसस जैसे लोगों को हमने बहुत सताया तो उसका एक कारण उनका इनडिफरेंस था, बहुत गहरा कारण। वे इनडिफरेंट थे। आप उनको पत्थर भी मार गए तो वे ऐसे खड़े रहे कि चलो कोई बात नहीं। तो उससे बहुत दुख होता है, उससे बहुत पीड़ा होती है।
नीत्शे ने; जो कि मनुष्य के इतिहास में बहुत थोड़े से लोग आदमी के भीतर जितनी गहराई में उतरते हैं, वैसा आदमी; नीत्शे ने कहा है कि जीसस, मैं तुमसे कहता हूं कि अगर कोई तुम्हारे गाल पर एक चांटा मारे तो तुम दूसरा गाल उसके सामने मत करना, उससे उसको बहुत चोट लगेगी। जब कोई आदमी तुम्हारे गाल पर एक चांटा मारे, जीसस, तो मैं तुमसे कहता हूं कि तुम दूसरा गाल उसके सामने मत करना। तुम उसे एक करारा चांटा देना। उससे उसे इज्जत मिलेगी। जब तुम दूसरा गाल उसके सामने कर दोगे, वह कीड़ा-मकोड़ा जैसा हो जाएगा। इतना अपमान मत करना। इसे हम न सह सकेंगे। इसीलिए तुम्हें सूली पर लटकाया गया। यह कभी हम सोच नहीं सकते, लेकिन है यह सच। और सच ऐसे स्ट्रेंज होते हैं
कि हम कल्पना भी न कर पाएं, इतने विचित्र होते हैं। अगर कोई आपकी उपेक्षा करे तो वह शत्रु से भी ज्यादा शत्रु मालूम पड़ता है। क्योंकि शत्रु आपकी उपेक्षा नहीं करता। वह आपको काफी मान्यता देता है।
हम दुख के लिए भी उत्सुक हैं--कम से कम दुख तो दो, अगर सुख न दे सको। कुछ
तो दो, दुख भी दोगे तो चलेगा, लेकिन दो। इसलिए हम आतुर हैं चारों तरफ, और संवेदनशील हैं। हम अपनी सारी इंद्रियों को चारों तरफ सजग रखते हैं, एक ही काम के लिए कि कहीं से दुख आ रहा हो तो चूक न जाएं। तो उसे जल्दी से ले लें। कहीं कोई और न ले ले; कहीं चूक न जाएं; कहीं अवसर न खो जाए। यह दुख हमारे रहने की वजह है, जीने की वजह है।
तो महावीर की अहिंसा का यह अर्थ नहीं है कि दूसरे को दुख मत देना, क्योंकि महावीर तो कहते ही यह हैं कि दूसरे को न कोई दुख दे सकता है और न कोई सुख दे सकता है। महावीर की अहिंसा का यह भी अर्थ नहीं है कि दूसरे को मारना मत, मार मत डालना। क्योंकि महावीर भलीभांति जानते हैं कि इस जगत में कौन किसको मार सकता है, मार डाल सकता है। महावीर से ज्यादा बेहतर और कौन जानता होगा यह कि मृत्यु असंभव है। मरता नहीं कुछ। तो महावीर का यह मतलब तो कतई नहीं हो सकता कि मारना मत, मार मत डालना किसी को। क्योंकि महावीर तो भलीभांति जानते हैं। और अगर इतना भी नहीं जानते तो महावीर के महावीर होने का कोई अर्थ नहीं रह जाता।
लेकिन महावीर के पीछे चलने वाले बहुत साधारण... साधारण परिभाषाओं का ढेर इकट्ठा कर दिए हैं। कहते हैं, अहिंसा का अर्थ यह है कि मुंह पर पट्टी बांध लेना। कि अहिंसा का अर्थ यह है कि सम्हल कर चलना कि कोई कीड़ा न मर जाए, कि रात पानी मत पी लेना, कि कहीं कोई हिंसा न हो जाए। यह सब ठीक है। मुंह पर पट्टी बांधना कोई हर्जा नहीं है, पानी छान कर पी लेना बहुत अच्छा है। पैर सम्हाल कर रखना, यह भी बहुत अच्छा है, लेकिन इस भ्रम में नहीं कि आप किसी को

मार सकते थे। इस भ्रम में नहीं। मत देना किसी को दुख, बहुत अच्छा है। लेकिन इस भ्रम में नहीं कि आप किसी को दुख दे सकते थे।
मेरे फर्क को आप समझ लेना। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप जाना और मारना
और काटना; क्योंकि मार तो कोई सकते ही नहीं हैं यह मैं नहीं कह रहा हूं! महावीर की अहिंसा का अर्थ ऐसा नहीं है। महावीर की अहिंसा का अर्थ ठीक वैसा है जैसे बुद्ध के तथाता का। इसे थोड़ा समझ लें। महावीर की अहिंसा का अर्थ वैसा ही है जैसे बुद्ध के तथाता का। तथाता का अर्थ होता है टोटल एक्सेप्टेबिलिटी, जो जैसा है वैसा ही हमें स्वीकार है। हम कुछ हेर-फेर न करेंगे।
अब एक चींटी चल रही है रास्ते पर, हम कौन हैं जो उसके रास्ते में किसी तरह का हेर-फेर करने जाएं? अगर मेरा पैर भी पड़ जाए तो मैं उसके मार्ग पर हेर-फेर करने का कारण और निमित्त तो बन जाता हूं। और मार्ग बहुत हैं। वह चींटी अभी जाती थी। अपने बच्चों के लिए शायद भोजन जुटाने जा रही हो। पता नहीं उसकी अपनी योजनाओं का जगत है। मैं उसके बीच में न जाऊं। ऐसा नहीं है कि न आने से मैं बच पाऊंगा, फिर भी आ सकता हूं। लेकिन महावीर कहते हैं, मैं अपनी तरफ से बीच में न आऊं। जरूरी नहीं है कि मैं ही चींटी पर पैर रखूं, तब वह मरे। चींटी खुद मेरे पैर के नीचे आकर मर सकती है। वह चींटी जाने, वह उसकी योजना जाने। महावीर जानते हैं कि यह जीवन के पथ पर प्रत्येक अपनी योजना में संलग्न है। वह योजना छोटी नहीं है। वह योजना बड़ी है, जन्मों- जन्मों की है। वह कर्मों का बड़ा विस्तार है उसका। उसका अपने कर्मों की, फलों की लंबी यात्रा है। मैं किसी की यात्रा पर किसी भी कारण से बाधा न बनूं। मैं चुपचाप अपनी पगडंडी पर चलता रहूं। मेरे कारण निमित्त के लिए भी किसी के मार्ग पर कोई व्यवधान खड़ा न हो। मैं ऐसा हो जाऊं, जैसे हूं ही नहीं।
अहिंसा का महावीर का अर्थ है कि मैं ऐसा हो जाऊं, जैसे मैं हूं ही नहीं। यह चींटी यहां से ऐसे ही गुजर जाती है जैसे कि मैं इस रास्ते पर चला ही नहीं था, और ये पक्षी इन वृक्षों पर ऐसे ही बैठे रहते हैं जैसे कि मैं इन वृक्षों के नीचे बैठा ही नहीं था। ये लोग, इस गांव के, ऐसे ही जीते रहते जैसे मैं इस गांव से गुजरा ही नहीं था। जैसे मैं नहीं हूं। महावीर का गहनतम जो अहिंसा का अर्थ है, वह है एब्सेंस, जैसे मैं नहीं हूं। मेरी प्रेजेंस कहीं अनुभव न हो, मेरी उपस्थिति कहीं प्रगाढ़ न हो जाए, मेरा होना कहीं किसी के होने में जरा सा भी अड़चन, व्यवधान न बने। मैं ऐसे हो जाऊं जैसे नहीं हूं। मैं जीते जी मर जाऊं... मैं जीते जी मर जाऊं।
हमारी सबकी चेष्टा क्या है? अब इसे थोड़ा समझें तो हमें ख्याल में आ सानी से आ जाएगा, पर बहुत से आयाम से समझना पड़ेगा। हम सबकी चेष्टा क्या है कि हमारी उपस्थिति अनुभव हो, दूसरा जाने कि मैं हूं, मौजूद हूं। हमारे सारे उपाय हैं कि हमारी उपस्थिति प्रतीत हो। इसलिए राजनीति इतनी प्रभावी हो जाती है। क्योंकि राजनीतिक ढंग से आपकी उपस्थिति जितनी प्रतीत हो सकती है और किसी ढंग से नहीं हो सकती है। इसलिए राजनीति पूरे जीवन पर छा जाती है। अगर हम राजनीति का ठीक-ठीक अर्थ करें तो उसका अर्थ है, इस बात की चेष्टा कि मेरी उपस्थिति अनुभव हो। मैं कुछ हूं, मैं ना-कुछ नहीं हूं। लोग जानें, मैं चुभूं, मेरे कांटे जगह-जगह अनुभव हों, लोग ऐसे न गुजर जाएं कि जैसे मैं नहीं था। और महावीर कहते हैं कि मैं ऐसे गुजर जाऊं कि पता चले कि मैं नहीं था, था ही नहीं।
अब अगर हम इसे ठीक से समझें--उपस्थिति अनुभव करवाने की कोशिश का नाम हिंसा है, वायलेंस है। और जब भी हम किसी को कोशिश करवाते हैं अनुभव करवाने की कि मैं हूं, तभी हिंसा होती है। चाहे पति अपनी पत्नी को बतला रहा हो कि समझ ले कि मैं हूं, चाहे पत्नी समझा रही हो कि क्या तुम समझ रहे हो कि कमरे में अखबार पढ़ रहे हो तो तुम अकेले हो! मैं यहां हूं। पत्नी अखबार की दुश्मन हो सकती है क्योंकि अखबार आड़ बन सकता है, उसकी अनुपस्थिति हो जाती है। अखबार को फाड़कर फेंक सकती है। किताबें हटा सकती है। रेडियो बंद कर सकती है। और पति बेचारा इसलिए रेडियो खोले है, अखबार आड़ा किए हुए है कि कृपा करके तुम्हारी उपस्थिति अनुभव न हो। हम सब इस चेष्टा में लगे हैं कि मेरी

उपस्थिति दूसरे को अनुभव हो और दूसरे की उपस्थिति मुझे अनुभव न हो। यही हिंसा है। और यह एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जब मैं चाहूंगा कि मेरी उपस्थिति आपको पता चले, तो मैं यह भी चाहूंगा कि आपकी उपस्थिति मुझे पता न चले क्योंकि दोनों एक साथ नहीं हो सकते। मेरी उपस्थिति आपको पता चले, वह तभी पता चल सकती है जब आपकी उपस्थिति को मैं ऐसे मिटा दूं, जैसे है ही नहीं। हम सबकी कोशिश यह है कि दूसरे की उपस्थिति मिट जाए और हमारी उपस्थिति सघन, कंडेंस्ड हो जाए। यही हिंसा है।
अहिंसा इसके विपरीत है। दूसरा उपस्थित हो और इतनी तरह उपस्थित हो कि मेरी उपस्थिति से उसकी उपस्थिति में कोई बाधा न पड़े। मैं ऐसे गुजर जाऊं भीड़ से कि किसी को पता भी न चले कि मैं था। अहिंसा का गहन अर्थ यही है-- अनुपस्थित व्यक्तित्व। इसे हम ऐसा कह सकते हैं और महावीर ने ऐसा कहा है-- अहंकार हिंसा है और निरहंकारिता अहिंसा है। मतलब वही है--वह दूसरे को अपनी उपस्थिति प्रतीत करवाने की जो चेष्टा है। कितनी कोशिश में हम लगे हैं, शायद सारी कोशिश यही है--ढंग कोई भी हों। चाहे हम हीरे का हार पहनकर खड़े हो गए हों और चाहे हमने लाखों के वस्त्र डाल रखे हों और चाहे हम नग्न खड़े हो गए हों--कोशिश यही है, क्या, कि दूसरा अनुभव करे कि मैं हूं। मैं चैन से न बैठने दूंगा। तुम्हें मानना ही पड़ेगा कि मैं हूं।
छोटे-छोटे बच्चे भी इस हिंसा में निष्णात होना शुरू हो जाते हैं। कभी आपने ख्याल किया होगा कि छोटे-छोटे बच्चे भी अगर घर में मेहमान हों तो ज्यादा गड़बड़ शुरू कर देते हैं। घर में कोई न हो तो अपने बैठे रहते हैं, क्यों? आपको हैरानी होती है कि बच्चा ऐसे तो शांत बैठा था, घर में कोई आ गया तो वह पच्चीस सवाल उठाता है, बार-बार उठ कर आता है, कोई चीज गिराता है। वह कर क्या रहा है? वह सिर्फ अटेंशन प्रवोक कर रहा है। वह कह रहा है, हम भी हैं यहां। मैं भी हूं। और आप उससे कह रहे हैं, शांत बैठो। आप यह कोशिश कर रहे हैं कि तुम नहीं हो। वह बूढ़ा भी वही कर रहा है, बच्चा भी वही कर रहा है। आप कहते हैं, शांत बैठो। वह बच्चा भी हैरान होता है कि जब घर में कोई नहीं होता है तो बाप नहीं कहता कि शांत बैठो। अभी कुछ नहीं कहता, कितने चिल्लाओ, घूमो-फिरो, चुप बैठा रहता है। घर में कोई मेहमान आते हैं तभी यह कहता है, शांत बैठो। क्या बात क्या है? घर में जब मेहमान आते हैं तभी तो वक्त है शांत न बैठने का।
दोनों के बीच जो संघर्ष है वह इस बात का है कि बच्चा असर्ट करना चाहता है। वह भी घोषणा करना चाहता है कि मैं भी यहां हूं। महाशय, यहां मैं भी हूं। इसलिए कभी-कभी बच्चा मेहमानों के सामने ऐसी जिद पकड़ जाता है कि मां- बाप हैरान होते हैं कि ऐसी जिद उसने कभी नहीं पकड़ी थी। उनके सामने वह दिखाना चाहता है कि इस घर में मालिक कौन है, किसकी चलती है, आखिर में कौन निर्णायक है। छोटे-छोटे बच्चे भी पालिटिक्स भलीभांति सीखने लगते हैं। उसका कारण है कि हमारा पूरा का पूरा आयोजन, हमारा पूरा समाज, हमारी पूरी संस्कृति अहंकार की संस्कृति है, अधर्म की। सारी दुनिया में वही है। आदमी अब तक धर्म की संस्कृति विकसित ही नहीं कर पाया। अब तक हम यह कोशिश ही जाहिर न कर पाए और हम सुनते नहीं महावीर वगैरह की, जो कि इस तरह की संस्कृति के स्रोत बन सकते थे। वे कहते हैं कि नहीं, उपस्थिति तुम्हारी जितनी पता न चले, उतना ही मंगल है। तुम्हारे लिए भी, दूसरे के लिए भी। तुम ऐसे हो जाओ जैसे हो ही नहीं।
महावीर घर छोड़ कर जाना चाहते थे तो मां ने कहा--"मत जाओ, मुझे दुख होगा।" महावीर नहीं गए, क्योंकि इतनी भी जाने की जिद से होने का पता चलता है। आग्रह था कि नहीं, जाऊंगा। अगर महावीर की जगह कोई भी होता तो उसका त्याग और जोश मारता--क्या कहते हैं गुजराती में आप, जुस्सा। उसका जोश और बढ़ता। वह कहता, कौन मां, कौन पिता? सब संबंध बेकार हैं। यह सब संसार है। जितना समझाते, उतना वे शिखर पर चढ़ते। अधिक संन्यासी, अधिक त्यागी आपके समझाने की वजह से हो गए हैं। भूल से मत समझाना। कोई कहे "जाते हैं", कहना, "नमस्कार।" तो वह आदमी जाने के पहले पच्चीस दफे सोचेगा कि जाना कि नहीं जाना। आप घेरा बांधकर खड़े हो गए, आपने अटेंशन देनी शुरू कर दिया। आपने कहा कि उनको जाना महत्वपूर्ण हो गया। जरूरी हो गया। अब यह व्यक्तित्व की लड़ाई

हो गई। अब सिद्ध करना पड़ेगा। इतने त्यागी न हों दुनिया में अगर आस-पास के लोग इतना आग्रह न करें--तो त्यागी एकदम कम हो जाएंगे। इसमें नब्बे प्रतिशत तो बिल्कुल ही न हों और तब दुनिया का हित हो। क्योंकि जो दस प्रतिशत बचे उनके त्याग की एक गरिमा हो। उनका एक अर्थ हो। लेकिन आप रोकते हैं, वही कारण बन जाता है।
महावीर रुक गए, मां भी थोड़ी चकित हुई होगी, ऐसा कैसा त्याग! फिर महावीर
ने दुबारा न कहा कि एक दफा और निवेदन करता हूं कि जाने दो। बात ही छोड़ दी। मां के मरने तक फिर बोले ही नहीं। कहा ही नहीं कुछ। मां ने भी सोचा होगा, जरूर सोचा होगा कि यह कैसा त्याग! क्योंकि त्यागी तो एकदम जिद बांध कर खड़ा हो जाता है। मां मर गई। घर लौटते वक्त अपने बड़े भाई को महावीर ने कहाः कब्रिस्तान से लौटते वक्त, मरघट से, कि अब मैं जा सकता हूं? क्योंकि वह मां कहती थी, उसे दुख होगा। तो बात समाप्त हो गई, अब वह है ही नहीं।
भाई ने कहाः तू आदमी कैसा है! इधर इतना बड़ा दुख का पहाड़ टूट पड़ा हमारे ऊपर, कि मां मर गई, और तू अभी छोड़ कर जाने की बात करता है! भूल कर ऐसी बात मत करना।
महावीर चुप हो गए। फिर दो वर्ष तक भाई भी हैरान हुआ कि यह त्याग कैसा! क्योंकि वे तो अब चुप ही हो गए। उन्होंने फिर दोबारा बात न कही। इतनी उपस्थिति को हटा लेने का नाम अहिंसा है।
दो वर्ष में घर के लोगों को खुद चिंता होने लगी कि कहीं हम ज्यादती तो नहीं कर रहे हैं। भाई को पीड़ा होने लगी, क्योंकि देखा कि महावीर घर में हैं तो, लेकिन करीब-करीब ऐसे जैसे न हों--एक घोस्ट एक्झिस्टेंस रह गया, शैडो एक्झिस्टेंस। कमरे से ऐसे गुजरते हैं कि पैर की आवाज न हो। घर में किसी को कुछ कहते नहीं कि किसी को पता चले कि मैं भी हूं। कोई सलाह नहीं देते, कोई उपदेश नहीं देते। बैठे देखते रहते हैं, जो हो रहा है--हो रहा है! उसमें वे उसके साक्षी हो गए हैं। कई-कई दिनों तक घर के लोगों को ख्याल ही न आता कि महावीर कहां हैं। बड़ा महल था। फिर खोज-बीन करते कि महावीर कहां हैं तो पता चलता। खोज-बीन करने से पता चलता।
तो भाई ने और सबने बैठ कर सोचा कि हम कहीं ज्यादती तो नहीं कर रहे हैं, कहीं हम भूल तो नहीं कर रहे हैं। हम सोचते हैं कि हम रोकते हैं इसलिए रुक जाता है। लेकिन हमें ऐसा लगता है कि इसलिए रुक जाता है कि नाहक, इतनी भी उपस्थिति हमें क्यों अनुभव हो, हमें इतनी भी पीड़ा क्यों हो कि हमारी बात तोड़कर गया है। लेकिन लगता हमें ऐसा है कि वह जा चुका है, अब वह घर में है नहीं। उन सबने मिलकर कहा--यह पृथ्वी पर घटी हुई अकेली घटना है--उन सबने, घर के लोगों ने मिल कर कहा कि आप तो जा ही चुके हैं, एक अर्थ में। अब ऐसा लगता है कि पार्थिव देह पड़ी रह गई है, आप इस घर में नहीं हैं। तो हम आपके मार्ग से हट जाते हैं क्योंकि हम अकारण आपको रोकने का कारण न बनें। महावीर उठे और चल पड़े।
यह अहिंसा है। अहिंसा का अर्थ है, गहनतम अनुपस्थिति। इसलिए मैंने कहा
कि बुद्ध का जो तथाता का भाव है, वही महावीर की अहिंसा का भाव है। तथाता का अर्थ है--जैसा है, स्वीकार है। अहिंसा का भी यही अर्थ है कि हम परिवर्तन के लिए जरा भी चेष्टा न करेंगे। जो हो रहा है ठीक है, जो हो जाए ठीक है। जीवन रहे तो ठीक है, मृत्यु आ जाए तो ठीक है। हमारी हिंसा किस बात से पैदा होती है? जो हो रहा है वह नहीं, जो हम चाहते हैं वह हो। तो हिंसा पैदा होती है। हिंसा है क्या? इसलिए युग में जितना ज्यादा परिवर्तन की आकांक्षा भरती है, युग उतने ही हिंसक होते चले जाते हैं। आदमी जितना चाहता है, ऐसा हो, उतनी हिंसा बढ़ जाएगी।
महावीर की अहिंसा का अर्थ अगर हम गहरे में खोलें, गहरे में उघाड़ें, उसकी डेप्थ में, तो उसका यह अर्थ है कि जो है उसके लिए हम राजी हैं। हिंसा का कोई सवाल नहीं है, कोई बदलाहट नहीं है, कोई बदलाहट नहीं करनी है। आपने चांटा मार दिया, ठीक है। हम राजी हैं, हमें अब और कुछ भी नहीं करना है, बात समाप्त हो गई। हमारा कोई प्रत्युत्तर नहीं। इतना भी नहीं जितना जीसस का है। जीसस कहते हैं, दूसरा गाल सामने कर दो। महावीर इतना भी नहीं कहते कि जो चांटा मारे, तुम दूसरा गाल उसके सामने करना, क्योंकि यह भी एक उत्तर है। एक

"सार्ट ऑफ आंसर" है। है तो उत्तर--चांटा मारना भी एक उत्तर है, दूसरा गाल कर देना भी एक उत्तर है। लेकिन तुम राजी न रहे, बात जितनी थी उतने से तुमने कुछ न कुछ किया।
महावीर कहते हैं--करना ही हिंसा है, कर्म ही हिंसा है। अकर्म अहिंसा है। चांटा मार दिया है, ठीक है जैसे एक वृक्ष से सूखा पत्ता गिर गया है। ठीक है, आप अपनी राह चले गए। एक आदमी ने चांटा मार दिया, आप अपनी राह चले गए। एक आदमी ने गाली दी, आपने सुनी और आगे बढ़ गए। क्षमा भी करने का सवाल नहीं है क्योंकि वह भी कृत्य है। कुछ करने का सवाल नहीं है। पानी में उठी लहर और अपने आप बिखर जाती है। ऐसा ही चारों तरफ लहरें उठती रहेंगी कर्म की, बिखरती रहेंगी। तुम कुछ मत करना। तुम चुपचाप गुजरते जाना। पानी में लहर उठती है, मिटानी तो नहीं पड़ती, अपने से आप मिट जाती है।
इस जगत में जो तुम्हारे चारों तरफ हो रहा है, उसे होते रहने देना है,
वह अपने से उठेगा और गिर जाएगा। उसके उठने के
नियम हैं, उसके गिरने के नियम हैं, तुम व्यर्थ बीच में मत आना। तुम चुपचाप दूर ही रह जाना। तुम तटस्थ ही रह जाना। तुम ऐसा ही जानना कि तुम नहीं थे। जब कोई चांटा मारे तब तुम ऐसे हो जाना कि तुम नहीं हो, तो उत्तर कौन देगा। गाल भी कौन करेगा, गाली कौन देगा, क्षमा कौन करेगा? तुम ऐसा जानना कि तुम नहीं हो। तुम्हारी एब्सेंस में, तुम्हारी अनुपस्थिति में जो भी कर्म की धारा उठेगी वह अपने से पानी में उसकी लहर की तरह खो जाएगी। तुम उसे छूने भी मत जाना। हिंसा का अर्थ है, मैं चाहता हूं, जगत ऐसा हो।
उमर खय्याम ने कहा है-मेरा वश चले और प्रभु तू मुझे शक्ति दे तो तेरी सारी दुनिया को तोड़ कर दूसरी बना दूं। अगर आपका भी वश चले तो दुनिया को आप ऐसी ही रहने देंगे जैसी है? दुनिया! दुनिया तो बहुत बड़ी चीज है, कुछ भी आप ऐसा न रहने देंगे, छोटा-मोटा भी जैसा है। उमर खय्याम के इस वक्तव्य में सारे मनुष्यों की कामना तो प्रकट हुई ही है, और हिंसा भी। अगर महावीर से कहा जाए, अगर आपको पूरी शक्ति दे दी जाए कि यह दुनिया कैसी हो, तो महावीर कहेंगे, जैसी है, वैसी हो--एज इट इ.ज। मैं कुछ भी न करूंगा।
लाओत्सु ने कहा है--श्रेष्ठतम सम्राट वह है जिसका प्रजा को पता ही नहीं चलता। श्रेष्ठतम सम्राट वह है जिसका प्रजा को पता ही नहीं चलता, वह है भी या नहीं। महावीर की अहिंसा का अर्थ है कि ऐसे हो जाओ कि तुम्हारा पता ही न चले और हमारी सारी चेष्टा ऐसी है कि हम इस भांति कैसे हो जाएं कि कोई न बचे जिसे हमारा पता न हो। कोई न बचे, जिसे हमारा पता न हो। सारी अटेंशन हम पर फोकस हो जाए। सारी दुनिया हमें देखे, हम हों आंखों के बीच में, सब आंखें हम पर मुड़ जाएं। यही हिंसा है। और यही हिंसा है कि हम पूरे वक्त चाहते रहें कि ऐसा हो, ऐसा न हो। हम पूरे वक्त चाह रहे हैं। क्यों चाह रहे हैं? चाहने का कारण है। वह जो धर्म की व्याख्या में मैंने आपसे कहा--दौड़ रहे हैं, वह मकान मिले, वह धन मिले, वह पद मिले, तो हिंसा से गुजरना पड़ेगा। वासना हिंसा के बिना नहीं हो सकती। किसी वासना की दौड़ हिंसा के बिना नहीं हो सकती। हम ऐसा समझ सकते हैं कि वासना के लिए जिस ऊर्जा की जरूरत पड़ती है वह हिंसा का रूप ले लेती है। इसलिए जितना वासनाग्रस्त आदमी है उतना वायलेंट, उतना हिंसक होगा। जितना वासनामुक्त आदमी उतना अहिंसक होगा।
इसलिए जो लोग समझते हैं कि महावीर कहते हैं कि अहिंसा इसलिए है कि तुम मोक्ष पा लोगे, वे गलत समझते हैं। क्योंकि अगर मोक्ष पाने की वासना है तो आपकी अहिंसा भी हिंसक हो जाएगी। और बहुत से लोगों की अहिंसा हिंसक है। अहिंसा भी हिंसक हो सकती है। आप इतने जोर से अहिंसा के पीछे पड़ सकते हैं कि आपका पड़ना बिल्कुल हिंसक हो जाए। लेकिन जो मोक्ष की वासना से अहिंसा के पीछे जाएगा उसकी अहिंसा हिंसक हो जाएगी। इसलिए तथाकथित अहिंसक साधकों को अहिंसक नहीं कहा जा सकता। वे इतने जोर से लगे हैं उसके पीछे, पाकर ही रहेंगे। सब दांव पर लगा देंगे, लेकिन पाकर रहेंगे। वह जो पाकर रहने का भाव है उसमें बहुत गहरी हिंसा है।
महावीर कहते हैं, पाने को कुछ भी नहीं है जो पाने योग्य है वह पाया ही हुआ है। बदलने को कुछ भी नहीं है क्योंकि यह जगत अपने ही नियम से बदलता रहता है। क्रांति करने का कोई कारण नहीं, क्रांति होती ही रहती है। कोई

क्रांति-व्रांति करता नहीं, क्रांति होती रहती है। लेकिन क्रांतिकारी को ऐसा लगता है, वह क्रांति कर रहा है। उसका लगना वैसा ही है जैसे सागर में एक बड़ी लहर उठे और एक बहता हुआ तिनका लहर के मौके पर पड़ जाए और ऊपर चढ़ जाए और ऊपर चढ़ कर वह कहे कि लहर मैंने ही उठाई है। बस, वैसा ही है।
सुना है मैंने कि जगन्नाथ का रथ निकलता था तो एक बार एक कुत्ता रथ के आगे हो लिया। बड़े फूल बरसते थे, बड़ी नमस्कार होती थी। लोग लोट-लोट कर जमीन पर प्रणाम करते थे। और कुत्ते की अकड़ बढ़ती चली गई। उसने कहा, आश्चर्य! न केवल लोग नमस्कार कर रहे हैं, मेरे पीछे स्वर्ण-रथ भी चलाया जा रहा है। मैं ऐसा हूं ही, इसमें कोई कारण भी नहीं है। हम सबका चित्त भी ऐसा ही है।
रूस में चीजैवस्की को स्टैलिन ने कारागृह में डलवा दिया और मरवा डाला। क्योंकि उसने यह कहा कि क्रांतियां आदमियों के किए नहीं होतीं, सूरज के प्रभाव से होती हैं। और उसके कहने का का रण ज्योतिष का वैज्ञानिक अध्ययन था। उसने हजारों साल की क्रांतियों के सारे ब्यौरे की जांच-पड़ताल की और सूरज के ऊपर होने वाले परिवर्तनों की जांच-पड़ताल की। उसने कहाः हर साढ़े ग्यारह वर्ष में सूरज पर इतना बड़ा परिवर्तन होता है वैद्युतिक कि उसके परिणाम पर पृथ्वी पर रूपांतर होते हैं। और हर नब्बे वर्ष में सूरज पर इतना बड़ा परिवर्तन होता है कि उसके परिणाम में पृथ्वी पर क्रांतियां घटित होती हैं। उसने सारी क्रांतियां, सारे उपद्रव, सारे युद्ध सूरज पर होने वाले कास्मिक परिणामों से सिद्ध किए।
और सारी दुनिया के वैज्ञानिक मानते हैं कि चीजैवस्की ठीक कह रहा था। लेकिन स्टैलिन कैसे माने। अगर चीजैवस्की ठीक कह रहा था तो उन्नीस सौ सत्रह की क्रांति सूरज पर हुई किरणों के फर्क से हुई है, तो फिर लेनिन और स्टैलिन और ट्राटस्की इनका क्या होगा? चीजैवस्की को मरवा डालने जैसी बात थी। लेकिन स्टैलिन के मरने के बाद चीजैवस्की का फिर रूस में काम शुरू हो गया। और रूस के ज्योतिष-विज्ञानी कह रहे हैं कि वह ठीक कहता है। पृथ्वी पर जो भी रूपांतरण होते हैं, उनके कारण कास्मिक हैं, उनके का रण जागतिक हैं। सारे जगत में जो रूपांतरण होते हैं, उनके कारण जागतिक हैं। आप जान कर हैरान होंगे कि एक बहुत बड़ी प्रयोगशाला प्राग में, चेक गवर्नमेंट ने बनाई है, जो एस्ट्रानामिकल बर्थ-कंट्रोल पर काम कर रही है। और उनके परिणाम अट्ठानबे प्रतिशत सही आए। और जो आदमी मेहनत कर रहा है वहां, उस आदमी का दावा है कि आने वाले पंद्रह वर्षों में किसी तरह की गोली, किसी तरह के और कृत्रिम साधन की बर्थ-कंट्रोल के लिए जरूरत नहीं रहेगी, गर्भ-निरोधक के लिए। स्त्री जिस दिन पैदा हुई है और जिस दिन उसका स्वयं का गर्भाधारण हुआ था, इसकी तारीखें, और सूर्य पर और चांद तारों पर होने वाले परिवर्तनों के हिसाब से वह तय कर लेता है कि यह स्त्री किन-किन दिनों में गर्भधारण कर सकती है। वे दिन छोड़ दिए जाएं संभोग के लिए तो पूरे जीवनकाल में कभी गर्भधारण नहीं होगा। अट्ठानबे प्रतिशत दस हजार स्त्रियों पर किए गए प्रयोग में सफल हुआ है। वह यह भी कहता है कि स्त्री अगर चाहे कि बच्चा लड़का पैदा हो या लड़की तो उसकी भी तारीखें तय की जा सकती हैं। क्योंकि वह भी कास्मिक प्रभावों से होता है, वह भी आपसे नहीं हो रहा है। ज्योतिष के बड़े जोर से वापस लौट आने की संभावना है।
महावीर कहते हैं--घटनाएं घट रहीं हैं, तुम नाहक उनको घटाने वाले मत बनो। तुम यह मत सोचो कि मैं यह करके रहूंगा। तुम इतना ही करो तो काफी है कि तुम न करने वाले हो जाओ।
अहिंसा का अर्थ है--अकर्म। अहिंसा का अर्थ है--मैं कुछ न बदलूंगा, मैं कुछ न चाहूंगा। मैं अनुपस्थित हो जाऊंगा। अहिंसा पर थोड़ी और बात करनी पड़े, कल बात करेंगे!

आज इतना ही।
पर कोई जाए न, थोड़ा इस आनंद... !

महावीर-वाणी, भाग 1
पांचवां प्रवचन

अहिंसाः जीवेषणा की मृत्यु (धम्म-सूत्रः 1 (अहिंसा))

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मे सया मणो।।

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

धर्म मंगल है। कौन सा धर्म? अहिंसा, संयम और तप। अहिंसा धर्म की आत्मा है। कल अहिंसा पर थोड़ी बातें मैंने आपसे कहीं, थोड़े और आयामों से अहिंसा को समझ लेना जरूरी है।
हिंसा पैदा ही क्यों होती है? हिंसा जन्म के साथ ही क्यों जुड़ी है? हिंसा जीवन की पर्त-पर्त पर क्यों फैली है? जिसे हम जीवन कहते हैं, वह हिंसा का ही तो विस्तार है। ऐसा क्यों है?
पहली बात, और अत्यधिक आधारभूत--वह है जीवेषणा। जीने की जो आकांक्षा है, उससे ही हिंसा जन्मती है। और जीने को हम सब आतुर हैं। अकारण भी जीने को आतुर हैं। जीवन से कुछ फलित भी न होता हो, तो भी जीना चाहते हैं। जीवन से कुछ न भी मिलता हो, तो भी जीवन को खींचना चाहते हैं। सिर्फ राख ही हाथ लगे जीवन में तो भी हम जीवन को दोहराना चाहते हैं।
विन्सेंट वॉनगाग के जीवन पर एक बहुत अदभुत किताब लिखी गई है। और किताब का नाम है--लस्ट फॉर लाइफ, जीवेषणा। अगर महावीर के जीवन पर कोई किताब लिखनी हो तो लिखना पड़ेगा, नो लस्ट फॉर लाइफ। जीवेषणा नहीं। जीने का एक पागल, अत्यंत विक्षिप्त भाव है हमारे मन में। मरने के आखिरी क्षण तक भी हम जीना ही चाहते हैं। और यह जो जीने की कोशिश है, यह जितनी विक्षिप्त होती है उतना ही हम दूसरे के जीवन के मूल्य पर भी जीना चाहते हैं। अगर ऐसा विकल्प आ जाए कि सारे जगत को मिटा कर भी, मुझे बचने की सुविधा हो तो मैं राजी हो जाऊंगा। सबको विनाश कर दूं, फिर भी मैं बच सकता होऊं तो मैं सबके विनाश के लिए तैयार हो जाऊंगा। जीवेषणा की इस विक्षिप्तता से ही हिंसा के सब रूप जन्मते हैं। मरने की आखिरी घड़ी तक भी आदमी जीवन को जोर से पकड़े रहना चाहता है। बिना यह पूछे हुए कि किसलिए? जीकर भी क्या होगा? जीकर भी क्या मिलेगा? मुल्ला नसरुद्दीन को फांसी की सजा हो गई थी। जब उसे फांसी के तख्ते के पास ले जाया गया तो उसने तख्ते पर चढ़ने से इनकार कर दिया। सिपाही बहुत चकित हुए। उन्होंने कहा कि क्या बात है?
उसने कहा कि सीढ़ियां बहुत कमजोर मालूम पड़ती हैं। अगर गिर जाऊं तो तुम्हारे हाथ-पैर टूटेंगे कि मेरे! फांसी के तख्ते पर चढ़ना है। सीढ़ियां कमजोर हैं, मैं इन सीढ़ियों पर नहीं चढ़ सकता। नई सीढ़ियां लाओ।
उन सिपाहियों ने कहाः पागल हो गए हो! मरने वाले आदमी को क्या प्रयोजन है?
नसरुद्दीन ने कहाः अगले क्षण का क्या भरोसा! शायद बच जाऊं, तो लंगड़ा होकर मैं नहीं बचना चाहता हूं। और एक बात पक्की है कि जब तक मैं मर ही नहीं गया हूं, तब तक मैं जीने की कोशिश करूंगा। सीढ़ियां नई चाहिए।
नई सीढ़ियां लगाई गईं, तब वह चढ़ा। फिर भी बहुत सम्हल कर चढ़ा। जब उसके गले में फंदा लगा ही दिया गया, और मजिस्ट्रेट ने कहाः नसरुद्दीन, तुझे कोई आखिरी बात तो नहीं कहनी है?
नसरुद्दीन ने कहाः यस, आई हेव टु से समथिंग। दिस इ.ज गोइंग टु बी ए लेसन टु मी। यह जो फांसी लगाई जा रही है, यह मेरे लिए एक शिक्षा सिद्ध होगी।"
मजिस्ट्रेट समझा नहीं। उसने कहा कि अब शिक्षा से भी क्या फायदा होगा?

नसरुद्दीन ने कहा कि अगर दोबारा जीवन मिला तो जिस वजह से फांसी लग रही है, वह काम मैं जरा संभलकर करूंगा। दिस इ.ज गोइंग टु बी ए लेसन टु मी। गले में फंदा लगा हो तो भी आदमी दूसरे जीवन के बाबत सोच रहा होता है। दूसरा जीवन मिले तो इस बार जिस भूल चूक से पकड़े गए हैं और फांसी लग रही है वह भूल-चूक नहीं करनी है--ऐसा नहीं--सम्हल कर करनी है। तो दिस इ.ज गोइंग टु बी ए लेसन टु मी।
ऐसा ही हमारा मन है। किसी भी कीमत पर जीना है। महावीर यही पूछते हैं
कि जीना क्यों है? बड़ा गहन सवाल उठाते हैं। शायद जिन्होंने पूछा है, जगत क्यों है? जिन्होंने पूछा है, सृष्टि किसने रची है? जिन्होंने पूछा है, मोक्ष कहां है? ये सवाल इतने गहरे नहीं हैं। ये सवाल बहुत ऊपरी हैं। महावीर पूछते हैं, जीना ही क्यों हैं? व्हाय दिस लस्ट फार लाइफ? और इसी प्रश्न से महावीर का सारा चिंतन और सारी साधना निकलती है।
तो महावीर कहते हैं, यह जीने की बात ही पागलपन है। यह जीने की आकांक्षा ही पागलपन है। और इस जीने की आकांक्षा से जीवन बचता हो, ऐसा नहीं है; केवल दूसरों के जीवन को नष्ट करने की दौड़ पैदा होती है। बच जाता तो भी ठीक था। बचता भी नहीं है। कितना ही चाहो कि जीऊं, मौत खड़ी है और आ जाती है। कितने लोग इस जमीन पर हमसे पहले जीने की कोशिश कर चुके हैं। आखिर अंततः मौत ही हाथ लगती है। तो महावीर कहते हैं, जीवन का इतना पागलपन कि हम दूसरे को विनष्ट करने को तैयार हैं और अंत में मौत ही हाथ लगती है। महावीर कहते हैं--ऐसे जीवन के पागलपन को मैं छोड़ता हूं जिससे दूसरों के जीवन को नष्ट करने के लिए मैं तैयार होता और अपने को बचा भी नहीं पाता। जो व्यक्ति जीवेषणा छोड़ देता है वही अहिंसक हो सकता है। क्योंकि जब मुझे कोई आग्रह ही नहीं है कि जीऊं ही, तब मैं किसी का विनाश करने के लिए तैयार नहीं हो सकता। इसलिए महावीर की अहिंसा के प्राण में प्रवेश करना हो, तो वह प्राण है-- जीवेषणा का त्याग। इसका यह अर्थ नहीं है कि महावीर मरने की आकांक्षा रखते हैं। यह भ्रांति हो सकती है।
फ्रायड ने इस सदी में मनुष्य के भीतर दो आकांक्षाओं को पकड़ा है। एक तो जीवेषणा और एक मृत्यु-एषणा। एक को वह कहता है, इरोज, जीवन की इच्छा। और एक को कहता है, थानाटोस, मृत्यु की इच्छा। वह कहता है कि जब जीवन की इच्छा रुग्ण हो जाती है तो मृत्यु की इच्छा में बदल जाती है। यह बात ठीक है। लोग आत्महत्याएं भी तो करते हैं। तो क्या महावीर राजी होंगे? आत्महत्या करने वाले को कहेंगे कि ठीक है तू! अगर जीवेषणा गलत है तो फिर मृत्यु की आकांक्षा और मृत्यु को लाने की कोशिश ठीक होनी चाहिए? फ्रायड कहता है--जिन लोगों की जीवेषणा रुग्ण हो जाती है वे फिर मृत्यु-एषणा से भर जाते हैं। फिर वे अपने को मारने में लग जाते हैं। आदमी आत्महत्या करता हुआ दिखाई तो पड़ता है। लेकिन फ्रायड को उतनी गहरी समझ नहीं है जितनी महावीर को है। महावीर कहते हैं--आत्महत्या करने वाला भी जीवेषणा से ही पीड़ित है।
इसे थोड़ा समझना पड़ेगा।
कभी आपने किसी आदमी को इस भांति आत्महत्या करते देखा है, जिसकी जीवेषणा नष्ट हो गई हो? नहीं। मैं चाहता हूं एक स्त्री मुझे मिले और नहीं मिलती तो मैं आत्महत्या के लिए तैयार हो जाता हूं। अगर वह मुझे मिल जाए तो मैं आत्महत्या के लिए तैयार नहीं हूं। मैं चाहता हूं कि एक बहुत बड़ी प्रतिष्ठा और यश और इज्जत के साथ जीऊं। मेरी इज्जत खो जाती है, मेरी प्रतिष्ठा गिर जाती है--मैं आत्महत्या करने को तत्पर हो जाता हूं। मुझे वह प्रतिष्ठा वापस लौटती हो, मुझे वह इज्जत फिर वापस मिलती हो तो मैं आखिरी किनारे से मौत के वापस लौट आ सकता हूं। धन खो जाता है किसी का, पद खो जाता है किसी का तो वह मरने को तैयार है। इसका अर्थ क्या है?
महावीर कहते हैं--यह मृत्यु-एषणा नहीं है। यह केवल जीवन का इतना प्रबल आग्रह है कि मैं कहता हूं--मैं इस ढंग से ही जीऊंगा। अगर यह ढंग मुझे नहीं मिलता तो मर जाऊंगा। इसे थोड़ा ठीक से समझें। मैं कहता हूं, मैं इस स्त्री के साथ ही जीऊंगा। यह जीने की आकांक्षा इतनी आग्रहपूर्ण है कि इस स्त्री के बिना मैं नही जीऊंगा। मैं इस धन, मैं इस भवन, मैं इस पद के साथ ही जीऊंगा। अगर यह पद और धन नहीं है तो मैं नहीं जीऊंगा। यह जीने की आकांक्षा

ने एक विशिष्ट आग्रह पकड़ लिया है। वह आग्रह इतना गहरा है कि वह अपने से विपरीत भी जा सकता है। वह आग्रह इतना गहरा है कि अपने से विपरीत भी जा सकता है। वह मरने तक को तैयार हो सकता है, लेकिन गहरे में जीवन की ही आकांक्षा है।
इसलिए महावीर इस जगत में अकेले चिंतक हैं, जिन्होंने कहा कि मैं तुम्हें मरने की आज्ञा भी दूंगा, अगर तुममें जीवेषणा बिल्कुल न हो। सिर्फ अकेले विचारक हैं सारी पृथ्वी पर और सिर्फ अकेले धार्मिक चिंतक हैं जिन्होंने कहा कि मैं तुम्हें मरने की भी आज्ञा दूंगा, अगर तुममें जीवन की आकांक्षा बिल्कुल न हो। लेकिन जिसमें जीवन की आकांक्षा नहीं है वह मरना क्यों चाहेगा। मरने की चाह के पीछे जीवन की आकांक्षा ही होती है। उलटे लक्षणों से बीमारियां नहीं बदल जाती हैं, जरूरी नहीं है।
आज से सौ साल पहले चिकित्सा शास्त्रों में एलोपैथी की एक बीमारी का नाम था, वह सौ साल में खो गया है। उसका नाम था ड्राप्सी। अब उस बीमारी का नाम मेडिकल किताबों में नहीं है। हालांकि उस बीमारी के मरीज अब भी अस्पतालों में हैं, वे नहीं खो गए। मरीज तो हैं, लेकिन वह बीमारी खो गई है। वह बीमारी इसलिए खो गई कि पाया गया कि वह बीमारी एक नहीं है, वह सिर्फ सिम्प्टोमैटिक है। ड्राप्सी उस बीमारी को कहते थे जिसमें मनुष्य के शरीर का तरल हिस्सा किसी एक अंग में इकट्ठा हो जाता है। जैसे पैरों में सारी तरलता इकट्ठी हो गई या पेट में सारा तरल द्रव्य इकट्ठा हो गया। सब पानी भर गया है, सब तरलता पेट में इकट्ठी हो गई है। सारा शरीर सूखने लगा और पेट बढ़ने लगा और सारी तरलता पेट में आ गई। उसको ड्राप्सी कहते थे। अगर अस्पताल में जाएं और एक आदमी के दोनों पैरों में तरल द्रव्य इकट्ठा हो गया, और एक आदमी के एब्डामन में सारा तरल द्रव्य इकट्ठा हो गया, तो लक्षण एक है। सौ साल तक यही समझा जाता था, बीमारी एक है। लेकिन पीछे पता चला कि यह तरल द्रव्य इकट्ठे होने के अनेक कारण हैं। बीमारियां अलग-अलग हैं। यह हृदय की खराबी से भी इकट्ठा हो सकता है। यह किडनी की खराबी से भी इकट्ठा हो सकता है। और जब किडनी की खराबी से इकट्ठा होता है तो बीमारी दूसरी है और जब हृदय की खराबी से इकट्ठा होता है तो बीमारी दूसरी है। इसलिए वह ड्राप्सी की बीमारी जो थी, नाम, वह समाप्त हो गया। अब पच्चीस बीमारियां हैं, उनके अलग-अलग नाम हैं। यह भी हो सकता है, लक्षण बिल्कुल एक से हों और बीमारी एक हो। और यह भी हो सकता है कि बीमारियां दो हों, और लक्षण बिल्कुल एक हों। लक्षणों से बहुत गहरे नहीं जाया जा सकता।
महावीर ने संथारा की आज्ञा दी। महावीर ने कहा है--किसी व्यक्ति की अगर जीवन की आकांक्षा शून्य हो गई हो तो मैं कहता हूं, वह मृत्यु में प्रवेश कर सकता है। लेकिन उन्होंने कहा है कि वह भोजन छोड़ दे, पानी छोड़ दे। भोजन और पानी छोड़ कर भी आदमी नब्बे दिन तक नहीं मरता--कम से कम नब्बे दिन जी सकता है, साधारण स्वस्थ आदमी हो तो। और जिस व्यक्ति की जीवन की आकांक्षा चली गई हो, वह असाधारण रूप से स्वस्थ होता है। क्योंकि हमारी सारी बीमारियां जीने की आकांक्षा से पैदा होती हैं। तो नब्बे दिन तक तो वह मर नहीं सकता। महावीर ने कहा--वह पानी छोड़ दे, भोजन छोड़ दे, लेट जाए, बैठा रहे। आत्महत्याएं जितनी भी की जाती हैं क्षणों के आवेश में की जाती हैं। क्षण भी खो जाए तो आत्महत्या नहीं हो सकती।
क्षण का एक आवेश होता है। उस आवेश में आदमी इतना पागल होता है कि कूद पड़ता है नदी में। आग लगा लेता है। शायद आग लगाकर जब शरीर जलता है तब पछताता है। लेकिन तब हाथ के बाहर हो गई होती है बात। जहर पी लेता है। अगर जहर फैलने लगता है, और तड़फन होती है, तब पछताता है। लेकिन तब शायद हाथ के बाहर हो गई है बात। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अगर आत्महत्या करने वाले को हम क्षणभर के लिए भी रोक सकें तो वह आत्महत्या नहीं कर पाएगा। क्योंकि उतनी मैडनेस की जो तीव्रता है वह तरल हो जाती है, विरल हो जाती है, क्षीण हो जाती है।
महावीर कहते हैं कि मैं आज्ञा देता हूं ध्यानपूर्वक मर जाने की। तुम भोजन-पानी सब छोड़ देना नब्बे दिन। अगर उस आदमी में जरा सी भी जीवेषणा होगी

तो भाग खड़ा होगा, लौट आएगा। अगर जीवेषणा बिल्कुल न होगी तो ही नब्बे दिन वह रुक पाएगा।
नब्बे दिन लंबा समय है। मन एक ही अवस्था में नब्बे दिन रह जाए, यह आसान घटना नहीं है। नब्बे क्षण नहीं रह पाता। सुबह सोचते थे मर जाएंगे, शाम को सोचते हैं कि दूसरे को मार डालें। मन नब्बे दिन... इसलिए फ्रायड को मानने वाले मनोवैज्ञानिक कहेंगे कि महावीर में कहीं न कहीं सुसाइडल तत्व है, कहीं न कहीं आत्महत्यावादी तत्व है। लेकिन मैं आपसे कहता हूं--नहीं है। असल में जिस व्यक्ति में जीवेषणा ही नहीं है उसके मरने की एषणा भी नहीं होती। मृत्यु की एषणा जीवेषणा का दूसरा पहलू है--विरुद्ध नहीं है, उसी का अंग है... विरुद्ध नहीं है, उसी का अंग है। इसलिए महावीर ने कोई मृत्यु की चेष्टा नहीं की। जिसकी जीवन की चेष्टा ही न रही हो, उसकी मृत्यु की चेष्टा भी नहीं रह जाती। महावीर कहते हैं कि एक हिस्से को हम फेंक दें, दूसरा हिस्सा उसके साथ ही चला जाता है। संथारा का महावीर का अर्थ है--आत्महत्या नहीं, जीवेषणा का इतना खो जाना कि पता ही न चले और व्यक्ति शून्य में लीन हो जाए। आत्महत्या की इच्छा नहीं, क्योंकि जहां तक इच्छा है, वहां तक जीवन की ही इच्छा होगी।
इसे ठीक से समझ लें। डिजायर इ.ज आलवेज डिजायर फॉर दि लाइफ--आलवेज। मृत्यु की कोई इच्छा ही नहीं होती। मृत्यु की इच्छा में ही जीवन की इच्छा भी छिपी होती है, जीवन का कोई आग्रह छिपा होता है। तो महावीर कोई आत्मघाती नहीं हैं। उतना बड़ा आत्मज्ञानी नहीं हुआ, आत्मघाती होने का सवाल नहीं है। लेकिन यह बात जरूर सच है कि महावीर के विचार में बहुत से आत्मघाती उत्सुक हुए, बहुत से आत्मघाती महावीर से आकर्षित हुए। और उन आत्मघातियों ने महावीर के पीछे एक परंपरा खड़ी की जिससे महावीर का कोई भी संबंध नहीं है। ऐसे लोग जरूर उत्सुक हुए महावीर के पीछे जिनको लगा कि ठीक है, मरने की इतनी सुगमता और कहां मिलेगी। और मरने का इतना सहयोग और कहां मिलेगा। और मरने की इतनी सुविधा और कहां मिलेगी। इसलिए महा वीर के पीछे ऐसे लोग जरूर आए जिनका चित्त रुग्ण था, जो मरना चाहते थे। जीवन की आकांक्षा के त्याग से वे महावीर के करीब नहीं आए, मरने की आकांक्षा के कारण वे महावीर के करीब आ गए। लक्षण बिल्कुल एक से हैं, लेकिन भीतर व्यक्ति बिल्कुल अलग थे। और जो मरने की इच्छा से आए, वे महावीर की परंपरा में बहुत अग्रणी हो गए। स्वभावतः जो मरने को तैयार है उसको नेता होने में कोई असुविधा नहीं होती। और क्या असुविधा हो सकती है। जो मरने को तैयार है वह पंक्ति में आगे कभी भी खड़ा हो सकता है, किसी भी पंक्ति में। और जो अपने को सताने को तैयार है वह लगा कि बड़ा त्यागी है।
ध्यान रहे, इससे महावीर के विचार को आज की दुनिया में पहुंचने में बड़ी कठिनाई हो रही है। क्योंकि महावीर का विचार मालूम होता है, मैसोचिस्ट है, अपने को सताने वाला है, पीड़क--आत्मपीड़क है। लेकिन महावीर की देह को देख कर ऐसा नहीं लगता कि इस आदमी ने अपने को सताया होगा। महावीर की प्रफुल्लता देख कर ऐसा नहीं लगता कि इस आदमी ने अपने को सताया होगा। महावीर का खिला हुआ कमल देखकर ऐसा नहीं लगता कि इस आदमी ने अपनी जड़ों के साथ ज्यादती की होगी। मैं मानता हूं कि महावीर रंचमात्र भी आत्मपीड़क नहीं हैं। लेकिन महावीर के पीछे आत्मपीड़कों की परंपरा इकट्ठी हुई, यह जरूर सच है। जो अपने को सता सकते थे या सताने के लिए उत्सुक थे और बहुत लोग उत्सुक हैं, ध्यान रखना आप।
इस जगत में दो तरह की हिंसाएं हैं--दूसरे को सताने के लिए उत्सुक लोग
और एक और तरह की हिंसा है, अपने को सताने के लिए उत्सुक लोग। अपने को सताने में भी कुछ लोगों को इतना ही मजा आता है जितना दूसरे को सताने में। बल्कि सच पूछा जाए तो दूसरे को सताने में आपको कभी इतना अधिकार नहीं होता, इतनी सुविधा और स्वतंत्रता नहीं होती जितनी अपने को सताने में होती है। कोई विरोध ही करने वाला नहीं होता। आप दूसरे को कांटे पर लिटाएं तो वह अदालत में मुकदमा चला सकता है। आप खुद को कांटों पर लिटा लें तो कोई मुकदमा नहीं चल सकता है, ना! सिर्फ सम्मान मिल सकता है! आप दूसरों को भूखा मारें तो आप

झंझट में पड़ सकते हैं; आप अपने को भूखा मारें तो जुलूस निकल सकता है, शोभायात्रा निकल सकती है।
लेकिन ध्यान रखें, सताने का जो रस है वह एक ही है। और महावीर कहते हैं
जो अपने को सता रहा है, वह भी दूसरे को ही सता रहा है; क्योंकि वह अपने में दो हिस्से कर लेता है। वह शरीर को सताने लगता है जो कि वस्तुतः दूसरा है। यह शरीर, जो मेरे आस-पास है, उतना ही दूसरा है मेरे लिए, जितना आपका शरीर जो जरा दूर है। इसमें भेद नहीं है। यह शरीर मेरे निकट है, इसलिए मैं नहीं हूं। और आपका शरीर जरा दूर है तो तू हो गया! मैं आ पके शरीर को कांटे चुभाऊं तो लोग कहेंगे, यह आदमी दुष्ट है। और मैं अपने शरीर को कांटे चुभाऊं तो लोग कहेंगे, यह आदमी महात्यागी है।
लेकिन शरीर दोनों ही स्थिति में दूसरा है। यह मेरा शरीर उतना ही दूसरा है जितना आपका शरीर। सिर्फ फर्क इतना है कि मेरे शरीर को सताते वक्त कोई कानून बाधा नहीं बनेगा, कोई नैतिकता बाधा नहीं बनेगी। इसलिए जो होशियार हैं, कुशल हैं वे सताने का मजा अपने ही शरीर को सता कर लेते हैं। लेकिन सताने का मजा एक ही है। क्या है मजा? जिसको हम सता पाते हैं, लगता है उसके हम मालिक हो गए हैं, उसके हम स्वामी हो गए हैं। जिसको हम सता पाते हैं--जिसकी हम गर्दन दबा पाते हैं, लगता है हम उसके स्वामी हो गए हैं। महावीर के पीछे मैसोचिस्ट इकट्ठे हो गए। उन्हीं ने महावीर की पूरी परंपरा को विषाक्त किया, जहर डाल दिया।
कारण तो था, क्योंकि महावीर का कारण कुछ और था, लेकिन इन्हें वह कारण अपील किया, जंचा। कारण यह था कि महावीर कहते थे कि जब तक मैं जीवन के लिए पागल हूं तब तक मैं देख न पाऊंगा अंधेपन में कि मैं दूसरे के जीवन को नष्ट करने के लिए भी आतुर हो गया हूं। और जीवन के लिए पागल होना व्यर्थ है क्योंकि असंभव है। जीवन को बचाया नहीं जा सकता। जन्म के साथ ही मृत्यु प्रवेश कर जाती है। इसलिए जो इंपासिबल है, उसके पीछे सिर्फ पागलपन है--जो असंभव है उसके पीछे सिर्फ पागलपन खड़ा होता है। मृत्यु होगी ही। वह उसी दिन तय हो गई, जिस दिन जीवन हुआ। इसलिए महावीर कहते हैं, जीवन के लिए इतनी आकांक्षा ही हिंसा बन जाती है। इसे समझना है। इसे समझते ही जीवेषणा शून्य होने लगती है और जब जीवेषणा शून्य होने लगती है तो मृत्यु की इच्छा पैदा नहीं होती, मृत्यु का स्वीकार पैदा होता है। इनमें भेद है।
मृत्यु की इच्छा तो पैदा होती है जीवेषणा को चोट लगे तब, और मृत्यु का स्वीकार पैदा होता है जब जीवेषणा क्षीण हो तब, शांत हो तब। महावीर मृत्यु को स्वीकार करते हैं। मृत्यु को स्वीकार करना अहिंसा है। मृत्यु को अस्वीकार करना हिंसा है। और जब मैं अपनी मृत्यु को अस्वीकार करता हूं तो मैं दूसरे की मृत्यु को स्वीकार करता हूं। और जब मैं अपनी मृत्यु को स्वीकार करता हूं तो मैं सबके जीवन को स्वीकार करता हूं। यह एक सीधा गणित है। जब मैं अपने जीवन को स्वीकार करता हूं तो मैं दूसरे के जीवन को इनकार करने के लिए तैयार हूं। और जब मैं अपनी मृत्यु को परिपूर्ण भा व से स्वीकार करता हूं कि ठीक है, वह नियति है, तब मैं किसी के जीवन को चोट पहुंचाने के लिए जरा भी उत्सुक नहीं रह जाता। उसके जीवन को भी चोट पहुंचाने के लिए जरा भी उत्सुक नहीं रह जाता जो मेरे जीवन को चोट पहुंचाए। क्योंकि मेरे जीवन को चोट पहुंचा कर ज्यादा से ज्यादा वह क्या कर सकता है? मृत्यु! जो कि होने ही वाली है। वह सिर्फ निमित्त बन सकता है। वह कारण नहीं है। महावीर कहते हैं कि अगर तुम्हारी कोई हत्या भी कर जाए तो वह सिर्फ निमित्त है, वह कारण नहीं है। कारण तो मृत्यु है, जो जीवन के भीतर ही छिपी है। इसलिए उस पर नाराज होने की भी कोई जरूरत नहीं है। ज्यादा से ज्यादा धन्यवाद दिया जा सकता है। जो होने ही वाला था, उसमें वह सहयोगी हो गया। वह होने ही वाला था। एक बार हमें यह ख्याल में आ जाए कि जो होने ही वाला है, तो हम फिर किसी पर नाराज नहीं हो सकते।
महावीर कहते हैं, मृत्यु का अंगीकार। और बड़े मजे की बात है, मृत्यु का अंगीकार इसलिए नहीं कि मृत्यु कोई महत्वपूर्ण चीज है। मृत्यु का अंगीकार ही इसलिए कि मृत्यु बिल्कुल ही गैर-महत्वपूर्ण चीज है। जब जीवन ही गैर-महत्वपूर्ण है तो मृत्यु महत्वपूर्ण कैसे हो सकती है। जब जीवन तक गैर-

66

महत्वपूर्ण है तो मृत्यु का क्या मूल्य हो सकता है। ध्यान रहे, मृत्यु का उतना ही आपके मन में मूल्य होता है जितना जीवन का मूल्य होता है। मृत्यु को जो मूल्य मिलता है वह रिफ्लेक्टेड वैल्यू है। आप जीवन को कितना मूल्य देते हैं उतना मृत्यु को मूल्य देते हैं।
अगर आप कहते हैं--जीना ही है किसी कीमत पर, तो आप कहेंगे--मरना नहीं है किसी कीमत पर। यह साथ चलेगा। आप कहते हैं--चाहे कुछ भी हो जाए, मैं जीऊंगा ही तो फिर आप यह भी कह सकते हैं कि चाहे कुछ भी हो जाए, मैं मरूंगा नहीं। आप जितना जीवन को मूल्य देते हैं उतना ही मूल्य मृत्यु में स्थापित हो जाता है। और ध्यान रहे, जितना मूल्य मृत्यु में स्थापित हो जाता है, उतना ही आप मुश्किल में पड़ जाते हैं। महावीर कहते हैं--जीवन में कोई मूल्य ही नहीं है तो मृत्यु का भी मूल्य समाप्त हो जाता है। और जिसके चित्त में न जीवन का मूल्य है, और न मृत्यु का, क्या वह आपको मारने आएगा? क्या वह आपको सताने में रस लेगा? क्या वह आपको समाप्त करने में उत्सुक होगा? हम कितना मूल्य किसी चीज को देते हैं, उस पर ही निर्भर करता है सब।
सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन एक अंधेरी रात में एक गांव के पास
से गुजरता है। चार चोरों ने उस पर हमला कर दिया। वह जी तोड़ कर लड़ा, वह इस बुरी तरह लड़ा कि अगर वे चार न होते तो एकाध की हत्या हो जाती। वे चार थोड़ी ही देर में अपने को बचाने में लग गए, आक्रमण तो भूल गए। फिर भी चार थे। बामुश्किल घंटों की लड़ाई के बाद किसी तरह मुल्ला पर कब्जा कर पाए। और जब उसकी जेब टटोली तो केवल एक पैसा मिला। वे बहुत हैरान हुए कि मुल्ला अगर एकाध आना तुम्हारे खीसे में रहता तो हम चारों की जान की कोई खैरियत न थी। एक पैसे के लिए तुम इतना लड़े! हद कर दी। हमने तुम जैसा आदमी नहीं देखा। चमत्कार हो तुम!
मुल्ला ने कहा कि उसका कारण है। पैसे का सवाल नहीं है। आई डोंट वांट
टु एक्सपोज माई पर्सनल फाइनेंशियल पोजिशन टु क्वाइट स्ट्रेंजर्स। मैं बिल्कुल अजनबियों के सामने अपनी माली हालत प्रकट नहीं करना चाहता हूं, और कोई कारण नहीं है। जान लगा देता। यह सवाल माली हालत के प्रकट करने का है, और तुम अजनबी। सवाल पैसे का नहीं है; सवाल पैसे के मूल्य का है। एक पैसा है कि करोड़, यह सवाल नहीं है। अगर पैसे का मूल्य है तो एक में भी मूल्य है और करोड़ में भी मूल्य है। और अगर करोड़ में मूल्य है तो एक में भी मूल्य होगा। सुना है मैंने कि मुल्ला एक अजनबी देश में गया, एक अपरिचित देश में गया। एक लिफ्ट में सवार होकर जा रहा है। एक अकेली सुंदर औरत उसके साथ है। उसने उस स्त्री से कहा कि क्या ख्याल है? सौ रुपये में सौदा पट सकता है? ! उस स्त्री ने चौंक कर देखा। उसने कहा कि ठीक है।
मुल्ला ने कहाः पांच रुपये का क्या ख्याल है?
उस स्त्री ने कहाः तुम समझते क्या हो... तुम मुझे समझते क्या हो?
मुल्ला ने कहाः दैट वी हैव डिसाइडेड। नाउ दि क्वेश्चन इ.ज ऑफ दि वैल्यू--प्राइज। यह तो हमने तय कर लिया है कि कौन हो तुम, यह तो मैंने सौ रुपये पूछ कर तय कर लिया, अब हम कीमत तय कर रहे हैं। अगर सौ रुपये में स्त्री बिक सकती है तो अब यह सवाल ही नहीं है कि पांच रुपये में क्यों नहीं बिक सकती? वह तय हो गया कि तुम कौन हो। उसके बाबत कोई चर्चा करने की जरूरत नहीं है। अब हम तय कर लें, अब मैं अपनी जेब पर ख्याल कर रहा हूं, मुल्ला ने कहा, कि अपने पास पैसे कितने हैं?
यह हमारी हमारी जिंदगी में जो भी मूल्य है, वह करोड़ का है या एक पैसे का, यह सवाल नहीं है। धन का मूल्य है तो फिर एक पैसे में भी मूल्य है और करोड़ में भी मूल्य है। मूल्य ही नहीं है, तो फिर पैसे में भी नहीं है और करोड़ में भी नहीं है। और अगर एक पैसे में जितना मूल्य है, फिर उसके खोने में उतनी ही पीड़ा है। वह पीड़ा भी उतनी ही मूल्यवान है। अगर जीवन ही निर्मूल्य है तो मृत्यु में क्या रह जाता है! और अगर जीवन ही निर्मूल्य है तो जीवन से संबंधित जो सारा विस्तार है, उसमें क्या मूल्य रह जाता है! जिसके लिए जीवन ही निर्मूल्य है, उसके लिए धन का कोई मूल्य होगा? क्योंकि धन का सारा मूल्य ही जीवन की सुरक्षा के लिए है! जिसके लिए जीवन ही निर्मूल्य है, उसके लिए महल का कोई मूल्य होगा? क्योंकि महल का सारा मूल्य

ही जीवन की सुरक्षा के लिए है। जिसके लिए जीवन का कोई मूल्य नहीं, उसके लिए पद का कोई मूल्य होगा? क्योंकि पद का सारा मूल्य ही जीवन के लिए है।
जीवन का मूल्य शून्य हुआ कि सारे विस्तार का मूल्य शून्य हो जाता है। सारी माया गिर जाती है। और जब जीवन का ही मूल्य न रहा तो मृत्यु का क्या मूल्य होगा! क्योंकि मृत्यु में उतना ही मूल्य था, जितना जीवन में हम डालते थे। जितना लगता था कि जीवन को बचाऊं, उतना ही मृत्यु से बचने का सवाल उठता था। जब जीवन को बचाने की कोई बात न रही तो मृत्यु हो या न हो, बराबर हो गया। जिस दिन मेरे जीवन का कोई मूल्य नहीं रह जाता उस दिन मेरी मृत्यु शून्य हो जाती है। और महावीर कहते हैं कि उसी दिन अमृत के द्वार खुलते हैं--महाजीवन के, परम जीवन के, जिसका कोई अंत नहीं है।
इसलिए महावीर कहते हैं--अहिंसा धर्म का प्राण है। उसी से अमृत का द्वार खुलता है। उसी से, हम उसे जान पाते हैं जिसका कोई अंत नहीं, जिसका कोई प्रारंभ नहीं, जिस पर कभी कोई बीमारी नहीं आती और जिस पर कभी दुख और पीड़ा नहीं उतरती।
जहां कोई संताप नहीं, जहां कोई मृत्यु कभी घटित नहीं होती, जहां अंधकार की किरण को उतरने की कोई सुविधा नहीं, जहां प्रकाश ही प्रकाश है। तो महावीर को मृत्युवादी नहीं कहा जा सकता और उनसे बड़ा अमृत का तलाशी नहीं है कोई। लेकिन अमृत की तलाश में उन्होंने पाया है कि जीवेषणा सबसे बड़ी बाधा है।
क्यों पाया है? जीवेषणा इसलिए बाधा है कि जीवेषणा के चक्कर में आप वास्तविक जीवन की खोज से वंचित रह जाते हैं। जीने की इच्छा और जीने की कोशिश में आप पता ही नहीं लगा पाते कि जीवन क्या है।
मुल्ला भागा जा रहा है एक गांव में। उसे व्याख्यान देना है। एक आदमी उससे रास्ते में पूछता है कि मुल्ला, उस मस्जिद में धर्म के संबंध में बोलने जा रहे हो, ईश्वर के संबंध में? ईश्वर के संबंध में तुम्हारा क्या विचार है?
मुल्ला कहता है--अभी विचार करने की फुरसत नहीं, अभी मैं व्याख्यान देने जा रहा हूं। आई हेव नो टाइम टु थिंक नाउ। अभी मैं व्याख्यान देने जा रहा हूं। अभी बकवास में मत डालो मुझे।
बोलने की फिकर में अक्सर आदमी सोचना भूल जाते हैं। दौड़ने के इंतजाम में अक्सर आदमी मंजिल भूल जाते हैं। कमाने की चिंता में अक्सर आदमी भूल जाते हैं, किसलिए? जीने की कोशिश में ख्याल ही नहीं आता कि क्यों? सोचते हैं कि पहले कोशिश तो कर लें, फिर क्यों की तलाश कर लेंगे। किसलिए बचा रहे हैं, यह ख्याल ही मिट जाता है। जो बचा रहे हैं उसमें ही इतने संलग्न हो जाते हैं कि वही एंड अनटु इटसेल्फ, अपना अपने में ही अंत बन जाता है।
एक आदमी धन इकट्ठा करता चला जाता है। पहले वह शायद सोचता भी रहा होगा
कि किसलिए? फिर धन इकट्ठा करना ही लक्ष्य हो जाता है। फिर उसे याद ही नहीं रहता कि किसलिए। फिर वह मर जाता है इकट्ठा करते-करते। वह नहीं बता सकता कि किसलिए इकट्ठा कर रहा था। वह इतना ही कह सकता था कि अब इकट्ठा करने में मजा आने लगा था। अब जीने में ही मजा आने लगा था। अब किसलिए जीना था--क्यों जीना था--जीवन क्या था? यह सब चूक जाता है।
महावीर कहते हैं--जीवेषणा जीवन की वास्तविक तलाश से वंचित कर देती है। और जीवेषणा सिर्फ मरने से बचने का इंतजाम बन जाती है--अमृत को जानने का नहीं, मरने से बचने का। हम सब डिफेंस की हालत में लगे हैं, चौबीस घंटे। मर न जाएं, बस इतनी ही कोशिश है। सब कुछ करने को तैयार हैं कि मर न जाएं। लेकिन जीकर क्या करेंगे? तो हम कहते हैं--पहले मरने का बचाव हो जाए, फिर सोच लेंगे। मृत्यु से बचने की कोशिश अमृत से बचाव हो जाती है। जीवन बचाने की कोशिश, जीवन के वास्तविक रूप को, परम रूप को जानने में रुकावट हो जाती है। महावीर मृत्युवादी नहीं हैं। महावीर इस जीवेषणा की दौड़ से रोकते ही इसीलिए हैं ताकि हम उस परम जीवन को जान सकें जिसे बचाने की कोई जरूरत ही नहीं है, जो बचा ही हुआ है। जिसे कोई मिटा नहीं सकता, क्योंकि उसके मिटने का कोई उपाय ही नहीं है। उस जीवन को जानकर व्यक्ति अभय हो जाता है। और जो अभय हो जाता है, वह दूसरे को भयभीत नहीं करता।

हिंसा दूसरे को भयभीत करती है। आप अपने को बचाते हैं, दूसरे में भय पैदा करके। आप दूसरे को दूर रखते हैं फासले पर। आपके और दूसरे के बीच में अनेक तरह की तलवारें आप अटका रखते हैं। और जरा सा ही किसी ने आपकी सीमा का अतिक्रमण किया कि आपकी तलवार उसकी छाती में घुस जाती है। अतिक्रमण न भी किया हो, आप अगर शंकित हो गए और सोचा कि अतिक्रमण किया है, तो भी तलवार घुस जाती है। व्यक्ति भी ऐसे ही जीते हैं, समाज भी ऐसे ही जीते हैं। राष्ट्र भी ऐसे ही जीते हैं। इसलिए सारा जगत हिंसा में जीता है, भय में जीता है। महावीर कहते हैं--सिर्फ अहिंसक ही अभय को उपलब्ध हो सकता है। और जिसने अभय नहीं जाना है वह अमृत को कैसे जानेगा? भय को जानने वाला मृत्यु को ही जानता रहता है।
तो महावीर की अहिंसा का आधार है, जीवेषणा से मुक्ति। और जीवेषणा से मुक्ति मृत्यु की एषणा से भी मुक्ति हो जाती है। और इसके साथ ही जो घटित होता है चारों तरफ, हमने उसी को मूल्यवान समझ रखा है। महावीर एक चींटी पर पैर नहीं रखते हैं, इसलिए नहीं कि महावीर बहुत उत्सुक हैं चींटी को बचाने को। महावीर इसलिए चींटी पर पैर नहीं रखते--सांप पर भी पैर नहीं रखते, बिच्छू पर भी पैर नहीं रखते--क्योंकि महावीर अब अपने को बचाने को बहुत उत्सुक नहीं हैं। उत्सुक ही नहीं हैं। अब उनका किसी से कोई संघर्ष न रहा, क्योंकि सारा संघर्ष इसी बात में था कि मैं अपने को बचाऊं। अब वे तैयार हैं--जीवन तो जीवन, मृत्यु तो मृत्यु, उजाला तो उजाला, अंधेरा तो अंधेरा। अब वे तैयार हैं। अब कुछ भी आए वे तैयार हैं। उनकी स्वीकृति परम है। इसलिए मैंने कहा कि बुद्ध ने जिसे तथाता कहा है, महा वीर उसे ही अहिंसा कहते हैं। लाओत्सु ने जिसे टोटल एक्सेप्टिबिलिटी कहा है कि मैं सब करता हूं स्वीकार, उसे ही महावीर ने अहिंसा कहा है। जिसे सब स्वीकार है, वह हिंसक कैसे हो सकेगा। हिंसक न होने का कोई निषेध कारण नहीं है, विधायक कारण है, क्योंकि सब स्वीकार है। इसलिए निषेध का कोई कारण नहीं है। किसी को मिटाने के लिए तैयारी करने का कोई कारण नहीं है। हां, अगर कोई मिटाने आता हो तो महावीर उसके लिए तैयार हैं। इस तैयारी में भी ध्यान रखें कि कोई प्रयत्न नहीं है महावीर का, कि वे सम्हल कर तैयार हो जाएंगे कि ठीक है मारो। इतना प्रयत्न भी भीतर जीवन का ही प्रश्न है। महावीर इतना सम्हल कर भी तैयार नहीं होंगे, वे खड़े ही रहेंगे जैसे वे थे ही नहीं, अनुपस्थित थे। इसके एक हिस्से पर और ख्याल कर लेना जरूरी है। जितने जोर से हम अपने
को बचाना चाहते हैं, हमारा वस्तुओं का बचाव उतना ही प्रगाढ़ हो जाता है। जीवेषणा "मेरे" का फैलाव बनती है। यह मेरा है, यह पिता मेरे हैं, यह मां मेरी है, यह भाई मेरा है, यह पत्नी मेरी है, यह मकान मेरा है, यह धन मेरा है-- हम "मेरे" का एक जाल खड़ा करते हैं अपने चारों तरफ। वह इसलिए खड़ा करते हैं कि उस पहरे के भीतर ही हमारा "मैं" बच सकता है। अगर मेरा कोई भी नहीं तो मैं निपट अकेला बहुत भयभीत हो जाऊंगा। कोई मेरा है तो सहारा है, सेफ्टी है, सुरक्षा है। इसलिए जितनी ज्यादा चीजें आप इकट्ठी कर लेते हैं, उतने आप अकड़ कर चलने लगते हैं। लगता है जैसे अब आपका कोई कुछ बिगाड़ न सकेगा। एक चीज भी आ पके हाथ से छूटती है, तो किसी गहरे अर्थों में आपको मृत्यु का अनुभव होता है। अगर आपकी कार टूट जाती है तो सिर्फ कार नहीं टूटती, आपके भीतर भी कुछ टूटता है। आपकी पत्नी मरती है तो पत्नी नहीं मरती, पति के भीतर भी कुछ गहन मर जाता है। खाली हो जाती है जगह। असली पीड़ा पत्नी के मरने से नहीं होती है। असली पीड़ा "मेरे" के फैलाव के कम हो जाने से होती है। एक जगह और टूट गई। एक एक मोर्चा असुरक्षित हो गया, एक जगह पहरा कम हो गया, वहां से खतरा अब आ सकता है।
एक मित्र हैं मेरे। पत्नी मर गई है उनकी। तो पत्नी की तस्वीरें सारे मकान में, द्वार-दरवाजे पर सब जगह लगा रखी हैं। किसी से मिलते-जुलते नहीं, तस्वीरें ही देखते रहते हैं। उनके किसी मित्र ने मुझसे कहा, ऐसा प्रेम पहले नहीं देखा। अदभुत प्रेम है। मैंने कहा, प्रेम नहीं है। वह आदमी अब डरा हुआ है। अब कोई भी दूसरी स्त्री उसके जीवन में प्रवेश कर सकती है। और ये तस्वीरें लगाकर अब वह पहरा लगा रहा है।
उन्होंने कहाः आप कैसी बात करते हैं?

मैंने कहाः मैं चलूंगा, मैं उन्हें जानता हूं।
और जब मैंने उन मित्र को कहा--सच बोलो, सोच कर बोलो, ठीक से विचार करके बोलो। अब तुम दूसरी स्त्रियों से भयभीत तो नहीं हो?
उन्होंने कहाः आपको यह कैसे पता चला? यही डर है मेरे मन में कि कहीं मैं अपनी पत्नी के प्रति विश्वासघाती सिद्ध न हो जाऊं। इसलिए उसकी याद को चारों तरफ इकट्ठी करके बैठा हुआ हूं। किसी स्त्री से मिलने में भी डरता हूं।
आदमी का मन बहुत जटिल है। और अब यह हवा भी चारों तरफ फैल गई है कि पत्नी के प्रति इतना प्रेम है कि जो दो साल पहले पत्नी मर गई, उसको वह जिलाए हुए हैं अपने मकान में। यह हवा भी उनकी सुरक्षा का कारण बनेगी। यह हवा भी उन्हें रोकेगी। यह प्रतिष्ठा भी रोकेगी।
पर मैंने उन मित्र के मित्र को कहा था कि ज्यादा देर नहीं चलेगी यह सुरक्षा। जब असली पत्नी नहीं बचती, तो ये तस्वीरें कितनी देर बचेंगी? अभी मुझे निमंत्रण पत्र आया है कि उनका विवाह हो रहा है। यह ज्यादा दिन नहीं बच सकता। इतना भयभीत आदमी ज्यादा दिन नहीं बच सकता। इतना असुरक्षित आदमी ज्यादा दिन नहीं बच सकता।
वस्तुओं पर, व्यक्तियों पर जो हम "मेरे" का फैलाव करते हैं, महा वीर उसको भी हिंसा कहते हैं। महावीर परिग्रह को हिंसा कहते हैं। महावीर का वस्तुओं से कोई विरोध नहीं है, और न महावीर को इससे कोई प्रयोजन है कि आपके पास कोई वस्तु है या नहीं। महावीर का इससे जरूर प्रयोजन है कि आपका उससे कितना मोह है। कितना उसको आप पकड़े हुए हैं, कितना आपने उस वस्तु को अपनी आत्मा बना लिया है।
यह मुल्ला नसरुद्दीन बड़ा प्यारा आदमी है। इसके जीवन में बहुत अदभुत घटनाएं हैं। एक होटल में ठहरा हुआ है। छोड़ रहा है होटल, नीचे टैक्सी में सब सामान रख आया है, तब उसे ख्याल आया कि छाता कमरे में भूल आया है। सीढ़ियां चढ़ कर वापस आया, चार मंजिल होटल। वापस पहुंचा तो देखा कि कमरा तो किसी नवविवाहित जोड़े को दे दिया जा चुका है। दरवाजा बंद है, अंदर कुछ बात चलती है। छाता बिना लिए जा नहीं सकता और अभी यह जो बात चलती है, उसको भी बिना सुने नहीं जा सकता। की-होल पर, चाबी के छेद पर कान लगाकर सुना। युवक अपनी पत्नी से कह रहा है, तेरे ये सुंदर बाल, ये आकाश में घिरी हुई घटाओं की तरह बाल, ये किसके हैं, देवी, ये बाल किसके हैं?
देवी ने कहाः तुम्हारे। और किसके?
"ये तेरी आंखें, मछलियों की तरह चंचल", उस पुरुष ने पूछा, "ये किसकी हैं? देवी, ये आंखें किसकी हैं?"
उस स्त्री ने कहाः तुम्हारी, और किसकी?
मुल्ला कुछ बेचैन हुआ। उसने कहाः ठहरो भाई! देवी, मुझे पता नहीं भीतर कौन है, लेकिन जब छाते का नंबर आए तो ख्याल रखना, मेरा है।
उसकी बेचैनी स्वाभाविक है। आएगा ही छाते का नंबर।
सारी जिंदगी उठते-बैठते, क्या मेरा है इसकी फिकर है--कहीं कोई और तो उस "मेरे" पर कब्जा नहीं कर रहा है? कहीं कोई और तो उस "मेरे" का मालिक नहीं बन रहा है? सवाल यह बड़ा नहीं है कि यह वस्तु किसकी हो जाएगी। वस्तु किसी की नहीं होती है। महावीर कहते हैं कि वस्तु किसी की नहीं होती है। उसे कभी पता नहीं चलता कि वह किसकी है। तुम लड़ते हो, मरते हो, समाप्त हो जाते हो, वस्तुएं अपनी जगह पड़ी रह जाती हैं। वही जमीन का टुकड़ा, जिसको आप अपना कह रहे हैं, कितने लोग उसे अपना कह चुके हैं। कभी हिसाब किया है, कितने लोग उसके दावेदार हो चुके हैं और जमीन के टुकड़े को जरा भी पता नहीं। दावेदार आते हैं और चले जाते हैं और जमीन का टुकड़ा अपनी जगह पड़ा रहता है। दावे सब काल्पनिक हैं, इमेजिनरी हैं।
आप ही दावा करते हैं, आप ही दूसरे दावेदारों से लड़ लेते हैं, मुकदमे हो जाते हैं, सिर खुल जाते हैं, हत्याएं हो जाती हैं। वह जमीन का टुकड़ा अपनी जगह पड़ा रहता है। जमीन के टुकड़े को पता भी नहीं है। या अगर पता होगा तो पता दूसरे ढंग से होगा। जमीन का टुकड़ा कहता होगा, यह आदमी मेरा है। जो आदमी कह रहा है, यह जमीन मेरी है, अगर जमीन को कोई पता होगा तो जमीन का टुकड़ा कहता

होगा, यह आदमी मेरा है। कौन जाने, जमीनों में मुकदमे चलते हों। आपस में संघर्ष हो जाता हो कि यह आदमी मेरा है, तुमने कैसे कहा कि मेरा है। अगर कोई जमीन को पता होता होगा तो उसको अपनी मालकियत का पता होता होगा। ध्यान रहे, हम सबको अपनी मालकियत का पता है। और मालकियत के लिए हम इतने उत्सुक हैं कि अगर जिंदा आदमी के हम मालिक न हो सके तो हम उसे मारकर भी मालिक होना चाहते हैं।
और हमारे जीवन की अधिक हिंसा इसीलिए है। जब एक पति एक स्त्री का मालिक होता है, उसे पत्नी बना लेता है तो उसमें स्त्री तो करीब-करीब नब्बे प्रतिशत मर ही जाती है। बिना मारे मालिक होना मुश्किल है। क्योंकि दूसरा भी मालिक होना चाहता है। अगर वह जिंदा रहेगा तो वह मालिक होने की कोशिश करेगा।
इसलिए अब ध्यान रखें, भविष्य में स्त्री पर, पुरुषों पर मालकियत की संभावना कम होती जाती है। अगर स्त्रियों को समानता का हक दिया तो पत्नी बच नहीं सकती। पत्नी तभी तक बच सकती थी जब तक स्त्री को कोई हक नहीं था। उसको बिल्कुल ही मार डालते तो ही पत्नी बच सकती थी। वह बिल्कुल नकार हो जाती तो ही पति हो सकता है। अब जब उसे बराबर करेंगे तो पति होने का उपाय नहीं। अब मित्र होने से ज्यादा की संभावना नहीं रह जाएगी। क्योंकि दोनों अगर समान हैं तो मालकियत कैसे टिक सकती है? लेकिन समानता भी टिकानी बहुत मुश्किल है। डर तो यह है कि स्त्री ज्यादा दिन समान नहीं रहेगी। थोड़े दिन में पुरुष को आंदोलन चलाना पड़ेगा कि हम स्त्रियों के समान हैं। यह ज्यादा दिन नहीं चलेगा। क्योंकि स्त्री बहुत दिन असमान रह ली। यह तो पहला कदम है समान होने का। अब इसके ऊपर जाने का दूसरा कदम, वह उठना शुरू हो गया है। बहुत जल्दी जगह-जगह पुरुष जुलूस निकाल रहे होंगे, घेराव कर रहे होंगे कि पुरुष स्त्रियों के समान हैं, कौन कहता है कि हम उनसे नीचे हैं।
समानता ज्यादा देर टिक नहीं सकती। क्योंकि जहां मालकियत और जहां हिंसा गहन है वहां किसी न किसी को असमान होना ही पड़ेगा, किसी न किसी को नीचे होना ही पड़ेगा। मजदूर लड़ेगा, पूंजीपति को नीचे कर देगा। कल पाएगा कि कोई और ऊपर बैठ गया है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। महावीर कहते हैं, जब तक जगत में मालकियत की आकांक्षा है--यानी जीवेषणा जब इतनी पागल है कि वह बिना मालिक हुए राजी नहीं होती--तब तक दुनिया में कोई समानता संभव नहीं है। इसलिए महावीर समानता में उत्सुक नहीं हैं, अहिंसा में उत्सुक हैं। वे कहते हैं--अगर अहिंसा फैल जाए तो ही समानता संभव है। मालकियत का रस ही टूट जाए, तो ही दुनिया से मालकियत मिटेगी, अन्यथा मालकियत नहीं मिट सकती है। सिर्फ मालिक बदल सकते हैं। मालिक बदलने से कोई फर्क नहीं पड़ता। बीमारी अपनी जगह बनी रहती है। उपद्रव अपनी जगह बने रहते हैं। हिंसा का जो वास्तविक हमारे जीवन में क्रियमान रूप है, वह मालकियत है।
महावीर ने जब महल छोड़ा तो हमें लगता है--महल छोड़ा, धन छोड़ा, परिवार छोड़ा। महावीर ने सिर्फ हिंसा छोड़ी। अगर गहरे में जाएं तो महावीर ने सिर्फ हिंसा छोड़ी। यह सब हिंसा का फैला व था। ये पहरेदार जो दरवाजे पर खड़े थे, वे पत्थर की मजबूत दीवारें जो महल को घेरे थीं, यह धन और ये तिजोरियां--ये सब आयोजन थे हिंसा के। यह मेरे और तेरे का भेद, यह सब आयोजन था हिंसा का। महावीर जिस दिन खुले आकाश के नीचे आकर नग्न खड़े हो गए, उस दिन कहा कि अब मैं हिंसा को छोड़ता हूं, इसलिए सब सुरक्षा छोड़ता हूं। इसलिए सब आक्रमण के उपाय छोड़ता हूं। अब मैं निहत्था, निशस्त्र, शून्यवत भटकूंगा इस खुले आकाश के नीचे। अब मेरी कोई सुरक्षा नहीं, अब मेरा कोई आक्रमण नहीं, अब मेरी कोई मालकियत कैसे हो सकती है। अहिंसक की कोई मालकियत नहीं हो सकती। अगर कोई अपनी लंगोटी पर भी मालकियत बताता है कि यह मेरी है--इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि महल मेरा है कि लंगोटी मेरी है। वह मालकियत हिंसा है। इस लंगोटी पर भी गर्दनें कट सकती हैं। और यह मालकियत बहुत सूक्ष्म होती चली जाती है-- धन छोड़ देता है एक आदमी, लेकिन कहता है, धर्म, यह मेरा है।
मेरे एक मित्र अभी एक जैन साधु के पास गए होंगे--अभी एक-दो दिन पहले। मैं महावीर के संबंध में क्या कह रहा हूं, मित्र ने उन्हें बताया होगा। उन

साधु ने कहा कि कोई और महावीर होंगे, वे उनके होंगे, वे हमारे महावीर नहीं हैं। वे जिस महावीर के संबंध में बोल रहे हैं वे हमारे महावीर नहीं हैं। मालकियत बड़ी सूक्ष्म है। महावीर तक पर भी मालकियत है। हिंसा हम वहां
तक नहीं छोड़ेंगे--यह धर्म मेरा है, यह शास्त्र मेरा है, यह सिद्धांत मेरा है--रस आता है, रस किसको आता है भीतर? जहां-जहां "मेरा" है वहां-वहां हिंसा है। जो "मेरे" को सब भांति छोड़ देता है--धन पर ही नहीं, धर्म पर भी, महावीर और कृष्ण और बुद्ध पर भी--जो कहता है कि मेरा कुछ भी नहीं है। और ध्यान रहे, जिस दिन कोई कह पाता है, मेरा कुछ भी नहीं, उसी दिन "मैं कौन हूं", इसे जान पाता है। इसके पहले नहीं जान पाता। इसके पहले "मेरे" के फैलाव में उलझा रहता है, परिधि पर। इसलिए "मैं" के केंद्र पर कोई पता नहीं चलता है।
इसे ऐसा समझ लें, अहिंसा सूत्र है आत्मा को जानने का। क्योंकि "मेरे"
का जब सारा भाव गिर जाता है तो फिर मैं ही बचता हूं फिर, कोई और तो बचता नहीं। निपट मैं, अकेला मैं। और तभी जान पाता हूं, क्या हूं, कौन हूं, कहां से हूं, कहां के लिए हूं। तब सारे द्वार रहस्य के खुल जाते हैं।
महावीर ने अकारण ही अहिंसा को परम धर्म नहीं कह दिया है। परम धर्म कहा
है इसलिए कि उस कुंजी से सारे द्वार खुल सकते हैं, जीवन के रहस्य के। एक और तीसरी दृष्टि से अहिंसा को समझ लें तो अहिंसा का ख्याल हमारा स्पष्ट और पूरा हो जाए।
महावीर ने कहा है कि सब हिंसा आग्रह है। यह अति सूक्ष्म बात है। आग्रह हिंसा है, अनाग्रह अहिंसा है। और इसी कारण महावीर ने जिस विचार-सरणी को जन्म दिया है, उसका नाम है "अनेकांत"। वह अहिंसा के विचार का जगत में फैलाव है। अनेकांत की दृष्टि जगत में कोई दूसरा व्यक्ति नहीं दे सका। क्योंकि अहिंसा की दृष्टि को कोई दूसरा व्यक्ति इतनी गहनता में समझ ही नहीं सका। समझा ही नहीं सका। अनेकांत महावीर से पैदा हुआ उसका कारण है कि महावीर की अहिंसा की दृष्टि को जब उन्होंने विचार के जगत पर लगाया, वस्तुओं के जगत पर लगाया तो परिग्रह फलित हुआ। जीवन के जगत पर लगाया तो मृत्यु का वरण फलित हुआ। और जब विचार के जगत पर लगाया--जो कि हमारा बहुत सूक्ष्म संग्रह है, विचार का जगत। धन बहुत स्थूल संग्रह है, चोर उसे ले जा सकते हैं। विचार बहुत सूक्ष्म संग्रह है, चोर उसे नहीं चुरा सकते। फिलहाल अभी तक तो नहीं चुरा सकते। यह सदी पूरे होते-होते चोर आपके विचार चुरा सकेंगे। क्योंकि आपके मस्तिष्क को आपके बिना जाने पढ़ा जा सकेगा। और क्योंकि आपके मस्तिष्क से कुछ हिस्से भी निकाले जा सकते हैं, जिनका आपको पता ही नहीं चलेगा। और आपके मस्तिष्क के भीतर भी इलेक्ट्रोड रखे जा सकते हैं, और आपसे ऐसे विचार करवाए जा सकते हैं जो आप नहीं कर रहे, लेकिन आपको लगेगा कि मैं कर रहा हूं। अभी अमरीका में डा. ग्रीन और दूसरे लोगों ने जानवरों की खोपड़ी में इलेक्ट्रोड रख कर जो प्रयोग किए हैं वे सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। एक घोड़े की या एक सांड की खोपड़ी में इलेक्ट्रोड रख दिया है। वह इलेक्ट्रोड रखने के बाद वायरलेस से उसकी खोपड़ी के भीतर के स्नायुओं को संचालित किया जा सकता है, जैसा चाहें। और डाक्टर ग्रीन के ऊपर हमला करता है वह सांड। वे लाल छतरी लेकर उसके सामने खड़े हैं और हाथ में उनके ट्रांजिस्टर है छोटा सा, जिससे उसकी खोपड़ी को संचालित करेंगे। वह दौड़ता है पागल की तरह। लगता है कि हत्या कर डालेगा। सैकड़ों लोग घेरा लगाकर खड़े हैं। वह बिल्कुल आ जाता है--वह सामने आ जाता है। और वह बटन दबाता है अपने ट्रांजिस्टर की। वह ठंडा हो जाता है, वह वापस लौट जाता है।
यह आदमी के साथ भी हो सकेगा। इसमें कोई बाधा नहीं रह गई है। वैज्ञानिक काम पूरा हो गया है। कुछ कहा नहीं जा सकता कि तानाशाही सरकारें हर बच्चे की खोपड़ी में बचपन से ही रख दें। फिर कभी उपद्रव नहीं। एक बटन दबाई जाए, पूरा मुल्क एकदम जय-जयकार करने लगे। मिलिटरी के दिमाग में तो यह रखा ही जाएगा। तब बटन दबा दी और लाखों लोग मर जाएंगे बिना भयभीत हुए, कूद जाएंगे आग में बिना चिंता किए। और उनको लगेगा कि वे ही कर रहे हैं। हालांकि यह पहले से भी किया जा रहा है, लेकिन करने के ढंग पुराने थे, मुश्किल के थे। एक आदमी को समझाना पड़ता है कि अगर तू देश के लिए मरेगा तो स्वर्ग जाएगा। इसको बहुत समझाना पड़ता है, तब उसकी खोपड़ी में घुसता है। हालांकि यह

भी घुसाना ही है। इसमें कोई मतलब नहीं है। इसको भी बचपन से गाथाएं सुना- सुना कर राष्ट्रभक्ति की और जमाने भर के पागलपन की, इसके दिमाग को तैयार किया जाता है। फिर एक दिन वर्दी पहना कर इससे कवायद करवाई जाती है दो-चार साल तक। इसकी खोपड़ी में डालने का यह उपाय भी इलेक्ट्रोड ही है, लेकिन यह पुराना है, बैलगाड़ी के ढंग से चलता है। फिर एक दिन यह आदमी जाता है और मर जाता है युद्ध के मैदान में छाती खोल कर और सोचता है कि यह "मैं" मर रहा हूं, और सोचता है कि यह बलिदान "मैं" दे रहा हूं, और सोचता है, ये विचार "मेरे" हैं। यह देश मेरा और यह झंडा मेरा है। और ये सब बातें इसके दिमाग में किन्हीं और ने रखी हैं। जिन्होंने रखी हैं वे राजधानियों में बैठे हुए हैं। वे कभी किसी युद्ध पर नहीं जाते। ठीक है, इतनी परेशानी करने की क्या जरूरत है, जब इलेक्ट्रोड रखने से आसानी से काम हो जाएगा। अड़चन कम होगी, भूल-चूक कम होगी। बहुत जल्दी विचार की संपदा पर भी चोर पहुंच जाएंगे। खतरे वहां हो जाएंगे, लेकिन अब तक कम से कम विचार की संपदा बहुत सूक्ष्म रही है।
महावीर कहते हैं कि विचार की संपदा को भी मेरा मानना हिंसा है। क्योंकि जब भी मैं किसी विचार को कहता हूं "मेरा", तभी मैं सत्य से च्युत हो जाता हूं। और जब भी मैं कहता हूं कि यह मेरा विचार है, इसलिए ठीक है--और हम सभी यह कहते हैं, चाहे हम कहते हों प्रकट, चाहे न कहते हों। जब हम कहते हैं कि यही सत्य है, तो हम यह नहीं कहते कि जो मैं कह रहा हूं वह सत्य है, तब हम यह कहते हैं कि जो कह रहा है वह सत्य है। मैं सत्य हूं तो मेरा विचार तो सत्य होगा ही--मैं सत्य हूं, तो मेरा विचार सत्य होगा। जितने विवाद हैं इस जगत में वे सत्य के विवाद नहीं हैं। जितने विवाद हैं वे सब "मैं" के विवाद हैं। जब आप किसी से विवाद में पड़ जाते हैं और कोई बात चलती है और आप कहते हैं यह ठीक है, और दूसरा कहता है यह ठीक नहीं है, तब जरा भीतर झांक कर देखना कि थोड़ी देर में ही आपको पक्का पता चल जाएगा कि अब सवाल विचार का नहीं है। अब सवाल यह है कि मैं ठीक हूं कि तुम ठीक हो? महावीर ने कहा कि यह बहुत सूक्ष्म हिंसा है। इसलिए महावीर ने अनेकांत को जन्म दिया है।
महावीर से अगर कोई आकर बिल्कुल महावीर के विपरीत भी बात कहे तो महावीर कहते थे, यह भी ठीक हो सकता है। बहुत हैरानी की बात है, यह आदमी अकेला था इस लिहाज से, पूरी पृथ्वी पर। ज्ञात इतिहास के पास यह अकेला आदमी है जो अपने विरोधी से भी कहेगा, यह भी ठीक हो सकता है--ठीक उससे, जो बिल्कुल विपरीत बात कह रहा है। महावीर कहते हैं कि आत्मा है, और जो आदमी आकर कहेगा-- आत्मा नहीं है, कोई चार्वाक की विचार-सरणी को मानने वाला आकर महावीर को कहेगा--आत्मा नहीं है तो महावीर यह नहीं कहते हैं कि तू गलत है। महावीर कहते हैं, यह भी हो सकता है, यह भी सही हो सकता है। इसमें भी सत्य होगा। क्योंकि महावीर कहते हैं कि ऐसी तो कोई भी चीज नहीं हो सकती कि जिसमें सत्य का कोई अंश न हो, नहीं तो वह होती ही कैसे। वह है। स्वप्न भी सही है। क्योंकि स्वप्न होता तो है, इतना सत्य तो है ही। स्वप्न में क्या होता है, वह सत्य न हो, लेकिन स्वप्न होता है, इतना तो सत्य है ही, उसका अस्तित्व तो है ही। असत्य का तो कोई अस्तित्व नहीं हो सकता। तो महावीर कहते हैं जब एक आदमी कह रहा है कि आत्मा नहीं है, तो इस न होने में भी कुछ सत्य तो होगा ही। इसलिए महावीर ने किसी का विरोध नहीं किया--किसी का। इसका अर्थ यह नहीं
था कि महावीर को कुछ पता नहीं था। कि महावीर को यह पता नहीं था कि सत्य क्या है। महावीर को सत्य का पता था। लेकिन महावीर का इतना अनाग्रहपूर्ण चित्त था कि महावीर अपने सत्य में विपरीत सत्य को भी समाविष्ट कर पाते थे। महावीर कहते थे, सत्य इतनी बड़ी घटना है कि यह अपने से विपरीत को समाविष्ट कर सकता है। सत्य इतना बड़ा है, सिर्फ असत्य छोटे-छोटे होते हैं। महावीर कहते थे, असत्य छोटे-छोटे होते हैं। उनकी सीमा होती है। सत्य इतना बड़ा है, इतना असीम है कि अपने से विपरीत को भी समाविष्ट कर लेता है। यही वजह है कि महावीर का विचार बहुत ज्यादा दूर तक, ज्यादा लोगों तक नहीं पहुंच सका क्योंकि सभी लोग निश्चित वक्तत्व चाहते हैं--डागमेटिक। सभी लोग यही चाहते हैं, क्योंकि सोचना कोई नहीं चाहता है। सोचने में तकलीफ, अड़चन होती है। सब लोग उधार चाहते हैं। कोई तीर्थंकर खड़े होकर कह दे कि जो मैं कहता हूं, वह

सत्य है, तो जो सोचने से बचना चाहते हैं वे कहेंगे--बिल्कुल ठीक है, मिल गया सत्य, अब झंझट मिटी।
महावीर इतनी निश्चितता किसी को भी नहीं देते। महावीर के पास जो बैठा रहेगा वह सुबह जितना कनफ्यूज्ड था, शाम तक और ज्यादा कनफ्यूज्ड हो जाएगा। वह जितना परेशान आया था, सांझ तक और परेशान होकर लौटेगा क्योंकि महावीर को दिन में वह ऐसी बातें कहता सुनेगा, ऐसे-ऐसे लोगों को हां भरते सुनेगा कि उसके सारे के सारे जो-जो निश्चित आधार थे, बस डगमगा जाएंगे। उसकी सारी भवन की रूपरेखा गिर जाएगी। और महावीर कहते थे--अगर सत्य तक पहुंचना है तो तुम्हारे विचारों के समस्त आग्रह गिर जाएं तभी। तुम हिंसा करते हो जब तुम कहते हो, सही सत्य है। तब तुम सत्य तक पर मालकियत कर लेते हो। तब तुम सत्य तक को भी सिकोड़ देते हो और अपने तक बांध लेते हो। तब तुम सत्य तक का परिग्रह कर देते हो। इसलिए महावीर कहते थे कि दूसरा क्या कहता है, वह भी सत्य हो सकता है। और तुम जल्दी मत करना कि दूसरा गलत है।
मुल्ला नसरुद्दीन को उस मुल्क के सम्राट ने बुलाया, और लोगों ने खबर
की है कि अजीब आदमी है। आप बोलो ही न, उसके पहले खंडन शुरू कर देता है। सम्राट ने कहाः यह तो ज्यादती है। दूसरे को मौका मिलना चाहिए। सम्राट
ने नसरुद्दीन को बुलाया और कहा कि मैंने सुना है कि तुम दूसरे को सुनते ही नहीं और बिना जाने कि वह क्या सोचता है, तुम बोलना शुरू कर देते हो--कि गलत हो!
मुल्ला नसरुद्दीन को उस मुल्क के सम्राट ने बुलाया, और लोगों ने खबर
की है कि अजीब आदमी है। आप बोलो ही न, उसके पहले खंडन शुरू कर देता है। सम्राट ने कहाः यह तो ज्यादती है। दूसरे को मौका मिलना चाहिए। सम्राट
ने नसरुद्दीन को बुलाया और कहा कि मैंने सुना है कि तुम दूसरे को सुनते ही नहीं और बिना जाने कि वह क्या सोचता है, तुम बोलना शुरू कर देते हो--कि गलत हो!
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि ठीक सुना है।
सम्राट ने कहाः मेरे विचारों के संबंध में क्या ख्याल है? अभी उसने कुछ विचार बताया नहीं।
मुल्ला ने कहाः सरासर गलत है।
सम्राट ने कहाः लेकिन तुमने सुने भी नहीं।
मुल्ला ने कहाः यह सवाल ही नहीं है, तुम्हारे हैं, इसलिए गलत। क्योंकि मेरे ठीक होते हैं। इररिलेवेंट है यह बात कि तुम क्या सोचते हो। इससे कोई संगति ही नहीं है। तुम सोचते हो, काफी है, गलत होने के लिए। मैं सोचता हूं, काफी है, सही होने के लिए।
हम सब ऐसे ही हैं। आप इतने हिम्मतवर नहीं हैं कि दूसरे को बिना सुने गलत कहें। लेकिन जब आप सुन कर भी गलत कहते हैं तब आप पहले से ही जानते थे कि वह गलत था। तो सुन कर आप भी नहीं कहते--ध्यान रखना, सुन कर आप भी नहीं कहते। आप पहले से जानते थे कि वह गलत है। सिर्फ धीरज, संकोच, शिष्टता आपको रोकती है कि कम से कम सुन तो लो, गलत तो है ही।
मुल्ला नसरुद्दीन आपसे ज्यादा ईमानदार आदमी है। वह कहता है--सुनने के लिए समय क्यों खराब करना। हम जानते ही हैं कि तुम गलत हो, क्योंकि सभी गलत हैं, सिर्फ मैं ठीक हूं।
सारे विवाद जगत के सही हैं। सम्राट मुल्ला से बहुत प्रसन्न हो गया और उसने कहा कि तुम रहो, हमारे दरबार में ही रह जाओ।
मुल्ला को जिस दिन से तनख्वाह मिलने लगी, सम्राट बहुत हैरान हुआ-- सम्राट जो भी कहता, मुल्ला कहता--बिल्कुल ठीक, एकदम सही, यही सही है।
सम्राट के साथ खाने पर बैठा था। कोई सब्जी बनी थी।
सम्राट ने कहाः मुल्ला, सब्जी बहुत स्वादिष्ट है।
मुल्ला ने कहाः यह अमृत है, स्वादिष्ट होगी ही। मुल्ला ने बहुत बखान किया उस सब्जी का। जब इतना बखान किया कि सम्राट ने दूसरे दिन भी बनवा ली।
लेकिन दूसरे दिन उतनी अच्छी नहीं लगी।

तीसरे दिन रसोइए ने देखा कि इतनी अमृत जैसी चीज, तो उसने तीसरे दिन भी बना दी। सम्राट ने हाथ मार कर थाली नीचे गिरा दी और कहा कि क्या बदतमीजी है, रोज-रोज वही सब्जी!
मुल्ला ने कहाः जहर है। सम्राट ने कहाः लेकिन मुल्ला तुम तीन दिन पहले कहते थे कि अमृत है। मुल्ला ने कहाः मैं आपका नौकर हूं, सब्जी का नहीं। तनख्वाह तुम देते हो कि सब्जी देती है?
सम्राट ने कहाः लेकिन इसके पहले जब तुम आए थे मुझसे मिलने, तब तुम अपने को ही सही कहते थे।
मुल्ला ने कहाः तब तक मैं बिन-बिका था, तब तक तुम कोई तनख्वाह नहीं देते थे। और जिस दिन तुम तनख्वाह नहीं दोगे, याद रखना, सही तो मैं ही हूं, यह तो सिर्फ तनख्वाह की वजह से मैं कहे चले जा रहा हूं।
यह हमारा जो मन है, हमारी जो अस्मिता है--महावीर कहते हैं--दूसरा भी सही है, दूसरा भी सही हो सकता है। तुमसे विरोधी भी सत्य को लिए है। आग्रह मत करो, अनाग्रह हो जाओ। आग्रह ही मत करो। इसलिए महावीर ने कोई सिद्धांत का आग्रह नहीं किया। और महावीर ने जितनी तरल बातें कही हैं उतनी तरल बातें किसी दूसरे व्यक्ति ने नहीं कहीं हैं। इसलिए महावीर अपने हर वक्तव्य के सामने "स्यात" लगाते थे, वे कहते थे, परहेप्स। अभी आ पका तो विचार उन्हें पता भी नहीं है, लेकिन अगर आप उनसे पूछते कि आत्मा है? तो महावीर कहते, स्यात, परहेप्स। क्योंकि वे कहते, हो सकता है, कोई इसके विपरीत हो उसे चोट पहुंच जाए। आप पूछते कि मोक्ष है? तो महावीर कहते, स्यात! ऐसा नहीं कि महावीर को पता नहीं है। महावीर को पता है कि मोक्ष है। लेकिन महावीर को यह भी पता है कि अहिंसक वक्तव्य "स्यात" के साथ ही हो सकता है--नॉन-वायलेंट असरशन। असत्य--यह भी पता है और महावीर को यह भी पता है कि स्यात कहने से शायद आप समझने को ज्यादा आसानी से तैयार हो जाएं। जब महावीर कहें कि हां, मोक्ष है, तो महावीर जितने अकड़कर कहेंगे मोक्ष है, तत्काल आपके भीतर अकड़ प्रतिध्वनित होती है। वह कहती है, कौन कहता है--"नहीं है"। संघर्ष "मैं" का शुरू हो जाता है। सारे विवाद "मैं" के विवाद हैं। महावीर अनाग्रह वक्तव्य दिए हैं--सब वक्तव्य अनाग्रह से भरे हैं। इसलिए पंथ बनाना बहुत मुश्किल हुआ। अगर कोई गोशालक के पास जाता, महावीर के प्रतिद्वंद्वी के पास, तो गोशालक कहता--महावीर गलत हैं, मैं सही हूं। वही आदमी महावीर के पास आता तो महावीर कहते--गोशालक सही हो सकता है। अगर आप भी होते तो आप गोशालक के पीछे जाते कि महावीर के? आप गोशालक के पीछे जाते कि यह आदमी कम से कम निश्चित तो है, साफ तो है, उसे पता तो है। यह महावीर कहता है--गोशालक भी शायद सही हो सकता है। अभी उनको खुद ही पक्का नहीं है। खुद ही साफ नहीं है। इनके पीछे अपनी नाव क्यों बांधनी और डुबानी! ये कहां जा रहे हैं, शायद जा रहे हैं कि नहीं जा रहे हैं! शायद पहुंचेंगे कि नहीं पहुंचेंगे!
इसलिए महावीर के पास अत्यंत बुद्धिमान वर्ग ही आ सका--बुद्धिमान मैं कहता हूं उन व्यक्तियों को, जो सत्य के संबंध में अनाग्रहपूर्ण हैं। जिन्होंने समझा महावीर के साहस को। जिन्होंने देखा कि यह बहुत साहस की बात है, वे ही महावीर के पास आ सके। लेकिन जैसे-जैसे समय बीतता है, जो लोग पीछे आते हैं वे सोच कर नहीं आते, वे जन्म की वजह से पीछे आते हैं। वे आग्रहपूर्ण हो जाते हैं। और उनके आग्रह खतरनाक हो जाते हैं।
एक बहुत बड़े जैन पंडित मुझे मिलने आए थे। उन्होंने स्यातवाद पर किताब लिखी है, इस अनेकांत पर किताब लिखी है। मैं उनसे बात कर रहा था। मैं उनसे बात करता रहा। मैंने उनसे कहा कि स्यातवाद का तो अर्थ ही होता है कि शायद ठीक हो, शायद ठीक न हो।
उन्होंने कहाः हां।
फिर थोड़ी बातचीत आगे बढ़ी। जब वे भूल गए तो मैंने उनसे पूछा लेकिन स्यातवाद तो पूर्ण रूप से ठीक है या नहीं, एब्सल्यूटली? उन्होंने कहाः एब्सल्यूटली ठीक है, पूर्णरूप से ठीक है। स्यातवाद पर किताब लिखने वाला आदमी भी कहता है कि स्यातवाद पूर्णरूप से ठीक है। इसमें कोई गलती नहीं है, इसमें कोई भूल हो ही नहीं सकती। यह सर्वज्ञ की वाणी है। महावीर को मानने

वाला कहता है--सर्वज्ञ की वाणी है, इसमें कोई भूल-चूक है नहीं, यह बिल्कुल ठीक है--एब्सल्यूटली, पूर्णरूपेण, निरपेक्ष।
और महावीर जिंदगी भर कहते रहे कि पूर्ण सत्य की अभिव्यक्ति हो ही नहीं सकती। जब भी हम सत्य को बोलते हैं, तभी वह अपूर्ण हो जाता है--बोलते ही अपूर्ण हो जाता है। वक्तव्य देते ही अपूर्ण हो जाता है। कोई वक्तव्य पूर्ण नहीं हो सकता। क्योंकि वक्तव्य की सीमाएं हैं--भाषा है, तर्क है, बोलने वाला है, सुनने वाला है--ये सब सीमाएं हैं। जरूरी नहीं है कि जो मैं बोलूं, वही आप सुनें। जरूरी नहीं है कि जो मैं जानूं वही मैं बोल पाऊं, और जरूरी नहीं है कि जो मैं बोल पाऊं वह वही हो जो मैं बोलने की कोशिश कर रहा हूं। यह जरूरी नहीं है। तत्काल सीमाएं लगनी शुरू हो जाती हैं क्योंकि वक्तव्य समय की धारा में प्रवेश करता है और सत्य समय की धारा के बाहर है। ऐसे ही जैसे हम एक लकड़ी को पानी में डालें तो वह तिरछी दिखाई पड़ने लगे, बाहर निकालें तो सीधी हो जाए। महावीर कहते हैं ठीक जैसे ही हम भाषा में किसी सत्य को डालते हैं, वह तिरछा होना शुरू हो जाता है। भाषा के बाहर निकालते हैं, शुद्ध शून्य में ले जाते हैं वह पूर्ण हो जाता है। लेकिन जैसे ही वक्तव्य देते हैं वैसे ही--इसलिए महावीर कहते हैं--कोई भी वक्तव्य स्यात के बिना न दिया जाए। कहा जाए कि शायद सही है।
यह अनिश्चय नहीं है, यह केवल अनाग्रह है। यह अनसर्टेंनिटी नहीं है।
यह कोई ऐसा नहीं है कि महावीर को पता नहीं है। महावीर को पता है लेकिन इतना ज्यादा पता है, इतना साफ पता है कि यह भी उन्हें पता चलता है कि वक्तव्य धुंधला हो जाता है। महावीर की अहिंसा का जो अंतिम प्रयोग है, वह अनाग्रहपूर्ण विचार है। विचार भी मेरा नहीं है, तभी अनाग्रहपूर्ण हो जाएगा। जिस विचार के साथ आप लगा देंगे मेरा, उसमें आग्रह जुड़ जाएगा। न धन मेरा है, न मित्र मेरे हैं, न परिवार मेरा है, न विचार मेरा है, न यह शरीर मेरा है, न यह जीवन, जिसे हम कहते हैं, यह मेरा है--यह कुछ भी मेरा नहीं है। जब इन सब "मेरे" से हमारा फासला पैदा हो जाता है, गिर जाते हैं ये "मेरे", तब मैं ही बच रह जाता हूं--अलोन, अकेला। और जो वह अकेला मैं का बच जाना है, उसकी प्रक्रिया है, अहिंसा। अहिंसा प्राण है, संयम सेतु है और तप आचरण है। कल हम संयम पर बात करेंगे।

आज इतना ही।
लेकिन अभी कोई जाए न। संन्यासी महावीर के स्मरण में धुन करते हैं, उसमें सम्मिलित हों।

महावीर-वाणी, भाग 1
छठवां प्रवचन

संयमः मध्य में रुकना (धम्म-सूत्रः 2 (संयम))

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मे सया मणो।।

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

एक मित्र ने पूछा है कि महावीर रास्ते से गुजरते हों और किसी प्राणी
की हत्या हो रही हो तो महावीर क्या करेंगे? किसी स्त्री के साथ
बलात्कार की घटना घट रही हो तो महावीर क्या करेंगे? क्या वे अनुपस्थित हैं, ऐसा व्यवहार करेंगे? और कोई असह्य पीड़ा से कराह रहा हो तो महावीर क्या करेंगे?
इस संबंध में थोड़ी सी बातें समझ लेनी उपयोगी हैं। एक तो महावीर गुजरते हुए रास्ते से, और किसी की हत्या हो रही हो, तो हत्या में जो हम देख पाते हैं, वह महावीर को नहीं दिखाई पड़ेगा। जो महावीर को दिखाई पड़ेगा वह हमें कभी दिखाई नहीं पड़ता है। पहले तो इस भेद को समझ लेना चाहिए। जब भी हम किसी की हत्या होते देखते हैं तो हम समझते हैं, कोई मारा जा रहा है। महावीर को यह नहीं दिखाई पड़ेगा कि कोई मारा जा रहा है। क्योंकि महा वीर जानते हैं कि जो भी जीवन का तत्व है, वह मारा नहीं जा सकता, वह अमृत है। दूसरी बात, जब भी हम देखते हैं कि कोई मारा जा रहा है तो हम सोचते हैं मारने वाला ही जिम्मेवार है। महावीर को इसमें फर्क दिखाई पड़ेगा। जो मारा जाता है, वह भी बहुत गहरे अर्थों में जिम्मेवार है। और हो सकता है केवल अपने ही किए गए किसी कर्म का प्रतिफल पाता हो।
जब भी हम देखेंगे तो मारने वाला जिम्मेवार और मारा जाने वाला हमेशा निर्दोष मालूम पड़ेगा। हमारी दया और हमारी करुणा उसकी तरफ बहेगी, जो मारा जा रहा है। महावीर के लिए ऐसा जरूरी नहीं होगा, क्योंकि महावीर का देखना और गहरा है। हो सकता है कि जो मार रहा है वह केवल एक प्रतिकर्म पूरा कर रहा हो। क्योंकि इस जगत में कोई अकारण नहीं मारा जाता है। जब कोई मारा जाता है तो वह उसके ही कर्मों के फल कीशृंखला का हिस्सा होता है।
इसका यह अर्थ नहीं है कि जो मार रहा है वह जिम्मेवार नहीं। लेकिन हमारे और महावीर के देखने में फर्क पड़ेगा। जब भी हम देखते हैं, कोई मारा जा रहा है तो हम सोचते हैं निश्चित ही पाप हो रहा है; निश्चित ही बुरा हो रहा है। क्योंकि हमारी दृष्टि बहुत सीमित है। महावीर इतना सीमित नहीं देख सकते। महावीर देखते हैं जीवन की अनंतशृंखला को। यहां कोई भी कर्म अपने में पूरा नहीं है वह पीछे से जुड़ा है, और आगे से भी।
हो सकता है कि अगर हिटलर को किसी आदमी ने मार डाला होता उन्नीस सौ तीस
के पहले तो वह आदमी हत्यारा सिद्ध होता। हम नहीं देख पाते कि एक ऐसा आदमी मारा जा रहा है जो कि एक करोड़ लोगों की हत्या करेगा। महावीर ऐसा भी देख पाते हैं। और तब तय करना मुश्किल है कि हिटलर का हत्यारा सचमुच बुरा कर रहा था या अच्छा कर रहा था। क्योंकि हिटलर अगर मरे तो करोड़ लोग बच सकते हैं। फिर भी इसका यह अर्थ नहीं है कि हिटलर को जो मार रहा था वह अच्छा ही कर रहा था। सच तो यह है कि महावीर जैसे लोग जानते हैं कि इस पृथ्वी पर अच्छा और बुरा ऐसा चुनाव नहीं है; कम बुरा और ज्यादा बुरा, ऐसा ही चुनाव है--लेसर ईविल का चुनाव है। हम आमतौर से दो हिस्सों में तोड़ लेते हैं--यह अच्छा और यह बुरा। हम जिंदगी को अंधेरे और प्रकाश में तोड़ लेते हैं। महावीर जानते हैं कि जिंदगी में ऐसा तोड़ नहीं है। यहां जब भी आप कुछ कर रहे हैं तो ज्यादा से ज्यादा इतना ही कहा जा सकता है कि जो सबसे कम, कम से कम बुरा

विकल्प था वह आप कर रहे हैं। वह आदमी भी बुरा कर रहा है जो हिटलर को मार रहा है, लेकिन जो संभव हो सकता है हिटलर से वह इतना बुरा है कि इस आदमी को बुरा कहें?
तो पहली बात मैं यह कहना चाहता हूं जैसा आप देखते हैं वैसा महावीर नहीं देखेंगे। इस देखने में यह बात भी जोड़ लेनी जरूरी है कि महावीर जानते हैं कि इस जीवन में चौबीस घंटे अनेक तरह की हत्या हो ही रही है। आपको कभी- कभी दिखाई पड़ती है। जब आप चलते हैं तब किसी की आप हत्या कर रहे हैं। जब आप श्वास लेते हैं तब आप किसी की हत्या कर रहे हैं। अगर आप भोजन करते हैं तब किसी की हत्या कर रहे हैं। आपकी आंख की पलक भी झपकी है तो हत्या हो रही है। हमें तो जब कभी कोई किसी की छाती में छुरा भोंकता है, तभी हत्या दिखाई पड़ती है।
महावीर देखते हैं कि जीवन की जो व्यवस्था है वह हिंसा पर ही खड़ी है। यहां चौबीस घंटे प्रतिपल हत्या ही हो रही है। एक मित्र मेरे पास आए थे, वे कह रहे थे कि महावीर जहां चलते थे, वहां अनेक-अनेक मीलों तक अगर लोग बीमार होते तो वे तत्काल ठीक हो जाते थे। मेरा मन हुआ उनसे कहूं कि शायद उन्हें बीमारी के पूरे रहस्यों का पता नहीं है। क्योंकि जब आप बीमार होते हैं तो आप तो बीमार होते हैं लेकिन अनेक कीटाणु आपके भीतर जीवन पाते हैं। अगर महावीर के आने से आप ठीक हो जाएंगे तो अन्य कीटाणु मर जाएंगे तत्काल। तो महावीर इस झंझट में न पड़ेंगे, ध्यान रखना। क्योंकि आप कुछ विशिष्ट हैं, ऐसा महावीर नहीं मानते। यहां प्रत्येक प्राण का मूल्य बराबर है। प्राण का मूल्य है। और आप अकेले बीमार होते हैं तब करोड़ों जीवन आपके भीतर पनपते हैं और स्वस्थ होते हैं। आप अगर सोचते हों कि महावीर कृपा करके और आपको ठीक कर दें, तो ऐसी कृपा महावीर को करनी बहुत मुश्किल होगी, क्योंकि आपके ठीक होने में करोड़ों का नष्ट होना निहित है। और आप इतने मूल्यवान नहीं हैं जितना आप सोचते हैं। क्योंकि वह जो करोड़ों आपके भीतर जी रहे हैं, वे भी प्रत्येक अपने को इतना ही मूल्यवान समझते हैं। आपका उनको पता भी नहीं है। आपके शरीर में जब कोई रोग के कीटाणु पलते हैं तो उनको पता भी नहीं है कि आप भी हैं। आप सिर्फ उनका भोजन हैं।
तो जैसा हम देखते हैं हत्या को, उतना सरल सवाल महावीर के लिए नहीं है, जटिल है ज्यादा। महावीर के लिए जीवेषणा ही हिंसा है, हत्या है। वह किसकी जीवेषणा है, इसका कोई सवाल नहीं उठता। कौन जीना चाहता है, वह हत्या करेगा। ऐसा भी नहीं है कि जो जीवेषणा छोड़ देता है, उससे हत्या बंद हो जाएगी। जब तक वह जीएगा तब तक हत्या उससे भी चलेगी। इतना महावीर कहते हैं--उसका संबंध विच्छिन्न हो गया, जीवेषणा के कारण उसका संबंध था।
महावीर भी ज्ञान के बाद चालीस वर्ष जीवित रहे। इन चालीस वर्षों में महावीर भी चलेंगे तो कोई मरेगा। उठेंगे तो कोई मरेगा। यद्यपि महावीर इतने संयम में जीते हैं कि न्यूनतम जो संभव हो, तो रात एक ही करवट सोते हैं, दूसरी करवट नहीं लेते। इससे कम करना मुश्किल है। एक ही करवट रात को गुजार देते हैं क्योंकि दूसरी करवट लेते हैं तो फिर कुछ जीवन मरेंगे। धीमे श्वास लेते हैं, कम से कम जीवन का ह्नास होता हो। लेकिन श्वास तो लेनी ही पड़ेगी। हम कह सकते हैं, कूदकर मर क्यों नहीं जाते हैं। अपने को समाप्त कर दें। लेकिन अगर अपने को समाप्त करेंगे तो एक आदमी के शरीर में सात करोड़ जीवन पलते हैं--साधारण स्वस्थ आदमी के, अस्वस्थ के तो और ज्यादा। तो महावीर एक पहाड़ से अपने को कूद कर मारते हैं तो सात करोड़ को साथ मारते हैं। जहर पी लें, तो भी सात करोड़ को साथ मारते हैं। महावीर जब देखते हैं हिंसा को, तब जटिल है सवाल। इतना आसान नहीं है, जितना आपकी आंखें देखती हैं। क्या है हत्या? कौन सी चीज हत्या है? महावीर के देखे तो जीवन को जीने
की कोशिश में ही हत्या है और जीवन को जीने में हत्या है। हत्या प्रतिपल चल रही है। और प्रत्येक जीना चाहता है इसलिए जब उस पर हमला होता है तब उसे लगता है हत्या हो रही है। बाकी समय हत्या नहीं होती है। अगर जंगल में आप जाकर शेर का शिकार करते हैं तो वह खेल है, और शेर जब आपका शिकार करे तब शिकार नहीं कहलाता वह, तब वह हत्या है। तब वह जंगली जानवर है, और आप बहुत सभ्य जानवर हैं।

और मजा यह है कि शेर आपको कभी नहीं मारेगा जब तक उसको भूख नहीं लगी हो
और आप तभी उसको मारेंगे जब आपको भूख न लगी हो, पेट भरा हो। कोई भूखे आदमी जंगल में शिकार करने नहीं जाते हैं। जिनको ज्यादा भोजन मिल गया है, जिनको अब पचाने का उपाय नहीं दिखाई पड़ता है, वे शिकार करने चले जाते हैं। शेर तो तभी मारता है जब भूखा हो, अनिवार्यता हो।
मैंने सुना है कि एक सर्कस में उन्होंने एक नया प्रदर्शन शुरू किया था। एक भेड़ को और एक शेर को एक ही कटघरे में रखने का, मैत्री का। लोग बड़े खुश होते थे, देख कर चमत्कृत होते थे कि शेर और भेड़ गले मिला कर बैठे हुए हैं। जैनी देखते तो बहुत ही खुश होते। वे भी अपने चित्र बनाए बैठे हुए हैं, शेर और गाय को साथ बिठलाया है। लेकिन एक आदमी थोड़ा चकित हुआ क्योंकि यह बड़ा कठिन मामला है। तो उसने जाकर मैनेजर से पूछा कि है तो प्रदर्शन बहुत अदभुत, लेकिन इसमें कभी झंझट नहीं आती?
उसने कहा कोई ज्यादा झंझट नहीं होती।
फिर भी उसने कहा कि शेर और भेड़ का साथ-साथ रहना! क्या कभी उपद्रव नहीं होता?
उस मैनेजर ने कहा कभी उपद्रव नहीं होता। सिर्फ हमें रोज एक नई भेड़ बदलनी पड़ती है। और कोई दिक्कत नहीं है, बाकी सब ठीक चलता है। और जब शेर भूखा नहीं रहता तब दोस्ती ठीक है, फिर कोई झंझट नहीं है। फिर वह दोस्ती चलती है। जब भूखा होता है, तब वह खा जाता है। दूसरे दिन हम दूसरी बदल देते हैं। यह प्रदर्शन में कोई इससे बाधा नहीं पड़ती।
शेर भी भेड़ पर हमला नहीं करता जब भूखा न हो। गैर अनिवार्य हिंसा कोई जानवर नहीं करता, सिवाय आदमी को छोड़ कर। लेकिन हमारी हिंसा हमें हिंसा नहीं मालूम पड़ती है। हम उसे नए-नए नाम और अच्छे-अच्छे नाम दे देते हैं। आदमी की हिंसा न हो। फिर आदमी के साथ भी सवाल नहीं है। इसमें भी हम विभाजन करते हैं। हमारे निकट जो जितना पड़ता है, उसकी हत्या हमें उतनी ज्यादा मालूम पड़ती है। अगर पाकिस्तानी मर रहा हो तो ठीक, हिंदुस्तानी मर रहा हो तो तकलीफ होती है। फिर हिंदुस्तानी में भी अगर हिंदू मर रहा हो तो मुसलमान को तकलीफ नहीं होती है। मुसलमान मर रहा हो तो जैनों को तकलीफ नहीं होती है, जैनी मर रहा हो तो हिंदू को तकलीफ नहीं होती।
और भी निकट हम खींचते चले आए हैं। दिगंबर मर रहा हो तो श्वेतांबर को कोई तकलीफ नहीं होती। श्वेतांबर मर रहा हो तो दिगंबर को कोई तकलीफ नहीं होती। फिर और हम नीचे निकल आते हैं फिर और कुछ--फिर आपके परिवार का कोई मर रहा हो तो तकलीफ होती है। और दूसरे परिवार का कोई मर रहा हो तो सहानुभूति दिखाई जाती है, होती तक नहीं। फिर वहां भी, अगर आपके ही ऊपर सवाल आ जाए कि आप बचें कि आपके पिता बचें? तो पिता को मरना पड़ेगा। भाई बचे कि आप बचें तो फिर भाई को मरना पड़ेगा। फिर इसमें भी हिसाब है। अगर आपका सिर बचे कि पैर बचे, तो पैर को कटना पड़ेगा।
मुल्ला नसरुद्दीन के गांव में एक सैनिक आया हुआ है। वह बहुत अपनी बहादुरी की बातें कर रहा है, काफी हाउस में बैठ कर। वह कह रहा है कि मैंने इतने सिर काट दिए, इतने सिर काट दिए।
मुल्ला बहुत देर सुनता रहा। उसने कहा कि दिस इ.ज नथिंग। यह कुछ भी नहीं है। एक दफा मैं भी गया था युद्ध में, मैंने न मालूम कितने लोगों के पैर काट दिए।
उस योद्धा ने कहा कि महाशय, अच्छा हुआ होता कि आप सिर काटते।
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि सिर कोई पहले ही काट चुका था। न मालूम कितनों के पैर काटकर हम घर आ गए, कोई जरा सी खरोंच भी नहीं लगी। तुम तो काफी पिटे-कुटे मालूम होते हो। तो आपको इकोनामी वहां भी करनी पड़ेगी, सिर और पैर का सवाल आपके काटने का हो तो पैर को कटवा डालिएगा और क्या करिएगा।
मैं हूं केंद्र सारे जगत का। अपने को बचाने के लिए सारे जगत को दांव
पर लगा सकता हूं। यही हिंसा है, यही हत्या है। महावीर इतना व्यापक देखते हैं, उस पर्सपेक्टिव में, उस परिप्रेक्ष्य में, आपको जो हत्या दिखाई पड़ गई है, वह महावीर को दिखाई पड़ेगी? ऐसी ही दिखाई पड़ेगी? इतना तो तय है कि ऐसी ही दिखाई नहीं पड़ेगी। और यह तो साफ ही है कि आपको वैसी नहीं दिखाई पड़ सकती है

जैसी महावीर को दिखाई पड़ेगी। इसलिए महावीर के लिए यह प्रश्न बहुत जटिल है। किसको आप बलात्कार कहते हैं? रास्ते पर बलात्कार हो रहा है, किसको आप बलात्कार कहते हैं? पृथ्वी पर सौ में निन्यानबे मौके पर बलात्कार ही हो रहा है। लेकिन किसको आप बलात्कार कहते हैं? पति करता है तो बलात्कार नहीं होता, लेकिन अगर पत्नी की इच्छा न हो तो पति का किया हुआ भी बलात्कार है। और कितनी पत्नियों की इच्छा है, कभी पतियों ने पूछा है?
बलात्कार का अर्थ क्या है? कानून ने सुविधा दे दी कि यह बलात्कार नहीं
है तो बलात्कार नहीं है। समाज ने सेक्शन दे दिया तो फिर बलात्कार नहीं है। बलात्कार है क्या? दूसरे की इच्छा के बिना कुछ करना ही बलात्कार है। हम सब दूसरे की इच्छा के बिना बहुत कुछ कर रहे हैं। सच तो यह है कि दूसरे की इच्छा को तोड़ने की ही चेष्टा में सारा मजा है। इसलिए जिस पुरुष ने कभी बलात्कार कर लिया किसी स्त्री से, वह किसी स्त्री से प्रेम करने में और सहज प्रेम करने में आनंद न पाएगा। क्योंकि जद्दोजहद से, जबरदस्ती से वह जो अहंकार की तृप्ति होती है, वह सहज नहीं होती है।
अगर आप किसी आदमी से कुश्ती लड़ रहे हों, वह अपने आप गिर कर लेट जाए और कहे--बैठ जाओ मेरी छाती पर, हम हार गए तो मजा चला गया। जब आप उसको गिराते हैं तो बड़ी मुश्किल से गिराते हैं। जितनी मुश्किल पड़ती है उसे गिराने में, उसकी छाती पर बैठ जाने में, उतना ही रस पाते हैं। रस किस बात का है। रस विजय का है। इसलिए तो पत्नी में उतना रस नहीं आता जितना दूसरे की पत्नी में रस आता है। क्योंकि दूसरे की पत्नी को अभी भी जीतने का मार्ग है। अपनी पत्नी जीती जा चुकी है--टेकन फॉर ग्रांटेड। अब उसमें कुछ मतलब है नहीं। रस क्या है? रस इस बात का है कि मैं कितने विजय के झंडे गाड़ दूं, चाहे वह कोई भी आयाम हो चाहे वह कामवासना हो, चाहे धन हो, चाहे पद हो। जहां जितना मुश्किल है, वहां उतना अहंकार को जीतने का उपाय है। वहां अहंकार उतना विजेता होकर बाहर निकलता है।
अगर महावीर से हम पूछें, गहरे में हम समझें तो जहां-जहां अहंकार चेष्टा करता है वहीं-वहीं बलात्कार हो जाता है। यह बलात्कार अनेक रूपों में है। लेकिन फिर भी हम जो देखेंगे, हम सदा ऐसा ही देखेंगे कि अगर एक व्यक्ति किसी स्त्री के साथ रास्ते पर बलात्कार कर रहा हो, तो सदा बलात्कार करने वाला ही जिम्मेवार मालूम पड़ेगा। लेकिन हमें ख्याल नहीं है कि स्त्री बलात्कार करवाने के लिए कितनी चेष्टाएं कर सकती है। क्योंकि अगर पुरुष को इसमें रस आता है कि वह स्त्री को जीत ले तो स्त्री को भी इसमें रस आता है कि वह किसी को इस हालत में ला दे।
कीर्कगार्ड ने अपनी एक अदभुत किताब लिखी है डायरी ऑफ ए सिड्यूसर, एक व्यभिचारी की डायरी। उसमें कीर्कगार्ड ने लिखा है कि वह जो व्यभिचारी है, जो डायरी लिख रहा है, एक काल्पनिक कथा है। वह व्यभिचारी जीवन के अंत में यह लिखता है कि मैं बड़ी भूल में रहा, मैं समझता था, मैं स्त्रियों को व्यभिचार के लिए राजी कर रहा हूं। आखिर में मुझे पता चला कि वे मुझसे ज्यादा होशियार हैं कि उन्होंने ही मेरे साथ व्यभिचार करवा लिया था। दे सिड्यूस्ड मी। दैट टेक्नीक वा.ज निगेटिव। इसलिए मुझे भ्रम बना रहा। कोई स्त्री कभी प्रस्ताव नहीं करती किसी पुरुष से विवाह करने का। प्रस्ताव करवा लेती है पुरुष से ही। इंतजाम सब करती है कि वह प्रस्ताव करे। प्रस्ताव करती नहीं है। यह स्त्री और पुरुष के मन का भेद है।
स्त्री के मन का ढंग बहुत सूक्ष्म है। आप देखते हैं कि अगर एक आदमी जा रहा है एक स्त्री को धक्का मारने, तो फौरन हमें लगता है कि गलती इसने किया। और वह स्त्री घर से पूरा इंतजाम करके चली है कि अगर कोई धक्का न मारे तो उदास लौटेगी। धक्का मारे तो भी चिल्ला सकती है। लेकिन चिल्लाने का कारण जरूरी नहीं है कि धक्का मारने पर नाराजगी है। चिल्लाने का सौ में निन्यानबे कारण यह है कि बिना चिल्लाए किसी को पता नहीं चलेगा कि धक्का मारा गया। पर यह बहुत गहरे में उसको भी पता न हो, इसकी पूरी संभावना है। क्योंकि स्त्री जितनी बन-ठन कर, जिस व्यवस्था से निकल रही है, वह धक्का मारने के लिए पूरा का पूरा निमंत्रण है। उस निमंत्रण में हाथ उनका है। हमारे सोचने के जो ढंग हैं वे एकदम हमेशा पक्षपाती हैं। हम हमेशा सोचते

हैं, कुछ हो रहा है तो एक आदमी जिम्मेवार है। हमें ख्याल ही नहीं आता कि इस जगत में जिम्मेवारी इतनी आसान नहीं, ज्यादा उलझी हुई है। दूसरा भी जिम्मेवार हो सकता है। और दूसरे की जिम्मेवारी गहरी भी हो सकती है। कुशल भी हो सकती है। चालाक भी हो सकती है। सूक्ष्म भी हो सकती है। महावीर जब देखेंगे तो पूरा देखेंगे। और उस पूरे देखने में, हमारे देखने में फर्क पड़ेगा। महावीर का जो "वि.जन" है, वह टोटल होगा।
अब दूसरी बात यह है कि महावीर कुछ करेंगे कि नहीं! भला अलग देखेंगे, यह
भी समझ लिया जाए। कुछ करेंगे कि नहीं? तो मैं आपसे कहना चाहता हूं महावीर कुछ न करेंगे, जो होगा उसे हो जाने देंगे। इस फर्क को समझ लें। आप रास्ते से गुजर रहे हैं और किसी की हत्या हो रही है तो आप खड़े होकर सोचेंगे कि क्या करूं। करूं कि न करूं? आदमी ताकतवर है कि कमजोर दिखता है? करूंगा तो फल क्या होंगे? किसी मिनिस्टर का रिश्तेदार तो नहीं है? करके उलटा मैं तो न फंसूंगा? आप पच्चीस बातें सोचेंगे, तब करेंगे। महावीर से कुछ होगा, सोचेंगे वे नहीं। सोचना वक्त बीते जा चुका। जिस दिन सोचना गया, उसी दिन वे महावीर हुए। विचार अब नहीं चलता। विचार हमेशा पार्शियल होता है, वि.जन टोटल होता है। विचार हमेशा पक्षपाती होता है; दृष्टि, दर्शन, पूर्ण होता है। महावीर को एक स्थिति दर्शन में दिखाई पड़ेगी। फिर जो हो जाएगा वह हो जाएगा। महावीर लौट कर भी नहीं सोचेंगे कि मैंने क्या किया? क्योंकि उन्होंने कुछ किया नहीं। इसलिए महावीर कहते हैं पूर्ण कृत्य, कर्म का बंधन नहीं बनता। टोटल एक्ट कोई बंधन नहीं लाता। कुछ उनसे होगा कि नहीं होगा, लेकिन उसे हम प्रिडिक्ट नहीं कर सकते, उसे हम कह नहीं सकते कि वे क्या करेंगे। महावीर भी नहीं कह सकते पहले से कि मैं क्या करूंगा। उस सिचुएशन में, उस स्थिति में महावीर से क्या होगा, इसके लिए कोई प्रिडिक्शन, कोई ज्योतिषी नहीं बता सकता।
हमारे बाबत प्रिडिक्शन हो सकता है, इसे थोड़ा समझ लेना चाहिए। जितनी
कम समझ हो, उतने हम प्रिडिक्टेबल होते हैं। जितनी हमारी नासमझी होगी, उतनी हमारे बाबत जानकारी बताई जा सकती है कि हम क्या करेंगे। मशीन के बाबत हम पूरे प्रिडिक्टेबल हो सकते हैं। जानवर के बाबत थोड़ी दिक्कत होती है, लेकिन फिर भी नब्बे प्रतिशत हम कह सकते हैं कि गाय आज सायं घर आकर क्या करेगी कि नहीं कह सकते? बिल्कुल कह सकते हैं। कभी-कभी भूल-चूक हो सकती है, क्योंकि गाय एकदम यंत्र नहीं है। लेकिन मशीन क्या करेगी, यह तो हम जानते हैं। जैसे-जैसे जीवन चेतना विकसित होती है, वैसे-वैसे अनप्रिडिक्टेबिलिटी बढ़ती है। साधारण आदमी के बाबत कहा जा सकता है कि यह कल सुबह क्या करेगा। महावीर या बुद्ध जैसे व्यक्तियों के बाबत नहीं कहा जा सकता कि वे क्या करेंगे। उनसे क्या होगा, यह बहुत अज्ञात और रहस्यपूर्ण है। क्योंकि उनके टोटल वि.जन में, उनकी पूर्ण दृष्टि में क्या दिखाई पड़ेगा, और उस दिखाई पड़ने को वे सोच कर कुछ करने नहीं जाएंगे। वहां दिखाई पड़ेगा, वहां कृत्य घटित हो जाएगा। वे दर्पण की तरह हैं। जो घटना चारों तरफ घट रही होगी वह दर्पण में प्रतिलक्षित हो जाएगी, परिलक्षित हो जाएगी, रिफ्लेक्ट हो जाएगी। और उसका जिम्मा महावीर पर बिल्कुल नहीं है।
अगर महावीर ने किसी की हत्या होते रोका या किसी पर व्यभिचार होते रोका तो महावीर कहीं किसी से कहेंगे नहीं कि मैंने किसी पर व्यभिचार होते रोका था। महावीर कहेंगे कि मैंने देखा था कि व्यभिचार हो रहा है और मैंने यह भी देखा था कि इस शरीर ने बाधा डाली। आई वा.ज ए विटनेस। महावीर गहरे में साक्षी ही बने रहेंगे, व्यभिचार के भी और व्यभिचार के रोके जाने के भी। तभी वे बाहर होंगे कर्म के, अन्यथा कर्म के बाहर नहीं हो सकते। विचार से, वासना से, इच्छा से, अभिप्राय से, प्रयोजन से किया गया कर्म फल को लाता है। महावीर के ज्ञान के बाद अब जो भी वे कर रहे हैं वह प्रयोजन रहित, लक्ष्य रहित, फल रहित, विचार रहित, शून्य से निकला हुआ कर्म है। शून्य से जब कर्म निकलता है तब वह भविष्यवाणी के बाहर होता है। मैं नहीं कह सकता कि महावीर क्या करेंगे। और अगर आपने महावीर से पूछा होता तो महावीर भी नहीं कह सकते थे कि मैं क्या करूंगा। महावीर कहेंगे कि तुम भी देखोगे कि क्या होता है, और मैं भी देखूंगा कि क्या होता है। करना मैंने छोड़ दिया है। इसलिए महावीर

या लाओत्से या बुद्ध या कृष्ण जैसे लोगों के कर्म को समझना इस जगत में सर्वाधिक दुरूह पहेली है।
हम क्या करते हैं, और हम पूछना क्यों चाहते हैं? हम पूछना इसलिए चाहते हैं कि अगर हमें पक्का पता चल जाए कि महावीर क्या करेंगे, तो वही हम भी कर सकते हैं। ध्यान रहे, महावीर हुए बिना आप वही नहीं कर सकते। हां, बिल्कुल वही करते हुए मालूम पड़ सकते हैं, लेकिन वही नहीं होगा। यही तो उपद्रव हुआ है। महावीर के पीछे ढाई हजार साल से लोग चल रहे हैं। और उन्होंने महावीर को विशेष स्थितियों में जो-जो करते देखा है, उसकी नकल कर रहे हैं। वह नकल है। उससे आत्मा का कोई अनुभव उपजता नहीं है। महावीर के लिए वह सहज कृत्य था, इनके लिए प्रयास-सिद्ध है। महावीर के लिए दृष्टि से निष्पन्न हुआ था, इनके लिए सिर्फ केवल एक बनाई गई आदत है। अगर महावीर किसी दिन उपवास से रह गए थे तो महावीर के लिए वह उपवास और ही अर्थ रखता था। उसके निहितार्थ अलग थे। हो सकता है उस दिन वे इतने आत्मलीन थे कि उन्हें शरीर का स्मरण ही न आया हो। लेकिन आज उनके पीछे जो उपवास कर रहा है, वह जब भोजन करता है तब उसे शरीर का स्मरण नहीं आता और जब वह उपवास करता है तब चौबीस घंटे शरीर का स्मरण आता है। अच्छा था कि वह भोजन ही कर लेता क्योंकि वह महावीर के ज्यादा निकट होता, शरीर के स्मरण न आने में। और भोजन न करके चौबीस घंटे शरीर का स्मरण ही कर रहा है। और महावीर का उपवास फलित हुआ था इसीलिए कि शरीर का स्मरण ही नहीं रहा था तो भूख का किसे पता चले, कौन भोजन की तलाश में जाए।
महावीर जैसे व्यक्तियों की अनुकृति नहीं बना जा सकता। कोई नहीं बन सकता। और सभी परंपराएं यही काम करती हैं। यही काम विनष्ट कर देता है। देख लेते हैं कि महावीर क्या कर रहे हैं। और इसी से दुनिया में सारे धर्मों के झगड़े खड़े होते हैं। क्योंकि कृष्ण ने कुछ और किया, बुद्ध ने कुछ और किया, क्राइस्ट ने कुछ और किया, सबकी स्थितियां अलग थीं। महावीर ने कुछ और किया। तो महावीर का अनुसरण करने वाला कहता है कि कृष्ण गलत कर रहे हैं क्योंकि महावीर ने ऐसा कभी नहीं किया। बुद्ध गलत कर रहे हैं क्योंकि महावीर ने ऐसा कभी नहीं किया। बुद्ध का मानने वाला कहता है कि बुद्ध ठीक कर रहे हैं। और ऐसी स्थिति में महावीर ने ऐसा नहीं किया, इससे सिद्ध होता है कि उन्हें ज्ञान नहीं हुआ था।
हम कर्मों से ज्ञान को नापते हैं, यहीं भूल हो जाती है। कर्म ज्ञान से पैदा होते हैं और ज्ञान कर्म से बहुत बड़ी घटना है। जैसे लहर पैदा होती है सागर में, लेकिन लहरों से सागर को नहीं नापा जाता। और अगर हिंद महासागर में और तरह की लहर पैदा होती है और प्रशांत महासागर में और तरह की हवाएं बहती हैं, और दिशाओं में बहती हैं; तो आप यह मत समझना कि हिंद महासागर सागर है और प्रशांत महासागर सागर नहीं है; क्योंकि वैसी लहर यहां कहां पैदा हो रही है! न पानी का वैसा रंग है।
महावीर की स्थितियों में महावीर क्या करते हैं, वही हम जानते हैं। बुद्ध की स्थितियों में बुद्ध क्या करते हैं, वही हम जानते हैं। फिर पीछे परंपरा जड़ हो जाती है। फिर हम पकड़ कर बैठ जाते हैं। फिर हम शास्त्रों में खोजते रहते हैं कि इस स्थिति में महावीर ने क्या किया था वही हम करें। न तो स्थिति है वही, और अगर स्थिति भी वही है तो एक बात तो पक्की है कि आप महावीर नहीं हैं। क्योंकि महावीर ने कभी नहीं लौट कर देखा कि किसने क्या किया था, वैसा मैं करूं। महावीर से जो हुआ इसलिए ठीक से समझें तो महावीर जो कर रहे हैं वह कृत्य नहीं है, एक्ट नहीं है, हैपनिंग है, वह घटना है। वैसा हो रहा है। वह कोई नियमबद्ध बात नहीं है। वह नियम मुक्त चेतना से घटी हुई घटना है। वह स्वतंत्र घटना है। इसीलिए कर्म का उसमें बंधन नहीं है। महावीर से जरूर बहुत कुछ होगा। क्या होगा, नहीं कहा जा सकता। कर्म उसका नाम नहीं है, होगा। हैपनिंग होगी। इसलिए मैं कोई उत्तर नहीं दे सकता कि महावीर क्या करेंगे।
प्रतिपल जीवन बदल रहा है। जिंदगी स्टिल फोटोग्राफ की तरह नहीं है। जैसा कि जड़ फोटोग्राफ होता है, वैसी नहीं है। जिंदगी चलचित्र की भांति है भागती हुई फिल्म की भांति, डाइनेमिक! वहां सब बदल रहा है, सब पूरे समय बदल

रहा है। सारा जगत बदला जा रहा है। सब बदला जा रहा है। हर बार नई स्थिति है। और हर बार नई स्थिति में महावीर हर बार नये ढंग से होंगे प्रकट।
अगर महावीर आज हों, तो जैनों को जितनी कठिनाई होगी उतनी किसी और को नहीं होगी। क्योंकि उनको बड़ी दिक्कत होगी। वे सिद्ध करेंगे कि यह आदमी गलत है, क्योंकि वह महावीर की पच्चीस सौ साल पहले वाली जिंदगी उठा कर जांच करेंगे कि वह आदमी वैसे ही कर रहा कि नहीं कर रहा है। और एक बात पक्की है कि महावीर वैसा नहीं कर सकते, क्योंकि वैसी कोई स्थिति नहीं है। सब बदल गया है... सब बदल गया है। और जब वह कुछ और करेंगे वे और करेंगे ही तो जिसने जड़ बांध रखी है वह बड़ी दिक्कत में पड़ेगा। वह कहेगा यह नहीं हो सकता है। यह आदमी गलत है। सही आदमी तो वही था जो पच्चीस सौ साल पहले था। इसलिए महावीर को जैन भर स्वीकार नहीं कर सकेंगे। हां, और कोई मिल जाएं नये लोग स्वीकार करने वाले, तो अलग बात है। यही बुद्ध के साथ होगा, यही कृष्ण के साथ होगा। होने का कारण है क्योंकि हम कर्मों को पकड़ कर बैठ जाते हैं।
कर्म तो राख की तरह हैं, धूल की तरह हैं। टूट गए पत्ते हैं वृक्षों के सूख गए पत्ते हैं वृक्षों के। उनसे वृक्ष नहीं नापे जाते। वृक्ष में तो प्रतिपल नये अंकुर आ रहे हैं। वहीं उसका जीवन है। सूखे पत्ते उसका जीवन नहीं है। सूखे पत्ते तो बताते यही हैं कि अब वे वृक्ष के लिए व्यर्थ होकर बाहर गिर गए हैं। सब कर्म आपके सूखे पत्ते हैं। वे बाहर गिर जाते हैं। भीतर तो जीवन प्रतिपल नया और हरा होता चला जाता है। वह डाइनेमिक है। हम सूखे पत्तों को इकट्ठा कर लेते हैं और सोचते हैं वृक्ष को जान लिया। सूखे पत्तों से वृक्षों का क्या लेना-देना है! वृक्ष का संबंध तो सतत धारा से है प्राण की; जहां नये पत्ते प्रतिपल अंकुरित हो रहे हैं। नये पत्ते कैसे अंकुरित होंगे, नहीं कहा जा सकता। क्योंकि वृक्ष सोच-सोच कर पत्ते नहीं निकालते। वृक्ष से पत्ते निकलते हैं। सूरज कैसा होगा, हवाएं कैसी होंगी, वर्षा कैसी होगी, चांद-तारे कैसे होंगे, इस सब पर निर्भर करेगा। उस सबसे पत्ते निकलेंगे। टोटल से निकलेगा सब, समग्र से निकलेगा सब। महावीर जैसे लोग कास्मिक में जीते हैं, समग्र में जीते हैं। कुछ नहीं कहा जा सकता कि वे क्या करेंगे। हो सकता है जिस पर बलात्कार हो रहा है, उसको डांटें-डपटें। कुछ कहा नहीं जा सकता। नहीं तो भूल हो जाती है।
मुल्ला नसरुद्दीन गुजर रहा है गांव से। देखा कि एक छोटे से आदमी को एक बहुत बड़ा, तगड़ा आदमी पिटाई कर रहा है। उसकी छाती पर बैठा हुआ है। मुल्ला को बहुत गुस्सा आ गया। मुल्ला दौड़ा और तगड़े आदमी पर टूट पड़ा। बामुश्किल तगड़ा आदमी काफी तगड़ा था; मुल्ला उसके लिए और भी काफी पड़ रहा था किसी तरह उसको नीचे गिरा पाया। दोनों ने मिल कर उसकी अच्छी मरम्मत की।
जैसे ही वह छोटा आदमी छूटा, वह निकल भागा। वह बड़ा आदमी बहुत देर से कह रहा था, मेरी सुन भी, लेकिन मुल्ला इतने गुस्से में था कि सुने कैसे। जब वह निकल भागा तब मुल्ला ने कहा तू क्या कहता है?
वह बोला कि वह मेरी जेब काट कर भाग गया। वह मेरी जेब काट रहा था, उसी में झगड़ा हुआ। और तूने उलटे कुटाई कर दिया और उसको निकाल दिया।
मुल्ला ने कहा यह तो बहुत बुरी बात है। लेकिन तूने पहले क्यों नहीं कहा?
उस आदमी ने कहा मैं बार-बार कह रहा हूं, लेकिन तू सुने तब न! तू तो एकदम पिटाई में लग गया।
जिंदगी बहुत जटिल है। वहां कौन पिट रहा है, जरूरी नहीं कि वह पिटने के योग्य हो। कौन पीट रहा है, यह जरूरी नहीं कि वह बेचारा गलत ही कर रहा है। मुल्ला ने कहा--उस आदमी को मैं ढूंढूंगा। ढूंढा भी। लेकिन जो छोटा सा आदमी इतने बड़े आदमी की जेब काटकर निकल भागा था--वह मुल्ला को मिल गया और उसने फौरन मनीबेग जो चुराया था, मुल्ला को दे दिया, कहा इसे संभाल, असली मालिक तू ही है। क्योंकि मैं तो पिट गया था।
जिंदगी जटिल है। महावीर जैसे व्यक्ति उसको उसकी पूरी जटिलता में देखते हैं और जब वह उसकी पूरी जटिलता में दिखाई पड़ती है तो क्या होगा उनसे, कहना आसान नहीं है। और प्रत्येक घटना में जटिलता बदलती चली जाती है।
डाइनेमिक बहाव है।

संयम पर आज कुछ समझ लें। क्योंकि महावीर उसे धर्म का दूसरा महत्वपूर्ण सूत्र कहते हैं। अहिंसा आत्मा है, संयम जैसे श्वास और तप जैसे देह। महावीर ने शुरू किया, कहा पहले अहिंसा-संजमो तवो। तप आखिर में कहा, संयम बीच में कहा, अहिंसा पहले कहा। हम जब भी देखते हैं, तप हमें पहले दिखाई पड़ता है। संयम पीछे दिखाई पड़ता है। अहिंसा तो शायद ही दिखाई पड़ती है, बहुत मुश्किल है देखना।
महावीर भीतर से बाहर की तरफ चलते हैं, हम बाहर से भीतर की तरफ चलते हैं। इसलिए हम तपस्वी की जितनी पूजा करते हैं उतनी अहिंसक की न कर पाएंगे। क्योंकि तप हमें दिखाई पड़ता है, वह देह जैसा बाहर है। अहिंसा गहरे में है। वह दिखाई नहीं पड़ती, वह अदृश्य है। संयम का हम अनुमान लगाते हैं। जब हमें कोई तपस्वी दिखाई पड़ता है तो हम समझते हैं, संयमी है। क्योंकि वह तप कैसे करेगा! जब कोई हमें भोगी दिखाई पड़ता है तो हम समझते हैं, असंयमी है, नहीं भोग कैसे करेगा! जरूरी नहीं है यह। तपस्वी भी असंयमी हो सकता है और ऊपर से दिखाई पड़ने वाला भोगी भी संयमी हो सकता है। इसलिए हम संयम का सिर्फ अनुमान लगाते हैं, वह इनोसेंट है। तब हमें दिखाई पड़ जाता है, वह साफ है। संयम का हम अनुमान लगाते हैं, वह साफ नहीं है। वह अनुमान हमारा ऐसा ही है जैसे रास्ते पर गिरा हुआ पानी देख कर हम सोचें कि वर्षा हुई होगी। म्युनिसिपल की मोटर भी पानी गिरा जा सकती है। पुराने तर्कशास्त्रों की किताबों में लिखा है कि जहां-जहां पानी गिरा दिखाई पड़े समझना कि वर्षा हुई होगी, क्योंकि उस वक्त म्युनिसिपल की मोटर नहीं थी।
संयम... हम अनुमान लगाते हैं कि जो आदमी तप कर रहा है, वह संयमी है-- जरूरी नहीं। तप करने वाला असंयमी हो सकता है, यद्यपि संयमी के जीवन में तप होता है। लेकिन तपस्वी के जीवन में संयम का होना आवश्यक नहीं है। महावीर भीतर से चलते हैं। क्योंकि वहीं प्राण है और वहीं से चलना उचित है। क्षुद्र से विराट की तरफ जाने में सदा भूलें होती हैं। विराट से क्षुद्र की तरफ आने में कभी भूल नहीं होती। क्योंकि क्षुद्र से जो विराट की तरफ चलता है वह क्षुद्र की धारणाओं को विराट तक ले जाता है। इससे भूल होती है। उसकी संकीर्ण दृष्टि को वह खींचता है। उससे भूल होती है।
तो संयम का पहले तो हम अर्थ समझ लें। संयम से जो समझा जाता रहा है, वह महावीर का प्रयोजन नहीं है। जो आमतौर से समझा जाता है, उसका अर्थ है निरोध, विरोध, दमन, नियंत्रण, कंट्रोल। ऐसा भाव हमारे मन में बैठ गया है संयम से। कोई आदमी अपने को दबाता है, रोकता है, वृत्तियों को बांधता है, नियंत्रण रखता है तो हम कहते हैं, संयमी है। संयम की हमारी परिभाषा बड़ी निषेधात्मक है, बड़ी निगेटिव है। उसका कोई विधायक रूप हमारे ख्याल में नहीं है। एक आदमी कम खाना खाता है, तो हम कहते हैं कि संयमी है। एक आदमी कम सोता है तो हम कहते हैं कि संयमी है। एक आदमी विवाह नहीं करता है तो हम कहते हैं, संयमी है। एक आदमी कम कपड़े पहनता है तो हम कहते हैं, संयमी है। सीमा बनाता है तो हम कहते हैं, संयमी है। जितना निषेध करता है, जितनी सीमा बनाता है, जितना नियंत्रण करता है, जितना बांधता है अपने को, हम कहते हैं उतना संयमी है।
लेकिन मैं आपसे कहता हूं कि महावीर जैसे व्यक्ति जीवन को निषेध की परिभाषाएं नहीं देते। क्योंकि जीवन निषेध से नहीं चलता है। जीवन चलता है विधेय से, पाजिटिव से। जीवन की सारी ऊर्जा विधेय से चलती है। तो महावीर की यह परिभाषा नहीं हो सकती। महावीर की परिभाषा तो संयम के लिए बड़ी विधेय की होगी, बड़ी विधायक होगी। सशक्त होगी, जीवंत होगी। इतनी मुर्दा नहीं हो सकती जितनी हमारी परिभाषा है।
इसीलिए हमारी परिभाषा मानकर जो संयम में जाता है उसके जीवन का तेज बढ़ता हुआ दिखाई नहीं पड़ता, और क्षीण होता हुआ मालूम पड़ता है। मगर हम कभी फिक्र नहीं करते, हम कभी ख्याल नहीं करते कि महावीर ने जो संयम की बात कही है उससे तो जीवन की महिमा बढ़नी चाहिए, उससे तो प्रतिभा और आभामंडित होनी चाहिए। लेकिन जिनको हम तपस्वी कहते हैं उनकी आई क्यू की कभी जांच करवाई कि उनकी बुद्धि का कितना अंक बढ़ा? उनकी बुद्धि का अंक और कम होगा लेकिन हमें प्रयोजन नहीं कि इनकी प्रतिभा नीचे गिर रही है। हमें प्रयोजन है कि रोटी

कितनी खा रहे हैं, कपड़ा कितना पहन रहे हैं। बुद्धिहीन से बुद्धिहीन टिक सकता है, अगर वह रोटी बना ले अगर दो रोटी पर राजी हो जाए, अगर एक बार भोजन को तैयार हो जाए।
एक साधु मेरे पास आए थे। वे मुझसे कहने लगे कि आपकी बात मुझे ठीक लगती है। मैं छोड़ देना चाहता हूं यह परंपरागत साधुता। लेकिन मैं बड़ी मुश्किल में पडूंगा। अभी करोड़पति मेरे पैर छूता है। कल वह मुझे पहरेदार नौकरी भी देने को तैयार नहीं हो सकता, वही आदमी। कभी सोचा है आपने कि जिसके आप पैर छूते हैं अगर वह घर में बर्तन मलने के लिए आपके पास आए तो आप कहेंगे, सर्टिफिकेट है? कहां करते थे नौकरी, पहले? कहां तक पढ़े हो? चोरी-चपाटी तो नहीं करते? लेकिन पैर छूने में किसी प्रमाण-पत्र की कोई जरूरत नहीं है। इतना प्रमाण-पत्र काफी होता है कि आपकी बुद्धि की समझ में आ जाए कि यह संयमी है। संयम का जैसे अपने में हमने कोई मूल्य समझ रखा है कि जो अपने को रोक लेता है तो संयमी है। रोक लेने में जैसे अपना कोई गुण है। नहीं, जीवन के सारे गुण फैलाव के हैं। जीवन के सारे गुण विस्तार के हैं। जीवन के सारे गुण विधायक उपलब्धि के हैं, निषेध के नहीं हैं। महावीर के लिए संयम और है। उसकी हम बात करें, लेकिन हम जिसे संयम समझते हैं उसको भी हम ख्याल में ले लें।
हमारे लिए संयम का अर्थ है अपने से लड़ता हुआ आदमी; महावीर के लिए संयम
का अर्थ है अपने साथ से राजी हुआ आदमी। हमारे लिए संयम का अर्थ है अपनी वृत्तियों को संभालता हुआ आदमी; महावीर के लिए संयम का अर्थ है अपनी वृत्तियों का मालिक हो गया जो। सम्हालता वही है, जो मालिक नहीं है। सम्हालना पड़ता ही इसलिए है कि वृत्तियां अपनी मालकियत रखती हैं। लड़ना पड़ता इसीलिए है कि आप वृत्तियों से कमजोर हैं। अगर आप वृत्तियों से ज्यादा शक्तिशाली हैं तो लड़ने की जरूरत नहीं रहती। वृत्तियां अपने से गिर जाती हैं। महावीर के लिए संयम का अर्थ है आत्मवान, इतना आत्मवान कि वृत्तियां उसके सामने खड़ी भी नहीं हो पातीं, आवाज भी नहीं दे पातीं। उसका इशारा पर्याप्त है। ऐसा नहीं है कि उसे क्रोध को दबाना पड़ता है, ताकत लगा कर। क्योंकि जिसे ताकत लगा कर दबाना पड़े, उससे हम कमजोर हैं। और जिसे हमने ताकत लगा कर दबाया है, उसे हम कितना ही दबाएं, हम दबा न पाएंगे। वह आज नहीं कल टूटता ही रहेगा, फूटता ही रहेगा, बहता ही रहेगा। महावीर कहते हैंः संयम का अर्थ है आत्मवान इतना आत्मवान है व्यक्ति कि क्रोध क्षमता नहीं जुटा सकता कि उसके सामने आ जाए।
एक कालेज में मैं था। वहां एक बहुत मजेदार घटना घटी। उस कालेज के प्रिंसिपल बहुत शक्तिशाली आदमी थे। बहुत दिन से प्रिंसिपल थे। उम्र भी हो गई रिटायर होने की, लेकिन वे रिटायर नहीं होते थे। प्राइवेट कालेज था। कमेटी के लोग उनसे डरते थे। प्रोफेसर उनसे डरते थे। फिर दस-पांच प्रोफेसरों ने इकट्ठा होकर कुछ ताकत जुटाई। और उनमें से जो सबसे ताकतवर प्रोफेसर था, उसको आगे बढ़ाने की कोशिश की और कहा कि तुम सबसे ज्यादा पुराने भी हो, सीनियर मोस्ट भी हो, तुम्हें प्रिंसिपल होना चाहिए और इस आदमी को अब हटना चाहिए। सारे प्रोफेसरों ने ताकत लगा कर मैंने उनसे कहा भी कि देखो, तुम झंझट में पड़ोगे, क्योंकि मैं जानता हूं कि तुम सब कमजोर हो। और जिस आदमी को तुम आगे बढ़ा रहे हो, वह आदमी बिल्कुल कमजोर है। फिर भी वे नहीं माने। उन्होंने कहा सब संगठित हैं, संगठन में शक्ति है। सारे प्रोफेसर प्रिंसिपल के खिलाफ इकट्ठे हो गए और एक दिन उन्होंने कालेज पर कब्जा भी कर लिया। और जिन सज्जन को चुना था, उनको प्रिंसिपल की कुर्सी पर बिठा दिया।
मैं देखने पहुंचा कि वहां क्या होने वाला है। जो प्रिंसिपल थे उन्हें ठीक वक्त पर, उनके घर खबर कर दी गई कि ऐसा-ऐसा हुआ है। उन्होंने कहा, हो जाने दो। वे ठीक वक्त पर ग्यारह बजे, जैसे रोज आते थे, आए दफ्तर में। वे दफ्तर में आए तो जिसको बिठाला था, उस आदमी ने उठ कर नमस्कार किया और कहा आइए, बैठिए। वह तत्काल हट गया वहां से। उस प्रिंसिपल ने पुलिस को खबर नहीं की। इन लोगों ने खबर कर रखी थी कि कोई गड़बड़ हो तो! मैंने उनसे पूछा कि आपने

पुलिस को खबर नहीं की? उन्होंने कहा इन लोगों के लिए पुलिस को खबर! इनको जो करना है, करने दो।
शक्ति जब स्वयं के भीतर होती है तो वृत्तियों से लड़ना नहीं पड़ता। वृत्तियां आत्मवान व्यक्ति के सामने सिर झुका कर खड़ी हो जाती हैं; वे तो कमजोर आत्मा के सामने ही सिर उठाती हैं। इसलिए तो हमने आमतौर से सुन रखी है परिभाषा संयम की कि जैसे कोई सारथी रथ में बंधे हुए घोड़ों की लगामें पकड़े हुए बैठा है ऐसा अर्थ संयम का नहीं है। वह दमन का अर्थ है, और गलत है। संयम का महावीर के लिए तो अर्थ है जैसे कोई शक्तिवान अपनी शक्ति में प्रतिष्ठित है। उसकी शक्ति में प्रतिष्ठित होना ही, उसका अपनी ऊर्जा में होना ही वृत्तियों का निर्बल और नपुंसक हो जाना है, इम्पोटेंट हो जाना है। महावीर अपनी कामवासना पर वश पाकर ब्रह्मचर्य को उपलब्ध नहीं होते। ब्रह्मचर्य की इतनी ऊर्जा है कि कामवासना सिर नहीं उठा पाती। यह विधायक अर्थ है। महावीर अपनी हिंसा से लड़ कर अहिंसक नहीं बनते। अहिंसक हैं, इसलिए हिंसा सिर नहीं उठा पाती। महावीर अपने क्रोध से लड़कर क्षमा नहीं करते। क्षमा की इतनी शक्ति है कि क्रोध को उठने का अवसर कहां है! महावीर के लिए अर्थ है स्वयं की शक्ति से परिचित हो जाना संयम है।
संयम इसे क्यों नाम दिया है? संयम नाम बहुत अर्थपूर्ण है और संयम का, संयम शब्द का अर्थ भी बहुत महत्वपूर्ण है। अंग्रेजी में जितनी भी किताबें लिखी गई हैं और संयम के बाबत जिन्होंने भी लिखा है, उन्होंने उसका अनुवाद कंट्रोल किया है जो कि गलत है। अंग्रेजी में सिर्फ एक शब्द है जो संयम का अनुवाद बन सकता है, लेकिन भाषाशास्त्री को ख्याल में नहीं आएगा। क्योंकि भाषा की दृष्टि से वह ठीक नहीं है। अंग्रेजी में जो शब्द है ट्रैंक्विलिटी, वह संयम का अर्थ हो सकता है। संयम का अर्थ है इतना शांत कि विचलित नहीं होता, जो। संयम का अर्थ है अविचलित, निष्कंप। संयम का अर्थ है ठहरा हुआ। गीता में कृष्ण ने जिसे स्थितप्रज्ञ कहा है, महावीर के लिए वही संयम है। संयम का अर्थ है ठहरा हुआ, अविचलित, निष्कंप, डांवाडोल नहीं होता है, जो। जो यहां-वहां नहीं डोलता रहता, जो कंपित नहीं होता रहता, जो अपने में ठहरा हुआ है। जो पैर जमाकर अपने में खड़ा हुआ है।
इसे हम और दिशा से समझें तो ख्याल में आ जाएगा। अगर संयम का ऐसा अर्थ
है तो असंयम का अर्थ हुआ कंपन, वेवरिंग, ट्रेंबलिंग। यह जो कंपता हुआ मन है, और कंपते हुए मन का नियम है कि वह एक अति से दूसरी अति पर चला जाता है। अगर कामवासना में जाएगा तो अति पर चला जाएगा। फिर ऊबेगा, परेशान होगा क्योंकि किसी भी वासना में होना संभव नहीं है सदा के लिए। सब वासनाएं उबा देती हैं, सब वासनाएं घबड़ा देती हैं क्योंकि उनसे मिलता कुछ भी नहीं है। मिलने के जितने सपने थे, वे और टूट जाते हैं। सिवाय विफलता और विषाद के कुछ हाथ नहीं लगता। तो वासना घिरा मन अति पर जाता है, फिर वासना से ऊब जाता है, घबड़ा जाता है फिर दूसरी अति पर चला जाता है। फिर वह वासना के विपरीत खड़ा हो जाता है। कल तक ज्यादा खाता था, फिर एकदम अनशन करने लगता है।
इसलिए ध्यान रखना, अनशन की धारणा सिर्फ ज्यादा भोजन उपलब्ध समाजों में होती है। अगर जैनियों को उपवास और अनशन अपील करता है तो उसका कारण यह नहीं है कि वे महावीर को समझ गए हैं कि उनका क्या मतलब होता है। उसका कुल मतलब इतना है कि वह ओवर-फैड समाज है। ज्यादा उनको खाने को मिला हुआ है, और कोई कारण नहीं है। कभी आपने देखा है, गरीब का जो धार्मिक दिन होता है, उस दिन वह अच्छा खाना बनाता है। और अमीर का जो धार्मिक दिन होता है, उस दिन वह उपवास करता है। अजीब मामला है। अजीब मजा है। तो जितने गरीब धर्म हैं दुनिया में, उनका उत्सव का दिन ज्यादा भोजन का दिन है। जितने अमीर धर्म हैं दुनिया में, उनके उत्सव का दिन उपवास का दिन है। जहां-जहां भोजन बढ़ेगा वहां-वहां उपवास का कल्ट बढ़ता है। आज अमरीका में जितने उपवास का कल्ट है, आज दुनिया में कहीं भी नहीं है। अमरीका में जितने लोग आज उपवास की चर्चा करते हैं और फास्टिंग की सलाह देते हैं, नेचरोपैथी पर लोग उत्सुक होते हैं, उतने दुनिया में कहीं भी नहीं। उसका कारण है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि आप महावीर को समझ कर उत्सुक हो रहे हैं। आप ज्यादा खा गए हैं, इसलिए उत्सुक हो रहे हैं। दूसरी अति पर चले जाएंगे। पर्युषण आएगा, आठ दिन,

दस दिन आप कम खा लेंगे और दस दिन योजनाएं बनाएंगे खाने की, आगे। और दस दिन के बाद पागल की तरह टूटेंगे और ज्यादा खा जाएंगे और बीमार पड़ेंगे। फिर अगले वर्ष यही होगा।
सच तो यह है कि ज्यादा खाने वाला जब उपवास करता है तो उससे कुछ उपलब्ध नहीं होता, सिवाय इसके कि उसको भोजन करने का रस फिर से उपलब्ध हो, रि- ओरिएंटेशन हो जाता है। आठ-दस दिन भूखे रह लिए, स्वाद जीभ में फिर आ जाता है। और महावीर कहते हैं उपवास में रस से मुक्ति होनी चाहिए, उनका रस और प्रगाढ़ हो जाता है। उपवास में सिवाय रस के बाबत आदमी और कुछ नहीं सोचता, रस चिंतन चलता है और योजना बनती है। भूख जगती है, और कुछ नहीं होता। मर गई भूख, स्टिल हो गई भूख, फिर सजीव हो जाती है। दस दिन के बाद आदमी टूट पड़ता है जोर से भोजन पर। अति पर चला जाता है मन। असंयम है एक अति से दूसरी अति, अति पर डोलते रहना। फ्राम वन एक्सट्रीम टु दि अदर। संयम का अर्थ है मध्य में हो जाना, अनति नो एक्सट्रीम।
अगर हम समझते हों कि ज्यादा भोजन असंयम है, तो मैं आपसे कहता हूं कि कम भोजन भी असंयम है, दूसरी अति पर। सम्यक आहार संयम है, सम्यक आहार बड़ी मुश्किल चीज है। ज्यादा भोजन करना बहुत आसान है। बिल्कुल भोजन न करना बहुत आसान है। ज्यादा खा लेना आसान, कम खा लेना आसान सम्यक आहार अति कठिन है। क्योंकि मन जो है, वह सम्यक पर रुकता ही नहीं। और महावीर की शब्दावली में अगर कोई शब्द सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है तो वह सम्यक है। सम्यक का अर्थ है इन दि मिडल, नैवर टु दि एक्सट्रीम। कभी अति पर नहीं, सम। जहां सब चीजें सम हो जाती हों, अति का कोई तनाव नहीं रह जाता, जहां सब चीजें ट्रैंक्विलिटी को उपलब्ध हो जाती हैं। जहां न इस तरफ खींचे जाते, न उस तरफ। जहां दोनों के मध्य में खड़े हो जाते हैं। वह जो समस्वर है जीवन का, सभी दिशाओं में सभी दिशाओं में, उस समस्वरता को पा लेना संयम है। हम उसे कभी न पा सकेंगे। क्योंकि हम निषेध करते हैं। निषेध में हम दूसरी अति पर होते हैं। निषेध के लिए दूसरी अति पर जाना जरूरी होता है।
सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन एक चुनाव में खड़ा हो गया। दौरा कर रहा था अपने कांस्टिट्यूएंसी का, अपने चुनाव-क्षेत्र का। बड़े नगर में आया, जो केंद्र था चुनावक्षेत्र का। मित्रों से मिला। एक मित्र ने कहा कि फलां आदमी तुम्हारे खिलाफ ऐसा ऐसा बोलता था। तो मुल्ला जितनी गाली जानता था, उसने सब दीं।
उसने कहा--वह आदमी कोई आदमी है, शैतान की औलाद है। और एक दफा मुझे चुन जाने दो, उसे नरक भिजवा कर रहूंगा।
उस मित्र ने कहा कि मैंने तो सिर्फ सुना था कि मुल्ला, तुम बहुत अच्छी गालियां दे सकते हो, इसलिए मैंने यह कहा। वह आदमी तुम्हारा बड़ा प्रशंसक है।
मुल्ला ने कहा कि मैं पहले से ही जानता हूं, वह देवता है। एक दफा मुझे चुन जाने दो, देखना, मैं उसकी पूजा करवा दूंगा, मंदिरों में बिठा दूंगा। वह आदमी देवता है।
उस आदमी ने कहा मुल्ला, इतनी जल्दी तुम बदल जाते हो?
मुल्ला ने कहा कौन नहीं बदल जाता? सभी बदल जाते हैं। मन ऐसा ही बदलता है। जो आज रूप की देवी मालूम पड़ती है, कल वही साक्षात कुरूपता मालूम पड़ सकती है।
मन तत्काल एक अति से दूसरी अति पर चला जाता है। जिसे आज आप शिखरों पर बिठाते हैं, कल उसे आप घाटियों में उतार देते हैं। मन बीच में नहीं रुकता। क्योंकि मन का अर्थ है तनाव, टेंशन। बीच में रुकेंगे तो तनाव तो होगा नहीं। जब तक अति पर न हो तब तक तनाव नहीं होता। इसलिए एक अति से दूसरी अति पर मन डोलता रहता है। मन जी ही सकता है अति में। संयम में तो मन समाप्त हो जाता है। इसलिए जब आप कहते हैं फलां आदमी के पास बड़ा संयमी मन है तब आप बिल्कुल गलत कहते हैं। संयमी के पास मन होता ही नहीं। इसलिए झेन-बौद्धों में जो फकीर हैं वे कहते हैं संयम तभी उपलब्ध होता है जब नो-माइंड उपलब्ध होता है। जब मन नहीं रह जाता है। कबीर ने कहा है जब अ-मनी अवस्था आती है, नो- माइंड की, अ-मनी-मन नहीं रह जाता, तभी संयम उपलब्ध होता है। अगर हम ऐसा कहें

कि मन ही असंयम है, तो कुछ अतिशयोक्ति न होगी। ठीक ही होगा यही। मन ही असंयम है। मन का नियम है--तनाव, खिंचे रहो। खिंचे रहो इसके लिए जरूरी है कि अति पर रहो, नहीं तो खिंचे नहीं रहोगे। अति पर रहो, तो खिंचाव बना रहेगा, तनाव बना रहेगा, चित्त तना रहेगा। और हम सब ऐसे लोग हैं कि जितना चित्त तना रहे, उतना ही हमें लगता है कि हम जीवित हैं। अगर चित्त में कोई तनाव न हो तो हमें लगता है मरे, मर न जाएं, खो न जाएं।
जो लोग ध्यान में गहरा उतरते हैं, मुझे आकर कहने लगते हैं कि अब तो बहुत डर लगता है। ऐसा लगता है, कहीं मर न जाऊं। मरने का कोई सवाल ही नहीं है ध्यान में, लेकिन डर लगने का सवाल है। डर इसलिए लगता है कि जैसे-जैसे ध्यान गहरा होता है, मन शून्य होता है। और जब मन शून्य होता है, तो हमने तो अपने को मन ही समझा हुआ है, तो लगता है हम मरे। मिट न जाएंगे! अगर अतीत छोड़ देंगे तो समाप्त न हो जाएंगे! गति कहां रहेगी, फिर हम समाप्त ही हो जाएंगे।
डा. ग्रीन ने अमरीका में एक यंत्र बनाया हुआ है फीड-बैक यंत्र है, और कीमती है। और आज नहीं कल, सभी मंदिरों में लग जाना चाहिए, सभी गिरजाघरों में, सभी चर्चों में। एक यंत्र है जिसकी कुर्सी पर आदमी बैठ जाता है और सामने उसकी कुर्सी पर पर्दा लगा होता है। उस पर्दे पर थर्मामीटर की तरह प्रकाश घटने बढ़ने लगता है। दो रेखाओं में प्रकाश ऊपर बढ़ता है, जैसे थर्मामीटर का पारा ऊपर बढ़ता है। आपके मस्तिष्क में दोनों तरफ खोपड़ी पर तार बांध दिए जाते हैं। ये तार उन प्रकाशों से जुड़े होते हैं। और आपका मन जब अतियों में चलता है तो एक रेखा बिल्कुल आ समान छूने लगती है, दूसरी जीरो पर हो जाती है। बहुत अदभुत, महत्वपूर्ण है वह। जब आप सोच रहे होते हैं कामवासना के संबंध में, तब एक रेखा आपकी आसमान छूने लगती है, दूसरी शून्य पर हो जाती है। सामने पास में ग्रीन खड़ा है, वह आ पको तस्वीरें दिखाता है, नंगी औरतों की, और आपके मन में कामवासना को जगाता है। साथ में संगीत बजता है, जो आपके भीतर कामवासना को जगाता है। एक रेखा आसमान को छूने लगती है, दूसरी शून्य पर हो जाती है। फिर तस्वीरें हटा ली जाती हैं। फिर बुद्ध और महावीर और क्राइस्ट के चित्र दिखाए जाते हैं। फिर संगीत बदल दिया जाता है। ब्रह्मचर्य का कोई सूत्र आदमी के सामने रख दिया जाता है और उनसे कहा जाता है ब्रह्मचर्य के संबंध में चिंतन करो। तो एक रेखा नीचे गिरने लगती है, दूसरी रेखा ऊपर चढ़ने लगती है। और वह तब तक नहीं रुकता आदमी, जब तक कि पहली शून्य न हो जाए और दूसरी पूर्ण न हो जाए। ग्रीन कहता है यह चित्त की अवस्था है।
फिर ग्रीन तीसरा प्रयोग करता है। वह कहता है तुम कुछ मत सोचो। न तुम ब्रह्मचर्य के संबंध में सोचो, न तुम कामवासना के संबंध में सोचो। तुम तो सामने देखो और सिर्फ इतना ही ख्याल करो कि यह शांत मेरा मन हो जाए और ये दोनों रेखाएं समतुल हो जाएं। वह आदमी देखता है, एक रेखा नीचे गिरने लगी, दूसरी ऊपर बढ़ने लगी। इसको फीड-बैक कहता है, ग्रीन। इससे उसकी हिम्मत बढ़ती है कि कुछ हो रहा है।
इसलिए मैं कहता हूं कि ध्यान के लिए सारे मंदिरों में वह यंत्र लग जाना चाहिए। क्योंकि आपको पता नहीं चलता कि कुछ हो रहा है कि नहीं हो रहा है। पता चले कि हो रहा है तो आपकी हिम्मत बढ़ती है। तो जितनी उसकी हिम्मत बढ़ती है, उतनी जल्दी उसकी रेखाएं करीब आने लगती हैं। जितनी करीब आने लगती हैं, वह फीड-बैक मैकेनिज्म हो गया। वह देखता है, उसे लगता है कि हो रहा है मन शांत। वह और शांत होता है, और शांत होता है। यंत्र में दिखाई पड़ता है, और शांत हो रहा है, और शांत होने की हिम्मत बढ़ती है। बहुत शीघ्र पंद्रह मिनट, बीस मिनट, तीस मिनट में दोनों रेखाएं साथ, समान आ जाती हैं। और जब दोनों रेखाएं समान आती हैं तब वह आदमी कहता है आह! ऐसी शांति कभी नहीं जानी। ऐसा कभी जाना ही नहीं। इसको ग्रीन को एक नया शब्द देना पड़ा है क्योंकि कोई शब्द नहीं कि इसको कौन सा अनुभव कहें। तो वह कहता है अहा एक्सपीरिएंस! जब वे दोनों रेखाएं शांत हो जाती हैं तब आदमी कहता है अहा!
और एक दफा यह अनुभव में आ जाए तो संयम का ख्याल आ सकता है, अन्यथा संयम
का ख्याल नहीं आ सकता है। संयम का अर्थ है चित्त जहां कोई भी अति में न हो,

और अहा एक्सपीरिएंस में आ जाए। एक अहोभाव भर रह जाए, एक शांत मुद्रा रह जाए, तो संयम है। और यह संयम बड़ी पाजिटिव बात है।
जब दोनों अतियां साथ खड़ी हो जाती हैं तब दोनों एक-दूसरे को काट देती हैं, और आदमी मुक्त हो जाता है। लोभ और त्याग दोनों सम हो गए, तो फिर आदमी त्यागी भी नहीं होता, लोभी भी नहीं होता। और जहां तक लोभ होता है वहां तक बेचैनी होती है और जहां तक त्याग होता है वहां तक भी बेचैनी होती है। क्योंकि त्याग उलटा खड़ा हुआ लोभ ही है, और कुछ भी नहीं है--शीर्षासन करता हुआ लोभ है।
जब तक कामवासना मन को पकड़ती है तब तक भी बेचैनी होती है और जब तक ब्रह्मचर्य आकर्षण देता है तब तक भी बेचैनी होती है, क्योंकि ब्रह्मचर्य है क्या? उलटा खड़ा हुआ काम है, शीषार्सन करता हुआ काम। वास्तविक ब्रह्मचर्य तो उस दिन उपलब्ध होता है कि जिस दिन ब्रह्मचर्य का भी पता नहीं रह जाता। वास्तविक त्याग तो उस दिन उपलब्ध होता है जिस दिन त्याग का बोध भी नहीं रह जाता। पता भी नहीं रहता, क्योंकि पता कैसे रहेगा? जिसके मन में लोभ ही न रहा, उसे त्याग का पता कैसे रहेगा? अगर त्याग का पता है तो लोभ कहीं न कहीं पीछे छिपा हुआ खड़ा है। वही तो पता करवाता है। कंट्रास्ट चाहिए न, पता होने को। काली रेखा चाहिए न, सफेद कागज पर! काले ब्लैक-बोर्ड पर सफेद चाक चाहिए न। नहीं तो दिखेगा कैसे? जब तक आपको दिखता है मैं त्यागी, तब तक आप जानना कि भीतर मैं लोभी... मजबूती से खड़ा है। नहीं तो दिखेगा कैसे। जब तक आपको यह लगता है कि मैं ब्रह्मचारी! तब तक आप चोटी-वोटी बांध कर और तिलक-टीका लगा कर जोर से घोषणा करते फिरते हैं खड़ाऊं बजाकर, कि मैं ब्रह्मचारी! तब तक आप समझना कि पीछे उपद्रव छिपा है। आपकी चोटी देख कर लोगों को सावधान हो जाना चाहिए कि खतरनाक आदमी आ रहा है। खड़ाऊं वगैरह की आवाज सुन कर लोगों को सचेत हो जाना चाहिए। वह पीछे छिपा है जो ब्रह्मचर्य का दावा कर रहा है, वह कामवासना का ही रूप है।
संयम महावीर कहते हैं उस क्षण को, जहां न काम रहा, न ब्रह्मचर्य रहा। जहां न लोभ रहा, न त्याग रहा। जहां न यह अति पकड़ती है, न वह अति पकड़ती है। जहां आदमी अनति में, मौन में, शांति में थिर हो गया। जहां दोनों बिंदु समान हो गए। जहां एक-दूसरे की शक्ति ने एक-दूसरे को काट कर शून्य कर दिया। संयम यानी शून्य। और इसलिए संयम सेतु है। इसलिए संयम के ही माध्यम से कोई व्यक्ति परमगति को उपलब्ध होता है।
इसलिए संयम को श्वास मैंने कहा। और कारणों से भी श्वास कहा है। क्योंकि आपको शायद पता न हो, आप श्वास में भी असंयमी होते हैं। या तो आप ज्यादा श्वास लेते होते हैं या कम श्वास लेते होते हैं। पुरुष ज्यादा श्वास लेने से पीड़ित हैं, स्त्रियां कम श्वास लेने से पीड़ित हैं। जो आक्रामक हैं वे ज्यादा श्वास लेने से पीड़ित होते हैं, जो सुरक्षा के भाव में पड़े रहते हैं वे कम श्वास लेने से पीड़ित होते हैं। हममें से बहुत कम लोग हैं जिन्होंने सच में ही संयमित श्वास भी ली हो, और तो दूसरे काम करने बहुत कठिन हैं। श्वास तो आपको लेनी भी नहीं पड़ती, उसमें कोई लाभ-हानि भी नहीं है। लेकिन वह भी हम संयमित नहीं लेते। हमारी श्वास भी तनाव के साथ चलती है। ख्याल करें आप, कामवासना में आपकी श्वास तेज हो जाएगी। आप उतने ही समय में, जितनी आप साधारण श्वास लेते हैं, दुगुनी और तिगुनी श्वास लेंगे। इसलिए पसीना आ जाएगा, शरीर थक जाएगा। अब अगर कोई आदमी ब्रह्मचर्य साधने की कोशिश करेगा तो साधने में वह श्वास कम लेने लगेगा। ठीक विपरीत होगा-होगा ही।
असल में ब्रह्मचारी जो है, वह एक अर्थ में कंजूस है, सब मामलों में। यह नहीं कि वह वीर्य-शक्ति के मामले में कंजूस है। जैसे वह कंजूस होता है सब मामलों में, वैसे वह श्वास के मामले में भी कंजूस हो जाता है। अगर हम बायोलाजिकली समझने की कोशिश करें तो जो ब्रह्मचर्य की कोशिश है, वह एक तरह की कांस्टिपेशन की कोशिश है। कोष्टबद्धता है वह। आदमी सब चीजों को भीतर रोक लेना चाहता है, कुछ निकल न जाए शरीर से उसके। तो श्वास भी वह धीमी लेगा। सब चीजों को रोक लेगा। वह रुकाव उसके चारों तरफ व्यक्तित्व में खड़ा हो जाएगा। ये अतियां हैं।

श्वास की सरलता उस क्षण में उपलब्ध होती है, जब आपको पता ही नहीं चलता
कि आप श्वास ले भी रहे हैं। ध्यान में जो लोग भी गहरे जाते हैं उनको वह क्षण आ जाता है वे मुझे आकर कहते हैं कि कहीं श्वास बंद तो नहीं हो जाती! पता नहीं चलता, बंद नहीं होती श्वास। श्वास चलती रहती है। लेकिन इतनी शांत हो जाती है, इतनी समतुल हो जाती है, बाहर जाने वाली श्वास, भीतर आने वाली श्वास ऐसी समतुल हो जाती है कि दोनों तराजू बराबर खड़े हो जाते हैं। पता ही नहीं चलता। क्योंकि पता चलने के लिए थोड़ा बहुत हलन-चलन चाहिए। पता चलने के लिए थोड़ी बहुत डगमगाहट चाहिए। पता चलने के लिए थोड़ा मूवमेंट चाहिए। यह सब मूवमेंट एक अर्थ में थिर हो जाता है। ऐसा नहीं कि नहीं चलता। चलता है, लेकिन दोनों तुल जाते हैं। जो व्यक्ति जितना संयमी होता है उतनी उसकी श्वास भी संयमित हो जाती है। या जिस व्यक्ति की जितनी श्वास संयमित हो जाती है उतना उसके भीतर संयम की सुविधा बढ़ जाती है इसलिए श्वास पर बड़े प्रयोग महावीर ने किए।
श्वास के संबंध में भी अत्यंत संतुलित, और जीवन के और सारे आयामों में
भी अत्यंत संतुलित। महावीर कहते हैं सम्यक आहार, सम्यक व्यायाम, सम्यक निद्रा, सम्यक सभी कुछ सम्यक हो। वे नहीं कहते हैं कि कम सोओ; वे नहीं कहते कि ज्यादा सोओ; वे कहते इतना ही सोओ जितना सम है। वे नहीं कहते कम खाओ, ज्यादा खाओ; वे कहते हैं उतना ही खाओ जितना सम पर ठहर जाता है। इतना खाओ कि भूख का भी पता न चले और भोजन का भी पता न चले। अगर खाने के बाद भूख का पता चलता है तो आपने कम खाया और अगर खाने के बाद भोजन का पता चलने लगता है तो आपने ज्यादा खा लिया। इतना खाओ कि खाने के बाद भूख का भी पता न चले और पेट का भी पता न चले। लेकिन हम दोनों नहीं कर पाते हैं, या तो हमें भूख का पता चलता है और या हमें पेट का पता चलता है। भोजन के पहले भूख का पता चलता है और भोजन के बाद भोजन का पता चलता है, लेकिन पता चलना जारी रहता है।
महावीर कहते हैं पता चलना बीमारी है। असल में शरीर के उसी अंग का पता चलता है जो बीमार होता है। स्वस्थ अंग का पता नहीं चलता। सिरदर्द होता है तो सिर का पता चलता है, पैर में कांटा गड़ता है तो पैर का पता चलता है। महावीर कहते हैं सम्यक आहार, पता ही न चले भूख का भी नहीं, भोजन का भी नहीं सोने का भी नहीं, जागने का भी नहीं--श्रम का भी नहीं, विश्राम का भी नहीं। मगर हम दो में से कुछ एक ही कर पाते हैं। या तो हम श्रम ज्यादा कर लेते हैं, या विश्राम ज्यादा कर लेते हैं।
कारण क्या है यह ज्यादा कर लेने का? कुछ भी ज्यादा कर लेने का? का रण यही है कि ज्यादा करने में हमें पता चलता है कि हम हैं। हमें पता चलता है कि हम हैं और हम चाहते यही हैं कि हमें पता चलता रहे कि हम हैं। यही महावीर की अहिंसा के बाबत मैंने आपसे कहा कि अहिंसा का अर्थ है हमें पता ही न चले कि हम हैं। एब्सेंट हो जाएं अनुपस्थित। पर हमारा मन होता है, हमारा पता चले कि हम हैं। यही अहंकार है कि हमें पता चलता रहे कि हम हैं। न केवल हमें, बल्कि औरों को पता चलता रहे कि हम हैं। तो फिर हम असंयम के सिवाय हमारे लिए कोई मार्ग नहीं रह जाता। इसलिए जितना असंयमी आदमी हो, उतना ही उसका पता चलता है।
एमाइल जोला ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि अगर दुनिया में सब अच्छे आदमी हों तो कथा लिखना बहुत मुश्किल हो जाए। कथानक न मिले। अच्छे आदमी की कोई जिंदगी की कहानी होती है? नहीं होती। क्या बताइएगा? बुरे आदमी की जिंदगी में कहानी होती है। बुरे आदमी की जिंदगी एक कहानी होती है। अच्छे आदमी की जिंदगी अगर सच में ही अच्छी है तो शून्य हो जाती है। कहानी कहां बचती है! कुछ नहीं बचता है। जीसस की जिंदगी का बहुत कम पता है। ईसाई बड़े परेशान रहते हैं कि जिंदगी का बहुत कम पता है। वे कोई उत्तर नहीं दे पाते। जीसस पैदा हुए, इसका पता है। फिर पांच साल की उम्र में एक बार मंदिर में देखे गए, इसका पता है। फिर तीस साल की उम्र में देखे गए, इसका पता है। फिर तैंतीसवें साल में सूली लग गई, इसका पता है। बस इतनी कहानी है। तीस साल की जिंदगी का कोई पता नहीं है।
एक ईसाई फकीर मुझे मिलने आया था। वह कहने लगा आप महावीर के संबंध में कहते हैं, बुद्ध के संबंध में कहते हैं, कभी आप क्राइस्ट के संबंध में

कहें। और वह जो तीस साल, जो बिल्कुल पता नहीं है, उसके संबंध में कहें। तो मैंने कहा थोड़ा तो कहा जा सकता है। लेकिन सच बात यह है कि पता न होने का कुल कारण इतना है कि जीसस की जिंदगी में कुछ भी नहीं था, नो इवेंट। और अगर लोग सूली न लगाते यह भी जीसस की जिंदगी का इवेंट नहीं है, लोगों की जिंदगी का है। लोगों ने सूली लगा दी। इसमें जीसस क्या करें! और अगर लोग सूली न लगाते तो यह भी कथा न होती। लोग न माने तो लोगों ने सूली लगा दी। इसलिए कथा है, नहीं तो जीसस का पता ही नहीं चलता, इस जमीन पर। यह सूली लगाने वालों ने इनको टिका दिया। तो जीसस कोरे कागज की तरह आते और विदा हो जाते। बहुत लोग आए और इसी तरह विदा हो गए हैं।
अगर हम महावीर की जिंदगी में भी खोजें तो किस बात का पता है? कभी किसी
ने कान में कीले ठोंक दिए, इसका पता है। लेकिन दिस इ.ज नॉट इवेंट इन दि महावीरस लाइफ। यह महावीर की जिंदगी की घटना नहीं है, यह तो कीले ठोंकने वाले की जिंदगी की घटना है। महावीर का क्या है इसमें हाथ? कि कोई आया और महावीर के चरणों में सिर रख दिया। यह भी महावीर की जिंदगी की घटना नहीं है। यह तो सिर रखनेवाले की जिंदगी की घटना है, कि किसी ने चिल्ला कर महावीर को तीर्थंकर कह दिया, यह भी महावीर की जिंदगी की घटना नहीं है। यह भी तो किसी के चिल्लाने की घटना है। अगर हम शुद्ध रूप से महावीर की जिंदगी खोजने जाएं तो कोरा कागज हो जाएगी। अच्छे आदमी की कोई जिंदगी नहीं होती। बुरे आदमी की ही जिंदगी होती है। इसलिए कहानी लिखनी हो या सिने-कथा लिखनी हो तो बुरे आदमी को ही चुनना पड़ता है। इसके बिना नहीं इसके बिना बहुत मुश्किल हो जाएगा।
रावण के बिना हम रामायण की कल्पना नहीं कर सकते। राम के बिना कर भी सकते हैं। राम की जगह कोई भी अ ब स द भी काम दे सकता है। लेकिन रावण अपरिहार्य है। उसके बिना कहानी में जान ही निकल जाएगी। वही असली कथा है। लोग समझते हैं, राम हैं कथा के केंद्र, उसके नायक। मैं नहीं समझता। रावण है। हमेशा बुरा आदमी हीरो होता है। इसलिए हीरो बनने से जरा बचना। नायक होने के लिए बुरा होना बिल्कुल जरूरी है।
संयमी व्यक्ति के जीवन से सारी घटनाएं विदा हो जाती हैं। और घटनाएं विदा होते ही उसे "मैं हूं" यह कहने का भी उपाय नहीं रह जाता। और हम सब कहना चाहते हैं कि मैं हूं। इसलिए असंयम हमें जरूरी होता है। कभी ज्यादा खाकर हम जाहिर करते हैं कि मैं हूं, कभी उपवास करके जाहिर करते हैं कि मैं हूं। कभी वेश्या लय में जाहिर करते हैं कि मैं हूं, कभी मंदिर में जाकर जाहिर करते हैं कि मैं हूं। लेकिन हमारा जाहिर करना जारी रहता है। मंदिर में भी कोई देखनेवाला न आए तो हमारा जाने का मन नहीं होता।
हम वही करते हैं जिसे लोग देखते हैं और मानते हैं कि कुछ हो। मैं हूं, इसे बताना होता है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं जितने लोग इस जमीन पर बुरे हो जाते हैं, अगर हम ऐसा समाज बना सकें कि जितना बुरे आदमी को नाम मिलता है लोग उसे बदनाम कहते हैं, अगर उतना अच्छे आदमी को नाम मिलने लगे तो कोई आदमी बुरा न हो। वे अच्छे हो जाएं। बुरा आदमी भी अस्मिता की, अहंकार की खोज में ही बुरा होता है। आप इसको देखते ही नहीं, आप इसकी तरफ ध्यान ही नहीं देते, आप मानते ही नहीं कि तुम हो। उसे कुछ न कुछ करना पड़ता है। उसे कुछ करके दिखाना पड़ता है। अखबार किसी ध्यान करनेवाले की खबर नहीं छापते, किसी की छाती में छुरा भोंकने वाले की खबर छापते हैं। अखबार इसकी खबर नहीं छापते कि एक स्त्री अपने पति के प्रति जीवन भर निष्ठावान रही। अखबार इसकी खबर छापते हैं कि कौन स्त्री भाग गई।
मुल्ला नसरुद्दीन को उसके गांव के लोगों ने मजिस्ट्रेट बना दिया था, बुढ़ापे में। पहले ही दिन अदालत में कोई मुकदमा नहीं आया। दोपहर हो गई, मुंशी बेचैन होने लगा मुल्ला का मुंशी जो था वह बेचैन होने लगा, उदास होने लगा, मक्खी उड़ाते-उड़ाते वहां।
मुल्ला ने कहा बेचैन मत हो, घबड़ा मत। हैव फेथ ऑन ह्यूमन नेचर। आदमी के स्वभाव पर भरोसा रखो। शाम तक कुछ न कुछ होकर रहेगा। तू घबरा मत, इतना बेचैन मत हो। कोई न कोई हत्या होगी, कोई न कोई स्त्री भाग जाएगी, कोई न कोई उपद्रव

होकर रहेगा। हैव फेथ ऑन ह्यूमन नेचर। आदमी के स्वभाव पर भरोसा रख। आदमी बिना कुछ किए नहीं रहेगा।
आदमी के स्वभाव पर भरोसा... सब अखबार उसी भरोसे पर चलते हैं, नहीं तो कोई अखबार नहीं चल पाता। लेकिन कल घटनाएं घटेंगी, अखबार में जगह नहीं बचेगी। पक्का पता है, आदमी के स्वभाव पर भरोसा है। कोई स्त्री भागेगी, कोई हत्या करेगा, कोई चोरी करेगा, कोई गबन करेगा, कोई मिनिस्टर कुछ करेगा, कोई न कोई कुछ करेगा। कहीं युद्ध होगा, कहीं उपद्रव होगा, कहीं सेना भेजी जाएगी, कहीं क्रांति होगी। आदमी के स्वभाव पर भरोसा है, नहीं तो अखबार सब मुश्किल में पड़ जाएंगे। भले आदमी की दुनिया में अखबार बहुत मुश्किल में होंगे। इसलिए मैंने सुना है स्वर्ग में कोई अखबार नहीं हैं, नरक में सब हैं। स्वर्ग में कोई घटना नहीं घटती, नो इवेंट। खबर भी क्या छापिएगा? अगर छापिएगा भी तो, छपते-छपते, बस अंत में कुछ छपेगा नहीं।
भले आदमी की जिंदगी में कोई घटना नहीं है और हम चाहते हैं कि हम हों। घटनाओं के जोड़ के बिना हम नहीं हो सकते। और अगर घटनाएं चाहिए तो आपको तनाव में जीना पड़ेगा, अतियों पर डोलना पड़ेगा। क्रोध करना पड़ेगा, क्षमा करना पड़ेगा। भोग करना पड़ेगा, त्याग करना पड़ेगा। दुश्मनी करनी पड़ेगी, दोस्ती करनी पड़ेगी। संयमी का अर्थ है जो द्वंद्व में कुछ भी नहीं करता है, जो द्वंद्व के बाहर सरक जाता है। जो कहता है न दोस्ती करेंगे, न दुश्मनी करेंगे। महावीर किसी से मित्रता नहीं करते हैं क्योंकि महावीर जानते हैं मित्रता एक अति है। महावीर किसी से शत्रुता भी नहीं करते क्योंकि महावीर जानते हैं शत्रुता अति है। लेकिन हम! हम उलटा सोचते हैं। हम सोचते हैं कि अगर दुनिया से शत्रुता मिटानी हो तो सबसे मित्रता करनी चाहिए। आप गलती में हैं। मित्रता एक अति है, उससे शत्रुता पैदा होती है। इधर आप मित्रता करते हैं, ठीक उतनी ही बैलेंसिंग आपको किसी से शत्रुता करनी पड़ेगी। उतना ही संतुलन बनाना पड़ेगा।
मुसलमान फकीर हुआ है, हसन। बैठा है अपनी झोपड़ी में। साधक कुछ पास बैठे हैं। एक अजनबी सूफी फकीर भीतर प्रवेश करता है, चरणों में गिर जाता है हसन के और कहता है तुम भगवान हो, तुम साक्षात अवतार हो, तुम ज्ञान के साकार रूप हो। बड़ी प्रशंसा करता है। हसन बैठा सुनता रहता है। जब वह फकीर सब प्रशंसा कर चुकता है तो एक और फकीर वहां बैठा हुआ है बायजीद, वहां बैठा हुआ है। वह हसन जैसी ही कीमत का आदमी है। जब वह फकीर प्रशंसा करके जा चुका होता है चरण छूकर, तो बायजीद एकदम से हसन को गाली देना शुरू कर देता है। सभी लोग चौंक जाते हैं। बायजीद और हसन को गालियां दे! पीड़ा भी अनुभव करते हैं, लेकिन बायजीद भी कीमती फकीर है। कुछ कोई बोल तो सकता नहीं। हसन बैठा सुनता रहता है। फिर बायजीद गालियां देकर चला जाता है। बायजीद के जाते ही शिष्यों में से कोई पूछता है हसन से कि हमारी समझ में नहीं आया कि बायजीद ने इस तरह का अभद्र व्यवहार क्यों किया? हसन ने कहा कुछ नहीं, जस्ट बैलेंसिंग। कोई अभद्र व्यवहार नहीं किया। वह एक आदमी देखते हो पहले, भगवान कह गया। इतनी प्रशंसा कर गया। तो किसी को तो बैलेंस करना ही पड़ेगा। कोई तो संतुलन करेगा ही। नाउ एवरीथिंग इ.ज बैलेंस्ड। अब हम वही हैं जहां इन दोनों आदमियों के पहले थे। अपना काम शुरू करें।
जिंदगी में आप इधर मित्रता बनाते हैं, उधर शत्रुता निर्मित हो जाती है। इधर आप किसी को प्रेम करते हैं, उधर किसी को घृणा करना शुरू हो जाता है। जिंदगी में जब भी आप किसी द्वंद्व को चुनते हैं, तो दूसरे द्वंद्व में भी ताकत पहुंचनी शुरू हो जाती है। आप चाहें, न चाहें, यह सवाल नहीं है। जीवन का नियम यह है। इसलिए महावीर किसी को मित्र नहीं बनाते। और जब वे कहते हैं कि सबसे मेरी मैत्री है, तो उसका मतलब मित्रता से नहीं है। उसका मतलब है कि मेरी किसी से कोई शत्रुता नहीं, मित्रता नहीं। जो बच रहता है, उसको मैत्री कहते हैं। जो बच रहता है! कुछ बच नहीं रहता है, एक निराकार भाव बच रहता है। कोई संबंध बच नहीं रहता। एक असंबंधित स्थिति बच रहती है। कोई पक्ष नहीं बच रहता, एक तटस्थ दशा बच रहती है।
जब वे कहते हैं सबसे मेरी मैत्री है, तो उसका मतलब सिर्फ इतना ही है उससे हम भूल में न पड़ें कि यह हमारे जैसी मित्रता है। हमारी मित्रता तो

बिना शत्रुता के हो ही नहीं सकती। जब वे कहते हैं सबसे मुझे प्रेम है, तो हम इस भ्रम में न पड़ें कि हमारे जैसा प्रेम है। हमारा प्रेम बिना घृणा के नहीं हो सकता, बिना ईर्ष्या के नहीं हो सकता। इसलिए महावीर जैसे लोगों को समझने की जो सबसे बड़ी कठिनाई है, वह यह है कि शब्द वे वही उपयोग करते हैं, जो हम। और कोई उपाय भी नहीं है वही शब्द हैं, उपयोग करने के लिए। और हमारे भाव उन शब्दों से बहुत और हैं, हमारे अर्थ बहुत और हैं, और महावीर के अर्थ बहुत और हैं।
संयम का विधायक अर्थ है स्वयं में इतना ठहर जाना कि मन की किसी अति पर कोई हलन-चलन न हो।

आज इतना ही।
फिर हम कल बात करेंगे। अभी जाएं न। थोड़ी देर बैठें। धुन संन्यासी करते हैं, उसमें सम्मिलित हों।

महावीर-वाणी, भाग 1
सातवां प्रवचन

संयम की विधायक दृष्टि (धम्म-सूत्र)

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मे सया मणो।।

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

सूर्यास्त के समय, जैसे कोई फूल अपनी पंखुड़ियों को बंद कर ले--संयम ऐसा नहीं है। वरन सूर्योदय के समय जैसे कोई कली अपनी पंखुड़ियों को खोल ले-- संयम ऐसा है। संयम मृत्यु के भय में सिकुड़ गए चित्त की रुग्ण दशा नहीं है। संयम अमृत की वर्षा में प्रफुल्लित हो गए, नृत्य करते चित्त की दशा है। संयम किसी भय से किया गया संकोच नहीं है। संयम किसी प्रलोभन से आरोपित की गई आदत नहीं है। संयम किसी अभय में चित्त का फैलाव और विस्तार है। और संयम किसी आनंद की उपलब्धि में अंतर्वीणा पर पैदा हुआ संगीत है। संयम निषेध नहीं है, विधेय है। निगेटिव नहीं है, पाजिटिव है। लेकिन परंपरा निषेध को मान कर चलती है। क्योंकि निषेध आसान है और विधेय अति दुष्कर। मरना बहुत आसान है, जीना बहुत कठिन है। हमें लगता है कि नहीं, जीना बहुत आसान है, मरना बहुत कठिन। लेकिन जिसे हम जीना कहते हैं, वह सिर्फ मरना ही है और कुछ भी नहीं है।
सिकुड़ जाने से ज्यादा आसान कुछ भी नहीं है। खिलने से ज्यादा कठिन कुछ
भी नहीं है। क्योंकि खिलने के लिए अंतर-ऊर्जा का जागरण चाहिए। सिकुड़ने के लिए तो किसी जागरण की, किसी नई शक्ति की जरूरत नहीं है। पुरानी शक्ति भी छूट जाए तो सिकुड़ना हो जाता है। नई शक्ति का उदभव हो तो फैलाव होता है। महावीर तो फूल जैसे खिले हुए व्यक्तित्व हैं। लेकिन महावीर के पीछे जो परंपरा बनती है, उसमें तो सिकुड़ गए लोगों की धारा कीशृंखला बन जाती है। और फिर पीछे के युगों में इन पीछे चलने वाले, सिकुड़े हुए लोगों को देख कर ही हम महावीर के संबंध में भी निर्णय लेते हैं। स्वभावतः अनुयायियों को देख कर हम अनुमान करते हैं उनका, जिनका वे अनुगमन करते हैं।
लेकिन अक्सर भूल हो जाती है। और भूल इसलिए हो जाती है कि अनुयायी बाहर
से पकड़ता है, और बाहर से निषेध ही ख्याल में आते हैं। महावीर या बुद्ध या कृष्ण भीतर से जीते हैं और भीतर से जीने पर विधेय ही होता है। अगर किसी को परम आनंद उपलब्ध हो, तो उसके जीवन में, जिन्हें हम कल तक सुख कहते थे, वे छूट जाएंगे। इसलिए नहीं कि वे उन्हें छोड़ रहे हैं बल्कि इसलिए कि अब जो उसे मिला है, उसके लिए जगह बनानी जरूरी है। हाथ में कंकड़-पत्थर थे, वे गिर जाएंगे क्योंकि जिसे हीरे जीवन में आ गए हों, अब कंकड़-पत्थरों को रखने के लिए न सुविधा है, न शक्ति, है, न का रण है। लेकिन वे हीरे तो आएंगे अंतर के आकाश में। वे हमें दिखाई नहीं पड़ेंगे और हाथों में जो पत्थर थे, वे छूटेंगे, वे हमें दिखाई पड़ेंगे। स्वभावतः हम सोचेंगे कि पत्थर छोड़ना ही संयम है। यह एक बहुत अनिवार्य फेलेसी है जो समस्त जाग्रत पुरुषों के आस-पास इकट्ठी होती है। यह स्वाभाविक है, लेकिन बड़ी खतरनाक है। क्योंकि तब हम जो भी सोचते हैं वह सब गलत हो जाता है। लगता है महा वीर कुछ छोड़ रहे हैं, यही संयम है। नहीं लगता कि महावीर कुछ पा रहे हैं, वही संयम है। और ध्यान रखें, पाए बिना छोड़ना असंभव है। या जो पाए बिना छोड़ेगा, वह रुग्ण हो जाएगा। बीमार हो जाएगा। वह अस्वस्थ होता है, सिकुड़ता है और मरता है। पाए बिना छोड़ना असंभव है।
जब मैं कहता हूं कि त्याग की बहुत दूसरी धारणा है और संयम का बहुत दूसरा रूप और आयाम प्रकट होता है। मैं कहता हूं, महावीर जैसे लोग कुछ पा

लेते हैं, वह पाना इतना विराट है कि उसकी तुलना में जो उनके हाथ में कल तक था वह व्यर्थ और मूल्यहीन हो जाता है। और ध्यान रहे, मूल्यहीनता रिलेटिव है, तुलनात्मक है, सापेक्ष है। जब तक आपको श्रेष्ठतर नहीं मिला है, तब तक जो आपके हाथ में है, वही श्रेष्ठतर है। चाहे आप कितना ही कहें कि वह श्रेष्ठतर नहीं है, लेकिन आपका चित्त कहे जाएगा, वही श्रेष्ठतर है। क्योंकि उससे श्रेष्ठतर को आपने नहीं जाना है। जब श्रेष्ठतर का जन्म होता है तभी वह निकृष्ट होता है। और मजे की बात यह है कि निकृष्ट को छोड़ना नहीं पड़ता और श्रेष्ठ को पकड़ना नहीं पड़ता। श्रेष्ठ पकड़ ही लिया जाता है और निकृष्ट छोड़ ही दिया जाता है। जब तक निकृष्ट को छोड़ना पड़े तब तक जानना कि श्रेष्ठ का कोई पता नहीं है। और जब तक श्रेष्ठ को पकड़ना पड़े तब तक जानना कि श्रेष्ठ अभी मिला नहीं है। श्रेष्ठ का स्वभाव ही यही है कि वह पकड़ ले; निकृष्ट का स्वभाव यही है कि वह छूट जाए।
लेकिन निकृष्ट हमसे छूटता नहीं और श्रेष्ठ हमारी पकड़ में नहीं आता।
तो हम निकृष्ट को छोड़ने की जबरदस्त चेष्टा करते हैं। उसी चेष्टा को हम संयम कहते हैं। और श्रेष्ठ को अंधेरे में टटोलने की, पकड़ने की कोशिश करते हैं। वह हमारी इस तरह पकड़ में नहीं आ सकता। इसलिए संयम के विधायक आयाम को ठीक से समझ लेना जरूरी है। अन्यथा संयम व्यक्ति को धार्मिक नहीं बनाता केवल अधार्मिक होने से रोकता है। और जो अधर्म बाहर प्रकट होने से रुक जाता है, वह भीतर जहर बन कर फैल जाता है।
निषेधात्मक संयम फूलों को नहीं पैदा कर पाता है, केवल कांटों को प्रकट होने से रोकता है। लेकिन जो कांटे बाहर आकाश में प्रकट होने से रुक जाते हैं, वे भीतर आत्मा में छिप जाते हैं। इसलिए जिसे हम संयमी कहते हैं, वह आनंदित नहीं दिखाई पड़ता है। वह पीड़ित दिखाई पड़ता है। वह किसी पत्थर के नीचे दबा हुआ मालूम पड़ता है, किसी पहाड़ को ढोता हुआ मालूम पड़ता है। उसके पैरों में नर्तक की स्थिति नहीं होती। उसके पैरों में कैदी की जंजीरें मालूम पड़ती हैं। ऐसा नहीं लगता कि बच्चों जैसा सरल, उड़ने को तत्पर हो गया है। वह बहुत बोझिल और भारी हो गया है।
जिसे हम संयमी कहते हैं वह हंसने में असमर्थ हो गया होता है, उसके चारों तरफ आंसुओं की धारा इकट्ठी हो जाती है। और जो संयमी हंस न सके परिपूर्ण चित्त से, वह अभी संयमी नहीं है। जिसका जीवन मुस्कुराहट न बन जाए, वह अभी संयमी नहीं है। निषेध का रास्ता यह है कि जहां-जहां मन जाता है, वहां मन को न जाने दो। जहां-जहां मन खिंचता है, वहां-वहां मन को न खिंचने दो, उसके विपरीत खींचो। तो, निषेध एक अंतर संघर्ष है, इनर कांफ्लिक्ट है, जिसमें शक्ति व्यय होती है, उपलब्ध नहीं होती है। सभी संघर्ष में शक्ति व्यय होती है। जहां-जहां मन खिंचता है, वहां-वहां से उसे वापस खींचो, लौटाओ। कौन लौटाएगा, किसको लौटाएगा? आप ही खिंचते हैं, आप ही आकर्षित होते हैं, आप ही विपरीत जाते हैं। आप अपने भीतर विभाजित हो जाते हैं। खंडों में टूट जाते हैं। जिसको मनोचिकित्सक स्किजोफ्रेनिया कहता है, वह आपके भीतर घटित होता है। आप खंडित हो जाते हैं। आप दोहरे-तीहरे हो जाते हैं। आपके भीतर अनेक लोग हो जाते हैं। आप अपने को ही बांट कर लड़ना शुरू कर देते हैं। इससे जीत कभी नहीं होगी। और महावीर का सारा रास्ता जीत का रास्ता है। जो अपने से लड़ेगा, वह कभी जीतेगा नहीं।
उलटा लगता है यह सूत्र, क्योंकि हमें लगता है कि लड़े बिना जीत कैसे हो सकती है। जो अपने से लड़ेगा वह कभी जीतेगा नहीं क्योंकि अपने से लड़ना अपने ही दोनों हाथों को लड़ाने जैसा है। न बायां जीत सकता है, न दायां। क्योंकि दोनों के पीछे मेरी ही ताकत लगती है, मेरी ही शक्ति लगती है। चाहूं तो मैं बाएं को जिता लूं, तब भी बायां जीतता नहीं। चाहूं तो मैं दाएं को जिता लूं, तब भी दायां जीतता नहीं। क्योंकि दोनों के पीछे मैं ही होता हूं। और यह जो व्यक्तित्व में खंडन हो जाता है, डिसइंटिग्रेशन हो जाता है, यह आदमी को विक्षिप्तता की तरफ ले जाने लगता है। आदमी ऐसा लगता है कि उसके ही भीतर उसका दुश्मन खड़ा है, वही है वह। आधा अपने को बांट लिया। अपनी छाया से लड़ने जैसा पागलपन है। नहीं, महावीर इतना गहरा जानते हैं कि स्किजोफ्रेनिक, खंडित व्यक्तित्व की तरफ वे सलाह नहीं दे सकते। वे सलाह देंगे, अखंड

व्यक्तित्व की तरफ--इंटिग्रेटेड, इकट्ठा, एकजुट। संयम का अर्थ है--जुड़ा हुआ, इकट्ठा, इंटिग्रेटेड।
यह बहुत मजे की बात है, अगर आप असत्य बोलें, तो आप कभी भी इंटिग्रेटेड नहीं हो सकते। अगर आप झूठ बोलें तो आपके भीतर एक हिस्सा सदा ही मौजूद रहेगा जो कहेगा कि नहीं बोलना था, झूठ बोले। झूठ के साथ पूरी तरह राजी हो जाना असंभव है। अगर आप चोरी करें, तो आप कभी भी अखंड नहीं हो सकते। आपके भीतर एक हिस्सा चोरी के विपरीत खड़ा ही रहेगा। लेकिन अगर आप सत्य बोलें तो अखंड हो सकते हैं। महावीर ने उन्हीं-उन्हीं बातों को पुण्य कहा है, जिनसे हम अखंड हो सकते हैं। और उन्हीं-उन्हीं बातों को पाप कहा है, जिनसे हम खंडित हो जाते हैं। एक ही पाप है--आदमी का टुकड़ों में टूट जाना, और एक ही पुण्य है--आदमी का जुड़ जाना, इकट्ठा हो जाना, टु बी वन होल।
तो महावीर लड़ने को नहीं कह सकते हैं। महावीर जीतने को जरूर कहते हैं, लड़ने को नहीं कहते। फिर जीतने का रास्ता और है। जीतने का रास्ता यह नहीं है कि मैं अपनी इंद्रियों से लड़ने लगूं, जीतने का रास्ता यह है कि मैं अपने अतींद्रिय स्वरूप की खोज में संलग्न हो जाऊं। जीतने का रास्ता यह है कि मेरे भीतर जो छिपे हुए और खजाने हैं, मैं उनकी खोज में संलग्न हो जाऊं। जैसे-जैसे वे खजाने प्रकट होते जाते हैं, वैसे-वैसे कल तक जो महत्वपूर्ण था, वह गैर महत्वपूर्ण होने लगता है। कल तक जो खींचता था, अब वह नहीं खींचता है। कल तक बाहर की तरफ चित्त जाता था, अब भीतर की तरफ आता है।
एक आदमी है थोड़ा उदाहरण लेकर समझें। एक आदमी है, भोजन के लिए आतुर है, परेशान है, बहुत रस है। क्या करे संयम के लिए वह? रस का निग्रह करे, यही हमें दिखाई पड़ता है। आज यह रस न ले, कल वह रस न ले, परसों वह रस न ले। यह भोजन छोड़ दे, वह भोजन छोड़ दे। लेकिन क्या भोजन के परित्याग से रस का परित्याग हो जाएगा? संभावना यही है कि भोजन के परित्याग से पहले तो रस बढ़ेगा। अगर वह जिद्द में अड़ा रहे तो रस कुंठित हो जाएगा, मुक्त नहीं होगा। लेकिन कुंठित रस, व्यक्तित्व को भी कुंठा से भर जाता है।
जो भोजन करने तक में भयभीत हो जाता है, वह अभय को उपलब्ध होगा? भोजन करने तक में जो भयभीत हो जाता है, वह अभय को उपलब्ध होगा? नहीं, महावीर इसे संयम नहीं कहते। यद्यपि महावीर जिसे संयम कहते हैं, वैसा व्यक्ति रस के पागलपन से मुक्त हो जाता है। महावीर और एक भीतरी रस खोज लेते हैं--एक और रस भी है जो भोजन से नहीं मिलता। एक और रस भी है, जो भीतर संबंधित होने से मिल जाता है। हमारे बाहर जितनी इंद्रियां हैं, अगर हम ठीक से समझें तो वे सिर्फ कनेक्टिंग लिंक्स हैं, जोड़ने वाले सेतु हैं। स्वाद की इंद्रिय भोजन से जोड़ देती है, आंख की इंद्रिय दृश्य से जोड़ देती है, कान की इंद्रिय ध्वनि से जोड़ देती है। अगर महावीर की आंतरिक प्रक्रिया को समझना हो, तो महावीर यह कहते हैं कि जो इंद्रिय बाहर जोड़ देती है, वही इंद्रिय भीतर के जगत से भी जोड़ सकती है। बाहर ध्वनियों का एक जगत है। कान उससे जोड़ता है। भीतर भी ध्वनियों का एक अदभुत जगत है, कान उससे भी जोड़ सकता है। जीभ बाहर के रस से जोड़ती है। बाहर रस का एक जगत है। अति दीन, क्योंकि हमें भीतर के रस का पता नहीं, इसलिए वही सम्राट मालूम होता है। जीभ भीतर के रस से भी जोड़ देती है।
हमने सुना है, आप सबने भी सुना होगा, लेकिन प्रतीक कभी-कभी कैसी विक्षिप्तता में ले जाते हैं। हम सबने सुना है कि साधक, योगी अपनी जीभ को उलटा कर लेते हैं। लेकिन वह केवल सिंबालिक है। लेकिन कुछ पागल अपनी जीभ के नीचे के हिस्से को काटकर उलटा करने में लगे रहते हैं। यह सिर्फ सिंबालिक है, यह सिर्फ प्रतीक है। साधक अपनी जीभ को उलटा कर लेता है, उसका अर्थ यह है कि जीभ का जो रस बाहर पदार्थों से जुड़ता था, उसे वह भीतर आत्मा से जोड़ लेता है। साधक अपनी आंख उलटी चढ़ा लेता है, उसका कुल अर्थ इतना ही है कि वह जो देखता था बाहर, अब वह भीतर देखने लगता है। और एक बार भीतर का स्वाद आ जाए तो बाहर के सब स्वाद बेस्वाद हो जाते हैं। करने नहीं पड़ते, करने से तो कभी नहीं होते, करने से तो उनका स्वाद और बढ़ता है। या जिद्द की जाए तो कुंठित हो जाता है, रस ही मर जाता है। लेकिन इंद्रिय बाहर की तरफ ही पड़ी रहती है। इंद्रियों को भीतर की तरफ मोड़ना संयम की प्रक्रिया है।

कैसे मोड़ेंगे? कभी छोटे से प्रयोग करें तो ख्याल में आना शुरू हो जाएगा। बैठे हैं घर में, सुनना शुरू करें बाहर की आवाजों को... सुनना शुरू करें बाहर की आवाजों को। बहुत जागरूक होकर सुनें कि कान क्या-क्या सुन रहा है। सभी चीजों के प्रति जागरूक हो जाएं। रास्ते पर गाड़ियां चल रही हैं, हार्न बज रहे हैं, आकाश से हवाई जहाज गुजरता है, लोग बात कर रहे हैं, बच्चे खेल रहे हैं, सड़क से लोग गुजर रहे हैं, जुलूस निकल रहा है--सारी आवाजें हैं, उसके प्रति पूरी तरह जाग जाएं। और जब सारी आवाजों के प्रति पूरी तरह जागे हों तब एक बार यह भी ख्याल करें कि कोई ऐसी भी आवाज है, जो बाहर से न आ रही हो, भीतर पैदा हो रही हो। और तब आप एक अलग ही सन्नाटे को सुनना शुरू कर देंगे। इस बाजार की भीड़ में भी एक आवाज है, जो भीतर भी पूरे समय गूंज रही है।
लेकिन हम बाहर की भीड़ की आवाज में इस बुरी तरह से संलग्न हैं कि वह भीतर का सन्नाटा हमें सुनाई नहीं पड़ता। सारी आवाजों को सुनते रहें, लड़ें मत, हटें मत, सुनते रहें। सिर्फ एक खोज और भीतर शुरू करें कि क्या इन आवाजों को, जो बाहर से आ रही हैं; कोई इन आवाजों में एक ऐसी आवाज भी है जो बाहर से न आ रही हो, भीतर से पैदा हो रही हो? और आप बहुत शीघ्र सन्नाटे की आवाज, जैसी कभी-कभी निर्जन वन में सुनाई पड़ती है, ठेठ बाजार में सड़क पर भी सुनने में समर्थ हो जाएंगे। सच तो यह है कि जंगल में जो आपको सन्नाटा सुनाई पड़ता है, वह जंगल का कम बाहर की आवाजों के हट जाने के कारण आपके भीतर की आवाज का प्रतिफलन ज्यादा होता है। वह सुना जा सकता है। जंगल में जाने की जरूरत नहीं है। दोनों कान भी हाथ से बंद कर लें, तो वही आवाज बाहर की बंद हो जाएगी, तो भीतर जैसे झींगुर बोल रहे हों, वैसा सन्नाटा भीतर गूंजने लगेगा। यह पहली प्रतीति है भीतर के आवाज की।
और इसकी प्रतीति जैसे ही होगी वैसे ही बाहर की आवाजें कम रसपूर्ण मालूम पड़ने लगेंगी। यह भीतर का संगीत आपके रस को पकड़ना शुरू हो जाएगा। थोड़े ही दिनों में यह भीतर जो सन्नाटे की तरह मालूम होता था, वह सघन होने लगेगा और रूप लेने लगेगा। यही सन्नाटा सो हं जैसा धीरे-धीरे प्रतीत होने लगता है। जिस दिन यह सो हं जैसा प्रतीत होने लगता है, उस दिन कोई संगीत, जो बाहर के वाद्यों से पैदा होता है, उसका मुकाबला नहीं कर सकता। यह अंतर की वीणा के वाद्यों से पैदा होता है, उसका मुकाबला नहीं कर सकता। यह अंतर की वीणा का संगीत आपकी पकड़ में आना शुरू हो गया। अब आपको अपने कान के रस को रोकना न पड़ेगा। आपको यह न कहना पड़ेगा कि मैं अब सितार न सुनूंगा। मैं सितार का त्याग करता हूं। नहीं, अब छोड़ने की कोई जरूरत न रहेगी। आप अचानक पाएंगे कि और भी विराट, और भी श्रेष्ठतर, और भी गहन संगीत उपलब्ध हो गया। और तब आप सितार के सुनने में भी इस संगीत को सुन पाएंगे। तब कोई विपरीत, कोई विरोध, कोई कंट्राडिक्शन नहीं रह जाएगा। तब बाहर का संगीत अंतर के संगीत की फीकी प्रतिध्वनि रह जाएगा। दुश्मनी नहीं रह जाएगी, फीकी प्रतिध्वनि रह जाएगी। और तब आपके भीतर अखंड व्यक्तित्व खड़ा होगा जो बाहर और भीतर का फासला भी नहीं करेगा।
एक घड़ी आती है, ऐसी कि जैसे-जैसे हम भीतर जाते हैं, बाहर और भीतर का फासला गिरता चला जाता है। एक घड़ी आती है कि न कुछ बाहर रह जाता है, न कुछ भीतर। एक ही रह जाता है जो बाहर है और भीतर है। जिस दिन यह घड़ी घटती है कि जो बाहर है वही भीतर है, जो भीतर है वही बाहर है; उस दिन आप संयम को, उस इक्विलिब्रियम को उपलब्ध हो गए, जहां सब सम हो जाता है; जहां सब ठहर जाता है; जहां सब मौन होता है; जहां कोई हलन-चलन नहीं होती है; जहां कोई भाग-दौड़ नहीं होती; जहां कोई कंपन नहीं होता।
किसी भी इंद्रिय से शुरू करें और भीतर की तरफ बढ़ते चले जाएं, फौरन ही
वह इंद्रिय आपको भीतर से भी जोड़ने का कारण बन जाएगी। आंख से देखना शुरू करें, फिर आंख बंद कर लें। बाहर के दृश्य देखें, देखते रहें, लड़ें मत। और धीरे-धीरे-धीरे उसके प्रति जागें जो बाहर से आया हुआ दृश्य न हो। बहुत शीघ्र आपको बाहर के दो दृश्यों के बीच में, भीतर के बीच में, भीतर के दृश्यों की झलकें आनी शुरू हो जाएंगी। कभी ऐसा प्रकाश भीतर भर जाएगा जो बाहर सूर्य भी देने में असमर्थ है। कभी भीतर ऐसे रंग फैल जाएंगे जो कि

इंद्रधनुषों में नहीं हैं। कभी भीतर ऐसे फूल खिल जाएंगे जो पृथ्वी पर कभी भी नहीं खिले हैं। और जब आप पहचानने लगेंगे कि यह बाहर का फूल नहीं है, यह बाहर का रंग नहीं है, यह बाहर का प्रकाश नहीं है; तब आपको पहली दफे तुलना मिलेगी कि बाहर जो प्रकाश है, अब उसको प्रकाश कहें या भीतर की तुलना में उसे भी अंधेरा कहें। बाहर जो फूल खिलते हैं, अब उन्हें फूल कहें या भीतर की तुलना में केवल फूलों की प्रतिध्वनियां कहें--रिजोनेंसिस, फीके स्वर। अब बाहर जो इंद्रधनुषों से रंग छा जाते हैं, वे रंग हैं? बहुत कठिन होगा, क्योंकि जब भीतर कोई रंग को जानता है तो रंग में एक लिविंग क्वालिटी, एक जीवंत गुण आ जाता है जो बाहर के रंगों में नहीं है। बाहर के रंगों में कितनी ही चमक हो, बाहर के रंग जड़ हैं। भीतर जब रंग दिखाई पड़ता है, तो रंग पहली दफे जीवंत हो जाता है।
अब हम सोच भी नहीं सकते कि रंग के जीवंत होने का क्या अर्थ होता है। रंग और जीवित! जानें तो ही ख्याल में आ सकता है कि रंग जीवित हो सकता है; रंग प्राणवान हो सकता है। और जिस दिन भीतर का रंग प्राणवान होकर दिखाई पड़ने लगता है, बाहर के रंगों का आकर्षण खो जाता है। छोड़ना नहीं पड़ता, बस खो जाता है।
प्रत्येक इंद्रिय भीतर ले जाने का द्वार बन सकती है। स्पर्श किया है बहुत, स्पर्श का अनुभव है बहुत। बैठ जाएं, आंख बंद कर लें, स्पर्श पर ध्यान करें। सुंदर शरीर छुए होंगे, सुंदर वस्तुएं छुई होंगी, फूल छुए होंगे। कभी सुबह घास पर जम गई ओस को छुआ होगा। कभी सर्द सुबह में आग के पास बैठ कर उष्णता का स्पर्श लिया होगा, कभी किसी चांद-तारों की दुनिया में लेट कर उनकी चांदनी को छुआ होगा। वे सब स्पर्श खड़े हो जाने दें अपने चारों ओर। और फिर खोजना शुरू करें कि क्या कोई ऐसा स्पर्श भी है जो बाहर से न आया हो? और थोड़े श्रम से, थोड़े ही संकल्प से आपको ऐसा स्पर्श प्रतीत होने लगेगा जो बाहर से नहीं आया है। जो चांद-तारों से नहीं मिल सकता, जो फूलों से नहीं, ओस से नहीं, जो सूर्य की ऊष्मा से नहीं, जो सुबह की ठंडी हवाओं के स्पर्श से नहीं। और जिस दिन आपको उस स्पर्श का बोध होगा, उसी दिन आपने भीतर का स्पर्श पाया। उसी दिन बाहर के स्पर्श व्यर्थ हो जाएंगे। फिर प्रत्येक व्यक्ति को वही इंद्रिय पकड़ लेनी चाहिए जो उसकी सर्वाधिक तीव्र और सजग हो।
यहां भी आपको मैं यह कह दूं कि जो इंद्रिय आपकी सबसे ज्यादा तीव्र है, उसे आप दुश्मन बना लेते हैं, अगर आपने संयम का निषेधात्मक रूप समझा। अगर आपने विधायक रूप समझा तो जो इंद्रिय आ पकी सर्वाधिक सक्रिय है, वही आपकी मित्र है। क्योंकि आप उसी के द्वारा भीतर पहुंच सकेंगे। अब जिस आदमी को रंगों में कोई रस नहीं है, जिसने अभी बाहर के रंगों को भी नहीं जीया, और न जाना, उसे भीतर के रंग तक पहुंचने में बड़ी कठिनाई होगी। जिस आदमी को संगीत में कुछ प्रयोजन नहीं मालूम होता, सिर्फ मालूम होता है शोरगुल--ज्यादा से ज्यादा व्यवस्थित शोरगुल, आवाजें, ध्वनियां; ज्यादा से ज्यादा कम से कम परेशान करने वाली ध्वनियां। उस आदमी को अंतर-ध्वनि की तरफ जाने में कठिनाई होगी। उसे मुश्किल होगी, उसे अड़चन होगी। नहीं, जो इंद्रिय आपकी सर्वाधिक आपको परेशान करती मालूम पड़ती है, जिससे निषेध वाला लड़ना शुरू कर देता है, वह आपकी मित्र है। क्योंकि वही इंद्रिय आपकी सबसे पहले भीतर की तरफ मोड़ी जा सकती है, तो अपनी इंद्रिय को खोज लें।
गुरजिएफ के पास कोई जाता था तो वह कहता था--तेरी सबसे बड़ी कमजोरी क्या है? पहले तू मुझे अपनी सबसे बड़ी कमजोरी बता दे, तो मैं उसे ही तेरी सबसे बड़ी शक्ति में रूपांतरित कर दूंगा। वह ठीक कहता था। यही है शक्ति। आपकी सबसे बड़ी कमजोरी क्या है? क्या रूप आपको आकर्षित करता है? तो भयभीत न हों, रूप ही आ पका द्वार बन जाएगा। क्या स्पर्श आपको बुलाता है? भयभीत न हों, स्पर्श ही आपका मार्ग है। क्या स्वाद आपको खींचता है और आपके स्वप्नों में प्रवेश कर जाता है? तो स्वाद को धन्यवाद दें। वही आपका सेतु बनेगा। जो इंद्रिय आपकी सर्वाधिक संवेदनशील है, उससे अगर आप लड़े, तो कुंठित हो जाएगी। आपने अपने ही हाथ अपना सेतु तोड़ लिया। अगर विधायक संयम की धारणा से चले तो आप उसी इंद्रिय को मार्ग बना लेंगे, उसी पर आप पीछे लौट आएंगे।

और ध्यान रहे, जिस रास्ते से हम जाते हैं, बाहर; उसी रास्ते से भीतर आते हैं। रास्ता वही होता है, सिर्फ दिशा बदल जाती है। चेहरा बदल जाता है।
आप यहां आए हैं, इस भवन तक, जिस रास्ते से आए हैं, उसी से वापस लौटेंगे। सिर्फ रुख और हो जाएगा। मुंह अभी भवन की तरफ था, अब अपने घर की तरफ होगा।
लेकिन भूल कर भी अगर आ पने ऐसा सोचा कि जो रास्ता मुझे अपने घर से इतनी दूर ले आया, वह मेरा दुश्मन है, इस पर मैं नहीं चलूंगा, तो आप पक्का समझ लें, आप अपने घर अब कभी भी नहीं पहुंच पाएंगे। कोई रास्ता दुश्मन नहीं है और रास्ते दोनों दिशाओं में खुले हैं।
तो, जिस रास्ते से आप बाहर के जगत में सर्वाधिक आकर्षित होते हैं और खिंचे जाते हैं--वह चाहे आंख हो, चाहे स्वाद हो, चाहे ध्वनि हो, कुछ भी हो-- जिस रास्ते से आप सर्वाधिक बाहर जाते हैं, या जिस रास्ते से आप सर्वाधिक अपने से दूर चले गए हैं, वही रास्ता आपके संयम की विधायक दिशा में सहयोगी बनेगा। उसी से आपको वापस लौटना है। उससे लड़ना मत। उससे लड़ कर तो आप उसको तोड़ देंगे। तोड़ कर आपको लौटना बहुत मुश्किल हो जाएगा। ध्यान रहे, यह बहुत अजीब लगेगा। लेकिन आपको जोर से कहना चाहता हूं कि लोग उन इंद्रियों के कारण बाहर नहीं भटक गए हैं, लोग उन इंद्रियों के कारण बाहर भटक जाते हैं जिनके रास्ते वे तोड़ देते हैं। जिन इंद्रियों के रास्ते वे तोड़ देते हैं लौटने के, उनकी वजह से भटक जाते हैं। इंद्रियों की वजह से कोई नहीं भटकता है। हम सब तोड़ते हैं।
लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं--हमारी और कोई तकलीफ नहीं है; बस, यह स्वाद हमें परेशान कर रहा है। किसी तरह स्वाद से छुटकारा दिला दें। उन्हें पता ही नहीं है कि जो उन्हें परेशान कर रहा है वही उनके लौटने का मार्ग है। इसे मैं कहता हूं, संयम की विधायक दृष्टि।
इसके एक और पहलू को ख्याल में ले लेना चाहिए। जितनी इंद्रियां हैं हमारे पास, उनका एक तो प्रगट रूप है जिसे हम बहिर इंद्रिय कहते हैं। महावीर ने आत्मा की तीन स्थितियां कही हैं--एक को वे कहते हैं--बहिर आत्मा। बहिर आत्मा उस आत्मा को कहते हैं जो अभी इंद्रियों का बाहर की तरफ उपयोग कर रहा है। दूसरे को महा वीर कहते हैं--अंतरात्मा। अंतरात्मा वह आत्मा है जो अब इंद्रियों का भीतर की तरफ उपयोग कर रही है। और तीसरे को महावीर कहते हैं--परमात्मा। परमात्मा वह आत्मा है, जिसका बाहर और
भीतर मिट गया। जिसको न अब कुछ बाहर है, न कुछ भीतर है। जो न बाहर जा रही है, न भीतर आ रही है। जो बाहर जा रही है वह बहिर आत्मा है, जो भीतर आ रही है वह अंतरात्मा है; जो अब कहीं नहीं जा रही है, जहां है वहीं है, स्वभाव में प्रतिष्ठित, वह परमात्मा है।
इंद्रियों का एक बहिर रूप है, वे हमें पदार्थ से जोड़ती हैं। जिस जगह
वे हमें पदार्थ से जोड़ती हैं, उस जगह जो रूप उनका प्रकट होता है वह अति स्थूल है। लेकिन वे ही इंद्रियां हमें स्वयं से भी जोड़े हुए हैं। क्योंकि वही चीज समझ लें, कि मेरा हाथ, मैं अपने हाथ को बढ़ा कर आ पके हाथ को अपने हाथ में ले लूं तो मेरा हाथ दो जगह जोड़ रहा है। एक तो आपके हाथ से मुझे जोड़ रहा है और हाथ मुझसे भी जुड़ा हुआ है। हाथ बीच में दो को जोड़ रहा है। ध्यान रहे, जहां आपसे मुझे जोड़ रहा है वहां तो सिर्फ आपके शरीर से जोड़ रहा है। लेकिन जहां मुझे जोड़ रहा है वहां आत्मा से जोड़ रहा है। इंद्रियां जब बाहर जोड़ती हैं तो पदार्थ से जोड़ती हैं, भीतर जब जोड़ती हैं, तब चेतना से जोड़ती हैं। तो, इंद्रियों का बहुत स्थूल रूप ही बाहर प्रकट होता है। क्योंकि जो हाथ आत्मा से जोड़ सकता है, जिसकी इतनी क्षमता है, वह बाहर केवल शरीर से जोड़ पाता है। बाहर उसकी क्षमता बहुत दीन हो जाती है। क्षमता तो जरूर उसमें आत्मा से भी जोड़ने की है, अन्यथा वह मुझसे कैसे जुड़े। और जब मैं कहता हूं; मेरे हाथ ऊपर उठ, तो वह ऊपर उठ जाता है। मेरा संकल्प मेरे हाथ को कहीं न कहीं जुड़ा हुआ है। जब मैं अपने हाथ को इनकार कर देता हूं ऊपर उठाने से तो हाथ ऊपर नहीं उठ पाता। मेरा संकल्प मेरे हाथ से कहीं जुड़ा हुआ है।
अब बहुत हैरानी की बात है कि शरीर तो है पदार्थ, संकल्प है चेतना। चेतना और पदार्थ कैसे जुड़ते होंगे, कहां जुड़ते होंगे! बहुत अदृश्य होगा वह जोड़! लेकिन बाहर मेरा हाथ तो सिर्फ पदार्थ से ही जोड़ सकता है। लेकिन इसलिए

हाथ पर नाराज हो जाने की जरूरत नहीं है। यह हाथ भीतर आत्मा से भी जोड़ रहा है। अगर मैं इस हाथ से अपनी चेतना को बाहर की तरफ प्रवाहित करूं तो यह दूसरे के शरीर पर जाकर अटक जाती है। अगर इसी चेतना को मैं अपने साथ वापस लौट आऊं, गंगोत्री की तरफ लौट आऊं, सागर की तरफ नहीं, तो यह मेरी आत्मा में लीन हो जाती है। हाथ में बहती हुई ऊर्जा बाहर की तरफ बहिर आत्मा का रूप है। हाथ में बहती हुई ऊर्जा भीतर की तरफ एक अंतरात्मा का रूप है। ऊर्जा बहती ही नहीं जहां, वहां परमात्मा है। परमात्मा तक पहुंचना हो तो अंतरात्मा से गुजरना पड़ेगा। बहिर आत्मा हमारी आज की स्थिति है, मौजूदा। परमात्मा हमारी संभावना है--हमारा भविष्य, हमारी नियति। अंतरात्मा हमारा यात्रा पथ है। उससे हमें गुजरना पड़ेगा। गुजरने के रास्ते वही हैं जो बाहर जाने के रास्ते हैं। एक बात... दूसरी बात--बाहर इंद्रियां स्थूल से जोड़ती हैं, भीतर सूक्ष्म से। इसलिए इंद्रियों के दो रूप हैं--एक, जिसको हम ऐंद्रिक शक्ति कहते हैं, और एक जिसको अतींद्रिय शक्ति कहते हैं।
पैरासाइकालाजी अध्ययन करती है उसका--परामनोविज्ञान। और चकित होते हैं। योग ने बहुत दिन अध्ययन किया है उसका। उसको योग ने सिद्धियां कहा है, विभूति कहा है। रूस में आज वे उसे एक नया नाम दे रहे हैं। वे उसे कहते हैं-- साइकोट्रानिक्स। कहते हैं कि जैसे, मनोऊर्जा का जगत, जैसे मनोशक्ति का जगत। यह जो भीतर हमारा अतींद्रिय रूप है, संयम जैसे-जैसे बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे हम अपने अतींद्रिय रूप को अनुभव करते चले जाते हैं। किसी भी इंद्रिय को पकड़ कर अतींद्रिय रूप को अनुभव करना शुरू करें। चकित हो जाएंगे।
पिछले दस वर्ष पहले, उन्नीस सौ इकसठ में रूस में एक अंधी लड़की ने हाथ
से पढ़ना शुरू किया। हैरानी की बात थी। बहुत परीक्षण किए गए। पांच वर्ष तक निरंतर वैज्ञानिक परीक्षण किए गए। और फिर रूस की जो सबसे बड़ी वैज्ञानिक संस्था है, एकेडमी, उसने घोषणा की; पांच वर्ष के निरंतर अध्ययन के बाद कि लड़की ठीक कहती है। वह अध्ययन करती है। और हैरानी की बात है कि हाथ आंख से भी ज्यादा ग्रहणशील होकर अध्ययन कर रहे हैं। अगर लिखे हुए कागज पर--ब्रेल में नहीं, अंधों की भाषा में नहीं, आपकी भाषा में लिखे हुए कागज पर--वह हाथ फेरती है, तो पढ़ लेती है। आपके लिखे हुए कागज पर कपड़ा ढांक दिया गया है और उस कपड़े पर हाथ रखती है, तो पढ़ लेती है। तो यह तो आंख भी नहीं कर पाती है। यह तो, जो वैज्ञानिक प्रयोग कर रहे हैं, वे भी नहीं पढ़ पाते हैं सामने, कि नीचे क्या होगा।
लेकिन वासिलिएव, जो उस लड़की पर मेहनत कर रहा था, उसको ऐसा ख्याल आया कि
जो एक व्यक्ति के भीतर संभव है वह किसी न किसी मार्ग से, किसी ने किसी रूप में सबकी संभावना होनी चाहिए। तो उसने सोचा, क्या हम दूसरे बच्चों को भी ट्रेंड कर सकते हैं? उसने अंधों की एक स्कूल में बीस बच्चों पर प्रयोग शुरू किया और चकित रह गया कि बीस में से सत्रह बच्चे दो वर्ष के प्रयोग के बाद हाथ से अध्ययन करने में समर्थ हो गए। अब तब तो वासिलिएव ने कहा कि नाइनटी सेवन परसेंट आदमियों की संभावना है कि वे हाथ से पढ़ सकें--नाइनटी सेवन परसेंट। बाकी जो तीन हैं, मानना चाहिए हाथ के लिहाज से बंधे हैं। बाकी और कोई कारण नहीं है। कुछ हाथ के यंत्र में खराबी होगी। वासिलिएव के प्रयोगों का परिणाम यह हुआ, अखबारों में जब खबरें निकलीं तो कई अंधे बच्चों ने अपने-अपने घरों पर प्रयोग करने शुरू कर दिए। और सैकड़ों खबरें आईं, मास्को यूनिवर्सिटी के पास गांवों से कि फलां बच्चा भी पढ़ पाता है, फलां बच्चा भी पढ़ पाता है।
बड़ी हैरानी की बात थी क्योंकि हाथ कैसे पढ़ पाएगा। हाथ के पास तो आंख नहीं है। हाथ से कोई संबंध नहीं जुड़ता हुआ मालूम पड़ता है। हाथ स्पर्श कर सकता है। लेकिन अब चादर ढांक दी गई तो स्पर्श भी नहीं कर सकता। जैसे-जैसे प्रयोगों को और गहन किया गया, वैसे-वैसे साफ हुआ कि सवाल हाथ का नहीं है, यह सवाल अतींद्रिय है, पैरासाइकिक है। उस लड़की को फिर पैर से भी पढ़ने के लिए कोशिश करवाई गई। दो महीने में वह पैर से भी पढ़ने लगी। फिर उसको बिना स्पर्श किए पढ़ने की कोशिश करवाई गई। वह दीवार के उस तरफ रखा हुआ बोर्ड भी पढ़ लेती थी। फिर उस फासले पर रखी हुई किताब खोली जाएगी और वह यहां से पढ़

सकेगी। तब स्पर्श से कोई संबंध न रहा। वासिलिएव ने कहा है--हम जितनी शक्तियों के संबंध में जानते हैं, निश्चित ही उनसे कोई अन्य शक्ति काम कर रही है।
योग निरंतर उस अन्य शक्ति की बात करता रहा है। महावीर की संयम की जो प्रक्रिया है उसमें उस अन्य शक्ति को जगाना ही आधार है। जैसे-जैसे वह अन्य शक्ति लगती है वैसे-वैसे इंद्रियां फीकी हो जाती हैं। ठीक वैसे ही फीकी हो जाती हैं जैसे कि आप किताब पढ़ रहे हैं--एक उपन्यास पढ़ रहे हैं और फिर आपके सामने टेलीविजन पर वह उपन्यास खोला जा रहा है तो आप किताब बंद कर देंगे। किताब एकदम फीकी हो गई। कथा वही है, लेकिन अब ज्यादा जीवंत मीडिया है, आपके सामने। बहुत दिन तक किताब चलेगी नहीं, बहुत दिन तक किताब नहीं चलेगी। किताब खो जाएगी। टेलीविजन और सिनेमा इसको पी जाएगा। जो भी शिक्षा टेलीविजन से दी जा सकती है वह किताब से आगे नहीं दी जा सकेगी। उसका कोई अर्थ नहीं रह गया क्योंकि किताब बहुत मुर्दा है, बहुत फीकी हो जाती है। अब अगर आपको कोई कहे कि उपन्यास किताब में पढ़ लो, और यह कथा फिल्म पर देख लो, दो में से चुन लो जो तुम्हें चुनना हो, तो आप किताब को हटा देंगे, तो जिन्हें टेलीविजन का कोई पता नहीं है, वे समझेंगे कि किताब का त्याग किया। त्याग आपने नहीं किया है, आपने सिर्फ श्रेष्ठतम माध्यम को चुन लिया है। सदा ही आदमी चुन लेता है, जो श्रेष्ठतम है, उसे। अगर आपको अपनी इंद्रियों का अतींद्रिय रूट प्रकट होना शुरू हो जाए तो निश्चित की आप इंद्रियों का रस छोड़ देंगे और एक नये रस में आप प्रवेश कर जाएंगे। बाहर जो अभी इंद्रियों में ही जीते हैं, जिनकी समझ की सीमा इंद्रियों के पार नहीं--वे कहेंगे, महात्यागी हैं आप। लेकिन आप केवल भोग की और गहनतम, और अंतर्तम दिशा में आगे बढ़ गए हैं। आप उस रस को पाने लगे हैं जो इंद्रियों में जीने वाले किसी आदमी को कभी पता ही नहीं चलता। संयम की यह विधायक दृष्टि अतींद्रिय संभावनाओं के बढ़ाने से शुरू होती है।
और महावीर ने बहुत ही गहन प्रयोग किए हैं अतींद्रिय संभावनाओं को बढ़ाने के लिए। महावीर की सारी की सारी साधना को इस बात से ही समझना शुरू करें तो बहुत कुछ आगे प्रकट हो सकेगा। महा वीर अगर बिना भोजन के रह जाते हैं वर्षों तक तो उसका कारण? उसका कारण है उन्होंने भीतर एक भोजन पाना शुरू कर दिया है। अगर महावीर पत्थर पर लेट जाते हैं और गद्दे की कोई जरूरत नहीं रह जाती तो उन्होंने भीतर के एक नये स्पर्श का जगत शुरू कर दिया है। महावीर अगर कैसा भी भोजन स्वीकार कर लेते है--असल में उन्होंने एक भीतर का स्वाद जन्मा लिया है। अब बाहर की चीजें उतनी महत्वपूर्ण नहीं हैं। भीतर की चीजें ही बाहर की चीजों पर इम्पोज हो जाती हैं और छा जाती हैं। उसे घेर लेती हैं। इसलिए महावीर सिकुड़े हुए मालूम नहीं पड़ते, फैले हुए मालूम पड़ते हैं। उनके व्यक्तित्व में कोई कहीं संकोच नहीं मालूम पड़ता है। खिलाव मालूम होता है। वे आनंदित हैं। वे तथाकथित तपस्वियों जैसे दुखी नहीं हैं। बुद्ध से यह नहीं हो सका। यह विचारों में ले लेना बहुत कीमती होगा और समझना आसान होगा। टाइप अलग था। बुद्ध से यह नहीं हो सका। बुद्ध ने भी यही सब साधना शुरू की जो महावीर ने की है। लेकिन बुद्ध को हर साधना के बाद ऐसा लगा कि इससे तो मैं और दीन-हीन हो रहा हूं। कहीं कुछ पा तो नहीं रहा हूं। इसलिए छह वर्ष के बाद बुद्ध ने सारी तपश्चर्या छोड़ दी। स्वभावतः बुद्ध ने निष्कर्ष लिया कि तपश्चर्या व्यर्थ है। बुद्ध बुद्धिमान थे और ईमानदार थे। नासमझ होते तो यह निष्कर्ष भी न लेते। अनेक नासमझ लोग चले जाते हैं उन दिशाओं में जो उनके लिए नहीं हैं। उन दिशाओं में, जिनकी उनकी क्षमता नहीं हैं। जो उनके व्यक्तित्व से तालमेल नहीं खाती और अपने को समझाए चले जाते है कि पिछले जन्मों में किए हुए पापों के कारण ऐसा हो रहा है। या शायद मैं पूरा प्रयास नहीं कर पा रहा हूं इसलिए ऐसा हो रहा है और ध्यान रहे, जो आपकी दिशा नहीं है उसमें आप पूरा प्रयास कभी भी न कर पाएंगे इसलिए यह भ्रम बना ही रहेगा कि मैं पूरा प्रयास नहीं कर पा रहा हूं।
बुद्ध ने छह वर्ष तक वही किया जो महावीर कर रहे थे। लेकिन बुद्ध को जो निष्पत्ति मिली उसे करने से, वह वह नहीं थी जो महावीर को मिली। महावीर आनंद को उपलब्ध हो गए, बुद्ध बहुत पीड़ा को उपलब्ध हो गए। महावीर महाशक्ति

को उपलब्ध हो गए, बुद्ध केवल निर्बल हो गए। निरंजना नदी को पार करते वक्त एक दिन वे इतने कमजोर थे उपवास के कारण कि किनारे को पकड़ कर चढ़ने की शक्ति मालूम न पड़ी। एक जड़ को पकड़ कर वृक्ष की सोचने लगे कि इस उपवास से क्या मिलेगा जिससे मैं नदी भी पार करने की शक्ति खो चुका, उससे इस भवसागर को कैसे पार कर पाऊंगा। पागलपन है, यह नहीं होगा। कृश हो गए थे, हड्डियां सब निकल आईं। बुद्ध का बहुत प्रसिद्ध चित्र जो उस समय का है वह ठीक तथाकथित तपस्वी जैसी मुसीबत में पड़ेगा, उसका चित्र है। एक ताम्र प्रतिमा उपलब्ध है, बहुत पुरानी--जिसमें बुद्ध का उस समय का चित्र है, जब वे छह महीने तक निराहार रहे थे। सारी हड्डियां दिखाई पड़ती हैं, बाकी सारा शरीर सूख गया है। खून ने जैसे बहना बंद कर दिया हो, चमड़ी जैसे सिकुड़ कर जुड़ गई है। सारा शरीर मुर्दे का हो गया। वैसे ही क्षण में वह निरंजना नदी को पार करते वक्त उन्हें ख्याल आया कि नहीं, यह सब व्यर्थ है। और यह सब बुद्ध के लिए व्यर्थ था। लेकिन इसी सबसे महावीर महाशक्ति को उपलब्ध हुए। असल में बुद्ध ने जिनसे यह बात सुनी और सीखी वह सब निषेध था वह सब निषेध था। यह-यह छोड़ो, यह-यह छोड़ो, वह छोड़ते गए। जिसने जैसा कहा, वह करते चले गए। जिस गुरु ने जो बताया वह उन्होंने किया। सब छोड़ कर उन्होंने पाया कि सब तो छूट गया, मिला कुछ भी नहीं, और मैं केवल दीन-हीन और दुर्बल हो गया हूं--बुद्ध के लिए वह मार्ग न था। बुद्ध के व्यक्तित्व का टाइप भिन्न था, ढांचा और था। फिर बुद्ध ने सब त्याग कर दिया सब त्याग का त्याग कर दिया। भोग को त्याग करके देख लिया था, उससे कुछ पाया नहीं। फिर सब त्याग का त्याग कर दिया। और जब सब त्याग का भी त्याग कर दिया, तब बुद्ध ने पाया।
महावीर की प्रक्रिया में और बुद्ध की प्रक्रिया में बड़ा उलटा भाव है। इसलिए एक ही समय पैदा होकर भी दोनों की परंपरा बड़ी विपरीत है। बुद्ध ने भी पाया, वहीं पहुंचे वे जहां कोई पहुंचता है, महावीर पहुंचते हैं। लेकिन त्याग से न पाया। क्योंकि त्याग की जो धारणा बुद्ध के मन में प्रवेश कर गई, वह निषेध की थी। वहीं भूल हो गई। महावीर की तो धारणा विधेय की थी। जब भी कोई त्याग में निषेध से चलेगा तो भटकेगा और परेशान होगा और दुर्बल होगा। कहीं पहुंचेगा नहीं। आत्मबल तो मिलेगा ही नहीं, शरीर बल और खो जाएगा। अतींद्रिय का तो जगत खुलेगा ही नहीं, इंद्रियों का जगत रुग्ण, बीमार होकर सिकुड़ जाएगा। अंतर-ध्वनि सुनाई न पड़ेगी, कान बहरे हो जाएंगे। अंतदृश्य तो दिखाई न पड़ेंगे, आंख धुंधली हो जाएगी। अंतर-स्पर्श तो पता न चलेगा, हाथ जड़ हो जाएंगे और बाहर भी स्पर्श न कर पाएंगे।
निषेध से वह भूल होती है। और परंपरा केवल निषेध दे सकती है। क्योंकि
हम जो पकड़ते हैं, उनको वही दिखाई पड़ता है जो छोड़ा है। उन्हें वह नहीं दिखाई पड़ता जो पाया। तो महावीर को अगर ठीक समझना हो, उनके गरिमाशाली संयम को अगर समझना हो, उनके स्वस्थ, विधायक संयम को यदि समझना हो तो अतींद्रिय को जगाने के प्रयोग में प्रवेश करना चाहिए। और प्रत्येक व्यक्ति की कोई न कोई इंद्रिय तत्काल अतींद्रिय जगत में प्रवेश करने को तैयार खड़ी है। थोड़े से प्रयोग करने की जरूरत है और आपको पता चल जाएगा कि आपकी अतींद्रिय क्षमता क्या है। दो-चार-पांच छोटे प्रयोग करें और आपको एहसास होने लगेगा कि आपकी दिशा क्या है, आपका द्वार क्या है? उसी द्वार से आगे बढ़ जाएंगे। कैसे पता चले, कैसे जाने कोई कि उसकी अतींद्रिय क्षमता क्या हो सकती है?
हम सबको कई बार मौके मिलते हैं लेकिन हम चूक जाते हैं। क्योंकि हम कभी
उस दिशा में सोचते नहीं। कभी आप बैठें, अचानक आपको ख्याल आता है किसी मित्र का और आप चेहरा उठाते हैं और देखते हैं, वह द्वार पर खड़ा है। आप सोचते हैं, संयोग है। चूक गए मौके को। कभी आप सोचते हैं, कितने बजे हैं, ख्याल आता है नौ। घड़ी में देखते हैं, ठीक नौ बजे हैं। आप सोचते है, संयोग है। चूक गए। एक अतींद्रिय झलक मिली थी। अगर ऐसी झलक आपको कोई मिलती है तो इसके प्रयोग करें। अगर घड़ी पर आपने सोचा नौ बजे हैं और घड़ी में नौ बजे हैं, तो फिर अब इस पर प्रयोग करना शुरू कर दें। कभी भी घड़ी पहले मत देखें--पहले सोचें, फिर घड़ी देखें। और शीघ्र ही आपको पता चलेगा, यह संयोग नहीं है।

क्योंकि यह इतने बार घटने लगेगा, और यह घटने की घटना बढ़ने लगेगी संख्या में कि संयोग न रह जाएगा।
आधी रात को उठ आएं। पहले सोचें कि कितना बजा है। सोचें कहना ठीक नहीं, क्योंकि सोचने में भूल हो सकती है। ख्याल करें एकदम से कि कितना बजा है और जो पहला ख्याल हो, उसको ही घड़ी से मिलाएं, दूसरे से मत मिलाएं। दूसरा गड़बड़ होगा। पहला जो हो! अगर आपको द्वार पर आए मित्र का ख्याल आ गया तो फिर जरा इस पर प्रयोग करें। जब भी द्वार पर आहट सुनाई पड़े, दरवाजे की घंटी बजे, जल्दी दरवाजा मत खोलें। पहले आंख बंद करें और पहले जो चित्र आए उसको ख्याल में ले लें, फिर दरवाजा खोलें। थोड़े ही दिन में आप पाएंगे कि यह संयोग नहीं था। यह आपकी क्षमता की झलक थी जिसको आप संयोग कह कर चूक रहे थे। और एकाध दिशा में भी अगर आपका अतींद्रिय रूप खुलना शुरू हो जाए तो आपकी इंद्रियां तत्काल फीकी पड़नी शुरू हो जाएंगी और आपके लिए संयम का विधायक मार्ग साफ होने लगेगा।
हम पूरे जीवन न मालूम कितने अवसरों को चूक जाते हैं न मालूम। और चूक जाने का हमारा एक तर्क है कि हम हर चीज को
संयोग कह कर छोड़ देते हैं कि ऐसा हो गया होगा। ऐसा नहीं है कि संयोग नहीं होते, संयोग होते हैं। लेकिन बिना परीक्षा किए मत कहें कि संयोग है। परीक्षा कर लें। हो सकता है, संयोग न हो। और अगर संयोग नहीं है तो आपकी शक्ति का आपको अनुमान होना शुरू हो जाएगा। एक बार आपको ख्याल में आ जाए आपकी शक्ति का सूत्र, तो आप उसको फिर विकसित कर सकते हैं। उसको प्रशिक्षित कर सकते हैं। संयम उसका प्रशिक्षण है।
एक दिन आपने उपवास किया और आपको भोजन की बिल्कुल याद न आए, उस दिन अपने
को भुलाने की कोशिश में मत लगना जैसा उपवास करने वाले करने लगते हैं। एक दिन उपवास किया तो आदमी मंदिर में जाकर बैठ जाता है। भजन कीर्तन, धुन में लगा रहता है। शास्त्र पढ़ता रहता है, साधु को सुनता रहता है। वह सब इसलिए कि भोजन की याद न आए। वह चूक रहा है। जिस दिन भोजन नहीं किया, उस दिन कुछ न करें, फिर खाली बैठ जाएं और देखें, अगर चौबीस घंटे में आपको भोजन की याद न आए, तो उपवास आपके लिए मार्ग हो सकता है। तो आप महावीर जितने लंबे उपवासों की दुनिया में प्रवेश कर सकते हैं। वह आपका द्वार बन सकता है। अगर आपको भोजन-भोजन की ही याद आने लगे तो आप जानना कि वह आपका रास्ता नहीं है। आपके लिए वह ठीक नहीं होगा।
किसी भी दिशा में--पच्चीस दिशाएं चौबीस घण्टे खुलती हैं। जो जानते हैं, वे तो कहते हैं--हर क्षण हम चौराहे पर होते हैं, जहां से दिशाएं खुलती हैं--हर क्षण। अपनी दिशा को खोज लेना साधक के लिए बहुत जरूरी है, नहीं तो, वह भटक सकता है। और दूसरे को आरोपित मत करना, अपने को ही खोजना और अपने टाइप को खोजना, अपने ढांचे को, अपने व्यक्तित्व के रूप को। नहीं तो, भूल हो जाती है। महावीर को मानने वाले घर में पैदा हो गए हैं इसलिए आप महावीर के मार्ग पर जा सकेंगे, यह अनिवार्य नहीं है। कोई नहीं कह सकता कि आपके लिए मोहम्मद का मार्ग ठीक होगा। और कोई नहीं कह सकता कि कृष्ण का मार्ग ठीक नहीं होगा। जरूरी नहीं है कि आप कृष्ण को मानने वाले घर में पैदा हो गए हैं, इसलिए बांसुरी में आपको कोई रस आ जाए, यह जरूरी नहीं है। हो सकता है, महावीर आपके लिए सार्थक हों, जिनसे बांसुरी को है, वह जन्म नहीं है। महावीर के पास जो आएगा वह चुन कर आ रहा है। उसका बेटा जन्म से जैन हो जाएगा। वह खुद चुन कर आया था। उसका चुनाव था। उसके व्यक्तित्व और महावीर के व्यक्तित्व में कोई कशिश, कोई मैगनिटिज्म था, जिसने उसे खींचा था, वह उनके पास आ गया। कृष्ण हाथ में बांसुरी न हो तो कृष्ण को पहचानना मुश्किल है। अगर बांसुरी अकेली रखी हो तो कृष्ण का ख्याल आ भी सकता है। व्यक्तित्व के टाइप हैं। और अभी, जैसा कि हमने कभी इस मुल्क में चार वर्णों को बांटा था, यह बहुत मजे की बात है कि वे चार वर्ण हमारे चार टाइप थे, जो मूल आदमी के चार रूप हो सकते हैं।
कभी-कभी चकित करने वाली घटनाएं घटती हैं। अभी रूस के वैज्ञानिक फिर आदमी को इलेक्ट्रिसिटी के आधार पर चार हिस्सों में बांटना शुरू किए हैं। वे कहते हैं--फोर टाइप्स। आधार उनका है कि व्यक्ति के शरीर की विद्युत का

जो प्रवाह है, वह उसके टाइप को बताता है और वह विद्युत का प्रवाह है जो शरीर का, वह सब का अलग-अलग है। मैं मानता हूं कि महावीर का वह विद्युत का प्रवाह पाजिटिव था। इसलिए वे किसी भी सक्रिय साधना में कूद सके। बुद्ध का वह इलेक्ट्रिक प्रभाव निगेटिव था इसलिए वे किसी सक्रिय साधना से कुछ भी न पा सके। उन्हें एक दिन बिल्कुल ही निष्क्रिय और शून्य हो जाना पड़ा। वहीं से उनकी उपलब्धि का द्वार खुला। वह व्यक्तित्व का भेद है, यह सिद्धांत का भेद नहीं है।
अब तक मनुष्य-जाति बहुत उपद्रव में रही है क्योंकि हम व्यक्तित्व के भेद को सिद्धांतों का भेद मान कर व्यर्थ के विवादों में पड़े रहे हैं। अपने व्यक्तित्व को खोज लें। अपनी विशिष्ट इंद्रिय को खोज लें। अपनी क्षमता का थोड़ा सा आंकलन कर लें और फिर आप संयम की दिशा में गति करना आसान... रोज-रोज आसान पाएंगे। लेकिन अगर आपने अपनी क्षमता को बिना आंके किसी और की क्षमता के अनुकरण में चलने की कोशिश की तो आप अपने को रोज-रोज झंझट में पा सकते हैं। क्योंकि वह आपका मार्ग नहीं है, वह आपका द्वार नहीं है।
इसलिए बहुत दुर्भाग्य जो जगत में घटा है, वह यह है कि अपने धर्म को जन्म से तय करते हैं। इससे बड़ी कोई दुर्भाग्य की घटना पृथ्वी पर नहीं है। क्योंकि इस कारण सिर्फ उपद्रव पैदा होता है, और कुछ भी नहीं होता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपना धर्म सचेतन रूप से खोजना चाहिए। वह जीवन का जो परम लक्ष्य है, वह जन्म के होने से नहीं होता तय, वह आपको खोजना पड़ेगा। वह बड़ी मुश्किल से साफ होगा। लेकिन जिस दिन वह साफ हो जाएगा, उस दिन आपके लिए सब सुगम हो जाएगा।
दुनिया से धर्म के नष्ट होने के बुनियादी कारणों में एक यह है कि हम धर्म को जन्म से जोड़े हैं। धर्म हमारी खोज नहीं है और इसलिए यह भी होता है कि महावीर के वक्त में महावीर का विचार जितने लोगों के जीवन में क्रांति ला पाया, फिर पच्चीस सौ साल में भी उतने लोगों की जिंदगी में नहीं ला पाया। इसका कुल कारण इतना है कि महावीर के पास जो लोग आते हैं वह उनकी कांशस च्वाइस है, वह जन्म नहीं है। महावीर के पास जो आएगा वह चुन कर आ रहा है। उसका बेटा जन्म से जैन हो जाएगा। वह खुद चुन कर आया था। उसका चुनाव था। उसके व्यक्तित्व और महावीर के व्यक्तित्व में कोई कशिश, कोई मैग्निटिज्म था, जिसने उसे खींचा था, वह उनके पास आ गया। लेकिन उसका बेटा? उसका बेटा सिर्फ पैदा होने से महावीर के पास जाएगा, वह कभी पास नहीं पहुंचेगा। इसलिए महावीर या बुद्ध या कृष्ण या क्राइस्ट, इनके जीवन के क्षणों में इनके पास जो लोग आते हैं, उनके जीवन में आमूल रूपांतरण हो जाता है। फिर यह दुबारा घटना नहीं घटती। और हर पीढ़ी धीरे-धीरे औपचारिक हो जाती है। धर्म और औपचारिक, फार्मल हो जाता है। क्योंकि हम इस घर में पैदा हुए हैं, इसलिए इस मंदिर में जाते हैं। घर और मंदिर का कोई संबंध है? मेरा व्यक्तित्व क्या है, मेरी दिशा, मेरा आयाम क्या है। कौन सा चुंबक मुझे खींच सकता है, या किस चुंबक से मेरे संबंध जुड़ सकते हैं, वह प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं खोजना चाहिए।
हम एक धार्मिक दुनिया बनाने में तभी सफल हो पाएंगे जब हम प्रत्येक व्यक्ति को अपना धर्म चुनने की सहज स्वतंत्रता दे दें। अन्यथा दुनिया में धर्म न हो पाएगा। अधर्म होगा। और धार्मिक लोग औपचारिक होंगे और अधार्मिक वास्तविक होंगे। क्योंकि बड़े मजे की बात है। कोई आदमी कभी भी नास्तिकता को कांशसली चुनता है, चुनना पड़ता है। वह कहता है, नहीं है ईश्वर, तो उसका चुनाव होता है। और जो आदमी कहता है, ईश्वर है, यह उसके बापदादों का चुनाव है। इसलिए नास्तिक के सामने आस्तिक हार जाते हैं। उसका कारण है। क्योंकि आपका तो वह चुनाव ही नहीं है। आप आस्तिक हैं, पैदाइश। वह आदमी नास्तिक है, चुनाव से। उसकी नास्तिकता में एक बल, एक तेजी, एक गति, एक प्राण का स्वर होता है। आपकी आस्तिकता सिर्फ फार्मल है। हाथ में एक कागज का टुकड़ा है, जिस पर लिखा है, आप किस घर में पैदा हुए हैं। वही होता है। नास्तिक से हार जाता है आस्तिक, लेकिन ज्यादा दिन यह नहीं चलेगा। अब तक ऐसा हुआ था। अब नास्तिकता भी धर्म बन गई है।

उन्नीस सौ सत्रह की रूसी क्रांति के बाद नास्तिकता भी धर्म है। इसलिए रूस में अब नास्तिक बिल्कुल कमजोर हैं। रूस के नास्तिक पैदाइश से नास्तिक हैं। उसका बाप नास्तिक था इसलिए वह नास्तिक है। इसलिए अब नास्तिकता भी निर्बल, नपुंसक हो गई है। उसमें भी वह बल नहीं रह जाएगा। निश्चित ही बल होता है, अपने चुनाव में। मैं अगर मरने के लिए भी गड्ढे में कूदने जाऊं, और वह मेरा चुनाव है, तो मेरी मृत्यु में भी जीवन की आभा होगी। और अगर मुझे स्वर्ग भी मिल जाए धक्के देकर, फार्मल, कोई मुझे पहुंचा दे स्वर्ग में, तो मैं उदास-उदास स्वर्ग की गलियों में भटकने लगूंगा। वह मेरे लिए नरक हो जाएगा। उससे मेरी आत्मा का कहीं तालमेल नहीं होने वाला है।
संयम को चुनें। अपने को खोजें। सिद्धांत का बहुत आग्रह न रखें, अपने
को खोजें। अपनी इंद्रियों को खोजें। अपने बहाव देखें कि मेरी ऊर्जा किस तरफ बहती है; उससे लड़ें मत, वही आपका मार्ग बनेगा। उससे ही पीछे लौटें और विधायक रूप से अतींद्रिय का थोड़ा अनुभव शुरू करें। और प्रत्येक व्यक्ति के पास अतींद्रिय क्षमता है--उसे पता हो, न पता हो। और प्रत्येक व्यक्ति चमत्कारी रूप से अतींद्रिय प्रतिभा से भरा हुआ है। जरा कहीं द्वार खटखटाने की जरूरत है और खजाने खुलने शुरू हो जाते हैं। और जैसे ही यह होता है वैसे ही इंद्रियों का जगत फीका हो जाता है।
एक दो-तीन बातें संयम के संबंध में और, क्योंकि कल हम तप की बात शुरू करेंगे। आदमी भूलें भी नई-नई नहीं करता है, पुरानी ही करता है--भूलें भी। जड़ता का इससे बड़ा और क्या प्रमाण होगा? अगर आप जिंदगी में लौट कर देखें तो एक दर्जन भूल से ज्यादा भूलें आप न गिना पाएंगे। हां, उन्हीं-उन्हीं को कई बार किया। ऐसा लगता है कि अनुभव से हम कुछ सीखते ही नहीं। और जो अनुभव से नहीं सीखता वह संयम में नहीं जा सकेगा। संयम में जाने का अर्थ ही यह है कि अनुभव ने बताया कि असंयम गलत था; कि अनुभव ने बताया कि असंयम दुख था; कि अनुभव ने बताया कि असंयम सिर्फ पीड़ा थी और नरक था। लेकिन हम तो अनुभव से सीखते ही नहीं। अच्छा हो कि मैं मुल्ला की बात आपसे कहूं।
साठ वर्ष का हो गया है, मुल्ला। काफी हाउस में मित्रों के पास बैठ कर गपशप कर रहा है एक सांझ। गपशप का रुख अनेक बातों से घूमता इस बात पर आ गया कि एक बूढ़े मित्र ने पूछा-सभी बूढ़े हैं, साठ साल का नसरुद्दीन है, उसके मित्र हैं-एक बूढ़े ने पूछा कि नसरुद्दीन, तुम्हारी जिंदगी में कोई ऐसा मौका आया, तुम्हें ख्याल आता है कि जब तुम बड़ी परेशानी में पड़ गए होगे-बहुत आकवर्ड मोमेंट? नसरुद्दीन ने कहाः सभी की जिंदगी में आता है। लेकिन तुम अपनी जिंदगी का कहो तो हम भी कहें।
तो सभी बूढ़ों ने अपनी-अपनी जिंदगी के वे क्षण बताए जब वे बड़ी मुश्किल में पड़ गए हैं, जहां कुछ निकलने का रास्ता न रहा। कभी किसी ने कोई चोरी की और रंगे हाथों पकड़ा गया। कभी कोई झूठ बोला और झूठ नग्नता से प्रगट हो गया और कोई उपाय न रहा, उसको बचाने का।
नसरुद्दीन ने कहा कि मुझे भी याद है। घर की नौकरानी स्नान कर रही है
और मैं ताली के छेद से उसको देख रहा था। मेरी मां ने मुझे पकड़ लिया। उस वक्त मेरी बुरी हालत हुई।
बाकी बूढ़े हंसे। आंखें मिचकाईं। उन्होंने कहाः नहीं, इसमें कोई इतने परेशान मत होओ। सभी की जिंदगी में, बचपन में ऐसे मौके आ जाते हैं।" नसरुद्दीन ने कहाः वॉट आर यू सेइंग? दिस इ.ज अबाउट यसटरडे। क्या कह रहे हो, बचपन! यह कल की ही बात है।
बचपन और बुढ़ापे में चालाकी भला बढ़ जाती हो, भूलें नहीं बदलतीं। वही भूलें हैं। हां, बूढ़ा जरा होशियार हो जाता है और पकड़ में कम आता है, यह दूसरी बात है। लेकिन इससे बच्चा कम होशियार है, पकड़ में जल्दी आ जाता है। अभी उसके पास उपाय चालाकी के ज्यादा नहीं हैं। या यह भी हो सकता है कि बच्चे को पकड़ने वाले लोग हैं, बूढ़े को पकड़ने वाले लोग नहीं हैं। बाकी कहीं अनुभव में कुछ भेद पड़ता हो, ऐसा दिखाई नहीं पड़ता।
नसरुद्दीन मरा। स्वर्ग के द्वार पर पहुंचा। सौ वर्ष के ऊपर होकर मरा।
काफी जीया। कथा है कि सेंट पीटर ने, जो स्वर्ग के दरवाजे पर पहरा देते हैं,

उन्होंने नसरुद्दीन से पूछा-काफी दिन रहे, बहुत दिन रहे, लंबा समय रहे, कौन-कौन से पाप किए पृथ्वी पर?
नसरुद्दीन ने कहाः पाप! किए ही नहीं।
सेंट पीटर ने समझा कि शायद पाप बहुत जनरलाइज बात है, ख्याल में न आती हो। बूढ़ा आदमी है।
कहाः चोरी की कभी?
नसरुद्दीन ने कहाः नहीं।
कभी झूठ बोले?
नहीं।
कभी शराब पी?
नसरुद्दीन ने कहाः नहीं।
कभी स्त्रियों के पीछे पागल होकर भटके?
नसरुद्दीन ने कहाः नहीं।
सेंट पीटर बहुत चौंका। उसने कहाः दैन वॉट यू हैव बीन डूइंग देयर फॉर
सो लांग ए टाइम? सौ साल तक तुम कर क्या रहे थे वहां? कैसे गुजारे इतने दिन? नसरुद्दीन ने कहाः अब तुमने मुझे पकड़ा। यह तो झंझट का सवाल है।
यह झंझट का सवाल है। लेकिन इसका जवाब मैं तुमसे एक सवाल पूछ कर देना चाहता हूं। वॉट हैव यू बीन डूइंग हियर? तुम क्या कर रहे हो, यहां? हम तो सौ साल से, तुम्हारा तो सुनते हैं अनंतकाल से तुम यहां हो?
पाप न हो तो आदमी को लगता ही नहीं कि जिए कैसे। असंयम न हो तो आदमी को लगता ही नहीं कि जिए कैसे। अब महावीर जैसे लोग हमारी समझ के बाहर पड़ते हैं, इसका कारण है। इसका कारण एक्झिस्टेंशियल है। इंटेलेक्चुअल नहीं। उसका कारण बौद्धिक नहीं है कि वह हमारी समझ में नहीं आता। बुद्धि में बिल्कुल समझ में आते हैं। फर्क हमारे जीने के ढंग का है। हमारी समझ में यह नहीं आता कि संयम, तो फिर जीएंगे क्या? न कोई स्वाद में रस रह जाएगा, न कोई संगीत में रस रह जाएगा, न कोई रूप आकर्षित करेगा, न भोजन पुकारेगा, न वस्त्र बुलाएंगे, महत्वाकांक्षा न रह जाएगी। तो फिर हम जीएंगे कैसे?
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि अगर महत्वाकांक्षा न रही, अगर बड़ा मकान बनाने का ख्याल मिट गया, अगर और सुंदर होने का ख्याल मिट गया, तो जीएंगे कैसे! अगर और धन पाने का ख्याल मिट गया, तो जीएंगे कैसे! हमें लगता ही यह है कि पाप ही जीवन की विधि है, असंयम ही जीवन का ढंग है। इसलिए हम सुन लेते हैं कि संयम की बात अच्छी है, लेकिन वह कहीं हमें छू नहीं पाती। हमारे अनुभव से उसको कोई मेल नहीं है। और वह हमारा सवाल ठीक ही है क्योंकि जब भी हमें संयम का ख्याल उठता है तो लगता है, निषेध-यह छोड़ो, वह छोड़ो, यह छोड़ो। यही तो हमारा जीवन है। सब छोड़ दें! तो फिर जीवन कहां है! यह निषेधात्मक होने की वजह से हमारी तकलीफ है। मैं नहीं कहता कि यह छोड़ो, यह छोड़ो, यह छोड़ो। मैं कहता हूं, यह भी पाया जा सकता है, यह भी पाया जा सकता है, यह भी पाया जा सकता है। इसे पाओ। हां, इस पाने में कुछ छूट जाएगा, निश्चित। लेकिन तब खाली जगह नहीं छूटेगी। तब भीतर एक नया फुलफिलमेंट, एक नया भराव होगा। और हमारी सभी इंद्रियां एक पैटर्न में, एक व्यवस्था में जीती हैं। अगर आपको अतींद्रिय दृश्य दिखाई पड़ने शुरू हो जाएं तो ऐसा नहीं कि सिर्फ आंख से छुटकारा मिलेगा। नहीं, जिस दिन आंख से छुटकारा मिलता है उस दिन अचानक कान से भी छुटकारा मिलना शुरू हो जाता है। क्योंकि अनुभव का एक नया रूप जब आपके ख्याल में आता है कि आंख के जगत में भी भीतर का दर्शन है, तो फिर कान के जगत में भी भीतर की ध्वनि होगी, भीतर का नाद होगा। फिर स्पर्श के जगत में भी भीतर के जगत का स्पर्श होगा। फिर संभोग के जगत में भी भीतर की समाधि होगी। वह तत्काल ख्याल में आना शुरू हो जाता है। जब एक जगह से ढांचा टूट जाए असंयम का, तो सब जगत से दीवार गिरनी शुरू हो जाती है। प्रत्येक चीज एक ढांचे में जीती है। एक ईंट खींच लें, सब गिर जाता है। जनगणना हो रही है और नसरुद्दीन के घर अधिकारी गए हुए हैं, उससे पूछने, उसके घर के बाबत। अकेला बैठा है, उदास। तो अधिकारी ने पूछा कि कुछ अपने परिवार का ब्योरा दो, जनगणना लिखने आया हूं। तो नसरुद्दीन ने कहा कि मेरे पिता जेलखाने में बंद हैं। अपराध की मत पूछो, क्योंकि बड़ी लंबी संख्या है।

मेरी पत्नी किसी के साथ भाग गई है। किसके साथ भाग गई है, इसका हिसाब लगाना बेकार है। क्योंकि किसी के भी साथ भाग सकती थी। मेरी बड़ी लड़की पागलखाने में है। दिमाग का इलाज चलता है। यह मत पूछो कि कौन सी बीमारी है, यह पूछो कि कौन सी बीमारी नहीं है?
थोड़ा बेचैन होने लगा अधिकारी कि बड़ी मुसीबत का मामला है, कहां, कैसे भागे। किस तरह सहानुभूति इसको बताएं और निकलें यहां से? तभी नसरुद्दीन ने कहा-और मेरा छोटा लड़का बनारस हिंदू युनिवर्सिटी में है। तो अधिकारी को जरा प्रसन्नता हुई। उसने कहाः बहुत अच्छा। प्रतिभाशाली मालूम पड़ता है! क्या अध्ययन कर रहा है?
नसरुद्दीन ने कहाः गलती मत समझो। हमारे घर में कोई अध्ययन करेगा? हमारे घर में कोई प्रतिभा पैदा होगी? न तो प्रतिभाशाली है, न अध्ययन कर रहा है। बनारस विश्वविद्यालय के लोग उसका अध्ययन कर रहे हैं। दे आर स्टडींइग हिम। नसरुद्दीन ने कहाः हमारे घर के बाबत कुछ तो समझो, जो पूरा ढांचा है उसमें-और रही मेरी बात, सो तुम न पूछो तो अच्छा है। लेकिन जब तक वह यह कह रहा था तब तक तो अधिकारी भाग चुका था। उसने यह कहा तो वह था नहीं मौजूद, वह जा चुका था।
ढांचे में चीजों का अस्तित्व होता है। अभी मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अगर आपके घर में एक आदमी पागल होता है, तो किसी न किसी रूप में आपके पूरे परिवार में ढांचा होगा, इसलिए है। नया मनोविज्ञान कहता है-एक पागल की चिकित्सा नहीं की जा सकती है जब तक उसके परिवार की चिकित्सा न की जाए। परिवार की चिकित्सा, फैमिली थैरेपी नई विकसित हो रही है। और, जो और कुछ सोचते हैं वे कहते हैं कि परिवार से भी क्या फर्क पड़ेगा? क्योंकि परिवार, और परिवारों के ढांचे में जीता है। तो जब तक पूरी सोसाइटी की चिकित्सा न हो जाए, जब तक पूरे समाज की चिकित्सा न हो जाए, तब तक एक पागल को ठीक करना मुश्किल है। वे ग्रुप थैरेपी की बात करते हैं। वे कहते हैं-पूरा ग्रुप, वह जो समूह है पूरा, वह समूह के ढांचे में एक आदमी पागल होता है। चीजें संयुक्त हैं।
लेकिन एक बात उनके ख्याल में नहीं है, जो मैं कहना चाहता हूं। कभी ख्याल में आएगी, लेकिन अभी उनको सौ साल लग सकते हैं। यह बात जरूर सच है कि अगर एक घर में एक आदमी पागल है, तो किसी न किसी रूप में उसके पागलपन में पूरे घर के लोग कंट्रिब्यूट किए, उन सब ने कुछ न कुछ सहयोग दिया है। अन्यथा वह पागल कैसे हो जाता। और यह भी सच है कि जब तक उस घर के सारे लोग ठीक न हो जाएं तब तक यह आदमी ठीक नहीं हो सकता। यह भी सच है कि एक परिवार तो बड़े समूह का हिस्सा है और पूरा समूह उस परिवार को पागल करने में कुछ हाथ बंटाता है। जब तक पूरा समूह ठीक न होगा। लेकिन इससे उलटी बात भी सच है। अगर घर में एक आदमी स्वस्थ हो जाए तो पूरे घर के पागलपन का ढांचा टूटना शुरू हो जाता है। यह बात अभी उनके ख्याल में नहीं है। यह उनके ख्याल में कभी न कभी आ जाएगी।
लेकिन भारत के ख्याल में यह बात बहुत पुरानी है। और अगर एक आदमी ठीक हो जाए तो पूरे समूह का ढांचा टूटना शुरू हो जाता है।
इसे हम ऐसा भी समझें कि अगर आपके भीतर एक इंद्रिय में ठीक दिशा शुरू
हो जाए तो आपकी सारी इंद्रियों का पुराना ढांचा टूटना शुरू हो जाता है। आपकी एक वृत्ति संयम की तरफ जाने लगे तो आपकी बाकी वृत्तियां असंयम की तरफ जाने में असमर्थ हो जाती हैं। मुश्किल पड़ जाती है। जरा सा इंच भर का फर्क और सारा का सारा जो रूप है-सारा का सारा रूप बदलना शुरू हो जाता है।
कहीं से भी शुरू करें, कुछ भी एक बिंदु मात्र आपके भीतर संयम का प्रकट होने लगे तो आपके असंयम का अंधेरा गिरने लगेगा। और ध्यान रहे, श्रेष्ठतर सदा शक्तिशाली है। तो मैं मानता हूं कि अगर एक व्यक्ति एक घर में ठीक हो जाए तो वह उस घर को पूरा ठीक कर सकता है क्योंकि श्रेष्ठतर शक्तिशाली है। अगर एक व्यक्ति एक समूह में ठीक हो जाए तो पूरे समूह के ठीक होने के संचारण उसके आस-पास से होने लगते हैं क्योंकि श्रेष्ठ शक्तिशाली है। अगर आ पके भीतर एक विचार भी ठीक हो जाए, एक वृत्ति भी ठीक हो जाए तो आपकी सारी वृत्तियों का ढांचा टूटने और बदलने लगता है। बिखरने लगता है। फिर आप वही नहीं हो सकते जो आप थे। इसलिए पूरे संयम की चेष्टा में मत पड़ना। पूरा संयम

संभव नहीं है। आज संभव नहीं है, इसी वक्त संभव नहीं है। लेकिन किसी एक वृत्ति को तो आप इसी वक्त, आज और अभी रूपांतरित कर सकते हैं। और ध्यान रखना, उस एक का बदलना आपकी और बदलाहट के लिए दिशा बन जाएगी। और आपकी जिंदगी में प्रकाश की एक किरण उतर आए, तो अंधेरा कितना ही पुराना हो, कितना ही हो, कोई भय का कारण नहीं है। प्रकाश की एक किरण अनंत गुने अंधेरे से भी ज्यादा शक्तिशाली है। संयम का एक छोटा सा सूत्र, असंयम की जिंदगियां-अनंत जिंदगियों को मिट्टी में गिरा देता है।
लेकिन वह एक सूत्र शुरू हो, और शुरू अगर करना हो तो विधायक दृष्टि रखना, शुरू अगर करना हो तो उसी इंद्रिय से काम शुरू करना जो सबसे ज्यादा शक्तिशाली हो। शुरू अगर करना हो तो मार्ग मत तोड़ना। उसी मार्ग से पीछे लौटना है जिससे हम बाहर गए हैं। शुरू अगर करना हो तो अंधानुकरण मत करना कि किस घर में पैदा हुए हैं। अपने व्यक्तित्व की समझ को ध्यान में लेना। और फिर जहां भी मार्ग मिले, वहां से चले जाना। महावीर जहां पहुंचते हैं, वहीं मोहम्मद पहुंच जाते हैं। जहां बुद्ध पहुंचते, वहीं कृष्ण पहुंच जाते हैं। जहां लाओत्सु पहुंचता है, वहीं क्राइस्ट पहुंच जाते हैं।
नहीं मालूम, आपको किस जगह से द्वार मिलेगा। आप पहुंचने की फिकर करना, द्वार की जिद्द मत करना कि मैं इसी दरवाजे से प्रवेश करूंगा। हो सकता है वह दरवाजा आपके लिए दीवार सिद्ध हो, लेकिन हम सब इस जिद्द में हैं कि अगर जाएंगे तो जिनेंद्र के मार्ग से जाएंगे, कि जाएंगे तो हम तो विष्णु को मानने वाले हैं, हम तो राम को मानने वाले हैं तो हम राम के मार्ग से जाएंगे। आप किसको मानने वाले हैं, यह उस दिन सिद्ध होगा जिस दिन आप पहुंचेंगे। उसके पहले सिद्ध नहीं होगा। आप किस द्वार से निकलेंगे, यह उसी दिन सिद्ध होगा जिस दिन आप निकल चुके होंगे, उसके पहले सिद्ध नहीं होता है। लेकिन आप पहले से यह तय किए बैठे हैं, इस द्वार से ही निकलूंगा। ऐसा मालूम पड़ता है, द्वार का बहुत मूल्य है, पहुंचने का कोई मूल्य नहीं है। जिद्द यह है कि इस सीढ़ी पर चढ़ेंगे। चढ़ने से कोई मतलब नहीं है, न भी चढ़ें तो चलेगा। लेकिन सीढ़ी यही होनी चाहिए।
यह पागलपन है और इससे पूरी पृथ्वी पागल हुई है। धर्म के नाम पर जो पागलपन खड़ा हुआ है वह इसलिए कि आपको मंजिल का कोई भी ध्यान नहीं है।
साधनों का अति आग्रह है कि बस यही। इस पर थोड़ा ढीला होंगे, मुक्त होंगे तो आप बहुत शीघ्र संयम की विधायक दृष्टि पर, न केवल समझने में बल्कि जीने में समर्थ हो सकते हैं।

आज इतना ही।
कल तप पर हम बात करेंगे। बैठें, अभी जाएं मत-एक पांच मिनट।

महावीर-वाणी, भाग 1
आठवां प्रवचन

तपः ऊर्जा का दिशा-परिवर्तन (धम्म-सूत्र)

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मे सया मणो।।

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

अहिंसा है आत्मा, संयम है प्राण, तप है शरीर। स्वभावतः अहिंसा के संबंध में भूलें हुई हैं, गलत व्याख्याएं हुई हैं। लेकिन वे भूलें और व्याख्याएं अपरिचय की भूलें हैं। संयम के संबंध में भी भूलें हुई हैं, गलत व्याख्याएं हुई हैं, लेकिन वे भूलें भी अपरिचय की ही भूलें हैं। और ज्यादा भूलें होनी कठिन हैं। जिससे हम अपरिचित हों, उसकी गलत व्याख्या करनी भी कठिन होती है। गलत व्याख्या के लिए भी परिचय जरूरी है। और हमारा सर्वाधिक परिचय तप से है क्योंकि वह सबसे बाह्य रूप-रेखा है। वह शरीर है।
तप के संबंध में सर्वाधिक भूलें हुई हैं, और सर्वाधिक गलत व्याख्याएं हुई हैं। और उन गलत व्याख्याओं से जितना अहित हुआ है, उतना किसी और चीज से नहीं। एक फर्क है कि तप के संबंध में जो गलत व्याख्याएं हुई हैं, वे हमारे परिचय की भूलें हैं। तप से हम परिचित हैं और तप से हम परिचित आसानी से हो जाते हैं। असल में तप तक जाने के लिए हमें अपने को बदलना ही नहीं पड़ता। हम जैसे हैं, तप में हम वैसे ही प्रवेश कर जाते हैं। चूंकि तप द्वार है, और इसलिए हम जैसे हैं वैसे ही अगर तप में चले जाएं तो तप हमें नहीं बदल पाता, हम तप को बदल डालते हैं।
तो तप की पहले तो गलत व्याख्या जो निरंतर होती है, वह हमें समझ लेनी चाहिए, तो हम ठीक व्याख्या की तरफ कदम उठा सकते हैं। हम भोग से परिचित हैं-- भोग यानी सुख की आकांक्षा। सभी सुख की आकांक्षाएं दुख में ले जाती हैं। सभी सुख की आकांक्षाएं अंततः दुख में छोड़ जाती हैं--उदास, खिन्न, उजड़े हुए। इससे स्वभावतः एक भूल पैदा होती है। औरे वह यह कि यदि हम सुख की मांग करके दुख में पहुंच जाते हैं तो क्या दुख की मांग करके सुख में नहीं पहुंच सकते? यदि सुख की आकांक्षा करते हैं और दुख मिलता है, तो क्यों न हम दुख की आकांक्षा करें और सुख को पा लें! इसलिए तप की जो पहली भूल है वह भोगी चित्त से निकलती है। भोगी चित्त का अनुभव यही है कि सुख दुख में ले जाता है। विपरीत हम करें तो हम सुख में पहुंच सकते हैं। तो सभी अपने को सुख देने की कोशिश करते हैं, हम अपने को दुख देने की कोशिश करें। यदि सुख की कोशिश दुख लाती है तो दुख की कोशिश सुख ला सकेगी, ऐसा सीधा गणित मालूम पड़ता है। लेकिन जिंदगी इतनी सीधी नहीं है। और जिंदगी का गणित इतना साफ नहीं है। जिंदगी बहुत उलझाव है। उसके रास्ते इतने सीधे होते तो सभी कुछ हल हो जाता।
सुना है मैंने कि रूस के एक बड़े मनोवैज्ञानिक पावलफ के पास, जिसने कंडीशंड रिफ्लेक्स के सिद्धांत को जन्म दिया, जिसने कहा कि अनुभव संयुक्त हो जाते हैं, उसके पास एक बूढ़े आदमी को लाया गया जो कि शराब पीने की आदत से इतना परेशान हो गया है कि चिकित्सक कहते हैं कि उसके खून में शराब फैल गई है। उसका जीना मुश्किल है, बचना मुश्किल है अगर शराब बंद न कर दी जाए। लेकिन वह कोई तीस साल से शराब पी रहा है। इतना लंबा अभ्यास है। चिकित्सक डरते हैं कि अगर तोड़ा जाए तो भी मौत हो सकती है। तो पावलफ के पास लाया गया। पावलफ ने अपने एक निष्णात शिष्य को सौंपा और कहा कि इस व्यक्ति को शराब पिलाओ और जब यह शराब की प्याली हाथ में ले, तभी इसे बिजली का शाक दो। ऐसा निरंतर करने से शराब पीना और बिजली का धक्का और पीड़ा संयुक्त हो जाएगी। शराब पीड़ा-युक्त हो जाएगी, कंडीशनिंग हो जाएगी। पीड़ा को कोई भी नहीं चाहता

है। पीड़ा को छोड़ना शराब को छोड़ना बन जाएगा। और एक बार यह भाव मन में बैठ जाए गहरे कि शराब पीड़ा देती है, दुख लाती है, तो शराब को छोड़ना कठिन नहीं होगा।
एक महीना प्रयोग जारी रखा गया। एक महीना पावलफ की प्रयोगशाला में वह आदमी रुका था। वह दिन भर शराब पीता था, जब भी वह शराब का प्याला हाथ में लेता, तभी उसकी कुर्सी उसको शाक देती। वह सामने बैठा हुआ मनोवैज्ञानिक बटन दबाता रहता। कभी उसका हाथ छलक जाता, कभी हाथ से प्याली गिर जाती। महीने भर बाद पावलफ ने अपने युवक शिष्य को बुला कर पूछाः कुछ हुआ? युवक शिष्य ने कहाः हुआ बहुत कुछ। पावलफ खुश हुआ। उसने कहाः मैंने कहा ही था कि निश्चित ही कंडीशनिंग से सब कुछ हो जाता है। पर उसके शिष्य ने कहाः ज्यादा खुश न हों, क्योंकि करीब-करीब उलटा हुआ।
पावलफ ने कहाः उलटा! क्या अर्थ है तुम्हारा?
युवक ने कहाः ऐसा हो गया है, वह इतना कंडीशंड हो गया है कि अब शराब पीता है तो पहले जो भी पास में साकेट होता है उसमें अंगुली डाल लेता है। कंडीशंड हो गया। लेकिन अब बिना शॉक के शराब नहीं पी सकता है। शराब तो नहीं छूटी, शॉक पकड़ गया। अब कृपा करके, शराब छूटे या न छूटे, शॉक छुड़वाइए। क्योंकि शराब जब मारेगी, मारेगी; यह शॉक का धंधा खतरनाक है, यह अभी भी मार सकता है। अब वह पी ही नहीं सकता है। इधर एक हाथ में प्याली लेता है तो दूसरा हाथ साकेट में डालता है।
जिंदगी इतनी उलझी हुई है। जिंदगी इतनी आसान नहीं है। तो एक तो जिंदगी
की गणित साफ नहीं है कि जैसा आप सोचते हैं वैसा हो जाएगा। दुख की आकांक्षा सुख नहीं ले आएगी। क्यों? क्योंकि अगर हम गहरे में देखें तो पहली तो बात यह है कि आपने सुख की आकांक्षा की, दुख पाया। अब आप सोचते हैं दुख की आकांक्षा करें तो सुख मिलेगा। लेकिन गहरे में देखें तो अभी भी आप सुख की ही आकांक्षा कर रहे हैं। दुख चाहें तो सुख मिलेगा इसलिए दुख चाह रहे हैं। आकांक्षा सुख की ही है। और सुख की कोई आकांक्षा सुख नहीं ला सकती। ऊपर से दिखाई पड़ता है कि आदमी अपने को दुख दे रहा है, लेकिन वह दुख इसीलिए दे रहा है कि सुख मिले। पहले सुख दे रहा था ताकि सुख मिले, दुख पाया। अब दुख दे रहा है ताकि सुख मिले, दुख ही पाएगा। क्योंकि आकांक्षा का सूत्र तो अब भी गहरे में वही है। ऊपर सब बदल गया, भीतर आदमी वही है।
सच बात यह है दुख चाहा ही नहीं जा सकता। यू कैन नॉट डिजायर इट। इंपासिबल है, असंभव है। अगर हम ऐसा कहें कि सुख ही चाह है और दुख की तो अचाह ही होती है, चाह नहीं होती है। हां, अगर कभी कोई दुख चाहता है तो सुख के लिए ही, लेकिन वह चाह सुख की ही है। दुख चाहा ही नहीं जा सकता। यह असंभव है। तब हम ऐसा कह सकते हैं, जो भी चाहा जाता है वह सुख है, और जो नहीं चाहा जाता है, वह दुख है। इसलिए दुख के साथ चाह को नहीं जोड़ा जा सकता। और जो भी आदमी दुख के साथ चाह को जोड़ कर तप बनाता है; (दुख धन चाह = तप), ऐसी हमारी व्याख्या है--जो भी आदमी दुख के साथ चाह को जोड़ता है और तप बनाता है--वह तप को समझ ही नहीं पाएगा। दुख की तो चाह ही नहीं हो सकती। सुख ही पीछे दौड़ता है। आकांक्षा मात्र सुख की है। चाह मात्र सुख की है। हां, एक ही रास्ता है कि आपको दुख में भी सुख मालूम पड़ने लगे तो आप दुख को चाह सकते हैं। दुख में भी सुख मालूम पड़ सकता है। इसलिए दूसरी गलत व्याख्या समझ लें। दुख में भी सुख मालूम पड़ सकता है, एसोसिएशन से, कंडीशनिंग से। जो मैंने पावलफ की बात आपको कही, उसी ढंग से, आपको दुख में सुख का भ्रम हो सकता है।
यूरोप में ईसाई फकीरों का एक संप्रदाय था--कोड़ा मारने वाला स्वयं को, फलैजिलिस्ट। उस संप्रदाय की मान्यता थी कि जब भी कामवासना उठे तो अपने को कोड़े मारो। लेकिन बड़ी हैरानी का अनुभव हुआ। जो लोग जानते हैं, उन्हें पता है या जिन्होंने वह प्रयोग किया, उनको धीरे-धीरे अनुभव आया कि कोड़े, जब भी कामवासना उठे तो अपने को कोड़े मारो--आशा यह थी कि कोड़े खाकर कामवासना छूट जाए, लेकिन धीरे-धीरे कोड़े मारनेवालों को पता चला कि कोड़े मारने में कामवासना का ही मजा आने लगा। और यहां तक हालत हो गई कि जिन लोगों ने कोड़े मारने का अभ्यास किया कामवासना के लिए, फिर वे संभोग में अपने को बिना कोड़े मारे नहीं जा सकते थे। पहले वे कोड़े मारेंगे, फिर संभोग में जा

सकेंगे। जब तक कोड़े न पड़ें शरीर पर, तब तक कामवासना पूरे रस-मग्न होकर उठेगी नहीं। ऐसा आदमी के मन का जाल है।
तो अब वह आदमी अपने को रोज सुबह कोड़े मार रहा है और पास-पड़ोस के लोग उसको नमस्कार करेंगे कि कितना महान त्यागी है। क्योंकि यह जो कोड़े मारने वाला संप्रदाय था, इसके लाखों लोग थे मध्य युग में, पूरे यूरोप में। और साधु की पहचान ही यह थी कि वह कितने कोड़े मारता है। जो जितने कोड़े मारता था वह उतना बड़ा साधु था। तो सुबह खड़े होकर चौराहों पर साधु अपने को कोड़े मारते थे। लहूलुहान हो जाते थे। लोग चकित होते थे कि कितनी बड़ी तपश्चर्या है। क्योंकि जब उनके शरीर से लहू बहता था तो उनके चेहरे पर ऐसा मग्न भाव होता था जो कि केवल संभोगरत जोड़ों में देखा जाता है। लोग चरण छूते थे कि अदभुत है यह आदमी। लेकिन भीतर क्या घटित हो रहा है, वह उन्हें पता नहीं है। भीतर वह आदमी पूरी कामवासना में उतर गया है। अब उसे कोड़े मारने में रस आ रहा है। क्योंकि कोड़ा मारना कामवासना से संयुक्त हो गया। यह वही हुआ जो पावलफ के प्रयोग में हुआ।
और हम अपने दुख में सुख की कोई आभा संयुक्त कर सकते हैं। और अगर दुख में सुख की आभा संयुक्त हो जाए तो हम दुख को बड़े मजे से अपने आसपास इकट्ठा कर ले सकते हैं। लेकिन, तप का यह अर्थ नहीं है। तप दुखवादी की दृष्टि नहीं है। यह दुखवाद गहरे में तो सुख ही है। तप के आस-पास यह जो जाल खड़ा है, अगर यह आपको दिखाई पड़ना शुरू हो जाए तो तपस्वियों की पर्त को तोड़ कर आप उनके भीतर देख पाएंगे कि उनका रस क्या है! और एक बार आपको दिखाई पड़ना शुरू हो जाए तो आप समझ पाएंगे कि जब भी कुछ चाहा जाता है तो सुख चाहा जाता है। अगर कोई दुख को चाह रहा है तो किसी न किसी कोने में उसके मन में सुख और दुख संयुक्त हो गए हैं। इसके अतिरिक्त दुख को कोई नहीं चाह सकता है। भूखे मरने में भी मजा आ सकता है, कांटे पर लेटने में भी मजा आ सकता है, धूप में खड़े होने में भी मजा आ सकता है... एक बार आपके भीतर की किसी वासना से कोई दुख संयुक्त हो जाए। और आदमी अपने को दुख इसलिए देता है कि वह किसी वासना से मुक्त होना चाहता है। जिस वासना से मुक्त होना चाहता है, दुख उसी से संयुक्त हो जाता है।
एक आदमी को अपने शरीर को सजाने में बड़ा सुख है। वह शरीर से मुक्त होना चाहता है, शरीर की सजावट की इस कामना से मुक्त हो जाना चाहता है। वह नंगा खड़ा हो जाता है या अपने शरीर पर राख लपेट लेता है, या अपने शरीर को कुरूप कर लेता है। लेकिन उसे पता नहीं है कि यह राख लपेटना भी, यह नग्न हो जाना भी, यह शरीर को कुरूप कर लेना भी शरीर से ही संबंधित है। यह भी सजावट है। सजावट दिखाई नहीं पड़ती, यह भी सजावट है। आपको पता है, अगर आप कभी कुंभ गए हैं, तो एक बात देख कर बहुत चकित होंगे कि जो साधु राख लपेटे बैठे रहते हैं, वे भी एक छोटा आईना अपने डिब्बे में रखते हैं और सुबह स्नान करने के बाद जब वह राख लपेटते हैं, तो आईने में देखते जाते हैं। आदमी अदभुत है। राख ही लपेट रहे हैं तो आईने का क्या प्रयोजन रह गया। लेकिन राख लपेटना भी सजावट है,शृंगार है। शरीर को कुरूप करनेवाला भी आईने में देखेगा कि हो गया ठीक से कि नहीं?
उलटा दिखाई पड़ता है, उलटा है नहीं। तपस्वी शरीर का दुश्मन नहीं हो जाता, जैसा कि भोगी शरीर का लोलुप मित्र है। तपस्वी भोगी के विपरीत नहीं हो जाता क्योंकि विपरीत से भी भोग संयुक्त हो जाता है। विपरीत से भी भोग संयुक्त हो जाता है। शरीर को सुंदर बनाने वालों के लिए ही आईने की जरूरत नहीं होती, शरीर को कुरूप बनाने वाले के लिए भी आईने की जरूरत पड़ जाती है। शरीर को सुंदर बनाने वाला ही दूसरों की दृष्टि पर निर्भर नहीं रहता है कि कोई मुझे देखे, शरीर को कुरूप बनाने वाला भी दूसरों की दृष्टि पर ही निर्भर रहता है कि कोई मुझे देखे। सुंदर वस्त्र पहन कर रास्ते पर निकलने वाला ही देखने वाले की प्रतीक्षा नहीं करता है, नग्न होकर निकलनेवाला भी उतनी ही प्रतीक्षा करता है। विपरीत भी कहीं एक ही रोग की शाखाएं हो सकते हैं, यह समझ लेना जरूरी है। आसान है लेकिन यही--शरीर के भोग से शरीर के तप पर जाना आसान है। शरीर को सुख देने की आकांक्षा का शरीर को दुख देने की आकांक्षा में बदल जाना बड़ा सुगम और सरल है।

एक और बात ध्यान में ले लेनी जरूरी है। जिस माध्यम से हम सुख चाहते हैं, अगर वह माध्यम हमें सुख न दे पाए तो हम उसके दुश्मन हो जाते हैं। अगर आप कलम से लिख रहे हैं--सभी को अनुभव होगा जो लिखते-पढ़ते हैं--अगर कलम ठीक न चले तो आप कलम को गाली देकर जमीन पर पटक कर तोड़ भी सकते हैं। अब कलम को गाली देना एकदम नासमझी है। इससे ज्यादा नासमझी और क्या होगी! और कलम को तोड़ देने से कलम का कुछ भी नहीं टूटता, आपका ही कुछ टूटता है। कलम का कोई नुकसान नहीं होता, आपका ही नुकसान होता है। लेकिन जूतों को गा ली देकर पटक देने वाले लोग हैं, दरवाजों को गाली देकर खोल देने वाले लोग हैं। ये ही लोग तपस्वी बन जाते हैं। शरीर सुख नहीं दे पाया, यह अनुभव शरीर को तोड़ने की दीक्षा में ले जाता है--तो शरीर को सताओ। लेकिन शरीर को सताने के पीछे वही फ्रस्ट्रेशन, वही विषाद काम कर रहा है कि शरीर से सुख चाहा था और नहीं मिला तो अब जिस माध्यम से सुख चाहा था उसको दुख देकर बताएंगे।
लेकिन आप बदले नहीं, अभी भी। अभी भी आपकी दृष्टि शरीर पर लगी है, चाहे सुख चाहा हो, और चाहे अब दुख देना चाहते हों, पर आपके चित्त की जो दिशा है वह अभी भी शरीर के ही आस-पास वर्तुल बना कर घूमती है। आपकी चेतना अभी भी शरीर केंद्रित है। अभी भी शरीर भूलता नहीं। अभी भी शरीर अपनी जगह खड़ा है और आप वही के वही हैं। आपके और शरीर के बीच का संबंध वही का वही है। ध्यान रखें, भोगी और तथाकथित तपस्वी के बीच शरीर के संबंध में कोई अंतर नहीं पड़ता। शरीर के साथ संबंध वही रहता है।
क्या आप सोच सकते हैं, अगर हम भोगी से कहें कि तुम्हारा शरीर छीन लिया जाए तो तुम्हें कठिनाई होगी? भोगी कहेगा--कठिनाई! मैं बरबाद हो जाऊंगा, क्योंकि शरीर ही तो मेरे भोग का माध्यम है। अगर हम तपस्वी से कहें कि तुम्हारा शरीर छीन लिया जाए, तुम्हें कोई कठिनाई होगी? वह भी कहेगा--मैं मुश्किल में पड़ जाऊंगा। क्योंकि मेरी तपश्चर्या का साधन तो शरीर ही है। कर तो मैं शरीर के साथ ही कुछ रहा हूं। अगर शरीर ही न रहा तो तप कैसे होगा? अगर शरीर न रहा तो भोग कैसे होगा? इसलिए मैं कहता हूं--दोनों की दृष्टि शरीर पर है और दोनों शरीर के माध्यम से जी रहे हैं। जो तप शरीर के माध्यम से जी रहा है वह भोग का ही विकृत रूप है। जो तप शरीर-केंद्रित है, वह भोग का ही दूसरा नाम है। वह विषाद को उपलब्ध हो गए भोग की प्रतिक्रिया है। वह विषाद को उपलब्ध हो गए भोग की शरीर के साथ बदला लेने की, रिवेंज लेने की आकांक्षा है।
इसे समझें तो फिर हम ठीक तप की दिशा में आंखें उठा सकेंगे। यह इन कारणों से तप जो है, आत्महिंसा बन गया है। अपने को जो जितना सता सकता है उतना बड़ा तपस्वी हो सकता है। लेकिन सताने से तप का कोई संबंध है? टार्चर, पीड़न, आत्म-पीड़न, उससे तप का कोई संबंध है? और ध्यान रखें, जो अपने को सता सकता है वह दूसरे को सताने से बच नहीं सकता। क्योंकि जो अपने को तक सता सकता है, वह किसी को भी सता सकता है। हां, उसके सताने के ढंग बदल जाएंगे। निश्चित ही भोगी का सताने का ढंग सीधा होता है। त्यागी के सताने का ढंग परोक्ष हो जाता है, इनडायरेक्ट हो जाता है। अगर भोगी को आपको सताना है तो आप पर सीधा हमला बोलता है। त्यागी को आपको सताना है तो बहुत पीछे से हमला बोलता है। लेकिन आपके ख्याल में नहीं आता कि वह हमला बोल रहा है। अगर आप त्यागी के पास जाएं--तथाकथित त्यागी के पास, सो-काल्ड, जो आस्टेरिटी है, तपश्चर्या है--उसके पास आप जाएं; अगर आपने अच्छे कपड़े पहन रखे हैं और आपका त्यागी भभूत रमाए बैठा है तो आपके कपड़ों को ऐसे देखेगा जैसे दुश्मन देखता है। उसकी आंख में निंदा होगी, आप कीड़े-मकोड़े मालूम पड़ेंगे। ऐसे कपड़े पहने हुए हैं! उसकी आंखों में इशारा होगा नरक का, तीर बना होगा नरक की तरफ कि गए नरक। वह आपको कहेगा--अभी तक सम्हले नहीं! अभी तक इन कपड़ों से उलझे हो, नरक में भटकोगे।
मैंने सुना है कि एक पादरी एक चर्च में लोगों को समझा रहा था, डरा रहा
था नरक के बाबत कि कैसी-कैसी मुसीबतें होंगी। और जब कयामत का दिन आएगा तो इतनी भयंकर सर्दी पड़ेगी पापियों के ऊपर कि दांत खड़खड़ाएंगे। मुल्ला नसरुद्दीन भी उस सभा में था, वह खड़ा हो गया। उसने कहाः लेकिन मेरे दांत टूट गए हैं!

उस फकीर ने कहाः घबड़ाओ मत, फाल्स टीथ विल बी प्रोवाइडेड। नकली दांत दे दिए जाएंगे, लेकिन खड़खड़ाएंगे।
साधु, तथाकथित तपस्वी आपको नरक भेजने की योजना में लगे हैं। उनका चित्त आपके लिए नरक के सारे इंतजाम कर रहा है। सच तो यह है कि नरक में कष्ट देने का जो इंतजाम है, वह तथाकथित झूठे तपस्वी की कल्पना है, फेंटेसी है। वह तथाकथित तपस्वी यह सोच ही नहीं सकता कि आपको भी सुख मिल सकता है! आप यहां काफी सुख ले रहे हैं। वह जानता है कि यह सुख है। वह यहां काफी दुख ले रहा है। कहीं तो बैलेंस करना पड़ेगा, कहीं संतुलन करना पड़ेगा। उसने यहां काफी दुख झेल लिया है। वह स्वर्ग में सुख झेलेगा। आप यहां सुख भोग रहे हैं। आप नरक में सड़ेंगे और दुख भोगेंगे।
और बड़े मजे की बात है कि उसके स्वर्ग के सुख आपके ही सुखों का मैग्नीफाइड रूप हैं। आप जो सुख यहां भोग रहे हैं, वही सुख और विस्तीर्ण होकर, बड़े होकर वह स्वर्ग में भोगेगा, और जो दुख वह यहां भोग रहा है... यह मजे की बात है कि तपस्वी अपने आस-पास आग जला कर बैठते रहे हैं... आपको नरक में आग में सड़ाएंगे वे। जो तपस्वी अपने आस-पास आग जलाएगा उससे सावधान रहना, उसके नरक में आग आपके लिए तैयार रहेगी। भयंकर आग होगी जिससे आप बच न सकेंगे। कड़ाहों में डाले जाएंगे, चुड़ाए जाएंगे और मर भी न सकेंगे क्योंकि मर गए तो मजा ही खत्म हो जाएगा। अगर मारा और मर गए तो दुख कौन झेलेगा? इसलिए नरक में मरने का उपाय नहीं है। ध्यान रखना, नरक में तपस्वियों ने आत्महत्या की सुविधा नहीं दी है। आप मर नहीं सकते नरक में, आप कुछ भी करें। और कुछ भी करें, एक काम नरक में नहीं होता कि आप मर नहीं सकते। क्योंकि अगर आप मर सकते हैं तो दुख के बाहर हो सकते हैं। इसलिए वह सुविधा नहीं दी है। किसकी कल्पना से निकलता है यह सारा ख्याल? यह कौन सोचता है, ये सारी बातें? सच में जो तपस्वी है वह तो सोच भी नहीं सकता, किसी के लिए दुख का कोई भी ख्याल नहीं सोच सकता। वह सोच ही नहीं सकता दुख का कोई ख्याल कि किसी को कोई दुख हो। कहीं भी, नरक में भी। लेकिन जो तथाकथित तपस्वी है वह बहुत रस लेता है। अगर आप शास्त्रों को पढ़ें--सारी दुनिया के धर्मों के शास्त्रों को, तो एक बहुत अदभुत घटना आपको दिखाई पड़ेगी। तपस्वियों ने जो-जो लिखा है-- तथाकथित तपस्वियों ने--उसमें वे नरकों की जो-जो विवेचना और चित्रण करते हैं, वह बहुत परवर्टेड इमेजिनेशन मालूम पड़ती है, बहुत विकृत हो गई कल्पना मालूम पड़ती है। ऐसा वे सोच पाते हैं, ऐसा वे कल्पना कर पाते हैं-यह उनके बाबत बड़ी खबर लाती है।
दूसरी एक बात दिखाई पड़ेगी कि तपस्वी, आप जो-जो सुख भोगते हैं उनकी बड़ी निंदा करते हैं और निंदा में बड़ा रस लेते हैं। वह रस बहुत प्रकट है। यह बहुत मजे की बात है कि वात्स्यायन ने अपने काम-सूत्रों में स्त्री के अंगों का ऐसा सुंदर चित्रण नहीं किया है--इतना रसमुग्ध--जितना तपस्वियों ने स्त्री के अंगों की निंदा करने के लिए अपने शास्त्रों में किया है। वात्स्यायन के पास इतना रस हो भी नहीं सकता था। क्योंकि उतना रस पैदा करने के लिए विपरीत जाना जरूरी है। इसलिए मजे की बात है कि भोगियों के आस-पास कभी नग्न अप्सराएं आकर नहीं नाचतीं, वे सिर्फ तपस्वियों के आस-पास आकर नाचती हैं। तपस्वी सोचते हैं, उनका तप भ्रष्ट करने के लिए वे आ रही हैं। लेकिन जिसको भी मनोविज्ञान का थोड़ा सा बोध है, वह जानता है--कहीं इस जगत में अप्सराओं का कोई इंतजाम नहीं है तपस्वियों को भ्रष्ट करने के लिए। अस्तित्व तपस्वियों को भ्रष्ट क्यों करना चाहेगा? कोई कारण नहीं है। अगर परमात्मा है, तो परमात्मा भी तपस्वियों को भ्रष्ट करने में क्यों रस लेगा? और ये अप्सराएं शाश्वत रूप से एक ही धंधा करेंगी, तपस्वियों को भ्रष्ट करने का? इनके लिए और कोई काम, इनके जीवन का अपना कोई रस नहीं है?
नहीं, मनस्विद कहते हैं कि तपस्वी इतना लड़ता है जिस रस से, वही रस प्रगाढ़ होकर प्रकट होना शुरू हो जाता है। और तपस्वी काम से लड़ रहा है तो आस-पास कामवासना रूप लेकर खड़ी हो जाती है, वह उसे घेर लेती है। वह जिससे लड़ रह है उसी को प्रोजेक्ट, उसी का प्रक्षेपण कर लेता है। वे अप्सराएं किसी स्वर्ग से नहीं उतरतीं, वे तपस्वी के संघर्षरत मन से उतरती हैं। वे अप्सराएं उसके मन में जो छिपा है, उसे बाहर प्रकट करती हैं। वह जो चाहता है

और जिससे बच रहा है, वे अप्सराएं उसका ही साकार रूप है। वह जो मांगता भी है, और जिससे लड़ता भी है, वह जिसे बुलाता भी है और जिसे हटाता भी है, वे अप्सराएं केवल उसके उसी विकृत चित्त की तृप्ति है। वे उसे भ्रष्ट करने कहीं और से नहीं आती हैं, उसके ही दमन चित्त से पैदा होती हैं।
तप विकृत हो तो दमन होता है। और दमन आदमी को रुग्ण करता है, स्वस्थ नहीं। इसलिए मैं कहता हूं--महावीर के तप में दमन का कोई भी कारण नहीं है। और अगर महावीर ने कहीं दमन जैसे शब्दों का प्रयोग भी किया है तो मैं आपको कह दूं, पच्चीस सौ साल पहले दमन का अर्थ बहुत दूसरा था। वह अब नहीं है। दम का अर्थ था शांत हो जाना। दम का अर्थ दबा देना नहीं था, महावीर के वक्त में। दम का अर्थ था शांत हो जाना। शांत कर देना नहीं, शांत हो जाना। भाषा रोज बदलती रहती है, शब्दों के अर्थ रोज बदलते रहते हैं। इसलिए अगर कहीं महावीर की वाणी में दमन शब्द मिल भी जाए तो आप ध्यान रखना, उसका अर्थ सप्रेशन नहीं है। उसका अर्थ दबाना नहीं है। उसका अर्थ शांत हो जाना है। जिस चीज से आपको दुख उपलब्ध हुआ है, उसके विपरीत चले जाने से दमन पैदा होता है। जिस चीज से आपको दुख उपलब्ध हुआ है, उसकी समझ में प्रतिष्ठित हो जाने से शांति उपलब्ध होती है। इस फर्क को ठीक से समझ लें।
कामवासना ने मुझे दुख दिया, तो मैं कामवासना के विपरीत चला जाऊं और लड़ने लगूं कामवासना से, तो दमन होगा। कामवासना ने मुझे दुख दिया, यह बात-- मेरी समझ, मेरी प्रज्ञा में इस भांति प्रविष्ट हो जाए कि कामवासना तो शांत हो जाए और कामवासना के विपरीत मेरे मन में कुछ भी न उठे। क्योंकि जब तक विपरीत उठता है तब तक शांत नहीं हुआ। विपरीत उठता ही इसीलिए है।
एक मित्र की पत्नी मुझे कहती थी कि मेरा पति से कोई भी प्रेम नहीं रह गया, लेकिन कलह जारी है। मैंने कहाः अगर प्रेम बिल्कुल न रह गया हो, तो कलह जारी नहीं रह सकती। कलह के लिए भी प्रेम चाहिए। थोड़ा-बहुत होगा। मैंने उससे कहा कि थोड़ा-बहुत जरूर होगा। और कलह अगर बहुत चल रही है तो बहुत ज्यादा होगा।
उसने कहाः आप कैसी उलटी बातें करते हैं? मैं डायवोर्स के लिए सोचती हूं, कि तलाक दे दूं।
मैंने कहाः हम तलाक उसी को देने के लिए सोचते हैं, जिससे हमारा कुछ बंधन होता है। जिससे बंधन ही नहीं होता उसको तलाक भी क्या देंगे। बात ही खत्म हो जाती है, तलाक हो जाता है। यह दो वर्ष पहले की बात है।
फिर अभी एक दिन मैंने उससे पूछा कि क्या खबर है? उसने कहाः आप शायद ठीक कहते थे। अब तो कलह भी नहीं होती। आप शायद ठीक कहते थे, उस वक्त मेरी समझ में नहीं आया। अब तो कलह भी नहीं होती। तलाक के बाबत क्या ख्याल है? उसने कहाः क्या लेना, क्या देना। बात ही शांत हो गई। दोनों के बीच संबंध ही नहीं रह गया। संबंध हो तो तोड़ा जा सकता है। संबंध ही न रह जाए तो क्या तोड़िएगा? अगर आप किसी वासना से लड़ रहे हैं तो आपका उस वासना में रस अभी कायम है। जिंदगी ऐसी उलझी हुई है।
इसलिए फ्रायड ने तो जीवन भर के पचास साल के अनुभव के बाद कहा और शायद
यह आदमी अकेला था पृथ्वी पर जो मनुष्यों के संबंध में इस भांति गहरा उतरा-- इस आदमी ने कहा कि जहां तक प्रेम है वहां तक कलह जारी रहेगी। अगर कलह से मुक्त होना है तो प्रेम से मुक्त होना पड़ेगा। अगर पति पत्नी में प्रेम है, तो प्रेम का तो हमें पता नहीं चलता क्योंकि प्रेम उनका एकांत में प्रकट होता होगा। लेकिन कलह का हमें पता चलता है क्योंकि कलह तो प्रकट में भी प्रकट हो जाती है। अब कलह के लिए एकांत तो नहीं खोजा जा सकता। कलह ऐसी चीज भी नहीं है कि उसके लिए कोई एकांत का कष्ट उठाए। पर फ्रायड कहता है कि अगर प्रगट में कलह जारी है तो हम मान सकते हैं, अप्रकट में प्रेम जारी होगा। दिन में जो पति-पत्नी लड़े हैं, रात वे प्रेम में पड़ेंगे। पूर्ति करनी पड़ती है, बैलेंस करना पड़ता है, संतुलन करना पड़ता है।
जिस दिन लड़ाई होती है उस दिन घर में कोई भेंट भी लाई जाती है। अगर पति लड़कर बाजार गया है तो लौट कर कुछ पत्नी के लिए लेकर आएगा। अगर पति घर की तरफ फूल लिए आता हो तो यह मत समझ लेना कि पत्नी का जन्मदिन है। समझना कि आज सुबह उपद्रव ज्यादा हुआ है। यह बैलेंसिंग है, अब वह उसको संतुलन करेगा।

इसलिए फ्रायड तो कहता है कि मैं कामवासना को एक कलह मानता हूं। इसलिए फ्रायड सेक्स और वार को जोड़ता है। वह कहता है, युद्ध और काम एक ही चीज के रूप हैं और जब तक मन में कामवासना है, तब तक युद्ध की वृत्ति समाप्त नहीं हो सकती। यह इनसाइट गहरी है, यह अंतर्दृष्टि गहरी है। और इस अंतर्दृष्टि को अगर हम समझें तो महावीर को समझना बहुत आसान हो जाएगा।
महावीर कहते कि अगर जो बुरा है, तथाकथित बुरा मालूम पड़ता है; उससे छूटना है, तो जो तथाकथित भला है उससे भी छूट जाना पड़ेगा। अगर घृणा से मुक्त होना है तो राग से भी मुक्त हो जाना पड़ेगा। अगर शत्रु से बचना है तो मित्र से भी बच जाना पड़ेगा। अगर अंधेरे में जाने की आकांक्षा नहीं है तो प्रकाश को भी नमस्कार कर लेना पड़ेगा। यह उलटा दिखाई पड़ता है, यह उलटा नहीं है। क्योंकि जिसके मन में प्रकाश में जाने की आकांक्षा है, वह बार-बार अंधेरे में गिरता रहेगा। जीवन द्वंद्व है, और जीवन के सब रूप अपने विपरीत से बंधे हुए हैं, अपने से उलटे से बंधे हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि जो व्यक्ति जिस चीज से लड़ेगा, विपरीत चलेगा, उससे ही बंधा रहेगा। उससे वह कभी नहीं छूट सकता। अगर आप धन से लड़ रहे हैं और धन के विपरीत जा रहे हैं, तो धन आपके चित्त को सदा घेरे रहेगा। अगर आप अहंकार से लड़ रहे हैं और अहंकार के विपरीत जा रहे हैं तो आपका अहंकार सूक्ष्म से सूक्ष्म होकर आपके भीतर सदा खड़ा रहेगा। लड़ना थोड़ा सम्हल कर। क्योंकि जिससे हम लड़ते हैं, उससे हम बंध जाते हैं।
तप इन्हीं भूलों में पड़ कर रुग्ण हो गया। और जिन्हें हम तपस्वी की भांति जानते हैं, उनमें से निन्यानबे प्रतिशत मानसिक चिकित्सा के लिए उम्मीदवार हैं। उनकी मानसिक चिकित्सा जरूरी है। और ध्यान रहे, कामवासना से छूटना आसान है, क्योंकि कामवासना प्रकृति है। कामवासना के विपरीत जो कामवासना के विरोध से बंध गया, उससे छूटना मुश्किल पड़ेगा। क्योंकि वह प्रकृति से और एक कदम दूर निकल जाना है।
इसे हम तीन शब्दों में समझ लें। एक को मैं कहता हूं प्रकृति, जिसे हमने कुछ नहीं किया, जो हमें मिली है--दि गिवन। जो हमें मिली है, वह प्रकृति है। अगर हम कुछ गलत करें तो जो हम कर लेंगे, उसका नाम है विकृति। और अगर हम कुछ करें और ठीक करें तो जो होगा, उसका नाम है संस्कृति। प्रकृति पर हम खड़े होते हैं। जरा सी भूल और विकृति में चले जाते हैं। संस्कृति में जाना बहुत कठिन है। क्योंकि संस्कृति में जाने के लिए विकृति से बचना पड़ेगा और प्रकृति के ऊपर उठना पड़ेगा। दो बातें--विकृति से बचना पड़ेगा और प्रकृति के ऊपर उठना पड़ेगा। अगर किसी ने सिर्फ प्रकृति से लड़ने की कोशिश की तो विकृति में गिर जाएगा। और विकृति संस्कृति से और एक कदम दूर है। प्रकृति उतनी दूर नहीं, प्रकृति मध्य में खड़ी है। विकृति, और आप हट गए। प्रकृति से भी दूर हट गए। इसलिए तो पशुओं में ऐसी विकृतियां नहीं दिखाई पड़तीं जैसी मनुष्यों में दिखाई पड़ती हैं। क्योंकि पशु प्रकृति से नहीं लड़ते, इसलिए विकृति नहीं दिखाई पड़ती। हम कल्पना भी नहीं कर सकते।
अभी न्यूयार्क के एक चौराहे पर और वाशिंगटन में और-और जगहों पर होमोसेक्सुअल्स ने जुलूस निकाले हैं और उन्होंने कहा है कि यह हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। और इस वर्ष... पिछले वर्ष, कम से कम सौ होमोसेक्सुअल्स ने विवाह किए। जो कि कल्पना के बाहर मालूम पड़ता है--एक पुरुष, एक पुरुष के साथ विवाह कर रहा है या एक स्त्री, एक स्त्री के साथ विवाह कर रही है--समलिंगी विवाह। सौ विवाह की घटनाएं दर्ज हुई हैं अमेरिका में इस वर्ष। और इन लोगों ने कहा है कि हम घोषणा करते हैं कि हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है कि हम जिसको प्रेम करना चाहते हैं, करें, कोई सरकार हमें रोके क्यों? एक पुरुष पुरुष को प्रेम करना चाहता है, उससे विवाह करना चाहता है, उनके काम-संबंध का अधिकार मांगता है। कम से कम डेढ़ सौ क्लब पूरे अमेरिका में हैं। और यूरोप में, स्वीडन में और स्विटजरलैंड में--सब जगह वे क्लब फैलते चले गए हैं। कम से कम दो सौ पत्रिकाएं आज जमीन पर निकलती हैं होमोसेक्सुअल्स की। पत्रिकाएं, जिनमें वे खबरें देते हैं और घोषणाएं देते हैं।

और आप हैरान होंगे कि अभी उन्होंने एक प्रदर्शन किया है, कैलिफोर्निया में, जैसा कि ब्यूटी काम्पीटिशन का होता है--महिलाओं को, सुंदर महिलाओं को हम नग्न खड़ा करते हैं। होमोसेक्सुअल्स ने पचास नग्न युवकों को खड़ा करके प्रदर्शन किया कि हम इनमें ही सौंदर्य देखते हैं, स्त्रियों में नहीं। कोई पशुओं की हम कभी सोच सकते हैं कि पशु और होमोसेक्सुअल, नहीं! हां कभी-कभी ऐसा होता है, सर्कस के पशु होमोसेक्सुअल हो जाते हैं। या कभी-कभी अजायबघर के पशु होमोसेक्सुअल हो जाते हैं। डेस्मंड मौरिस ने एक किताब लिखी है--दि ह्यूमन जू। आदमियों का अजायबघर। और उसने लिखा है कि जो अजायबघर में पशुओं के साथ होता है वह आदमियों के साथ समाज में हो रहा है। यह अजायबघर है, यह कोई समाज नहीं है। यह जू है। क्योंकि कोई पशु पागल नहीं होता, जंगल में; अजायबघर में पागल हो जाता है। कोई पशु जंगल में आत्महत्या नहीं करता देखा गया, आज तक। लेकिन अजायबघर में कभी-कभी आत्महत्या कर लेता है। पशु विकृत नहीं होता क्योंकि प्रकृति में ठहरा रहता है। आदमी कोशिश करता है, आदमी दो कोशिश कर सकता है या तो प्रकृति से लड़ने की कोशिश करे, तो आज नहीं कल विकृति में उतर जाएगा, और या फिर प्रकृति का अतिक्रमण करने की कोशिश करे, तो संस्कृति में प्रवेश करेगा।
अतिक्रमण तप है। विरोध नहीं, निरोध नहीं, संघर्ष नहीं--अतिक्रमण, ट्रांसेंडेंस। बुद्ध ने एक बहुत अच्छा शब्द प्रयोग किया है, वह शब्द है-- पारमिता। वे कहते हैं--लड़ो मत। इस किनारे से उस किनारे चले जाओ, पार चले जाओ--पारमिता। लड़ो मत, इस किनारे से जहां तुम खड़े हो, लड़ो मत। क्योंकि लड़ोगे तो भी इसी किनारे पर खड़े रहोगे। जिससे लड़ना हो, उसके पास रहना पड़ेगा। जिससे लड़ना हो, उससे दूर जाना खतरनाक है। दुश्मन आमने-सामने संगीनें लेकर खड़े रहते हैं। हिंदुस्तान-पाकिस्तान की बाउंडरी पर देखें-- वे खड़े हैं। हिंदुस्तान-चीन की बाउंडरी पर देखें, वे संगीनें लिए खड़े हैं। दुश्मन से दूर जाना खतरनाक है। दुश्मन के सामने संगीन लेकर खड़े रहना पड़ता है। अगर इस तट से लड़ोगे--बुद्ध ने कहा है--अगर भोग के तट से लड़ोगे तो उस तट पर पहुंचोगे कैसे? लड़ो मत, उस तट पर पहुंच जाओ। यह तट छूट जाएगा, भूल जाएगा, विलीन हो जाएगा। तपश्चर्या अतिक्रमण है, ट्रांसेंडेंस है--द्वंद्व नहीं, संघर्ष नहीं।
तो, इस अतिक्रमण के रूप पर हम थोड़े गहरे जाएंगे तो बहुत सी बातें ख्याल हो सकेंगी। एक तो पहले ख्याल ले लें कि अतिक्रमण का क्या अर्थ होता है? आप एक घाटी में खड़े हैं, अंधेरा है बहुत। आप उस अंधेरे से लड़ते नहीं, आप सिर्फ पहाड़ के शिखर पर चढ़ना शुरू कर देते हैं। थोड़ी देर में आप पाते हैं कि आप सूर्य से मंडित शिखर के निकट पहुंचने लगे। वहां कोई अंधेरा नहीं है। घाटी में अंधेरा था, आप घाटी में खड़े ही न रहे, आपने सूर्य-मंडित शिखर की तरफ बढ़ना शुरू कर दिया। आपने धूप से नहाए हुए शिखर की तरफ बढ़ना शुरू कर दिया। आप प्रकाश में पहुंच गए, अतिक्रमण हुआ, संघर्ष जरा भी नहीं।
जहां आप हैं, वहां दो चीजें हैं। आप भी हैं और आपके आसपास घिरा हुआ घाटी का अंधेरा भी है। दो हैं वहां, आप भी हैं, घाटी का अंधेरा भी है। अगर घाटी के अंधेरे से आप लड़ते हैं तो आ पको घाटी में ही रहना पड़ेगा। अगर आप घाटी के अंधेरे से लड़ते नहीं--अपने भीतर जो आप हैं, उसे ऊपर उठाते हैं, ऊर्ध्वगमन पर चलते हैं तो घाटी के अंधेरे पर ध्यान देने की भी जरूरत नहीं है। जहां हम खड़े हैं, वहां चारों तरफ वृत्तियां हैं, भोग की--वे भी हैं, आप भी हैं। गलत त्यागी का ध्यान वृत्तियों पर होता है कि इस वृत्ति को मैं कैसे मिटाऊं। सही त्यागी का ध्यान स्वयं पर होता है कि मैं इस वृत्ति के ऊपर कैसे उठ जाऊं।
इस फर्क को ठीक से समझ लें, क्योंकि इन दोनों की यात्रा अलग होगी। दोनों का नियम अलग होगा, दोनों की साधना अलग होगी, दोनों की दिशा अलग होगी, दोनों का ध्यान अलग होगा। वृत्ति से जो लड़ रहा है उसका ध्यान वृत्ति पर होगा। स्वयं को जो ऊंचा उठा रहा है, उसका ध्यान स्वयं पर होगा। जो वृत्तियों से लड़ रहा है उसका ध्यान बहिर्मुखी होगा। जो स्वयं को ऊर्ध्वगमन की तरफ ले जा रहा है उसका ध्यान अंतर्मुखी होगा। और एक मजे की

बात है कि ध्यान भोजन है। जिस चीज पर आप ध्यान देते हैं, उसको आप शक्ति देते हैं। जिस चीज को आप ध्यान देते हैं, उसको आप शक्ति देते हैं।
मैं पावलिटा की बात कर रहा था--चैक विचारक और वैज्ञानिक। छोटे-छोटे यंत्र हैं उसके पास। वह कहता है--पांच मिनट आंख गड़ाकर इस यंत्र को देखते रहो, और वह यंत्र आपकी शक्ति को संगृहीत कर लेता है। अमरीका में एक बहुत अदभुत आदमी था, जिसे दो साल की सजा अमरीका सरकार ने दी। ऐसा लगता है कि आदमी की बुद्धि बढ़ती ही नहीं। वह दो हजार साल हों तो भी वही करता है, दो हजार साल बाद वही करता है। एक आदमी था, विलेहम रैक। इस सदी में जिन लोगों के पास अंतर्दृष्टि रही उनमें से एक आदमी है, उसको दो साल सजा भोगनी पड़ी और आखिर में अमरीकी सरकार ने उसे पागलखाना--उसको पागल करार देकर, कानूनन उसको पागलखाने भेज दिया। उस पर मुकदमा चला एक बहुत अजीब बात पर। जिस पर, अब उसके मर जाने के बाद वैज्ञानिक कह रहे हैं कि शायद वह ठीक था।
उसने एक अदभुत बाक्स, एक पेटी बनाई, जिसको वह आर्गान बाक्स कहता था।
वह कहता था--इसके भीतर कोई व्यक्ति लेट जाए और कामवासना का विचार करता रहे, तो उसकी कामवासना की शक्ति इस डिब्बे में संगृहीत हो जाती है। लेकिन अब इसका कोई वैज्ञानिक प्रमाण क्या हो कि संगृहीत हो जाती है। वह कहता था-- प्रमाण एक ही है कि आप किसी को भी इसके भीतर लिटा दें, जिसको बिल्कुल पता नहीं है। वह एक मिनट के बाद कामवासना का विचार करना शुरू कर देता है। किसी को भी लिटा दें--वह कहता था--यही प्रमाण है। इसको तो वह हजारों लोगों का प्रमाण देता था। लेकिन इसको वैज्ञानिक कहते थे कि हम इसको कोई प्रमाण नहीं मानते। वह आदमी भ्रम में हो सकता है, उस आदमी की आदत हो सकती है। इस डिब्बे के भीतर, वह कहता था--जो विचार आप करेंगे, जहां आपका ध्यान जाएगा, वहीं शक्ति संगृहीत हो जाती है। वह अनेक ऐसे लोगों को, जिनको मानसिक रूप से ख्याल पैदा हो गया है कि वे क्लीव हैं, इंपोटेंट हैं, इन बाक्सों में लिटा कर ठीक कर देता था। क्योंकि वह कहता था--इनमें आर्गान एनर्जी इकट्ठी है। यह जो पावलिटा है, वह आपकी कोई भी शक्ति को आपके ध्यान से इकट्ठा कर लेता है।
आपको ख्याल में न होगा, जब आपकी तरफ लोग ध्यान देते हैं तो आप स्वस्थ अनुभव करते हैं, जब आपकी तरफ लोग ध्यान नहीं देते तो आप अस्वस्थ अनुभव करते हैं। इसलिए एक बड़ी अदभुत घटना घटती है कि जब आप चाहते हैं कि लोग ध्यान दें, आप बीमार पड़ जाते हैं। बच्चे तो इस ट्रिक को बहुत जल्दी समझ जाते हैं। आपकी सौ में से नब्बे बीमारियां ध्यान की आकांक्षाओं से पैदा होती हैं, क्योंकि बिना बीमार पड़े घर में आपको कोई ध्यान नहीं देता। पत्नी बीमार पड़ जाती है तो पति उसके सिर पर हाथ रख कर बैठता है। बीमार नहीं पड़ती तो उसकी तरफ देखता भी नहीं। पत्नी इस रहस्य को जान-बूझ कर नहीं, अचेतन में समझ जाती है कि जब उसे ध्यान चाहिए तब उसे बीमार होना पड़ेगा। इसलिए कोई स्त्री उतनी बीमार नहीं होती जितनी दिखाई पड़ती है। या जितना वह दिखावा करती है। या जब उसका पति कमरे में होता है तो जितना वह कूल्हती, कराहती और आवाजें करती है, वह आवाजें उतनी नहीं हैं, जितना कि पति कमरे में नहीं होता है तब वह करती है। तब भी नहीं करती है। इस पर थोड़ा ध्यान देने जैसा है। कारण क्या होगा? बच्चे बहुत जल्दी सीख जाते हैं कि जब वे बीमार होते हैं तो सारे घर की अटेंशन उनके ऊपर हो जाती है। एक दफा यह बात समझ में आ गई कि अटेंशन आकर्षित करने के लिए बीमार होना रसपूर्ण है तो जिंदगीभर के लिए बीमारी आधार बना लेती है।
मनोवैज्ञानिक सलाह देते हैं, लेकिन बुद्धिमानी की सलाह बड़ी उलटी मालूम पड़ती है। वे कहते हैं--जब कोई बीमार हो तब जान-बूझ कर भी उस पर कम से कम ध्यान देना, अन्यथा उसे बीमार होने के लिए तुम कारण बनोगे। जब कोई बीमार हो तब तो ध्यान देना ही मत। सेवा कर देना, लेकिन ध्यान मत देना--बड़े तटस्थ भाव से। बीमारी को कोई रस देना खतरनाक है, तो जिंदगी में वह आदमी कम बीमार पड़ेगा, ज्यादा स्वस्थ रहेगा। उसके लिए ध्यान और बीमारी जुड़ेगी नहीं।
लेकिन ध्यान से शक्ति मिलती है। इसीलिए तो इतना सारी दुनिया में ध्यान पाने की कोशिश चलती है। एक नेता को क्या रस आता होगा? जूते खाए,

गालियां खाए, उपद्रव सहे--रस क्या आता होगा? लेकिन जब वह भीड़ में खड़ा होता है तो सब आंखें उसकी तरफ फिर जाती हैं। पावलिटा कहता है कि वह सबकी शक्ति से भोजन पाता है। कोई आश्चर्य नहीं कि नेहरू कुछ दिन और जिंदा रह जाते, अगर चीन का हमला न होता। अचानक भोजन कम हो गया। ध्यान बिखर गया। कोई राजनीतिक नेता पद पर रहते हुए मुश्किल से मरता है, इसलिए कोई राजनीतिक नेता पद नहीं छोड़ना चाहता, नहीं तो मरना और पद छोड़ना करीब आ जाते हैं। मुश्किल से मरता है, कोई राजनीतिक नेता पद पर। मरना ही पड़े आखिर में, यह बात अलग है। अपनी पूरी कोशिश वह यह करता है कि जीते जी पद न छूट जाए, क्योंकि पद छूटते ही उम्र कम हो जाती है। लोग रिटायर होकर जल्दी मर जाते हैं। अब जो पुलिस का आफिसर था, वह रिटायर हो गया; उसकी दस साल कम से कम, उम्र कम हो जाती है।
अभी इस पर तो बहुत काम चलता है। और बहुत देर न लगेगी कि लोग रिटायर होने से इनकार करने लगेंगे, जैसे ही उनको पता चल जाएगा कि गड़बड़ क्या हो रही है। रिटायर जब तक आदमी नहीं होता, तब तक स्वस्थ मालूम पड़ता है। रिटायर होते ही बीमार पड़ जाता है। जो ध्यान का भोजन उसे मिल रहा था--दफ्तर में जाता था, लोग खड़े हो जाते थे; सड़क पर निकलता था लोग नमस्कार करते थे, बच्चे भी डरते थे क्योंकि बाप का कब्जा था पैसे पर--बैंक-बैलेंस बाप के नाम था, पत्नी भी भयभीत होती थी, फिर अब रिटायर हो गया, हाथ से धीरे-धीरे सब सूत्र छूट गए। अब वह बैठा रहता है कोने में। लोग ऐसे निकल जाते हैं जैसे वह है ही नहीं। तो वह खांसता-खंखारता है, आवाज देता है कि मैं भी यहां हूं। वह हर चीज में अड़ंगेबाजी करता है--बूढ़ों की आदत अड़ंगेबाजी की और किसी कारण से नहीं है--हर चीज में अड़ंगेबाजी करता है। कोई ऐसी बात नहीं जिसमें वह अड़ंगा न डाले। क्योंकि अड़ंगा डाल कर अब वह बता सकता है कि मैं हूं और थोड़ा ध्यान आकर्षित करता है। यह बहुत दीन अवस्था है, यह बहुत दयनीय अवस्था है। यह बहुत रुग्ण है, दुखद है--लेकिन है। वह घर में कोई ऐसी चीज न चलने देगा जिसमें वह सलाह न दे। हालांकि उसकी सलाह कोई नहीं मानता है, यह वह जानता है। इसे वह दिन भर कहता है कि कोई मेरी नहीं मानता। लेकिन फिर दिनभर देता क्यों है। वह दिन भर कहता है, कोई मेरी सुनता नहीं।
गांधीजी कहते थे कि वे एक सौ पच्चीस वर्ष जीएंगे। और जी सकते थे। अगर भारत आजाद न होता, तो वे एक सौ पच्चीस वर्ष जी सकते थे। भारत का आजाद होना उनके मरने का हिस्सा बन गया। क्योंकि आजादी के बाद ही जो उनकी सुनते थे उन्होंने सुनना बंद कर दिया, क्योंकि वे खुद ही ताकतवर हो गए। वे खुद ही पदों पर पहुंच गए। तो गांधी ने कहाः "मैं खोटा सिक्का हो गया हूं, मेरी अब कोई सुनता नहीं।" लेकिन गांधी को भी पता नहीं होगा कि गांधी जब भी यह कहते थे कि मेरी कोई सुनता नहीं, मैं एक खोटा सिक्का हो गया हूं, मैं बोलता रहता हूं, कोई मेरी फिकर नहीं करता--कोई मेरी सलाह नहीं मानता--हालांकि वे सलाह दिए जाते थे, मरने के पहले उन्होंने कहना शुरू कर दिया था कि अब मेरी एक सौ पच्चीस वर्ष जीने की कोई आकांक्षा नहीं है। परमात्मा मुझे जल्दी उठा ले। क्यों? क्योंकि खोटे सिक्के हो गए। क्योंकि कोई सुनता नहीं। क्योंकि कोई ध्यान नहीं देता। जो ध्यान देते थे वे भी इसलिए ध्यान देते थे कि बिना गांधी पर ध्यान दिए उन पर कोई ध्यान नहीं देता था। अब वे खुद ही ध्यान पाने के अधिकारी हो गए थे, सीधा लोग उनको ध्यान दे रहे थे। अब वह गांधी पर काहे के लिए ध्यान दे! कोने में पड़ गए थे। कोई नहीं कह सकता कि गोडसे की गोली को सामने देख कर उनके मन में धन्यवाद नहीं उठा हो। कोई नहीं कह सकता है कि उन्होंने सोचा हो कि आ गया भगवान का संदेशवाहक, झंझट मिटी, --बिदा होते हैं।
ध्यान भोजन है, बहुत सटल फुड, बहुत सूक्ष्म भोजन है। अकेले ध्यान पर
भी जी सकते हैं आप। इसलिए जब कोई प्रेम में पड़ता है तो भूख कम हो जाती है। आपको पता है, अगर कोई आपको बहुत प्रेम करता है तो भूख एकदम कम हो जाती है। क्यों कम हो जाती है? जब कोई प्रेम करता है, प्रेम का मतलब ही क्या है कि कोई आप पर ध्यान देता है। और मतलब क्या है? और जब कोई आप पर ध्यान नहीं देता आपको पता है, मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जब कोई ध्यान नहीं देता तब लोग ज्यादा भोजन करने लगते हैं। जब कोई ध्यान देता है तो कम भोजन करते हैं। क्योंकि ध्यान भी कहीं गहरे में भोजन का काम करता है, बहुत सूक्ष्म

तल पर काम करना है। जिस चीज को हम ध्यान देते हैं, उसको शक्ति देते हैं--यह मैं कह रहा हूं। और अब इसको कहने के वैज्ञानिक आधार हैं। अब इसको नापने के भी उपाय हैं।
मैंने पीछे आपसे निकोलिएव और कामिनिएव का नाम लिया। ये दोनों व्यक्ति टेलिपैथिक कम्युनिकेशन में इस समय पृथ्वी पर सबसे ज्यादा निष्णात लोग हैं। निकोलिएव विचार भेजता है, ब्राडकास्ट करता है और हजारों मील दूर कामिनिएव उस विचार को पकड़ता है। वैज्ञानिकों ने यंत्र लगाकर बड़े चकित हो गए कि जब निकोलिएव विचार भेजता है, तो उसकी शक्ति क्षीण होती है। उसके चारों तरफ यंत्र बताते हैं कि उसकी शक्ति क्षीण हो रही है। और जब हजारों मील दूर कामिनिएव विचार को ग्रहण करता है, तब उसकी शक्ति, यंत्र बताते हैं कि बढ़ गई। आश्चर्यजनक! हजारों मील दूर। लेकिन जब निकोलिएव विचार भेजता है कामिनिएव को, तब उससे पूछा गया कि वह करता क्या है? वह कहता है--मैं आंख बंद करके ध्यान करता हूं कि कामिनिएव मेरे सामने उपस्थित है--वह दूर नहीं है, मेरे सामने उपस्थित है। मैं अपने सारे ध्यान को उस पर लगा देता हूं। सब भूल जाता हूं सिर्फ कामिनिएव रह जाता है। और जब कामिनिएव रह जाता है और मुझे प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने लगता है कि यह सामने खड़ा है, तब मैं उससे बोलता हूं।
ध्यान वह अटेंशन दे रहा है। तो उसकी ऊर्जा हजारों मील दूर बैठे हुए व्यक्ति को उपलब्ध हो जाती है। जिस चीज पर हम ध्यान देते हैं वहां शक्ति संगृहीत होती है और जहां से हम ध्यान देते हैं वहां से शक्ति हटती है और विसर्जित होती है। जिस वृत्ति पर आप ध्यान देते हैं उस पर शक्ति संगृहीत हो जाती है। जब आप कामवासना का विचार करते हैं तो आपके कामवासना का जो केंद्र है वह शक्ति को इकट्ठा करने लगता है। जिस चीज पर आप ध्यान देते हैं वह वृत्ति का केंद्र आपके भीतर शक्ति को इकट्ठा कर लेता है। आप ही शक्ति देते हैं ध्यान देकर। फिर वह केंद्र शक्ति से भर जाता है तो वह शक्ति से मुक्त होना चाहता है, क्योंकि बोझिल हो जाता है। यह जाल है आदमी के भीतर। लेकिन, कामवासना पर ध्यान दो तरह से दिया जा सकता है। एक, कि आप कामवासना में रस लें तो भी ध्यान दिया जा सकता है। तो प्रकृतिस्थ, नेचुरल कामवासना आप में घनीभूत होगी, नैसर्गिक कामवासना आप में शक्तिशाली हो जाएगी। एक विकृत ध्यान दिया जा सकता है। एक आदमी कामवासना पर ध्यान देता है कि मुझे कामवासना से लड़ना है, मुझे कामवासना को भीतर प्रविष्ट नहीं होने देना है--वह भी ध्यान दे रहा है। उसका भी काम का सेंटर, सेक्स सेंटर शक्ति को इकट्ठा कर लेता है। अब बड़ी मुश्किल होती है। क्योंकि जो नैसर्गिक कामवासना को ध्यान देता है, वह तो नैसर्गिक रूप से शक्ति उसकी विसर्जित हो जाएगी। लेकिन जो विसर्जित नहीं करना चाहता और ध्यान देता है, इसका क्या होगा? इसकी शक्ति विकृत रूप लेना शुरू करेगी, यह विसर्जित हो नहीं सकती। यह शरीर के दूसरे अंगों में प्रवेश करेगी और उनको विकृत करने लगेगी। यह चित्त के दूसरे स्नायुओं में प्रवेश करेगी और विकृत करने लगेगी। यह आदमी भीतर से उलझता जाएगा और जाल में फंसता जाएगा--अपनी ही अपनी ही दी गई शक्ति से।
ऐसा हुआ कि हम एक वृक्ष को पानी दिए जाते हैं और प्रार्थना किए जाते हैं कि वृक्ष बड़ा न हो। यह वृक्ष बड़ा न हो, प्रार्थना किए जाते हैं और पानी दिए जाते हैं। जिस वृत्ति को आप ध्यान देते हैं चाहे पक्ष में, चाहे विपक्ष में, आप उसको पानी और भोजन देते हैं। तप का मूल सूत्र यही है कि ध्यान कहीं और दो। जहां तुम शक्ति को इकट्ठा करना चाहते हो वहां मत दो। ध्यान ही उठाओ ऊपर। अगर कामवासना से मुक्त होना है तो कामवासना पर ध्यान ही मत दो-पक्ष में भी नहीं, विपक्ष में भी नहीं। लेकिन ध्यान आपको देना ही पड़ेगा क्योंकि ध्यान आपकी शक्ति है, वह काम मांगती है।
तो तप का मूल सूत्र यह है कि ध्यान के लिए नये केंद्र निर्मित करो। नये केंद्र आदमी के भीतर हैं, और उन केंद्रों पर ध्यान को ले जाओ। जैसे ही ध्यान को नया केंद्र मिल जाता है, वह नये केंद्र में शक्ति को उड़ेलने लगता है, वैसे ही पुराने केंद्रों से मुक्त होने लगता है। पहाड़ पर चढ़ाई शुरू हो गई है। काम वासना का केंद्र हमारा सबसे नीचा केंद्र है। वहां से हम

प्रकृति से जुड़े हैं। सहस्रार हमारा सबसे ऊंचा केंद्र है। वहां से हम परमात्म-ऊर्जा से जुड़े हैं--दिव्यता से, भव्यता से, भगवत्ता से जुड़े हैं। जब भी आप ध्यान देते हैं, आपने ख्याल किया है कि आ पके मस्तिष्क में विचार चलता है, कामवासना का, और आपका काम केंद्र तत्काल सक्रिय हो जाता है। यहां विचार चला--और विचार तो चलता है मस्तिष्क में और काम केंद्र बहुत दूर है-- वह तत्काल सक्रिय हो जाता है।
ठीक यही उपाय है। तपस्वी अपने सहस्रार की तरफ अपने ध्यान को लौटा कर करता है। वह जैसे ही सहस्रार की तरफ ध्यान देता है वैसे ही सहस्रार सक्रिय होना शुरू हो जाता है। और जब शक्ति ऊपर की तरफ जाती है तो नीचे की तरफ नहीं जाती है। और जब शक्ति को मार्ग मिलने लगता है, शिखर पर चढ़ने का, तो घाटियां वह छोड़ने लगती है। अगर शक्ति का प्रकाश के जगत में प्रवेश होने लगता है तो अंधेरे के जगत से चुपचाप उठने लगती है। अंधेरे की निंदा भी नहीं होती है उसके मन में, अंधेरे का विरोध भी नहीं होता है उसके मन में, अंधेरे का ख्याल भी नहीं होता है उसके मन में, अंधेरे पर ध्यान ही नहीं होता है। ध्यान का रूपांतरण है, तप।
अब इसको अगर इस तरह समझेंगे तो तप का मैं दूसरा अर्थ आपको कह सकूंगा।
तप का ऐसे अर्थ होता है--अग्नि। तप का अर्थ होता है--अग्नि। तप का अर्थ होता है--भीतर की अग्नि। मनुष्य के भीतर जो जीवन की अग्नि है, उस अग्नि को ऊर्ध्वगमन की तरफ ले जाना तपस्वी का काम है। उसे नीचे की ओर ले जाना भोगी का काम है। भोगी का अर्थ है--जो अग्नि को नीचे की ओर प्रवाहित कर रहा है जीवन में--अधोगमन की ओर। तपस्वी का अर्थ है--जो ऊपर की ओर प्रवाहित कर रहा है उस अग्नि को, परमात्मा की ओर, सिद्धावस्था की ओर।
यह अग्नि दोनों तरफ जा सकती है। और बड़े मजे की बात यह है कि ऊपर की तरफ आसानी से जाती है, नीचे की तरफ बड़ी कठिनाई से जाती है, क्योंकि अग्नि का स्वभाव है ऊपर की तरफ जाना। आपने ख्याल किया है? आप आग जलाते हैं, वह ऊपर की तरफ जाने लगती है। इसीलिए इसे तप नाम दिया, इसे अग्नि नाम दिया, इसे यज्ञ नाम दिया, ताकि यह ख्याल में रहे कि अग्नि का स्वभाव तो है ऊपर की तरफ जाना। नीचे की तरफ तो बड़ी चेष्टा करके ले जानी पड़ती है।
पानी नीचे की तरफ बहता है। अगर ऊपर की तरफ ले जाना हो तो बड़ी चेष्टा करनी पड़ती है। और आप चेष्टा छोड़ दें तो पानी फिर नीचे की तरफ बहने लगेगा। आपने पंपिंग का इंतजाम छोड़ दिया तो पानी फिर नीचे बहने लगेगा। अगर ऊपर चढ़ाना है तो पंप करो, ताकत लगाओ, मेहनत करो। नीचे बहने के लिए पानी किसी की मेहनत नहीं मांगता, खुद बहता है। वह उसका स्वभाव है।
अग्नि को अगर नीचे की तरफ ले जाना है तो इंतजाम करना पड़ेगा। अपने से अग्नि ऊपर की तरफ उठती है--ऊर्ध्वगामी है। इसको तप कहने का कारण है क्योंकि भीतर की जो अग्नि है, जो जीवन-अग्नि है, वह स्वभाव से ऊर्ध्वगामी है। एक बार आपको उसके ऊर्ध्वगमन का अनुभव हो जाए, फिर आपको प्रयास नहीं करना पड़ता है, उसको ऊपर ले जाने के लिए। वह जाती रहती है। एक बार सहस्रार की तरफ तपस्वी का ध्यान मुड़ जाए तो फिर उसे चेष्टा नहीं करनी पड़ती है। फिर वह अग्नि अपने आप बढ़ती रहती है। धीरे-धीरे वह भूल ही जाता है--क्या नीचे, क्या ऊपर। भूल ही जाता है, क्योंकि फिर तो अग्नि सहज ऊपर बहती रहती है। एक बार आग राह पकड़ ले तो ऊपर की तरफ जाना उसका स्वभाव है। नीचे की तरफ ले जाने के लिए आयोजन करना पड़ता है। लेकिन हम नीचे की तरफ ले जाने के लिए इतने लंबे अभ्यस्त हैं कि जन्मों-जन्मों का हमारा अभ्यास है, नीचे की तरफ ले जाने का। इसलिए नीचे की तरफ ले जाना, जो कि वस्तुतः कठिन है, वह हमें सरल मालूम पड़ता है। ऊपर की तरफ ले जाना जो कि वस्तुतः सरल है, वह हमें कठिन मालूम पड़ता है।
कठिनाई हमारी आदत में है। आदतें बड़ी कठिन हो जाती हैं। और कभी-कभी स्वभाव, जो कि हमारी आदत नहीं है, जो कि वस्तु का धर्म है--उसके ऊपर हमारी आदत इतनी सख्त होकर बैठ जाती है कि स्वभाव को दबा देती है। हम सबके स्वभाव दबे हुए हैं आदतों से। जिसको महावीर कर्म का क्रम कहते हैं वह हमारी आदतों का क्रम है। हमने आदतें बना रखी हैं, वे हमें दबाए हुए हैं। वह आदतें लंबी हैं, पुरानी हैं, गहरी हैं। उनसे छूट जाना आज इसी वक्त संभव नहीं हो जाएगा।

तो हम उनसे लड़ना शुरू करते हैं और उलटी आदतें बनाते हैं। लेकिन आदत फिर भी आदत ही होती है।
गलत तपस्वी सिर्फ आदत बनाता है तप की। ठीक तपस्वी स्वभाव को खोजता है, आदत नहीं बनाता। हैबिट और नेचर का फर्क समझ लें। हम सब आदतें बनवाते हैं। हम बच्चे को कहते हैं--क्रोध न करो, क्रोध की आदत बुरी है। न क्रोध करने की आदत बनाओ। वह न क्रोध करने की आदत तो बना लेता है, लेकिन उससे क्रोध नष्ट नहीं होता, क्रोध भीतर चलने लगता है। कामवासना पकड़ती है तो हम कहते हैं कि ब्रह्मचर्य की आदत बनाओ। वह आदत बन जाती है। लेकिन कामवासना भीतर सरकती रहती है, वह नीचे की तरफ बहती रहती है। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तपस्वी खोजता है--स्वभाव के सूत्र को, ताओ को, धर्म को। वह क्या है जो मेरा स्वभाव है, उसे खोजता है। सब आदतों को हटाकर वह अपने स्वभाव का दर्शन करता है। लेकिन आदतों को हटाने का एक ही उपाय है--ध्यान मत दो, आदत पर ध्यान मत दो। एक मित्र चार-छह दिन पहले मेरे पास आए। उन्होंने कहा कि आप कहते हैं
कि बंबई में रह कर, और ध्यान हो सकता है! यह सड़क का क्या करें, भोंपू का क्या करें? ट्रेन जा रही है, सीटी बज रही है, इसका क्या करें?
मैंने उनसे कहाः ध्यान मत दो।
उन्होंने कहा कैसे ध्यान न दें! खोपड़ी पर भोंपू बज रहा है, नीचे कोई हार्न बजाए चला जा रहा है, ध्यान कैसे न दें!
मैंने उनसे कहाः एक प्रयास करो। भोंपू कोई नीचे बजाए जा रहा है, उसे भोंपू बजाने दो। तुम ऐसे बैठे रहो, कोई प्रतिक्रिया मत करो कि भोंपू अच्छा है कि भोंपू बुरा है, कि बजाने वाला दुश्मन कि बजाने वाला मित्र है, कि इसका सिर तोड़ देंगे अगर आगे बजाया। कुछ प्रतिक्रिया मत करो। तुम बैठे रहो, सुनते रहो। सिर्फ सुनो। थोड़ी देर में तुम पाओगे कि भोंपू बजता भी हो तो भी तुम्हारे लिए बजना बंद हो जाएगा। एक्सेप्ट इट, स्वीकार करो।
जिस आदत को बदलना हो उसे स्वीकार कर लो। उससे लड़ो मत। स्वीकार कर लो, जिसे हम स्वीकार लेते हैं उस पर ध्यान देना बंद हो जाता है। क्या आपको पता है, किसी स्त्री के आप प्रेम में हों, उस पर ध्यान होता है। फिर विवाह करके उसको पत्नी बना लिया, फिर वह स्वीकृत हो गई, फिर ध्यान बंद हो जाता है। जिस चीज को हम स्वीकार कर लेते हैं! एक कार आपके पास नहीं है, वह सड़क पर निकलती है चमकती हुई, ध्यान खींचती है। फिर आ पको मिल गई, फिर आप उसमें बैठ गए हैं। फिर थोड़े दिन में आपको ख्याल ही नहीं आता है कि वह कार भी है, चारों तरफ जो ध्यान को खींचती थी, वह स्वीकार हो गई।
जो चीज स्वीकृत हो जाती है उस पर ध्यान जाना बंद हो जाता है। स्वीकार
कर लो, जो है उसे स्वीकार कर लो। अपने बुरे से बुरे हिस्से को भी स्वीकार कर लो। ध्यान देना बंद कर दो, ध्यान मत दो। उसको ऊर्जा मिलनी बंद हो जाएगी। वह धीरे-धीरे अपने आप क्षीण होकर सिकुड़ जाएगी, टूट जाएगी। और जो बचेगी ऊर्जा, उसका प्रवाह अपने आप भीतर की तरफ होना शुरू हो जाएगा।
गलत तपस्वी उन्हीं चीजों पर ध्यान देता है जिन पर भोगी देता है। सही तपस्वी ठीक तप की प्रक्रिया ध्यान का रूपांतरण है। वह उन चीजों पर ध्यान देता है, जिन पर न भोगी ध्यान देता है, न तथाकथित त्यागी ध्यान देता है। वह ध्यान को ही बदल देता है। और ध्यान हमारा हमारे हाथ में है। हम वहीं देते हैं जहां हम देना चाहते हैं।
अभी यहां हम बैठे हैं, आप, मुझे सुन रहे हैं। अभी यहां आग लग जाए मकान में, आप एकदम भूल जाएंगे कि सुन रहे थे, कि कोई बोल रहा था, सब भूल जाएंगे। आग पर ध्यान दौड़ जाएगा, बाहर निकल जाएंगे, भूल ही जाएंगे कि कुछ सुन रहे थे। सुनने का कोई सवाल ही न रह जाएगा। ध्यान प्रतिपल बदल सकता है, सिर्फ नये बिंदु उसको मिलने चाहिए। आग मिल गई, वह ज्यादा जरूरी है जीवन को बचाने के लिए। आग हो गई, तो तत्काल ध्यान वहां दौड़ जाएगा। आपके भीतर तप की प्रक्रिया में उन नये बिंदुओं और केंद्रों की तलाश करनी है जहां ध्यान दौड़ जाए और जहां नये केंद्र सशक्त होने लगें। इसलिए तपस्वी कमजोर नहीं होता, शक्तिशाली हो जाता है। गलत तपस्वी कमजोर हो जाता है। गलत तपस्वी कमजोर होकर सोचता है कि हम जीत लेंगे, और भ्रांति पैदा होती है जीतने की।

अगर एक आदमी को तीस दिन भोजन नहीं दिया जाए, तो कामवासना क्षीण हो जाती है। इसलिए नहीं कि कामवासना चली गई, इसलिए कि कामवासना के योग्य रस नहीं बनता शरीर में। फिर भोजन दिया जाए तो तीस दिन में जो वासना गई थी वह तीन दिन में वापस लौट आती है। भोजन मिला, शरीर को रस मिला। फिर केंद्र सक्रिय हो गया, फिर ध्यान दौड़ने लगा। इसलिए फिर जिसने भूखा रह कर कामवासना पर तथाकथित विजय पाई वह बेचारा फिर भूखा ही जीवन भर रहने की कोशिश में लगा रहता है, क्योंकि वह डरता है कि इधर भोजन दिया तो उधर वासना उठी। मगर यह निपट पागलपन है। वासना के बाहर हुए नहीं, यह सिर्फ कमजोरी की वजह से वासना को शक्ति नहीं मिल रही है।
असल में आदमी जितनी शक्ति पैदा करता है, उसमें कुछ तो जरूरी होती है
जो उसके रोज के काम में समाप्त हो जाती है। एक खास मात्रा की कैलोरी उसके रोज के काम में--उठने में, बैठने में, नहाने में, खाने में, पचाने में, दुकान में आने में, जाने में व्यय हो जाती है। सोने में व्यय हो जाती है। उसके अतिरिक्त जो बचती है वह उस केंद्र को मिल जाती है जिस पर आपका ध्यान है। जो सुपरफ्लुअस है, जो अतिरिक्त है। अगर समझ लें कि एक हजार कैलोरी, मान लें कि आपके रोजमर्रा के काम में खर्च होती है और आपके भोजन और आपकी व्यवस्था से आपको दो हजार कैलोरी शक्ति शरीर में पैदा होती है, तो आपका ध्यान जिस केंद्र पर होगा; एक हजार कैलोरी जो शेष बची है, उस केंद्र पर दौड़ जाएगी। उसको कोई रास्ता नहीं है, ध्यान ही रास्ता है, ध्यान ही ऐरो है जिससे वह जाएगी। उसको और कुछ पता नहीं, कहां जाना है। आपका ध्यान उसको खबर देता है कि यहां जाना है, वह वहां चली जाती है।
अब अगर आपको झूठे तप में उतरना है, तो आप भोजन इतना कर लें कि हजार कैलोरी से ज्यादा आपके भीतर पैदा न हो। फिर आपको ब्रह्मचर्य सधा हुआ मालूम पड़ेगा। क्योंकि आपके पास अतिरिक्त शक्ति बचती नहीं जो कि सेक्स के केंद्र को मिल जाए। हजार शक्ति पैदा होती है, हजार आप खर्च कर लेते हैं। इसलिए तपस्वी खाना कम कर देता है, पैदल चलने लगता है, श्रम ज्यादा करने लगता है और खाना कम करता चला जाता है। वह दोहरी प्रतिक्रियाएं करता है, ताकि शरीर में शक्ति कम हो और शक्ति व्यय ज्यादा हो। वह मिनिमम पर जीने लगता है। न होगी अतिरिक्त शक्ति, न वासना बनेगी।
मगर इससे वह वासना से मुक्त नहीं होता। वासना अपनी जगह खड़ी है। वासना
का केंद्र प्रतीक्षा करेगा। अनंत जन्मों तक प्रतीक्षा करेगा, कहेगा जिस दिन शक्ति ज्यादा हो, मैं तैयार हूं। यह सिर्फ भय में जीना है। इस जीने से कहीं कुछ उपलब्ध नहीं होता है। इससे प्रकृति तो चूक जाती है, संस्कृति नहीं मिलती। सिर्फ विकृति मिलती है और एक भयभीत चेतना रह जाती है।
नहीं, यह नहीं है मार्ग। ठीक पाजिटिव आस्टेरिटी का, ठीक विधायक तप का मार्ग है--शक्ति पैदा करो, ध्यान रूपांतरित करो। ध्यान नये केंद्रों तक ले जाओ, ताकि शक्ति वहां जाए। इसे हम धीरे-धीरे जब और गहरे उतरेंगे ध्यान के परिवर्तन के लिए, तो यह प्रक्रिया ख्याल में आ सकेगी। लेकिन सबसे पहले तो यह ख्याल में ले लेना चाहिए कि मेरी अतिरिक्त शक्ति किस केंद्र से व्यय हो रही है। उसके विपरीत जो केंद्र है, उस केंद्र पर ध्यान को लगाना पड़ेगा। एक छोटी सी घटना, और आज की बात मैं पूरी करूं। धर्मगुरुओं का एक सम्मेलन हुआ है। बड़े धर्मगुरु उस देश के एक नगर में इकट्ठे हुए हैं। चार बड़े धर्म हैं इस देश में, चारों के चार बड़े धर्मगुरु एक निजी वार्ता में लीन हैं। सब सम्मेलन निपटने के करीब हो गया। वह बैठ कर बातें कर रहे हैं। ऊंची बातें हो चुकीं, नकली बातें हो चुकीं। वे अब बैठ कर असली गप-शप कर रहे हैं। पचहत्तर साल का बूढ़ा धर्मगुरु कहता है कि हो गई वे बातें, सुन गए लोग। लेकिन तुम्हारे सामने क्यों मैं छिपाऊं, और मैं आशा करता हूं कि तुम भी न छिपाओगे। अच्छा होगा कि हम बताएं कि असली जिंदगी हमारी क्या है। मैं तो एक ही चीज से परेशान रहा हूं--वह धन। और दिन रात धन के विपरीत बोलता हूं। धन पर मेरी बड़ी पकड़ है। एक पैसा भी मेरा खो जाए तो रात भर मुझे नींद नहीं आती। या एक पैसा मिलने की आशा बंध जाए तो रातभर एक्साइटमेंट रहता है और नींद नहीं आती। बड़ी, धन ही मेरी कमजोरी है। बड़ी मुश्किल है। इसके पार मैं नहीं हो पा रहा हूं। क्या, आप में से कोई पार हो गया हो तो बताएं।

दूसरे ने कहाः पार तो हम भी नहीं, हमारी अपनी-अपनी मुसीबतें हैं।
एक ने कहाः मेरी मुसीबत तो यह अहंकार है। इसके लिए ही जीता हूं, इसी के लिए उठता हूं, इसी के लिए बैठता हूं। इसी के लिए अहंकार के खिलाफ भी बोलता हूं, पर है यही। इससे मैं बाहर नहीं हो पाता।
तीसरे ने कहाः मेरी कमजोरी तो यह कामवासना है। ये स्त्रियां मेरी कमजोरी हैं। दिन-रात समझाता हूं, प्रवचन करता हूं, ब्रह्मचर्य का व्याख्यान करता हूं चर्च में। लेकिन उस दिन बोलने में मजा ही नहीं आता, जिस दिन स्त्रियां नहीं आतीं। मुझे खुद ही मजा नहीं आता बोलने में। जिस दिन स्त्रियां आती हैं, उस दिन मेरा जोश देखने लायक रहता है। उस दिन जब मैं बोलता हूं तो बात ही और होती है। लेकिन अब मैं जानता हूं भलीभांति कि वह भी कामवासना ही है। मैं उसके बाहर नहीं हो पाता हूं।
चौथा आदमी मुल्ला नसरुद्दीन था। वह उठ कर खड़ा हो गया और उसने कहा कि क्षमा करें, मैं जाता हूं।
उन्होंने कहाः लेकिन तुमने अपनी कमजोरी नहीं बताई।
उसने कहाः मेरी सिर्फ एक कमजोरी है, वह है निंदा। अब मैं नहीं रुक सकता एक भी क्षण। पूरा गांव मेरी राह देख रहा होगा। जो मैंने यहां सुना है, वह मुझे कहना होगा। क्षमा करें, मेरी एक ही कमजोरी है--अफवाह। और अब मेरा रुकना मुश्किल है।
उन तीनों ने उसे पकड़ने की कोशिश की कि तू ठहर भाई, तेरी यह कमजोरी थी,
तो तूने पहले क्यों नहीं कहा, इतनी देर चुप क्यों रहा?
हर आदमी की कोई न कोई कमजोरी है। उस कमजोरी को ठीक से पहचान लें। उसी में आपकी ऊर्जा व्यय होती है।
मुल्ला ने कहा कि तब तक तो मैं बैठा रहा जब तक मैं पूरा न सुन पाया। लेकिन जब मैंने पूरा सुन लिया तो जग गई मेरी शक्ति। अब इस रात सोना मेरे वश में नहीं है, अब जब तक एक-एक तक खबर न पहुंचा दूं शक्ति जग गई मेरी! वह जो कमजोरी है हमारी, वही हमारी शक्ति का निष्कासन है। वहीं से हमारी शक्ति व्यय होती है। मुल्ला तब तक बिल्कुल सुस्त बैठा था, जैसे कोई प्राण ही न हों। अचानक ज्योति आ गई, प्राण आ गए, चमक आ गई!
मुल्ला ने कहा कि गजब हो गया। कभी सोचा भी न था कि इस कांफ्रेंस में और ऐसा आनंद आने वाला है।
हमारी कमजोरी हमारी शक्ति के व्यय का बिंदु है। भोग हो या भोग के विपरीत त्याग हो, बिंदु वही बना रहता है। ध्यान वहीं केंद्रित रहता है, शक्ति वहीं से विसर्जित होती है, इवोपरेट होती है, वाष्पीभूत होती है। तप ध्यान के केंद्र बदलने की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया पर कल मैं बात करूंगा। शायद लंबी इस पर बात करनी पड़े क्योंकि महावीर ने फिर तप के बारह हिस्से किए हैं, और एक-एक हिस्सा वैज्ञानिक प्रक्रिया है। तो कल वैज्ञानिक प्रक्रिया को हम समझ लें, फिर महावीर के एक-एक तप के हिस्से पर हम बात करेंगे।

अभी जाएंगे नहीं--हालांकि मन की कमजोरी कह रही होगी कि भागो। तो थोड़ा रुकेंगे। जो कीर्तन संन्यासी करते हैं, उतना धैर्य और।

महावीर-वाणी, भाग 1
नौवां प्रवचन

तपः ऊर्जा-शरीर का अनुभव (धम्म-सूत्र)

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मे सया मणो।।

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

तप के संबंध में, मनुष्य की प्राण ऊर्जा को रूपांतरण करने की प्रक्रिया के संबंध में और थोड़े से वैज्ञानिक तथ्य समझ लेने आवश्यक हैं। धर्म भी विज्ञान है, या कहें परम विज्ञान है, सुप्रीम साइंस है। क्योंकि विज्ञान केवल पदार्थ का स्पर्श कर पाता है, धर्म उस चैतन्य का भी, जिसका स्पर्श करना असंभव मालूम पड़ता है। विज्ञान केवल पदार्थ को बदल पाता है, नये रूप दे पाता है; धर्म उस चेतना को भी रूपांतरित करता है जिसे देखा भी नहीं जा सकता और छुआ भी नहीं जा सकता। इसलिए परम विज्ञान है।
विज्ञान से अर्थ होता है--टु नो दि हाउ। किसी चीज को कैसे किया जा सकता है, इसे जानना। विज्ञान का अर्थ होता है--उस प्रक्रिया को जानना, उस पद्धति को जानना, उस व्यवस्था को जानना जिससे कुछ किया जा सकता है। बुद्ध कहते थे कि सत्य का अर्थ है--वह, जिससे कुछ किया जा सके। अगर सत्य इंपोटेंट है, नपुंसक है, जिससे कुछ न हो सके, सिर्फ सिद्धांत हो, तो व्यर्थ है। सत्य वही है, जो कुछ कर सके--कोई बदलाहट, कोई क्रांति, कोई परिवर्तन। और धर्म ऐसा ही सत्य है। इसलिए धर्म चिंतन नहीं है, विचार नहीं है; धर्म आमूल रूपांतरण है, म्युटेशन है। तप धर्म का, धर्म के रूपांतरण की प्रक्रिया का प्राथमिक सूत्र है। तप किन आधारों पर खड़ा है, वह हम समझ लें। किन प्रक्रियाओं से आदमी को बदलता है, वह हम समझ लें।
सबसे पहली बात इस जगत में जो भी हमें दिखाई पड़ता है, वह वैसा नहीं है जैसा दिखाई पड़ता है। क्योंकि जो भी दिखाई पड़ता है, वह मालूम होता है थिर पदार्थ है, ठहरा हुआ, जमा हुआ पदार्थ है। लेकिन अब विज्ञान कहता है--इस जगत में ठहरी हुई, जमी हुई कोई भी चीज नहीं है। जो कुछ है, सभी गत्यात्मक है, डाइनेमिक है। जिस कुर्सी पर आप बैठे हैं, वह ठहरी हुई चीज नहीं है; वह पूरे समय नदी के प्रवाह की तरह गत्यात्मक है। जो दीवार आ पको चारों तरफ दिखाई पड़ती है, वह दीवार ठोस नहीं है। विज्ञान कहता है--अब ठोस जैसी कोई चीज जगत में नहीं है। वह जो दीवार चारों तरफ खड़ी है, वह भी तरल और लिक्विड है, बहाव है। लेकिन बहाव इतना तेज है कि आपकी आंखें उस बहाव के बीच के अंतराल को, खाइयों को नहीं पकड़ पातीं। जैसे बिजली के पंखे को हम जोर से चला दें, इतने जोर से चला दें तो फिर आप उसकी पंखुड़ियों को नहीं गिन पाते। अगर बहुत गति से चलता हो तो लगेगा कि एक गोल वर्तुल ही घूम रहा है पंखुड़ियां नहीं। बीच की पंखुड़ियों की जो खाली जगह है, वह दिखाई नहीं पड़ती।
वैज्ञानिक कहते हैं--बिजली के पंखे को इतनी तेजी से चलाया जा सकता है
कि आप अगर गोली मारें तो बीच के स्थान से नहीं निकल सकेगी, खाली जगह से नहीं निकल सकेगी, पंखुड़ी को छेद कर निकलेगी। और इतने जोर से भी चलाया जा सकता है कि आप अगर पंखे के, चलते पंखे के ऊपर बैठ जाएं तो आप बीच के स्थान से गिरेंगे नहीं। क्योंकि गिरने में जितना समय लगता है, उतनी देर में दूसरी पंखुड़ी आपके नीचे आ जाएगी। तब... तब पंखा ठोस मालूम पड़ेगा, चलता हुआ मालूम नहीं पड़ेगा।
अगर गति अधिक हो जाए तो चीजें ठहरी हुई मालूम पड़ती हैं। अधिक गति के कारण, ठहराव के कारण नहीं। जिस कुर्सी पर आप बैठे हैं, उसकी गति बहुत है। उसका एक-एक परमाणु उतनी ही गति से दौड़ रहा है अपने केंद्र पर जितनी गति से

सूर्य की किरण चलती हैं--एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील। इतनी तीव्र गति से चलने की वजह से आप गिर नहीं जाते कुर्सी से, नहीं तो आप कभी भी गिर जाएं। तीव्र गति आपको सम्हाले हुए है।
फिर यह गति भी बहुआयामी है, मल्टी-डायमेंशनल है। जिस कुर्सी पर आप बैठे हैं उसकी पहली गति तो यह है कि उसके परमाणु अपने भीतर घूम रहे हैं। हर परमाणु अपने न्यूक्लिअस पर, अपने केंद्र पर चक्कर काट रहा है। फिर कुर्सी जिस पृथ्वी पर रखी है, वह पृथ्वी अपनी कील पर घूम रही है। उसके घूमने की वजह से भी कुर्सी में दूसरी गति है। एक गति कुर्सी की आंतरिक है कि उसके परमाणु घूम रहे हैं, दूसरी गति--पृथ्वी अपनी कील पर घूम रही है इसलिए कुर्सी भी पूरे समय पृथ्वी के साथ घूम रही है। तीसरी गति--पृथ्वी अपनी कील पर घूम रही है और साथ ही पूरे सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण कर रही है; घूमते हुए अपनी कील पर सूर्य का चक्कर लगा रही है। वह तीसरी गति है। कुर्सी में वह गति भी काम कर रही है। चौथी गति--सूर्य अपनी कील पर घूम रहा है, और उसके साथ उसका पूरा सौर परिवार घूम रहा है। और पांचवीं गति--सूर्य, वैज्ञानिक कहते हैं कि महासूर्य का चक्कर लगा रहा है। बड़ा चक्कर है वह, कोई बीस करोड़ वर्ष में एक चक्कर पूरा हो पाता है। तो वह पांचवीं गति कुर्सी भी कर रही है। और वैज्ञानिक कहते हैं कि छठवीं गति का भी हमें आभास मिलता है कि वह जिस महासूर्य का, यह हमारा सूर्य परिभ्रमण कर रहा है; वह महासूर्य भी ठहरा हुआ नहीं है। वह अपनी कील पर घूम रहा है। और सातवीं गति का भी वैज्ञानिक अनुमान करते हैं कि वह जिस और महासूर्य का, जो अपनी कील पर घूम रहा है, वह दूसरे सौर परिवारों से प्रतिक्षण दूर हट रहा है। कोई और महासूर्य या कोई महाशून्य सातवीं गति का इशारा करता है। वैज्ञानिक कहते हैं--ये सात गतियां पदार्थ की हैं।
आदमी में एक आठवीं गति भी है, प्राण में, जीवन में एक आठवीं गति भी है। कुर्सी चल नहीं सकती, जीवन चल सकता है। आठवीं गति शुरू हो जाती है। एक नौवीं गति, धर्म कहता है मनुष्य में है और वह यह है कि आदमी चल भी सकता है और उसके भीतर जो ऊर्जा है वह नीचे की तरफ जा सकती है या ऊपर की तरफ जा सकती है। उस नौवीं गति से ही तप का संबंध है। आठ गतियों तक विज्ञान काम कर लेता है, उस नौवीं गति पर, दि नाइनथ, वह जो परम गति है चेतना के ऊपर-नीचे जाने की, उस पर ही धर्म की सारी प्रक्रिया है।
मनुष्य के भीतर जो ऊर्जा है, वह नीचे या ऊपर जा सकती है। जब आप कामवासना से भरे होते हैं तो वह ऊर्जा नीचे जाती है; जब आप आत्मा की खोज से भरे होते हैं तो वह ऊर्जा ऊपर की तरफ जाती है। जब आप जीवन से भरे होते हैं तो वह ऊर्जा भीतर की तरफ जाती है। और भीतर और ऊपर धर्म की दृष्टि में एक ही दिशा के नाम हैं। और जब आप मरण से भरते हैं, मृत्यु निकट आती है तो वह ऊर्जा बाहर जाती है। दस वर्षों पहले तक, केवल दस वर्षों पहले तक वैज्ञानिक इस बात के लिए राजी नहीं थे कि मृत्यु में कोई ऊर्जा मनुष्य के बाहर जाती है, लेकिन रूस के डेविडोविच किरलियान की फोटोग्राफी ने पूरी धारणा को बदल दिया है।
किरलियान की बात मैंने आपसे पीछे की है। उस संबंध में जो एक बात आज काम की है और आपसे कहनी है। किरलियान ने जीवित व्यक्तियों के चित्र लिए हैं, तो उन चित्रों में शरीर के आस-पास ऊर्जा का वर्तुल, इनर्जी फील्ड चित्रों में आता है। हायर सेंसिटिविटी फोटोग्राफी में, बहुत संवेदनशील फोटोग्राफी में आपके आस-पास ऊर्जा का एक वर्तुल आता है। लेकिन अगर मरे आदमी का, अभी मर गए आदमी का चित्र लेते हैं तो वर्तुल नहीं आता। ऊर्जा के गुच्छे आदमी से दूर जाते हुए, आते हैं। ऊर्जा के गुच्छे आदमी से दूर हटते हुए, भागते हुए आते हैं। और तीन दिन तक मरे हुए आदमी के शरीर से ऊर्जा के गुच्छे बाहर निकलते रहते हैं। पहले दिन ज्यादा, दूसरे दिन और कम, तीसरे दिन और कम। जब ऊर्जा के गुच्छों का बहिर्गमन पूरी तरह समाप्त हो जाता है, तब आदमी पूरी तरह मरा। वैज्ञानिक कहते हैं कि जब तक ऊर्जा निकल रही है तब तक उसको पुनरुज्जीवित करने की कोई विधि आज नहीं कल खोजी जा सकेगी। मृत्यु में ऊर्जा आपके बाहर जा रही है, लेकिन शरीर का वजन कम नहीं होता है। निश्चित ही कोई ऐसी ऊर्जा है जिस पर ग्रेविटेशन का कोई असर नहीं

होता। क्योंकि वजन का एक ही अर्थ होता है कि जमीन में जो गुरुत्वाकर्षण है उसका खिंचाव। आपका जितना वजन है, आप भूल कर यह मत समझना कि वह आपका वजन है। वह जमीन के खिंचाव का वजन है। जमीन जितनी ताकत से आपको खींच रही हो, उस ताकत का माप है। अगर आप चांद पर जाएंगे तो आपका वजन चार गुना कम हो जाएगा। क्योंकि चांद चार गुना कम ग्रेविटेशन रखता है। अगर आप सौ पौंड आपका वजन है तो पच्चीस पौंड चांद पर रह जाएगा। इसे आप ऐसा भी समझ सकते हैं कि अगर आप जमीन पर छह फीट ऊंचे कूद सकते हैं तो चांद पर आप जाकर चौबीस फीट ऊंचे कूद सकेंगे। और जब अंतरिक्ष में यात्री होता है, अपने यान में, कैप्सूल में--तब उसका कोई वजन नहीं रहता, नो वेट। क्योंकि वहां कोई ग्रेविटेशन नहीं होता। इसलिए यात्री को पट्टों से बांध कर उसकी कुर्सी पर रखना पड़ता है। अगर पट्टा जरा छूट जाए तो वह जैसे गैस भरा गुब्बारा जाकर ऊपर टकराने लगे, ऐसा आदमी टकराने लगेगा क्योंकि उसमें कोई वजन नहीं है जो उसे नीचे खींच सके। वजन जो है वह जमीन के गुरुत्वाकर्षण से है। लेकिन किरलियान के प्रयोगों ने सिद्ध किया है कि आदमी से ऊर्जा तो निकलती है लेकिन वजन कम नहीं होता। निश्चित ही उस ऊर्जा पर जमीन के गुरुत्वाकर्षण का कोई प्रभाव न पड़ता होगा। योग के लेविटेशन में जमीन से शरीर को उठाने के प्रयोग में उसी ऊर्जा का उपयोग है।
अभी एक बहुत अदभुत नृत्यकार था पश्चिम में--निजिंस्की। उसका नृत्य असाधारण था, शायद पृथ्वी पर वैसा नृत्यकार इसके पहले नहीं था। असाधारणता यह थी कि वह अपने नाच में जमीन से इतने ऊपर उठ जाता था जितना कि साधारणतया उठना बहुत मुश्किल है। और इससे भी ज्यादा आश्चर्यजनक यह था कि वह ऊपर से जमीन की तरफ आता था तो इतने स्लोली, इतने धीमे आता था कि जो बहुत हैरानी की बात है। क्योंकि इतने धीमे नहीं आया जा सकता। जमीन का जो खिंचाव है वह उतने धीमे आने की आज्ञा नहीं देता। यह उसका चमत्कारपूर्ण हिस्सा था। उसने विवाह किया, उसकी पत्नी ने जब उसका नृत्य देखा तो वह आश्चर्यचकित हो गई। वह खुद भी नर्तकी थी।
उसने एक दिन निजिंस्की को कहा--उसकी पत्नी ने आत्म-कथा में लिखा है, मैंने एक दिन अपने पति को कहाः वॉट ए शेम दैट यू कैन नॉट सी योरसेल्फ डांसिंग--कैसा दुख कि तुम अपने को नाचते हुए नहीं देख सकते। निजिंस्की ने कहाः हू सेड, आई कैन नॉट सी। आई डू आलवेज सी। आई एम आलवेज आउट। आई मेक माइसेल्फ डांस फ्रॉम द आउटसाइड। निजिंस्की ने कहाः मैं देखता हूं सदा, क्योंकि मैं सदा बाहर होता हूं और मैं बाहर से ही अपने को नाच करवाता हूं। और अगर मैं बाहर नहीं रहता हूं तो मैं इतने ऊपर नहीं जा पाता हूं और अगर मैं बाहर नहीं रहता हूं तो इतने धीमे जमीन पर वापस नहीं लौट पाता हूं। जब मैं भीतर होकर नाचता हूं तो मुझ में वजन होता है, और जब मैं बाहर होकर नाचता हूं तो उसमें वजन खो जाता है।
योग कहता है--अनाहत चक्र जब भी किसी व्यक्ति का सक्रिय हो जाए, तो जमीन
का गुरुत्वाकर्षण उस पर प्रभाव कम कर देता है और विशेष नृत्यों का प्रभाव अनाहत चक्र पर पड़ता है। अनायास ही मालूम होता है। निजिंस्की ने नाचते- नाचते अनाहत चक्र को सक्रिय कर लिया। और अनाहत चक्र की दूसरी खूबी है कि जिस व्यक्ति का अनाहत चक्र सक्रिय हो जाए वह आउट ऑफ बॉडी एक्सपीरिएंस, शरीर के बाहर के अनुभवों में उतर जाता है। वह अपने शरीर के बाहर खड़े होकर देख पाता है। लेकिन जब आप शरीर के बाहर होते हैं, तब जो शरीर के बाहर होता है, वही आपकी प्राण-ऊर्जा है। वही वस्तुतः आप हैं। वह जो ऊर्जा है उसे ही महावीर ने जीवन-अग्नि कहा है। और उस ऊर्जा को जगाने को ही वैदिक संस्कृति ने यज्ञ कहा है।
उस ऊर्जा के जग जाने पर जीवन में एक नई ऊष्मा भर जाती है। एक नया उत्ताप, जो बहुत शीतल है। यही कठिनाई है समझने की, एक नया उत्ताप जो बहुत शीतल है। तो तपस्वी जितना शीतल होता है उतना कोई भी नहीं होता। यद्यपि हम उसे कहते हैं तपस्वी। तपस्वी का अर्थ हुआ कि वह ताप से भरा हुआ है। लेकिन तप जितनी जग जाती है यह अग्नि, उतना केंद्र शीतल हो जाता है। चारों ओर शक्ति जग जाती है, भीतर केंद्र पर शीतलता आ जाती है।

वैज्ञानिक पहले सोचते थे कि यह जो सूर्य है हमारा, यह जलती हुई अग्नि है, है ही, उबलती हुई अग्नि। लेकिन अब वैज्ञानिक कहते हैं कि सूर्य अपने केंद्र पर बिल्कुल शीतल है, दि कोल्डेस्ट स्पॉट इन दि युनिवर्स, यह बहुत हैरानी की बात है। चारों ओर अग्नि का इतना वर्तुल है, सूर्य अपने केंद्र पर सर्वाधिक शीतल बिंदु है। और उसका कारण अब ख्याल में आना शुरू हुआ है। क्योंकि जहां इतनी अग्नि हो, उसको संतुलित करने के लिए इतनी ही गहन शीतलता केंद्र पर होनी चाहिए, नहीं तो संतुलन टूट जाएगा।
ठीक ऐसी ही घटना तपस्वी के जीवन में घटती है। चारों ओर ऊर्जा उत्तप्त
हो जाती है, लेकिन उस उत्तप्त ऊर्जा को संतुलित करने के लिए केंद्र बिल्कुल शीतल हो जाता है। इसलिए तप से भरे व्यक्ति से ज्यादा शीतलता का बिंदु इस जगत में दूसरा नहीं है, सूर्य भी नहीं। इस जगत में संतुलन अनिवार्य है। असंतुलन चीजें बिखर जाती हैं।
आपने कभी गर्मी के दिनों में उठ गया बवंडर देखा होगा, धूल का। जब बवंडर चला जाए तब आप धूल के ऊपर जाना या रेत के पास जाना। तो आप एक बात देखेंगे कि बवंडर चारों तरफ था, बवंडर के निशान चारों तरफ बने हैं, लेकिन बीच में एक बिंदु है जहां कोई निशान नहीं है। वहां शून्य था। वह बवंडर शून्य की धुरी पर ही घूम रहा था। बैलगाड़ी चलती है, लेकिन उसका चाक चलता है, लेकिन उसकी कील खड़ी रहती है। अब यह बहुत मजे की बात है कि खड़ी हुई कील पर चलते हुए चाक को सहारा है। खड़ी हुई कील पर, ठहरी हुई कील पर, चलते हुए चाक को चलना पड़ता है। अगर कील भी चल जाए तो गाड़ी गिर जाए। विपरीत से संतुलन है। जीवन का सूत्र है--विपरीत से संतुलन।
तो तपस्वी की चेष्टा यह है कि वह इतनी अग्नि पैदा कर ले अपने चारों ओर, ताकि उस अग्नि के अनुपात में भीतर शीतलता का बिंदु पैदा हो। वह अपनी ओर इतनी डाइनेमिक फोर्सेज, इतनी गत्यात्मक शक्ति को जन्मा ले कि भीतर शून्य का बिंदु उपलब्ध हो जाए। वह अपने चारों ओर इतने तीव्र परिभ्रमण से भर जाए ऊर्जा के कि उसकी कील ठहर जाए, खड़ी हो जाए।
उलटा दिखाई पड़ने वाला यह क्रम है, इससे बड़ी भूल हो जाती है। इससे लगता
है कि तपस्वी शायद ताप में उत्सुक है। तपस्वी शीतलता में उत्सुक है। लेकिन शीतलता को पैदा करने की विधि अपने चारों ओर ताप को पैदा कर लेना है। और यह ताप बाह्य नहीं है। यह अपने शरीर के आसपास आग की अंगीठी जला लेने से नहीं पैदा हो जाएगा। यह ताप आंतरिक है। इसलिए महावीर ने, तपस्वी अपने चारों तरफ आग जलाए, इसका निषेध किया है। क्योंकि वह ताप बाह्य है। उससे आंतरिक शीतलता पैदा नहीं होगी; ध्यान रहे आंतरिक ताप होगा तो ही आंतरिक शीतलता पैदा होगी, बाह्य ताप होगा, तो बाह्य शीतलता पैदा होगी। यात्रा करनी है अंतर की तो बाहर के सब्स्टीट्यूट्स नहीं खोजने चाहिए। वे धोखे के हैं, खतरनाक हैं।
अंतर में क्या ताप पैदा हो सकता है? किरलियान ने ऐसे लोगों का अध्ययन किया है, फोटोग्राफी में जो सिर्फ अपने ध्यान से हाथ से लपटें निकाल सकते हैं। एक व्यक्ति है स्विस, जो अपने हाथ में पांच कैंडल का बल्ब रख कर जला सकता है, सिर्फ ध्यान से। सिर्फ वह ध्यान करता है भीतर कि उसकी जीवन अग्नि बहनी शुरू हो गई हाथ से और थोड़ी ही देर में बल्ब जल जाता है।
पिछले कोई पंद्रह वर्ष पहले हालैंड की एक अदालत ने एक तलाक स्वीकार किया। और वह तलाक इस बात से स्वीकार किया कि वह जो स्त्री थी, उसके भीतर कुछ दुर्घटना घट गई थी। वह एक कार के एक्सीडेंट में गिर गई, पत्नी। और उसके बाद जो भी उसको छुए उसे बिजली के शाक लगने शुरू हो गए। उसके पति ने कहा--मैं मर जाऊंगा। इसे छूना ही असंभव है।
यह पहला तलाक है क्योंकि इस कारण से पहले कभी कोई तलाक नहीं हुआ था। कानून में कोई जगह न थी, क्योंकि कानून ने कभी सोचा न था। लेकिन यह तलाक स्वीकार करना पड़ा। उस स्त्री की अंतर-ऊर्जा में कहीं लीकेज पैदा हो गया। आपके शरीर में भी ऋण और धन विद्युत ऊर्जा का वर्तुल है। उसमें कहीं से
भी टूट पैदा हो जाए तो आपके शरीर से भी दूसरे को शाक लगना शुरू हो जाएगा। और कभी कभी आपको किसी अंग में अचानक झटका लगता है, वह इसी आकस्मिक लीकेज का कारण है। आप आकस्मिक... कभी आप रात लेटे हैं और एकदम झटका खा जाते हैं। उसका

और कोई कारण नहीं है। सोते वक्त आपकी ऊर्जा को शांत होना चाहिए आपकी निद्रा के साथ, वह नहीं हो पाती। व्यवधान पैदा हो जाता है। शाक खा सकते हैं आप।
यह जो अंतर-ऊर्जा है, हिप्नोसिस के प्रयोगों ने इस पर बहुत बड़ा काम किया है। सम्मोहन के द्वारा आपकी अंतर-ऊर्जा को कितना ही घटाया और बढ़ाया जा सकता है। जो लोग आग के अंगारों पर चलते रहे हैं, मुसलमान फकीर, सूफी फकीर या और योगी--उनके चलने का कुल कारण, कुल रहस्य इतना है कि वह अपनी अंतर-ऊर्जा को इतना जगा लेते हैं कि आग के अंगारे की गर्मी उससे कम पड़ती है। और कोई कारण नहीं है। रिलेटिवली, सापेक्ष रूप से आपकी गर्मी कम हो जाती है इसलिए अंगारे ठंडे मालूम पड़ते हैं। उनके शरीर की गर्मी, अंतर-ऊर्जा का प्रवाह इतना तीव्र होता है कि उस प्रवाह के कारण बाहर की गर्मी कम मालूम होती है।
गर्मी का अनुभव सापेक्ष है। अगर आप अपने दोनों हाथ एक हाथ को बर्फ पर
रख कर ठंडा कर लें और अपने एक हाथ को आग की सिगड़ी पर रख कर गर्म कर लें। फिर दोनों हाथ को एक बाल्टी में डाल दें, पानी से भरी हुई, तो आपके दोनों हाथ अलग-अलग खबर देंगे। एक हाथ कहेगा--पानी बहुत ठंडा है; एक हाथ कहेगा--पानी बहुत गर्म है। जो हाथ ठंडा है वह कहेगा पानी गर्म है, जो हाथ गर्म है वह कहेगा पानी ठंडा है। आप बड़ी मुश्किल में पड़ेंगे कि वक्तव्य क्या दें। अगर अदालत में गवाही देनी हो कि पानी ठंडा है या गर्म? क्योंकि आप साधारणतः हमारे शरीर का ताप एक होता है, इसलिए हम कह सकते हैं पानी ठंडा है या गर्म। एक हाथ को गर्म कर लें, एक को ठंडा, फिर एक ही बाल्टी में डाल दें। आप मुश्किल में पड़ जाएंगे। और आपको महावीर का वक्तव्य देना पड़ेगा--शायद पानी गर्म है, शायद पानी ठंडा है--परहेप्स। बायां हाथ कहता है, ठंडा है, दायां हाथ कहता है, गर्म है। पानी क्या है फिर? आपका वक्तव्य सापेक्ष है। आप जो कह रहे हैं, वह वक्तव्य पानी के संबंध में नहीं, आपके हाथ के संबंध में है। अगर आपकी अंतर-ऊर्जा इतनी जग गई, तो आप अंगारे पर चल सकते हैं और अंगारे ठंडे मालूम पड़ेंगे। पैर पर फफोले नहीं आएंगे। इससे उलटी घटना हिप्नोसिस में घट जाती है। अगर मैं आ पको हिप्नोटाइज करके बेहोश कर दूं, जो कि बड़ी सरल सी बात है, और आपके हाथ पर एक साधारण सा कंकड़ रख दूं और कहूं कि अंगारा रखा है, आपका हाथ फौरन जल जाएगा। आप कंकड़ को फेंक कर चीख मार देंगे। यहां तक ठीक है, आपके हाथ पर फफोला आ जाएगा। क्या, हुआ क्या? जैसे ही मैंने कहा कि अंगारा रखा है, आपके हाथ की ऊर्जा घबड़ाहट में पीछे हट गई। रिलेटिव गैप, जगह हो गई। खाली जगह हो गई, हाथ जल गया। अंगारा नहीं जलाता, आपकी ऊर्जा हट जाती है, इसलिए आप जलते हैं। अगर अंगारा भी रखा जाए हिप्नोटाइज्ड आदमी के हाथ में, और कहा जाए, ठंडा कंकड़ है--नहीं जलाता है। क्योंकि हाथ की ऊर्जा अपनी जगह खड़ी रहती है।
इसका अर्थ यह भी हुआ कि ऊर्जा आपके संकल्प से हटती या घटती या आगे या पीछे होती है। कभी ऐसे छोटे-मोटे प्रयोग करके देखें, तो आपके ख्याल में आसान हो जाएगा। थर्मामीटर से अपना ताप नाप लें। फिर थर्मामीटर को नीचे रख लें। दस मिनट आंख बंद करके बैठ जाएं और एक ही भाव करें कि तीव्र रूप से गर्मी आपके शरीर में पैदा हो रही है--सिर्फ भाव करें। और दस मिनट बाद आप फिर थर्मामीटर से नापें। आप चकित हो जाएंगे कि आपने थर्मामीटर के पारे को और ऊपर चढ़ने के लिए बाध्य कर दिया--सिर्फ भाव से। और अगर एक डिग्री चढ़ सकता है थर्मामीटर तो दस डिग्री क्यों नहीं चढ़ सकता है। फिर कोई कारण नहीं है, फिर आपके प्रयास की बात है, फिर आपके श्रम की बात है। और अगर दस डिग्री चढ़ सकता है तो दस डिग्री उतर क्यों नहीं सकता है।
तिब्बत में हजारों वर्षों से साधक नग्न बर्फ की शिलाओं पर बैठा रहता है; ध्यान करने के लिए, घंटों। कुल कारण है कि वह अपने आस-पास, अपनी जीवन ऊर्जा के वर्तुल को सजग कर देता है, भाव से। तिब्बत यूनिवर्सिटी, ल्हासा विश्वविद्यालय अपने चिकित्सकों को, तिब्बतन मेडिसिन में जो लोग शिक्षा पाते थे; उनको तब तक डिग्री नहीं देता था--यह चीन के आक्रमण के पहले की बात है--तब तक डिग्री नहीं देता था, जब तक कि चिकित्सक बर्फ गिरती रात में खड़ा होकर अपने शरीर से पसीना न निकाल पाए। तब तक डिग्री नहीं देता था। क्योंकि

जिस चिकित्सक का अपनी जीवन-ऊर्जा पर इतना प्रभाव नहीं है, वह दूसरे की जीवन-ऊर्जा को क्या प्रभावित करेगा। शिक्षा पूरी हो जाती थी, लेकिन डिग्री तो तभी मिलती थी। और आप चकित होंगे कि करीब-करीब जो लोग भी चिकित्सक हो जाते थे, वे सभी इसे करने में समर्थ होते थे। कोई इस वर्ष, कोई अगले वर्ष किसी को छह महीने लगता, किसी को साल भर। और जो बहुत ही अग्रणी हो जाते थे, जिन्हें पुरस्कार मिलते थे, गोल्डमेडल मिलते थे--वे, वे लोग होते थे जो कि रात में, बर्फ गिरती रात में एक बार नहीं, बीस-बीस बार शरीर से पसीना निकाल देते थे। और हर बार जब पसीना निकलता तो ठंडे पानी से उनको नहला दिया जाता। वे फिर दोबारा पसीना निकाल देते, फिर तीसरी बार पसीना निकाल देते सिर्फ ख्याल से, सिर्फ विचार से, सिर्फ संकल्प से।
किरलियान फोटोग्राफी में जब कोई व्यक्ति संकल्प करता है ऊर्जा का तो वर्तुल बड़ा हो जाता है। फोटोग्राफी में वर्तुल बड़ा आ जाता है। जब आप घृणा से भरे होते हैं, जब आप क्रोध से भरे होते हैं तब आपके शरीर से उसी तरह की ऊर्जा के गुच्छे निकलते हैं, जैसे मृत्यु में निकलते हैं। जब आप प्रेम से भरे होते हैं तब उलटी घटना घटती है। जब आप करुणा से भरे होते हैं तब उलटी घटती है। इस विराट ब्रह्म से आपकी तरफ ऊर्जा के गुच्छे प्रवेश करने लगते हैं। अब आप हैरान होंगे यह बात जान कर कि प्रेम में आप कुछ पाते हैं, क्रोध में कुछ देते हैं। आमतौर से प्रेम में हमें लगता है कि कुछ हम देते हैं और क्रोध में लगता है, हम कुछ छीनते हैं। प्रेम में हमें लगता है, कुछ हम देते हैं। लेकिन ध्यान रहे, प्रेम में आप पाते हैं। करुणा में आप पाते हैं, दया में आप पाते हैं। जीवन-ऊर्जा आपकी बढ़ जाती है इसलिए क्रोध के बाद आप थक जाते हैं और करुणा के बाद आप और भी सशक्त, स्वच्छ, ताजे हो जाते हैं। इसलिए करुणावान कभी भी थकता नहीं। क्रोधी थका ही जीता है।
किरलियान फोटोग्राफी के हिसाब से मृत्यु में जो घटना घटती है, वही छोटे अंश में क्रोध में घटती है। बड़े अंश में मृत्यु में घटती है, बहुत ऊर्जा बाहर निकलने लगती है। किरलियान ने एक फूल का चित्र लिया है जो अभी डाली से लगा है। उसके चारों तरफ ऊर्जा का जीवंत वर्तुल है और विराट से, चारों ओर से ऊर्जा की किरणें फूल में प्रवेश कर रही हैं। ये फोटोग्राफ अब उपलब्ध हैं, देखे जा सकते हैं। और अब तो किरलियान का कैमरा भी तैयार हो गया है, वह भी जल्दी उपलब्ध हो जाएगा। उसने फूल को डाली से तोड़ लिया फिर फोटो लिया। तब स्थिति बदल गई। वे जो किरणें प्रवेश कर रही थीं वे वापस लौट रही हैं। एक सेकेंड का फासला, डाली से टूटा फूल। घंटे भर में ऊर्जा बिखरती चली जाती है। जब आपकी पंखुड़ियां सुस्त होकर ढल जाती हैं, वह वही क्षण है जब ऊर्जा निकलने के करीब पहुंच कर पूरी शून्य होने लगती है।
इस फूल के साथ किरलियान ने और भी अनूठे प्रयोग किए जिससे बहुत कुछ दृष्टि मिलती है--तप के लिए। किरलियान ने आधे फूल को काट कर अलग कर दिया। छह पंखुड़ियां हैं तीन तोड़ कर फेंक दीं। चित्र लिया है तीन पंखुड़ियों का, लेकिन चकित हुआ--पंखुड़ियां तो तीन रहीं, लेकिन फूल के आस-पास जो वर्तुल था वह अब भी पूरा रहा, जैसा कि छह पंखुड़ियों के आस-पास था। छह पंखुड़ियों के आस-पास जो वर्तुल, आभामंडल था, ऑरा था; तीन पंखुड़ियां तोड़ दीं, वह आभामंडल अब भी पूरा रहा। दो पंखुड़ियां उसने और तोड़ दीं, एक ही पंखुड़ी रह गई। लेकिन आभामंडल पूरा रहा। यद्यपि तीव्रता से विसर्जित होने लगा, लेकिन पूरा रहा। इसीलिए, आप जब बेहोश कर दिए जाते हैं अनस्थेसिया से या हिप्नोसिस से-- आपका हाथ काट डाला जाए, आपको पता नहीं चलता। उसका कुल कारण इतना है कि आपका वास्तविक अनुभव अपने शरीर का, ऊर्जा-शरीर से है। वह हाथ कट जाने पर भी पूरा ही रहता है। वह तो जब आप जगेंगे और हाथ कटा हुआ देखेंगे तब तकलीफ शुरू होगी। अगर आपको गहरी निद्रा में मार भी डाला जाए तो भी आपको तकलीफ नहीं होगी। क्योंकि गहरी निद्रा में, सम्मोहन में या अनस्थेसिया में आपका तादात्म्य इस शरीर से छूट जाता है और आपके ऊर्जा-शरीर से ही रह जाता है। आ पका अनुभव पूरा ही बना रहता है। और इसीलिए अगर आप लंगड़े भी हो गए हैं पैर से, तब भी आपको ऐसा नहीं लगता कि आ पके भीतर वस्तुतः कोई चीज कम हो गई है। बाहर तो तकलीफ हो जाती है। अड़चन हो जाती है लेकिन भीतर नहीं लगता है कि कोई चीज कम हो गई है। आप बूढ़े भी हो जाते हैं तो भी भीतर नहीं लगता कि आपके भीतर

कोई चीज बूढ़ी हो गई है। क्योंकि वह ऊर्जा-शरीर है, वह वैसा का वैसा ही काम करता रहता है।
अमरीकन मनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक डाक्टर ग्रीन ने आदमी के मस्तिष्क
के बहुत से हिस्से काट कर देखे और वह चकित हुआ। मस्तिष्क के हिस्से कट जाने पर भी मन के काम में कोई बाधा नहीं पड़ती। मन अपना काम वैसा ही जारी रखता है। इससे ग्रीन ने कहा कि यह परिपूर्ण रूप से सिद्ध हो जाता है कि मस्तिष्क केवल उपकरण है, वास्तविक मालिक कहीं कोई पीछे है। वह पूरा का पूरा ही काम करता रहता है। आपके शरीर के आस-पास जो आभामंडल निर्मित होता है, वह इस शरीर का रेडिएशन नहीं है, इस शरीर से विकीर्णन नहीं है, वरन किरलियान ने वक्तव्य दिया है कि ऑन दि कांट्रेरी दिस बॉडी ओनली मिरर्स द इनर बॉडी, वह जो भीतर का शरीर है, उसके लिए यह सिर्फ दर्पण की तरह बाहर प्रकट कर देती है। इस शरीर के द्वारा वे किरणें नहीं निकल रही हैं, वे किरणें किसी और शरीर के द्वारा निकल रही हैं। इस शरीर से केवल प्रकट होती हैं।
जैसे हमने एक दीया जलाया हो, चारों तरफ एक ट्रांसपैरेंट कांच का घेरा लगा दिया हो, उस कांच के घेरे के बाहर हमें किरणों का वर्तुल दिखाई पड़ेगा। हम शायद सोचें कि वह कांच से निकल रहा है तो गलती है। वह कांच से निकल रहा है, लेकिन कांच से आ नहीं रहा है। वह आ रहा है भीतर के दीये से। हमारे शरीर से जो ऊर्जा निकलती है वह इस भौतिक शरीर की ऊर्जा नहीं है, क्योंकि मरे हुए आदमी के शरीर में समस्त भौतिक तत्व यही का यही होता है, लेकिन ऊर्जा का वर्तुल खो जाता है। उस ऊर्जा के वर्तुल को योग सूक्ष्म शरीर कहता रहा है। और तप के लिए उस सूक्ष्म शरीर पर ही काम करने पड़ते हैं। सारा काम उस सूक्ष्म शरीर पर है।
लेकिन आमतौर से जिन्हें हम तपस्वी समझते हैं, वे, वे लोग हैं जो इस भौतिक शरीर को ही सताने में लगे रहते हैं। इससे कुछ लेना-देना नहीं है। असली काम इस शरीर के भीतर जो दूसरा छिपा हुआ शरीर है--ऊर्जा-शरीर, एनर्जी- बॉडी--उस पर काम का है। और योग ने जिन चक्रों की बात की है, वे इस शरीर में कहीं भी नहीं हैं, वे उस ऊर्जा शरीर में हैं।
इसलिए वैज्ञानिक जब इस शरीर को काटते हैं, फिजियोलाजिस्ट, तो वे कहते हैं--तुम्हारे चक्र कहीं मिलते नहीं। कहां है अनाहत, कहां है स्वाधिष्ठान, कहां है मणिपुर--कहीं कुछ नहीं मिलता। पूरे शरीर को काट कर देख डालते हैं, वह चक्र कहीं मिलते नहीं। वे मिलेंगे भी नहीं। वे उस ऊर्जा-शरीर के बिंदु हैं। यद्यपि उन ऊर्जा-शरीर के बिंदुओं को करस्पांड करने वाले, उनके ठीक समतुल इस शरीर में स्थान हैं--लेकिन वे चक्र नहीं हैं।
जैसे, जब आप प्रेम से भरते हैं तो हृदय पर हाथ रख लेते हैं। जहां आप हाथ रखे हुए हैं, अगर वैज्ञानिक जांच-पड़ताल, काट-पीट करेगा तो सिवाय फेफड़े के कुछ नहीं है। हवा को पंप करने का इंतजाम भर है वहां, और कुछ भी नहीं है। उसी से धड़कन चल रही है। पम्पिंग सिस्टम है। इसको बदला जा सकता है। अब तो बदला जा सकता है और इसकी जगह पूरा प्लास्टिक का फेफड़ा रखा जा सकता है। वह भी इतना ही काम करता है, बल्कि वैज्ञानिक कहते हैं, जल्दी ही इससे बेहतर काम करेगा। क्योंकि न वह सड़ सकेगा, न गल सकेगा, कुछ भी नहीं। लेकिन एक मजे की बात है कि प्लास्टिक के फेफड़े में भी हार्ट अटेक होंगे, यह बहुत मजे की बात है। प्लास्टिक के फेफड़े में हार्ट-अटैक नहीं होने चाहिए, क्योंकि प्लास्टिक और हार्ट-अटैक का क्या संबंध है! निश्चित ही हार्ट अटेक कहीं और गहरे से आता होगा, नहीं तो प्लास्टिक के फेफड़े में हार्ट-अटैक नहीं हो सकता। प्लास्टिक का फेफड़ा टूट जाए, फूट जाए, लेकिन चोट खा जाए, यह सब हो सकता है--लेकिन एक प्रेमी मर जाए और हार्ट अटेक हो जाए, यह नहीं हो सकता क्योंकि प्लास्टिक के फेफड़े को क्या पता चलेगा कि प्रेमी मर गया है। या मर भी जाए तो प्लास्टिक पर उसका क्या परिणाम हो सकता है? कोई भी परिणाम नहीं हो सकता है। अभी भी जो फेफड़ा आ पका धड़क रहा है उस पर कोई परिणाम नहीं होता। उसके पीछे एक दूसरे शरीर में जो हृदय का चक्र है, उस पर परिणाम होता है। लेकिन उसका परिणाम तत्काल इस शरीर पर मिरर होता है, दर्पण की तरह दिखाई पड़ता है।

योगी बहुत दिनों से हृदय की धड़कन को बंद करने में समर्थ रहे हैं, फिर
भी मर नहीं जाते। क्योंकि जीवन का स्रोत कहीं गहरे में है। इसलिए हृदय की धड़कन भी बंद हो जाती है, तो भी जीवन धड़कता रहता है। हालांकि पकड़ा नहीं जा सकता। फिर कोई यंत्र नहीं पकड़ पाते कि जीवन कहां धड़क रहा है। यह शरीर जो हमारा है, सिर्फ उपकरण है। इस शरीर के भीतर छिपा हुआ और इस शरीर के बाहर भी चारों तरफ इसे घेरे हुए जो आभामंडल है, वह हमारा वास्तविक शरीर है। वही हमारा तप-शरीर है। उस पर जो केंद्र है उन पर ही काम तप का, सारी की सारी पद्धति, टेक्नालॉजी, तकनीक उन शरीर के बिंदुओं पर काम करने की है।
मैंने आपसे पीछे कहा कि चाइनीज एक्युपंक्चर की विधि मानती है कि शरीर में कोई सात सौ बिंदु हैं, जहां वह ऊर्जा-शरीर इस शरीर को स्पर्श कर रहा है--सात सौ बिंदु। आपने कभी ख्याल न किया होगा, लेकिन ख्याल करना मजेदार होगा। कभी बैठ जाएं उघाड़े होकर और किसी को कहें कि आपकी पीठ में पीछे कई जगह सुई चुभाएं। आप बहुत चकित होंगे, कुछ जगह वह सुई चुभाई जाएगी, आपको पता नहीं चलेगा। आपकी पीठ पर ब्लाइंड स्पाट्स हैं, जहां सुई चुभाई जाएगी, आपको पता नहीं चलेगा। और आपकी पीठ पर सेंसिटिव स्पाट हैं, जहां सुई जरा सी चुभाई जाएगी और आपको पता चलेगा। एक्युपंक्चर पांच हजार साल पुरानी चिकित्सा विधि है। वह कहती है--जिन बिंदुओं पर सुई चुभाने से पता नहीं चलता, वहां आपका ऊर्जा-शरीर स्पर्श नहीं कर रहा है। वह डेड स्पाट है, वहां से आपका जो भीतर का तपस-शरीर है वह स्पर्श नहीं कर रहा है, इसलिए वहां पता कैसे चलेगा! पता तो उसका चलता है जो भीतर है। संवेदनशील जगह पर छुआ जाता है, उसका मतलब यह है कि वहां से ऊर्जा शरीर कांटेक्ट में है। वहां से वहां तक चोट पहुंच जाती है। जब आपको अनस्थेसिया दे दिया जाता है आपरेशन की टेबल पर तो आपके ऊर्जा शरीर का और इस शरीर का संबंध तोड़ दिया जाता है। जब लोकल अनस्थेसिया दिया जाता है कि मेरे हाथ को भर अनस्थेसिया दे दिया गया है कि मेरा हाथ सो जाए, तो सिर्फ मेरे हाथ के जो बिंदु हैं, जिनसे मेरा तपस-शरीर जुड़ा हुआ है, उनका संबंध टूट जाता है। फिर इस हाथ को काटो-पीटो, मुझे पता नहीं चलता। क्योंकि मुझे तभी पता चल सकता है जब मेरे ऊर्जा-शरीर से संबंध कुछ हो अन्यथा मुझे पता नहीं चलता।
इसलिए बहुत हैरानी की घटना घटती है, और आप भूल ऐसी न करना। कभी-कभी कुछ लोग सोते हुए मर जाते हैं। आप कभी भी सोते हुए मत मरना। सोते में जब कोई मर जाता है तो उसको कई दिन लग जाते हैं यह अनुभव करने में कि मैं मर गया। क्योंकि गहरी नींद में ऊर्जा-शरीर और इस शरीर के संबंध शिथिल हो जाते हैं। अगर कोई गहरी नींद में एकदम से मर जाता है तो उसकी समझ में नहीं आता कि मैं मर गया। क्योंकि समझ में तो तभी आ सकता है, जब इस शरीर से संबंध टूटते हुए अनुभव में आएं। वह अनुभव में नहीं आते तो उसमें पता नहीं चलता कि मैं मर गया।
यह जो सारी दुनिया में हम शरीर को गड़ाते हैं या जलाते हैं या कुछ करते हैं तत्काल, उसका कुल कारण इतना है, ताकि वह जो ऊर्जा-शरीर है उसे यह अनुभव में आ जाए कि वह मर गया। इस जगत से उसका संबंध इस शरीर के साथ इसको नष्ट करता हुआ वह देख ले कि वह शरीर नष्ट हो गया है, जिसको मैं समझता था कि यह मेरा है। यह शरीर को जलाने के लिए मरघट और कब्रिस्तान और गड़ाने के लिए सारा इंतजाम है, यह सिर्फ सफाई का इंतजाम नहीं है कि एक आदमी मर गया--तो उसको समाप्त करना ही पड़ेगा, नहीं तो सड़ेगा, गलेगा। इसके गहरे में जो चिंता है वह उस आदमी की चेतना को अनुभव कराने की है कि यह शरीर तेरा नहीं है, तेरा नहीं था। तू अब तक इसको अपना समझता रहा है। अब हम इसे जलाए देते हैं, ताकि पक्का तुझे भरोसा हो जाए।
अगर हम शरीर को सुरक्षित रख सकें, तो उस चेतना को हो सकता है, ख्याल ही
न आए कि वह मर गई है। वह इस शरीर के आसपास भटकती रह सकती है। उसके नये जन्म में बाधा पड़ जाएगी, कठिनाई हो जाएगी। और अगर उसे भटकाना ही हो इस शरीर के आसपास, तो इजिप्त में जो ममीज बनाई गई हैं, वे इसीलिए बनाई गई थीं। शरीर को इस तरह से ट्रीट किया जाता था, इस तरह के रासायनिक द्रव्यों से निकाला जाता था कि वह सड़े न--इस आशा में कि किसी दिन पुनरुज्जीवन, उस सम्राट को फिर से जीवन मिल सकेगा। तो सात, साढ़े सात हजारों वर्ष पुराने शरीर भी सुरक्षित

पिरामिडों के नीचे पड़े हैं। उस सम्राट को जिसके शरीर को इस तरह रखा जाता था, उसकी पत्नियों को, चाहे वे जीवित ही क्यों न हों, उनको भी उसके साथ दफना दिया जाता था। एक दो नहीं, कभी-कभी सौ-सौ पत्नियां भी होती थीं। उस सम्राट के सारे, जिन-जिन चीजों से उसे प्रेम था, वे सब उसकी ममी के आस-पास रख दिए जाते थे, ताकि जब उसका पुनरुज्जीवन हो तो वह तत्काल पुराने माहौल को पाए। उसकी पत्नियां, उसके कपड़े, उसकी गद्दियां, उसके प्याले, उसकी थालियां, वह सब वहां हों--ताकि तत्काल रि-हैबिलिटेड, वह पुनर्स्थापित हो जाए अपने नये जीवन में। इस आशा में ममीज खड़ी की गई थीं। और इसमें कुछ आश्चर्य न होगा कि जिनकी ममीज रखी हैं, उनका पुनर्जन्म होना बहुत कठिन हो गया है; या न हो पाया हो; या उनकी अनेक की आत्माएं अपने पिरामिडों के आस-पास अब भी भटकती हों।
हिंदुओं ने इस भूमि पर प्राण-ऊर्जा के संबंध में सर्वाधिक गहरे अनुभव किए थे। इसलिए हमने सर्वाधिक तीव्रता से शरीर को नष्ट करने के लिए आग का इंतजाम किया, गड़ाने का भी नहीं। क्योंकि गड़ाने में भी छह महीने लग जाएंगे शरीर को गलने में, टूटने में, मिलने में मिट्टी में। उतने छह महीने तक आत्मा को भटकाव हो सकता है। तत्काल जला देने का प्रयोग हमने किया। वह सिर्फ इसीलिए था ताकि इस बीच, इसी क्षण आत्मा को पता चल जाए कि शरीर नष्ट हो गया, मैं मर गया हूं। क्योंकि जब तक यह अनुभव में न आए कि मैं मर गया हूं, तब तक नये जीवन की खोज शुरू नहीं होती। मर गया हूं, तो नये जीवन की खोज पर आत्मा निकल जाती है।
यह जो एक्युपंक्चर ने सात सौ बिंदु कहे हैं शरीर में--रूस के एक वैज्ञानिक एडामैंको ने अभी एक मशीन बनाई है उस मशीन के भीतर आपको खड़ा कर देते हैं। उस मशीन के चारों तरफ बल्ब लगे होते हैं, हजारों बल्ब लगे होते हैं। आपको मशीन के भीतर खड़ा कर देते हैं। जहां-जहां से आपका प्राण शरीर बह रहा है, वहां-वहां का बल्ब जल जाता है बाहर। सात सौ बल्ब जल जाते हैं हजारों बल्बों में, मशीन के बाहर। वह मशीन, आपकी प्राण ऊर्जा जहां-जहां संवेदनशील है, वहां-वहां बल्ब को जला देती है। तो अब एडामैंको की मशीन से प्रत्येक व्यक्ति के संवेदनशील बिंदुओं का पता चल सकता है।
लेकिन योग ने सात सौ की बात नहीं की, सात चक्रों की बात की है। सात सौ बिंदुओं की! योग की पकड़ एक्युपंक्चर से ज्यादा गहरी है। क्योंकि योग ने अनुभव किया है कि एक-एक बिंदु-बिंदु परिधि पर है, केंद्र नहीं है। सौ बिंदुओं का एक केंद्र है। सौ बिंदु एक चक्र के आस-पास निर्मित हैं। फिकर छोड़ दी, परिधि की। उस केंद्र को ही स्पर्श कर लिया जाए, ये सौ बिंदु स्पर्शित हो जाते हैं। इसलिए सात चक्रों की बात की--प्रत्येक चक्र के आस-पास सौ बिंदु निर्मित होते हैं इस शरीर को छूने वाले। इसलिए आपके शरीर का... समझ लें उदाहरण के लिए, और आसान होगा, क्योंकि हमारे अनुभव की बात होती है तो आसान हो जाती है... सेक्स का एक सेंटर है आपके पास, यौन का चक्र। लेकिन उस यौन चक्र के सौ बिंदु हैं आपके शरीर में। जहां-जहां यौन चक्र का बिंदु है, वहां-वहां इरोटिक जोन हो जाते हैं। जैसे आपको कभी ख्याल में भी न होगा कि जब आप किसी के साथ यौन संबंध में रत होते हैं तो आप शरीर के किन्हीं-किन्हीं अंगों को विशेष रूप से छूने लगते हैं। वह इरोटिक जोन है। वह काम के बिंदु हैं शरीर पर फैले हुए। और कई बिंदु तो ऐसे हैं कि आपको पता नहीं होगा क्योंकि आपके ख्याल में नहीं आएंगे। लेकिन अलग-अलग संस्कृतियों ने अलग-अलग बिंदुओं का पता लगा लिया है। अब तो वैज्ञानिकों ने सारे इरोटिक पॉइंट्स खोज लिए हैं, शरीर में कहां-कहां हैं। जैसे आपको ख्याल में नहीं होगा, आपके कान के नीचे की जो लंबाई है, वह इरोटिक है। वह बहुत संवेदनशील है। स्तन जितने संवेदनशील हैं, उतना ही संवेदनशील आपके कान का हिस्सा है।
आपने कानफटे साधुओं को देखा होगा। कानफटे साधुओं की बात सुनी होगी, लेकिन कभी ख्याल में न आया होगा कि कान फाड़ने से क्या मतलब हो सकता है? कान फाड़ कर वे यौन के बिंदु को प्रभावित करने की कोशिश में लगे हैं। वह सेंसिटिव है स्पाट, वह जगह बहुत संवेदनशील है। आपने कभी ख्याल न किया होगा कि महावीर के कान का नीचे का लंबा हिस्सा कंधे को छूता है। बुद्ध का भी

छूता है। जैनों के चौबीस तीर्थंकरों का छूता है। तीर्थंकर का वह एक लक्षण समझा जाता था कि उसका कान का हिस्सा इतना लंबा हो। लेकिन कान का हिस्सा इतना लंबा हो, उसका अर्थ ही केवल इतना होता है--वह हो या न हो--लंबे हिस्से का प्रतीक सिर्फ इसलिए है कि इस व्यक्ति की काम ऊर्जा बहुत होगी, सेक्स एनर्जी इस व्यक्ति में बहुत होगी। और यही ऊर्जा रूपांतरित होने वाली है, कुंडलिनी बनेगी। यही ऊर्जा रूपांतरित होगी, ऊपर जाएगी और तप बनेगी। वह कान की लंबाई सिर्फ प्रतीक है, वह इरोटिक जोन है। वहां से आपके काम की संवेदनशीलता पता चलती है। आपके शरीर पर बहुत से बिंदु हैं जो काम के लिए संवेदनशील हैं। हर चक्र के आस-पास सौ बिंदु हैं शरीर में।
आपके शरीर में ऐसे बिंदु हैं जिनके स्पर्श से, जिनके स्पर्श से, जिनकी मसाज से आपकी बुद्धि को प्रभावित किया जा सकता है। क्योंकि वे आपके बुद्धि के बिंदु हैं। आपके शरीर में ऐसे बिंदु हैं जिनसे आपके दूसरे चक्रों को प्रभावित किया जा सकता है। समस्त योगासन इन्हीं बिंदुओं को दबाव डालने के प्रयोग हैं। और अलग-अलग योगासन अलग-अलग चक्र को सक्रिय कर देता है। जहां-जहां दबाव पड़ता है, वहां-वहां सक्रिय कर देता है। एक्युपंक्चर ने तो बहुत ही सरल विधि निकाली है। वे तो सुई से आ पके संवेदनशील बिंदु को छेदते हैं। छेदने से, सुई के छेदने से वहां की ऊर्जा सक्रिय होकर आगे बढ़ जाती है। वे कहते हैं--कोई भी बीमारी वे एक्युपंक्चर से ठीक कर सकते हैं। और अभी एक बहुत अदभुत किताब हिरोशिमा के बाबत अभी प्रकाशित हुई है। और जिस आदमी ने, जिस अमरीकी वैज्ञानिक ने वह सारा शोध किया है, वह चकित हो गया है। उसने कहा, हमारे पास एटम बम से पैदा हुई रेडिएशंस हैं, जो-जो नुकसान होते हैं उनको ठीक करने के लिए कोई उपाय नहीं है। लेकिन रेडिएशन से परेशान व्यक्ति को भी एक्युपंक्चर की सुई ठीक कर देती है। एटम से जो नुकसान होते हैं चारों तरफ के वायुमंडल में उस नुकसान को भी एक्युपंक्चर की बिल्कुल साधारण सी सुई ठीक कर पाती है।
क्या होता है? जब एटम गिरता है तो इतनी ऊर्जा पैदा होती है बाहर कि वह ऊर्जा आपके शरीर की ऊर्जा को बाहर खींच लेती है। इतना बड़ा ग्रेविटेशन होता है, एटम की ऊर्जा का कि आपकी तपस-शरीर की ऊर्जा बाहर खिंच जाती है। इसी वजह से आप दीन-हीन हो जाते हैं। अगर पैर की ऊर्जा बाहर खिंच जाए तो आप लंगड़े हो जाते हैं। अगर हृदय की ऊर्जा बाहर खिंच जाए तो आप तत्काल गिरते हैं और मर जाते हैं। अगर मस्तिष्क की ऊर्जा बाहर खिंच जाए तो आप ईडियट, जड़बुद्धि हो जाते हैं। एक्युपंक्चर, इस खोज में पता चला है कि आपकी ऊर्जा की गति को, आपकी ऊर्जा के चक्र को साधारण सी सुई के स्पर्श से पुनः सक्रिय कर देता है।
योगासन भी आपके शरीर में किन्हीं-किन्हीं विशेष बिंदुओं पर दबाव डालने के प्रयोग हैं। निरंतर दबाव से वहां की ऊर्जा सक्रिय हो जाती है। और विपरीत दबाव से दूसरे केंद्रों की ऊर्जा खींच ली जाती है। जैसे अगर आप शीर्षासन करते हैं तो शीर्षासन का अनिवार्य परिणाम कामवासना पर पड़ता है। क्योंकि शीर्षासन में आ पकी ऊर्जा का प्रवाह उलटा हो जाता है, सिर की तरफ हो जाता है। ध्यान रहे, आपकी आदत आपकी शक्ति को नीचे की तरफ बहाने की है। जब आप उलटे खड़े हो जाते हैं तब भी पुरानी आदत के हिसाब से आप शक्ति को नीचे की तरफ बहाते हैं। लेकिन अब वह नीचे की तरफ नहीं बह रही है, अब वह सिर की तरफ बह रही है। शीर्षासन का इतना मूल्य सिर्फ इसीलिए बन सका तपस्वियों के लिए कि वह काम ऊर्जा को सिर की तरफ ले जाने के लिए सुगम है। आपकी पुरानी आदत का उपयोग है। आदत है नीचे की तरफ बहाने की, खुद उलटे खड़े हो गए। अभी भी नीचे की तरफ बहाएंगे, पुरानी आदत के वश। लेकिन अब नीचे की तरफ का मतलब ऊपर की तरफ हो गया। बहेगी नीचे की तरफ, पहुंचेगी ऊपर की तरफ। ऊर्जा... आपके भीतर जो जीवन ऊर्जा है उसको तप जगाता है, शक्तिशाली बनाता है, नये मार्गों पर प्रवाहित करता है, नये केंद्रों पर संगृहीत करता है।
आज से दो साल पहले चैकोस्लोवाकिया की राजधानी प्राहा के पास एक सड़क
पर एक अनूठा प्रयोग हुआ जिसे देखने यूरोप के अनेक वैज्ञानिक इकट्ठे थे। एक आदमी है बेटिस्लाव काफ्का। इस आदमी ने सम्मोहन पर गहन प्रयोग किए।
संभवतः इस समय पृथ्वी पर सम्मोहन के संबंध में सबसे बड़ा जानकार है। इसने

अनेक लोग तैयार किए, अनेक दिशाओं के लिए। इसके पास एक आदमी है जो उड़ते पक्षी को सिर्फ आंख उठा कर देखे, और आप उससे कहें कि गिरा दो, तो वह पक्षी नीचे गिर जाता है। आकाश में उड़ता हुआ पक्षी, वृक्ष पर बैठा हुआ पक्षी, आप कहें, गिरा दो-पच्चीस पक्षी बैठे हुए हैं, आप कहें, इस शाखा पर बैठा हुआ यह सामने नंबर एक का पक्षी है, इसे गिरा दो, वह आदमी एक क्षण उसे देखता है, वह पक्षी नीचे गिर जाता है। आप कहें, इसे
मार कर गिरा दो, तो वह पक्षी मरता है और जमीन पर मुर्दा होकर गिरता है।
दो साल पहले प्राहा की सड़क पर जब यह प्रयोग हुआ, तो कोई दो सौ वैज्ञानिक पूरे यूरोप महाद्वीप से इकट्ठे थे, देखने को। सैकड़ों पक्षी गिरा कर बताए गए। अब पक्षियों को समझा कर राजी नहीं किया जा सकता। न ही उस आदमी ने अपनी मर्जी के पक्षी गिराए। सड़क पर चलते हुए वैज्ञानिकों ने कहा कि इस पक्षी को, तो उस पक्षी को गिरा दिया। जिंदा कहा तो जिंदा गिरा दिया, मुर्दा कहा तो मुर्दा गिरा दिया।
उस आदमी से पूछा जाता है और उसका जो प्रधान है साथ का, उससे पूछा जाता
है कि क्या है राज? तो वह कहता है--हम कुछ नहीं करते। जैसा कि वैक्यूम क्लीनर होता है न आपके घर में, धूल को सक-अप कर लेता है, क्लीनर को आप चलाते हैं फर्श पर, धूल को वह भीतर खींच लेता है। क्लीनर खाली होता है और खींचने का रुख करता है--जैसे कि आप जोर से हवा को भीतर खींच लें, सक कर लें। जैसा कि बच्चा दूध पीता है मां के स्तन से--सक करता है, खींच लेता है। तो वह कहता है--हमने इस आदमी को इसी के लिए तैयार किया है कि उसकी प्राण ऊर्जा को सक कर ले, बस। वह पक्षी बैठा है, यह उस पर ध्यान करता है और प्राण-ऊर्जा को अपने भीतर खींचने का संकल्प करता है। अगर सिर्फ इतना ही संकल्प करता है कि इतनी प्राण ऊर्जा मेरे तक आए कि पक्षी बैठा न रह जाए, गिर जाए, तो पक्षी गिरता है। अगर यह पूरी प्राण-ऊर्जा को खींच लेता है तो पक्षी मर जाता है। इसके चित्र भी लिए गए कि जब वह सक-अप करता है, पक्षी से ऊर्जा के गुच्छे उस आदमी की तरफ भागते हुए चित्र में आए।
काफ्का का कहना है कि यह ऊर्जा हम इकट्ठी भी कर सकते हैं, और मरते हुए आदमी को जैसे आप आक्सीजन देते हैं, किसी न किसी दिन प्राण ऊर्जा भी दी जा सकेगी। जब तक आक्सीजन नहीं दे सकते थे, तब तक आदमी आक्सीजन की कमी से मर जाता था। काफ्का कहता है--बहुत जल्दी अस्पतालों में हम सिलिंडर रख देंगे, जिनमें प्राण-ऊर्जा भरी होगी और मरने वाले आदमी को प्राण-ऊर्जा दे दी जाए। उसकी ऊर्जा बाहर निकल रही है, उसे दूसरी ऊर्जा दे दी जाए तो वह कुछ देर तक जीवित रह सकता है, ज्यादा देर भी जीवित रह सकता है।
अमरीका का एक वैज्ञानिक था, जिसका मैंने कल आपसे थोड़ा उल्लेख किया, और
वह आदमी था, विलेहम रेक। आपने कभी आकाश के पास या समुद्र के किनारे बैठ कर आकाश में देखा हो तो आ पको कुछ आकृतियां आंख में ऊंची-नीची उठती दिखाई पड़ती हैं। सोचते हैं कि आंख का भ्रम होगा और अब तक वैज्ञानिक समझते थे कि सिर्फ आंख का भ्रम है, एक डिल्यूजन है। या यह सोचते थे कि आंख पर कुछ स्पाट होंगे विकृत, उनकी वजह से वह आकृतियां बाहर दिखाई पड़ती हैं। लेकिन विलेहम रैक की खोजों ने यह सिद्ध किया है कि वे आकृतियां प्राण-ऊर्जा की हैं। उन आकृतियों को अगर कोई पीना सीख जाए, तो वह महा-प्राणवान हो जाएगा और वे आकृतियां हमसे ही निकल कर हमारे चारों तरफ फैल जाती हैं। उसको उसने आर्गान एनर्जी कहा है, जीवन ऊर्जा कहा है।
प्राण-योग, या प्राणायाम वस्तुतः मात्र वायु को भीतर ले जाने और बाहर
ले जाने पर निर्भर नहीं है। गहरे में जो कि साधारणतः ख्याल में नहीं आता कि एक आदमी प्राणायाम सीख रहा है तो वह सोचता है बस ब्रीदिंग की एक्सरसाइज है, वह सिर्फ वायु का कोई अभ्यास कर रहा है। लेकिन जो जानते हैं, और जानने वाले निश्चित ही बहुत कम हैं, वे जानते हैं कि असली सवाल वायु को बाहर और भीतर ले जाने का नहीं है। असली सवाल वायु के मार्ग से वह जो आर्गान एनर्जी के गुच्छे चारों तरफ जीवन में फैले हुए हैं, उनको भीतर ले जाने का है। अगर वे भीतर जाते हैं तो ही प्राण-योग है, अन्यथा वायु-योग है, प्राण-योग नहीं है। प्राणायाम नहीं है, अगर वे गुच्छे भीतर नहीं जाते। वे गुच्छे भीतर जाते हैं तो ही प्राण-योग है। उन गुच्छों से आई हुई शक्ति का उपयोग तप में

किया जाता है। खुद की शक्ति का, चारों तरफ जीवन की शक्ति का, पौधों की शक्ति का, पदार्थों की शक्ति का प्रयोग किया जाता है।
एक अनूठी बात आपको कहूं। चकित होंगे आप जान कर कि काफ्का, किरलियान, विलेहम रेक और अनेक वैज्ञानिकों का अनुभव है कि सोना एकमात्र धातु है जो सर्वाधिक रूप से प्राण ऊर्जा को अपनी तरफ आकर्षित करती है। और यही सोने का मूल्य है, अन्यथा कोई मूल्य नहीं है। इसलिए पुराने दिनों में, कोई दस हजार साल पुराने रिकार्ड उपलब्ध हैं, जिनमें सम्राटों ने प्रजा को सोना पहनने की मनाही कर रखी थी। कोई आदमी दूसरा सोना नहीं पहन सकता था, सिर्फ सम्राट पहन सकता था। उसका राज था कि वह सोना पहन कर, दूसरे लोगों को सोना पहनना रोक कर ज्यादा जी सकता था। लोगों की प्राण ऊर्जा को अनजाने अपनी तरफ आकर्षित कर रहा था। जब आप सोने को देख कर आकर्षित होते हैं, तो सिर्फ सोने को देख कर आकर्षित नहीं होते, आपकी प्राण-ऊर्जा सोने की तरफ बहनी शुरू हो जाती है, इसलिए आकर्षित होते हैं। इसलिए सम्राटों ने सोने का बड़ा उपयोग किया और आम आदमी को सोना पहनने की मनाही कर दी गई थी कि कोई आम आदमी सोना नहीं पहन सकेगा।
सोना सर्वाधिक खींचता है प्राण ऊर्जा को। यही उसके मूल्य का राज है अन्यथा... अन्यथा कोई राज नहीं है। इस पर खोज चलती है। संभावना है कि बहुत शीघ्र, जो प्रेशियस स्टोन से, जो कीमती पत्थर हैं, उनके भीतर भी कुछ राज छिपे मिलेंगे। जो बता सकेंगे कि वे या तो प्राण ऊर्जा को खींचते हैं, या अपनी प्राण ऊर्जा न खींची जा सके, इसके लिए कोई रेसिस्टेंस खड़ा करते हैं। आदमी की जानकारी अभी भी बहुत कम है। लेकिन जानकारी कम हो या ज्यादा, हजारों साल से जितनी जानकारी है उसके आधार पर बहुत काम किया जाता रहा है। और ऐसा भी प्रतीत होता है कि शायद बहुत सी जानकारियां खो गई हैं।
लुकमान के जीवन में उल्लेख है कि एक आदमी को उसने भारत भेजा आयुर्वेद
की शिक्षा के लिए और उससे कहा कि तू बबूल के वृक्ष के नीचे सोता हुआ भारत पहुंच। और किसी वृक्ष के नीचे मत सोना--बबूल के वृक्ष के नीचे सोना रोज। वह आदमी जब तक भारत आया, क्षय रोग से पीड़ित हो गया। कश्मीर पहुंच कर उसने पहले चिकित्सक को कहा कि मैं तो मरा जा रहा हूं। मैं तो सीखने आया था आयुवाद, अब सीखना नहीं है, सिर्फ मेरी चिकित्सा कर दें। मैं ठीक हो जाऊं तो अपने घर वापस लौटूं। उस वैद्य ने उससे कहाः तू किसी विशेष वृक्ष के नीचे सोता हुआ तो नहीं आया?
मुझे मेरे गुरु ने आज्ञा दी थी कि तू बबूल के वृक्ष के नीचे सोता हुआ जाना।
वह वैद्य हंसा। उसने कहाः तू कुछ मत कर। तू अब नीम के वृक्ष के नीचे सोता हुआ वापस लौट जा।
वह नीम के वृक्ष के नीचे सोता हुआ वापस लौट गया। वह जैसा स्वस्थ चला था, वैसा स्वस्थ लुकमान के पास पहुंच गया।
लुकमान ने पूछाः तू जिंदा लौट आया? तब आयुर्वेद में जरूर कोई राज है। उसने कहाः लेकिन मैंने कोई चिकित्सा नहीं की।
उसने कहाः इसका कोई सवाल नहीं है। क्योंकि मैंने तुझे जिस वृक्ष के नीचे सोते हुए भेजा था, तू जिंदा लौट नहीं सकता था। तू लौटा कैसे? क्या किसी और वृक्ष के नीचे सोता हुआ लौटा?
उसने कहाः मुझे आज्ञा दी कि अब बबूल भर से बचूं और नीम के नीचे सोता हुआ लौट आऊं। तो लुकमान ने कहा कि वे भी जानते हैं।
असल में बबूल सक-अप करता है इनर्जी को। आपकी जो एनर्जी है, आपकी जो प्राण-ऊर्जा है, उसे बबूल पीता है। बबूल के नीचे भूल कर मत सोना। और अगर बबूल की दातुन की जाती रही है तो उसका कुल कारण इतना है कि बबूल की दातुन में सर्वाधिक जीवन एनर्जी होती है, वह आपके दांतों को फायदा पहुंचा देती है, क्योंकि वह पाता रहता है। जो भी निकलेगा पास से वह उसकी एनर्जी पी लेता है। नीम आपकी एनर्जी नहीं पीती है, बल्कि अपनी एनर्जी आपको दे देती है, अपनी ऊर्जा आप में उड़ेल देती है।
लेकिन पीपल के वृक्ष के नीचे भी मत सोना। क्योंकि पीपल का वृक्ष इतनी ज्यादा एनर्जी उड़ेल देता है कि उसकी वजह से आप बीमार पड़ जाएंगे। पीपल का

वृक्ष सर्वाधिक शक्ति देने वाला वृक्ष है। इसलिए यह हैरानी की बात नहीं है कि पीपल का वृक्ष बोधि-वृक्ष बन गया, उसके नीचे लोगों को बुद्धत्व मिला। उसका कारण है कि वह सर्वाधिक शक्ति दे पाता है। वह अपने चारों ओर से शक्ति आप पर लुटा देता है। लेकिन साधारण आदमी उतनी शक्ति नहीं झेल पाएगा। सिर्फ पीपल अकेला वृक्ष है सारी पृथ्वी की वनस्पतियों में जो रात में भी और दिन में भी पूरे समय शक्ति दे रहा है। इसलिए उसको देवता कहा जाने लगा। उसका और कोई कारण नहीं है। सिर्फ देवता ही हो सकता है जो ले न और देता ही चला जाए। लेता नहीं, लेता ही नहीं, देता ही चला जाता है।
यह जो आपके भीतर प्राण-ऊर्जा है, इस प्राण-ऊर्जा को यही आप हैं। तो तप
का पहला सूत्र आपसे कहता हूं इस शरीर से अपना तादात्म्य छोड़ें। यह मानना छोड़ें कि मैं यह शरीर के जो दिखाई पड़ता है, जो छुआ जाता है। मैं यह शरीर हूं, जिसमें भोजन जाता है। मैं यह शरीर हूं जो पानी पीता है, जिसे भूख लगती है, जो थक जाता है, जो रात सोता है और सुबह उठता है। "मैं यह शरीर हूं" इस सूत्र को तोड़ डालें। इस संबंध को छोड़ दें तो ही तप के जगत में प्रवेश हो सकेगा। यही भोग है। सारा भोग इसी से फैलता है। यह तादात्म्य, यह आइडेंटिटी, यह इस भौतिक शरीर से स्वयं को एक मान लेने की भ्रांति आपके जीवन का भोग है। फिर इससे सब भोग पैदा होते हैं। जिस आदमी ने अपने को भौतिक शरीर समझा, वह दूसरे भौतिक शरीर को भोगने को आतुर हो जाता है। इससे सारी कामवासना पैदा होती है। जिस व्यक्ति ने अपने को यह भौतिक शरीर समझा वह भोजन में बहुत रसातुर हो जाता है। क्योंकि यह शरीर भोजन से ही निर्मित होता है। जिस व्यक्ति ने इस शरीर को अपना शरीर समझा वह आदमी सब तरह की इंद्रियों के हाथ में पड़ जाता है। क्योंकि वे सब इंद्रियां इस शरीर के परिपोषण के मार्ग हैं।
पहला सूत्र, तप का--यह शरीर मैं नहीं हूं। इस तादात्म्य को तोड़ें। इस तादात्म्य को कैसे तोड़ेंगे, यह हम कल बात करेंगे। इस तादात्म्य को कैसे तोड़ेंगे? तो महावीर ने छह उपाय कहे हैं, वह हम बात करेंगे। लेकिन इस तादात्म्य को तोड़ना है, यह संकल्प अनिवार्य है। इस संकल्प के बिना गति नहीं है। और संकल्प से ही तादात्म्य टूट जाता है क्योंकि संकल्प से ही निर्मित है। यह जन्मों-जन्मों के संकल्प का ही परिणाम है कि मैं यह शरीर हूं।
आप चकित होंगे जान कर--आपने पुरानी कहानियां पढ़ी हैं, बच्चों की कहानियों में सब जगह उल्लेख है। अब नई कहानियों में बंद हो गया है क्योंकि कोई कारण नहीं मिलते थे। पुरानी कहानियां कहती हैं कि कोई सम्राट है, उसका प्राण किसी तोते में बंद है। अगर उस तोते को मार डालो तो सम्राट मर जाएगा। यह बच्चों के लिए ठीक है। हम समझते हैं कि ऐसा कैसे हो सकता है। लेकिन आप हैरान होंगे, यह संभव है। वैज्ञानिक रूप से संभव है। और यह कहानी नहीं है, इसके उपयोग किए जाते रहे हैं। अगर एक सम्राट को बचाना है मृत्यु से तो उसे गहरे सम्मोहन में ले जाकर यह भाव उसको जतलाना काफी है, बार-बार दोहराना उसके अंतर्तम में कि तेरा प्राण तेरे इस शरीर में नहीं, इस सामने बैठे तोते के शरीर में है। यह भरोसा उसका पक्का हो जाए, यह संकल्प गहरा हो जाए तो वह युद्ध के मैदान पर निर्भय चला जाएगा, और वह जानता है कि उसे कोई भी नहीं मार सकता। उसके प्राण तो तोते में बंद हैं। और जब वह जानता है कि उसे कोई नहीं मार सकता तो इस पृथ्वी पर मारने का उपाय नहीं, यह पक्का ख्याल। लेकिन अगर उस सम्राट के सामने आप उसके तोते की गर्दन मरोड़ दें तो वह उसी वक्त मर जाएगा। क्योंकि ख्याल ही सारा जीवन है, विचार जीवन है, संकल्प जीवन है।
सम्मोहन ने इस पर बहुत प्रयोग किए हैं और यह सिद्ध हो गया है कि यह बात
सच है। आपको कहा जाए सम्मोहित करके कि यह कागज आपके सामने रखा है, अगर हम इसे फाड़ देंगे तो आप बीमार पड़ जाओगे, बिस्तर से न उठ सकोगे। इससे आपको सम्मोहित कर दिया जाए, कोई तीस दिन लगेंगे, तीस सिटिंग लेने पड़ेंगे--तीस दिन पंद्रह-पंद्रह मिनट आपको बेहोश करके कहना पड़ेगा कि आपकी प्राण-ऊर्जा इस कागज में है। और जिस दिन हम इसको फाड़ेंगे, तुम बिस्तर पर पड़ जाओगे, उठ न

सकोगे। तीसवें दिन आपको होशपूर्वक आप बैठें, वह कागज फाड़ दिया जाए, आप वहीं गिर जाएंगे, लकवा खा गए। उठ नहीं सकेंगे।
क्या हुआ? संकल्प गहन हो गया। संकल्प ही सत्य बन जाता है। यह हमारा संकल्प है जन्मों-जन्मों का कि यह शरीर मैं हूं। यह संकल्प, वैसे ही जैसे कागज मैं हूं या तोता मैं हूं। इसमें कोई फर्क नहीं है। यह एक ही बात है। इस संकल्प को तोड़े बिना तप की यात्रा नहीं होगी। इस संकल्प के साथ भोग की यात्रा होगी। यह संकल्प हमने किया ही इसलिए है कि हम भोग की यात्रा कर सकें। अगर यह संकल्प हम न करें तो भोग की यात्रा नहीं हो सकेगी।
अगर मुझे यह पता हो कि यह शरीर मैं नहीं हूं तो इस हाथ में कुछ रस न रह गया कि इस हाथ से मैं किसी सुंदर शरीर को छुऊं। यह हाथ मैं हूं ही नहीं। यह तो ऐसा ही हुआ जैसा एक डंडा हाथ में ले लें और उस डंडे से किसी का शरीर छुऊं, तो कोई मजा न आए। क्योंकि डंडे से क्या मतलब है? हाथ से छूना चाहिए। लेकिन तपस्वी का हाथ भी डंडे की भांति हो जाता है। जैसे वह संकल्प को खींच लेता है भीतर कि यह हाथ मैं नहीं हूं, हाथ डंडा हो गया। अब इस हाथ से किसी का सुंदर चेहरा छुओ कि न छुओ, यह डंडे से छूने जैसा होगा। इसका कोई मूल्य न रहा। इसका कोई अर्थ न रहा। भोग की सीमा गिरनी और टूटनी और सिकुड़नी शुरू हो जाएगी।
भोग का सूत्र है--यह शरीर मैं हूं। तप का सूत्र है--यह शरीर मैं नहीं हूं। लेकिन भोग का सूत्र पाजिटिव है--यह शरीर मैं हूं। और अगर तप का इतना ही सूत्र है कि यह शरीर मैं नहीं हूं तो तप हार जाएगा, भोग जीत जाएगा। क्योंकि तप का सूत्र निगेटिव है। तप का सूत्र नकारात्मक है कि यह मैं नहीं हूं। नकार में आप खड़े नहीं हो सकते। शून्य में खड़े नहीं हो सकते। खड़े होने के लिए जगह चाहिए पाजिटिव। जब आप कहते हैं-"यह शरीर मैं हूं", तब कुछ पकड़ में आता है। जब आप कहते हैं--"यह शरीर मैं नहीं हूं", तब कुछ पकड़ में आता नहीं। इसलिए तप का दूसरा सूत्र है कि मैं ऊर्जा-शरीर हूं। यह आधा हुआ, पहला हुआ कि यह शरीर मैं नहीं हूं, तत्काल दूसरा सूत्र इसके पीछे खड़ा होना चाहिए कि मैं ऊर्जा-शरीर हूं, एनर्जी बॉडी हूं। प्राण-शरीर हूं। अगर यह दूसरा सूत्र खड़ा न हो तो आप सोचते रहेंगे कि यह शरीर मैं नहीं हूं और इसी शरीर में जीते रहेंगे। लोग रोज सुबह बैठकर कहते हैं कि यह शरीर मैं नहीं हूं, यह शरीर तो पदार्थ है। और दिनभर उनका व्यवहार, यही शरीर है। इतना काफी नहीं है। किसी पाजिटिव विल को, किसी विधायक संकल्प को नकारात्मक संकल्प से नहीं तोड़ा जा सकता। उससे भी ज्यादा विधायक संकल्प चाहिए। यह शरीर मैं नहीं हूं, यह ठीक है। लेकिन आधा ठीक है। मैं प्राण-शरीर हूं, इससे पूरा सत्य बनेगा।
तो दो काम करें। इस शरीर से तादात्म्य छोड़ें और प्राण-ऊर्जा के शरीर
से तादात्म्य स्थापित करें--बी आइडेंटिफाइड विद इट। मैं यह नहीं हूं और मैं यह हूं, और जोर पाजिटिव पर रहे। इम्फेसिस इस बात पर रहे कि मैं ऊर्जा- शरीर हूं। ऊर्जा-शरीर हूं, इस पर जोर रहे--तो मैं यह भौतिक शरीर नहीं हूं, यह उसका परिणाम मात्र होगा, छाया मात्रा होगा। अगर आपका जोर इस बात पर रहा कि यह शरीर मैं नहीं हूं तो गलती हो जाएगी। क्योंकि वह मैं जो शरीर हूं वह छाया नहीं बन सकता, वह मूल है। उसे मूल में रखना पड़ेगा। इसलिए मैंने आपको समझाया, क्योंकि समझाने में पहले यही समझाना जरूरी है कि यह शरीर मैं नहीं हूं। लेकिन जब आप संकल्प करें तो संकल्प पर जोर दूसरे सूत्र पर रहे, अर्थात दूसरा सूत्र संकल्प में पहला सूत्र रहे और पहला सूत्र संकल्प में दूसरा सूत्र रहे। जोर कि मैं ऊर्जा-शरीर हूं, इसलिए मैंने इतनी ऊर्जा शरीर की आपसे बात की कि ताकि आपके ख्याल में आ जाए और यह भौतिक शरीर मैं नहीं हूं, यह तप की भूमिका है। कल से हम तप के अंगों पर चर्चा करेंगे।
महावीर ने तप के दो रूप--आंतरिक तप, अंतर तप और बाह्य-तप कहे हैं। अंतर
तप में उन्होंने छह हिस्से किए हैं, छह सूत्र और बाह्य-तप में भी छह हिस्से किए हैं। कल हम बाह्य-तप से बात शुरू करेंगे। फिर अंतर तप से। और अगर तप की प्रक्रिया ख्याल में आ जाए, संकल्प में चली जाए तो जीवन उस यात्रा पर निकल जाता है जिस यात्रा पर निकले बिना अमृत को कोई अनुभव नहीं है। हम जहां हैं वहां बार-बार मृत्यु का ही अनुभव होगा। क्योंकि जो हम नहीं हैं उससे हमने

अपने को जोड़ रखा है। हम बार-बार टूटेंगे, मिटेंगे, नष्ट होंगे और जितना टूटेंगे, जितना मिटेंगे उतना ही उसी से अपने को बार-बार जोड़ते चले जाएंगे जो हम नहीं हैं। जो मैं नहीं हूं, उससे अपने को जोड़ना, मृत्यु के द्वार खोलना है, जो मैं हूं उससे अपने को जोड़ना, अमृत के द्वार खोलना है।
तप अमृत के द्वार की सीढ़ी है। बारह सीढ़ियां हैं। कल से हम उनकी बात शुरू करेंगे।

आज के लिए इतना ही।
बैठेंगे पांच मिनट, ध्वनि करेंगे संन्यासी, उसमें सम्मिलित हों... ।

महावीर-वाणी, भाग 1
दसवां प्रवचन

अनशनः मध्य के क्षण का अनुभव (धम्म-सूत्र)

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मे सया मणो।।

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

महावीर ने तप को दो रूपों में विभाजित किया है। इसलिए नहीं कि तप दो रूपों में विभाजित हो सकता है, बल्कि इसलिए कि हम उसे बिना विभाजित किए नहीं समझ सकते हैं। हम जहां खड़े हैं, हमारी समस्त यात्रा वहीं से प्रारंभ होगी। और हम अपने बाहर खड़े हैं। हम वहां खड़े हैं जहां हमें नहीं होना चाहिए; हम वहां नहीं खड़े हैं जहां हमें होना चाहिए। हम अपने को ही छोड़ कर, अपने से ही च्युत होकर, अपने से ही दूर खड़े हैं। हम दूसरों से अजनबी हैं-- ऐसा नहीं, हम अपने से अजनबी हैं--स्टेंजर्स टु अवरसेल्वस। दूसरों का तो शायद हमें थोड़ा बहुत पता भी हो, अपना उतना भी पता नहीं है। तप तो विभाजित नहीं हो सकता। लेकिन हम विभाजित मनुष्य हैं। हम अपने से ही विभाजित हो गए हैं, इसलिए हमारी समझ के बाहर होगा अविभाज्य तप।
महावीर उसे दो हिस्सों में बांटते हैं, हमारे कारण। इस बात को ठीक से पहले समझ लें। हमारे कारण ही दो हिस्सों में बांटते हैं, अन्यथा महावीर जैसी चेतना को बाहर और भीतर का कोई अंतर नहीं रह जाता। जहां तक अंतर है वहां तक तो महावीर जैसी चेतना का जन्म नहीं होता। जहां भेद है, जहां फासले हैं, जहां खंड हैं, वहां तक तो महावीर की अखंड चेतना जन्मती नहीं। महावीर तो वहां हैं जहां सब अखंड हो जाता है। जहां बाहर भीतर का ही एक छोर हो जाता है और जहां भीतर भी बाहर का ही एक छोर हो जाता है। जहां भीतर और बाहर एक ही लहर के दो अंग हो जाते हैं; जहां भीतर और बाहर दो वस्तुएं नहीं, किसी एक ही वस्तु के दो पहलू हो जाते हैं, इसलिए यह विभाजन हमारे लिए हैं।
महावीर ने बाह्य तप और अंतर तप, दो हिस्से किए हैं। उचित होता, ठीक होता कि अंतर तप को महावीर पहले रखते, क्योंकि अंतर ही पहले है। वह जो आंतरिक है, वही प्राथमिक है। लेकिन महा वीर ने अंतर तप को पहले नहीं रखा है, पहले रखा है बाह्य तप को। क्योंकि महावीर दो ढंग से बोल सकते हैं, और इस पृथ्वी पर दो ढंग से बोलने वाले लोग हुए हैं। एक वे लोग जो वहां से बोलते हैं जहां वे खड़े हैं। एक वे लोग जो वहां से बोलते हैं जहां सुनने वाला खड़ा है। महावीर की करुणा उन्हें कहती है कि वे वहीं से बोलें जहां सुनने वाला खड़ा है। महावीर के लिए आंतरिक प्रथम हैं, लेकिन सुनने वाले के लिए आंतरिक द्वितीय है, बाह्य प्रथम है।
तो महावीर जब बाह्य तप को पहला रखते हैं तो केवल इस कारण कि हम बाहर हैं। इससे सुविधा तो होती है समझने में, लेकिन आचरण करने में असुविधा भी हो जाती है। सभी सुविधाओं के साथ जुड़ी हुई असुविधाएं हैं। महावीर ने चूंकि बाह्य-तप को पहले रखा है, इसलिए महावीर के अनुयायियों ने बाह्य तप को प्राथमिक समझा वहां भूल हुई है। और तब बाह्य-तप को करने में ही लगे रहने की लंबी धारा चली। और आज करीब-करीब स्थिति ऐसी आ गई है कि बाह्य-तप ही पूरा नहीं हो पाता तो आंतरिक तप तक जाने का सवाल नहीं उठता। बाह्य-तप ही जीवन को डुबा लेता है। और बाह्य तप कभी पूरा नहीं होगा जब तक कि आंतरिक तप पूरा न हो। इसे भी ध्यान में ले लें।
अंतर और बाह्य एक ही चीज है। इसलिए कोई सोचता हो कि बाह्य-तप पहले पूरा हो जाए तब मैं अंतर-तप में प्रवेश करूंगा, तो बाह्य-तप कभी पूरा नहीं होगा। क्योंकि बाह्य-तप स्वयं आधा हिस्सा है, वह पूरा नहीं हो सकता। जैन

साधना जहां भटक गई वह यही जगह है, बाह्य-तप पहले पूरा हो जाए तो फिर आंतरिक तप में उतरेंगे। बाह्य-तप कभी पूरा नहीं हो सकता, क्योंकि बाह्य जो है वह अधूरा ही है। वह तो पूरा तभी होगा जब आंतरिक तप भी पूरा हो। इसका यह अर्थ हुआ कि अगर ये दोनों तप साथ-साथ चलें तो ही पूरा हो पाते हैं, अन्यथा पूरा नहीं हो पाते हैं। लेकिन विभाजन ने हमें ऐसा समझा दिया कि पहले हम बाहर को तो पूरा कर लें, हम बाहर को तो साध लें, फिर हम भीतर की यात्रा करेंगे। अभी जब बाहर का ही नहीं सध रहा है तो भीतर की यात्रा कैसे हो सकती है। ध्यान रहे, तप एक ही है। बाह्य और भीतर सिर्फ कामचलाऊ विभाजन हैं।
अगर कोई अपने पैरों को स्वस्थ करना चाहे और सोचे कि पहले पैर स्वस्थ
हो जाएं, फिर सिर स्वस्थ कर लेंगे, तो वह गलती में है। शरीर एक है, और शरीर का स्वास्थ्य पूरा होता है। अभी तक वैज्ञानिक सोचते थे कि शरीर के अंग बीमार पड़ते हैं, लोकल होती है बीमारी--हाथ बीमार होता है, पैर बीमार होता है। लेकिन अब धारणा बदलती चली जा रही है। अब वैज्ञानिक कहते हैं--जब एक अंग बीमार होता है तो वह इसलिए बीमार होता है कि पूरा व्यक्ति बीमार हो गया होता है। हां, एक अंग से बीमारी प्रकट होती है लेकिन वह एक अंग की नहीं होती। मनुष्य का पूरा व्यक्तित्व ही बीमार हो जाता है। यद्यपि बीमारी उस अंग से प्रकट होती है जो सर्वाधिक कमजोर है। लेकिन व्यक्तित्व पूरा बीमार हो जाता है।
इसलिए हैपोक्रेटीज ने, जिसने कि पश्चिम में चिकित्सा को जन्म दिया, उसने कहा था--ट्रीट दि डिसी.ज, बीमारी का इलाज करो। लेकिन अभी पश्चिम के अनेक मेडिकल कालेजस में वह तख्ती हटा दी गई है और वहां लिखा हुआ है--ट्रीट दि पेशेंट। बीमारी का इलाज मत करो, बीमार का इलाज करो, क्योंकि बीमारी लोकलाइज्ड होती है, बीमार तो फैला हुआ होता है। असली सवाल नहीं है बीमारी, असली सवाल है बीमार, पूरा व्यक्तित्व।
अंतर और बाह्य पूरे व्यक्तित्व के हिस्से हैं। इन्हें साइमलटेनियसली, युगपत प्रारंभ करना पड़ेगा। विवेचन जब हम करेंगे तो विवेचन हमेशा वन डायमेंशनल होता है। मैं पहले एक अंग की बात करूंगा, फिर दूसरे की, फिर तीसरे की, फिर चौथे की। स्वभावतः चारों अंगों की बात एक साथ कैसे की जा सकती है। भाषा वन डायमेंशनल है। एक रेखा में मुझे बात करनी पड़ेगी। पहले मैं आपके सिर की बात करूंगा, फिर आपके हृदय की बात करूंगा, फिर आपके पैर की बात करूंगा। तीनों की बात एक साथ नहीं कर सकता हूं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि तीनों एक साथ नहीं हैं। वह तीनों एक साथ हैं--आपका सिर, आपका हृदय, आपके पैर; वह सब युगपत, एक साथ हैं; अलग-अलग नहीं हैं। चर्चा करने में बांट लेना पड़ता है लेकिन अस्तित्व में वे इकट्ठे हैं।
तो यह जो चर्चा मैं करूंगा बारह हिस्सों की--छह बाह्य और छह आंतरिक, चर्चा के लिए क्रम होगा--एक दो तीन चार; लेकिन जिन्हें साधना है, उनके लिए क्रम नहीं होगा। एक साथ उन्हें साधना होगा, तभी पूर्णता उपलब्ध होती है, अन्यथा पूर्णता उपलब्ध नहीं होती। भाषा से बड़ी भूलें पैदा होती हैं, क्योंकि भाषा के पास एक साथ बोलने का कोई उपाय नहीं है।
मैं यहां हूं; अगर मैं बाहर जाकर ब्योरा दूं कि मेरे सामने की पंक्ति में कितने लोग बैठे थे तो मैं पहले, पहले का नाम लूंगा, फिर दूसरे का, फिर तीसरे का, फिर चौथे का। मेरे बोलने में क्रम होगा। लेकिन यहां जो लोग बैठे हैं उनके बैठने में क्रम नहीं है, वे एक साथ ही यहां मौजूद हैं। अस्तित्व इकट्ठा है, एक साथ है। भाषा क्रम बना देती है। उसमें कोई आगे हो जाता है, कोई पीछे हो जाता है। लेकिन अस्तित्व में कोई आगे पीछे नहीं होता है। इतनी बात ख्याल में ले लें, फिर हम महावीर के बाह्य तप से शुरू करें।
बाह्य-तप में महावीर ने पहला तप कहा है--अनशन। अनशन के संबंध में जो भी समझा जाता है वह गलत है। अनशन के संबंध में जो छिपा हुआ सूत्र है, जो एसोटेरिक है वह मैं आपसे कहना चाहता हूं। उसके बिना अनशन का कोई अर्थ नहीं है। जो गुह्य अनशन की प्रक्रिया है वह मैं आपसे कहना चाहता हूं, उसे समझ कर आपको नई दिशा का बोध होगा।
मनुष्य के शरीर में दोहरे यंत्र हैं, डबल मैकेनिज्म हैं और दोहरा यंत्र इसलिए है ताकि इमर्जेंसी में, संकट के किसी क्षण में एक यंत्र काम न

करे तो दूसरा कर सके। एक यंत्र तो जिससे हम परिचित हैं, हमारा शरीर। आप भोजन करते हैं, शरीर भोजन को पचाता है, खून बनाता है, हड्डियां बनाता है, मांस-मज्जा बनाता है। ये साधारण यंत्र हैं। लेकिन कभी कोई आदमी जंगल में भटक जाए या सागर में नाव डूब जाए और कई दिनों तक किनारा न मिले तो भोजन नहीं मिलेगा। तब शरीर के पास एक इमर्जेंसी अरेंजमेंट है, एक संकटकालीन व्यवस्था है, तब शरीर को भोजन तो नहीं मिलेगा लेकिन भोजन की जरूरत तो जारी रहेगी। क्योंकि श्वास भी लेना हो, हाथ भी हिलाना हो, जीना भी हो तो भोजन की जरूरत है। ईंधन की जरूरत है। आपको ईंधन न मिले तो आपके शरीर के पास एक ऐसी व्यवस्था चाहिए जो संकट की घड़ी में आपके शरीर के भीतर इकट्ठा जो ईंधन है उसको ही उपयोग में लाने लगे। शरीर के पास एक दूसरा इनर-मैकेनिज्म है। अगर आप सात दिन भूखे रहें तो शरीर अपने को ही पचाना शुरू कर देता है। भोजन आपको नहीं ले जाना पड़ता, आपके भीतर की चर्बी ही भोजन बननी शुरू हो जाती है। इसलिए उपवास में आपका एक पौंड वजन रोज गिरता चला जाएगा। वह एक पौंड आपकी ही चर्बी, आप पचा गए। कोई नब्बे दिन तक साधारण स्वस्थ आदमी मरेगा नहीं क्योंकि इतना रिजर्वायर, इतना संगृहीत तत्व शरीर के पास है कि कम से कम तीन महीने तक वह अपने को बिना भोजन के जिला सकता है। ये दो हिस्से हैं शरीर के--एक शरीर की व्यवस्था सामान्य है, दैनंदिन है। असमय के लिए, संकट की घड़ी के लिए एक और व्यवस्था है, जब शरीर बाहर से भोजन न पा सके तो अपने भीतर संगृहीत भोजन को पचाना शुरू कर दे।
अनशन की प्रक्रिया का राज यह है कि जब शरीर की एक व्यवस्था से दूसरी व्यवस्था पर संक्रमण होता है, आप बदलते हैं तब बीच में कुछ क्षणों के लिए आप वहां पहुंच जाते हैं जहां शरीर नहीं होता। वही उसका सीक्रेट है। जब भी आप एक चीज से दूसरे पर बदलाहट करते हैं, एक सीढ़ी से दूसरी सीढ़ी पर जाते हैं तो एक क्षण ऐसा होता है जब आप किसी भी सीढ़ी पर नहीं होते हैं। जब आप एक स्थिति से दूसरी स्थिति में छलांग लगाते हैं तो बीच में एक गैप, अंतराल हो जाता है जब आप किसी भी स्थिति में नहीं होते हैं, फिर भी होते हैं।
शरीर की एक व्यवस्था है सामान्य भोजन की, अगर यह व्यवस्था बंद कर दी जाए तो अचानक आपको दूसरी व्यवस्था पर रूपांतरित होना पड़ता है, और इस बीच कुछ क्षण हैं जब आप आत्म-स्थिति में होते हैं। उन्हीं क्षणों को पकड़ना अनशन का उपयोग है। इसलिए जो आदमी अनशन का अभ्यास करेगा वह अनशन का फायदा न उठा पाएगा। ख्याल रखें, जो अनशन का अभ्यास करेगा वह अनशन का फायदा न उठा पाएगा। अनशन सडन प्रयोग है, आकस्मिक, अचानक। जितना अचानक होगा, जितना आकस्मिक होगा, उतना ही अंतराल का बोध होगा। अगर आप अभ्यासी हैं तो आप इतने कुशल हो जाएंगे, एक स्थिति से दूसरी स्थिति में जाने में, कि बीच का अंतराल आपको पता ही नहीं चलेगा। इसलिए अभ्यासियों को अनशन से कोई लाभ नहीं होता। और अभ्यास करने की जो प्रक्रिया है वह यही है कि आपको बीच का अंतराल पता न चले। एक आदमी धीरे-धीरे अभ्यास करता रहे तो वह इतना कुशल हो जाता है कि कब उसने स्थिति बदल ली, उसे पता नहीं चलता। हम रोज स्थिति बदलते हैं लेकिन अभ्यास के कारण पता नहीं चलता।
रात आप सोते हैं--जागने के लिए शरीर दूसरे मैकेनिज्म का उपयोग करता है, सोने के लिए दूसरे। दोनों के मैकेनिज्म अलग हैं, दोनों का यंत्र अलग है। आप उसी यंत्र से नहीं जागते जिससे आप सोते हैं। इसीलिए तो अगर आपके जागने का यंत्र बहुत ज्यादा सक्रिय हो तो आप सो नहीं पाते। उसका और कोई कारण नहीं है, आप दूसरी व्यवस्था में प्रवेश नहीं कर पाते। पहली ही व्यवस्था में अटके रह जाते हैं। अगर आप दुकान, धंधे और काम की बात सोचे चले जा रहे हैं तो आपके जागने का यंत्र काम करता चला जाता है, जब तक वह काम करता है तब तक चेतना उससे नहीं हट सकती। चेतना तभी हटेगी, जब वहां आपका काम बंद हो जाए तो तत्काल शिफ्ट हो जाएगी। चेतना दूसरे यंत्र पर चली जाएगी, जो निद्रा का है। लेकिन हमें इतना अभ्यास है कि हमें पता नहीं चलता बीच के गैप का। वह जो जागने और नींद के बीच में जो क्षण आता है वह भी वही है जो भोजन छोड़ने और उपवास के बीच में आता है। इसलिए तो आपको नींद में भोजन की जरूरत नहीं पड़ती। आप दस घंटे सोए रहें तो भी भोजन की जरूरत नहीं पड़ती है। दस घण्टे जागें तो भोजन की जरूरत पड़ती है।

आपको पता है, ध्रुव प्रदेश में पोलर बियर होता है, भालू होता है साइबेरिया में। छह महीने जब बर्फ भयंकर रूप से पड़ती है तो कोई भोजन नहीं मिलता। वह सो जाता है। बर्फ के नीचे दब कर सो जाता है। वह उसकी ट्रिक है, वह उसकी तरकीब है। क्योंकि नींद में तो भूख नहीं लगती। वह छह महीने सोया रहता है। छह महीने के बाद वह तभी जगता है जब भोजन फिर मिलने की सुविधा शुरू हो जाती है। आपके भीतर जो निद्रा का यंत्र है वहां आपको भोजन की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि वह यंत्र वही यंत्र है जो उपवास में प्रकट होता है। वह आपका इमर्जेंसी मेजरमेंट है, खतरे की स्थिति में उसका उपयोग करना होता है। इसलिए आप जान कर हैरान होंगे कि अगर बहुत खतरा पैदा हो जाए तो आदमी नींद में चला जाता है। यह आप जान कर हैरान होंगे, अगर इतना खतरा पैदा हो जाए कि आप अपने मस्तिष्क से उसका मुकाबला न कर सकें तो आप नींद में चले जाएंगे। आप बेहोश हो जाते हैं, बहुत दुख हो जाए, तो। उसका और कोई कारण नहीं है, इतना दुख हो जाता है कि आपका जाग्रत मस्तिष्क उसको सहने में असमर्थ है तो तत्काल शिफ्ट हो जाता है और गहरी तंद्रा में चला जाता है, बेहोश हो जाता है। बेहोशी दुख से बचने का उपाय है।
हम अक्सर कहते हैं--मुझे बड़ा असह्य दुख है। लेकिन ध्यान रहे, असह्य दुख कभी नहीं होता। असह्य होने के पहले आप बेहोश हो जाते हैं। जब तक सहनीय होता है तभी तक आप होश में आते हैं। जैसे ही असहनीय हो जाता है, आप बेहोश हो जाते हैं। इसलिए असह्य दुख को कोई आदमी कभी नहीं भोग पाता। भोग ही नहीं सकता। इंतजाम ऐसा है कि असह्य दुख होने के पहले आप बेहोश हो जाएं। इसलिए मरने के पहले अधिक लोग बेहोश हो जाते हैं। क्योंकि मरने के पहले जिस यंत्र से आप जी रहे थे, उसकी अब कोई जरूरत नहीं रह जाती। चेतना शिफ्ट हो जाती है उस यंत्र पर, जो इस यंत्र के पीछे छिपा है। मरने से पहले आप दूसरे यंत्र पर उतर जाते हैं।
मनुष्य के शरीर में दोहरा शरीर है। एक शरीर है जो दैनंदिन काम का है-- जागने का, उठने का, बैठने का, बात करने का, सोचने का, व्यवहार का; एक और यंत्र है छिपा हुआ भीतर गुह्य, जो संकटकालीन है। अनशन का प्रयोग उस संकटकालीन यंत्र में प्रवेश का है। इस तरह के बहुत से प्रयोग हैं जिनसे मध्य का गैप, मध्य का जो अंतराल है वह उपलब्ध होता है। सूफियों ने अनशन का उपयोग नहीं किया, सूफियों ने जागने का उपयोग किया है। एक ही बात है, उसमें फर्क नहीं है। प्रयोग अलग हैं, परिणाम एक हैं।
सूफियों ने रात में जागने का प्रयोग किया है--सोओ मत, जागे रहो। इतने जागे रहो, जब नींद पकड़े तो मत नींद में जाओ, जागे ही रहो, जागे ही रहो, जागे ही रहो। अगर जागने की चेष्टा जारी रही, और जागने का यंत्र थक गया और बंद हो गया और एक क्षण को भी आप उस हालत में रह गए जब जागना भी न रहा और नींद भी न रही, तो आप बीच के अंतराल में उतर जाएंगे। इसलिए सूफियों ने नाइट विजिलेंस को, रात्रि-जागरण को बड़ा मूल्य दिया। महा वीर ने उसी प्रयोग को अनशन के द्वारा किया है। वही प्रयोग है।
तंत्र का एक अदभुत ग्रंथ है, विज्ञान भैरव। उसमें शंकर ने पार्वती को ऐसे सैकड़ों प्रयोग कहे हैं। हर प्रयोग दो पंक्तियों का है। हर प्रयोग का परिणाम वही है कि बीच का गैप आ जाए। शंकर कहते हैं--श्वास भीतर जाती है; श्वास बाहर जाती है पार्वती, तू दोनों के बीच में ठहर जाना तो तू स्वयं को जान लेगी। जब श्वास बाहर भी न जा रही हो और भीतर भी न आ रही हो, तब तू ठहर जाना, बीच में, दोनों के। किसी से प्रेम होता है, किसी से घृणा होती है, वहां ठहर जाना जब प्रेम भी न होता और घृणा भी नहीं होती; दोनों के बीच में ठहर जाना। तू स्वयं को उपलब्ध हो जाएगी। दुख होता है, सुख होता है; तू वहां ठहर जाना जहां न दुख है, न सुख; बीच में, मध्य में और तू ज्ञान को उपलब्ध हो जाएगी।
अनशन उसी का एक व्यवस्थित प्रयोग है। और महावीर ने अनशन क्यों चुना? मैं मानता हूं दो श्वासों के बीच में ठहरना बहुत कठिन मामला है। क्योंकि श्वास जो है वह नॉन-वालेंटरी है, वह आपकी इच्छा से नहीं चलती, वह आपकी बिना इच्छा के चलती रहती है। आपकी कोई जरूरत नहीं होती है उसके लिए। आप रात सोए रहते हैं, तब भी चलती रहती है, भोजन नहीं चल सकता सोने में। भोजन वालेंटरी

है। आप की इच्छा से रुक भी सकता है, चल भी सकता है। आप ज्यादा भी कर सकते हैं, कम भी कर सकते हैं। आप भूखे भी रह सकते हैं तीस दिन, लेकिन बिना श्वास के नहीं रह सकते हैं। श्वास के बिना तो थोड़े से क्षण भी रह जाना मुश्किल हो जाएगा और बिना श्वास के अगर थोड़े से क्षण भी रहे तो इतने बेचैन हो जाएंगे कि उस बेचैनी में वह जो बीच का गैप है, वह दिखाई नहीं पड़ेगा, बेचैनी ही रह जाएगी। इसलिए महावीर ने श्वास का प्रयोग नहीं कहा। महावीर ने एक वालेंटरी हिस्सा चुना, भोजन वालेंटरी हिस्सा है। नींद भी सूफियों ने जो चुना है वह भी थोड़ी कठिन है क्योंकि नींद भी नॉन-वालेंटरी है, आप अपनी कोशिश से नहीं ला सकते। आती है तब आ जाती है। नहीं आती तो लाख उपाय करो, नहीं आती। नींद भी आपके वश में नहीं है। नींद भी आपके बाहर है, बहुत कठिन है नींद पर वश करना। महावीर ने बहुत सरल सा प्रयोग चुना, जिसे बहुत लोग कर सकें--भोजन। एक
तो सुविधा यह है कि नब्बे दिन तक न भी करें तो कोई खतरा नहीं है। अगर नब्बे दिन तक बिना सोए रह जाएं तो पागल हो जाएंगे। नब्बे दिन तो बहुत दूर है, नौ दिन भी अगर बिना सोए रह जाएं तो पागल हो जाएंगे। सब ब्लर्ड हो जाएगा। पता नहीं चलेगा कि जो देख रहे हैं वह सपना है या सच है। अगर नौ दिन आप न सोएं तो इस हाल में जो लोग बैठे हैं वह सच में बैठे हैं कि आप कोई सपना देख रहे हैं, आप फर्क न कर पाएंगे। ब्लर्ड हो जाएगा। नींद और जागरण ऐसा कंफ्यूज्ड हो जाएगा कि कुछ पक्का न रहेगा कि क्या हो रहा है। आप जो सुन रहे हैं वह वस्तुतः बोला जा रहा है, या सिर्फ आप सुन रहे हैं, यह तय करना मुश्किल हो जाएगा। और खतरनाक भी है। क्योंकि विक्षिप्त होने का पूरा डर है।
आज माओ के अनुयायी चीन में जो सबसे बड़ी पीड़ा दे रहे हैं अपने से विरोधियों को, वह, उनको न सोने देने की है। भूखा मार कर आप ज्यादा परेशान नहीं कर सकते क्योंकि सात आठ दिन के बाद भूख बंद हो जाती है। शरीर दूसरे यंत्र पर चला जाता है। सात आठ दिन के बाद भूख नहीं लगती, भूख समाप्त हो जाती है। क्योंकि शरीर नये ढंग से भोजन पाना शुरू कर देता है, भीतर से भोजन पाना शुरू कर देता है। लेकिन नींद? बहुत मुश्किल मामला है। सात दिन भी अगर आदमी को बिना सोए रख दिया जाए तो वह विक्षिप्त हो जाता है। और वल्नरेबल हो जाता है। सात दिन अगर किसी को न सोने दिया जाए तो उसकी बुद्धि इतनी ज्यादा डावांडोल हो जाती है कि उससे फिर आप कुछ भी कहें, वह मानना शुरू कर देता है। इसलिए सात या नौ दिन चीन में विरोधी को बिना सोया रखेंगे और फिर कम्युनिज्म का प्रचार उसके सामने किया जाएगा। कम्युनिज्म की किताब पढ़ी जाएगी, माओ का संदेश सुनाया जाएगा। और जब वह इस हालत में नहीं होता कि रेसिस्ट कर सके कि तुम जो कह रहे हो, वह गलत है; तर्क टूट जाता है। नींद के विकृत होने के साथ ही तर्क टूट जाता है। अब उसको मानना ही पड़ेगा, जो आप कह रहे हैं; ठीक कह रहे हैं।
नींद का प्रयोग महावीर ने नहीं किया, अनशन का प्रयोग किया। मनुष्य के हाथ में जो सर्वाधिक सुविधापूर्ण, सरलतम प्रयोग है--दो यंत्रों के बीच में ठहर जाने का, वह भोजन है। लेकिन आप अगर अभ्यास कर लें तो अर्थ नहीं रह जाएगा। ये प्रयोग आकस्मिक हैं--अचानक।
आपने भोजन नहीं लिया है, और जब आपने भोजन नहीं लिया है तब ध्यान रखें न
तो भोजन का, न उपवास का--ध्यान रखें उस मध्य के बिंदु का कि वह कब आता है। आंख बंद कर लें और अब भीतर ध्यान रखें कि शरीर का यंत्र कब स्थिति बदलता है। तीन दिन में, चार दिन में, पांच दिन में, सात दिन में, कभी स्थिति बदली जाएगी। और जब स्थिति बदलती है तब आप बिल्कुल दूसरे लोक में प्रवेश करते हैं। आपको पहली दफे पता चलता है कि आप शरीर नहीं हैं--न तो वह शरीर जो अब तक काम कर रहा था और न यह शरीर जो अब काम कर रहा है। दोनों के बीच में एक क्षण का बोध भी कि मैं शरीर नहीं हूं, मनुष्य के जीवन में अमृत का द्वार खोल देता है।
लेकिन महावीर के पीछे जो परंपरा चल रही है वह अनशन का अभ्यास कर रही है। अभ्यासी है, वर्ष-वर्ष अभ्यास कर रहे हैं, जीवन भर अभ्यास कर रहे हैं। वे इतने अभ्यासी हो गए हैं--जितने अभ्यासी, उतने अंधे। अब उनको कुछ दिखाई नहीं पड़ेगा। जैसे आप अपने घर जिस रास्ते पर रोज-रोज आते हैं उस रास्ते पर आप अंधे होकर चलने लगते हैं, फिर आपको उस रास्ते पर कुछ दिखाई नहीं पड़ता।

लेकिन जब कोई आदमी पहली दफा उस रास्ते पर आता है उसे सब दिखाई पड़ता है। अगर आप कश्मीर जाएंगे तो डल झील पर आपको जितना दिखाई पड़ता है वह जो मांझी आपको घुमा रहा है, उसको दिखाई नहीं पड़ता। वह अंधा हो जाता है।
अभ्यास अंधा कर देता है। इसे थोड़ा समझ लें। वह इतनी बार देख चुका है
कि देखने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। वह बिना देखे चलाता रहता है। इसलिए जिनके साथ हम रहते हैं उनके चेहरे हमें दिखाई नहीं पड़ते--जिनके साथ हम रहते हैं उनके चेहरे हमें दिखाई नहीं पड़ते। अगर ट्रेन में आपको कोई अजनबी मिल गया है तो उसका चेहरा आपको अभी भी याद हो सकता है। लेकिन अपनी मां का या अपने पिता का चेहरा आप आंख बंद करके याद करेंगे तो ब्लर्ड हो जाएगा, याद नहीं आएगा। न याद करें तो आपको लगेगा कि मुझे मालूम है कि मेरे पिता का चेहरा कैसा है। आंख बंद करें और याद करें तो आप पाएंगे कि खो गया। नहीं मिलता कैसा है। पिता का चेहरा फिर भी दूर है, आप अपना चेहरा तो रोज आईने में देखते हैं। आंख बंद करें और याद करें, खो जाएगा। नहीं मिलेगा। आप अंधे की तरह आईने के सामने देख लेते हैं। अभ्यास पक्का है।
अभ्यास अंधा कर देता है। और जो सूक्ष्म चीजें हैं वे दिखाई नहीं पड़तीं। और यह बहुत सूक्ष्म बिंदु है। भोजन और अनशन के बीच का जो संक्रमण है, ट्रांसमिशन है, वह बहुत सूक्ष्म और बारीक है, बहुत डेलिकेट है, बहुत नाजुक है। जरा से अभ्यास से आप उसको चूक जाएंगे, वह आपको ख्याल में नहीं आएगा। इसलिए अनशन का भूल कर अभ्यास न करें। कभी अचानक उसका उपयोग बड़ा कीमती है, बड़ा अदभुत है। जैसे अचानक आप यहां सोए थे, इस कमरे में, और आपकी नींद खुले, और आप पाएं, आप डल झील पर हैं तो आपकी मौजूदगी जितनी सघन होगी इतनी आप यहां से यात्रा करके डल झील पर जाएं तो नहीं होगी। आप अचानक आंख खोलें और पाएं तो आप घबड़ा जाएंगे, चौक जाएंगे कि मैं कहां सोया था और कहां हूं, यह क्या हो गया। आप इतने कांशस होंगे, इतने सचेत होंगे, जिसका कोई हिसाब नहीं।
गुरजिएफ के पास जो लोग जाते थे साधना के लिए--यह आदमी इस पचास वर्षों में बहुत कीमती आदमी था--तो गुरजिएफ यही काम करता था, लेकिन बिल्कुल उलटे ढंग से। और कोई जैन न सोच सकेगा कि गुरजिएफ और महावीर के बीच कोई भी नाता हो सकता है। आप और गुरजिएफ के पास जाते तो पहले तो वह आपको बहुत ज्यादा खाना खिलाना शुरू करता, इतना कि आपको लगे कि मैं मर जाऊंगा। इतना खाना खिलाना शुरू करता कि आपको लगे, मैं मर जाऊंगा। वह जिद्द करता था। कई लोग तो इसलिए भाग जाते थे कि उतना खाना खाने के लिए राजी नहीं हो सकते थे। रात दो बजे तक वह खाना खिलाता। वह इतना आग्रह करता--और गुरजिएफ जैसा आदमी आपसे आग्रह करे, या महावीर आपके सामने थाली में रखते चले जाएं कुछ, तो आपको इनकार करना भी मुश्किल होगा। और गुरजिएफ था कि कहता कि और, कि और--खिलाते ही चला जाता। वह इतना ओव्हरफ्लो हो जाए भोजन, वह दस पांच दिन आपको इतना खिलाता है कि आप खिलाने के, खाने की व्यवस्था से इस बुरी तरह अरुचिकर हो जाता। ध्यान रहे, अनशन भोजन में रुचि पैदा कर सकता है। अत्यधिक भोजन अरुचि पैदा कर देता है। वह इतना खिलाता, इतना खिलाता कि आप घबरा जाते, भागने को हो जाते। कहते कि मर जाएंगे, यह क्या कर रहे हैं आप। पेट ही पेट का स्मरण रहता है चौबीस घंटे। तब अचानक वह आपका अनशन करवा देता है। तब गैप बड़ा हो जाता है। बहुत ज्यादा खाने से एकदम न खाने पर धक्का दे देता। तो वह जो बीच की जगह थोड़ी बड़ी हो जाती, क्योंकि एकदम बहुत खाना एक अति से एकदम दूसरी अति पर धक्का दे देता। दस दिन इतना खिलाया कि आप रो रहे थे, आप हाथ-पैर जोड़ रहे थे, कि अब और न खिलाएं। ग्यारहवें दिन सुबह उसने कहा कि खाना बंद--गैप को बड़ा किया उसने। उस खाना बंद करने में आपको अभी तक भोजन का स्मरण था, अब भोजन एकदम बंद।
गुरजिएफ गर्म पानी में नहलाता, इतना कि आपको जलने लगे, और फिर ठंडे फव्वारे के नीचे खड़ा कर देता और कहता--हमारे कारण, बी अवेयर ऑफ द गैप। वह जो गर्म पानी में शरीर तप्त हो गया, हमारे कारण पसीना-पसीना हो गया, फिर एकदम ठंडे पानी में डाल दिया बर्फीले। अक्सर वह ऐसा करता है कि आग की अंगीठियां जला कर बिठा देता, बाहर बर्फ पड़ रही, पसीना-पसीना हो जाते हैं, आप चिल्लाने लगते हैं कि मर जाऊंगा, जल जाऊंगा, मुझे बाहर निकालो, मगर वह न मानता।

अचानक वह दरवाजा खोलता और कहता--भागो, सामने की झील में बर्फीले में कूद जाओ, और कहता, बीच में जो संक्रमण का क्षण है, उसका ध्यान रखना, और न मालूम कितने लोगों को वह गैप दिखाई पड़ा। दिखाई पड़ेगा।
महावीर के अनशन में भी वही प्रयोग है। मध्य का बिंदु ख्याल में आ जाए
तो जब एक शरीर से दूसरे शरीर पर बदलते हैं, बदलाहट करते हैं--जैसे एक नाव से कोई दूसरी नाव पर बदलाहट कर रहा हो, एक क्षण तो दोनों नाव छूट जाती हैं, एक क्षण तो वह बीच में होता है, छलांग लगाई, अभी पहली नाव से हट गया और दूसरी नाव में नहीं पहुंचा--अभी झील के ऊपर है--ठीक वैसी ही छलांग भीतर अनशन में लगती है। और इस छलांग के क्षण में अगर आप होश से भर जाएं, जाग्रत होकर देख लें तो आपको पहली बार एक क्षण भर के लिए एक जरा सा अनुभव, एक दृष्टि, एक द्वार खुलता हुआ मालूम पड़ेगा। वही अनशन का उपयोग है। लेकिन जैन साधु है, वह अनशन का अभ्यास कर लेता है, उसे वह कभी नहीं मिलेगा। वह अभ्यास की बात नहीं है। वह आकस्मिक प्रयोग है। अभ्यास तो उसी बात को मार डालेगा जिस बात के लिए प्रयोग है। इसलिए भूल कर अनशन का अभ्यास मत करना। आकस्मिक, अचानक, छलांग लगा लेना एक अति से दूसरी अति पर ताकि बीच का हिस्सा ख्याल में आ जाए।
अगर आपको विश्राम में जाना हो तो किताबें हैं जो आपको समझाती हैं कि
बस लेट जाएं, एंड जस्ट रिलैक्स और विश्राम करें। आप कहेंगे, कैसे? अगर मालूम ही होता, जस्ट रिलैक्स इतना आसान होता तो हम पहले ही कर गए होते। आप कहते हैं कि लेट जाओ, रिलैक्स कर जाओ, विश्राम में चले जाओ। कैसे चले जाएं? लेकिन झेन फकीर ऐसी सलाह नहीं देते जापान में। जो आदमी नहीं सो पाता, विश्राम नहीं कर पाता, वह उससे कहते हैं--पहले, बी टेंस ए.ज मच ए.ज यू कैन। हाथ पैरों को खींचो, जितने मस्तिष्क को खींच सकते हो, खींचो, हाथ पैरों को जितना तनाव दे सकते हो, दो, बिल्कुल पागल की तरह अपने शरीर के साथ व्यवहार करो। जितने तुम तन सकते हो, तनो। रिलैक्स भर मत होना, तनो, बी टैंस। वे कहते हैं--मस्तिष्क को जितना सिकोड़ सकते हो, माथे की रेखाएं जितनी पैदा कर सकते हो, करो। सारे अंगों को ऐसे सिकोड़ लो कि जैसे कि आखिरी क्षण आ गया, सारी शक्ति को सिकोड़ कर खींच डालो, और जब एक शिखर आता है तनाव का, तब झेन फकीर कहता है--नाउ रिलैक्स, अब छोड़ दो। आप एक अति से ठीक दूसरी अति में गिर जाते हैं। और जब आप एक अति से दूसरी अति में गिरते हैं तो बीच में वह क्षण आता है मध्य का, जहां स्वयं का पहला स्वाद मिलता है।
इसके बहुत प्रयोग हैं, लेकिन सब प्रयोग एक अति से दूसरी अति में जाने
के हैं। कहीं से भी एक अति से दूसरी अति में प्रवेश कर जाओ। अगर अभ्यास हो गया तो मध्य का बिंदु छोटा हो जाता है, इतना छोटा हो जाता है कि पता भी नहीं चलता। उसका फिर कोई बोध नहीं होता।
अनशन की कुछ और दो तीन बातें ख्याल में ले लेनी चाहिए कि महावीर का जोर अनशन पर बहुत ज्यादा था। कारण क्या होंगे? एक तो मैंने यह कहा, यह तो उसका एसोटेरिक, उसका आंतरिक हिस्सा है, उसका गुह्यतम हिस्सा है। उसका राज, उसका सीक्रेट तो इसमें है। लेकिन और क्या बातें थीं? महावीर जानते हैं और जो भी प्रयोग किए हैं इस दिशा में--वे भी जानते हैं कि शरीर से, इस शरीर से आपका जो संबंध है वह भोजन के द्वारा है। इस शरीर और आपके बीच जो सेतु है, वह भोजन है। अगर यह जानना हो कि मैं यह शरीर नहीं हूं तो उस क्षण में जानना आसान होगा जब आपके शरीर में भोजन बिल्कुल नहीं है। जोड़ने वाला लिंक जब बिल्कुल नहीं है, तभी जानना आसान होगा कि मैं शरीर नहीं हूं। जोड़ने वाली चीज जितनी ज्यादा शरीर में मौजूद है, उतना ही जानना मुश्किल होगा। भोजन ही जोड़ता है, इसलिए भोजन के अभाव में नब्बे दिन के बाद टूट जाएगा संबंध--आत्मा अलग हो जाएगी, शरीर अलग हो जाएगा। क्योंकि बीच का जो जोड़ने वाला हिस्सा था वह अलग हो गया, वह बीच से गिर गया। तो महावीर कहते हैं--जब तक शरीर में भोजन पड़ा है, जब तक जोड़ है उस स्थिति में अपने को ले आओ--जब शरीर में भोजन बिल्कुल नहीं है तो तुम आसानी से जान सकोगे कि तुम शरीर से अलग हो, पृथक हो। आइडेंटिफिकेशन टूट सकेगा, तादात्म्य टूट सकेगा।
यह सच है। इसलिए जितना ही ज्यादा शरीर में भोजन होता है उतना ही शरीर
के साथ तादात्म्य होता है--जितना ज्यादा शरीर में भोजन होता है उतना शरीर

के साथ तादात्म्य होता है। इसलिए भोजन के बाद नींद तत्काल आनी शुरू हो जाती है। शरीर के साथ तादात्म्य बढ़ जाता है तब मूर्च्छा बढ़ जाती है। शरीर के साथ तादात्म्य टूट जाता है तो होश बढ़ता है। इसलिए उपवासे आदमी को नींद आना बड़ा मुश्किल होता है। बिना खाए रात नींद नहीं आती। नींद मुश्किल हो जाती है।
इससे तीसरी बात ख्याल में ले लें--महावीर का सारा का सारा प्रयोग जागरण का है, अमूर्च्छा का है, होश का, अवेयरनेस का है। तो महावीर कहते हैं--भोजन चूंकि मूर्च्छा को बढ़ाता है, तंद्रा पैदा करता है, भोजन के बाद नींद अनिवार्य हो जाती है इसलिए भोजन न लिया गया हो, भोजन न किया गया हो, तो इससे उलटा होगा। होश बढ़ेगा, अवेयरनेस बढ़ेगा, जागरण बढ़ेगा। यह तो हम सब का अनुभव है। एक अनुभव तो हम सब का है कि भोजन के बाद नींद बढ़ती है। रात अगर खाली पेट सो कर देखें तो पता चल जाएगा कि नींद मुश्किल हो जाती है। बार-बार टूट जाती है।
पेट भरा हो तो नींद बढ़ती है, क्यों? तो उसका वैज्ञानिक कारण है। शरीर
के अस्तित्व के लिए भोजन सर्वाधिक महत्वपूर्ण चीज है--सर्वाधिक, आपकी बुद्धि से भी ज्यादा। एक दफा बिना बुद्धि के चल जाएगा।
सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन को चोरों ने एक दफा घेर लिया। और उन्होंने कहा--जेब खाली करते हो, नहीं, तो खोपड़ी में पिस्तौल मार देंगे। मुल्ला ने कहा कि बिना खोपड़ी के चल जाएगा लेकिन खाली जेब के कैसे चलेगा? मुल्ला ने कहा कि बिना खोपड़ी के चल जाएगा। बहुत से लोग मैंने देखे हैं, बिना खोपड़ी के चला रहे हैं, लेकिन खाली जेब नहीं चलेगा। तुम खोपड़ी में गोली मार दो।
चोर बहुत हैरान हुए होंगे, लेकिन मुल्ला ने ठीक कहा; हम भी यही जानते हैं।
ऐसी कथा है कि मुल्ला का आपरेशन किया गया मस्तिष्क का। एक डाक्टर ने
नई चिकित्सा विधि विकसित की थी जिसमें वह पूरे मस्तिष्क को निकाल लेता, उसे ठीक करता और वापस मस्तिष्क में डालता। जब वह मस्तिष्क को निकाल कर दूसरे कमरे में ठीक करने गया और जब ठीक करके लौटा तो देखा कि मुल्ला जा चुका था। छह साल बाद मुल्ला लौटा। वह डाक्टर परेशान हो गया था। उसने कहा कि तुम इतने दिन रहे कहां? और तुम भाग कैसे गए और इतने दिन तुम बचे कैसे? वह खोपड़ी तो तुम्हारी मेरे पास रखी है। मुल्ला ने कहा--नमस्कार! उसके बिना बड़े मजे से दिन कटे और मुझे इलेक्शन में चुन लिया गया, तो मैं दिल्ली में था। राजधानी से लौट रहा हूं। और अब जरूरत नहीं है, अब क्षमा करें। सिर्फ यही कहने आया हूं कि अब आप परेशान न हों, आप संभालें।
प्रकृति भी आपकी बुद्धि की फिकर में नहीं है, आपके पेट की फिकर में है। इसलिए जैसे ही पेट में भोजन पड़ता है, आपके शरीर की सारी ऊर्जा पेट के भोजन को पचाने के लिए दौड़ जाती है। आपके मस्तिष्क की ऊर्जा जो आपको जाग्रत रखती है, वह पेट की तरफ उतर जाती है, वह पेट को पचाने में लग जाती है। इसलिए आपको तंद्रा मालूम होती है। यह वैज्ञानिक कारण है। इसलिए आपको तंद्रा मालूम होती है क्योंकि आपके मस्तिष्क की ऊर्जा, जो मस्तिष्क में काम आती वह अब पेट में भोजन पचाने में काम आती है, इसलिए जो लोग भी इस पृथ्वी पर मस्तिष्क से अधिक काम लेते हैं, उनका भोजन रोज-रोज कम होता चला जाता है। जो लोग मस्तिष्क से काम नहीं लेते, उनका भोजन बढ़ता चला जाता है क्योंकि वही जीवन रह जाता, और कोई जीवन नहीं रह जाता।
महावीर ने यह अनुभव किया कि जब भोजन बिल्कुल नहीं होता शरीर में, तो प्रज्ञा अपनी पूरी शुद्ध अवस्था में होती है क्योंकि तब सारे शरीर की ऊर्जा मस्तिष्क को मिल जाती है, क्योंकि पेट में कोई जरूरत नहीं रह जाती पचाने की। इसलिए महावीर को और आगे समझेंगे तो हमें ख्याल में आ जाएगा कि महावीर कहते थे कि भोजन बिल्कुल बंद हो, शरीर की सारी क्रियाएं बंद हों, शरीर बिल्कुल मूर्ति की तरह ठहरा हुआ रह जाए, हाथ भी हिले न, अंगुली भी व्यर्थ न हिले, सब मिनिमम पर आ जाए, सब न्यूनतम पर आ जाए क्रिया, तो शरीर की पूरी ऊर्जा जो अलग-अलग बंटी है वह मस्तिष्क को उपलब्ध हो जाती है और

मस्तिष्क पहली दफा जागने में समर्थ होता है। नहीं तो जागने में समर्थ नहीं होता।
अगर महावीर ने भोजन में भी पसंदगियां कीं कि शाकाहार हो, मांसाहार न हो, तो वह सिर्फ अहिंसा ही कारण नहीं था, अहिंसा एक कारण था। उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण कारण दूसरा था और वह यह था कि मांसाहार पचने में ज्यादा शक्ति मांगता है और बुद्धि की मूर्च्छा बढ़ती है। अहिंसा अकेला कारण होता तो महा वीर कह सकते थे कि मरे हुए जानवर का मांस लेने में कोई हर्जा नहीं है, बुद्ध ने कहा था। अगर अहिंसा ही एक मात्र कारण है, तो मार कर मत क्योंकि मारने में हिंसा है, मांस खाने में तो कोई हिंसा नहीं है! अब एक जानवर मर गया है, हम तो मार नहीं रहे, मर गया है, अब तो मांस खा रहे हैं, तो मांस खाने में कौन सी हिंसा है? मरे हुए के मांस खाने में कोई भी हिंसा नहीं है। इसीलिए बुद्ध ने आज्ञा दे दी, मरे हुए जानवर का मांस खाया जा सकता है। हिंसा तो मारने में थी। लेकिन महावीर ने मरे हुए जानवर का मांस खाने की भी आज्ञा नहीं दी। क्योंकि महावीर का प्रयोजन मात्र अहिंसा नहीं है। महावीर का उससे भी गहरा प्रयोजन यह है कि मांस पचने में ज्यादा शक्ति मांगता है, शरीर को ज्यादा भारी कर जाता है, पेट को ज्यादा महत्वपूर्ण कर जाता है और मस्तिष्क की ऊर्जा क्षीण होती है, तंद्रा गहरी होती है।
इसलिए महावीर ने ऐसे हलके भोजन की सलाह दी है जो कम से कम शक्ति मांगे
और मस्तिष्क की ऊर्जा कम न हो। यह मस्तिष्क में ऊर्जा का प्रवाह बना रहे तो ही आप जाग्रत रह सकते हैं, अभी जिस स्थिति में आप हैं। इसलिए इसको बाह्य-तप कहा है, इसको आंतरिक तप नहीं कहा। जो आदमी आंतरिक तप को उपलब्ध हो जाएगा वह तो नींद में भी जागा रहता है, उसका तो कोई सवाल नहीं है। जो आदमी आंतरिक तप को उपलब्ध हो जाता है उसे तो आप शराब भी पिला दें तो भी होश में होता है। उसे तो मार्फिया दे दें तो भी शरीर ही सुस्त हो जाता है, शरीर ही ढीला पड़ जाता है। भीतर उसकी ज्योति जागती रहती है। उसकी प्रज्ञा पर कोई भेद नहीं पड़ता।
लेकिन हमारी हालत ऐसी नहीं है। हमें तो जरा सा, भोजन का एक टुकड़ा भी हमारी कांशसनेस को बदलता है, हमारी चेतना को बदलता है--जरा सा एक टुकड़ा हमारी चेतना को डांवाडोल कर देता है। हम भीतर और हो जाते हैं। तो महावीर ने कहा है--इसे पहला तप कहा है, बाह्य-तप में। चेतना को बढ़ाना है तो जब भोजन शरीर में नहीं है, आसानी से बढ़ाव हो सकेगा। छोटी-छोटी बातों के परिणाम होते हैं--छोटी-छोटी बातों के परिणाम होते हैं, क्योंकि हम जहां जीते हैं वहां हम छोटी-छोटी चीजों से ही भरे और बंधे हुए हैं। जिस दिन भी हम आदमी को भोजन की जरूरत से मुक्त कर सकेंगे उसी दिन आदमी परिपूर्ण रूप से चेतना से भर जाएगा। हम पृथ्वी से नहीं बंधे हैं, पेट से बंधे हैं। हमारा गहरा बंधन पदार्थ से नहीं है, ठीक कहें तो भोजन से है। जिस मात्रा में आप भोजन के लिए आतुर हैं, उसी मात्रा में आप मूर्च्छित होंगे, स्लीपी होंगे, और आपके भीतर जागरण को लाने में अड़चन पड़ेगी, कठिनाई पड़ेगी।
यह सवाल इतना ही नहीं है कि भोजन छोड़ दिया। यह तो सिर्फ बाह्य रूप है। भीतर चेतना बढ़े। तो चेतना कैसे बढ़े, उसको हम आंतरिक तप में समझ पाएंगे कि चेतना कैसे बढ़े। लेकिन भोजन छोड़ कर कभी-कभी चेतना बढ़ाने का प्रयोग कीमती है। लेकिन हम जब भोजन छोड़ते हैं तो चेतना वगैरह नहीं बढ़ती, केवल भोजन का चिंतन बढ़ता है। उसका कारण है कि हम भोजन भी छोड़ते हैं तो हमें यह पता नहीं कि हम किसलिए छोड़ते हैं। हमें यह बताया जा रहा है कि सिर्फ भोजन छोड़ देना ही पुण्य है। वह बिल्कुल पागलपन है। अकेला भोजन छोड़ देना पुण्य नहीं है। भोजन छोड़ देने के पीछे जो रहस्य है उसमें पुण्य छिपा है। अगर आपने सोचा है कि सिर्फ भोजन छोड़ देना पुण्य है तो भोजन छोड़ कर आप भोजन का चिंतन करते रहेंगे, क्योंकि भीतर का जो असली तत्व है उसका तो आपको कोई पता नहीं है। आप बैठ कर भोजन का चिंतन करेंगे। और ध्यान रहे, भोजन के चिंतन से भोजन ही बेहतर है, क्योंकि भोजन का चिंतन बहुत खतरनाक है। उसका मतलब यह हुआ कि पेट का काम आप मस्तिष्क से ले रहे हैं जो कि बहुत कंफ्यूजन पैदा करेगा। आपके पूरे व्यक्तित्व को रुग्ण कर जाएगा। इस पर हम पीछे बात करेंगे, क्योंकि दूसरे सूत्र पर, महावीर इस पर बहुत जोर देंगे।

भोजन का चिंतन भोजन से बदतर है, क्योंकि भोजन तो पेट करता है और चिंतन मस्तिष्क करता है। मस्तिष्क का काम नहीं है, भोजन। अच्छा है, पेट को ही अपना काम करने दें। हां, अगर मस्तिष्क में भोजन का चिंतन न चले, तो ही अनशन का कोई उपयोग है, तब, जब भोजन भी नहीं और भोजन का चिंतन भी नहीं।
आपको पता है कि आपके चिंतन के दो ही हिस्से हैं, या तो काम, या भोजन। या
तो कामवासना मन को घेरे रहती है, या स्वाद की वासना मन को घेरे रहती है। गहरे में तो कामवासना ही है क्योंकि भोजन के बिना कामवासना संभव नहीं है। अगर भोजन आपका कम कर दिया जाए तो कामवासना को मुश्किल हो जाती है, कठिनाई हो जाती है। तो गहरे में तो कामवासना ही घेरे रहती है। चूंकि भोजन कामवासना को शक्ति देता है इसलिए भोजन घेरे रहता है। ऊपर से हमें भोजन का चिंतन चलता रहता है। महावीर से पूछेंगे तो वे कहेंगे--जो आदमी भोजन में बहुत आतुर है वह आदमी कामवासना से भरा होगा। वह भोजन लक्षण है। क्योंकि भोजन शक्ति देता है, काम की शक्ति को बढ़ाता है, और कामवासना में दौड़ाता है। तो महावीर कहेंगे--जो भोजन के चिंतन से भरा है, भोजन की आकांक्षा से भरा है वह आदमी कामवासना से भरा है। भोजन की वासना छूटे तो कामवासना शिथिल होनी शुरू हो जाती है।
यह जो हम भोजन का चिंतन करते हैं, वह इसीलिए कि नहीं मिल रहा है भोजन
तो हम सब्स्टीट्यूट पैदा करते हैं। ध्यान रहे, हमारे मन की गहरी से गहरी तरकीब, सब्स्टीट्यूट क्रिएशन है, परिपूरक पैदा करना है। अगर आपको भोजन नहीं मिलेगा तो मन आपसे भोजन का चिंतन करवाएगा। और उसमें उतना ही रस लेने लगेगा जितना भोजन में। बल्कि कभी-कभी ज्यादा रस लेगा, जितना भोजन में भी नहीं मिलता है। ज्यादा लेना पड़ेगा, क्योंकि जितना भोजन से मिलता है, उतना तो मिल नहीं सकता चिंतन से, इसलिए चिंतन में इतना रस लेना पड़ेगा कि जो भोजन की कमी रह गई है वह भी चिंतन के ही रस से पूरी होती हुई मालूम पड़े। इसलिए अगर कामवासना से बचिएगा तो मन कामवासना का चिंतन करने लगेगा। रात कभी आप सोए हैं और आपने सपना देखा है कि जाकर पानी पी रहे हैं, वह सपना सिर्फ सब्स्टीट्यूट है। आपको प्यास लगी होगी, प्यासे सो गए होंगे। भीतर प्यास चल रही होगी और नींद टूटना नहीं चाहती, क्योंकि अगर आपको पानी पीना पड़ेगा तो जागना पड़ेगा। नींद टूटना नहीं चाहती, तो नींद एक सपना पैदा करती है कि आप पहुंच गए हैं पानी के, फ्रीज के पास--पानी पी रहे हैं। पानी पीकर मजे से फिर सो गए हैं। यह सपना पैदा किया।
यह सपना तरकीब है जिससे प्यास की जो पीड़ा है वह भूल जाए और नींद जारी रहे। आपके सब सपने बताते हैं कि आपने दिन में क्या-क्या नहीं किया। और कुछ नहीं बताते। आपके सपने के बिना आपकी जिंदगी को समझना मुश्किल है, इसलिए आज का मनोवैज्ञानिक आपसे नहीं पूछता कि दिन में आपने क्या किया, वह पूछता है-- रात में आपने क्या सपना देखा? अब सोचें थोड़ा, आपके बाबत जानकारी आपके दिन के काम से मनोवैज्ञानिक नहीं लेता। वह आपसे नहीं पूछता कि आपने कुछ भी किया हो, दुकान चलाई कि मंदिर गए, उससे कोई मूल्य नहीं है। वह पूछता है-- सपने में कहां गए? वह कहता है--सपने में आप आथेंटिक हो, प्रामाणिक हो, वहां से पता चलेगा कि आदमी कैसे हो? आपके जागने से कुछ पता नहीं चलेगा, वहां तो बहुत धोखाधड़ी है। जाना था वेश्यालय में, पहुंच गए मंदिर में। जागने में चल सकता है यह, सपने में नहीं चल सकता। सपने में यह धोखा आप नहीं कर सकते खड़ा, वेश्यालय में चले जाएंगे। सपने में आप ज्यादा सरल हैं, सीधे-साफ हैं। इसलिए मनोवैज्ञानिक को--बेचारे को आपके सपने का पता लगाना पड़ता है, तभी आपके बाबत जानकारी मिलती है। आपसे आपके बाबत जानकारी नहीं मिलती। आपका जागना इतना झूठा है कि उससे कुछ पता नहीं चलता, आपकी नींद में उतरना पड़ता है कि आप नींद में क्या कर रहे हो। उससे पता चलेगा, आप आदमी कैसे हो, असली खोज क्या है आपकी? तो अगर आप दिन में उपवास किए तो उससे पता नहीं चलेगा। रात सपने में भोजन किए या नहीं, उससे पता चलेगा। अगर रात सपने में भोजन किए, दिन का अनशन बेकार गया, उपवास व्यर्थ हुआ। लेकिन जिस दिन आप उपवास करते हैं, उस दिन सपने में भोजन करना ही पड़ता है, अनिवार्य है। कहीं न कहीं निमंत्रण मिल जाता है, आप कर भी क्या सकते हैं? राजमहल में भोज हो जाता है, आप कर भी क्या सकते हैं। जाना पड़ता है।

चिंतन जो नहीं हो पा रहा है वास्तविक रूप से उसे पूरा करने की डेसपरेट कोशिश है--भोजन नहीं किया तो चिंतन कर रहे हैं। और ध्यान रहे, भोजन करते तो पंद्रह मिनट में पूरा हो जाता, चिंतन से पंद्रह मिनट में नहीं चलेगा। पंद्रह मिनट का काम एक-सौ पचास घंटे चलाना पड़ेगा। चलता ही रहेगा, चलता ही रहेगा, क्योंकि तृप्ति तो मिलेगी नहीं भोजन की, रस तो मिलेगा नहीं भोजन का, शक्ति तो मिलेगी नहीं भोजन की, तो फिर चिंतन में ही उलझाए रखना पड़ेगा। इसलिए महावीर ने, इस चिंतन को अगर आपने किया, तो महावीर ने कहा है कि आप शरीर से करते हैं कोई काम या मन से, इसमें मैं भेद नहीं करता। आपने चोरी की, या चोरी के बाबत सोचा, मेरे लिए बराबर है। पाप हो गया। यह सवाल नहीं है कि आपने हत्या की, या हत्या के संबंध में सोचा।
अदालत फर्क करती है--अगर आप हत्या के संबंध में सोचें, कोई अदालत आ पको सजा नहीं दे सकती। आप खूब सोचें मजे से। कोई अदालत यह नहीं कह सकती कि आप जुर्मी हैं, अपराधी हैं। आप अदालत में कह भी सकते हैं--हम हत्या का बहुत रस लेते हैं, सपने भी देखते हैं, और दिन-रात सोचते हैं कि इसकी गर्दन काट दें, उसकी गर्दन काट दें, वह काटते ही रहते हैं। चाहे कहें या न कहें। अदालत आपका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती है, आप कानून की पकड़ के बाहर हैं। कानून सिर्फ कृत्य को पकड़ सकता है, कर्म को पकड़ सकता है
लेकिन महावीर कहते हैं--धर्म, भाव को भी पकड़ता है। धर्म की अदालत के बाहर नहीं हो सकते। भाव पर्याप्त हो गया। महावीर कहते हैं--कृत्य तो सिर्फ भाव की बाह्य छाया है, मूल तो भाव है। अगर मैंने हत्या करनी चाही तो मैंने तो हत्या कर ही दी, बाहर की परिस्थितियों ने करने दी, यह बात दूसरी है। पुलिसवाला खड़ा था, अदालत खड़ी थी, सजा का डर था, फांसी का तख्ता था, इसलिए नहीं की। यह दूसरी बात है। बाहर की परिस्थितियों ने नहीं करने दी, यह दूसरी बात है। मेरी तरफ से मैंने कर दी। अगर परिस्थिति सुगम होती, सुविधापूर्ण होती, पुलिसवाला न होता या पुलिसवाला रिश्तेदार होता, या अदालत अपनी होती, मजिस्ट्रेट अपना होता, कानून अपना चलता होता तो मैंने कर दी होती। फिर कोई मुझे रोकने वाला नहीं।
न करने का कारण बाहर से आ रहा है, करने का कारण भीतर से आ रहा है। भीतर
की ही तौल है, अंततः आप तौले जाएंगे, आपकी परिस्थितियां नहीं तौली जाएंगी। यह नहीं पूछा जाएगा कि जब आप हत्या करना चाह रहे थे तो आपके पास बंदूक नहीं थी इसलिए नहीं कर पाए। भाव पर्याप्त है, हत्या हो गई।
अगर आपने भोजन का चिंतन किया, उपवास नष्ट हो गया। तब तो बड़ी कठिनाई है। इसका मतलब यह हुआ कि आप तब तक उपवास न कर पाएंगे जब तक आपका चिंतन पर नियंत्रण न हो, नहीं कर पाएंगे। इसलिए मैंने कहा--चर्चा के लिए हमने नंबर एक पर रखा है, लेकिन इसको आप अकेला न कर पाएंगे जब तक चिंतन पर नियंत्रण न हो, जब तक चिंतन आपके पीछे न चलता हो, जब तक जो आप चलाना चाहते हो चिंतन में, वही न चलता हो। अभी तो हालत यह है कि चिंतन जो चलाना चाहता है वहीं आपको चलना पड़ता है। जहां ले जाता है मन, वहीं आपको जाना पड़ता है। नौकर मालिक हो गए हैं।
सुना है मैंने कि अमरीका का एक बहुत बड़ा करोड़पति रथचाइल्ड, सुबह-सुबह
जो भी भिखमंगे उसके पास आते थे उन्हें कुछ न कुछ देता था। एक भिखमंगा नियमित रूप से बीस वर्षों से आता था। वह रोज उसे एक डालर देता था और उसके बूढ़े बाप के लिए भी एक डालर देता था। बाप कभी आता था, कभी नहीं आता था, बहुत बूढ़ा था, इसलिए बेटा ही ले जाता था। धीरे-धीरे वह भिखारी इतना आश्वस्त हो गया कि अगर दो-चार दिन न आ पाता तो चार दिन के बाद अपना पूरा बिल पेश कर देता कि पांच दिन हो गए हैं, मैं आ नहीं पाया चार दिन। वह चार डालर वसूल करता जो उसको मिलने चाहिए थे। फिर उसका बाप मर गया। रथचाइल्ड को पता चला कि उसका बाप मर गया है। लेकिन उसने, फिर भी उसने अपने बाप का भी डालर लेना जारी रखा। महीने भर तक रथचाइल्ड ने कुछ न कहा, क्योंकि इसका बाप मरा है, और सदमा देना ठीक नहीं है--देता रहा। महीने भर बाद उसने कहा कि अब तो हद होई। अब तुम्हारा बाप मर गया, उसका डालर क्यों लेते हो?

उसने कहाः क्या समझते हो? बाप की दौलत का मैं हकदार हूं कि तुम? हू इ.ज
दि हेयर। मेरा बाप मरा कि तुम्हारा बाप मरा? बाप मेरा मरा है, उसकी संपत्ति का मालिक मैं हूं।
रथचाइल्ड ने अपनी जीवनकथा में लिखवाया है कि भिखारी भी मालिक हो जाते हैं, अभ्यास से। चकित हो गया रथचाइल्ड, उसने कहा--ले जा भाई। तू दो डालर ले और अपने बेटे की वसीयत लिख जाना। जब तक हम हैं, देते रहेंगे, तेरे बेटे को भी देना पड़ेगा क्योंकि यह वसीयत है।
चिंतन सिर्फ आपका नौकर है, लेकिन मालिक हो गया है। सभी इंद्रियां आपकी नौकर हैं, लेकिन मालिक हो गई हैं। अभ्यास लंबा है। आपने कभी अपनी इंद्रियों को कोई आज्ञा नहीं दी। आपकी इंद्रियों ने आपको आज्ञा दी है। तप का एक अर्थ आपको कहता हूं--तप का अर्थ हैः अपनी इंद्रियों की मालकियत, उनको आज्ञा देने की सामर्थ्य। पेट कहता है, भूख लगी है, आप कहते हैं, ठीक है, लगी है, लेकिन मैं आज भोजन लेने को राजी नहीं हूं। आप पेट से अलग हुए। मन कहता है कि आज भोजन का चिंतन करेंगे, और आप कहते हैं कि नहीं, जब भोजन ही नहीं किया तो चिंतन क्यों करेंगे? चिंतन नहीं करेंगे। तो ही आप अनशन कर पाएंगे और उपवास कर पाएंगे। अन्यथा कोई फर्क नहीं लगेगा। पेट कहता रहेगा, भूख लगी है, मन चिंतन करता रहेगा। आप और उलझ जाएंगे, और परेशान हो जाएंगे। और जैसा वह चार दिन के बाद अपना बिल लेकर हाजिर हो जाता था भिखारी, चार दिन के उपवास के बाद पेट अपना बिल लेकर हाजिर हो जाएगा कि चार दिन भोजन नहीं किया, अब ज्यादा कर डालो। तो पर्युषण के बाद दस दिन में सब पूरा कर डालेंगे। दुगुने तरह से बदला ले लेंगे। जो-जो चूक गया, उसको ठीक से भरपूर कर लेंगे। अपनी जगह वापस खड़े हो जाएंगे।
उपवास हो सकता है तभी जब चिंतन पर आपका वश हो। लेकिन चिंतन पर आ पका कोई भी वश नहीं है। आपने कभी कोई प्रयोग नहीं किया। हमें चिंतन की तो ट्रेनिंग दी गई है, हमें विचार का तो प्रशिक्षण दिया गया है, लेकिन विचार की मालकियत का कोई प्रशिक्षण नहीं है। आपको स्कूल में, कालेज में विचार करना सिखाया जा रहा है, दो और दो जोड़ना सिखाया जा रहा है--सब सिखाया जा रहा है। एक बात नहीं सिखाई जा रही है कि दो और दो जब जोड़ना हो तभी जोड़ना, जब न जोड़ना हो तो मत जोड़ना। लेकिन अगर मन दो और दो जोड़ना चाहे तो आप रोक नहीं सकते। आप कोशिश करके देख लें, आज घर पर। कहें कि हम दो और दो न जोड़ेंगे और मन दो और दो जोड़ेगा, उसी वक्त जोड़ेगा। वह आपको डिफाई करेगा, वह कहेगा तुम हो क्या? हम दो और दो चार होते हैं। आप आज कोशिश करना कि दो और दो हमें नहीं जोड़ना है, फौरन मन कहेगा, चार। आप कहना हमें जोड़ना नहीं है, वह कहेगा चार। वह आपको डिफाई करता है। और उसको डिफाई करना चाहिए। क्योंकि उसकी मालकियत आप छीन रहे हैं। अब तक आपने उसको मालिक बनाकर रखा है। एक दिन में यह नहीं हो जाएगा। लेकिन अगर इसके प्रति सजगता आ जाए और यह ख्याल आ जाए कि मैं अपनी ही इंद्रियों का गुलाम हो गया हूं तो शायद थोड़ी यात्रा करनी पड़े--थोड़ी यात्रा करनी पड़े इंद्रियों के विपरीत। अनशन, वैसी ही यात्रा की शुरुआत है।
महावीर कहते हैं, ठीक। आज नहीं, बात समाप्त हो गई। लेकिन आपके नहीं और हां में बहुत फर्क नहीं है। आपके व्यक्तित्व में हां और नहीं में बहुत फर्क नहीं है। आपका बेटा आपसे कहता है--यह खिलौना लेना है। आप कहते हैं-- नहीं। बड़ी ताकत से कहते हैं, लेकिन बेटा वहीं पैर पटकता खड़ा रहता है, वह कहता है कि लेंगे। दुबारा आप कहते हैं--मान जा, नहीं लेंगे। आपकी ताकत क्षीण हो गई है। आपका नहीं, हां की तरफ चल पड़ा। वह बेटा पैर पटकता ही रहता है। वह कहता, लेंगे। आखिर आप लेते हैं। बेटा जानता है कि आपकी नहीं का कुल इतना मतलब है कि तीन चार दफे पैर पटकना पड़ेगा और हां हो जाएगी। और कुछ मतलब नहीं ज्यादा। छोटे से छोटे बच्चे भी जानते हैं कि आपके "न" की ताकत कितनी है। एंड हाउ मच यू मीन बाई सेइंग नो। बच्चे जानते हैं और आपके न को कैसे काटना है, यह भी वे जानते हैं। और काट देते हैं। आपकी न को हां में बदल देते हैं। और जितने जोर से आप कहते हैं नहीं, उतने जोर से बच्चा जानता है कि यह कमजोरी की घोषणा है। यह आप डरवाने की कोशिश कर रहे हैं। डरे हुए अपने से ही हैं कि कहीं हां न निकल जाए। वह बच्चा समझ जाता है, जोर से बोले हैं, ठीक है,

अभी थोड़ी देर में ठीक हो जाएंगे। नहीं, जो आदमी सच में शक्तिशाली है वह "जोर से नहीं" कहीं कहता है, वह शांति से कह देता है, "नहीं"। और बात समाप्त हो गई।
आपकी इंद्रियां भी ठीक इसी तरह का टानट्रम सीख लेती हैं जैसा बच्चे सीख लेते हैं। आप कहते हैं--आज भोजन नहीं; तो आप हैरान होंगे, अगर आप रोज ग्यारह बजे भोजन करते हैं तो आपको रोज ग्यारह बजे भूख लगती है। लेकिन अगर आपने कल रात तय किया कि कल उपवास करेंगे तो छह बजे से भूख लगती है। यह बड़े आश्चर्य की बात है। ग्यारह बजे रोज भूख लगती थी, छह बजे कभी नहीं लगती थी। हुआ क्या? क्योंकि अभी आपने, अभी तो कुछ किया नहीं, अभी तो अनशन भी शुरू नहीं हुआ, वह ग्यारह बजे शुरू होगा। सिर्फ ख्याल, रात में तय किया कि कल अनशन करना है, उपवास करना है, सुबह से भूख लगने लगी। सुबह से क्या, रात से शुरू हो जाएगी। वह आपके पेट ने आपके न को हां में बदलने की कोशिश उसी वक्त शुरू कर दी। उसने कहा, तुम क्या समझते हो? ग्यारह बजे तक वह नहीं रुकेगा। भूख इतने जोर से कभी नहीं लगती थी। रोज तो ऐसा था असल में कि ग्यारह बजे खाते थे इसलिए खाते थे। वह एक समय का बंधन था। लेकिन आज भूख बड़े जोर से लगेगी, और अभी ग्यारह नहीं बजे इसलिए वस्तुतः तो कहीं कोई फर्क नहीं पड़ा है। रोज भी ग्यारह बजे तक भूखे रहते थे, कोई फर्क नहीं पड़ा है कहीं भी लेकिन चित्त में फर्क पड़ गया और इंद्रियां अपनी मालकियत कायम करने की कोशिश करेंगी। वह कहेंगी कि नहीं, बहुत जोर से भूख लगी है, इतने जोर से कभी नहीं लगी थी, ऐसी भूख लगी है।
निश्चित ही कोई भी अपनी मालकियत आसानी से नहीं छोड़ देता। एक बार मालकियत दे देना आसान है, वापस लेना थोड़ा कठिन पड़ता है। वही कठिनता तपश्चर्या है। लेकिन, अगर आप सुनिश्चित हैं और आपके न का मतलब न, और हां का मतलब हां होता है--सच में होता है, तो इंद्रियां बहुत जल्दी समझ जाती हैं। बहुत जल्दी समझ जाती हैं कि आपके न का मतलब न है और आपके हां का मतलब हां है।
इसलिए मैं आपसे कहता हूं, संकल्प अगर करना है तो फिर तोड़ना मत, अन्यथा करना ही मत। क्योंकि संकल्प करके तोड़ना आपको इतना दुर्बल कर जाता है कि जिसका कोई हिसाब नहीं। संकल्प करना ही मत, वह बेहतर है। क्योंकि संकल्प टूटेगा नहीं तो उतनी दुर्बलता नहीं आएगी। एक भरोसा तो रहेगा कि कभी करेंगे तो पूरा कर लेंगे। लेकिन संकल्प करके अगर आपने तोड़ा तो आप अपनी ही आंखों में, अपने ही सामने दीन-हीन हो जाएंगे। और सदा के लिए वह दीनहीनता आपके पीछे रहेगी। और जब भी आप दुबारा संकल्प करेंगे, तब आप पहले से ही जानेंगे कि यह टूटेगा। यह चल नहीं सकता। छोटे संकल्प से शुरू करें, बहुत छोटे संकल्प से शुरू करें।
गुरजिएफ बहुत छोटे संकल्प से शुरू करवाता था। वह कहता, इस हाथ को ऊंचा
कर लो। अब इसको नीचे मत करना। जैसे ही तय किया कि नीचे मत करना, पूरा हाथ कहता है नीचे करो। अब इसको नीचे मत करना। अब चाहे कुछ भी हो जाए इसको नीचे मत करना। जब तक कहता था गुरजिएफ, मैं न कहूं हाथ को नीचे मत करना। हाथ दलीलें करेगा। आप सोचेंगे, हाथ कैसे दलीलें करेगा? हाथ दलील करता है। वह आर्ग्यु करेगा। वह कहेगा--बहुत थक गया हूं, अब तो नीचे कर लो। वह कहेगा, गुरजिएफ यहां कहां देख रहा है, एक दफे ऊपर करके नीचे कर लो। उसकी तो पीठ है। और ध्यान रखें, गुरजिएफ जब भी ऐसी आज्ञा देता था तो पीठ करके बैठता था। हाथ पच्चीस आर्ग्युमेंट खोजेगा। वह कहेगा--ऐसे में कहीं लकवा न लग जाए। और फिर हाथ कहेगा इससे फायदा भी क्या, हाथ ऊंचे करने से कोई भगवान मिलने वाला है? अरे हाथ तो शरीर का हिस्सा है, इससे आत्मा का क्या संबंध है?
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं--कपड़े बदलने से क्या होगा? आत्मा बदलनी है। कपड़ा बदलने की हिम्मत नहीं है, आत्मा बदलनी है। वे कहते हैं-- आत्मा बदलने से होगा। तो कपड़े बदलने से क्या होगा? वे सोच रहे हैं यह दलील वे दे रहे हैं, यह उनके कपड़े दे रहे हैं। यह दलील उनकी नहीं है, यह उनके कपड़ों की है। यह जो घर में साड़ियों का ढेर लगा हुआ है, वे साड़ियां कह रही हैं कि कपड़े से क्या होगा? लेकिन वे सोच रहे हैं कि बहुत आत्मिक खोज कर लाए। वे कह रहे हैं कि भीतर का परिवर्तन चाहिए, बाहर के परिवर्तन से क्या

होगा। बाहर का परिवर्तन तक करने की सामर्थ्य नहीं जुटती, भीतर के परिवर्तन के सपने देख रहे हैं। बाहर इतना बाहर नहीं है जितना आप सोचते हैं। वह आपके भीतर तक फैला हुआ है। भीतर इतना भीतर नहीं है जितना आप सोचते हैं, वह आपके कपड़ों तक आ गया है। वह सब तरफ फैला हुआ है।
अपने को धोखा देना बहुत आसान है। जो भूखा नहीं रह सकता वह कहेगा अनशन
से क्या होगा? भूखे मरने से क्या होगा? कुछ नहीं होगा। जो नग्न खड़ा नहीं हो सकता, वह कहेगा नग्न खड़े करने से क्या होगा? इससे क्या होने वाला है? उपवास से कुछ भी नहीं होगा, तो क्या भोजन करने से हो जाएगा? नग्न खड़े होने से नहीं होगा, तो क्या कपड़े पहनने से हो जाएगा? तो गेरुवा वस्त्र पहनने से नहीं होगा तो दूसरे रंग के वस्त्र पहनने से हो जाएगा? क्योंकि दूसरे रंग के वस्त्र पहनते वक्त उसने यह दलील कभी नहीं दी कि कपड़ों से क्या होगा, लेकिन गेरुवा वस्त्र पहनते वक्त वही आदमी दलील लेकर आ जाता है कि कपड़े से क्या होगा? हमारा मन, हमारी इंद्रियां, हमारे कपड़े, हमारी चीजें, सब दलीलें देती हैं और हम रेशनेलाइज करते हैं।
ध्यान रहे, री.जन और रेशनेलाइजेशन में बहुत फर्क है। बुद्धिमत्ता में
और बुद्धिमत्ता का धोखा खड़ा करने में बहुत फर्क है। और जब हाथ कहता है कि थक जाएंगे, मर जाएंगे--गुरजिएफ कहता है कि तुम नीचे मत करना, अगर हाथ थक जाएगा तो गिर जाएगा, तुम नीचे मत करना। थक जाएगा तो गिर जाएगा, तुम करोगे क्या? अगर हाथ सच में ही थक जाएगा तो रुकेगा कैसे? जब तक रुका है, तब तक तुम मत गिराना। तुम अपनी तरफ से मत गिराना। अगर हाथ गिरे तो तुम देख लेना कि गिर रहा है। पर तुम कोआपरेट मत करना, तुम सहयोग मत देना। पर बारीक है बात। हम बड़े धोखे से सहयोग दे सकते हैं। हम कह सकते हैं यह हाथ गिर रहा है, हम थोड़े ही गिरा रहे हैं। यह हाथ गिर रहा है, और आप भलीभांति जानते हैं कि यह गिर नहीं रहा है, आप गिरा रहे हैं। इतने भीतर अपने को साफ-साफ देखना पड़ेगा अपनी बेईमानियों को, अपनी वंचनाओं को, अपने डिसेप्शंस को। और जो आदमी अपनी वंचनाओं को नहीं देखता, उसके हां और न में फर्क नहीं रह जाता। वह न कहता है और हां कर लेता है। हां कहता है और न कर लेता है।
मुल्ला नसरुद्दीन का लड़का पैदा हुआ। बड़ा हुआ तो नसरुद्दीन ने सोचा कि क्या बनेगा, इसकी कुछ जांच कर लेनी चाहिए। उसने कुरान रख दी, पास एक शराब की बोतल रख दी, एक दस रुपए का नोट रख दिया और छोड़ दिया उसको कमरे में और छिप कर खड़ा हो गया। लड़का गया, उसने दस रुपये का नोट जेब में रखा, कुरान बगल में दबाई और शराब पीने लगा। नसरुद्दीन भागा, अपनी बीबी से बोला कि यह राजनीतिज्ञ हो जाएगा। कुरान पढ़ता तो सोचते धार्मिक हो जाएगा, शराब पीता तो सोचते अधार्मिक हो जाएगा, रुपया जेब में रखकर भाग गया होता तो सोचते व्यापारी हो जाएगा। यह पॉलिटिशियन हो जाएगा। यह कहेगा कुछ, करेगा कुछ, होगा कुछ। यह सब एक साथ करेगा।
हमारा चित्त ऐसा ही कर रहा है--धर्म भी कर रहा है, अधर्म भी सोच रहा है।
जो कर रहा है, जो सोच रहा है, दोनों से कोई संबंध नहीं है, खुद कुछ और ही है। और यह सब जाल एक साथ है। तपश्चर्या इस जाल को काटने का नाम है और व्यक्तित्व को एक प्रतिमा देने की प्रक्रिया है--इस बात की कोशिश है कि व्यक्तित्व में एक स्पष्ट रूप निखर आए, एक आकार बन जाए। आप ऐसे विकृत कुछ भी आकार न रह जाएं, आप में एक आकार उभरे, आहिस्ता-आहिस्ता आप स्पष्ट होते जाएं, एक क्लेरिटी हो। अगर आपको नहीं भोजन लेना है तो नहीं लेना है, यह आपके पूरे व्यक्तित्व की आवाज हो जाए, बात खत्म हो गई। अब यह बात नहीं उठेगी जब तक नहीं लेना है।
महावीर तो बहुत अनूठा प्रयोग करते थे क्योंकि यह भी हो सकता है उसी के बचाव के लिए वह प्रयोग था। यह भी हो सकता है कि आपने तय कर लिया है कि चौबीस घंटे नहीं लेंगे भोजन और न सोचेंगे। तो मन कहता है--कोई हर्जा नहीं, चौबीस ही घंटे की बात है न। चौबीस घंटे बाद तो सोचेंगे, करेंगे। ठीक है किसी तरह चौबीस घंटे निकाल देंगे। मन इसके लिए भी राजी हो सकता है। क्योंकि इनडेफिनिट नहीं है मामला, डेफिनिट है, निश्चित है। चौबीस घंटे के बाद तो कर ही लेना है, तो चौबीस ही घंटे की बात है न! एक मजबूरी जैसा आप ढो लेंगे। लेकिन तब आपको उपवास की प्रफुल्लता न मिलेगी, बोझ होगा। तब उपवास का आनंद

आपके भीतर न खिलेगा। वह एक्सटेसी, वह लहर आपके भीतर न आएगी जो इंद्रियों के ऊपर मालकियत के होने से आती है। तब सिर्फ एक बोझ होगा कि चौबीस घंटे ढो लेना है। गुजार देंगे चौबीस घंटे। निकाल देंगे, समय को। काट लेंगे समय को स्थानक में, मंदिर में देरासर में, कहीं बैठ कर समय गुजार देंगे, किसी तरह निपटा ही देंगे।
लेकिन तब, तब अनशन नहीं हुआ। महावीर निश्चित न करते थे कि कब भोजन लेंगे। और अनिश्चय पर छोड़ते थे, नियति पर। बहुत हैरानी का प्रयोग था, वह महावीर ने अकेले ही इस पृथ्वी पर किया। वे कहते थे कि भोजन मैं तब लूंगा जब ऐसी घटना घटेगी। तब घटना अपने हाथ में नहीं। रास्ते पर निकलूंगा अगर किसी बैलगाड़ी के सामने कोई आदमी खड़ा होकर रो रहा होगा, अगर बैल काले रंग के होंगे, अगर उस आदमी की एक आंख फूटी होगी और एक आंख से आंसू टपक रहा होगा, तो मैं भोजन ले लूंगा। और वह भी अगर वहीं कोई भोजन देने के लिए निमंत्रण दे देगा। नहीं तो आगे बढ़ जाऊंगा। अनेक दिन महावीर गांव में जाते, वे जो तय करके जाते थे--जो तय उन्होंने कर लिया था पहले दिन भोजन के छोड़ने के, वह पूरा नहीं होता, वे वापस लौट आते लेकिन वे बड़े आनंदित वापस लौटते, क्योंकि वे कहते कि जब नियति की ही इच्छा नहीं है तो हम क्यों इच्छा करें? जब कास्मिक, जब जागतिक शक्ति कहती है कि नहीं आज भोजन, तो बात खत्म हो गई। अब तुम जानो, तुम्हारा काम जाने, नियति जाने। वे वापस लौट आते। गांवभर रोता, गांवभर परेशान होता, क्योंकि गांव में अनेक लोग खड़े होते भोजन ले लेकर और अनेक इंतजाम करके खड़े होते।
अभी भी खड़े होते हैं, लेकिन अब जैन दिगंबर मुनि--वैसा प्रयोग करता है अभी भी--लेकिन वह सब जाहिर है कि वह क्या-क्या नियम लेता है। पांच-सात नियम जाहिर हैं, वह वही के वही लेता है, पांच-सात घरों में वे नियम पूरे कर देते हैं। किसी घर के सामने केले लटके होंगे। अब वह मालूम है। वे केले लटका लेते हैं सब लोग, अपने घर के सामने। कोई स्त्री सफेद साड़ी पहन कर भोजन के लिए निमंत्रण करेगी, वह मालूम है। अब पांच-सात नियम फिक्स्ड हो गए हैं। पांच-सात नियम पांच-सात घरों में लोग खड़े हो जाते हैं करके। अब जैन मुनि कभी बिना भोजन लिए नहीं लौटता। निश्चित ही वह महावीर से ज्यादा होशियार है। कभी नहीं लौटता खाली हाथ। तब तो उसको मिलता ही है, इसलिए पक्का मामला है उसको और उसको बनाने वाले, भोजन बनाने वालों में कोई न कोई सांठ-गांठ है। भोजन बनाने वालों को पता है, उसको पता है। वह वही नियम लेता है, वही भोजन बनाने वाले पूरा कर देते हैं। भोजन लेकर वह लौट जाता है। आदमी अपने को कितने धोखे दे सकता है!
महावीर की प्रक्रिया बहुत और है। वह यह थी--वे किसी को कहेंगे नहीं, वह उनके भीतर है बात। अब वह क्या है? कभी-कभी तीन तीन महीने महावीर को खाली, बिना भोजन लिए गांव से लौट जाना पड़ा। बात खत्म हो गई, पर इनडेफिनेट है। और जब मन के लिए कोई सीमा नहीं होती तो मन को तोड़ना बहुत आसान हो जाता है; जब मन के लिए सीमा होती है तो खींचना बहुत आसान होता है। एक ही घंटे की तो बात है, तो निकाल देंगे। चौबीस घंटे की बात है, गुजार देंगे लेकिन इनडेफिनिट। महावीर का जो अनशन था, उसकी कोई सीमा न थी। वह कब पूरा होगा कि नहीं होगा, कि यह जीवन का अंतिम होगा भोजन, इसके बाद नहीं होगा इसका भी कुछ पक्का पता नहीं। वह कल पर है, कल की बात है। कल गांव में वे जाएंगे--हो गया, हो गया; नहीं हुआ, नहीं हुआ; वापस लौट आएंगे, बात खत्म हो गई।
इसलिए महावीर ने उपवास और अनशन पर जैसे गहरे प्रयोग किए, इस पृथ्वी पर किसी ने कभी नहीं किए। मगर आश्चर्य की बात है कि इतने कठिन प्रयोग करके भी महावीर को फिर भी भोजन तो कभी-कभी मिल ही जाता था। बारह वर्ष में तीन सौ पैंसठ बार भोजन मिला। कभी पंद्रह दिन बाद, कभी दो महीने बाद, कभी तीन महीने बाद, कभी चार महीने बाद, पर भोजन मिला। तो महावीर कहते थे--जो मिलने वाला है, वह मिल ही जाता है। और महावीर कहते थे--त्याग तो उसी का किया जा सकता है जो नहीं मिलने वाला है। उसका तो त्याग भी कैसे हो सकता है जो मिलने वाला ही है। और तब महावीर कहते थे--जो नियति से मिला है, उसका कर्म-बंधन मेरे ऊपर नहीं है। मेरा नहीं है कोई संबंध उससे। क्योंकि मैंने किसी से मांगा नहीं, मैंने किसी से कहा नहीं, छोड़ दिया अनंत के ऊपर। कि होगी जगत को कोई जरूरत

मुझे चलाने की तो और चला लेगा। और नहीं होगी जरूरत तो बात खत्म हो गई। मेरी अपनी कोई जरूरत नहीं है। ध्यान रहे महावीर की सारी प्रक्रिया जीवेषणा छोड़ने की प्रक्रिया है। महावीर कहते हैं--मैं जीवित रहने के लिए कोई एषणा नहीं करता हूं। अगर इस अस्तित्व को ही, अगर इस होने को ही जरूरत हो मेरी कोई, इंतजाम तुम जुटा लेना, वह मेरा इंतजाम नहीं है। और तुम्हें कोई जरूरत न रह जाए तो मेरी तरफ से जरूरत पहले ही छोड़ चुका हूं।
लेकिन आश्चर्य तो यही है कि फिर भी महावीर जीए चालीस वर्ष--स्वस्थ जीए, आनंद से जीए। इस भूख ने उन्हें मार न डाला। इस नियति पर छोड़ देने से वे दीन-हीन न हो गए। यह जीवेषणा को हटा देने से मौत न आ गई। जरूर बहुत से राज पता चलते हैं। हमारी यह चेष्टा कि मैं ही मुझे जिला रहा हूं, विक्षिप्तता है। और हमारा यह ख्याल कि जब तक मैं न मरूंगा, कैसे मरूंगा? नासमझी है। बहुत कुछ हमारे हाथ के बाहर है, उसे भी हम समझते हैं कि हमारे हाथ के भीतर है। जो हमारे हाथ के बाहर है उसे हाथ
के भीतर समझने से ही अहंकार का जन्म होता है। जो हमारे हाथ के बाहर है, उसे हाथ के बाहर ही समझने से अहंकार विसर्जित हो जाता है।
महावीर अपना भोजन भी पैदा नहीं करते। महावीर स्नान भी नहीं करते अपनी तरफ से। वर्षा का पानी जितना धुला देता है, धुला देता है। लेकिन बड़ी मजेदार बात है कि महावीर के शरीर से पसीने की दुर्गंध नहीं आती थी। आनी चाहिए, बहुत ज्यादा आनी चाहिए, क्योंकि महावीर स्नान नहीं करते हैं। पर आपने कभी ख्याल किया, सैकड़ों पशु पक्षी हैं, स्नान नहीं करते। वर्षा का पानी बस काफी है। उनके शरीर से दुर्गंध आती है! एक आदमी अकेला ऐसा जानवर है जो बहुत दुर्गंधित है, डीओडरेंट की जरूरत पड़ती है। रोज सुगंध छिड़को, डीओडरेंट साबुनों से नहाओ, सब तरह का इंतजाम करो, फिर भी पांच-सात मिनट किसी के पास बैठ जाओ तो असली खबर मिल जाती है।
आदमी अकेला जानवर है जो दुर्गंध देता है। महावीर के जीवन में जिन लोगों को जानकारी थी, जो उनके निकट थे वे बहुत चकित थे कि उनके शरीर से दुर्गंध नहीं आती। असल में महावीर ऐसे जीते हैं, जैसे पशु पक्षी जीते हैं, उतने ही नियति पर अपने को छोड़ कर। जो मर्जी इस विराट की, इस अनंत सत्ता की जो मर्जी, वही उसके लिए राजी। ऐसा भी नहीं कि पसीना आएगा तो वे परेशान होंगे, कि नाराज ही होंगे। पसीने के लिए राजी होंगे; दुर्गंध आएगी, दुर्गंध के लिए राजी होंगे। असल में राजी होने से एक नई तरह की सुगंध जीवन में आनी शुरू होती है। एक्सेप्टिबिलिटी। जब हम सब स्वीकार कर लेते हैं तो एक अनूठी सुगंध से जीवन भरना शुरू हो जाता है। सब दुर्गंध अस्वीकार की दुर्गंध है। सब दुर्गंध अस्वीकार की दुर्गंध है और सब कुरूपता अस्वीकार की कुरूपता है। स्वीकार के साथ ही एक अनूठा सौंदर्य है और स्वीकार के साथ ही एक अनूठी सुगंध से जीवन भर जाता है, एक सुवास से जीवन भर जाता है। महावीर को पानी गिरे तो समझेंगे, स्नान कराना था बादलों को। इसको जब कथाओं में लिखा गया तो हमने बड़ी भूलें कर दीं। क्योंकि कथाएं तो कवि लिखते हैं, और जब लिखते हैं तो फिर प्रतीक और सारा काव्य उसमें संयुक्त होता है, मिथ बन जाती है। कवियों ने जब इसी बात को कहा तो खराब हो गई बात। मजा चला गया। कवियों ने कहा--जब देवताओं ने स्नान करवाया, सब बात खराब हो गई, उसका मजा चला गया। वह मजा ही चला गया, बात ही खत्म हो गई। अभिषेक देवताओं ने किया। महावीर खुद तो स्नान नहीं करते तो देवता बेचैन हो गए, वे आए और उन्होंने स्नान करवाया। असल में ऐसी बात नहीं है। बात कुल इतनी ही है कि महावीर ने समस्त पर स्वयं को छोड़ दिया। जब बादल बरसे, स्नान हो गया। लेकिन उन दिनों लोग बादलों को भी देवता कहते थे। इंद्र था, तो कथा में जब लिखा गया तो लिखा गया कि इंद्र आया और उसने स्नान करवाए। ये सब प्रतीक हैं। बात कुल इतनी है कि महावीर ने छोड़ दिया नियति पर, प्रकृति पर सब, जो करना हो कर, मैं राजी हूं।
यह राजी होना अहिंसा है। और इस राजी होने के लिए उन्होंने अनशन को प्राथमिक सूत्र कहा है। क्यों? क्योंकि आप राजी कैसे होंगे, जब तक आपकी सब इंद्रियां आपसे राजी नहीं हैं तो आप प्रकृति से राजी कैसे होंगे? इसे थोड़ा देख लें। यह डबल हिस्सा है। आपकी इंद्रियां ही आपसे राजी नहीं है--पेट

कहता है, भोजन दो; शरीर कहता है कपड़े, दो; पीठ कहती है, विश्राम चाहिए। आपकी एक-एक इंद्रिय आपसे बगावत किए हुए है। वह कहती है, यह दो, नहीं तो तुम्हारी जिंदगी बेकार है, अकारथ है। तुम बेकार जी रहे हो। मर जाओ, इससे तो बेहतर है अगर एक अच्छा बिस्तर नहीं जुटा पा रहे हो--मर जाओ। आपकी इंद्रियां आपसे नाराजी हैं, आपसे राजी नहीं हैं। और आपको खींच रही हैं, तो आप इस विराट से कैसे राजी हो पाएंगे! इतने छोटे से शरीर में इतनी छोटी सी इंद्रियां आपसे राजी नहीं हो पातीं, तो इस विराट शरीर में, इस ब्रह्मांड में आप कैसे राजी हो पाएंगे। और फिर जब तक आपका ध्यान
इंद्रियों से उलझा है तब तक आपका ध्यान उस विराट पर जाएगा भी कैसे, यहीं क्षुद्र में ही अटका रह जाता है। कभी पैर में कांटा गड़ जाता है, कभी सिर में दर्द हो जाता है; कभी यह पसली दुखती है, कभी वह इंद्रिय मांग करती है। इन्हीं के पीछे दौड़ते-दौड़ते सब समय जाया हो जाता है।
तो महावीर कहते हैं--पहले इन इंद्रियों को अपने से राजी करो। अनशन का वही अर्थ है, पेट को अपने से राजी करो, तुम पेट से राजी मत हो जाओ। जानो भलीभांति कि पेट तुम्हारे लिए है, तुम पेट के लिए नहीं हो। लेकिन बहुत कम लोग हैं जो हिम्मत से यह कह सकें कि हम पेट के लिए नहीं हैं। भलीभांति वह जानते हैं कि हम पेट के लिए हैं, पेट हमारे लिए नहीं है। हम साधन हैं और पेट साध्य हो गया है। पेट का अर्थ, सभी इंद्रियां साध्य हो गई हैं। खींचती रहती हैं, बुलाती रहती हैं, हम दौड़ते रहते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपने मकान पर बैठ कर खप्पर ठीक कर रहा है। वर्षा आने के करीब है, वह अपने खपड़े ठीक कर रहा है। एक भिखारी ने नीचे से आवाज दी कि नसरुद्दीन नीचे आओ। नसरुद्दीन ने कहा कि तुझे क्या कहना है, वहीं से कह दे। उसने कहाः माफ करो, नीचे आओ। नसरुद्दीन बेचारा सीढ़ियों से नीचे उतरा, भिखारी के पास गया। भिखारी ने कहा कि कुछ खाने को मिल जाए। नसरुद्दीन ने कहाः नासमझ! यह तो तू नीचे से ही कह सकता था। इसके लिए मुझे नीचे बुलाने की जरूरत? उसने कहाः बड़ा संकोच लगता था, जोर से बोलूंगा, कोई सुन लेगा। नसरुद्दीन ने कहाः बिल्कुल ठीक। चल, ऊपर चल। भिखारी बड़ा मोटा तगड़ा था। बामुश्किल चढ़ पाया। जाकर नसरुद्दीन ऊपर अपने खपड़े जमाने में लग गया। थोड़ी देर भिखारी खड़ा रहा। उसने कहा कि भूल गए क्या? नसरुद्दीन ने कहाः भीख नहीं देनी है, यही कहने के लिए ऊपर लाया हूं। उसने कहाः तू आदमी कैसा है, नीचे ही क्यों न कह दिया? नसरुद्दीन ने कहाः बड़ा संकोच लगा। कोई सुन लेगा। जब तू भिखारी होकर मुझे नीचे बुला सकता है तो मैं मालिक होकर तुझे ऊपर नहीं बुला सकता?
पर सब इंद्रियां हमें नीचे बुलाए चली जाती हैं, हम इंद्रियों को ऊपर नहीं बुला पाते। अनशन का अर्थ है--इंद्रियों को हम ऊपर बुलाएंगे, हम इंद्रियों के साथ नीचे नहीं जाएंगे।

आज इतना ही।
कल हम दूसरे तथ्य पर विचार करेंगे। लेकिन पांच मिनट जाएंगे नहीं, बैठे रहेंगे।

महावीर-वाणी, भाग 1
ग्यारहवां प्रवचन

ऊणोदरी एवं वृत्ति-संक्षेप (धम्म-सूत्र)

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मे सया मणो।।

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

अनशन के बाद महावीर ने दूसरा बाह्य-तप ऊणोदरी कहा है। ऊणोदरी का अर्थ हैः अपूर्ण भोजन, अपूर्ण आहार। आश्चर्य होगा कि अनशन के बाद ऊणोदरी के लिए क्यों महावीर ने कहा है! अनशन का अर्थ तो है निराहार। अगर ऊणोदरी को कहना भी था तो अनशन के पहले कहना था, थोड़ा आहार। और आमतौर से जो लोग भी अनशन का अभ्यास करते हैं वे पहले ऊणोदरी का अभ्यास करते हैं। वे पहले आहार को कम करने की कोशिश करते हैं। जब आहार कम में सुविधा हो जाती है, आदत हो जाती है तभी वे अनशन का प्रयोग करते हैं और वह बिल्कुल ही गलत है। महा वीर ने जान कर ही पहले अनशन कहा और फिर ऊणोदरी कहा। ऊणोदरी का अभ्यास आसान है। लेकिन एक बार ऊणोदरी का अभ्यास हो जाए तो अभ्यास हो जाने के बाद अनशन का कोई अर्थ, कोई प्रयोजन नहीं रह जाता। वह मैंने आपसे कल कहा कि अनशन तो जितना आकस्मिक हो और जितना अभ्यासशून्य हो, जितना प्रयत्नरहित हो, जितना अव्यवस्थित और अराजक हो, उतनी ही बड़ी छलांग भीतर दिखाई पड़ती है।
ऊणोदरी को द्वितीय नंबर महावीर ने दिया है, उसका कारण समझ लेना जरूरी है। ऊणोदरी शब्द का तो इतना ही अर्थ होता है कि जितना पेट मांगे उतना नहीं देना। लेकिन आपको यह पता ही नहीं है कि पेट कितना मांगता है। और अक्सर जितना मांगता है वह पेट नहीं मांगता है, वह आपकी आदत मांगती है। और आदत में और स्वभाव में फर्क न हो तो अत्यंत कठिन हो जाएगी बात। जब रोज आपको भूख लगती है, तो आप इस भ्रम में मत रहना कि भूख लगती है। स्वाभाविक भूख तो बहुत मुश्किल से लगती है; नियम से बंधी हुई भूख रोज लग आती है।
जीव विज्ञानी कहते हैं, बायोलॉजिस्ट कहते हैं कि आदमी के भीतर एक बायोलॉजिकल क्लाक है, आदमी के भीतर एक जैविक घड़ी है। लेकिन आदमी के भीतर एक हैबिट क्लाक भी है, आदत की घड़ी भी है। और जीव विज्ञानी जिस घड़ी की बात करते हैं, जो हमारे गहरे में है उसके ऊपर हमारी आदत की घड़ी जो हमने अभ्यास से निर्मित कर ली है। इस पृथ्वी पर ऐसे कबीले हैं, जो दिन में एक ही बार भोजन करते हैं, हजारों वर्ष से। और जब उन्हें पहली बार पता चला कि ऐसे लोग भी हैं जो दिन में दो बार भोजन करते हैं तो वे बहुत हैरान हुए। उनकी समझ में ही नहीं आया कि दिन में दो बार भोजन करने का क्या प्रयोजन होता है! इस पृथ्वी पर ऐसे कबीले हैं जो दिन में दो बार भोजन कर रहे हैं हजारों वर्षों से। ऐसे भी कबीले हैं जो दिन में पांच बार भी भोजन कर रहे हैं। इसका बायोलॉजिकल, जैविक जगत से कोई संबंध नहीं है। हमारी आदतों की बात है। आदतें हम निर्मित कर लेते हैं इसलिए आदतें हमारा दूसरा स्वभाव बन जाती हैं। और हमारा फिर पहला प्राथमिक स्वभाव आदतों के जाल के नीचे ढंक जाता है।
झेन फकीर बोकोजू से किसी ने पूछा कि तुम्हारी साधना क्या है? उसने कहाः जब मुझे भूख लगती है तब मैं भोजन करता हूं। और जब मुझे नींद आती है तब मैं सो जाता हूं। और जब मेरी नींद टूटती है तब मैं जग जाता हूं। उस आदमी ने कहाः यह भी कोई साधना है, यह तो हम सभी करते हैं! बोकोजू ने कहाः काश, तुम सभी यह कर लो तो इस पृथ्वी पर बुद्धों की गिनती करना मुश्किल हो जाए। यह तुम नहीं करते हो। तुम्हें जब भूख नहीं लगती, तब भी तुम खाते हो। और जब तुम्हें भूख लगती है तब भी तुम हो सकता है, न खाते हो। और जब तुम्हें नींद

नहीं आती, तब तुम सो जाते हो। और यह भी हो सकता है कि जब तुम्हें नींद आती हो तब तुम न सोते हो। और जब तुम्हारी नींद नहीं टूटती तब तुम उसे तोड़ लेते हो, और जब टूटनी चाहिए तब तुम सोए रह जाते हो। यह विकृति हमारे भीतर दोहरी प्रक्रियाओं से हो जाती है। एक तो हमारा स्वभाव है, जैसा प्रकृति ने हमें निर्मित किया। प्रकृति सदा संतुलित है। प्रकृति उतना ही मांगती है जितनी जरूरत है। आदतों का कोई अंत नहीं है। आदतें अभ्यास है, और अभ्यास से कितना ही मांगा जा सकता है।
सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन के गांव में एक प्रतियोगिता हुई
कि कौन आदमी सबसे ज्यादा भोजन कर सकता है। मुल्ला ने सभी प्रतियोगियों को बहुत पीछे छोड़ दिया। कोई बीस रोटी पर रुक गया, कोई पच्चीस रोटी पर रुक गया, कोई तीस रोटी पर रुक गया। फिर लोग घबड़ाने लगे क्योंकि मुल्ला पचास रोटी पर चल रहा था, और लोग रुक गए थे। लोगों ने कहाः मुल्ला, अब तुम जीत ही गए हो। अब तुम अकारण अपने को परेशान मत करो, अब तुम रुको। मुल्ला ने कहाः मैं एक ही शर्त पर रुक सकता हूं कि मेरे घर कोई खबर न पहुंचाए, नहीं तो मेरा सांझ का भोजन पत्नी नहीं देगी। यह खबर घर तक न जाए कि मैं पचास रोटी खा गया, नहीं तो सांझ का भोजन गड़बड़ हो जाएगा।
आप इस पेट को अप्राकृतिक रूप से भी भर सकते हैं, विक्षिप्त रूप से भी
भर सकते हैं। पेट को ही नहीं, यहां उदर केवल सांकेतिक है। हमारी प्रत्येक इंद्रिय का उदर है; हमारी प्रत्येक इंद्रिय का पेट है। और आप प्रत्येक इंद्रिय के उदर को जरूरत से ज्यादा भर सकते हैं। जितना देखने की जरूरत नहीं है उतना हम देखते हैं। जितना सुनने की जरूरत नहीं है उतना हम सुनते हैं। और इसका परिणाम बड़ा अदभुत होता है। वह परिणाम यह होता है कि जितना ज्यादा हम सुनते हैं उतने ही सुनने की क्षमता और संवेदनशीलता कम हो जाती है; इसलिए तृप्ति भी नहीं मिलती है। और जब तृप्ति नहीं मिलती तो विसियस सर्किल पैदा होता है। हम सोचते हैं और ज्यादा देखें तो तृप्ति मिलेगी। और ज्यादा खाएं तो तृप्ति मिलेगी। जितना ज्यादा खाते हैं उतना ही वह जो स्वभाव की भूख है, वह दबती और नष्ट होती है। और वही तृप्त हो सकती है। और जब वह दब जाती है, नष्ट हो जाती है, विस्मृत हो जाती है तो आपकी जो आदत की भूख है, वह कभी तृप्त नहीं हो सकती है क्योंकि उसकी तृप्ति का कोई अंत नहीं है। निरंतर हम सुनते हैं कि वासनाओं का कोई अंत नहीं है। लेकिन सच्चाई यह
है कि स्वभाव में जो भी वासनाएं हैं, उन सबका अंत नहीं है। आदत से जो वासनाएं हम निर्मित करते हैं उनका कोई अंत नहीं है। इसलिए किसी जानवर को आप बीमारी में खाने के लिए राजी नहीं कर सकते। जो होशियार जानवर हैं वे तो जरा बीमार होंगे कि वॉमिट कर देंगे, वह जो पेट में है उसे बाहर फेंक देंगे। वे प्रकृति से जीते हैं, आदमी आदत से जीता है और आदत से जीने के कारण हम अपने को रोज-रोज अस्वाभाविक करते चले जाते हैं। यह अस्वाभाविक होना इतना ज्यादा हो जाता है कि हमें याद ही नहीं रहता है कि हमारी प्राकृतिक आकांक्षाएं क्या हैं!
तो बायोलॉजिस्ट जिस जीव घड़ी की बात करते हैं, वह हमारे भीतर है। पर हम उसकी सुनें तब! वह हमें कहती है--कब भूख लगी है; वह हमें कहती है कि कब सो जाना है; वह हमें कहती है कि कब उठ आना है। लेकिन हम उसकी सुनते नहीं, हम उसके ऊपर अपनी व्यवस्था देते हैं। तो ऊणोदरी बहुत कठिन है। कठिन इस लिहाज से है कि आपको पहले तो यही पता नहीं कि स्वाभाविक भूख कितनी है। तो पहले तो स्वाभाविक भूख खोजनी पड़े। इसीलिए अनशन को पहले रखा है। अनशन आपकी स्वाभाविक भूख को खोजने में सहयोगी होगा। जब आप बिल्कुल भूखे रहेंगे--जब भूखे रहेंगे, लेकिन इस संकल्प पर आप पीछे चलेंगे तो आप थोड़े ही समय में पाएंगे कि आदत की भूख तो भूल गई क्योंकि वह असली भूख न थी। वह दो चार दिन पुकार कर आवाज दे दी कि भूख लगी है, ठीक समय पर। फिर दो-चार दिन आप उसकी नहीं सुनेंगे, वह शांत हो जाएगी। फिर आपके भीतर से स्वाभाविक भूख आवाज देगी। जब आप उसकी भी नहीं सुनेंगे तभी आपके भीतर का यंत्र रूपांतरित होगा और आप स्वयं को पचाने के काम में लगेंगे।
तो पहले आदत की भूख टूटेगी। वह तीन दिन में टूट जाती है, चार दिन में टूट जाती है; एक दो दिन किसी को आगे पीछे लगता है। फिर स्वाभाविक भूख की

व्यवस्था टूटेगी और तब आप दूसरी व्यवस्था पर जाएंगे। लेकिन अनशन में आपको पता चल जाएगा कि झूठी आवाज क्या थी और सच्ची आवाज क्या थी। क्योंकि झूठी आवाज मानसिक होगी। ध्यान रहे, सेरिब्रल होगी। जब आपको झूठी भूख लगेगी तो मन कहेगा कि भूख लगी है। और जब असली भूख लगेगी तो पूरे शरीर का रोयां-रोयां कहेगा कि भूख लगी है। अगर झूठी भूख लगी है, अगर आप बारह बजे रोज दोपहर भोजन करते हैं तो ठीक बारह बजे लग जाएगी। लेकिन अगर किसी ने घड़ी एक घंटा आगे पीछे कर दी हो तो घड़ी में जब बारह बजेंगे तब लग जाएगी। आपको पता नहीं होना चाहिए कि अब एक बज गया है, और घड़ी में बारह ही बजे हों, तो आप एक बजे तक बिना भूख लगे रह जाएंगे। क्योंकि आदत की, मन की भूख मानसिक है, शारीरिक नहीं है। वह बाहर की घड़ी देखती रहती है, बारह बज गए, भूख लग गई। ग्यारह ही बजे हों असली में लेकिन घड़ी में बारह बजा दिए गए हों तो आपकी भूख का क्रम तत्काल पैदा हो जाएगा कि भूख लग गई। मानसिक भूख मानसिक है; झूठी भूख मानसिक है। वह मन से लगती है, शरीर से नहीं। तीन चार दिन के अनशन में मानसिक भूख की व्यवस्था टूट जाती है। शारीरिक भूख शुरू होती है। आपको पहली दफा लगता है कि शरीर से भूख आ रही है। इसको हम और तरह से देख सकते हैं।
मनुष्य को छोड़ कर सारे पशु और पक्षियों की यौन व्यवस्था सावधिक है।
एक विशेष मौसम में वे यौन पीड़ित होते हैं, कामातुर होते हैं; बाकी वर्ष भर नहीं होते। सिर्फ आदमी अकेला जानवर है जो वर्ष भर काम पीड़ित होता है। यह काम पीड़ा मानसिक है, मेंटल है। अगर आदमी भी स्वाभाविक हो तो वह भी एक सीमा में, एक समय पर का मातुर होगा; शेष समय कामातुरता नहीं होगी। लेकिन आदमी ने सभी स्वाभाविक व्यवस्था के ऊपर मानसिक व्यवस्था जड़ दी है। सभी चीजों के ऊपर उसने अपना इंतजाम अलग से कर लिया है। वह अलग इंतजाम हमारे जीवन की विकृति है, और हमारी विक्षिप्तता है। न तो आपको पता चलता है कि आप में कामवासना जगी है, वह स्वाभाविक है, बायोलॉजिकल है या साइकोलॉजिकल है! आपको पता नहीं चलता क्योंकि बायोलॉजिकल कामवासना को आपने जाना ही नहीं है। इसके पहले कि वह जगती, मानसिक कामवासना जग जाती है। छोटे-छोटे बच्चे जो कि चौदह वर्ष में जाकर बायोलॉजिकली मेच्योर होंगे, जैविक अर्थों में कामवासना के योग्य होंगे, लेकिन चौदह वर्ष के पहले ही मानसिक वासना के वे बहुत पहले योग्य और समर्थ हो गए होते हैं।
सुना है मैंने कि एक बूढ़ी औरत अपने नाती-पोतों को लेकर अजायबघर में गई। वहां स्टार्क नाम के पक्षी के बाबत यूरोप में कथा है, बच्चों को समझाने के लिए कि जब घर में बच्चे पैदा होते हैं तो बड़े-बूढ़ों से बच्चे पूछते हैं कि बच्चे कहां से आए? तो बड़े-बूढ़े कहते हैं--यह स्टार्क पक्षी ले आया। वहां अजायबघर में स्टार्क पक्षी के पास वह बूढ़ी गई। उन बच्चों ने पूछाः यह कौन सा पक्षी है? उस बूढ़ी ने कहाः यह वही पक्षी है जो बच्चों को लाता है। छोटे-छोटे बच्चे हैं, वे एक दूसरे की तरफ देख कर हंसे, और एक बच्चे ने अपने पड़ोसी बच्चे से कहा कि क्या इस नासमझ बूढ़ी को हम असली राज बता दें? मे वी टैल हर दि रियल सीक्रेट, दिस पुअर ओल्ड लेडी। इसको अभी तक पता नहीं इस गरीब को, यह अभी स्टार्क पक्षी से समझ रही है कि बच्चे आते हैं।
चारों तरफ की हवा, चारों तरफ का वातावरण बहुत छोटे-छोटे बच्चों के मन में एक मानसिक कामातुरता को जगा देता है। फिर यह मानसिक कामातुरता उनके ऊपर हावी हो जाती है, यह जीवन भर पीछा करती है। और उन्हें पता ही नहीं चलेगा कि जो बायोलॉजिकल अर्ज थी, वह जो जैविक वासना थी, वह उठ ही नहीं पाई, या जब उठी तब उन्हें पता नहीं चला। और तब एक अदभुत घटना घटेगी, और वह अदभुत घटना यह है कि वे कभी तृप्त न होंगे। क्योंकि मानसिक कामवासना कभी तृप्त नहीं हो सकती है, जो वास्तविक नहीं है वह तृप्त नहीं हो सकता। असली भूख तृप्त हो सकती है; झूठी भूख तृप्त नहीं हो सकती। इसलिए वासनाएं तो तृप्त हो सकती हैं लेकिन हमारे द्वारा जो कल्टीवेटेड डिजायर्स हैं, हमने ही जो आयोजन कर ली हैं वासनाएं, वे कभी तृप्त नहीं हो सकतीं।
इसलिए पशु-पक्षी, वे भी वासनाओं में जीते हैं, लेकिन हमारे जैसे तनावग्रस्त नहीं हैं। कोई तनाव नहीं दिखाई पड़ता उनमें। गाय की आंख में झांककर देखिए, वह कोई निर्वासना को उपलब्ध नहीं हो गई है, कोई ऋषि-मुनि नहीं हो गई है, कोई तीर्थंकर नहीं हो गई है, पर उसकी आंखों में वही सरलता

होती है जो तीर्थंकर की आंखों में होती है। बात क्या है? वह तो वासना में जी रही है। लेकिन फिर भी उसकी वासना प्राकृतिक है। प्राकृतिक वासना तनाव नहीं लाती है। ऊपर नहीं ले जा सकती प्राकृतिक वासना, लेकिन नीचे भी नहीं गिराती। ऊपर जाना हो तो प्राकृतिक वासना से ऊपर उठना होता है। लेकिन अगर नीचे गिरना हो तो प्राकृतिक वासना के ऊपर अप्राकृतिक वासना को स्थापित करना होता है।
तो अनशन को महावीर ने पहले कहा था कि झूठी भूख टूट जाए, असली भूख का पता चल जाए, जब रोआं-रोआं पुकारने लगे। आपको प्यास लगती है। जरूरी नहीं है कि वह प्यास असली हो। हो सकता है अखबार में कोके का एडवरटाइजमेंट देख कर लगी हो। जरूरी नहीं है कि वह प्यास वास्तविक हो। अखबार में देख कर भी-- लिव्वा लिटिल हॉट लग गई हो। वैज्ञानिक, विशेष कर विज्ञापन विशेषज्ञ भलीभांति जानते हैं कि आपको झूठी प्यासें पकड़ाई जा सकती हैं और वे आपको झूठी प्यासें पकड़ा रहे हैं। आज जमीन पर जितनी चीजें बिक रही हैं, उनकी कोई जरूरत नहीं है। आज करीब-करीब दुनिया की पचास प्रतिशत इंडस्ट्री उन जरूरतों को पूरा करने में लगी हैं जो जरूरतें हैं ही नहीं। पर वे पैदा की जा सकती हैं। आदमी को राजी किया जा सकता है कि जरूरतें हैं। और एक दफा उसके मन में ख्याल आ जाए कि जरूरत है, तो जरूरत बन जाती है।
प्यास तो आपको पता ही नहीं है, वह तो कभी रेगिस्तान में कल्पना करें
कि किसी रेगिस्तान में भटक गए हैं आप। पानी का कोई पता नहीं है। तब आपको प्यास लगेगी, वह आपके रोएं-रोएं की प्यास होगी। वह आपके शरीर का कण-कण मांगेगा। वह मानसिक नहीं हो सकता, वह किसी अखबार के विज्ञापन को पढ़कर नहीं लगी होगी। तो अनशन आपके भीतर वास्तविक को उघाड़ने में सहयोगी होगा। और जब वास्तविक उघड़ जाए तो महावीर कहते हैं, ऊणोदरी। जब वास्तविक उघड़ जाए तो वास्तविक से कम लेना। जितनी वास्तविक-अवास्तविक भूख को तो पूरा करना ही मत, वह तो खतरनाक है। वास्तविक भूख का जब पता चल जाए तब वास्तविक भूख से भी थोड़ा कम लेना, थोड़ी जगह खाली रखना। इस खाली रखने में क्या राज हो सकता है? आदमी के मन के नियम समझना जरूरी है।
हमारे मन के नियम ऐसे हैं कि हम जब भी कोई काम में लगते हैं, या किसी वासना की तृप्ति में या किसी भूख की तृप्ति में लगते हैं, तब एक सीमा हम पार करते हैं। वहां तक भूख या वासना ऐच्छिक होती है, वालंटरी होती है। उस सीमा के बाद नॉन-वालंटरी हो जाती है। जैसे हम पानी को गर्म करते हैं। पानी सौ डिग्री पर जाकर भाप बनता है। लेकिन अगर आप निन्यानबे डिग्री पर रुक जाएं तो पानी वापस पानी ही ठंडा हो जाएगा। लेकिन अगर आप सौ डिग्री के बाद रुकना चाहें तो फिर पानी वापस नहीं लौटेगा, वह भाप बन चुका होगा। एक डिग्री का फासला फिर लौटने नहीं देगा, फिर नो-रिटर्न पॉइंट आ जाता है। अगर आप सौ डिग्री के पहले निन्यानबे डिग्री पर रुक गए तो पानी गर्म होकर फिर ठंडा होकर पानी रह जाएगा। भाप नहीं बनेगा। आप रुक सकते हैं, अभी रुकने का उपाय है। सौ डिग्री के बाद अगर आप रुकते हैं तो पानी भाप बन चुका होगा। फिर पानी आपको मिलेगा नहीं। आपके हाथ के बाहर बात हो गई।
जब आप क्रोध के विचार से भरते हैं, तब भी एक डिग्री आती है, उसके पहले
आप रुक सकते थे। उस डिग्री के बाद आप नहीं रुक सकेंगे क्योंकि आपके भीतर वालंटरी मेकेनिज्म जब अपनी वृत्ति को नॉन-वालंटरी मैकेनिज्म को सौंप देता है, फिर आपके रुकने के बाहर बात हो जाती है। इसे ठीक से समझ लें। जब ऐच्छिक यंत्र सबसे पहले आपके भीतर कोई भी चीज इच्छा की भांति शुरू होती है। एक सीमा है, अगर आप इच्छा को बढ़ाए ही चले गए तो एक सीमा पर इच्छा का यंत्र आपके भीतर जो आपकी इच्छा के बाहर चलने वाला यंत्र है, उसको सौंप देता है। उसके हाथ में जाने के बाद आप नहीं रोक सकते। अगर आप क्रोध एक सीमा के पहले रोक लिए तो रोक लिए, एक सीमा के बाद क्रोध नहीं रोका जा सकेगा, वह प्रकट होकर रहेगा। अगर आपने कामवासना को एक सीमा पर रोक लिया तो ठीक, अन्यथा एक सीमा के बाद कामवासना आ पके ऐच्छिक यंत्र के बाहर हो जाएगी। फिर आप उसको नहीं रोक सकते। फिर आप विक्षिप्त की तरह उसको पूरा करके ही रहेंगे, फिर उसे रोकना मुश्किल है।

ऊणोदरी का अर्थ है--ऐच्छिक यंत्र से अनैच्छिक यंत्र के हाथ में जब जाती है कोई बात तो उसी सीमा पर रुक जाना। इसका मतलब इतना ही नहीं है केवल कि आप तीन रोटी रोज खाते हैं तो आज ढाई रोटी खा लेंगे तो ऊणोदरी हो जाएगी। नहीं, ऊणोदरी का अर्थ है--इच्छा के भीतर रुक जाना, आपकी सामर्थ्य के भीतर रुक जाना। अपनी सामर्थ्य के बाहर किसी बात को न जाने देना, क्योंकि आपकी सामर्थ्य के बाहर जाते ही आप गुलाम हो जाते हैं। फिर आप मालिक नहीं रह जाते। लेकिन मन पूरी कोशिश करेगा कि क्लाइमेक्स तक ले चलो, किसी भी चीज को उसके चरम तक ले चलो। क्योंकि मन को तब तक तृप्ति नहीं मालूम पड़ती जब तक कोई चीज चरम पर न पहुंच जाए। और मजा यह है कि चरम पर पहुंच जाने के बाद सिवाय विषाद, फ्रस्ट्रेशन के कुछ हाथ नहीं लगता। तृप्ति हाथ नहीं लगती। अगर मन ने भोजन के संबंध में सोचना शुरू किया तो वह उस सीमा तक खाएगा जहां तक खा सकता है। और फिर दुखी, परेशान और पीड़ित होगा।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने बुढ़ापे में अपने गांव में मजिस्ट्रेट हो गया। पहला जो मुकदमा उसके हाथ में आया वह एक आदमी का था जो करीब-करीब नग्न, सिर्फ अंडरवियर पहने अदालत में आकर खड़ा हुआ। और उसने कहा कि मैं लूट लिया गया हूं और तुम्हारे गांव के पास ही लूटा गया हूं।
मुल्ला ने कहाः मेरे गांव के पास ही लूटे गए हो? क्या-क्या तुम्हारा लूट लिया गया है?
उसने सब फेहरिस्त बताई। मुल्ला ने कहाः लेकिन जहां तक मैं देख सकता हूं, तुम अंडरवियर पहने हुए हो।
उसने कहाः हां, मैं अंडरवियर पहने हुए हूं।
मुल्ला ने कहाः मेरी अदालत तुम्हारा मुकदमा लेने से इनकार करती है।
वी नैवर डु एनीथिंग हॉफ-हार्टेडली एण्ड पार्शियली। हमारे गांव में कोई आदमी आधा काम नहीं करता, न आधे हृदय से काम करता है। अगर हमारे गांव में लूटे गए थे तो अंडरवियर भी निकाल लिया गया होता। तुम किसी और गांव के आदमियों के द्वारा लूटे गए हो। तुम्हारा मुकदमा लेने से मैं इनकार करता हूं। ऐसा कभी हमारे गांव में हुआ ही नहीं है। जब भी हम कोई काम करते हैं, हम पूरा ही करते हैं।
जिस गांव में हम रहते हैं--इच्छाओं के जिस गांव में हम रहते हैं वहां
भी हम पूरा ही काम करते हैं। वहां भी इंच भर हम पहले नहीं लौटते। और चरम के बाद सिवाय विषाद के कुछ हाथ नहीं लगता। लेकिन जैसे ही हम किसी वासना में बढ़ना शुरू करते हैं, वासना खींचती है, और जितना हम आगे बढ़ते हैं, उसके खींचने की शक्ति बढ़ती जाती है और हम कमजोर होते चले जाते हैं।
महावीर कहते हैं--चरम पर पहुंचने के पहले रुक जाना। उसका मतलब यह है
कि जब किसी को क्रोध इतना आ गया हो कि वह हाथ उठा कर आपको चोट ही मारने लगे-- तब महावीर कहते हैं--जब हाथ दूसरे के सिर के करीब ही पहुंच जाए तब रुक जाना। तब तुम्हारी मालकियत का तुम्हें अनुभव होगा। उस वक्त रुकना सर्वाधिक कठिन है। बहुत कठिन है। उस वक्त मन कहेगा--अब क्या रुकना? मुसलमान खलीफा अली के संबंध में एक बहुत अदभुत घटना है। युद्ध के मैदान में लड़ रहा है। वर्षों से यह युद्ध चल रहा है। वह घड़ी आ गई जब उसने अपने दुश्मन को नीचे गिरा लिया और उसकी छाती पर बैठ गया और उसने अपना भाला उठाया और उसकी छाती में भोंकने को है। एक क्षण की और देर थी कि भाला दुश्मन की छाती में आरपार हो जाता। उस दुश्मन की, जो वर्षों से परेशान किए हुए था और इसी क्षण की प्रतीक्षा थी अली को। लेकिन उस नीचे पड़े दुश्मन ने, जैसे ही भाला अली ने भोंकने के लिए उठाया, अली के मुंह पर थूक दिया। अली ने अपना मुंह पर पड़ा थूक पोंछ लिया, भाला वापस अपने स्थान पर रख दिया, और उस आदमी से कहा कि कल अब हम फिर लड़ेंगे। पर उस आदमी ने कहाः यह मौका अली तुम चूक रहे हो। मैं तुम्हारी जगह होता तो नहीं चूक सकता था। इसकी तुम वर्षों से प्रतीक्षा करते थे। मैं भी प्रतीक्षा करता था। संयोग कि तुम ऊपर हो, मैं नीचे हूं। प्रतीक्षा मेरी भी यही थी। अगर तुम्हारी जगह मैं होता तो यह उठा हुआ भाला वापस नहीं लौट सकता था। इसी के लिए तो दो वर्ष से परेशान हैं। तुम क्यों छोड़ कर जा रहे हो?

अली ने कहाः मुझे मोहम्मद की आज्ञा है कि अगर हिंसा भी करो तो क्रोध में मत करना। हिंसा भी करो तो क्रोध में मत करना। एक तो हिंसा करना मत और अगर हिंसा भी करो तो क्रोध में मत करना। अभी तक मैं शांति से लड़ रहा था। लेकिन तेरा मेरे ऊपर थूक देना, मेरे मन में क्रोध उठ आया। अब कल हम फिर लड़ेंगे। अभी तक मैं शांति से लड़ रहा था, अभी तक कोई क्रोध की आग न थी। ठीक था, सब ठीक था। निपटारा करना था, कर रहा था। हल निकालना था, निकाल रहा था। लेकिन कोई क्रोध की लपट न थी। लेकिन तूने थूक कर क्रोध की लपट पैदा कर दी। अब अगर इस वक्त मैं तुझे मारता हूं तो यह मारना व्यक्तिगत और निजी है। मैं मार रहा हूं अब। अब यह लड़ाई किसी सिद्धांत की लड़ाई नहीं है। इसलिए अब कल फिर लड़ेंगे।
कल तो वह लड़ाई नहीं हुई क्योंकि उस आदमी ने अली के पैर पकड़ लिए। उसने कहाः मैं सोच भी नहीं सकता था कि वर्षों के दुश्मन की छाती के पास आया हुआ भाला किसी भी कारण से लौट सकता है, और ऐसे समय में तो लौट ही नहीं सकता जब मैंने थूका था, तब तो और जोर से चला गया होता।
मन के नियम हैं। ऊणोदरी का अर्थ हैः जहां मन सर्वाधिक जोर मारे, उसी सीमा से वापस लौट जाएं। जहां मन कहे कि एक और, और जहां सर्वाधिक जोर मारता हो। अब इस संतुलन को खोजना पड़ेगा। इसे रोज-रोज प्रयोग करके प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर खोज लेगा कि कब मन बहुत जोर मारता है, और कब इच्छा के बाहर बात हो जाती है। फिर ऐसा नहीं होता कि आप मार रहे हैं, ऐसा होता है कि आपसे मारा जा रहा है। फिर ऐसा नहीं होता कि आपने चांटा मारा, फिर ऐसा होता है कि अब आप चांटा मारने से रुक ही न सकते थे। वही जगह लौट आने की है, वही ऊण की जगह है। वहीं से वापस लौट आने का नाम है अपूर्ण पर छूट जाना।
ऊणोदरी का अर्थ हैः अपूर्ण रह जाए उदर, पूरा न भर पाए। तो आप चार रोटी खाते हैं, तीन खा लें तो उससे कुछ ऊणोदरी नहीं हो जाएगी। पहले वास्तविक भूख खोज लें, फिर वास्तविक भूख को खोज कर भोजन करने बैठें। किसी भी इंद्रिय का भोजन हो, यह सवाल नहीं है। फिल्म देखने आप गए हैं। नब्बे प्रतिशत फिल्म आपने देख ली है, तभी असली वक्त आता है जब छोड़ना बहुत मुश्किल हो जाता है क्योंकि अंत क्या होगा! लोग उपन्यास पढ़ते हैं, तो अधिक लोग पहले अंत पढ़ लेते हैं कि अंत क्या होगा! इतनी जिज्ञासा मन की होती है अंत की। पहले अंत पढ़ लेते हैं, फिर शुरू करते हैं। लेकिन उपन्यास पढ़ रहे हैं और दो पन्ने रह गए हैं और डिटेक्टिव कथा है और अब इन दो पन्नों में ही सारा राज खुलने को है, और आप रुक जाएं तो ऊणोदरी है। ठहर जाएं, मन बहुत धक्के मारेगा कि अब तो मौका ही आया था जानने का। यह इतनी देर तो हम केवल भटक रहे थे, अब राज खुलने के करीब था। डिटेक्टिव कथा थी, अब तो राज खुलता। अभी रुक जाएं और भूल जाएं।
फिल्म देख रहे हैं, आखिरी क्षण आ गया है। अभी सब चीजें क्लाइमेक्स को छुएंगी। उठ जाएं और लौट कर याद भी न आए कि अंत क्या हुआ होगा। किसी से पूछने को भी न जाएं कि अंत क्या हुआ। ऐसे चुपचाप उठ कर चले जाएं, जैसे अंत हो गया। ऊणोदरी का अर्थ आपके ख्याल में दिलाना चाहता हूं। ऐसे उठ कर चले जाएं अंत होने के पहले, जैसे अंत हो गया। तो आपको अपने मन पर एक नये ढंग का काबू आना शुरू हो जाएगा। एक नई शक्ति आ पको अनुभव होगी। आपकी सारी शक्ति की क्षीणता, आपकी शक्ति का खोना, डिस्सीपेशन, आपकी शक्ति का रोज-रोज व्यर्थ नष्ट होना, आपकी मन की इस आदत के कारण है जो हर चीज को पूर्ण पर ले जाने की कोशिश में लगी है। महावीर कहते हैं--पूर्ण पर जाना ही मत। उसके एक क्षण पहले, एक डिग्री पहले रुक जाना। तो तुम्हारी शक्ति जो पूर्ण को, चरम को छूकर बिखरती है और खोती है, वह नहीं बिखरेगी, नहीं खोएगी। तुम निन्यानबे डिग्री पर वापस लौट आओगे, भाप नहीं बन पाओगे। तुम्हारी शक्ति फिर संगृहीत हो जाएगी। तुम्हारे हाथ में होगी, और तुम धीरे-धीरे अपनी शक्ति के मालिक हो जाओगे।
इसे सब तरफ प्रयोग किया जा सकता है। प्रत्येक इंद्रिय का उदर है, प्रत्येक इंद्रिय का अपना पेट है, और प्रत्येक इंद्रिय मांग करती है कि मेरी भूख को पूरा करो। कान कहते हैं संगीत सुनो; आंख कहती है सौंदर्य देखो; हाथ कहते हैं कुछ स्पर्श करो। सब इंद्रियां मांग करती हैं कि हमें भरो।

प्रत्येक इंद्रिय पर ऊण पर ठहर जाना इंद्रिय विजय का मार्ग है। बिल्कुल ठहर जाना आसान है। ध्यान रहे, किसी उपन्यास को बिल्कुल न पढ़ना आसान है। नहीं पढ़ा बात खत्म हो गई। लेकिन किसी उपन्यास को अंत के पहले तक पढ़ कर रुक जाना ज्यादा कठिन है। इसलिए ऊणोदरी को नंबर दो पर रखा है। किसी फिल्म को न देखने में इतनी अड़चन नहीं है; लेकिन किसी फिल्म को देख कर और अंत के पहले ही उठ जाने में ज्यादा अड़चन है। किसी को प्रेम ही नहीं किया, इसमें ज्यादा अड़चन नहीं है; लेकिन प्रेम अपनी चरम सीमा पर पहुंचे, उसके पहले वापस लौट जाना अति कठिन है। उस वक्त आप विवश हो जाएंगे, आब्सेस्ड हो जाएंगे, उस वक्त तो ऐसा लगेगा कि चीज को पूरा हो जाने दो। जो भी हो रहा है उसे पूरा हो जाने दो। इस वृत्ति पर संयम मनुष्य की शक्तियों को बचाने की अत्यंत वैज्ञानिक व्यवस्था है।
ऊणोदरी अनशन का ही प्रयोग है लेकिन थोड़ा कठिन है। आमतौर से आपने सुना
और समझा होगा कि ऊणोदरी सरल प्रयोग है। जिससे अनशन नहीं बन सकता वह ऊणोदरी करे। मैं आपसे कहता हूं--ऊणोदरी अनशन से कठिन प्रयोग है। जिससे अनशन बन सकता है, वही ऊणोदरी कर सकता है।
महावीर का तीसरा सूत्र है, वृत्ति-संक्षेप। वृत्ति-संक्षेप से परंपरागत जो अर्थ लिया जाता है वह यह है कि अपनी वृत्तियों और वासनाओं को सिकोड़ना। अगर दस कपड़ों से काम चल सकता है तो ग्यारह पास में न रखना। अगर एक बार भोजन से काम चल सकता है तो दो बार भोजन न करना। ऐसा साधारण अर्थ है, लेकिन वह अर्थ केंद्र से संबंधित न होकर केवल परिधि से संबंधित है। नहीं, महावीर का अर्थ गहरा है और दूसरा है। इसे थोड़ा गहरे में समझना पड़ेगा। वृत्ति-संक्षेप एक प्रक्रिया है। आपके भीतर प्रत्येक वृत्ति का केंद्र है--जैसे, सेक्स का एक केंद्र है, भूख का एक केंद्र है, प्रेम का एक केंद्र है, बुद्धि का एक केंद्र है। लेकिन साधारणतः हमारे सारे केंद्र कनफ्यूज्ड हैं क्योंकि एक केंद्र का काम दूसरे केंद्र से हम लेते रहते हैं। दूसरे का तीसरे से लेते रहते हैं। काम भी नहीं हो पाता है, और केंद्र की शक्ति भी व्यय और व्यर्थ नष्ट होती है। गुरजिएफ कहा करता था--गुरजिएफ ने वृत्ति-संक्षेप के प्रयोग को बहुत आधारभूत बनाया था अपनी साधना में। गुरजिएफ कहा करता था कि पहले तो तुम अपने प्रत्येक केंद्र को स्पष्ट कर लो और प्रत्येक केंद्र के काम को उसी को सौंप दो, दूसरे केंद्र से काम मत लो। अब जैसे कामवासना है तो उसका अपना केंद्र है प्रकृति में, लेकिन आप मन से उस केंद्र का काम लेते हैं, सेरिब्रल हो जाता है सेक्स, मन में ही सोचते रहते हैं। कभी-कभी तो इतना सेरिब्रल हो जाता है कि वास्तविक कामवासना उतना रस नहीं देती, जितना कामवासना का चिंतन रस देता है। अब यह बहुत अजीब बात है। यह ऐसा हुआ है कि वास्तविक भोजन रस नहीं देता, जितना भोजन का चिंतन रस देता है। यह ऐसे हुआ है कि पहाड़ पर जाने में उतना मजा नहीं आता जितना घर बैठ कर पहाड़ पर जाने के संबंध में सोचने में, सपने देखने में मजा आता है। और हम प्रत्येक केंद्र को ट्रांसफर करते हैं, दूसरे केंद्र पर सरका देते हैं; इससे खतरे होते हैं। दो खतरे होते हैं--एक खतरा तो यह होता है कि जिस केंद्र का काम नहीं है, अगर उस पर हम कोई दूसरा काम डाल देते हैं तो वह उसे पूरी तरह तो कर नहीं सकता, वह उसका काम नहीं है। वह कभी नहीं कर सकता। इसलिए सदा अतृप्त बना रहेगा, तृप्त कभी नहीं हो सकता है। कहीं बुद्धि से सोच-सोच कर भूख तृप्त हो सकती है? कहीं कामवासना का चिंतन कामवासना को तृप्त कर सकता है? कैसे करेगा, वह उस केंद्र का काम ही नहीं है। वह तो ऐसा है जैसे कोई आदमी सिर के बल चलने की कोशिश करे। काम पैर का है, वह सिर से चलने की कोशिश करे। तो दोहरे दुष्परिणाम होंगे। जिस केंद्र से आप दूसरे केंद्र का काम ले रहे हैं, वह कर नहीं सकता है, एक। जो वह कर सकता था वह भी नहीं कर पाएगा। क्योंकि आप उसको ऐसे काम में लगा रहे हैं, उसकी शक्ति उसमें व्यय हो तो जो वह कर सकता था, नहीं कर पाएगा। और जिस केंद्र से आपने काम छीन लिया है, उस पर शक्ति इकट्ठी होती रहेगी। वह धीरे-धीरे विक्षिप्त होने लगेगा, क्योंकि उससे आप काम नहीं ले रहे हैं। आप पूरे के पूरे कनफ्यूज्ड हो जाएंगे। आप का व्यक्तित्व एक उलझाव हो जाएगा, एक सुलझाव नहीं।

गुरजिएफ कहता था--प्रत्येक केंद्र को उसके काम पर सीमित कर दो। महा वीर का वृत्ति-संक्षेप से यही अर्थ है। प्रत्येक वृत्ति को उसके केंद्र पर संक्षिप्त कर दो, उसके केंद्र के आस-पास मत फैलने दो, मत भटकने दो। तो व्यक्तित्व में एक सुगढ़ता आती है, स्पष्टता आती है और आप कुछ भी करने में समर्थ हो पाते हैं। अन्यथा हमारी सारी वृत्तियां करीब-करीब बुद्धि के आस-पास इकट्ठी हो गई हैं। तो बुद्धि जिस काम को कर सकती है वह नहीं कर पाती है, क्योंकि आप उससे दूसरे काम ले रहे हैं। और जो काम आप ले रहे हैं वह बुद्धि कर नहीं सकती क्योंकि वह उसकी प्रकृति के बाहर है, वह उसका काम नहीं है। इस दुनिया में जो इतनी बुद्धिहीनता है उसका कारण यह नहीं है कि इतने बुद्धिहीन आदमी पैदा होते हैं। इस दुनिया में जो इतनी स्टुपिडिटी दिखाई पड़ती है, इतनी जड़ता दिखाई पड़ती है, उसका यह कारण नहीं है कि इतने बुद्धि रिक्त लोग पैदा होते हैं, उसका कुल कारण इतना है कि बुद्धि जो काम कर सकती है वह आप उससे लेते नहीं। जो नहीं कर सकती है वह आप उससे लेते हैं। बुद्धि धीरे-धीरे मंद होती चली जाती है।
थोड़ा सोचें--कितने आदमी दुनिया में लंगड़े हैं, या कितने आदमी दुनिया में अंधे हैं, या कितने आदमी दुनिया में बहरे हैं? अगर दुनिया में बुद्धू भी होंगे तो वही अनुपात होगा, उससे ज्यादा नहीं हो सकता। लेकिन बुद्धू बहुत दिखाई पड़ते हैं। बुद्धि नाममात्र को पता नहीं चलती। क्या कारण हो सकता है, इतनी बुद्धि की कमी का? इसकी कमी का कारण यह नहीं है कि बुद्धि कम है, इसकी कमी का कुल कारण इतना है कि बुद्धि से जो काम लेना था वह आपने लिया नहीं, जो नहीं लेना था वह आपने लिया है। इससे बुद्धि धीरे-धीरे जड़ता को उपलब्ध हो जाती है। मनस्विद कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति प्रतिभा लेकर पैदा होता है, और प्रत्येक व्यक्ति जड़ होकर मरता है। बच्चे प्रतिभाशाली पैदा होते हैं और बूढ़े प्रतिभाहीन मरते हैं। होना उलटा चाहिए कि जितनी प्रतिभा लेकर बच्चा पैदा हुआ था उसमें और निखार आता, अनुभव उसमें और रंग जोड़ते। जीवन की यात्रा उसको और प्रगाढ़ करती। पर यह नहीं होता।
पिछले महायुद्ध में दस लाख सैनिकों का बुद्धि माप किया गया तो पाया गया कि साढ़े तेरह वर्ष उनकी मानसिक आयु थी--मानसिक आयु साढ़े तेरह वर्ष थी। उनकी उम्र पचास साल होगी शरीर से, किसी की चालीस होगी, किसी की तीस होगी और तब बहुत हैरान करने वाला निष्कर्ष अनुभव में आया कि शरीर तो बढ़ता जाता है और बुद्धि मालूम होती है, तेरह-चौदह के करीब ठहर जाती है। उसके बाद नहीं बढ़ती।
मगर यह औसत है। इस औसत में बुद्धिमान सम्मिलित हैं। यह औसत वैसे ही है जैसे हिंदुस्तान में आम आदमी की औसत आमदनी का पता लगाया जाए तो उसमें बिड़ला भी और डालमियां भी और साहू भी सब सम्मिलित होंगे। और जो औसत निकलेगी वह आम आदमी की औसत नहीं है क्योंकि उसमें धनपति भी सम्मिलित होंगे। अगर हम धनपतियों को अलग कर दें और आम आदमी की औसत पता लगाएं तो बहुत कम पाई जायेगी, वह बहुत कम हो जाएगी। नेहरू और लोहिया के बीच वही विवाद वर्षों तक चलता रहा पार्लियामेंट में। क्योंकि नेहरू जितना बताते थे, लोहिया उससे बहुत कम बताते थे। लोहिया कहते थे--पांच-दस आदमियों को छोड़ दें, ये औसत आदमी नहीं हैं, इनका क्या हिसाब रखना है! फिर बाकी को सोच लें तो फिर बाकी के पास तो नये पैसे में ही आमदनी रह जाती है। फिर कोई आमदनी नहीं रह जाती। लेकिन अगर सबकी आमदनी बांट दी जाए तो ठीक है। सबके पास आमदनी दिखाई पड़ती है, वह है नहीं।
यह जो तेरह-साढ़े तेरह वर्ष उम्र है, इसमें आइंस्टीन भी संयुक्त हो जाता है, इसमें बर्ट्रेंड रसल भी संयुक्त हो जाता है। यह औसत है। इसमें वे सारे लोग सम्मिलित हो जाते हैं जो शिखर छूते हैं बुद्धि का। इसमें बुद्धिहीनों के पास भी औसत में थोड़ा सा हिस्सा आ जाता है। इसमें शिखर के लोगों को छोड़ दें। अगर जमीन पर सौ आदमियों को छोड़ दिया जाए किसी भी युग में तो आम आदमी के पास बुद्धि की मात्रा इतनी कम रह जाती है कि उसको गणना करने की कोई भी जरूरत नहीं है। उससे कुछ नहीं होता। उससे इतना ही होता है, आप अपने घर से दफ्तर चले जाते हैं, दफ्तर से घर आ जाते हैं। उससे इतना ही होता है कि दफ्तर का आप ट्रिक सीख लेते हैं कि क्या क्या करना है। उतना करके लौट

आते है। घर में भी आप ट्रिक सीख लेते हैं। कि क्या-क्या बोलना, उतना बोल कर आप अपना काम चला लेते हैं। यह तो मशीन भी कर सकती है, और आपसे बेहतर ढंग से कर सकती है। इसलिए जहां भी मशीन और आदमी में काम्पटीशन होता है, आदमी हार जाता है। जहां भी मशीन से प्रतियोगिता हुई कि आप गए। मशीन से आप कहीं नहीं जीत सकते। जिस दिन आपकी जिस सीमा में मशीन से प्रतियोगिता होती है, उसी दिन आदमी बेकार हो जाते हैं।
अब अमरीका के वैज्ञानिक कहते हैं कि बीस साल के भीतर आदमी के लिए कोई काम नहीं रह जाएगा क्योंकि मशीनें सभी काम ज्यादा बेहतर ढंग से कर सकती हैं। और सबसे बड़ा सवाल जो उनके सामने है वह यही है कि बीस साल बाद हम आदमी का क्या करेंगे और इससे क्या काम लेंगे? अगर यह बेकाम हो जाएगा तो उपद्रव करेगा। इससे कुछ न कुछ तो काम लेना ही पड़ेगा। हो सकता है काम ऐसे लेना पड़े इस आदमी से जैसा घर-घर में बच्चे उपद्रव करते हैं तब खिलौने पकड़ा कर काम लिया जाता है। बस इतना ही काम लेना पड़ेगा कि कुछ खिलौने आपको पकड़ाने पड़ें। जिनमें आप घुंघरू वगैरह बजाते रहें। वह आपके लिए जरा बड़े ढंग के खिलौने होंगे। बिल्कुल बच्चे जैसे नहीं होंगे, क्योंकि उसमें आप नाराज होंगे। बाकी मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि बच्चों के खिलौनों में और बड़े आदमियों
के खिलौनों में सिर्फ कीमत का फर्क होता है, और कोई फर्क नहीं होता। वह गुड़िया से खेलते रहते हैं, आप एक स्त्री से खेलते रहते हैं। जरा कीमत का फर्क होता है। यह जरा महंगा खिलौना है। बाकी खेल वही है।
वृत्ति-संक्षेप का अर्थ है--दो कारणों से वृत्ति-संक्षेप पर महावीर
का जोर है--एक तो प्रत्येक काम को, प्रत्येक वृत्ति को उसके केंद्र पर कनसनट्रेट कर देना है। सबसे पहली तो जरूरत इसलिए है कि जो वृत्ति अपने केंद्र पर संगृहीत हो जाती है, कनसनट्रेट हो जाती है, एकाग्र हो जाती है, आपको उसके वास्तविक अनुभव मिलने शुरू होते हैं। और वास्तविक अनुभव से मुक्त हो जाना बहुत आसान है। यह वास्तविक अनुभव बहुत दुखद है। स्त्री की कल्पना से मुक्त होना बहुत कठिन है, क्योंकि धन के ढेर से मुक्त हो जाना बहुत आसान है। कल्पना से मुक्त होना कठिन है क्योंकि कल्पना कहीं फ्रस्ट्रेट ही नहीं होती, कल्पना तो दौड़ती चली जाती है, कोई अंत ही नहीं आता। कहीं ऐसा नहीं होता जहां कल्पना थक जाए, टूट जाए, हार जाए। वास्तविकता का तो हर जगह अंत आ जाता है। हर चीज टूट जाती है। प्रत्येक वृत्ति अपने केंद्र पर आ जाए तो इतनी सघन हो जाती है कि आपको उसके वास्तविक, एक्चुअल अनुभव होने शुरू होते हैं। और जितना वास्तविक अनुभव हो उतनी ही जल्दी छुटकारा है, क्योंकि उसमें कोई रस नहीं रह जाता। आपको पता चलता है, वह सिर्फ पागल मन की दौड़ थी, कुछ रस था नहीं। आपने सोचा था, कल्पना की थी, कोई रस था नहीं।
एक अनूठी घटना अमेरिका में इधर पिछले दस वर्षों में घटना शुरू हुई है। हिप्पी और बीटल और बीटनिक, इनके कारण एक अनूठी घटना शुरू हुई है। वह यह है कि पहली दफे हिप्पियों ने कामवासना को मुक्त भाव से भोगने का प्रयोग किया--मुक्त भाव से। जिन्होंने यह प्रयोग दस साल पहले शुरू किया था, उन्होंने सोचा था, बड़ा आनंद उपलब्ध होगा। क्योंकि जितनी स्त्रियां चाहिए, या जितने पुरुष चाहिए, जितने संबंध बनाने हैं उतने संबंध बनाने की स्वतंत्रता है। कोई ऊपरी बाधा नहीं है, कोई कानून नहीं है, कोई अदालत नहीं है, कोई ऊपरी बाधा नहीं है, दो व्यक्तियों की निजी स्वतंत्रता है। लेकिन दस साल में जो सबसे हैरानी का अनुभव हिप्पियों को हुआ है वह यह कि सेक्स बिल्कुल ही बेमानी मालूम पड़ने लगा, मीनिंगलेस। उसमें कोई मतलब ही नहीं रहा।
दस हजार साल पति-पत्नियों वाली दुनिया में सेक्स मीनिंगफुल बना रहा,
और दस साल में पति-पत्नी का हिसाब छोड़ दें, और सेक्स मीनिंगलेस हो जाता है। बात क्या है? बहुत तरह के प्रयोग हिप्पियों ने किए और सब प्रयोग बेमानी हो जाते। ग्रुप मैरिज--कि आठ लड़के और आठ लड़कियां शादी कर लेते हैं--ग्रुप मैरिज, एक दूसरे ग्रुप से मैरिज कर रहा है, एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से नहीं। अब इनमें से जो जिससे राजी होगा, जिस तरह राजी होगा, जिस तरह भी होगा--यह पति का ग्रुप है दस का या आठ का, या पत्नी का आठ का, ये दोनों ग्रुप

इकट्ठे हो गए, अब यह एक फेमिली है। अब इसमें सब पति हैं, सब पत्नियां हैं। ग्रुप सेक्स ने इस बुरी तरह अनुभव दिए कि अभी मैं एक अनुभवी व्यक्ति का, जो इन सारे अनुभवों से गुजरा, संस्मरण पढ़ रहा था। तो उसने लिखा कि अगर सेक्स में रस वापस लौटाना है तो वह पति-पत्नी वाली दुनिया बेहतर थी। सेक्स में रस वापस लौटाना--आप सोचते होंगे, ये अनैतिक हैं। आप सोचते होंगे, यह सब अनीति चल रही है। लेकिन आप हैरान होंगे कि जब भी कोई अनुभव पूरे रूप से मिलता है तो आप उसके बाहर हो जाते हैं। असल में सेक्स में रस बचाने के लिए परिवार और दांपत्य और विवाह की व्यवस्था है। ध्यान रहे, जिन मुल्कों में स्त्रियां बुर्का ओढ़ती हैं, उस मुल्क में जितनी स्त्रियां सुंदर होती हैं उतनी उस मुल्क में नहीं होतीं, जहां बुर्का नहीं ओढ़तीं।
नसरुद्दीन की जब शादी हुई और पत्नी का बुर्का उसने पहली दफे उघाड़ा तो
वह घबरा गया। क्योंकि बुर्का में ही देखा था इसको। बड़े सौंदर्य की कल्पनाएं की थीं। और जैसे सभी बुर्का उघाड़ने पर सौंदर्य विदा हो जाता है, ऐसा ही बिदा हो गया। घबड़ा गया। मुसलमान रिवाज है कि पत्नी पति के घर आकर पहली बार यह पूछती है उससे कि मुझे तुम किन-किन के सामने बुर्का उघाड़ने की आज्ञा देते हो? पत्नी ने पूछा। नसरुद्दीन ने कहाः जब तक कि तू मेरे सामने न उघाड़े और किसी के भी सामने उघाड़। इतना ही ध्यान रखना कि अब दुबारा दर्शन मुझे मत देना।
जो चीजें उघड़ जाती हैं, अर्थहीन हो जाती हैं। जो चीजें ढंकी रह जाती हैं, अर्थपूर्ण हो जाती हैं। आपने शरीर के जिन-जिन अंगों को ढांक लिया है उनको अर्थ दिया है। ढांक-ढांक कर आप अर्थ दे रहे हैं। आप सोच रहे हैं, ढांक कर आप बचा रहे हैं, लेकिन सत्य यह है कि ढांक कर आप अर्थ दे रहे हैं--यू आर क्रिएटिंग मीनिंग। कोई चीज ढांक लो उसमें अर्थ पैदा हो जाता है। क्योंकि कोई भी चीज ढांक लो, आस-पास जो बुद्धुओं की जमात है वह उघाड़ने को उत्सुक हो जाते हैं। उघाड़ने की कोशिश में अर्थ आ जाता है। जितना उघाड़ने की कोशिश चलती है, उतनी ढांकने की कोशिश चलती है। फिर अर्थ बढ़ता चला जाता है। चीजें अगर सीधी और साफ खुल जाएं तो अर्थहीन हो जाती हैं।
अमरीका ने पहली दफा समाज पैदा किया है जो समाज सेक्स से मुक्त एक अर्थ में हो गया कि उसमें अर्थ नहीं दिखाई पड़ रहा। लेकिन इससे बड़ी परेशानी पैदा हुई है, और इसलिए अब नये अर्थ खोजे जा रहे हैं। एल एस डी में, मारिजुआना में, और तरह के ड्रग्स में अर्थ खोजे जा रहे हैं। क्योंकि अब सेक्स से तो कोई तृप्ति होती नहीं, सेक्स में तो कुछ मतलब ही नहीं रहा। वह तो बेमानी बात हो गई। अब हमें और कोई सेंसेशन और कोई अनुभूतियां चाहिए। और अमरीका लाख उपाय करे, ड्रग्स नहीं रोके जा सकते, कोई विज्ञापन नहीं होता है एल एस डी का। लेकिन घर-घर में पहुंचा जा रहा है। कोई विज्ञापन नहीं है, कोई अखबारों में खबर नहीं है कि आप एल एस डी जरूर पीओ। लेकिन एक-एक यूनिवर्सिटी के कैम्पस पर एक-एक विद्यार्थी के पास पहुंचा जा रहा है। अमरीका तब तक सफल नहीं होगा--कानून बना डाले, विरोध किया है, अदालतें मुकदमे चला रही हैं, सजाएं दी गई हैं--एल एस डी के प्रचार के लिए जो सबसे बड़ा पुरोहित था वहां, तिमोथीलियरी, उसको सजा दे दी आजीवन की--लेकिन इससे रुकेगा नहीं, जब तक आप सेक्स का मीनिंग वापस नहीं लौटा लेंगे अमरीका में, तब तक ड्रग्स नहीं रुक सकते। क्योंकि आदमी बिना मीनिंग के नहीं जी सकता। और या फिर कोई आत्मा का, परमात्मा का मीनिंग खड़ा करे। कोई नया अर्थ, जिसकी खोज में आदमी निकल जाए। कोई नये शिखर, जिन पर वह चढ़ जाए।
एक शिखर है आदमी के पास संभोग का, वह उसकी तलाश में भटकता रहता है। और
वह इतना सुरक्षित और व्यवस्थित है कि वह कभी भी यह अनुभव नहीं कर पाता कि वह व्यर्थ है। अगर उसकी पत्नी व्यर्थ हो जाती है, पति व्यर्थ हो जाता है तो भी और स्त्रियां हैं जो सार्थक बनी रहती हैं। पर्दे पर फिल्म की स्त्रियां हैं, जो सार्थक बनी रहती हैं। कोई न कोई है जहां अर्थ बना रहता है, वह उस अर्थ की तलाश में लगा रहता है, उस खोज में लगा रहता है, जिंदगी खो देता है।
महावीर कहते हैं--वृत्ति-संक्षेप--यह बड़ी वैज्ञानिक बात है। इसका एक अर्थ तो यह है कि प्रत्येक वृत्ति, प्रत्येक वृत्ति उसकी टोटल इंटेंसिटी

में जीयी जा सकेगी। और जिस वृत्ति को भी आप उसकी समग्रता में जीते हैं, वह व्यर्थ हो जाती है। और वृत्तियों का व्यर्थ हो जाना जरूरी है आत्मदर्शन के पूर्व। दूसरी बात--सारी वृत्तियां मन को घेर लेती हैं क्योंकि आप मन से ही सारा काम करते हैं। भोजन भी मन से करना पड़ता है; संभोग भी मन से करना पड़ता है; कपड़े भी मन से पहनने पड़ते हैं; कार भी मन से चलानी पड़ती है; दफ्तर भी मन से--सारा काम बुद्धि को घेर लेता है इसलिए बुद्धि निर्बल और निर्वीर्य हो जाती है, इतना काम उस पर हो जाता है। इतना बाहरी काम हो जाता है।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी ने उससे कहा है कि अपने मालिक से कहो कि कुछ तनख्वाह बढ़ाए। बहुत दिन हो गए, कोई तनख्वाह नहीं बढ़ी। मुल्ला ने कहाः मैं कहता हूं, लेकिन वह सुन कर टाल देता है। उसकी पत्नी ने कहाः तुम जाकर बताओ, उसको कि तुम्हारी मां बीमार है, उसके इलाज की जरूरत है। तुम्हारे पिता को लकवा लग गया है, उनकी सेवा की जरूरत है। तुम्हारी सास भी तुम्हारे पास रहती है। तुम्हारे इतने बच्चे हैं, इनकी शिक्षा का सवाल है। तुम्हारे पास अपना मकान नहीं है, तुम्हें मकान बनाना है। ऐसी उसने बड़ी फेहरिस्त बताई।
मुल्ला दूसरे दिन बड़ा प्रसन्न लौटा दफ्तर से। उसकी पत्नी ने कहाः क्या तनख्वाह बढ़ गई है? मुल्ला ने कहाः नहीं, मेरे मालिक ने कहाः यू हैव टू मच आउटसाइड एक्टिविटीज। नौकरी खत्म कर दी। तुम दफ्तर का काम कब करोगे? जब इतना तुम्हारा सब काम है--सास भी घर में है तो दफ्तर का काम कब करोगे? उसने छुट्टी दे दी।
बुद्धि के ऊपर इतना ज्यादा काम है कि बुद्धि अपना काम कब करेगी। उसको
सब तरफ से बोझिल किए हुए हैं, वह अपना काम कब करेगी? तो आप बुद्धिमत्ता का कोई काम जीवन में नहीं कर पाते। बुद्धि से आप नींद का ही काम लेते हैं। कभी धन कमाने का काम करते हैं, कभी शादी करने का काम करते हैं, कभी रेडियो सुनने का काम करते हैं। लेकिन बुद्धि की बुद्धिमत्ता, बुद्धि का अपना निजी काम क्या है? बुद्धि का निजी काम ध्यान है। जब बुद्धि अपने में ठहरती है, जब बुद्धि अपने में रुकती है, तो वि.जडम, बुद्धिमत्ता आती है और तब पहली दफे जीवन को आप और ढंग से देख पाते हैं, एक बुद्धिमान की आंखों से। लेकिन वह मौका नहीं आ पाता। बहुत ज्यादा काम है। वह उसी में दबी-दबी नष्ट हो जाती है। जो आपके पास श्रेष्ठतम बिंदु है काम का, उससे आप बहुत निकृष्ट काम ले रहे हैं। जो आपके पास श्रेष्ठतम शक्ति है, उससे आप ऐसे काम ले रहे हैं, जिनको कि सुई से कर सकते थे, उनका काम आप तलवार से ले रहे हैं। तलवार से लेने की वजह से सुई से जो हो सकता था, वह भी नहीं हो पाता। और तलवार जो कर सकती थी, उसका तो कोई सवाल ही नहीं है, वह सुई के काम में उलझी हुई होती है। वृत्ति-संक्षेप का अर्थ है--प्रत्येक वृत्ति को उसके अपने केंद्र पर संक्षिप्त करो। उसे फैलने मत दो। भूख लगे तो पेट से लगने दो भूख, बुद्धि से मत लगने दो। बुद्धि को कह दो--तू चुप रह। कितना बजा है, फिकर छोड़। पेट खबर देगा न, कि भूख लगी है, तब हम सुन लेंगे। सोने का काम करना है तो बुद्धि को मत करने दो। नींद आएगी तो खुद ही खबर देगी, शरीर खबर देगा तब सो जाना। नींद तोड़नी हो तो भी बुद्धि को काम मत दो कि वह अलार्म भर कर रख दें। जब नींद टूटेगी तब टूट जाएगी। उसको टूटने दो स्वयं। नींद के यंत्र को अपना काम करने दो; भोजन के यंत्र को अपना काम करने दो; कामवासना के यंत्र को अपना काम करने दो। शरीर के सारे काम स्पेशलाइज्ड हैं, उनके अपने-अपने में चले जाने दो। उनको सबको इकट्ठा मत करो, अन्यथा वे सब विकृत हो जाएंगे और उनको सम्हालना कठिन हो जाएगा।
और मजे की बात यह है कि जिस केंद्र पर काम पहुंच जाता है, बुद्धि का इतना काम है कि वह केंद्र अपना काम को समग्रता से करे ताकि उसका केंद्र का काम किसी दूसरे केंद्र पर न फैलने पाए। बुद्धि इतना देखे तो पर्याप्त है, तो बुद्धि नियंता हो जाती है। वह कंट्रोलर हो जाती है। वह मध्य में बैठ जाती है और मालिक हो जाती है, उसकी नजर सब इंद्रियों पर हो जाती है। और प्रत्येक इंद्रिय अपना काम करे, यही उसकी दृष्टि हो जाती है। जैसे ही कोई इंद्रिय अपना काम करती है, बुद्धि देख पाती है कि उस काम में कुछ रस मिलता

है या नहीं मिलता है, तो जो व्यर्थ काम हैं वे बंद होने शुरू हो जाते हैं। जो सार्थक काम हैं वे बढ़ने शुरू हो जाते हैं। बहुत शीघ्र वह वक्त आ जाता है--जब आपके जीवन से व्यर्थ गिर जाता है और गिराना नहीं पड़ता है। और सार्थक बच रहता है, बचाना नहीं पड़ता। आपके जीवन से कांटे गिर जाते हैं, फूल बच जाते हैं। इसके लिए कुछ करना नहीं पड़ता है। बुद्धि का सिर्फ देखना ही पर्याप्त होता है। उसका साथी होना पर्याप्त होता है। साक्षी होना ही बुद्धि का स्वभाव है। वही उसका काम है। बुद्धि किसी की मीन्स नहीं है, किसी का साधन नहीं है। वह स्वयं साध्य है। सभी इंद्रियां अपने अनुभव को बुद्धि को दे दें, लेकिन कोई इंद्रिय अपने काम को बुद्धि से न ले पाए, यह वृत्ति-संक्षेप का अर्थ है।
निश्चित ही इसका परिणाम होगा। इसका परिणाम होगा कि जब प्रत्येक केंद्र अपना काम करेगा तो आपके बहुत से काम जो बाहर के जगत में फैलाव लाते थे, वे गिरने शुरू हो जाएंगे, वे सिकुड़ने शुरू हो जाएंगे, बिना आपके प्रयत्न के। आपको धन की दौड़ छोड़नी नहीं पड़ेगी, आप अचानक पाएंगे, उसमें जो- जो व्यर्थ है वह छूट गया। आपको बड़ा मकान बनाने का पागलपन छोड़ना नहीं पड़ेगा, आपको दिख जाएगा कि कितना मकान आपके लिए जरूरी है। उससे ज्यादा व्यर्थ हो गया। आपको कपड़ों का ढेर लगाने का पागलपन नहीं हो जाएगा, आब्सेशन नहीं हो जाएगा, आप गिनती करके मजा न लेने लगेंगे कि अब तीन सौ साड़ी पूरी हो गईं, अब चार सौ साड़ी पूरी हुई हैं, अब पांच सौ साड़ी पूरी हो गईं। आ पकी बुद्धि आपको कहेगी--पांच सौ साड़ी पहनिएगा कब? लेकिन आदमी अदभुत है। मैंने सुना है कि दो सेल्स-मैन आपस में एक दिन बात कर रहे थे। एक सेल्स-मैन बड़ी बातें कर रहा था कि आज मैंने इतनी बिक्री की। एक आदमी एक ही टाई खरीदने आया था, मैंने उसको छह टाई बेच दी। दूसरे ने कहाः दिस इ.ज नथिंग, यह कुछ भी नहीं है। एक औरत अपने मरे हुए पति के लिए सूट खरीदने आई थी, मैंने उसे दो सूट बेच दिए। एक औरत अपने मरे हुए पति के लिए कपड़े खरीदने आई थी, मैंने उसे दो जोड़े कपड़े बेच दिए। मैंने कहाः यह दूसरा और भी ज्यादा जंचता है और कभी-कभी बदलने के लिए बिल्कुल ठीक रहेंगे।
कोई औरत ले जा सकती है दो जोड़े, क्योंकि जिंदगी हमारी कीमत से जीती है, बुद्धि से नहीं जीती है। वह पति मर गया है, यह सवाल थोड़े ही है। और पति को दूसरा जोड़ा पहनने का मौका कभी नहीं आएगा, यह भी सवाल नहीं है। लेकिन दूसरा जोड़ा भी जंच रहा है, और दो जोड़े--तो मन का एक रस है। करीब-करीब हम सब यही कर रहे हैं। कौन पहनेगा, कब पहनेगा, इसका सवाल नहीं है। कितना? वह महत्वपूर्ण है। कौन खाएगा, कब खाएगा, इसका सवाल नहीं है। कितना? मात्रा ही अपने आप में मूल्यवान हो गई है। उपयोग जैसे कुछ भी नहीं है, संख्या ही उपयोगी हो गई है। कितनी संख्या हम बता सकते हैं, उसका उपयोग है।
मैं घरों में जाता हूं, देखता हूं कोई आदमी सौ जूते के जोड़े रखे हुए है। इससे तो बेहतर यही है, आदमी चमार हो जाए। गिनती का मजा लेता रहे। यह नाहक, अकारण चमार बना हुआ है मुफ्त। गिनती ही करनी है न! तो चमार हो जाए, जोड़े गिनता रहे। नये-नये जोड़े रोज आते जाएंगे उसको बड़ी तृप्ति मिलेगी। अब यह आदमी बुद्धि से चमार है। सौ जोड़े का क्या करिएगा? नहीं, लेकिन सौ जोड़े की प्रतिष्ठा है। जिसके पास है उसके मन में तो है ही, जिसके पास नहीं है वह पीड़ित है कि हमारे पास सौ जोड़े जूते नहीं हैं। चमारी में भी प्रतियोगिता है। वह दूसरा हमसे ज्यादा चमार हुआ जा रहा है, हम बिल्कुल पिछड़े जा रहे हैं। अभागे हैं। सौ जोड़े जूते हम पर कब होंगे? अक्सर ऐसा होता है कि जूते के जोड़ तो इकट्ठे हो जाते हैं, लेकिन जोड़े-जूते इकट्ठा करने में पैर इस योग्य नहीं रह जाते कि चल भी पाएं। और सौ पर कोई संख्या रुकती नहीं है। तिब्बत में एक पुरानी कथा है कि दो भाई हैं। पिता मर गया है, तो उनके पास सौ घोड़े थे। घोड़े का काम था। सवारियों को लाने-ले जाने का काम था। तो पिता मरते वक्त बड़े भाई को कह गया कि तू बुद्धिमान है, छोटा तो अभी छोटा है। तू अपनी मर्जी से जैसा भी बंटवारा करना चाहे, कर देना। तो बड़े भाई ने बंटवारा कर दिया। निन्यानबे घोड़े उसने रख लिए, एक घोड़ा छोटे भाई को दे दिया। आस-पास के लोग चौंके भी। पड़ोसियों ने कहा भी कि यह तुम क्या कर रहे हो? तो बड़े भाई ने कहा कि मामला ऐसा है, यह अभी छोटा है, समझ कम है।

निन्यानबे कैसे सम्हालेगा? तो मैं निन्यानबे ले लेता हूं, एक उसे दे देता हूं।
ठीक छोटा भी थोड़े दिन में बड़ा हो गया, लेकिन वह एक से काफी प्रसन्न था,
एक से काम चल जाता था। वह खुद ही नौकर नहीं रखने पड़ते थे, अलग इंतजाम नहीं करना पड़ता था--वह खुद ही सईस की तरह चला जाता था। यात्रा करवा आता था लोगों के लिए। उसका भोजन का काम चल जाता था। लेकिन बड़ा भाई बड़ा परेशान था। निन्यानबे घोड़े थे, निन्यानबे चक्कर थे। नौकर रखने पड़ते। अस्तबल बनाना पड़ता। कभी कोई घोड़ा बीमार हो जाता, कभी कुछ हो जाता। कभी कोई घोड़ा भाग जाता, कभी कोई नौकर न लौटता। रात हो जाती, देर हो जाती, वह जागता, वह बहुत परेशान था।
एक दिन आकर उसने अपने छोटे भाई को कहा कि तुझसे मेरी एक प्रार्थना है
कि तेरा जो एक घोड़ा है वह भी तू मुझे दे दे। उसने कहाः क्यों? तो उस बड़े भाई ने कहाः तेरे पास एक ही घोड़ा है, नहीं भी रहा तो कुछ ज्यादा नहीं खो जाएगा। मेरे पास निन्यानबे हैं, अगर एक मुझे और मिल जाए तो सौ हो जाएंगे। पर मेरे लिए बड़ा सवाल है। क्योंकि मेरे पास निन्यानबे हैं। एक मिलते ही पूरी सेंचुरी, पूरे सौ हो जाएंगे। तो मेरी प्रतिष्ठा और इज्जत का सवाल है। अपने बाप के पास सौ घोड़े थे, कम से कम बाप की इज्जत का भी इसमें सवाल जुड़ा हुआ है। छोटे भाई ने कहाः आप यह घोड़ा भी ले जाएं। क्योंकि मेरा अनुभव यह है कि निन्यानबे में आपको मैं बड़ी तकलीफ में देखता हूं, तो मैं सोचता हूं, एक में भी निन्यानबे बंटे नहीं, लेकिन थोड़ी बहुत तकलीफ तो होगी ही। यह भी आप ले जाएं।
तो वह छोटा उस दिन से इतने आनंद में हो गया क्योंकि अब वह खुद ही घोड़े
का काम करने लगा। अब तक कभी घोड़ा बीमार पड़ता था, कभी दवा लानी पड़ती थी; कभी घोड़ा राजी नहीं होता था जाने को; कभी थक कर बैठ जाता था। हजार पंचायतें होती थीं। वह भी बात खत्म हो गई। अब तक घोड़े की नौकरी करनी पड़ती थी। उसकी लगाम पकड़ कर चलानी पड़ती थी, वह बात भी खत्म हो गई। अपना मालिक हो गया। अब वह खुद ही बोझ ले लेता, लोगों को कंधे पर बिठा लेता और यात्रा कराता। लेकिन बड़ा बहुत परेशान हो गया। वह बीमार ही रहने लगा। क्योंकि सौ में से अब कहीं एकाध कम न हो जाए, कोई घोड़ा मर न जाए, कोई घोड़ा खो न जाए, नहीं तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी।
मारपा यह कहानी अक्सर कहा करता था--एक तिब्बती फकीर था--वह अक्सर यह कहानी कहा करता था। और वह कहता था--मैंने दो ही तरह के आदमी देखे--एक, वे जो वस्तुओं पर इतना भरोसा कर लेते हैं कि उनकी वजह से ही परेशान हो जाते हैं। और एक वे, जो अपने पर इतने भरोसे से भरे होते हैं कि वस्तुएं उन्हें परेशान नहीं कर पातीं। दो ही तरह के लोग हैं इस पृथ्वी पर। दूसरी तरह के लोग बहुत कम हैं इसलिए पृथ्वी पर आनंद बहुत कम है। पहले तरह के लोग बहुत हैं, इसलिए पृथ्वी पर दुख बहुत है। वृत्ति-संक्षेप का अर्थ सीधा नहीं है यह कि आप अपने परिग्रह को कम करें। जब भीतर आपकी वृत्ति संक्षिप्त होती है तो बाहर परिग्रह कम हो जाता है।
इसका यह अर्थ नहीं है कि आप सब छोड़ कर भाग जाएं, तो आप बदल जाएंगे-- जरूरी नहीं है। क्योंकि चीजें छोड़ने से अगर आप बदल सकें तो चीजें बहुत कीमती हो जाती हैं। अगर चीजें छोड़ने से मैं बदल जाता हूं तो चीजें बहुत कीमती हो जाती हैं। और अगर चीजें छोड़ने से मुझे मोक्ष मिलता है तो ठीक है, मोक्ष का भी सौदा हो जाता है। चीजों की ही कीमत चुका कर मोक्ष मिल जाता है। अगर एक मकान छोड़ने से, एक पत्नी और एक बेटे को छोड़ देने से मुझे मोक्ष मिल जाता है, तो मोक्ष की कीमत कितनी हुई? इतनी ही कीमत हुई जितनी मकान की हो सकती है, एक पत्नी की, एक बेटे की हो सकती है। अगर मैं चीजें छोड़ने से त्यागी हो जाता हूं तो ठीक है। चीजें छोड़ने से लोग त्यागी हो जाते हैं, चीजें होने से भोगी हो जाते हैं। लेकिन चीजों का मूल्य, उसकी वेल्यू तो कायम रहती है। फिर जिसके पास चीज नहीं हो, वह त्यागी कैसे होगा? जिसके पास छोड़ने का महल नहीं हो, वह महात्यागी कैसे होगा? बड़ी मुश्किल है, पहले महल होना चाहिए।

नसरुद्दीन से किसी ने पूछा है कि मोक्ष जाने का मार्ग क्या है? तो नसरुद्दीन ने कहाः यू मस्ट सिन फर्स्ट। पहले पाप करो।
उसने कहाः यह क्या पागलपन की बात है? तुम मोक्ष जाने का रास्ता बता रहे हो कि नरक जाने का?
नसरुद्दीन ने कहा कि जब पाप नहीं करोगे तो पश्चात्ताप कैसे करोगे? और
जब पश्चात्ताप नहीं करोगे तो मोक्ष जाओगे कैसे? और जब पाप नहीं करोगे तो भगवान तुम पर दया कैसे करेगा, और जब दया नहीं करेगा तो कुछ होगा ही नहीं बिना उसकी दया के। पहले पाप करो, तब पश्चात्ताप करो, तब भगवान दया करेगा, तब स्वर्ग का द्वार खुलेगा, तुम भीतर प्रवेश कर जाओगे। तो जो एसेंशियल चीज है, नसरुद्दीन ने कहा वह पाप है। उसके बिना कुछ भी नहीं हो सकता, वही हम सबकी भी बुद्धि है।
एसेंशियल चीज, वस्तुएं हैं। पहले इकट्ठी करो, फिर त्याग करो। अगर त्याग न करोगे तो मोक्ष कैसे जाओगे? लेकिन त्याग करोगे कैसे, अगर इकट्ठी न करोगे? तो पहले इकट्ठी करो, फिर त्याग करो, फिर मोक्ष जाओ। मगर जाओगे वस्तुओं से ही मोक्ष। वस्तुओं पर ही चढ़ कर मोक्ष जाना होगा। तो फिर मोक्ष कम कीमती हो गया है, वस्तुएं ही ज्यादा कीमती हो गईं हैं। क्योंकि जो पहुंचा दे, उसी की कीमत है।
कबीर ने कहा--गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूं पांव। गुरु और गोविंद दोनों ही एक दिन सामने खड़े हो गए हैं, अब किसके पैर लगूं? तो फिर कबीर ने सोचा कि गुरु के ही पैर लगना ठीक है क्योंकि उसी से गोविंद का पता चलेगा। तो अगर वस्तुओं से मोक्ष जाना है तो वस्तुओं की ही शरणागति जाना पड़ेगा, तो उनके ही पैर पड़ो क्योंकि उनसे ही मोक्ष मिलेगा। न करोगे त्याग, न मिलेगा मोक्ष। त्याग क्या करोगे? कुछ होना चाहिए, तब त्याग करोगे। तब फिर वस्तुओं का मूल्य थिर है, अपनी जगह। भोगी के लिए भी, त्यागी के लिए भी। नहीं, महावीर का यह अर्थ नहीं है। महावीर वस्तु को मूल्य नहीं दे सकते। इसलिए मैं कहता हूं कि महावीर का यह अर्थ नहीं है कि वस्तुओं के त्याग का नाम वृत्ति-संक्षेप है। महावीर वस्तुओं को मूल्य दे ही नहीं सकते। इतना भी मूल्य नहीं दे सकते कि उनके त्याग का कोई अर्थ है। नहीं, महावीर का आंतरिक प्रयोग है। भीतर वृत्ति-केंद्र पर ठहर जाए तो बाहर फैलाव अपने आप बंद हो जाता है। वैसे ही, जैसे हमने एक दीया जलाया हो और अगर हम उसकी बाती को भीतर नीचे की तरफ कम कर दें तो बाहर प्रकाश का घेरा कम हो जाता है। जहां दीये की बाती छोटी होती जाती है वहां प्रकाश का घेरा कम होता जाता है। लेकिन आप सोचते हों कि प्रकाश का घेरा कम करके हम दीये की बाती छोटी कर लेंगे तो आप बड़ी गलती में हैं। कभी नहीं होगा, आप धोखा दे सकते हैं। धोखा देने की तरकीब? तरकीब यह है कि आप अपनी आंख बंद करते चले जाएं, दीया उतना ही जलता रहेगा, प्रकाश उतना ही पड़ता रहेगा। आप अपनी आंख धीरे-धीरे बंद करते चले जाएं। आप बिल्कुल अंधेरे में बैठ सकते हैं, लेकिन वह धोखा है और आंख खोलेंगे और पाएंगे दीये का वर्तुल, प्रकाश उतना का उतना है। क्योंकि दीये का वर्तुल मूल नहीं है, मूल उसकी बाती है। उसकी बाती नीचे छोटी होती जाए तो बाहर प्रकाश का वर्तुल छोटा होता जाता है। बाती डूब जाए, शून्य हो जाए तो वर्तुल खो जाता है।
हम सबके भीतर, जो बाहर फैलाव दिखाई पड़ता है--हमारे भीतर उसकी बाती है। प्रत्येक हमारे केंद्र पर, वासना के केंद्र पर, हम कितना फैलाव कर रहे हैं, उससे बाहर फैलता है। बाहर तो सिर्फ प्रदर्शन है। असली बात तो भीतर है। भीतर सिकुड़ाव हो जाता है, बाहर सब सिकुड़ जाता है। ध्यान रहे, जो बाहर से सिकुड़ने में लगता है वह गलत, बिल्कुल गलत मार्ग से चल रहा है। वह परेशान होगा, पहुंचेगा कहीं भी नहीं।
हालांकि कुछ लोग परेशानी को तप समझ लेते हैं। जो परेशानी को तप समझ लेते हैं, उनकी नासमझी का कोई हिसाब नहीं है। तप से ज्यादा आनंद नहीं है, लेकिन तप को लोग परेशानी समझ लेते हैं क्योंकि परेशानी यही है, उनको दस कपड़े चाहिए थे, उन्होंने नौ रख लिया, वे बड़े परेशान हैं। परेशानी उतनी ही है जितना दस में मजा था। दस के मजे का अनुपात ही परेशानी बन जाएगा। दस में

कम हो गया तो परेशानी शुरू हो गई। अब वह परेशानी को तप समझ रहे हैं। परेशानी तप नहीं है।
यह मैंने मुल्ला की पत्नी की बात आपसे की। यह उसने जान कर उस स्त्री
से शादी की। गांव भर में खबर थी कि वह बहुत दुष्ट है, कलहपूर्ण है। चालीस साल तक उससे कोई शादी करने वाला नहीं मिला था। और जब नसरुद्दीन ने खबर की कि मैं उससे शादी करता हूं, तो मित्रों ने कहा--तू पागल तो नहीं हो गया है नसरुद्दीन? इस औरत को कोई शादी करने वाला नहीं मिला है। यह खतरनाक है, तेरी गर्दन दबा देगी। यह तेरे प्राण ले लेगी; यह तुझे जीने न देगी; तू बहुत मुश्किल में पड़ जाएगा।
नसरुद्दीन ने कहाः मैं भी चालीस साल तक अविवाहित रहा। अविवाहित रहने में मैंने बहुत पाप कर लिए। इससे शादी करके मैं प्रायश्चित्त करना चाहता हूं। दिस इ.ज गोइंग टु बी ए पिनांस। यह एक तप है। जान कर कर रहा हूं। लेकिन पश्चात्ताप तो करना पड़ेगा न। स्त्रियों से इतना सुख पाया, जब इतना ही दुख पाऊंगा, तब तो हल होगा न! और यह स्त्री जितना दुख दे सकती है, शायद दूसरी न दे सके। यह बड़ी अदभुत है। नसरुद्दीन ने शादी कर ली। मित्रों ने बहुत समझाया, न माना।
लेकिन नसरुद्दीन की पत्नी के पास खबर पहुंच गई कि नसरुद्दीन ने इसलिए शादी की है ताकि यह स्त्री उसको सताए और उसका तप हो जाए। और उसने कहा, भूल में न रहो। तुम मेरे ऊपर चढ़ कर स्वर्ग न जा सकोगे। मैं किसी का साधन नहीं बन सकती। आज से मैंने, कलह बंद। कहते हैं वह स्त्री नसरुद्दीन से जिंदगी भर न लड़ी। उसको नरक जाना ही पड़ा, नहीं लड़ी। उसने कहाः मुझे तुम साधन बनाना चाहते हो, स्वर्ग जाने का? यह नहीं होगा। यह कभी नहीं हो सकता, तुम नरक जाकर ही रहोगे। वह इसी जमीन पर नरक पैदा करती, उसने पैदा नहीं किया। उसने अगले का इंतजाम कर दिया।
आप किस चीज को साधन बना कर जाना चाहते हैं स्वयं तक? वस्तुओं को? अपरिग्रह को? बाहर से रोक कर अपने को, सम्हाल कर? वह नहीं होगा। आप परेशान भला हो जाएं, तप नहीं होगा। परेशानी तप नहीं है। तप तो बड़ा आनंद है और तपस्वी के आनंद का कोई हिसाब नहीं है। वस्तुएं दुख हैं। लेकिन यह दुख तभी पता चलेगा आपको जब आपकी वृत्ति के केंद्र पर आप अनुभव करेंगे और दुख पाएंगे और सुख की कोई रेखा न दिखाई पड़ेगी। अंधेरा ही अंधेरा पाएंगे, कोई प्रकाश की ज्योति न दिखाई पड़ेगी। कांटे ही कांटे पाएंगे, कोई फूल खिलता न दिखाई पड़ेगा। भीतर... भीतर केंद्र व्यर्थ हो जाएगा, बाहर से आभामंडल तिरोहित हो जाएगा। अचानक आप पाएंगे, बाहर अब कोई अर्थ नहीं रह गया। लोगों को दिखाई पड़ेगा। आपने बाहर कुछ छोड़ दिया। आप बाहर कुछ भी न छोड़ेंगे, भीतर कुछ टूट गया। भीतर कोई ज्योति ही बुझ गई। तो एक-एक केंद्र पर उसकी वृत्ति को ठहरा देना और बुद्धि को सजग रख कर देखना कि उस वृत्ति के अनुभव क्या हैं।
बहुत आदमी के संबंध में जो बड़े से बड़ा आश्चर्य है वह यह है कि जिस चीज
को आप आज कहते हैं कि कल मुझे मिल जाए तो सुख मिलेगा, कल जब वह चीज मिलती है तो आप कभी तौल नहीं करते कि कल मैंने कितना सुख सोचा था, वह मिला या नहीं मिला! बड़ा आश्चर्य है। यह भी बड़ा आश्चर्य है कि उससे दुख मिलता है, फिर भी दूसरे दिन आप फिर उसी की चाह करने लगते हैं और कभी नहीं सोचते कि कल पाकर इसे दुख पाया था, अब मैं फिर दुख की तलाश में जाता हूं। हम कभी तौलते ही नहीं, बुद्धि का वही काम है, वही हम नहीं लेते उससे। वही काम है कि जिस चीज में सोचा था कि सुख मिलेगा, उसमें मिला? जिस चीज में सोचा था सुख मिलेगा उसमें दुख मिला, यह अनुभव में आता है और इस अनुभव को हम याद नहीं रखते और जिसमें दुख मिला उसको फिर दुबारा चाहने लगते हैं।
ऐसे जिंदगी सिर्फ एक कोल्हू के बैल जैसी हो जाती है। बस एक ही रास्ते
पर घूमते रहते हैं। कोई गति नहीं, कहीं कोई पहुंचना नहीं होता। घूमते- घूमते मर जाते हैं। जहां पैदा होते हैं, उसी जमीन पर खड़े-खड़े मर जाते हैं। कहीं एक इंच आगे नहीं बढ़ पाते। बढ़ भी नहीं पाएंगे। क्योंकि बढ़ने की जो संभावना थी वह आपकी बुद्धिमत्ता से थी, आपकी वि.जडम से थी, आपकी प्रज्ञा में थी। वह तो प्रज्ञा कभी विकसित नहीं होती।

तो महावीर वृत्ति-संक्षेप पर जोर देते हैं ताकि प्रत्येक वृत्ति अपनी-अपनी निखार तीव्रता में, अपनी प्योरिटी में अनुभव में आ जाए और अनुभव कह जाए दुख है, कि दुख है वहां, सुख नहीं। और बुद्धि इस अनुभव को संगृहीत करे, बुद्धि इस अनुभव को जीए और पीए और इस बुद्धि के रोएं-रोएं में यह समा जाए तो आपके भीतर वृत्तियों से ऊपर आपकी प्रज्ञा, आपकी बुद्धिमत्ता उठने लगेगी। और जैसे-जैसे बुद्धिमत्ता ऊपर उठती है, वैसे-वैसे वृत्तियां सिकुड़ती जाती हैं। इधर वृत्तियां सिकुड़ती हैं, इधर बुद्धिमत्ता ऊपर उठती है। और बाहर परिग्रह कम होता चला जाता है। जैसे बुद्धिमत्ता ऊपर उठती है वैसे संसार बाहर कम होता चला जाता है। जिस दिन आपकी समग्र शक्ति वृत्तियों से मुक्त होकर बुद्धि को मिल जाती है, उसी दिन आप मुक्त हो जाते हैं। जिस दिन आपकी सारी शक्ति वृत्तियों से मुक्त होकर प्रज्ञा के साथ खड़ी हो जाती है, उसी दिन आप मुक्त हो जाते हैं।
जिस दिन कामवासना की शक्ति भी बुद्धि को मिल जाती है; जिस दिन लोभ की शक्ति भी बुद्धि को मिल जाती है; जिस दिन क्रोध की शक्ति भी बुद्धि को मिल जाती है; जिस दिन मोह की शक्ति भी बुद्धि को मिल जाती है; जिस दिन समस्त शक्तियां बुद्धि की तरफ प्रवाहित होने लगती हैं; जैसे नदियां सागर की तरफ जा रही हों, उस दिन बुद्धि का महासागर आपके भीतर फलित होता है। उस महासागर का आनंद, उस महासागर की प्रतीति और अनुभूति दुख की नहीं है, परेशानी की नहीं है, वह परम आनंद की है। वह प्रफुल्लता की है। वह किसी फूल के खिल जाने जैसी है। वह किसी दीये के जल जाने जैसी है। वह कहीं मृतक में जैसे जीवन आ जाए, ऐसी है।

आज इतना ही।
कल आगे के नियम पर बात करेंगे। लेकिन उठें न। जो कीर्तन के लिए आना चाहते हैं वे ऊपर आ जाएं। पांच मिनट कीर्तन करें, फिर जाएं।

महावीर-वाणी, भाग 1
बारहवां प्रवचन

रस-परित्याग और काया-क्लेश (धम्म-सूत्र)

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मे सया मणो।।

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

बाह्य-तप का चौथा चरण है--रस-परित्याग। परंपरा रस-परित्याग से अर्थ लेती रही है। किन्हीं रसों का, किन्हीं स्वादों का निषेध, नियंत्रण। इतनी स्थूल बात रस-परित्याग नहीं है। वस्तुतः सधना के जगत में स्थूल से स्थूल दिखाई पड़ने वाली बात भी स्थूल नहीं होती। कितने ही स्थूल शब्दों का प्रयोग किया जाए बात तो सूक्ष्म ही होती है। मजबूरी है कि स्थूल शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है, क्योंकि सूक्ष्म के लिए कोई शब्द नहीं है। वह जो अंतर्जगत है, वहां इशारे करने वाले कोई शब्द हमारे पास नहीं हैं। अंतर्जगत की कोई भाषा नहीं है। इसलिए बाह्य जगत के ही शब्दों का प्रयोग करना मजबूरी है। उस मजबूरी से खतरा भी पैदा होता है क्योंकि तब उन शब्दों का स्थूल अर्थ लिया जाना शुरू हो जाता है। रस-परित्याग से यही लगता है कि कभी खट्टे का त्याग कर दो; कभी मीठे का त्याग कर दो; कभी घी का त्याग कर दो; कभी कुछ और त्याग कर दो। रस-परित्याग से ऐसा प्रयोजन महावीर का नहीं है। महावीर का क्या प्रयोजन है, वह दो-तीन हिस्सों में समझ लेना जरूरी है। पहली बात तो यह कि रस की पूरी प्रक्रिया क्या है? जब आप कोई स्वाद लेते हैं तो स्वाद वस्तु में होता है या स्वाद आपकी स्वाद इंद्रिय में होता है? या स्वाद स्वादेंद्रिय के पीछे वह जो आपका अनुभव करने वाला मन है, उसमें होता है? या स्वाद उस मन के साथ आपकी चेतना का जो तादात्म्य है उसमें होता है? स्वाद कहां है? रस कहां है? तभी परित्याग ख्याल में आ सकेगा। जो स्थूल देखते हैं उन्हें लगता है कि स्वाद या रस वस्तु में होता है, इसलिए वस्तु को छोड़ दो। वस्तु में स्वाद नहीं होता, न रस होता है; वस्तु केवल निमित्त बनती है। और अगर भीतर रस की पूरी प्रक्रिया काम न कर रही हो तो वस्तु निमित्त बनने में असमर्थ है। जैसे आपको फांसी की सजा दी जा रही हो और आपको मिष्ठान्न खाने को दे दिया जाए, तो भी मीठा नहीं लगेगा। मिष्ठान्न अब भी मीठा ही है, और जो मीठे को भोग सकता था, वह एकदम अनुपस्थित हो गया है। स्वादेंद्रिय अब भी खबर देगी क्योंकि स्वादेंद्रिय को कोई भी पता नहीं है कि फांसी लग रही है, न पता हो सकता है। स्वादेंद्रिय के संवेदनशील तत्व अब भी भीतर खबर पहुंचाएंगे कि मीठा है--मिठाई मुंह पर है, जीभ पर है। लेकिन मन उस खबर को लेने की तैयारी नहीं दिखाएगा। मन भी उस खबर को ले ले तो मन के पीछे जो चेतना है उस का और मन के बीच का सेतु टूट गया है, संबंध टूट गया है। मृत्यु के क्षण में वह संबंध नहीं रह जाता। इसलिए मन भी खबर ले लेगा कि जीभ ने क्या खबर दी है, तो भी चेतना को कोई पता नहीं चलेगा।
आपके व्यक्तित्व को बदलने के लिए हजारों वर्षों से, जब भी कोई बहुत उलझन होती है तो शाक ट्रीटमेंट का उपयोग करते रहे हैं चिकित्सक--जब भी कोई उलझन होती है तो आपको इतना गहरा धक्का देने का प्रयोग करते रहे हैं, शाक का, और उससे कई बार बहुत गहरी उलझन सुलझ जाती है। और शाक ट्रीटमेंट का कुल अर्थ इतना ही है कि आपकी चेतना और आपके मन का सेतु क्षण भर को टूट जाए। उस सेतु के टूटते ही आपके भीतर की सारी व्यवस्था जैसी कल तक थी रुग्ण, वह अव्यवस्थित हो जाती है, अराजक हो जाती है। और नई व्यवस्था कोई भी रुग्ण नहीं बनाना चाहता। इसलिए शाक ट्रीटमेंट का कुल भरोसा इतना है कि एक बार

पुरानी व्यवस्था का ढांचा टूट जाए तो आप फिर शायद उस ढांचे को न बना सकेंगे।
सुना है मैंने कि एक बहुत बड़े मनोचिकित्सक के पास एक रुग्ण कैथलिक नन, कैथलिक साध्वी को लाया गया था। छह महीने से निरंतर उसे हिचकी आ रही थी, वह बंद नहीं होती थी। वह नींद में भी चलती रहती थी। सारी चिकित्सा, सारे उपाय कर लिए गए थे, वह हिचकी बंद नहीं हो रही थी। चिकित्सक थक गए थे और उन्होंने कहा--अब हमारे पास कोई उपाय नहीं है। शायद मनस चिकित्सक कुछ कर सकें। तो मनस चिकित्सक के पास लाया गया। बहुत लोग उस साध्वी को मानने वाले थे। आदर करने वाले थे, वे सब उसके साथ आए थे। वह साध्वी प्रभु का भजन करती हुई भीतर प्रविष्ट हुई। वह निरंतर प्रभु का स्मरण करती रहती थी। चिकित्सक ने पता नहीं उससे क्या कहा कि दो ही क्षण बाद वह रोती हुई बाहर वापस लौटी। उसके भक्त देख कर हैरान हुए कि वह एक क्षण में ही रोती हुई वापस आ गई। रो रही है! भगवान का छह महीने का स्मरण जो नहीं कर सका था, वह हो गया है। रो तो जरूर रही है, लेकिन हिचकी बंद हो गई है।
पीछे से चिकित्सक आया। वह तो साध्वी दौड़ कर बाहर निकल गई। उसके भक्तों ने पूछा--आपने ऐसा क्या कहा कि उसको इतनी पीड़ा पहुंची? चिकित्सक ने कहा कि मैंने उससे कहा--हिचकी तो कुछ भी नहीं है, यू आर प्रेग्नेंट, तुम गर्भवती हो। अब कैथोलिक नन, कैथोलिक साध्वी गर्भवती हो, इससे बड़ा शाक नहीं हो सकता। उसके भक्तों ने कहाः आप यह क्या कह रहे हैं? उस चिकित्सक ने कहाः तुम घबड़ाओ मत, इसके अतिरिक्त हिचकी बंद नहीं हो सकती थी। बिजली के शाक को भी वह महिला झेल गई। लेकिन अब हिचकी बंद हो गई। हुआ क्या?
कैथलिक नन, आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर प्रवेश करती है। वह गर्भिणी है, भारी धक्का लगा। मन और चेतना का जो संबंध था, चेतना और शरीर का जो संबंध सेतु था, वह एकदम टूट गया। एक क्षण को भी वह टूट गया तो हिचकी बंद हो गई, क्योंकि हिचकी की अपनी व्यवस्था थी। वह सारी व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई। हिचकी लेने के लिए भी सुविधा चाहिए, वह सुविधा न रही। हिचकी का जो पुराना जाल था, छह महीने से निश्चित, वह अब कारगर न रहा। शरीर वही है, हिचकी कैसे खो गई! कोई दवा नहीं दी गई, कोई इलाज नहीं किया गया है, हिचकी कैसे खो गई! मनोचिकित्सक कहते हैं कि अगर चेतना और मन के संबंध में कहीं भी, जरा सा भेद पड़ जाए एक क्षण के लिए भी तो आदमी का व्यक्तित्व दूसरा हो जाता है। वह पुराना ढांचा टूट जाता है। रस-परित्याग उस ढांचे को तोड़ने की प्रक्रिया है।
वस्तु में रस नहीं होता, सिर्फ रस का निमित्त होता है। इसे हम ऐसा समझें तो आसानी हो जाएगी। आप इस कमरे में आए हैं। दीवारें एक रंग की हैं, फर्श दूसरे रंग का है, कुर्सियां तीसरे रंग की हैं, अलग-अलग लोग अलग-अलग रंगों के कपड़े पहने हुए हैं। स्वभावतः आप सोचते होंगे कि इन सब चीजों में रंग है। और जब हम कमरे के बाहर चले जाएंगे तब भी कुर्सियां एक रंग की रहेंगी, दीवार दूसरे रंग की रहेंगी, फर्श तीसरे रंग का रहेगा। अगर आप ऐसा सोचते हैं तो आप कोई आधुनिक विज्ञान की किसी भी कीमती खोज से परिचित नहीं हैं। जब इस कमरे में कोई नहीं रह जाएगा तो वस्तुओं में कोई रंग नहीं रह जाता। यह बहुत मन को हैरान करता है। यह बात भरोसे की नहीं मालूम पड़ती। हमारा मन होगा कि हम किसी छेद से झांककर देख लें कि रंग रह गया कि नहीं। लेकिन आपने झांककर देखा कि वस्तुओं में रंग शुरू हो जाता है। वैज्ञानिक कहते हैं--किसी वस्तु में कोई रंग नहीं होता, वस्तु केवल निमित्त होती है, किसी रंग को आपके भीतर पैदा करने के लिए। जब आप नहीं होते, जब ऑब्जर्वर नहीं होता, जब कोई देखने वाला नहीं होता, वस्तु रंगहीन हो जाती है, कलरलेस हो जाती है।
असल में प्रकाश की किरण जब किसी वस्तु पर पड़ती है तो वस्तु प्रकाश की किरण को पीती है। अगर वह सारी किरणों को पी जाती है तो काली दिखाई पड़ती है। अगर वह सारी किरणों को छोड़ देती है और नहीं पीती तो सफेद दिखाई पड़ती है। अगर वह लाल रंग की किरण को छोड़ देती है और बाकी किरणों को पी लेती है तो लाल दिखाई पड़ती है। अब यह बहुत हैरानी होगी कि जो वस्तु लाल दिखाई पड़ती है वह लाल को छोड़ कर सब रंगों को पीती है, सिर्फ लाल को छोड़ देती है। वह जो छूटी

हुई लाल किरण है वह आपकी आंख पर पड़ती है, और उस किरण की वजह से वस्तु लाल दिखाई पड़ती है, जहां से वह आती हुई मालूम पड़ती है। लेकिन अगर कोई आंख ही नहीं है तो लाल किसको दिखाई पड़ेगी? उस किरण को पकड़ने के लिए कोई आंख चाहिए तब वह लाल दिखाई पड़ेगी। आपका बाहर जाना भी जरूरी नहीं है।
जब आप आंख बंद कर लेते हैं तो वस्तुएं रंगहीन हो जाती हैं, कलरलेस हो जाती हैं। कोई रंग नहीं रह जाता। इसका यह भी मतलब नहीं है कि वे सब एक जैसी हो जाती हैं। क्योंकि अगर वे सब एक जैसी हो जाएं तो जब आप आंख खोलेंगे तो उनमें सब में एक सा रंग दिखाई पड़ना चाहिए। रंगहीन हो जाती हैं, लेकिन उनके रंगों की संभावना मौजूद बनी रहती है, पोटेंशियलिटी। जब आप आंख खोलेंगे तो लाल-लाल होगी, हरी-हरी होगी। जब आप आंख बंद कर लेंगे तो लाल-लाल न रह जाएगी, हरी-हरी न रह जाएगी। इसे ऐसा समझें कि लाल रंग की वस्तु सिर्फ वस्तु का रंग नहीं है, वस्तु और आपकी आंख के बीच का संबंध है, रिलेशनशिप है। क्योंकि आंख बंद हो गई, रिलेशनशिप टूट गई, संबंध टूट गया। लाल रंग की कुर्सी नहीं है। आपकी आंख और कुर्सी के बीच लाल रंग का संबंध है। अगर आंख नहीं है तो संबंध टूट गया।
जब आप किसी चीज को कहते हैं--मीठा, तब भी वस्तु और आपके स्वादेंद्रिय
के बीच का संबंध है। वस्तु मीठी नहीं है। इसका यह मतलब नहीं है कि कड़वी और मीठी वस्तु में कोई फर्क नहीं है। पोटेंशियल फर्क है। बीज फर्क है, लेकिन अगर जीभ पर न रखा जाए तो कोई फर्क नहीं है। न कड़वी कड़वी है; आप यह नहीं कह सकते कि नीम कड़वी है जब तक आप जीभ पर नहीं रखते। आप कहेंगे--मैं रखूं या न रखूं, मेरे न रखने पर भी नीम कड़वी तो होगी ही। तब आप भूल करते हैं। क्योंकि कड़वा होना आपकी जीभ और नीम के बीच का संबंध है। नीम का अपना स्वभाव नहीं है, सिर्फ संबंध है।
इसे ऐसा समझें कि एक बच्चा पैदा हुआ एक स्त्री को। जब बच्चा पैदा होता
है तो बच्चा ही पैदा नहीं होता, मां भी पैदा होती है। क्योंकि मां एक संबंध है। वह स्त्री बच्चा होने के पहले मां नहीं थी। और अगर बच्चा मर जाए तो फिर मां नहीं रह जाएगी। मां होना एक संबंध है। वह बच्चे और उस स्त्री के बीच जो संबंध है, उसका नाम है। बच्चे के बिना वह मां नहीं हो सकती। बच्चा भी मां के बिना नहीं हो सकता।
इस बात को ख्याल में ले लें कि हमारे सब रस संबंध हैं वस्तुओं और हमारी जीभ के बीच। लेकिन अगर बात इतनी ही होती तो संबंध दो तरह से टूट सकता था--या तो हम जीभ को संवेदनहीन कर लें, उसकी सेंसिटीविटी को मार डालें, जीभ को जला लें तो रस नष्ट हो जाएगा। या हम वस्तु का त्याग कर दें तो रस नष्ट हो जाएगा। अगर बात इतनी ही आसान होती तो दो तरफ से संबंध तोड़े जा सकते हैं--या तो हम वस्तु को छोड़ दें जैसा कि साधारणतः महावीर की परंपरा में चलने वाला साधु करता है। वस्तु को छोड़ देता है। तब सोचता है कि रस से मुक्ति हो गई। रस से मुक्ति नहीं हुई। वस्तु में अभी भी पोटेंशियल रस है और जीभ में अभी भी पोटेंशियल सेंसिटीविटी है। अभी भी जीभ अनुभव करने में क्षम है और अभी भी वस्तु अनुभव देने में क्षम है। सिर्फ बीच का संबंध टूट गया है इसलिए बात अप्रकट हो गई है। कभी भी प्रकट हो सकती है। अप्रकट हो जाने का अर्थ नष्ट हो जाना नहीं है। फिर दोनों को जोड़ दिया जाए, फिर प्रकट हो जाएगी। हमने बिजली का बटन बंद कर दिया है इसलिए बिजली नष्ट नहीं हो गई है। सिर्फ बिजली की धारा में और बल्ब के बीच का संबंध टूट गया है। और बल्ब भी समर्थ है बिजली प्रकट करने में। बिजली की धारा भी समर्थ है अभी बल्ब से प्रकट होने में। सिर्फ संबंध टूट गया है, बिजली नष्ट नहीं हो गई। फिर बटन आप आन कर देते हैं, बिजली जल जाती है।
जो आदमी वस्तुओं को छोड़ कर सोच रहा है, रस का परित्याग हो गया, वह सिर्फ रस को अप्रकट कर रहा है, परित्याग नहीं। महावीर ने रस अप्रकट करने को नहीं कहा है, रस-परित्याग को कहा है। सिर्फ अनमैनिफेस्ट हो गया, अब प्रकट नहीं हो रहा है। इसका यह मतलब नहीं कि नष्ट हो गया। बहुत सी चीजें आप में प्रकट नहीं होती हैं, बहुत मौकों पर। जब कोई आदमी आपकी छाती पर छुरा रख देता है तब कामवासना प्रकट नहीं होती, लेकिन मुक्त नहीं हो गए हैं आप, सिर्फ छिप जाती है। कितनी ही भूख लगी हो और एक आदमी बंदूक लेकर आपके पीछे

लग जाए, भूख मिट जाती है। इसका यह मतलब नहीं भूख मिट गई, सिर्फ छिप गई। अभी अवसर नहीं है प्रकट होने का। अभी निमित्त नहीं है प्रकट होने का इसलिए छिप गई। छिप जाने को त्याग मत समझ लेना।
और अक्सर तो बात ऐसी है कि जो-जो छिप जाता है वह छिप कर और प्रबल और सशक्त हो जाता है। इसलिए जो आदमी रोज मिठाई खा रहा है, उसको मीठे का जितना अनुभव होता है, जिस आदमी ने बहुत दिन तक मिठाई नहीं खाई है, वह जब मिठाई खाता है तो उसका अनुभव और भी तीव्र होता है। उसका अनुभव और भी तीव्र होता है क्योंकि इतने दिनों तक रुका हुआ रस का जो अप्रकट रूप है, वह एकदम से प्रकट होता है, वह फल्डेड, उसमें बाढ़ आ जाती है। आ ही जाएगी। इसलिए जो आदमी वस्तुएं छोड़ने से शुरू करेगा वह वस्तुओं से भयभीत होने लगेगा। वह डरेगा कि कहीं वस्तु पास न आ जाए। अन्यथा रस पैदा हो सकता है।
एक दूसरा उपाय है कि आप इंद्रिय को ही नष्ट कर लें। जीभ को जला डालें, जैसा कि बुखार में हो जाता है, लंबी बीमारी में हो जाता है। इंद्रिय के संवेदनशील जो तंतु हैं वे रुग्ण हो जाते हैं, बीमार हो जाते हैं, सो जाते हैं। लेकिन तब भी रस का कोई अंत नहीं होता। अगर मेरी आंख फूट जाए तो भी रूप देखने की आकांक्षा नहीं चली जाती। अगर आंख ही से रूप देखने की आकांक्षा जाती होती, तो बहुत आसान था। आंख हट जाने से, टूट जाने से, फूट जाने से रूप की आकांक्षा नहीं टूटती। कान फूट जाए तो भी ध्वनि का रस नहीं छूट जाता। मेरे पैर टूट जाएं, तो भी चलने का मन नष्ट नहीं हो जाता। जो जानते हैं वे तो कहते हैं-पूरा शरीर भी छूट जाए तो भी जीवेषणा नष्ट नहीं होती। नहीं तो दोबारा जन्म होना असंभव है। जब पूरा शरीर छूट कर भी नया जीवन हम फिर से पकड़ लेते हैं तो एक-एक इंद्रिय को मार कर क्या होगा? मृत्यु तो सभी इंद्रियों को मार डालती है। सभी इंद्रियां मर जाती हैं, फिर सभी इंद्रियों को हम पैदा कर लेते हैं, क्योंकि इंद्रियां मूल नहीं हैं। मूल कहीं इंद्रियों से भी पीछे है। इसलिए जो आंख-कान तोड़ने में लगा हो, वह भी बचकानी बातों में लगा है, वह नासमझी की बातों में लगा है। उससे रस नष्ट नहीं होगा। इंद्रिय के नष्ट होने से रस नष्ट नहीं होता। वस्तु के त्याग से रस नष्ट नहीं होता, इंद्रिय के नष्ट होने से रस नष्ट नहीं होता।
तो क्या हम मन को मार डालें? मन को मारने में भी लोग लगे हैं। सोचते हैं कि मन को दबा-दबा कर नष्ट कर डालें तो शायद। लेकिन मन बहुत उलटा है। मन का नियम यही है कि जिस बात को हम मन से नष्ट करना चाहते हैं, मन उसी बात में ज्यादा रसपूर्ण हो जाता है।
एक सुबह मुल्ला के गांव में उसके मकान के सामने बड़ी भीड़ है। वह अपनी पांचवीं मंजिल पर चढ़ा हुआ कूदने को तत्पर है। पुलिस भी आ गई है, लेकिन उसने सब सीढ़ियों पर ताले डाल रखे हैं। कोई ऊपर चढ़ नहीं पा रहा है। गांव का मेयर भी आ गया है। सारा गांव नीचे धीरे-धीरे इकट्ठा हो गया है, और मुल्ला ऊपर खड़ा है। वह कहता है--मैं कूद कर मरूंगा। आखिर मेयर ने उसे समझाया कि तू कुछ तो सोच! अपने मां-बाप के संबंध में सोच! मुल्ला ने कहाः मेरे मां-बाप मर चुके। उनके संबंध में सोचता हूं तो और होता है जल्दी मर जाऊं। मेयर ने चिल्ला कर कहाः अपनी पत्नी के संबंध में तो सोच!
उसने कहाः वह याद ही मत दिलाना, नहीं तो और जल्दी कूद जाऊंगा। मेयर ने कहाः कानून के संबंध में सोच, अगर आत्महत्या की कोशिश की, फंसेगा। मुल्ला ने कहाः जब मर ही जाऊंगा तो कौन फंसेगा! यह देखते हैं, बड़ी मुश्किल थी। मेयर न समझा पाया। आखिर गुस्से में उसने कहा कि तेरी मर्जी तो कूद, इसी वक्त कूद और मर जा। मुल्ला ने कहा, तू कौन है मुझे सलाह देने वाला कि मैं मर जाऊं! नहीं मरूंगा।
आदमी का मन ऐसा चलता है। अगर कोई आपको समझाए कि मर जाओ, जीने का मन पैदा होता है। कोई आपको समझाए कि जियो, तो मरने का मन पैदा होता है। मन विपरीत में रस लेता है। इसलिए जो लोग मन को मारने में लगते हैं उनका मन और रसपूर्ण होता चला जाता है। न वस्तु को छोड़ने से रस का परित्याग होता है; न इंद्रिय को मारने से रस का परित्याग होता है; न मन से लड़ने से रस का परित्याग होता है। हम सभी तो मन से लड़ते हैं, लेकिन कौन सा रस का परित्याग हो जाता है! मात्राओं के भेद होंगे, लेकिन हम सभी मन से लड़ने वाले हैं। हम

मन को कितना दबाते हैं, कितना समझाते हैं! इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जिस चीज के लिए आप मन को समझाते हैं, मन उसी की मांग बढ़ाता चला जाता है। असल में आप जब समझाते हैं, तभी आप स्वीकार कर लेते हैं कि आप कमजोर हैं, और मन ताकतवर है। और जब एक बार आपने अपने मन के सामने अपनी कमजोरी स्वीकार कर ली तो मन फिर आपकी गर्दन को दबाता चला जाता है। आप मन से कहते हैं--यह मत मांग, यह मत मांग, यह मत मांग। लेकिन आपको ख्याल है कि नियम क्या है? जितना ही आप कहते हैं, मत मांग, मांगने में रस आ जाता है। लगता है, जरूर कुछ मांगने जैसी चीज है। जरूर कुछ पाने जैसी चीज है। मन को जितना रोकते हैं, उसकी उत्सुकता बढ़ती है और गहन होती है। मन के जितने द्वार बंद करते हैं, उसकी जिज्ञासा उतनी बढ़ती है, उतना लगता है कि कोई द्वार खोल कर झांक लूं और देख लूं।
तो जो भी मन के साथ लड़ने में लगेगा, वह रस को जगाने में लगेगा। यह भी ध्यान रखें कि मन से हम जिस चीज को भुलाने की कोशिश करते हैं वहां हम एक बहुत ही अमनोवैज्ञानिक काम कर रहे हैं। क्योंकि भुलाने की हर कोशिश याद करने की व्यवस्था है। इसलिए कोई आदमी किसी को भुला नहीं सकता। भूल सकता है, भुला नहीं सकता। अगर आप किसी को भुलाना चाहते हैं तो आप कभी न भुला पाएंगे। क्योंकि जब भी आप भुलाते हैं, तभी आप फिर से याद करते हैं। आखिर भुलाने के लिए भी याद तो करना पड़ेगा, और तब याद करने का क्रम सघन होता जाता है, और याद की रेखा मजबूत और गहरी होती चली जाती है।
तो जिसे आपको याद रखना हो, उसे भुलाने की कोशिश करना और जिसे आपको भुला देना हो, उसे कभी भी भुलाने की कोशिश मत करना, तो वह भूला जा सकता है। क्योंकि पुनरुक्ति याद बनती है, प्रेमियों का यही कष्ट है सारी दुनिया में। वे किसी प्रेमी को भुला देना चाहते हैं। जितना भुलाते हैं उतनी मुश्किल में पड़ जाते हैं। भुलाने की ज्यादा बेहतर तरकीब वह शादी कर लें और प्रेमी को घर में ले आएं। फिर बिल्कुल याद नहीं आती। मन का यह नियम ठीक से ख्याल में ले लें, अन्यथा बड़ी कठिनाई होती है। तथाकथित साधु, तपस्वी इसी मन के गहरे नियम को न समझने के कारण बहुत उलझाव में पड़ जाते हैं। भुलाने में लगे हैं। स्त्री न दिखाई पड़े, इसलिए आंख बंद करने में लगे हैं। भोजन न दिखाई पड़े इसलिए इंद्रियों को सिकोड़ने में लगे हैं। कहीं कोई रस न आ जाए, मन को वहां से विपरीत किसी दूसरी दिशा में उलझाने में लगे हैं। लेकिन इस सबसे जहां-जहां से वे अपने को हटा रहे हैं वहीं-वहीं मन और गहरी रेखाएं स्मृति की निर्मित कर लेता है।
नहीं, मन को दबाने, समझाने, भुलाने की कोई व्यवस्था रस-परित्याग नहीं लाती। फिर रस-परित्याग कैसे फलित होता है? रस-परित्याग का जो वास्तविक रूपांतरण है, वह मन और चेतना के बीच संबंध टूटने से घटित होता है। मन और चेतना के बीच ही असली घटना घटती है।
इसे थोड़ा समझ लें तो ख्याल में आ जाए।
मन उसी बात में रस ले पाता है जिसमें चेतना का सहयोग हो, को-आपरेशन हो। जिस बात में चेतना का सहयोग न हो, उसमें मन रस नहीं ले पाता। असमर्थ है। एक आदमी रास्ते से भागा जा रहा है। आज भी रास्ते की दुकानों के विंडो केसेज में वे ही चीजें सजी हैं जो कल तक सजी थीं, लेकिन आज उसे दिखाई नहीं पड़तीं। रास्ते पर अब भी सुंदर कारें भागी जा रही हैं, लेकिन आज उसे दिखाई नहीं पड़तीं। उसके घर में आग लगी है, वह भागा चला जा रहा है। क्या हुआ? घर में आग लगी है तो हो क्या गया? चीजें तो अब भी गुजर रही हैं। मन वही है, इंद्रियां वही हैं, उन पर संघात वही पड़ रहे हैं, संवेदनाएं वही हैं, लेकिन आज उसकी चेतना कहीं और है। आज उसकी चेतना अपने मन के, अपनी इंद्रियों के साथ नहीं है। आज उसकी चेतना भाग गई है। वह वहां है जहां मकान में आग लगी है। लेकिन घर जाकर पहुंचे और पता चले कि किसी और के मकान में आग लगी है। गलत खबर मिली थी। सब वापस लौट आएगा।
दोस्तोवस्की को फांसी की सजा दी गई थी--रूस के एक चिंतक, विचारक, लेखक को। लेकिन ऐन वक्त पर माफ कर दिया गया। ठीक छह बजे जीवन नष्ट होने को था, और छह बजने के पांच मिनट पहले खबर आई जार की कि वह क्षमा कर दिया गया है। दोस्तोवस्की ने... बाद में निरंतर कहता था--उस क्षण जब छह बजने के करीब आ रहे थे तब मेरे मन में न कोई वासना थी, न कोई इच्छा थी, न कोई रस था, कुछ भी न

था। मैं इतना शांत हो गया था, और मैं इतना शून्य हो गया था कि मैंने उस क्षण में जाना कि साधु, संत जिस समाधि की बात करते हैं वह क्या है। लेकिन जैसे ही जार का आदेश पहुंचा और मुझे सुनाया गया कि मैं छोड़ दिया जा रहा हूं, मेरी फांसी की सजा माफ कर दी गई। अचानक, जैसे मैं किसी शिखर से नीचे गिर गया। बस वापस लौट आया। सब इच्छाएं; सब क्षुद्रतम इच्छाएं, जिनका कोई मूल्य नहीं था क्षणभर पहले, वे सब वापस लौट आईं। पैर में जूता काट रहा था, उसका फिर पता चलने लगा। जूता काट रहा था पैर में, उसका फिर पता चलने लगा। नया जूता लेना है, उसकी योजना चल रही थी--सब वापस। दोस्तोवस्की कहता था--उस शिखर को मैं दुबारा नहीं छू पाया। जो उस दिन आसन्न मृत्यु के निकट अचानक घटित हुआ था।
हुआ क्या था? अब मृत्यु इतनी सुनिश्चित हो तो चेतना सब संबंध छोड़ देती है। इसलिए समस्त साधकों ने मृत्यु के सुनिश्चय के अनुभव पर बहुत जोर दिया है। बुद्ध तो भिक्षुओं को मरघट में भेज देते थे कि तुम तीन महीने लोगों को मरते, जलते, मिटते, राख होते देखो। ताकि तुम्हें अपनी मृत्यु बहुत सुनिश्चित हो जाए। और जब तीन महीने बाद कोई साधक मृत्यु पर ध्यान करके लौटता था तो जो पहली घटना उसके मित्रों को दिखाई पड़ती थी, वह थी रस-परित्याग। रस चला गया। रस के जाने का सूत्र है--चेतना और मन का संबंध टूट जाए। वह संबंध कैसे टूटेगा और संबंध कैसे निर्मित हुआ है? जब तक मैं सोचता हूं--मैं मन हूं, तब तक संबंध है। यह आइडेंटिटी, यह तादात्म्य कि मैं मन हूं, तब तक संबंध है। यह संबंध का टूट जाना, यह जानना कि मैं मन नहीं हूं, रस छिन्न-भिन्न हो जाता है--खो जाता है।
रस-परित्याग की प्रक्रिया है--मन के प्रति साक्षीभाव, विटनेसिंग। जब
आप भोजन कर रहे हैं तो मैं नहीं कहूंगा आपको कि आप भोजन मत करें, यह रसपूर्ण है। मैं आपसे यह भी नहीं कहूंगा कि आप जीभ को जला लें क्योंकि जीभ रस देती है। मैं आपसे यह भी नहीं कहूंगा कि मन में आप अनुभव न करें कि यह खट्टा है, यह मीठा है। मैं आप से कहूंगा--भोजन करें, जीभ को स्वाद लेने दें; मन को पूरी खबर होने दें, पूरी संवेदना होने दें कि बहुत स्वादिष्ट है। सिर्फ भीतर इस सारी प्रक्रिया के साक्षी बन कर खड़े रहें। देखते रहें कि मैं देखने वाला हूं। मन को स्वाद मिल रहा; जीभ को रस आ रहा; वस्तु प्रीतिकर मालूम पड़ती रही; लेकिन मैं पीछे खड़ा देख रहा हूं। जस्ट बियांड--एक कदम भी पार खड़े होकर देख रहा हूं। मैं देख रहा हूं; मैं द्रष्टा हूं; मैं साक्षी हूं।
रस के अनुभव में सिर्फ इतना भाव गहन हो जाए तो आप अचानक पाएंगे कि इंद्रियां वही हैं, उन्हें नष्ट करना नहीं पड़ा। पदार्थ वही हैं, उन्हें छोड़ कर भागना नहीं पड़ा। मन वही है, वह उतना ही संवेदनशील है, उतना ही सजग, जीवंत है; लेकिन रस का जो आकर्षण था वह खो गया। रस जो बुलाता था, पुकारता था, रस की जो पुनरावृत्ति की इच्छा थी--रस का आकर्षण है कि उसे फिर से दोहराओ; उसे फिर से दोहराओ; उसे दोहराओ बार-बार, उसके चक्कर में घूमो--वह खो गया है। वह बिल्कुल खो गया है। उसकी पुनरुक्ति की कोई आकांक्षा नहीं रही। और हम ऐसे रसों तक की पुनरुक्ति करने लगते हैं जो चाहे जीवन को नष्ट करने वाले क्यों न हों। अब एक आदमी शराब पी रहा है। वह जानता है, सुनता है, पढ़ता है कि जहर है, पर उसकी भी पुनरुक्ति की मांग है। मन कहता है दोहराओ। एक आदमी धूम्रपान कर रहा है। वह जानता है कि वह निमंत्रण दे रहा है न मालूम कितनी बीमारियों को--वह भलीभांति जानता है। अगर किसी और को समझाना हो तो वह समझाता है। अगर अपने बेटे को रोकना हो तो वह कहता है--भूल कर कभी धूम्रपान मत करना। लेकिन वह खुद करता है। पुनरुक्ति की आकांक्षा है। विकृत रस भी अगर संयुक्त हो जाएं, और विकृत रस भी संयुक्त हो जाते हैं, एसोसिएशन से।
शिलर एक जर्मन लेखक हुआ। जब उसने अपनी पहली कविता लिखी थी तो वृक्षों
पर सेव पक गए थे, नीचे गिर रहे थे। वह उस बगीचे में बैठा था। कुछ सेव नीचे गिर कर सड़ गए थे, और सड़े हुए सेवों की गंध पूरी हवाओं में तैर रही थी। तभी उसने पहली कविता लिखी। यह पहली कविता का जन्म और सड़े हुए सेवों की गंध एसोसिएटेड हो गए, संयुक्त हो गए। इसके बाद शिलर जिंदगी भर कुछ भी न लिख सका

जब तक अपनी टेबल के आस-पास वह सड़े हुए सेव न रख ले। बिल्कुल पागलपन था। वह खुद कहता था कि बिल्कुल पागलपन है। लेकिन जब तक सड़े हुए सेवों की गंध नहीं आती, मेरे भीतर काव्य सक्रिय नहीं होता। उसमें गति नहीं पकड़ती। मैं साधारण आदमी बना रहता हूं, शिलर नहीं हो पाता। जैसे ही सड़े हुए सेवों की गंध चारों तरफ से मेरे नासापुटों को घेर लेती है, मैं बदल जाता हूं। मैं दूसरा आदमी हो जाता हूं। वह कहता था कि माना कि बड़ा रुग्ण मामला है कि सड़े हुए सेव, और भी गंधें हो सकती हैं, फूल रखे जा सकते हैं। लेकिन नहीं, यह संयुक्त हो गया।
अगर एक आदमी सिगरेट पी रहा है तो सिगरेट का पहला अनुभव सुखद नहीं है, दुखद है। लेकिन यह दुखद अनुभव भी निरंतर दोहराने से किसी क्षण की अनुभूति से अगर संयुक्त हो गया, तो फिर जिंदगी भर पुनरुक्ति मांगता रहेगा। और हो सकता है संयुक्त। जब आप सिगरेट पीते हैं तो एक अर्थों में सारी दुनिया से टूट जाते हैं। सिगरेट पीना एक अर्थ में मैस्टरबेटरी है, वह हस्तमैथुन जैसी चीज है।
मनोवैज्ञानिक ऐसा कहते हैं--आप अपने में ही बंद हो जाते हैं; दुनिया
से कोई लेना-देना नहीं; अपना धुआं है, उड़ा रहे हैं, बैठे हैं। दुनिया टूट गई, आपके और दुनिया के बीच एक स्मोक करटेन आ गया। पत्नी घर है, मतलब नहीं। दुकान चलती है कि नहीं चलती, मतलब नहीं। कहां क्या हो रहा है, मतलब नहीं। आपको इतना मतलब है कि आप धुआं भीतर खींच रहे हैं, बाहर छोड़ रहे हैं। आप सारे जगत से टूट गए, आइसोलेट हो गए। अकेले हो गए। अकेले में एक तरह का रस आता है, आइसोलेशन में रस है। वही तो एकांत के साधक को आता है। अब आप यह जान कर हैरान होंगे कि एकांत के साधक को जो आता है, अगर वह किसी क्षण में सिगरेट पीने में आ गया, और आ सकता है, और आ जाता है, क्योंकि सिगरेट भी तोड़ती है। इसलिए अकेला आदमी बैठा रहे तो थोड़ी देर में सिगरेट पीना शुरू कर देता है। ख्याल मिट जाता है सब चारों तरफ का। अपने में बंद हो जाता है, क्लोजिंग हो जाती है।
यह वैसा ही है जैसे छोटा बच्चा अकेला पड़ा हुआ अपना अंगूठा पीता रहे।
जब छोटा बच्चा अपना अंगूठा पीता है, ही इ.ज डिसकनेक्टेड, उसका दुनिया से कोई संबंध नहीं रहा। दुनिया से उसे कोई मतलब नहीं, उसे अपनी मां से भी अब मतलब नहीं है। इसलिए मनोवैज्ञानिक कहते हैं--बच्चे को बहुत ज्यादा अंगूठा मत पीने देना। अन्यथा उसकी जिंदगी में सामाजिकता कम हो जाएगी। अगर कोई बच्चा बहुत दिनों तक अंगूठा पीता रहे तो वह एकांगी और अकेला हो जाएगा। वह दूसरों से मित्रता नहीं बना सकेगा। मित्रता की जरूरत नहीं। अपना अंगूठा ही मित्र का काम देता है। किसी से कुछ मतलब नहीं। जो बच्चा अंगूठा पीने लगेगा, उसका मां से प्रेम निर्मित नहीं हो पाएगा, क्योंकि मां से जो प्रेम निर्मित होता है वह उसके स्तन के माध्यम से ही होता है, और कोई माध्यम नहीं है। अगर वह अपने अंगूठे से इतना रस लेने लगा जितना मां के स्तन से मिलता रहा है, तो वह मां से इनडिपेंडेंट हो गया। अब उसकी कोई डिपेंडेंस नहीं मालूम होती उसको। अब वह निर्भर नहीं है। और जो बच्चा अपनी मां से प्रेम नहीं कर पाएगा, इस दुनिया में वह फिर किसी से प्रेम नहीं कर पाएगा, क्योंकि प्रेम का पहला पार्ट ही नहीं हो पाया। वह बच्चा अपने में बंद हो गया। एक अर्थ में वह बच्चा अब समाज का हिस्सा नहीं रह गया।
और जान कर आप हैरान होंगे कि जो बच्चे बचपन में ज्यादा अंगूठा पीते हैं, वे ही बच्चे बड़े होकर सिगरेट पीते हैं। जिन बच्चों ने बचपन में अंगूठा कम पिया है या नहीं पिया है, उनके जीवन में सिगरेट पीने की संभावना न के बराबर हो जाती है। क्योंकि सिगरेट जो है वह अंगूठे का सब्स्टीट्यूट है, वह उसका परिपूरक है। बड़ा आदमी अंगूठा पीए तो जरा बेहूदा मालूम पड़ेगा। तो उसने सिगरेट ईजाद की है, चुरुट ईजाद किया है। उसने ईजाद की है चीजें, उसने हुक्का ईजाद किया है, लेकिन पी रहा है वह अंगूठा। वह कुछ और नहीं पी रहा है। लेकिन बड़ा है तो एकदम सीधा-सीधा अंगूठा पीएगा तो जरा बेहूदा लगेगा। लोग क्या कहेंगे! इसलिए उसने एक परिपूरक इंतजाम कर लिया है। अब लोग कुछ भी न कहेंगे। ज्यादा से ज्यादा इतना ही कहेंगे कि सिगरेट पीने से नुकसान होता है। अंगूठा पीने से कोई भी न कहेगा कि नुकसान होता है, लेकिन

अंगूठा पीते देख कर आदमी चौंक जाएंगे कि यह क्या कर रहे हो! सिगरेट पीने से इतना ही कहेंगे कि नुकसान होता है। वह कहेगा--क्या करें मजबूरी है, यह तो मैं भी जानता हूं, लेकिन आदत पड़ गई है। अंगूठे में वह बुद्धू मालूम पड़ेगा, सिगरेट में वह समझदार मालूम पड़ेगा।
सब्स्टीट्यूट सिर्फ धोखा देते हैं। लेकिन, अगर एक बार रस आ जाए तो गलत
से गलत चीज संयुक्त हो जाती है।
मुल्ला की पत्नी एक दिन उसके कॉफी-हाउस में पहुंच गई जहां वह शराब पीता रहता था बैठ कर। मुल्ला अपना टेबल पर गिलास और बोतल लिए बैठा था। पत्नी आ गई तो घबड़ाया तो बहुत, लेकिन उसने, पत्नी आ गई थी तो एक प्याली में उसको भी डाल कर शराब दी। पत्नी भी आई थी आज जांचने कि यह क्या करता रहता है! शराब उसने एक घूंट पिया, नितांत तिक्त और बेस्वाद था, उसने नीचे रख दिया और मुंह बिगाड़ा, और उसने कहा कि मुल्ला, तुम यह पीते रहते हो? मुल्ला ने कहाः सोचो, तू सोचती थी मैं बड़ा आनंद मनाता रहता हूं। यही दुख भोगने के लिए हम यहां आते हैं। समझ गई, अब दुबारा भूल कर मत कहना कि वहां तुम बड़ा आनंद करने जाते हो।
शराब का पहला अनुभव तो दुखद ही है, लेकिन शराब के गहरे अनुभव धीरे- धीरे सुखद होने शुरू हो जाते हैं, क्योंकि शराब आपको जगत से तोड़ देती है, जगत की चिंताओं से तोड़ देती है। जगत मिट जाता है, आप ही रह जाते हैं। यह बहुत ही मजे की बात है कि ध्यान और शराब में थोड़ा संबंध है। इसलिए विलियम जेम्स ने, जिसने कि इस सदी में धर्म और नशे के बीच संबंध खोजने में सर्वाधिक शोध कार्य किया, विलियम जेम्स ने कहा कि शराब का इतना आकर्षण गहरे में कहीं न कहीं धर्म से संबंधित है, अन्यथा इतना आकर्षण हो नहीं सकता। कहीं न कहीं शराब कुछ ऐसा करती होगी जो मनुष्य की गहरी धार्मिक आकांक्षा को तृप्त करता है--है संबंध। और इसलिए वेद के सोमरस से लेकर अल्डुअस हक्सले तक, एल एस डी तक, धार्मिक आदमी का बड़ा हिस्सा नशों का उपयोग करता रहा है--बड़ा हिस्सा। और नशे के उपयोग में कहीं न कहीं कोई तालमेल है। वह तालमेल इतना ही है कि शराब आपको जगत से तोड़ देती है इस बुरी तरह कि आप बिल्कुल अकेले हो जाते हैं। अकेले होने में एक रस है। संसार की सारी चिंताएं भूल जाती हैं। आप एक गहरे अर्थ में निश्चिंत मालूम पड़ते हैं। हो तो नहीं जाते। शराब तो थोड़ी देर बाद विदा हो जाएगी, चिंता वापस लौट आएगी, लेकिन शराब के साथ इस निश्चिंतता का रस जुड़ जाएगा। बस वह एक दफा रस जुड़ गया, फिर आप शराब के नाम से जहर पीते रहेंगे। वह कितना ही तिक्त मालूम पड़े, वह रस जो संयुक्त हो गया। हम विकृत रसों से भी जुड़ जा सकते हैं, और फिर उनकी पुनरुक्ति की मांग शुरू हो जाती है।
मुल्ला एक दिन अपने मकान के दरवाजे पर उदास बैठा है। पड़ोसी बहुत हैरान हुआ क्योंकि दो सप्ताह से वह बहुत प्रसन्न मालूम पड़ रहा था, इतना जितना कभी नहीं मालूम पड़ा था। उदास देख कर पड़ोसी ने पूछा कि आज नसरुद्दीन बहुत उदास मालूम पड़ते हो, बात क्या है? नसरुद्दीन ने कहा--बात! बात बहुत कुछ है। इस महीने के पहले सप्ताह मेरे दादा मर गए और मेरे नाम पचास हजार रुपये छोड़ गए। दूसरे सप्ताह मेरे चाचा मर गए और मेरे नाम तीस हजार रुपये छोड़ गए और तीसरा सप्ताह पूरा होने को है, अभी तक कुछ नहीं हुआ।
मन पुनरुक्ति मांगता है। इसका सवाल नहीं है कि कोई मरेगा तब कुछ होगा। मरने का दुख एक तरफ रह गया। वह पचास हजार रुपए मिलने का सुख है। इसलिए मनस्विद कहते हैं कि सिर्फ गरीब बाप के मरने से बेटे दुखी होते हैं; अमीर बाप के मरने से केवल दुख प्रकट करते हैं। इसमें सच्चाई है। क्योंकि मृत्यु से भी ज्यादा कुछ और साथ में अमीर बाप के साथ घटता है। उसका धन भी बेटे के हाथ में आ जाता है। दुख वह प्रकट करता है, लेकिन वह दुख ऊपरी हो जाता है। भीतर एक रस भी आ जाता है। और अगर उसे पता चले कि बाप पुनः जिंदा हो गया, तो आप समझ सकते हैं, मुसीबत कैसी मालूम पड़े। वह नहीं होता कभी जिंदा, यह दूसरी बात है।
मुल्ला की जिंदगी में ऐसी तकलीफ हो गई थी। उसकी पत्नी मर गई, बा मुश्किल मरी। अरथी को उठा कर ले जा रहे थे कि अरथी सामने लगे हुए नीम के वृक्ष से टकरा गई। अंदर से आवाज आई हलन-चलन की। लोगों ने अरथी उतारी, पत्नी

मरी नहीं थी, सिर्फ बेहोश थी। मुल्ला बड़ा छाती पीट कर रो रहा था। पत्नी को जिंदा देख कर बड़ा दुखी हो गया--छाती पीट कर रो रहा था, पत्नी को जिंदा देख कर वह बड़ा दुखी हो गया। फिर पत्नी तीन साल और जिंदा रही, फिर मरी, और जब अरथी उठा कर लोग चलने लगे तो मुल्ला फिर छाती पीट कर रो रहा था। जब नीम के पास पहुंचे, तो उसने कहाः भाइयो, जरा सम्हाल कर, फिर से मत टकरा देना। आदमी, जो प्रकट करता है, वही उसके भीतर है, ऐसा जरूरी नहीं है। ज्यादा संभावना तो यह है कि वह जो प्रकट करता है, उससे विपरीत उसके भीतर होता है। शायद वह प्रकट ही इसलिए करता है कि वह जो विपरीत भीतर है वह छिपा रहे, वह प्रकट न हो जाए। अगर ज्यादा जोर से छाती पीट कर रो रहा है तो जरूरी नहीं कि इतना दुख हो। लेकिन कहीं किसी को पता न चल जाए कि दुख नहीं है तो छाती पीट कर रो सकता है। भीतर अन्यथा भी हो सकता है। कितनी ही गलत चीज में अगर रस आ जाए तो उसकी पुनरुक्ति शुरू हो जाती है। गलत से गलत चीज में शुरू हो जाती है, तो सही चीज में तो कोई कठिनाई नहीं है।
पर यह जोड़ कब पैदा होता है? यह लिंक कब बनती है? यह लिंक, यह जोड़, यह संबंध तब बनता है जब व्यक्ति अपने मन से अपने को दूर नहीं पाता, एक पाता है। वही उसके जुड़ने का ढंग है, जब हम पाते हैं कि मैं मन हूं। अब आपको क्रोध आता है और आप कहते हैं कि मैं क्रोधी हो गया, तो आपको पता नहीं, आप मन के साथ जोड़ बना रहे हैं। जब आपके जीवन में दुख आता है और आप कहते हैं--मैं दुखी हो गया, तो आपको पता नहीं, आप मन के साथ अपने को एक समझने की भ्रांति में पड़ रहे हैं। जब सुख आता है तो आप कहते हैं--मैं सुखी हो गया, तब आप फिर मन के साथ तादात्म्य कर रहे हैं।
अगर रस-परित्याग साधना है तो जब क्रोध आए तब कहना कि क्रोध आया, ऐसा मैं देखता हूं--ऐसा नहीं कि क्रोध मुझे आ ही नहीं रहा है--तब आप फिर संबंधित हो गए। ध्यान रहे अगर आपने कहा--नहीं, क्रोध मुझे आ ही नहीं रहा, और क्रोध आ रहा है तो आप क्रोध से संबंधित हों या अक्रोध से संबंधित हों, दोनों हालत में रस-परित्याग नहीं होगा। जब क्रोध आए तब रस-परित्याग की साधना करने वाला व्यक्ति कहेगा, क्रोध आ रहा है, क्रोध जल रहा है, लेकिन मैं देख रहा हूं।
और सच यही है कि आप देखते हैं, आप कभी क्रोधी होते नहीं। वह भ्रांति है
कि आप क्रोधी होते हैं। आप सदा देखने वाले बने रहते हैं। जब पेट में भूख लगती है तब आप भूखे नहीं हो जाते, आप सिर्फ जानने वाले होते हैं कि भूख लगी है। जब पैर में कांटा गड़ता है तो आप दर्द नहीं हो जाते, तब आप जानते हैं कि पैर में दर्द हो रहा है, ऐसा मैं जानता हूं।
लेकिन इस जानने का बोध आपका प्रगाढ़ नहीं है, बहुत फीका है। वह इतना फीका है कि जब पैर का कांटा जोर से चुभता है तो भूल जाता है उस बोध को प्रगाढ़ करने का नाम रस-परित्याग है। वह बोध जितना प्रगाढ़ होता जाए, तब जीभ आपकी कहेगी--बहुत स्वादिष्ट है। आप कहेंगे कि ठीक है, जीभ कहती है कि स्वादिष्ट है--ऐसा मैं सुनता हूं, ऐसा मैं देखता हूं, ऐसा मैं समझता हूं, लेकिन मैं अलग हूं। रसानुभव के बीच में साक्षी हूं। कोई सम्मान कर रहा है, फूलमालाएं डाल रहा है, तब आप जानते हैं कि फूलमालाएं डाली जा रही हैं, कोई सम्मान कर रहा है, मैं देख रहा हूं। कोई पत्थर मार रहा है, कोई गालियां दे रहा है, तब आप जानते हैं कि गालियां दी जा रही हैं, पत्थर मारे जा रहे हैं, मैं देख रहा हूं।
और एक बार इस द्रष्टा के साथ संबंध बन जाए और इस मन के संबंध शिथिल हो जाएं तो आप पाएंगे, सब रस खो गए। न वस्तुएं छोड़नी पड़तीं, न आंखें फोड़नी पड़तीं, न तथाकथित आरोपण अपने ऊपर करना पड़ता, लेकिन रस खो जाते हैं। और जब रस खो जाते हैं तो वस्तुएं अपने आप छूट जाती हैं। और जब रस खो जाते हैं तो इंद्रियां अपने आप शांत हो जाती हैं। और जब रस खो जाते हैं तो मन पुनरुक्ति की मांग बंद कर देता है। क्योंकि वह करता ही इसलिए था कि रस मिलता था। अब जब मालिक को ही रस नहीं मिलता तो बात समाप्त हो गई। मन हमारा नौकर है, छाया की तरह हमारे पीछे चलता है। हम जो कहते हैं वह मन दोहरा देता है। मन जो दोहराता है इंद्रियां वही मांगने लगती हैं। इंद्रियां जो

मांगने लगती हैं, हम उन्हीं के पदार्थों को इकट्ठा करने में जुट जाते हैं। ऐसा चक्कर है।
इसे आप पहले केंद्र से ही तोड़ें। फिर भी महावीर इसे कहते हैं, यह बाह्य-तप है। यह बड़े मजे की बात है। इसे तोड़ना पड़ेगा भीतर, लेकिन फिर भी यह बाह्य-तप है। क्योंकि जिससे आप तोड़ रहे हैं वह बाहर की ही चीज है, फिर भी बाहर की चीज है। अगर मैं साक्षी हो रहा हूं तो भी तो बाहर का हो रहा हूं, वस्तु का ही हो रहा हूं, इंद्रियों का हो रहा हूं, मन का हो रहा हूं। वे सब पराए हैं, वे सब बाहर हैं।
ध्यान रहे, महावीर कहते हैं, साक्षी होना भी बाहर है। इसलिए जब केवली होता है कोई तब वह साक्षी भी नहीं होता। किसका साक्षी होना है? वह सिर्फ होता है--जस्ट बीइंग, सिर्फ होता है। साक्षी भी नहीं होता क्योंकि साक्षी में भी द्वैत है। कोई है जिसका मैं साक्षी हूं। अभी वह कोई मौजूद है। इसलिए केवली साक्षी भी नहीं होता। जब तक मैं ज्ञाता हूं तब तक कोई ज्ञेय मौजूद है, इसलिए केवली ज्ञाता भी नहीं होता, मात्र ज्ञान रह जाता है। इसलिए महावीर इसे भी बाह्य कहेंगे। यह भी बाहर है। लेकिन बाहर का यह मतलब नहीं है कि आप बाहर की वस्तु को छोड़ने से शुरू करें। बाहर की वस्तु छूटना शुरू होगी, यह परिणाम होगा। अगर किसी व्यक्ति ने बाहर की वस्तु छोड़ने से शुरू किया तो वह मुश्किलों में पड़ जाएगा, उलझ जाएगा। वह जिस वस्तु को छोड़ेगा उसमें आकर्षण बढ़ जाएगा। वह जिससे भागेगा उसका निमंत्रण मिलने लगेगा। वह जिसका निषेध करेगा उसकी पुकार बढ़ जाएगी। जीभ से लड़ेगा, आंख से लड़ेगा तो मन और भी ज्यादा प्रताड़ित करने लगेगा। रस कायम है और इंद्रिय पास में नहीं तो मन और भी ज्यादा प्रताड़ित करेगा। अगर मन को दबाएगा, हटाएगा, समझाएगा, बुझाएगा तो मन उलटी मांग करता है। सिर्फ एक ही जगह है जहां से रस टूट जाता है, वह है साक्षीभाव। रस-परित्याग की प्रक्रिया है, साक्षीभाव।
रस-परित्याग के बाद महावीर ने कहा है--काया-क्लेश। यह महावीर के साधना सूत्रों में सबसे ज्यादा गलत समझा गया साधना सूत्र है। काया-क्लेश शब्द साफ है। लगता है--शरीर को कष्ट दो, का या को क्लेश दो, काया को सताओ; लेकिन महावीर सताने की किसी भी बात में गवाही नहीं हो सकते। क्योंकि सब सताना हिंसा है। अपना ही शरीर सताना भी हिंसा है, क्योंकि महावीर कहते हैं--वह भी तुम्हारा है! सच तुम्हारा है जो तुम उसे सता सकोगे? पदार्थ पर है। मेरे शरीर में जो खून की धारा दौड़ रही है वह उतनी ही मुझसे दूर है जितनी आपके शरीर में खून की धारा दौड़ रही है। मेरे शरीर में जो हड्डी है, वह भी मैं नहीं हूं। उतना ही मैं नहीं हूं जितना आपके शरीर की हड्डी मैं नहीं हूं। और जब मेरे शरीर की हड्डी निकाल कर और आपके शरीर की हड्डी निकाल कर रख दी जाए तो मैं पता भी न लगा पाऊंगा कि कौन सी मेरी हड्डी है--कि लगा पाऊंगा? कोई पता न लगेगा। हड्डी सिर्फ हड्डी है। वह मेरी-तेरी नहीं है। और मेरी हड्डी जिस नियम से बनती है उसी नियम से आपकी हड्डी भी बनती है। वह सब बाहर की ही व्यवस्था है।
तो महावीर अपने शरीर को भी सताने की बात नहीं कह सकते क्योंकि महा वीर भलीभांति जानते हैं कि अपना वहां क्या है? वहां भी सब पराया है। सिर्फ डिस्टेंस का फासला है। मेरा शरीर मुझसे थोड़ा कम दूरी पर, आपका शरीर मुझसे थोड़ी ज्यादा दूरी पर है, बस इतना ही फासला है। और तो कोई फासला नहीं है। पर महावीर की परंपरा ने ऐसा ही समझा कि काया को सताओ, और इसलिए मेसोचिस्ट का, आत्मपीड़कों का बड़ा वर्ग महावीर की धारा में सम्मिलित हुआ। जिन-जिन को लगता था कि अपने को सताने में मजा आ सकता है वे सम्मिलित हुए।
अब ध्यान रहे, महावीर ने अपने बालों का लोंच किया, अपने बाल उखाड़ कर फेंक दिए। क्योंकि महावीर कहते थे--अब बालों को उखाड़ने के लिए भी कोई साधन पास में रखना पड़े, कोई रेजर साथ रखो या किसी नाई पर निर्भर रहो, या नाई के यहां क्यू लगा कर खड़े हो, महावीर ने कहा, फिजूल-फिजूल समय इसमें खोना जरूरी नहीं है। महावीर अपने बाल उखाड़ देते थे। लेकिन महावीर बाल उखाड़ते थे इसलिए नहीं कि बाल उखाड़ने में जो पीड़ा होती थी उस पीड़ा में उन्हें कोई रस था। सच तो यह है कि महावीर को बाल उखाड़ने में पीड़ा नहीं होती थी। यह थोड़ा

समझने जैसा है। आपके शरीर में बाल और नाखून डेडपार्ट्स हैं, जिंदा हिस्से नहीं हैं। नाखून और बाल मरे हुए हिस्से हैं इसलिए तो कैंची से काट कर दर्द नहीं होता। अंगुली काटिए! बाल कैंची से कटता है, आपको दर्द क्यों नहीं होता? इफ इट इ.ज ए पार्ट--अगर आपका ही हिस्सा है तो दर्द होना चाहिए, यदि वह जिंदा है तो दर्द होना चाहिए। लेकिन आपके बाल कटते रहते हैं, आपको पता भी नहीं चलता। बाल मरा हुआ हिस्सा है। असल में शरीर में जो जीव कोष मर जाते हैं उन कोषों को बाहर निकालने की तरकीब है--बाल और ना खून और अनेक तरह से, पसीने से, और सब तरह से। शरीर के मरे हुए कोष शरीर बाहर फेंक देता है। तो बाल आपके शरीर के मरे हुए कोष हैं। अगर मरे हुए कोषों को भी खींचने से पीड़ा होती है तो वह भ्रांति है सिर्फ। वह सिर्फ ख्याल है कि पीड़ा होगी, इसलिए होती है।
आप कहेंगे, क्या सारे लोग भ्रांति में हैं? तो मैं आपको एक छोटी सी वैज्ञानिक घटना कहूं जिससे ख्याल में आए। फ्रांस में एक आदमी है, लोरेंजो। उसने पीड़ारहित प्रसव के हजारों प्रयोग किए। कोई अब तक वह एक लाख स्त्रियों को बिना दर्द के प्रसव करवाया है। बिना कोई दवा दिए, बिना कोई अनस्थेसिया दिए, बिना बेहोश किए। जैसी स्त्री है वैसी ही उसे लिटा कर बिना दर्द के बच्चे को पैदा करवा देता है। वह कहता है--सिर्फ यह भ्रांति है कि बच्चे के पैदा होने में दर्द होता है, यह सिर्फ ख्याल है। और चूंकि यह ख्याल है इसलिए जब मां को बच्चा होने के करीब आता है तब वह भयभीत होनी शुरू हो जाती है कि अब दर्द होने वाला है। अब दर्द होगा। और चूंकि दर्द जब भी ख्याल में आता है तो वह अपनी पूरी मांस-पेशियों को भीतर सिकोड़ने लगती है। दर्द सिकोड़ता है--ध्यान रहे, सुख फैलाता है, दुख सिकोड़ता है। जब आप दुख में होते हैं तो सिकुड़ते हैं। अगर एक आदमी आपकी छाती पर छुरा लेकर खड़ा हो जाए, आपकी सब मांस-पेशियां भीतर सिकुड़ जाती हैं। कोई आपके गले में फूलमाला डाल दे, आपका सब फैल जाता है। फूलमाला डलवा कर कभी वजन मत तुलवाना, ज्यादा निकल सकता है। आप हैरान होंगे, यह वैज्ञानिक निरीक्षित तथ्य है कि भगतसिंह का वजन फांसी पर बढ़ गया। जेल में तौला गया और जेल से ले जाकर फांसी के तख्ते पर तौला गया, फांसी लगने वाली थी तो भगतसिंह का वजन कोई डेढ़ पौंड बढ़ गया। यह कैसे बढ़ गया? भगतसिंह इतना आनंदित था कि फैल सकता है। जब आप दुख में होते हैं तो अपने को आप सिकोड़ते हैं रक्षा के लिए।
तो जब मां को डर लगता है कि अब पीड़ा आने वाली है, अब बच्चा होने वाला है
और उसने देखी हैं चीखें, कराहें सुनी हैं अस्पतालों में, घर में। सब उसे पता है। वह अपनी मांस-पेशियों को भीतर सिकोड़ने लगती है। जब वह मांस-पेशियों को भीतर सिकोड़ती है और बच्चा बाहर निकलने के लिए धक्का देता है, पीड़ा शुरू होती है, दर्द शुरू हो जाता है। दर्द शुरू होता है, मां का भरोसा पक्का हो जाता है कि दर्द होने लगा। वह और जोर से सिकोड़ती है। वह जितने जोर से सिकोड़ती है, बच्चा उतने जोर से धक्के देता है। उसे बाहर निकलना है। दोनों के संघर्ष में पीड़ा और पेन पैदा होता है।
लोरेंजो कहता है--यह पेन सिर्फ मां पैदा करवाती है। यह सजेशन है उसका, ख्याल है। पेन होने की जरूरत ही नहीं। किसी जानवर को नहीं होता है, जंगली आदिवासियों को नहीं होता है। आदिवासी स्त्री बच्चा पैदा हो जाता है जंगल में, उसको टोकरी में रख कर अपने घर चल पड़ती है। उसे विश्राम की भी कोई जरूरत नहीं रहती क्योंकि जब दर्द ही नहीं हुआ तो विश्राम की क्या जरूरत? दर्द हुआ तो फिर महीने भर विश्राम की जरूरत है। यह सारा का सारा मानसिक है, लोरेंजो कहता है। और अब तो लोरेंजो की व्यवस्था रूस और अमरीका सब तरफ फैलती जा रही है। और वह सिर्फ मां को इतना समझाता है कि तू खींच मत अपनी मांस-पेशियों को, रिलैक्स रख। बच्चे को को-आपरेट कर बाहर आने में। तू सोच कि बच्चा बाहर जा रहा है। इसलिए आप देखेंगे कि कोई पचहत्तर प्रतिशत बच्चे रात में पैदा होते हैं। उनको रात में पैदा होना पड़ता है। क्योंकि नींद में मां लड़ाई नहीं करती। नहीं तो हिसाब से पचास परसेंट रात में हों, चलेगा। पचास परसेंट दिन में हों, चलेगा। इससे ज्यादा--इससे ज्यादा का मतलब है कि मां कुछ गड़बड़ करती है। या बच्चे रात में जगत में उतरने को ज्यादा आतुर हैं। कुल कारण इतना है कि मां जब तक जगी रहती है, वह ज्यादा सख्ती से अपनी

मांस-पेशियों को खींचे रहती है। वह सो जाती है तो शिथिल हो जाती है। सम्मोहन में बच्चे बिना दर्द के पैदा हो जाते हैं क्योंकि मां नींद में-- गहरी नींद में सम्मोहित हो जाती है। बच्चा पैदा हो जाता है।
लेकिन लोरेंजो कहता है--को-आपरेट विद दि चाइल्ड। और लोरेंजो यह भी कहता है कि जिस मां ने बच्चे के पैदा होने में सहयोग नहीं दिया वह बाद में भी नहीं दे पाएगी। और जिस बच्चे के साथ पहला अनुभव दुख का हो गया उस बच्चे के साथ सुख का अनुभव लेना बहुत मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि पहला अनुभव एक्सपोजर है, गहरा। वह गहरे में उतर जाता है। जिस बच्चे ने पहले ही दिन पीड़ा दे दी, अब वह पीड़ा ही देगा। यह प्रतीति गहन हो गई। तो इसलिए मां बुढ़ापे तक कहती रहती है कि मैंने तुझे नौ महीने पेट में रख कर दुख झेला। वह भूलती नहीं। मैंने कितनी-कितनी तकलीफें झेलीं। बच्चे के साथ सुख का अनुभव, मां कभी कम ही कहती सुनी जाती है। दुख के अनुभव ही कहती सुनी जाती है। शायद ही कोई मां यह कहती हो कि मैंने तुझे नौ महीने रख कर कितना सुख पाया। और जो मां ऐसा कह सकेगी, उसके आनंद की कोई सीमा नहीं रहेगी, लेकिन कहने का सवाल नहीं है, अनुभव की बात है। और जो मां बच्चे को नौ महीने पेट में रख कर आनंद नहीं पा सकी, उसने मां होने का हक खो दिया। दुख पाया तो दुश्मन हो गया। और जिसके साथ इतना दुख पाया अब उसके साथ दुख की ही संभावना का सूत्र गहन हो गया। अब जब वह दुख देगा, तभी ख्याल में आएगा, जब वह सुख देगा तो ख्याल में नहीं आएगा। क्योंकि हमारी च्वाइस शुरू हो गई, हमारा चुनाव शुरू हो गया।
लोरेंजो ने लाखों स्त्रियों को बिना दर्द के, प्रसव करवा कर यह प्रमाणित कर दिया कि दर्द हमारा ख्याल है। अगर प्रसव बिना दर्द के हो सकता है तो आप सोचते हैं, बाल बिना दर्द के नहीं निकल सकते! बहुत आसान सी बात है। महावीर अपने बाल उखाड़ कर फेंक देते हैं।
लेकिन पागलों की एक जमात है और मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि पागलों का
एक खास वर्ग है जो बाल नोंचने में रस लेता है। जिसको बाल नोंचने में रस आता है, अगर वह ऐसा ही बाजार में खड़े होकर बाल नोंचे, तो आप उसको पागलखाने भेज देंगे। अगर वह महावीर का अनुयायी होकर नोंचे तो आप उसके पैर छुएंगे। अब यह आदमी अगर थोड़ी भी इसमें बुद्धि है और पागलों में काफी होती है--काफी होती है। इसलिए काफी बुद्धि वाले लोग भी कभी-कभी पागल होते हैं। पागलों में काफी बुद्धि होती है। और जहां तक उनका पागलपन है वह अपनी बुद्धि का उसमें पूरा प्रयोग करते हैं। तो जो बाल नोंचने वाले पागल हैं वे महावीर में उत्सुक होकर साथ खड़े हो जाएंगे। कुछ पागल हैं, जिनको नग्न होने में रस आता है। उनको मनोवैज्ञानिक एक्झिबीशनिस्ट कहते हैं। अगर वे ऐसे ही नग्न होकर खड़े हों तो पुलिस पकड़ कर ले जाएगी। लेकिन महावीर को नग्न देख कर उनको बहुत मजा आ जाएगा। वे नग्न खड़े हो जाएंगे। और तब आप उनके पैर छूने पहुंच जाएंगे। पता लगाना बहुत मुश्किल है कि वह नग्नता की वजह से महावीर के अनुयायी हो गए, या महावीर के अनुयायी होने की वजह से वे नग्न हुए हैं। बाल नोंचने में उनको मजा आता है इसलिए महावीर के साथ चले गए, या महावीर के साथ चले गए और उस राज को पा गए जहां बाल नोंचने में कोई दर्द नहीं होता। यह तय करना बहुत मुश्किल है। आदमी के भीतर क्या हो रहा है, यह बाहर से जांच बड़ी कठिन है।
मुल्ला एक दिन चर्च में गया है सुनने। कोई बड़ा पादरी बोलने आया है। चला गया। एक ईसाई मित्र ने कहाः जाकर बैठ गया। आगे ही बैठा है। प्रभावशाली आदमी है। पादरी की भी नजर उस पर बार-बार जाती है। जब पादरी ने टेन कमांडमेंट्स पर बोलना शुरू किया, दस आज्ञाओं पर और जब उसने एक आज्ञा पर काफी बातें समझाईं--दाउ शैल्ट नॉट स्टील, चोरी नहीं करना तुम। तो मुल्ला बड़ा बेचैन हो गया। उसके माथे पर पसीना आ गया। पादरी को ख्याल भी आया कि बहुत बेचैन है यह आदमी, क्या बात है! इतना बेचैन है कि लगता है कि वह उठ कर न चला जाए। हाथ पैर उसके सीधे नहीं हैं। फिर पादरी दूसरी आज्ञा पर आया--दाउ शैल्ट नॉट कमिट एडल्टरी, व्यभिचार मत करना तुम। मुल्ला हंसने लगा। बड़ा प्रसन्न हुआ। बड़ा शांत और आनंदित दिखाई पड़ने लगा। पादरी और भी हैरान हुआ कि इसको हो क्या रहा है! जब सभा समाप्त हो गई, उसने मुल्ला को पकड़ा और कोने

में ले गया। और पूछा कि राज क्या है तुम्हारा? जब मैंने कहा--चोरी मत करना तो तुम बहुत परेशान थे। तुम्हारे माथे पर पसीना आ गया। और जब मैंने कहा-- व्यभिचार मत करना तो तुम बड़े आनंदित हो गए।
मुल्ला ने कहा कि जब आप नहीं मानते तो बताए देता हूं। जब आपने कहा चोरी मत करना तब मुझे ख्याल आया कि मेरा छाता कोई चुरा ले गया। छाता दिखाई नहीं पड़ रहा, तो मैं मुसीबत में पड़ गया कि जरूर कोई चोर--मुझे गुस्सा भी बहुत आया कि यह कैसा चर्च है, जहां चोर इकट्ठे हैं। लेकिन जब आपने कहा कि व्यभिचार मत करना, तब मुझे फौरन ख्याल आ गया कि रात में मैं छाता कहां छोड़ आया हूं--कोई हर्जा नहीं, कोई हर्जा नहीं।
आदमी के भीतर क्या हो रहा है, वह उसके बाहर देख कर पता लगाना बहुत मुश्किल है। आदमी के भीतर सूक्ष्म में वह जो घटित होता है वह बाहर के प्रतीकों से पकड़ना अत्यंत कठिन है। अक्सर ऐसा हुआ है कि महावीर के पास वे लोग भी इकट्ठे हो जाएंगे और जैसे-जैसे महावीर से फासला बढ़ता जाएगा, उनकी संख्या बढ़ती जाएगी। और एक वक्त आएगा कि महावीर के पीछे चलने वाली भीड़ में अधिक लोग वे होंगे जो उन बातों से उत्सुक हुए जिन बातों से उत्सुक नहीं होना चाहिए था। और जिन बातों से उत्सुक होना चाहिए था, उनका ख्याल ही मिट जाएगा। क्योंकि जिन बातों से उत्सुक होना चाहिए वे गहन हैं, और जिन बातों से हम उत्सुक होते हैं वे ऊपरी हैं, बाहरी हैं। अब महावीर को लोगों ने देखा है कि अपने बाल उखाड़ रहे हैं, भूखे खड़े हैं, नग्न खड़े हैं, धूप-सर्दी, वर्षा में खड़े हैं, तो जिन लोगों को भी अपने को सताना है, महावीर की आड़ में वे बड़ी आसानी से कर सकते हैं। लेकिन महावीर अपने को सता नहीं रहे। काया-क्लेश का अर्थ महावीर के लिए सताना नहीं है।
पर यह शब्द क्यों प्रयोग किया? महावीर का जो अर्थ है, वह यह है कि काया-क्लेश है। इसे थोड़ा समझें। शरीर दुख है, शरीर ही दुख है। शरीर के साथ सुख मिलता ही नहीं कभी, दुख ही मिलता है। शरीर के साथ कभी सुख मिलता ही नहीं, शरीर दुख ही देगा। इसलिए साधक जैसे ही आगे बढ़ेगा उसे शरीर से बहुत से दुख दिखाई पड़ने शुरू हो जाएंगे जो कल तक दिखाई नहीं पड़ते थे। क्योंकि वह अपने मोह और भ्रमों में जी रहा था। डिसइल्यूजनमेंट होगा। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं--जब से ध्यान शुरू किया तब से मन में बड़ी अशांति मालूम पड़ती है। ध्यान से अशांति नहीं हो सकती। अगर ध्यान से अशांति होती तो फिर शांति किस चीज से होगी? मैं जानता हूं, अशांति मालूम पड़ती है ज्यादा ध्यान करने पर। क्योंकि जो अशांति आपने कभी भी नहीं देखी थी अपने भीतर, वह ध्यान के साथ दिखाई पड़नी शुरू होगी। दिखती नहीं थी, इसलिए आप सोचते थे, है नहीं। जब दिखती तब पता चलता है कि है। इसलिए ध्यान के पहले अनुभव तो अशांति के बढ़ने के अनुभव हैं। जैसे-जैसे ध्यान बढ़ता है, अशांति पूरी प्रकट होती है। एक घड़ी आएगी कि भय लगने लगेगा कि मैं पागल तो नहीं हो जाऊंगा! अगर आप उस घड़ी को पार कर गए तो अशांति समाप्त हो जाएगी। अगर आप उस घड़ी को पार नहीं किए तो आप वापस अपनी अशांति की दुनिया में फिर लौट जाएंगे, सोए हुए।
एक आदमी सोया है। उसे पता नहीं चलता कि पैर में दर्द है। जागता है तो पता चलता है। लेकिन जागने से दर्द नहीं होता, जागने से पता चलता है। प्रत्यभिज्ञा होती है। महावीर जानते हैं कि काया-क्लेश बढ़ेगा। जैसे ही कोई व्यक्ति साधना में उतरेगा, उसकी काया उसे और ज्यादा दुख देती हुई मालूम पड़ेगी। क्योंकि सुख तो देना बंद हो जाएगा। सुख उसने कभी दिया नहीं था, सिर्फ हमने सोचा था कि देगी। वह हमारा भ्रम था, वह हमारा ख्याल था वह तो पर्दा उठ जाएगा, दुख ही दुख दिखाई पड़ेगा। उसे देख कर लौट मत जाना। महावीर कहते हैं--इस काया-क्लेश को सहना। यह काया-क्लेश देना नहीं है अपने को। काया-क्लेश बढ़ेगा। काया के दुख दिखाई पड़ने शुरू होंगे। उसकी बीमारियां दिखाई पड़ेंगी, तनाव दिखाई पड़ेंगे, असुविधाएं दिखाई पड़ेंगी, रुग्णता, बुढ़ापा आएगा, मौत आएगी, यह सब दिखाई पड़ेगा। जन्म से लेकर मृत्यु तक दुख की लंबी यात्रा दिखाई पड़ेगी। घबड़ा मत जाना। उस काया-क्लेश को सहना; उसको देखना; उससे राजी रहना, भागना मत।
तो काया-क्लेश का यह अर्थ नहीं है कि दुख देना। काया-क्लेश का अर्थ है--दुख आएगा, दुख प्रतीत होगा, दुख अनुभव में उतरेगा; तब तुम बचाव मत करना,

स्वीकार करना। अब यह बहुत अलग अर्थ है। और ऐसा देखेंगे तो महावीर की पूरी बात बहुत और दिखाई पड़ेगी। तब महावीर यह नहीं कह रहे कि तुम सताना, क्योंकि महावीर कह रहे हैं--सताने की जरूरत नहीं है। काया खुद ही इतना सताती है कि अब तुम और क्या सताओगे? काया के अपने ही दुख इतने पर्याप्त हैं कि तुम्हें और दुख ईजाद करने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन काया के दुख पता न चलें, इसलिए हम सुख ईजाद करते हैं, ताकि काया के दुख पता न चलें। सुख का हम आयोजन करते हैं। कल हो जाएगा आयोजन, परसों हो जाएगा आ योजन। किसी न किसी दिन तो सुख मिलेगा ही। आज नहीं मिला, कल मिलेगा, परसों मिलेगा। तो कल पर टालते जाते हैं, स्थगित करते जाते हैं। आज का दुख भुलाने के लिए कल का सुख निर्मित करते रहते हैं। आज पर पर्दा पड़ जाए इसलिए कल की रंगीन तस्वीर बनाए रखते हैं। इसलिए कोई आदमी आज में नहीं जीना चाहता। आज बड़ा दुखद है। सब कल पर टालते रहते हैं। आज बड़ा दुखद है। अभी अगर हम जाग जाएं तो सुख का सब भ्रम टूट जाए।
महावीर जानते हैं कि जैसे साधना में भीतर प्रवेश होगा, कल टूटने लगेगा, आज ही जीना होगा। और सारे दुख प्रगाढ़ होकर चुभेंगे, सब तरफ से दुख खड़े हो जाएंगे। सब तरफ बुढ़ापा और मौत दिखाई पड़ने लगेगी, कहीं सुख का कोई सहारा न रहेगा। जो कागज की नाव आप सोचते थे, पार कर देगी, वह डूब जाएगी। जो आप सोचते थे सहारा है, वह खो जाएगा। जिन भ्रमों के आसरे आप जीते थे वे मिट जाएंगे। जब बिल्कुल भ्रम शून्य, डिसइल्यूजंड आप सागर में खड़े होंगे, डूबते होंगे, न नाव होगी, न सहारा होगा, न किनारा दिखाई पड़ता होगा तब बड़ा क्लेश होगा। उस क्लेश को सहना। उस क्लेश को स्वीकार करना। जानना कि वह जीवन की नियति है। जानना कि वह प्रकृति का स्वभाव है। जानना कि ऐसा है। काया-क्लेश का अर्थ है यह--जो भी क्लेश आए, उसे स्वीकार करना, जानना कि ऐसा है। उससे बचने की कोशिश मत करना। उससे बचने की कोशिश ही भविष्य के स्वप्न में ले जाती है। उसके विपरीत सुख बनाने की चिंता में मत पड़ना। क्योंकि वह सुख बनाने की चिंता उसे देखने नहीं देती, जानने नहीं देती, पहचानने नहीं देती। और ध्यान रहे, इस जगत में जिसे मुक्त होना है, सुख से मुक्त कोई नहीं हो सकता, दुख से ही मुक्त होना होता है। सुख है ही नहीं, उससे मुक्त क्या होइएगा, वह भ्रम है। दुख से मुक्त होना होता है और दुख से मुक्ति दुख की स्वीकृति में छिपी है--एक्सेप्टिबिलिटी में छिपी है, टोटल एक्सेप्टिबिलिटी, समग्र स्वीकार। काया-क्लेश का अर्थ है--काया दुख है, उसका समग्र स्वीकार। वह स्वीकार इतना हो जाना चाहिए कि आपके मन में यह सवाल भी न उठे कि काया दुख है। यह दूसरा हिस्सा काया-क्लेश का आपसे कहता हूं।
क्योंकि जब तक आपको लगता है, काया दुख है, इसका मतलब है कि आ पको काया
से सुख की आकांक्षा है। अगर मैं मानता हूं कि मेरा मित्र मुझे दुख दे रहा है, तो इसका कुल मतलब इतना है कि मैं अभी भी सोचता हूं कि मेरे मित्र से मुझे सुख मिलना चाहिए। अगर मैं कहता हूं कि मेरा शरीर दुख देता है तो उसका मतलब यह है कि मेरे शरीर से सुख की आकांक्षा कहीं शेष है। काया-क्लेश का अर्थ है कि स्वीकार कर लो दुख को, इतना स्वीकार कर लो कि तुम्हें क्लेश का भी बोध मिट जाए। क्लेश का बोध उसी दिन मिट जाएगा जिस दिन पूर्ण स्वीकृति होगी। इसलिए महावीर सब दुखों के बीच आनंद से भरे घूमते रहते हैं। वे जब वर्षा में खड़े हैं, या धूप में पड़े हैं, या नग्न हैं, या बाल उखाड़ रहे हैं, या भोजन नहीं कर रहे हैं तो किसी दुख में नहीं हैं। उन्हें दुख का अब पता ही नहीं है। काया-क्लेश की स्वीकृति इतनी गहन हो गई है कि अब दुख का कोई पता भी नहीं चलता। अब वह कैसे कहें कि यह दुख है।
अगर मैं अपेक्षा करता हूं कि जब रास्ते से मैं गुजरूं तो आप मुझे नमस्कार करें। अगर न करें तो दुख होगा। अगर मैं अपेक्षा ही नहीं करता तो न करें तो कैसे दुख होगा! अगर आप मुझे गाली देते हैं और मुझे दुख होता है तो उसका मतलब ही यह है कि मैंने अपेक्षा की थी कि आप गाली नहीं देंगे। नहीं देते तो मुझे सुख होता है, देते हैं तो मुझे दुख होता है। लेकिन अगर मेरी कोई अपेक्षा नहीं थी, अगर मेरा सिर्फ स्वीकार था कि आप गाली देंगे तो स्वीकार करूंगा। तब मैं जानूंगा कि यही नियति है। इस क्षण गाली ही पैदा हो

सकती थी, वह हो गई है। आपसे गाली ही मिल सकती थी, वह मिल गई है। इसमें कहीं कोई विपरीत दूसरी आकांक्षा नहीं हो, तो फिर कोई दुख नहीं रह जाता--एक तथ्य हो जाती है, एक फेक्टीसिटी। फिर इसके पीछे हमारी कोई कामना नहीं है। काया-क्लेश की साधना शुरू होती है, दुख के स्वीकार से--पूर्ण होती है दुख के विसर्जन से। विसर्जित नहीं हो जाता दुख, ध्यान रहे, जब तक जीवन है, दुख तो रहेगा। जीवन दुख है। लेकिन जिस दिन स्वीकार पूरा हो जाता है, उस दिन आपके लिए दुख नहीं रह जाता। महावीर अब भी रास्ते पर चलेंगे तो पैर थकेंगे। कोई पत्थर मारेगा तो सिर फूटेगा। कोई कान में खीलें ठोंक देगा तो शरीर दुख पाएगा। लेकिन महावीर अब दुखी नहीं होंगे। यह स्वीकार ही कर लिया कि ऐसा है। स्वीकार के साथ इतना बड़ा रूपांतरण होता है, इतना बड़ा ट्रांसफार्मेशन, जिसका हमें पता भी नहीं।
युद्ध के मैदान पर सैनिक जाता है तो जब तक नहीं जाता, तब तक भयभीत रहता है। बहुत घबड़ाया रहता है। बचाव की कोशिश में लगा रहता है कि किसी तरह बच जाऊं। लेकिन युद्ध के मैदान पर पहुंचता है। एक-दो दिन उसकी नींद खोई रहती है, सो नहीं पाता है, चौंक-चौंक उठता है। बम गिर रहे हैं, गोलियां चल रही हैं। पर दो-चार दिन के बाद आप दंग होंगे कि वही सैनिक, बम गिर रहे हैं, गोलियां चल रही हैं, सो रहा है। वही सैनिक, लाशें पड़ी हैं, भोजन कर रहा है। वही सैनिक, पास से गोलियां सरसराती निकल जाती हैं, ताश खेल रहा है। क्या हो गया इसको? एक बार युद्ध की स्थिति स्वीकृत हो गई, फेक्ट हो गया कि ठीक है, अब युद्ध है। बात खत्म हो गई।
लंदन पर बमबारी दूसरे महायुद्ध में चलती थी। चिंतित थे लोग कि क्या होगा? लेकिन दो-चार दिन के बाद बमबारी चलती रही, स्त्रियां बाजार में सामान खरीदने निकलने लगीं, बच्चे स्कूल पढ़ने जाने लगे। स्वीकृत हो गया। युद्ध एक तथ्य हो गया। ऐसा नहीं है कि युद्ध के मैदान पर वह जो लाश पास में पड़ी होती है वह लाश नहीं होती। और ऐसा भी नहीं है कि वह आदमी कठोर हो गया, अंधा हो गया, बहरा हो गया। नहीं, वह आदमी वही है। लेकिन तथ्य की स्वीकृति सारी स्थिति को बदल देती है। अस्वीकार जब तक करेंगे, तब तक तथ्य आपको सताएगा। जिस दिन स्वीकार कर लेंगे, बात समाप्त हो गई। अगर मैंने ऐसा जान ही लिया कि शरीर के साथ मौत अनिवार्य है तो मौत का दुख नष्ट हो गया। मौत आएगी, मौत नष्ट नहीं हो गई--मौत आएगी। लेकिन अब मुझे नहीं छू पाएगी। काया-क्लेश की साधना दुख की स्वीकृति से दुख की मुक्ति का उपाय है। लेकिन भूल कर भी काया को कष्ट देने की कोशिश काया-क्लेश की साधना नहीं है। क्योंकि जो आदमी काया को दुख देने में लगा है, वह आदमी फिर किसी सुख की आकांक्षा में पड़ा। प्रयत्न हम सुख के लिए ही करते हैं। ध्यान रहे प्रयत्न मात्र सुख के लिए है। जब तक हम कोई प्रयत्न करते हैं, तब तक हम सुख की ही आकांक्षा से करते हैं। एक आदमी अपने शरीर को भी सता सकता है, सिर्फ इस आशा में कि इससे मोक्ष मिलेगा, आनंद मिलेगा, आत्मा मिलेगी, परमात्मा मिलेगा। तो सुख की आकांक्षा जारी है।
महावीर की काया-क्लेश की धारणा किसी सुख के लिए शरीर को दुख देने की नहीं है। परंपरागत व्याख्याकार कहते हैं कि जैसे आदमी धन कमाने के लिए दुख उठाता है, ऐसा ही मोक्ष पाने के लिए दुख उठाना पड़ेगा। गलत कहते हैं। बिल्कुल ही गलत कहते हैं। जैसे कोई आदमी व्यायाम करता है तो शरीर को कष्ट देता है ताकि स्वास्थ्य ठीक हो जाए, ऐसा ही काया-क्लेश करना पड़ेगा। गलत कहते हैं। बिल्कुल गलत कहते हैं। काया तो क्लेश ही है अब और क्लेश आप उसमें जोड़ नहीं सकते। आपके हाथ के बाहर है क्लेश जोड़ना। अगर आपके हाथ के भीतर हो क्लेश जोड़ना, तब तो क्लेश कम करना भी आपके हाथ के भीतर हो जाएगा। यह समझ लें। अगर आप शरीर में दुख जोड़ सकते हैं तो घटा क्यों नहीं सकते। फिर वह सांसारिक कौन सी गलती कर रहा है, वह कह रहा है--तुम जोड़ने की कोशिश में लगे हो। अगर जोड़ने में सफल हो जाओगे--पांच दुख की जगह अगर तुम दस कर सकते हो तो मैं पांच की जगह शून्य क्यों नहीं कर सकता!
अगर दुख जुड़ सकते हैं तो दुख घट भी सकते हैं। जहां जोड़ हो सकता है, वहां घटना भी हो सकता है। तो यह तथाकथित धार्मिक आदमी जो शरीर को दुख दे रहा है इसमें, और भोगी जो शरीर के दुख कम करने में लगा है, कोई भेद नहीं है।

इनका तर्क एक ही है। इनकी निष्ठा भी एक है। इनकी श्रद्धा में भेद नहीं है। एक कह रहा है--हम जोड़ लेंगे; एक कह रहा है--हम घटा लेंगे। इनके गणित में फर्क नहीं है। इनके गणित का हिसाब एक ही है।
महावीर कहते हैं--न तुम जोड़ सकते, न तुम घटा सकते। जो है, उसे चाहो तो स्वीकार कर लो, चाहो तो अस्वीकार कर दो। इतना तुम कर सकते हो। जो आल्टरनेटिव है, जो विकल्प है वह स्वीकार और अस्वीकार में है। वह घटाने और बढ़ाने में नहीं है। तुम चाहो तो स्वीकार कर लो, तुम चाहो तो अस्वीकार कर दो। ध्यान रहे, स्वीकार कर लोगे तो दुख शून्य हो जाएगा। अस्वीकार कर दोगे तो दुख जितना अस्वीकार करोगे, उतना गुना ज्यादा हो जाएगा। काया-क्लेश का अर्थ है, पूर्ण स्वीकृति, जो है उसकी वैसी ही स्वीकृति।
महावीर के कानों में जिस दिन खीलें ठोंके गए, तो कथा कहती है, इंद्र ने आकर महावीर को कहा कि आप मुझे आज्ञा दें। हमें बड़ी पीड़ा होती है। आप जैसे निस्पृह व्यक्ति को लोग आकर कानों में खीलें ठोंक दें, सताएं, परेशान करें--हमें पीड़ा होती है।
तो महावीर ने कहा कि मेरे शरीर में ठोंके जाने से तुम्हें इतनी पीड़ा होती है तो तुम्हारे शरीर में ठोंके जाने से तुम्हें कितनी न होगी? इंद्र कुछ भी न समझा। उसने कहा कि निश्चित होती है। तो मैं आपकी रक्षा करने लगूं? महावीर ने कहाः तुम भरोसा देते हो कि तुम्हारी रक्षा से मेरे दुख कम हो जाएंगे? इंद्र ने कहाः कोशिश कर सकता हूं। कम होंगे कि नहीं, मैं नहीं कह सकता। महावीर ने कहाः मैंने भी जन्मों-जन्मों तक कोशिश करके देखी, कम नहीं हुए। अब मैंने कोशिश छोड़ दी। अब मैं इतनी कोशिश भी न करूंगा कि तुमको मैं रक्षा के लिए रखूं। नहीं, तुम जाओ। तुम्हारी भी भूल वही है जो उस कान में खीलें ठोंकने वाले की भूल थी। वह सोचता था खीलें ठोंक कर मेरे दुख बढ़ा देगा; तुम सोचते हो मेरे साथ रह कर मेरे दुख घटा दोगे। गणित तुम्हारा एक है। मुझे छोड़ दो, जो है मुझे स्वीकार है। उसने खीलें जरूर ठोंके। मुझ तक नहीं पहुंची उसकी खीलें, मैं बहुत दूर खड़ा हूं। मैंने स्वीकार कर लिया है, मैं दूर खड़ा हूं। एक्सेप्टेंस इ.ज ट्रासेंडेंस। जैसे ही किसी ने स्वीकार किया, अतिक्रमण हो जाता है। जिस स्थिति को आप स्वीकार करते हैं, आप उसके ऊपर उठ जाते हैं--तत्क्षण।
काया-क्लेश का यही अर्थ है। छठवां महावीर का बाह्य--तप है-संलीनता। उस
पर हम कल बात करेंगे।

अभी बैठेंगे... !

महावीर-वाणी, भाग 1
तेरहवां प्रवचन

संलीनताः अंतर-तप का प्रवेश-द्वार (धम्म-सूत्र)

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्य धम्मे सया मणो।।

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

बाह्य-तप का अंतिम सूत्र, अंतिम अंग है--संलीनता। संलीनता सेतु है, बाह्य-तप और अंतर-तप के बीच। संलीनता के बिना कोई बाह्य-तप से अंतर-तप की सीमा में प्रवेश नहीं कर सकता। इसलिए संलीनता को बहुत ध्यानपूर्वक समझ लेना जरूरी है। संलीनता सीमांत है; वहीं से बाह्य-तप समाप्त होते और अंतर-तप शुरू होते हैं।
संलीनता का अर्थ और संलीनता का प्रयोग बहुत अदभुत है। परंपरा जितना कहती है, वह तो इतना ही कहती है कि अपने शरीर के अंगों को व्यर्थ संचालित न करना संलीनता है। अकारण शरीर न हिले डुले, संयत हो, तो संलीनता है। इतनी ही बात नहीं, यह तो कुछ भी नहीं है। यह तो संलीनता का बाहर की रूपरेखा को भी स्पर्श करना नहीं है। संलीनता के गहरे अर्थ हैं। तीन हिस्सों में हम इसे समझें--पहला तो आपके शरीर में, आपके मन में, आपके प्राण में कोई भी हलन-चलन नहीं होती है, जब तक आपकी चेतना न कंपे। अंगुली भी हिलती है तो भीतर आत्मा में कंपन पैदा होता है। दिखाई तो अंगुली पड़ती है कि हिली, लेकिन कंपन भीतर से आता है; सूक्ष्म से आता है और स्थूल तक फैल जाता है। इतना ही सवाल नहीं है कि अंगुली न हिले क्योंकि यह हो सकता है अंगुली न हिले लेकिन भीतर कंपन हो। तो कोई अपने शरीर को संलीन करके बैठ जा सकता है, योगासन लगा कर बैठ जा सकता है, अभ्यास कर ले सकता है और शरीर पर कोई भी कंपन दिखाई न पड़े और भीतर तूफान चले, और ज्वालामुखी का लावा उबलता रहे और आग जले।
संलीनता वस्तुतः तो तब घटित होती है, जब भीतर सब इतना शांत हो जाता है
कि भीतर से कोई तरंग नहीं आती जो शरीर पर कंपन बने, लहर बने। पर हमें शरीर से ही शुरू करना पड़ेगा क्योंकि हम शरीर पर ही खड़े हैं। तो संलीनता के अभ्यास में जिसे उतरना हो उसे पहले तो अपनी शरीर की गतिविधियों का निरीक्षण करना होता है। यह पहला हिस्सा है।
क्या कभी आपने ख्याल किया है कि जब आप क्रोध में होते हैं तो और ढंग से चलते हैं? जब आप क्रोध में होते हैं तब आपके चेहरे की रेखाएं और हो जाती हैं; आपकी आंख पर अलग रंग फैल जाते हैं; आपके दांतों में कोई गति हो जाती है। आपकी अंगुलियां किसी भार से, शक्ति से भर जाती हैं। आपके समस्त स्नायु मंडल में परिवर्तन हो जाता है। जब आप उदास होते हैं तब आप और ढंग से चलते हैं, आपके पैर भारी हो गए होते हैं, उठाने का मन भी नहीं होता, कहीं जाने का भी मन नहीं होता। आपके प्राण पर जैसे पत्थर रख दिया हो, ऐसी आपकी सारी इंद्रियां पत्थर से दब जाती हैं। जब आप उदास होते हैं तब आपके चेहरे का रंग बदल जाता है, रेखा बदल जाती है। जब आप प्रेम में होते हैं तब, जब आप शांत होते हैं तब, तब सब फर्क पड़ते हैं। लेकिन आपने निरीक्षण न किया होगा। संलीनता का प्रयोग समझना हो तो जब आप क्रोध में हों तो भागें और दर्पण के सामने पहुंच जाएं। और देखें कि चेहरे में कैसी स्थिति है क्योंकि आपका क्रोध से भरा चेहरा दूसरों ने देखा है, आपने नहीं देखा। देखें कि आपका चेहरा कैसा है। जब आप उदास हों तब आईने के सामने पहुंच जाएं और देखें कि आंखें कैसी हैं। जब आप चल रहे हों उदास, तब ख्याल करें कि पैर कैसे पड़ते हैं, शरीर झुका हुआ है, उठा हुआ है।

हिटलर ने एक मनस्विद को फ्रांस पर हमला करने के पहले फ्रांस भेजा था
और पूछा था कि जरा फ्रांस की सड़कों पर देखो कि युवक कैसे चलते हैं, उनकी रीढ़ सीधी है या झुकी हुई है? उस मनस्विद ने खबर दी कि फ्रांस में लोग झुके- झुके चलते हैं। हिटलर ने कहा--फिर उनको जीतने में कोई कठिनाई न पड़ेगी। हिटलर का सैनिक देखा है आपने? पूरा जर्मनी रीढ़ सीधी करके चल रहा है। जब कोई आशा से भरा होता है तो रीढ़ सीधी हो जाती है। जब कोई निराशा से भरा होता है तो रीढ़ झुक जाती है। बुढ़ापे में सिर्फ इसीलिए रीढ़ नहीं झुक जाती कि शरीर कमजोर हो जाता है। इससे भी ज्यादा इसलिए झुक जाती है कि जीवन निराशा से भर जाता है। मौत सामने दिखाई पड़ने लगती है, भविष्य नहीं रह जाता। महावीर जैसे व्यक्ति की रीढ़ बुढ़ापे में भी नहीं झुकेगी, क्योंकि मौत नहीं है असली सवाल, बुढ़ापे में; मोक्ष का द्वार है, परम आनंद है। तो रीढ़ नहीं झुकेगी।
आप भी जब स्वस्थ चित्त, प्रसन्न चित्त होते हैं तो और ढंग से खड़े होते हैं। अगर मैं बोल रहा हूं और आपको उसमें कोई रस नहीं आ रहा है तो आप कुर्सी से टिक जाते हैं। अगर आपको कोई रस आ रहा है तो आपकी रीढ़ कुर्सी छोड़ देती है। आप सीधे हो जाते हैं। अगर कोई बहुत संवेदनशील हिस्सा आ गया है फिल्म में देखते समय, कोई बहुत थ्रिलिंग, कोई कंपा देने वाला हिस्सा हो गया है तो आपकी रीढ़ सीधी ही नहीं होती, आगे झुक जाती है। श्वास रुक जाती है। आपके चित्त में पड़े हुए छोटे-छोटे परिवर्तनों की लहरें आपके शरीर की परिधि तक फैल जाती हैं। ज्योतिषी या हस्तरेखाविद, या मुखाकृति को पढ़ने वाले लोग नब्बे प्रतिशत तो आप पर ही निर्भर होते हैं। आप कैसे उठते, कैसे चलते, कैसे बैठते, आपके चेहरे पर क्या भाव है। आपको भी पता नहीं है, वह सब आपके बाबत बहुत सी खबरें दे जाती हैं।
आदमी एक किताब है, उसे पढ़ा जा सकता है। और जिसे साधना में उतरना हो उसे खुद अपनी किताब पढ़नी शुरू करनी पड़ती है। सबसे पहले तो पहचान लेना होगा कि मैं किस तरह का आदमी हूं। तो जब क्रोध में आप आईने के सामने खड़े हो जाएं, और देखें, कैसा है चेहरा, क्या है रंग, आंख पर कैसी रेखाएं फैल गई हैं? जब शांत हों, मन प्रसन्न हो, तब भी आईने के सामने खड़े हो जाएं। तब आप अपनी बहुत सी तस्वीरें देखने में समर्थ हो जाएंगे और एक और मजेदार घटना घटेगी, वह संलीनता के प्रयोग का दूसरा हिस्सा है। जब आप आईने के सामने खड़े होकर अपने क्रोधित चित्त का अध्ययन कर रहे होंगे तब आप अचानक पाएंगे कि क्रोध खिसकता चला गया, शांत होता चला गया। क्योंकि जो क्रोध का अध्ययन करने में लग गया, उसका क्रोध से संबंध टूट जाता है, अध्ययन से संबंध जुड़ जाता है। उसकी चेतना का तादात्म्य, "मैं क्रोध हूं" से टूट गया, मैं अध्ययन कर रहा हूं, इससे जुड़ गया। और जिससे हमारा संबंध टूट गया वह वृत्ति तत्काल क्षीण हो जाती है।
तो आईने के सामने खड़े होकर एक और रहस्य आपको पता चलेगा कि अगर आप क्रोध का निरीक्षण करें तो क्रोध जिंदा नहीं रह सकता। तत्काल विलीन हो जाता है। और भी एक मजेदार अनुभव होगा कि जब आप बहुत शांत हों और जीवन एक आनंद के फूल की तरह मालूम हो रहा हो किसी क्षण में, कभी सूरज निकला हो सुबह का और उसे देख कर मन प्रफुल्लित हुआ हो; या रात चांद-तारे देखे हों और उनकी छाया और उनकी शांति मन में प्रवेश कर गई हो; या एक फूल को खिलते देखा हो और उसके भीतर की बंद शांति आपके प्राणों तक बिखर गई हो, तब आईने के सामने खड़े हो जाएं तब एक और नया अनुभव होगा, और वह अनुभव यह होगा कि जब कोई शांति का निरीक्षण करता है, तो क्रोध तो निरीक्षण करने से विलीन हो जाता है, शांति निरीक्षण करने से बढ़ जाती है। गहरी हो जाती है। क्रोध इसलिए विलीन हो जाता है कि आपका क्रोध से संबंध टूट जाता है। क्रोध से संबंधित होने के लिए बेचैन होना जरूरी है, परेशान होना जरूरी है, उद्विग्न होना जरूरी है। अध्ययन के लिए शांत होना जरूरी है। निरीक्षण के लिए, मौन होना जरूरी है। तटस्थ होना जरूरी है। तो संबंध टूट जाता है।
शांति के आप जितने ही निरीक्षक बनते हैं उतने ही आपके और निरीक्षण के लिए जो शांति जरूरी है वह भी जुड़ जाती है। अध्ययन के लिए जो शांति जरूरी है वह भी जुड़ जाती है। तटस्थ होना जरूरी है, वह भी जुड़ जाता है। शांति और गहरी

हो जाती है। सच तो यह है कि निरीक्षण करने से जो गहरा हो जाए, वही वास्तविक जीवन है। निरीक्षण करने से जो गिर जाए, वह धोखा था। या ऐसा कहें कि निरीक्षण करने से जो बचा रहे वही पुण्य है, और निरीक्षण करने से जो तत्काल विलीन हो जाए वही पाप है। संलीनता का पहला प्रयोग है, राइट आब्जर्वेशन, सम्यक निरीक्षण। आप बहुत हैरान होंगे कि आप कितनी तस्वीरें हैं एक साथ। महावीर ने पृथ्वी पर पहली दफा एक शब्द का प्रयोग किया है जो पश्चिम में अब पुनः पुनरुज्जीवित हो गया है। महावीर ने पहली दफा एक शब्द का प्रयोग किया है--बहुचित्तता--पहली बार। आज पश्चिम में इस शब्द का बड़ा मूल्य है। उनको पता भी नहीं है कि महावीर ने पच्चीस सौ साल पहले इसका प्रयोग किया था-पालिसाइकिक। पश्चिम में आज इस शब्द का बड़ा मूल्य है। क्योंकि जैसे ही पश्चिम मन को समझने गया, उसने कहा--मन मोनोसाइकिक नहीं है, एक मन नहीं हैं आदमी के भीतर--अनंत मन हैं; पालिसाइकिक है, बहुत मन हैं। महावीर ने ढाई हजार साल पहले कहा कि आदमी बहुचित्तवान है, एक चित्त नहीं है; जैसा हम सोचते हैं। हम निरंतर कहते हैं--मेरा मन। हमें कहना चाहिए-- मेरे मन, माई माइंड नहीं, माई माइंड्स।
तो क्या आपके पास एक मन... एक ही मन हो तो जीवन और हो जाए, बहुत मन हैं।
और ये मन भी ऐसे नहीं हैं कि सिर्फ बहुत हैं, ये विरोधी भी हैं। ये एक दूसरे के दुश्मन भी हैं। इसलिए आप सुबह कुछ, दोपहर कुछ, सांझ कुछ हो जाते हैं। आपको खुद ही समझ में नहीं आता कि यह क्या हो रहा है। जब आप प्रेम में होते हैं तब आप दूसरे ही आदमी होते हैं, और जब आप घृणा में होते हैं तो आप दूसरे ही आदमी होते हैं। इन दोनों के बीच कोई संगति नहीं होती, कोई संबंध नहीं होता। जिसने आपको घृणा में देखा है वह अगर आपको प्रेम में देखे तो भरोसा न कर पाएगा कि आप वही आदमी हैं। और ध्यान रहे कि सिर्फ घृणा की वजह से नहीं, आपके चेहरे की सब रूप रेखा, आपके शरीर का ढंग, आपका आभामंडल, आपका सब बदल गया होगा।
तो पहला तो निरीक्षण करें, ठीक से पहचानें कि आपके पास कितने चित्त हैं। और प्रत्येक चित्त की आपके शरीर पर क्या प्रतिक्रिया है! आपका शरीर प्रत्येक चित्त-दशा के साथ कैसा बदलता है! जब आप शांत होते हैं तो शरीर को हिलाने का भी मन नहीं होता। श्वास भी जोर से नहीं चलती। खून की रफ्तार भी कम हो जाती है। हृदय की धड़कनें भी शांत हो जाती हैं। जब आप अशांत होते हैं तो अकारण शरीर में गति होती है। एक अशांत आदमी कुर्सी पर भी बैठा होगा तो पैर हिलाता होगा। कोई उससे पूछे कि क्या कर रहे हो? कुर्सी पर बैठ कर चलने की कोशिश कर रहे हो? वह पैर हिला रहा है। आदमी थोड़ी देर बैठा रहे तो करवटें बदलता रहता है, क्या हो रहा है उसके भीतर? उसके भीतर चित्त इतना बेचैन है कि वह बेचैनी वह शरीर से रिलीज कर रहा है। अगर वह रिलीज न करे तो पागल हो जाएगा। वह रिलीज उसे करनी पड़ेगी। अगर वह शाम को घंटे भर जाकर खेल के मैदान पर दौड़ लेता है, खेल लेता है, घंटे भर घूम आता है तो ठीक, नहीं तो वह बैठे- बैठे, लेटे-लेटे अपने शरीर को गति देगा और वहां से शक्ति को मुक्त करेगा। लेकिन यह शक्ति व्यर्थ व्यय हो रही है। संलीनता शक्ति संग्रह है, शक्ति संचयन है। और हम कोई संलीनता में नहीं जीते तो अपनी शक्ति को ऐसे ही लुटाए चले जाते हैं। ऐसे ही, व्यर्थ ही, जिसका कोई परिणाम नहीं होने वाला है; जिससे कुछ उपलब्ध होने वाला नहीं है; जिससे कहीं पहुंचेंगे नहीं। कुर्सी पर बैठ कर पैर हिलाते रहते हैं। कोई मंजिल इससे हल नहीं होती। उतनी शक्ति से कहीं पहुंचा जा सकता था, कुछ पाया जा सकता था। चौबीस घंटे हम शक्ति को अपने अंगों से बाहर फेंक रहे हैं। लेकिन इसका अध्ययन करना पड़ेगा पहले, स्वयं को पहचानना पड़ेगा और आप बहुत हैरान होंगे, आपकी जिंदगी की किताब जब आपके सामने खुलनी शुरू होगी तो आप हैरान होंगे कि कोई रहस्यपूर्ण से रहस्यपूर्ण उपन्यास इतना रहस्यपूर्ण नहीं और अनूठे से अनूठी कथा इतनी स्ट्रेंज, इतनी अजनबी नहीं, जितने आप हैं।
और ऐसा ही नहीं है कि क्रोध और अक्रोध में आप अलग स्थिति पाएंगे। आप पाएंगे कि क्रोध के भी स्टेप्स हैं। क्रोध में भी बहुत रंग हैं। कभी आप एक ढंग से क्रोधित होते हैं, कभी दूसरे ढंग से क्रोधित होते हैं, कभी तीसरे ढंग से क्रोधित होते हैं। और तब तीनों ढंग के क्रोध में आपके शरीर की

आकृति अलग-अलग होती है। और तब पर्त-पर्त अपने को आप देखेंगे तो चकित हो जाएंगे कि कितना आपके भीतर छिपा है। यह पहला प्रयोग है--निरीक्षण। इससे आप पहचान पाएंगे कि आपके भीतर क्या हो रहा है? आप जो शक्ति के पुंज हैं, उस शक्ति का आप क्या उपयोग कर रहे हैं?
दूसरी बातः जैसे ही आप समर्थ हो जाएं कि आप क्रोध को देख पाएं वैसे ही
आप आईने के सामने पाएंगे कि अपने आप भी क्रोध शांत होगा, आप एक दूसरा प्रयोग जोड़ें, वह संलीनता का दूसरा प्रयोग है। जब चित्त क्रोध से भरा हो, तब आप आईने के सामने खड़े हो जाएं। निरीक्षण करने के बाद ही यह किया जा सकता है। लंबे निरीक्षण के बाद ही यह हो सकेगा। आईने के सामने खड़े हो जाएं और अपने तरफ से शरीर के अंगों को वैसा करने की कोशिश करें जैसा शांति में होता है। आईने के सामने खड़े हो जाएं। आपको भलीभांति याद है कि शांति में चेहरा कैसा होता है। अब क्रोध की स्थिति है। चेहरा क्रोध की धारा में बह रहा है। आप आईने के सामने खड़े होकर उस चेहरे को याद करें जो शांति में होता है, और चेहरे को शांति की तरफ ले जाने लगता है। बहुत ही थोड़े दिनों में आप हैरान होंगे कि आप चेहरे को शांति की तरफ ले जाने में समर्थ हो गए हैं। सारी अभिनय की कला, सारी एक्टिंग इस अभ्यास पर निर्भर करती है। जन्मजात किसी को यह प्रतिभा होती है तो वह अभिनय में कुशल मालूम पड़ता है।
लेकिन यह प्रतिभा विकसित की जा सकती है और यह इतनी विकसित की जा सकती
है कि जिसका कोई हिसाब लगाना कठिन है। आईने के सामने खड़े होकर, क्रोध भीतर है और आप चेहरे पर शांति की धारा बहा रहे हैं। थोड़े ही दिनों में आप समर्थ हो जाएंगे। और तब आप एक और नया अनुभव कर पाएंगे। और वह यह होगा कि क्रोध मन में दौड़ता, शांति शरीर में दौड़ सकती है। और जब आप इन दोनों में समर्थ हो जाते हैं तो आप तीसरे हो जाते हैं--न तो आप क्रोध रह जाते, न आप मन रह जाते और न आप शरीर रह जाते। क्योंकि मन क्रोध में है, वह क्रोध से जल रहा है। लेकिन शरीर पर आपने शांति की धारा बहा दी है, वह शांत आकृति से भर गया है। निश्चित ही आप दोनों से अलग और पृथक हो गए। न तो अब आप अपने को आइडेंटिफाई कर सकते हैं क्रोध से, और न शांति से। दोनों से तादात्म्य नहीं कर सकते। आप दोनों को देखने वाले हो गए।
और जिस दिन आप दो पैदा कर लेते हैं एक साथ, उस दिन आपको पहली दफा एक मुक्ति अनुभव होती है। आप दोनों के बाहर हो जाते हैं। एक के साथ तादात्म्य आसान है, दो के साथ तादात्म्य आसान नहीं है। एक के साथ जुड़ जाना आसान है, दो विपरीत चीजों के साथ एक साथ जुड़ जाना बहुत कठिन है, असंभव है। हां, अलग-अलग समय में हो सकता है कि सुबह आप क्रोध के साथ जुड़ें, दोपहर आप शांति के साथ जुड़ें; यह हो सकता है, अलग-अलग समय में। लेकिन साइमलटेनियसली, युगपत आप क्रोध और शांति के साथ जुड़ नहीं सकते। बड़ी मुश्किल होगी। कैसे जुड़ेंगे? जोड़ मुश्किल हो जाएगा।
मुल्ला नसरुद्दीन मर रहा है। आखिरी क्षण उसके करीब हैं। वह अपने बेटे
को बुलाकर सलाह देता है। वह कहता है--मैं जानता हूं कि मैं कितना ही कहूं कि तू धूम्रपान मत करना, लेकिन तू करेगा क्योंकि मेरे पिता ने भी मुझसे कहा था, लेकिन मैंने किया। इसलिए यह सलाह मैं तुझे नहीं दूंगा। मैं जानता हूं कि समझाना चाहता हूं तुझे, अनुभव से कहना चाहता हूं कि शराब मत छूना। लेकिन मेरे पिता ने भी मुझे समझाया था, लेकिन मैंने शराब पी। और मैं जानता हूं कि तू कितना ही कहे कि नहीं, नहीं पीऊंगा, तू पीएगा। मैं कितना ही कहूं कि स्त्रियों के पीछे मत दौड़ना, मत भागना, लेकिन यह नहीं हो सकता। मैं खुद ही भागता रहा हूं। लेकिन एक बात ख्याल रखना, एक स्त्री के पीछे एक ही समय में भागना, दो स्त्रियों के पीछे एक साथ मत भागना। इतनी तू मेरी सलाह मानना। वन एट ए टाइम, एक स्त्री के पीछे एक ही समय में भागना। एक ही समय में दो स्त्रियों के पीछे मत भागना।
लड़के ने पूछाः क्या यह संभव हो सकता है, एक ही समय में दो स्त्रियों के पीछे भागना?
नसरुद्दीन ने कहाः संभव हो सकता है, मैं अनुभव से कहता हूं।
लेकिन नरक निर्मित हो जाता है। ऐसे तो एक ही स्त्री नरक निर्मित करने में समर्थ है। इसको उलटा करके पुरुष भी कहा जा सकता, है, स्त्री को सलाह दी

जा रही है, तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन दो, फिर तो नरक सुनिश्चित है।
लेकिन उसके बेटे ने कहाः आप कहते हैं तो मेरा मन होता है कि दो के पीछे दौड़ कर देख लूं।
नसरुद्दीन ने कहाः यह भी मैं जानता हूं, यह भी तू सुनेगा नहीं क्योंकि मैंने भी नहीं सुना था। अच्छा है, दौड़।
उसका बेटा पूछने लगा--आप अभी मना करते थे, अब कहते हैं दौड़!
तो नसरुद्दीन ने कहाः दो स्त्रियों के पीछे एक ही समय में दौड़ने से जितनी आसानी से स्त्रियों से मुक्ति मिल जाती है, उतनी एक-एक के पीछे अलग-अलग दौड़ने से नहीं मिलती।
चित्त में भी अगर दो वृत्तियों के पीछे एक साथ आप दौड़ पैदा कर दें तो
आप चित्त की वृत्ति से जितनी आसानी से मुक्त हो जाते हैं उतनी एक वृत्ति के साथ नहीं हो पाते। एक वृत्ति पूरा ही घेर लेती है। दो वृत्तियां काम्पिटिटिव हो जाती हैं आपस में। आप पर उनका जोर कम हो जाता है क्योंकि उनका आपस का संघर्ष गहन हो जाता है। क्रोध कहता है कि मैं पूरे पर हावी हो जाऊं, शांति कहती है--मैं पूरे पर हावी हो जाऊं, और आपने दोनों एक साथ पैदा कर दिए। वे दोनों आप पर हावी होने की कोशिश छोड़ कर एक दूसरे से संघर्ष में रत हो जाते हैं। और जब क्रोध और शांति आपस में लड़ रहे हों, तब आपको दूर खड़े होकर देखना बहुत आसान हो जाता है।
संलीनता का दूसरा अभ्यास है, विपरीत वृत्ति को शरीर पर पैदा करना। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। अभिनेता इसे रोज कर रहा है। जिस स्त्री से उसे प्रेम नहीं है, उसको भी वह प्रेम प्रकट कर रहा है।
नसरुद्दीन देखने गया है एक दिन नाटक। उसकी पत्नी उसके पास है। नसरुद्दीन बहुत प्रभावित हुआ। पत्नी भी बहुत प्रभावित हुई है। वह जो नायक है उस नाटक में वह इतना प्रेम प्रकट कर रहा है अपनी प्रेयसी के लिए कि पत्नी ने नसरुद्दीन से कहा कि नसरुद्दीन, इतना प्रेम तुम मेरे प्रति कभी प्रकट नहीं करते। नसरुद्दीन ने कहा कि मैं भी हैरान हूं। और हैरान इसलिए हूं कि वह जो जिसके प्रति प्रेम प्रकट कर रहा है, वस्तुतः उसकी पत्नी है बीस साल से। इतना प्रेम प्रकट किसी और के लिए कर रहा होता तो भी ठीक था। वह उसकी पत्नी है बीस साल से। इसलिए चकित तो मैं भी हूं। ही इ.ज ए रियल एक्टर, वास्तविक, प्रामाणिक अभिनेता है क्योंकि पत्नी के प्रति, बीस साल से जो उसकी पत्नी है, उसके प्रति वह इतना प्रेम प्रकट कर रहा है! गजब का एक्टर है।
हमारा चित्त... लेकिन अभ्यास से संभव है। शरीर कुछ और प्रकट करने लगता है, मन कुछ और। तब दो धाराएं टूट जाती हैं। और ध्यान रहे राजनीति का ही नियम नहीं है, डिवाइड एण्ड रूल, साधना का भी नियम है। विभाजित करो और मालिक हो जाओ। अगर आप शरीर और मन को विभाजित कर सकते हैं तो आप मालिक हो सकते हैं आसानी से। क्योंकि तब संघर्ष शरीर और मन के बीच खड़ा हो जाता है और आप अछूते अलग खड़े हो जाते हैं।
इसलिए संलीनता का दूसरा अभ्यास है, "मन में कुछ, शरीर में कुछ" को आईने
के सामने खड़े होकर अभ्यास करें। आईने के सामने इसलिए कह रहा हूं कि आपको आसानी पड़ेगी। एक दफा आसानी हो जाए, फिर तो बिना आईने के भी आप अनुभव कर सकते हैं। जब आपको क्रोध आए--फिर धीरे-धीरे आईने को छोड़ दें--जब आपको क्रोध आए तब उसको अवसर बनाएं, मेक इट एन ऑपरच्युनिटी। और जब क्रोध आए तब आनंद को प्रकट करें। और जब घृणा आए तब प्रेम को प्रकट करें। और जब किसी का सिर तोड़ देने का मन हो, तब उसके गले में फूलमाला डाल दें। और देखें अपने भीतर, ये दो धाराएं विभाजित--मन को और शरीर को दो हिस्सों में जाने दें, और आप अचानक ट्रांसेंडेंस में, अतिक्रमण में प्रवेश कर जाएंगे, आप पार हो जाएंगे। न आप क्रोध रह जाएंगे, न आप क्षमा रह जाएंगे। न आप प्रेम रह जाएंगे, न आप घृणा रह जाएंगे। और जैसे ही कोई दोनों के पार होता है, संलीन हो जाता है।
अब इस संलीन का अर्थ समझ लें--एक शब्द हम सुनते हैं, तल्लीन। यह संलीन शब्द बहुत कम प्रयोग में आता है। तल्लीनता हमने सुना है, संलीनता बहुत कम। और अगर भाषा कोश में जाएंगे तो एक ही अर्थ पाएंगे। नहीं एक ही अर्थ नहीं

है। महावीर ने तल्लीनता का उपयोग नहीं किया है। तल्लीनता सदा दूसरे में लीन होना है और संलीनता अपने में लीन होना है। तल्लीन का अर्थ है जो किसी और में लीन है--चाहे भक्त भगवान में हो, वह तल्लीन है, संलीन नहीं। जैसा मीरा कृष्ण में--वह तल्लीन है। वह इतनी मिट गई है कि शून्य हो गई है, कृष्ण ही रह गए। पर कोई और, कोई दूसरा बिंदु, उस पर स्वयं को सब भांति समर्पित कर दें। वह एक मार्ग है, उस मार्ग की अपनी विधियां हैं। महावीर का वह मार्ग नहीं है। उस मार्ग से भी पहुंचा जाता है। उससे पहुंचने का रास्ता अलग है। महावीर का वह रास्ता नहीं है। महावीर कहते हैं--तल्लीन तो बिल्कुल मत होना, किसी में तल्लीन मत होना, इसलिए महावीर परमात्मा को भी हटा देते हैं, नहीं तो तल्लीन होने की सुविधा बनी रहेगी।
महावीर कहते हैं--संलीन हो जाना, अपने में लीन हो जाना। अपने में इतना लीन हो जाना कि दूसरा बचे ही नहीं। तल्लीन का सूत्र है--दूसरे में इतना लीन हो जाना कि स्वयं बचो ही न। संलीन होने का सूत्र है--इतने अपने में लीन हो जाना कि दूसरा बचे ही न। दोनों से ही एक की उपलब्धि होती है। एक ही बच रहता है। तल्लीन वाला कहेगा--परमात्मा बच रहता है; संलीन वाला कहेगा--आत्मा बच रहती है। वह सिर्फ शब्दों के भेद हैं और विवाद सिर्फ शाब्दिक और व्यर्थ और पंडितों का है। जिन्हें अनुभूति है वे कहेंगे वह एक ही बच रहता है। लेकिन संलीन वाला उसे परमात्मा नाम नहीं दे सकता, क्योंकि दूसरे का उपाय नहीं है। तल्लीनता वाला उसे आत्मा नहीं कह सकता, क्योंकि स्वयं के बचने का कोई उपाय नहीं। लेकिन जो बच रहता है, उसे कोई नाम देना पड़ेगा, अन्यथा अभिव्यक्ति असंभव है। इसलिए संलीन वाला कहता है--आत्मा बच रहती हैं; तल्लीन वाला कहता है--परमात्मा बच रहता है। जो बच रहता है, वह एक ही है। यह नामों का फर्क है और विधियों के कारण नामों का फर्क है। यह पहुंचने के मार्ग की वजह से नाम का फर्क है।
संलीन का अर्थ हैः अपने में लीन हो जाना। कोई अपने में है पूरा, जरा भी बाहर नहीं जाता है। कहीं कोई गति नहीं रही। क्योंकि गति तो दूसरे तक जाने के लिए होती है। अगति हो जाएगी। अपने तक आने के लिए किसी गति की कोई जरूरत नहीं है। वहां तो हम हैं ही। क्रिया नहीं रही, अक्रिया हो गई क्योंकि क्रिया तो किसी और के साथ कुछ करना हो तो करनी होती है। अपने ही साथ करने के लिए कोई क्रिया नहीं रह जाती। अक्रिया हो जाएगी, अगति हो जाएगी, अचलता आ जाएगी। और जब भीतर यह घटना घटती है तो शरीर पर भी यह भाव फैल जाता है, मन पर भी यह भाव फैल जाता है। यह अतिक्रमण जब होता है, मन और शरीर के पार जब स्वयं की प्रतीति होती है तो सब ठहर जाता है। सब ठहर जाता है--मन ठहर जाता है, शरीर ठहर जाता है। यह महावीर की प्रतिमा संलीनता की प्रतिमा है, सब ठहरा हुआ है। कुछ गति नहीं मालूम पड़ती।
अगर महावीर के हाथ को देखें तो ऐसा लगता है कि बिल्कुल ठहरा हुआ है। इसलिए महावीर के हाथ में मसल्स नहीं बनाए गए किसी प्रतिमा में, क्योंकि मसल्स तो गति के प्रतीक होते हैं, क्रिया के प्रतीक होते हैं। तो महावीर की बांहें ऐसी हैं जैसे स्त्रैण हैं। आपने ख्याल नहीं किया होगा। किसी जैन तीर्थंकर की बांहों पर कोई मसल्स नहीं हैं। मसल्स तो क्रिया के सूचक हो जाते हैं। शरीर को जिस ढंग से बिठाया है, वह ऐसा है जैसे कि फूल अपने में बंद हो जाए, सब पंखुड़ियां बंद हो गईं। फूल की सुगंध अब बाहर नहीं जाती, अपने भीतर रमती है। इसलिए महावीर का बहुत प्यारा शब्द है--आत्म-रमण--अपने में ही रमना। कहीं नहीं जाना, कहीं नहीं जाना। सब पंखुड़ियां बंद हैं।
तो अगर महावीर के चित्र को देखें, एक फूल की तरह ख्याल करें तो फौरन महावीर की प्रतिमा में दिखाई पड़ेगा कि सब पंखुड़ियां बंद हो गई हैं। महावीर अपने भीतर, जैसे फूल के भीतर कोई भंवरा बंद हो गया हो। ऐसी महावीर की सारी चेतना संलीन हो गई है अपने में। सब सुगंध भीतर। अब कहीं कोई बाहर नहीं जा रहा है। कुछ बाहर नहीं जा रहा है। बाहर और भीतर के बीच सब लेन-देन बंद हो गया है। कोई हस्तांतरण नहीं होता है। न कुछ बाहर से भीतर आता है, न कुछ भीतर से बाहर जाता है। जब शरीर इतनी थिरता में आ जाता है, मन इतनी थिरता में आ जाता है तो श्वास भी बाहर-भीतर नहीं होती, ठहर जाती है! इस क्षण

को महावीर कहते हैं--समाधि उत्पन्न होती है, इस संलीन क्षण में अंतर्यात्रा शुरू होती है।
लेकिन संलीनता का अभ्यास करना पड़ेगा। हमारा अभ्यास है बाहर जाने का। भीतर जाने का हमारा कोई अभ्यास नहीं है। हम बाहर जाने में इतने ज्यादा कुशल हैं कि हमें पता ही नहीं चलता और हम बाहर चले जाते हैं। कुशलता का मतलब ही यही होता है कि पता न चले और काम हो जाए। हम इतने कुशल हैं बाहर जाने में। अब एक ड्राइवर है। अगर वह कुशल है तो वह गपशप करता रहेगा और गाड़ी चलाता रहेगा। कुशलता का मतलब ही यही है कि गाड़ी चलाने पर ध्यान भी न देना पड़े। अगर ध्यान देना पड़े तो वह अकुशल है। रेडियो सुनता रहेगा, गाड़ी चलाता रहेगा। मन में हजार बातें सोचता रहेगा, गाड़ी चलाता रहेगा। गाड़ी चलाना सचेतन क्रिया नहीं है।
कालिन विल्सन ने--एक पश्चिम के बहुत योग्य और विचारशील व्यक्ति ने कहा है कि हम उन्हीं चीजों में कुशल होते हैं... और जब कुशल हो जाते हैं तब... हमारे भीतर एक रोबोट, हमारे भीतर एक यंत्र-मानव है--सबके भीतर है। कुशलता का अर्थ है कि हमारी चेतना ने वह काम यंत्र-मानव को दे दिया, हमारे भीतर वह जो रोबोट है, वह करने लगता है; फिर हमें जरूरत नहीं रहती। तो ड्राइवर जब ठीक कुशल हो जाता है तो उसे कार चलानी नहीं पड़ती, उसके भीतर जो रोबोट, जो यंत्र-मानव है वह कार चलाने लगता है। वह तो कभी-कभी बीच में आता है, जब कोई खतरा आ जाता है और रोबोट कुछ नहीं कर पाता है। एक्सीडेंट का वक्त आया तो वह एकदम मौजूद हो जाता है। रोबोट से काम अपने हाथ में ले लेता है। वह जो भीतर यंत्रवत हमारा मन है उससे काम झटके से हाथ में लेना पड़ता है। जब एक्सीडेंट का मौका आ जाए, कोई गड्ढे में गिरने का वक्त आ जाए, अन्यथा वह रोबोट चलाए रखता है। मनोवैज्ञानिकों ने हजारों परीक्षण से तय किया है कि सभी ड्राइवर रात को अगर बहुत देर तक जाग कर गाड़ी चलाते रहे हों, तो नींद भी ले लेते हैं क्षण दो क्षण को, और गाड़ी चलाते रहते हैं। नींद भी ले लेते हैं। इसलिए रात को जो एक्सीडेंट होते हैं, कोई दो बजे और चार बजे के बीच होते हैं। ड्राइवर को पता भी नहीं चलता कि उसने झपकी ले ली। एक सेकेंड को वह डूब जाता है लेकिन उतनी देर को रोबोट काम को सम्हालता है। वह जो यंत्रवत हमारा चित्त है, वह काम को सम्हालता है।
जितनी रोबोट के भीतर प्रवेश कर जाए कोई चीज, उतनी कुशल हो जाती है। और
हम जन्मों-जन्मों से बाहर जाने के आदी हैं। वह हमारे यंत्र में समाविष्ट हो गई है। बाहर जाना हमें ऐसा ही है जैसे पानी का नीचे बहना। उसके लिए हमें कुछ करना नहीं पड़ता। भीतर आना बड़ी यात्रा मालूम पड़ेगी। क्योंकि हमारे यंत्र मानव को कोई पता ही नहीं है कि भीतर कैसे आना है। हम इतने कुशल हैं बाहर जाने में कि हम बाहर ही खड़े हैं। हम भूल ही गए हैं कि भीतर आने की भी कोई बात हो सकती है। रोबोट की पर्तें हैं, इस यंत्र मानव की पर्तें हैं। आबरी मैनन ने... एक भारतीय बाप और आंग्ल मां का बेटा है, आबरी मैनन। उसका पिता सारी जिंदगी इंग्लैंड में रहा। कोई बीस वर्ष की उम्र का था तब इंग्लैंड चला गया। वहीं शादी की, वहीं बच्चा पैदा हुआ। लेकिन आबरी मैनन ने लिखा है कि मेरी मां सदा मेरे पिता की एक आदत से परेशान रही--वह दिन भर अंग्रेजी बोलता था, लेकिन रात सपने में मलयालम--वह रात सपने में अपनी मातृभाषा ही बोलता था। साठ साल का हो गया है, तब भी। चालीस साल निरंतर होश में अंग्रेजी बोलने पर भी, रात सपना तो वह अपनी मातृभाषा में ही देखता था, जैसे कि स्वभावतः स्त्रियां परेशान होती हैं। क्योंकि वह पति सपने में भी क्या सोचता है, इसका भी पता लगाना चाहती हैं। तो आबरी मैनन ने लिखा है कि मेरी मां सदा चिंतित थी कि पता नहीं यह क्या सपने में बोलता है। कहीं किसी दूसरी स्त्री का नाम तो नहीं लेता मलयालम में? कहीं किसी दूसरी स्त्री में उत्सुकता तो नहीं दिखलाता? लेकिन इसका कोई उपाय नहीं था।
सच यह है कि बचपन में जो भाषा हम सीख लेते हैं, फिर दूसरी भाषा उतनी गहरी रोबोट में कभी नहीं पहुंच पाती--कभी नहीं पहुंच पाती। क्योंकि उसकी पहली पर्त बन जाती है। दूसरी भाषा अब कितनी ही गहरी जाए, उसकी पर्त दूसरी ही होगी, पहली नहीं हो सकती। उसका कोई उपाय नहीं है। इसलिए मनस्विद कहते हैं कि हम सात साल में जो सीख लेते हैं, वह हमारी जिंदगी भर कोई पचहत्तर

प्रतिशत हमारा पीछा करता है। उससे फिर छुटकारा नहीं है। वह हमारी पहली पर्त बन जाता है।
इसलिए अगर सत्तर साल का बूढ़ा भी क्रोध में आ जाए तो वह सात साल के बच्चे जैसा व्यवहार करने लगता है क्योंकि रोबोट रिग्रेस कर जाता है। इसलिए क्रोध में आप बचकाना व्यवहार करते हैं। प्रेम में भी करते हैं, वह भी ध्यान रखना। जब कोई आदमी एक दूसरे के प्रति प्रेम से भर जाते हैं तो बहुत बचकाना व्यवहार करते हैं। उनकी बातचीत भी बचकानी हो जाती है। एक दूसरे के नाम भी बचकाने रखते हैं। प्रेमी एक दूसरे के नाम बचकाने रखते हैं। रिग्रेस हो गया। क्योंकि प्रेम का जो पहला अनुभव है वह सात साल में सीख लिया गया। अब उसकी पुनरुक्ति होगी। यह जो मैं कह रहा हूं कि हमारा बाहर जाने का व्यवहार इतना प्राचीन है--जन्मों-जन्मों का है कि हमें पता ही नहीं चलता कि हम बाहर जा रहे हैं, और हम बाहर चले जाते हैं। आप अकेले बैठे हैं, फौरन अखबार खींच कर उठा लेते हैं। आपको पता नहीं चलता, आ पका रोबोट आपका यंत्र मानव कह रहा है--खाली कैसे बैठ सकते हैं, अखबार खींचो। उस अखबार को आप सात दफा पढ़ चुके हैं, सुबह से, फिर आठवीं दफे पढ़ रहे हैं, इसका बिना ख्याल किए अब आप क्या पढ़ रहे हैं! वह रोबोट भीतर नहीं ले जाता, वह तत्काल बाहर ले जाता है। रेडियो खोलो, बातचीत करो, कहीं भी बाहर जाओ, किसी दूसरे से संबंधित होओ। क्योंकि रोबोट को एक ही बात पता है--दूसरे से संबंधित होना, उसको अपने से संबंधित होना पता ही नहीं। तो इसका जरा ध्यान रखना पड़े, क्योंकि अति ध्यान रखें तो ही इसके बाहर हो सकेंगे।
और रोबोट ट्रेनिंग से चलता है, उसका प्रशिक्षण है। आपको पता नहीं कि
आप अपने रोबोट से कितना काम ले सकते हैं। आपने अगर जैन मुनियों को अवधान करते देखा है तो आप समझते होंगे, यह बहुत बड़ी प्रतिभा की बात है सिर्फ रोबोट की ट्रेनिंग है। आप कर सकते हैं--छोटी सी ट्रेनिंग। रोबोट से आप कितने ही काम ले सकते हैं, सिर्फ एक दफा उसे सिखा दें। हम केवल एक ट्रैक पर काम करते हैं। आप टेप-रिकार्डर को जानते हैं। टेप-रिकार्डर एक ट्रैक का भी हो सकता है, दो ट्रैक का भी हो सकता है, चार ट्रैक का भी हो सकता है। आपके पास चार ट्रैक का टेप-रिकार्डर हो जो एक ही पट्टी पर चार ट्रैक पर रिकार्ड करता है, और आपको पता न हो, आप एक पर ही करते रहें, तो आप जिंदगी भर एक पर ही करते रहेंगे, बाकी तीन ट्रैक खाली पड़े रहेंगे। आपके मन के रोबोट के हजारों ट्रैक हैं। आप एक ही साथ हजारों ट्रैक पर काम कर सकते हैं। इसका थोड़ा प्रयोग आपको मैं ख्याल दिला दूं, तो आपको बहुत आसानी हो जाएगी।
थोड़े दिन एक छोटा सा अभ्यास करके देखें। घड़ी रख लें अपने हाथ की खोल
के सामने। उसका जो सेकेंड का कांटा है, उस पर ध्यान रखें। बाकी पूरी घड़ी को भूल जाएं, सिर्फ सेकेंड के कांटे को घूमते हुए देखें। वह एक मिनट में, या साठ सेकेंड में एक चक्कर पूरा करेगा। एक मिनट का अभ्यास करें, कोई तीन सप्ताह में अभ्यास आपका हो जाएगा कि आपको घड़ी के और कांटे ख्याल में नहीं आएंगे, और आंकड़े ख्याल में नहीं आएंगे, अंक ख्याल में नहीं आएंगे। डायल धीरे-धीरे भूल जाएगा, सिर्फ वह सेकेंड का भागता हुआ कांटा आपको याद रह जाएगा। जिस दिन आपको ऐसा अनुभव हो कि अब मैं एक मिनट सेकेंड के कांटे पर ध्यान रख सकता हूं, आपने बड़ी कुशलता पाई जिसकी आपको कल्पना भी नहीं हो सकती।
अब आप दूसरा प्रयोग शुरू करें। ध्यान सेकेंड के कांटे पर रखें और भीतर एक से लेकर साठ तक की गिनती बोलें--ध्यान कांटे पर रखें, और भीतर एक, दो, तीन, चार से साठ तक गिनती बोलें, साठ या जितना हो सके, एक मिनट में--सौ हो सके तो सौ। तीन सप्ताह में आप कुशल हो जाएंगे, दोनों काम एक साथ डबल ट्रैक पर शुरू हो जाएगा। ध्यान कांटे पर भी रहेगा और ध्यान संख्या पर भी रहेगा। अब आप तीसरा काम शुरू करें। ध्यान कांटे पर रखें, भीतर एक सौ तक गिनती बोलते रहें और कोई गीत की कड़ी गुनगुनाने लगें, भीतर।
तीन सप्ताह में आप पाएंगे, तीन ट्रैक पर काम शुरू हो गया। ध्यान कांटे
पर भी रहेगा, ध्यान आंकड़ों पर भी रहेगा, संख्या पर भी रहेगा, गीत की कड़ी पर भी रहेगा। अब आप जितने चाहें उतने ट्रैक पर धीरे-धीरे अभ्यास कर सकते हैं। आप सौ ट्रैक पर एक साथ अभ्यास कर सकते हैं। और सौ काम एक साथ चलते रहेंगे--

पर्त-पर्त। यही अवधान है। इसका अभ्यास कर लेने पर आप मदारीगिरी कर सकते हैं। जैन साधु करते हैं, वह सिर्फ मदारीगिरी है। उसका कोई मूल्य नहीं है। लेकिन रोबोट को एक दफा आप सिखा दें तो रोबोट करने लगता है।
और एक खतरा यह है कि रोबोट जब करने लगता है तो सिखाना जितना आसान है, उतना आसान भुलाना नहीं है। सिखाना बहुत आसान है, ध्यान रखना। स्मरण बहुत आसान है, विस्मरण बहुत कठिन है। लेकिन असंभव नहीं है। वाश आउट किया जा सकता है, जैसा टेप पर किया जा सकता है। मिटाया जा सकता है। पर मिटाना बहुत कठिन है। और उससे भी ज्यादा कठिन विपरीत का अभ्यास है। हमारे यंत्र-चित्त का अभ्यास है बाहर जाने के लिए। तो पहले तो यह बाहर जाने का अभ्यास मिटाना पड़ता है, और फिर भीतर जाने का अभ्यास पैदा करना पड़ता है।
तो इसके लिए--और यह संलीनता में जाने के लिए आवश्यक होगा कि जब भी आपका यंत्र-मानव आपसे कहे--बाहर जाओ, आप अगर ध्यान रखेंगे तो आपको पता चलने लगेगा। कार में आप बैठे हैं, बिल्कुल सोए हुए आदमी की तरह, अखबार उठा लेते हैं और पढ़ना शुरू कर देते हैं। आपको ख्याल नहीं, आपका यंत्र-मानव कहता है-- कैसे अपने में संलीन बैठे हो? अखबार पढ़ो!
यह हाथ बिल्कुल नींद में जाता है, अखबार उठाता है, ये आंखें नींद में पढ़ना शुरू कर देती हैं। यह मन नींद में ग्रहण करना शुरू कर देता है। कचरा आप डाल रहे हैं। न डालते तो कुछ हर्ज न था, फायदा हो सकता था। क्योंकि कचरे के डालने में भी शक्ति व्यय होगी। कचरे को सम्हालने में भी शक्ति व्यय होगी। कचरे को भरने में भी मन का रिक्त स्थान भरेगा और व्यर्थ भर जाएगा। यह वैसे ही है जैसे कोई आदमी सड़क पर कचरा उठा कर घर में ला रहा हो। वह कहे-- कुछ तो करेंगे, बिना किए कैसे रह सकते हैं। पर घर में लाए गए कचरे को बाहर फेंक देने में बहुत कठिनाई नहीं है, मन में लाए गए कचरे को फिर बाहर फेंकने में बहुत कठिनाई है।
इसलिए पहला ध्यान तो पहला पहरा यही रखना पड़ेगा कि मन जब बाहर जाए तो
आप सचेत हो जाएं, और होशपूर्वक बाहर जाएं। अगर अखबार पढ़ना है तो जानकर कि मेरा यंत्र अखबार पढ़ना चाहता है। मैं अखबार पढ़ता हूं, अब मैं अखबार पढूंगा। अखबार पढ़ें होशपूर्वक। तब आप पाएंगे कि अखबार पढ़ने में कोई रस नहीं आ रहा है, क्योंकि रस सिर्फ बेहोशी में आ सकता है। यह बहुत मजा है कि व्यर्थ की चीज में रस सिर्फ बेहोशी में आता है, होश में नहीं आता। आप किसी भी व्यर्थ की चीज में होशपूर्वक रस नहीं ले सकते हैं। बेहोशी में ले सकते हैं। इसलिए जिन लोगों को रस लेने का पागलपन सवार हो जाता है वे नशा करने लगते हैं क्योंकि नशे में रस ज्यादा लिया जा सकता है। नहीं तो रस नहीं लिया जा सकता।
होशपूर्वक, यंत्र-मानव को बाहर जाने की जो चेष्टा है उसे होशपूर्वक देखते रहें और होशपूर्वक ही काम करें। अगर यंत्र-मानव कहता है कि क्या अकेले बैठे हैं, चलें मित्र के घर; तो उससे कहें कि ठीक है, चलते हैं-- होशपूर्वक चलते हैं। तेरी मांग है, हम देखते-देखते हुए चलते हैं। संभावना यह है कि आप बीच रास्ते से घर वापस लौट आएं। क्योंकि कहें कि क्या--क्योंकि बड़ा मजा यह है उस मित्र के पास रोज बैठ कर बोर होते हैं और कुछ नहीं होता है। वह वही बातें फिर से कहता है कि मौसम कैसा है, कि स्वास्थ्य कैसा है! दो-तीन मिनट में बातें चुक जाती हैं। फिर वह वे ही कहानियां सुनाता है जो बहुत बार सुना चुका। फिर वह वे ही घटनाएं बताता है जो बहुत बार बता चुका है, और आप सिर्फ बोर होते हैं। रोज यही ख्याल लेकर लौटते हैं कि इस आदमी ने बुरी तरह उबा दिया। लेकिन कल रोबोट कहता है कि मित्र के घर चलो और आपको ख्याल नहीं आता कि आप फिर बोर होने चले। अपनी बोर्डम खुद ही खोजते हैं। अगर आप होशपूर्वक जाएंगे तो रास्ते में आपको स्मरण आ जाएगा कि आप कहां जा रहे हैं, क्यों जा रहे हैं, क्या मिलेगा? पैर शिथिल पड़ जाएंगे। संभावना यह है कि आप वापस लौट आएं।
इस तरह आपके यंत्र-चित्त की बाहर जाने की प्रत्येक क्रिया पर जागरूक पहरा रखें। एक-एक क्रिया छूटने लगेगी। फिर जो बहुत नेसेसरी हैं, जीवन के लिए अनिवार्य हैं, उतनी ही क्रियाएं रह जाएंगी। गैर-अनिवार्य क्रियाएं छूट जाएंगी और तब आप पाएंगे कि शरीर संलीन होने लगा। आप बैठेंगे ऐसे जैसे

अपने में ठहरे हुए हैं। जैसे कोई झील शांत है, जिसमें लहर भी नहीं उठती। एक रिपेल भी नहीं जैसे आकाश खाली, एक बदली भी नहीं भटकती। जैसे कभी देखा हो तो आकाश में किसी चील को पंखों को रोक कर उड़ते हुए--संलीन। पंख भी नहीं हिलता। चील सिर्फ अपने में ठहरी है, तिरती है, तैरती भी नहीं, तिरती है। जैसे देखा हो किसी बतख को कभी किसी झील में, पंख भी न मारते हुए--ठहरे हुए। ऐसा सब आपके शरीर में भी ठहर जाएगा, मन में भी। क्योंकि जैसे शरीर बाहर जाता है ऐसे ही मन भी बाहर जाता है। अगर शरीर बाहर नहीं जा सकता तो मन और ज्यादा बाहर जाता है। क्योंकि पूर्ति करनी पड़ती है। अगर आप मित्र से नहीं मिल सकते तो फिर आंख बंद करके मित्र से मिलने लगते हैं, दिवा-स्वप्न देखने लगते हैं कि मित्र मिल गया, बातचीत हो रही है। तो फिर धीरे-धीरे मन की भी बाहर जाने की आंतरिक कोशिशें हैं, उन पर भी सजग हो जाएं। और जिस दिन शरीर और मन दोनों के प्रति सजगता होती है, वह जो रोबोट यंत्र है हमारे भीतर, वह बाहर जाने में धीरे-धीरे, धीरे-धीरे रस खो देता है। तब भीतर जाया जा सकता है।
और भीतर जाने में किस चीज में रस लेना पड़ेगा? भीतर जाने में उन चीजों में रस लेना पड़ेगा जिनमें संलीनता स्वाभाविक है। जैसे कि शांति का भाव है तो संलीनता स्वाभाविक है। जैसे सारे जगत के प्रति करुणा का भाव, उसमें संलीनता स्वाभाविक है। क्रोध बाहर ले जाता है, करुणा बाहर नहीं ले जाती। शत्रुता बाहर ले जाती है, मैत्री का भाव बाहर नहीं ले जाता। तो उन भावों में ठहरने से भीतर यात्रा शुरू होती है। पर संलीनता सिर्फ द्वार है। उन सारी बातों का विचार हम अंतर-तप की छह प्रक्रियाओं में करेंगे। संलीनता तो उन छह के लिए द्वार है, पर संलीन हुए बिना उनमें कोई प्रवेश न हो सकेगा। ये सब इंटीग्रेटेड हैं, ये सब संयुक्त हैं। हमारा मन करता है कि इसको छोड़ दें और उसको कर लें। ऐसा नहीं हो सकेगा। ये बारह अंग आर्गनिक हैं। ये एक दूसरे से संयुक्त हैं। इनमें से एक भी छोड़ा तो दूसरा नहीं हो सकेगा। अब महावीर ने इसके पहले जो पांच अंग कहे वे सब अंग शक्ति संरक्षण के हैं, और छठवां अंग संलीनता का है। जब शक्ति बचेगी तभी तो भीतर जा सकेगी! शक्ति बचेगी ही नहीं तो भीतर क्या जाएगा। हम करीब-करीब रिक्त और दिवालिए, बैंकरप्ट हैं। बाहर ही शक्ति गंवा देते हैं। भीतर जाने के लिए कोई शक्ति बचती ही नहीं। कुछ बचता ही नहीं।
मुल्ला नसरुद्दीन मरा तो उसने अपनी वसीयत लिखी--उसने वसीयत लिखवाई, बड़ी भीड़-भाड़ इकट्ठी की, सारा गांव इकट्ठा हुआ, फिर उसने गांव के पंचायत के प्रमुख से कहा--वसीयत लिखो। थोड़े लोग चकित थे। ऐसा कुछ ज्यादा उसके पास दिखाई नहीं पड़ता था जिसके लिए वह इतना शोरगुल मचाए है। उसने वसीयत लिखवाई तो उसने लिखवाया कि आधा तो मेरे मरने के बाद मेरी संपत्ति में से पत्नी को मिल जाए। फिर इतना हिस्सा मेरे लड़के को मिल जाए इतना हिस्सा मेरी लड़की को मिल जाए फिर इतना हिस्सा मेरे मित्र को मिल जाए, इतना हिस्सा मेरे नौकर को मिल जाए। वह सब उसने हिस्से लिखवा दिए। तो पंच प्रमुख बार-बार कहता था कि ठहरो, वह पूछना चाहता था कि है कितना तुम्हारे पास? और आखिर में उसने कहा कि सबको बांट देने के बाद जो बच जाए वह गांव की मस्जिद को दे दिया जाए।
तो पंच-प्रमुख ने फिर पूछा कि मैं तुमसे बार-बार पूछ रहा हूं कि तुम्हारे पास है कितना?
उसने कहाः है तो मेरे पास कुछ भी नहीं, लेकिन नियमानुसार वसीयत तो लिखानी चाहिए। नहीं तो लोग क्या कहेंगे कि बिना वसीयत लिखाए मर गए!
है कुछ भी नहीं। उसमें से भी वह कह रहा है कि सबको बांटने के बाद जो बच जाए वह मस्जिद को दे दिया जाए। हम भी करीब-करीब दिवालिया मरते हैं। जहां तक अंतः संपत्ति का संबंध है, हम सब दिवालिया मरते हैं। नसरुद्दीन जैसे ही मरते हैं, वह व्यंग्य हम पर भी है।
कुछ नहीं होता पास--कुछ भी नहीं होता। क्योंकि सब हमने व्यर्थ खोया होता है, और व्यर्थ भी ऐसा खोया होता है जैसे कि आपने बाथरूम का नल खुला छोड़ दिया हो और पानी बह रहा हो। इस तरह व्यर्थ होता है। आपके सब व्यक्तित्व के द्वार खुले हुए हैं बाहर की तरफ और शक्ति व्यर्थ खोती चली जाती है। डिस्सीपेट होती है। जो थोड़ी बहुत बचती है, उससे आप सिर्फ बेचैन

होते हैं और उससे भी कुछ नहीं करते हैं, उसको बेचैनी में नष्ट करते हैं, परेशानी में नष्ट करते हैं।
तो महावीर ने पहले जो अंग कहे वे शक्ति संरक्षण के हैं। यह जो छठवां अंग कहा, यह संरक्षित शक्ति का अंतर-प्रवाह है। जैसे कोई नदी अपने मूल-उद्गम की तरफ वापस लौटने लगे। मूल-स्रोत की तरफ शक्ति का आगमन शुरू हो। बाहर की तरफ नहीं, कुछ पाने के लिए नहीं, वहां हम चलें जहां हम हैं। जहां से हम आए हैं वहां हम चलें। जहां से हमारे यह जीवन का फैलाव हुआ है, वहां हम चलें। टु बी रूट, जड़ों की तरफ चलें। उस जगह पहुंच जाएं जो हमारा अंतिम हिस्सा है। जिसके पीछे हम नहीं हैं--आखिरी और पीछे। क्योंकि वही हमारा राज है, रहस्य है, वही हम हैं। और उससे हम कितने ही बाहर जाएं, हम चांद-तारों तक पहुंच जाएं, तो भी उसे हम न पा सकेंगे। उसके लिए तो हमें भीतर ही जाना पड़ेगा। उसके लिए तो हमें संलीन ही होना पड़ेगा।
शक्ति बचे, शक्ति भीतर लौटे--पर इस शक्ति को भीतर लौटने के लिए आपको तीन प्रयोग करने पड़ें--अपनी शरीर की गतिविधियों को देखना पड़े, शरीर की गतिविधियों और मन की गतिविधियों को तोड़ना पड़े, शरीर की गतिविधियों और मन की गतिविधियों के पार होना पड़े। और तब आप अचानक पाएंगे कि आप संलीन होने शुरू हो गए। अपने में डूबने लगे, अपने में डूबने लगे, अपने में उतरने लगे। अपने भीतर, और भीतर, और भीतर, और गहरे में जाने लगे।
इसमें एक ही बात आखिरी आपसे कहूं जो भी अभ्यास करेगा कोई, उसके काम की है। क्योंकि जैसे ही संलीनता शुरू होगी, बड़ा भय पकड़ता है, बहुत भय पकड़ता है। ऐसा लगता है जैसे सफोकेट हो रहे हैं हम, जैसे कोई गर्दन दबा रहा है, या पानी में डूब रहे हैं। संलीन होने का जो भी प्रयोग करेगा वह बहुत भय से भर जाएगा। जैसे ही शक्ति भीतर जानी शुरू होगी, भय पकड़ेगा। क्योंकि यह अनुभव करीब-करीब वैसा ही होगा जैसा मृत्यु का होता है। मृत्यु में भी शक्ति संलीन होती है। और कुछ नहीं होता। शरीर को छोड़ती है, मन को छोड़ती है, भीतर चलती है, उद्गम की तरफ, तब आप तड़फड़ाते हैं कि अब मैं मरा। क्योंकि आप अपने को समझते थे वही जो बाहर जा रहा था। आपने कभी उसको तो जाना नहीं जो भीतर जा सकता है। उससे आपका कोई संबंध नहीं, कोई पहचान नहीं। आप तो अपना एक चेहरा जानते थे बहिर्गामी, अंतर्गामी तो आपको कोई अनुभव न था।
आप कहते हैं--मरा, क्योंकि वह सब बाहर जो जा रहा था, वह बाहर नहीं जा रहा, भीतर लौट रहा है। शरीर से शक्ति डूब रही है भीतर, बाहर नहीं जा रही है। मन अब बाहर नहीं जा रहा है, भीतर डूब रहा है। अब सब भीतर सिकुड़ रहा है, सब भीतर संकुचित हो रहा है, सब केंद्र पर लौट रहा है। गंगा अपने को पहचानती थी सागर की तरफ बहती हुई। उसे कभी जाना भी न था कि गंगोत्री की तरफ बहना भी, मैं ही हूं। वह उसे पहचान नहीं है। वह उसका कोई रिकग्निशन नहीं है। तो मृत्यु में जो घबड़ाहट पकड़ती है, वही घबड़ाहट आपको संलीनता में पकड़ेगी--वही घबड़ाहट। मृत्यु का ही अनुभव होगा यह। मर रहे हैं जैसे। मन होगा कि दौड़ो बाहर। कोई भी सहारा पकड़ो और बाहर निकल जाओ। अगर बाहर निकल आते हैं तो संलीन न हो पाएंगे।
तो जब भय पकड़े, तब भय के भी साक्षी बने रहना, देखते रहना कि ठीक है। मृत्यु से भी यह अनुभव कठिन होगा क्योंकि मृत्यु तो परवशता में होती है। आप कुछ कर नहीं सकते, छूट रहे होते हैं सहारे। इसमें आप कुछ कर सकते हैं। आप जब चाहें, तब बाहर आ सकते हैं। यह तो इंटेंशनल है, यह तो आपका संकल्प है भीतर जाने का। मृत्यु में तो आपका संकल्प नहीं होता। मृत्यु में कोई चुनाव नहीं होता। आप मारे जा रहे होते हैं। आप मर नहीं रहे होते। यह स्वेच्छा से मृत्यु का वरण है। यह अपने ही हाथ से मर कर देखना है। यह एक बार भय को छोड़ कर, भय के साक्षी होकर, जो हो रहा है, उसकी स्वीकृति को मान कर अगर आप डूब जाएं तो आप सदा के लिए मृत्यु के भय के पार हो जाएंगे। फिर मृत्यु भी आपको भयभीत नहीं करेगी। एक बार आपको अंतर्मुखी ऊर्जा की यात्रा भी, मैं ही हूं, ऐसा अनुभव हो जाए तो फिर मृत्यु का कोई भय नहीं है। फिर आप जानते हैं--मृत्यु है ही नहीं। फिर मृत्यु है ही नहीं।
मृत्यु सिर्फ अंतर्यात्रा के अपरिचय के कारण प्रतीत होती है। बहिर्यात्रा के साथ तादात्म्य, अंतर्यात्रा के साथ कोई संबंध नहीं, इसलिए

मृत्यु प्रतीत होती है। यह संबंध संलीनता से निर्मित हो जाता है। कहें, आप स्वेच्छा से मर कर देख लेते हैं और पाते हैं कि नहीं मरता। आप स्वेच्छा से मृत्यु में प्रवेश कर जाते हैं और पाते हैं, मैं तो हूं। मृत्यु घटित हो जाती है, सब बाह्य छूट जाता है। जो मृत्यु में छूटेगा वह सब छूट जाता है। सब जगत मिट जाता है, शरीर भूल जाता है, मन भूल जाता है फिर भी चैतन्य का दीया भीतर जलता रहता है।
संलीनता के इस प्रयोग को कोई ठीक से करे तो शरीर के बाहर एस्ट्रल प्रोजेक्शन या एस्ट्रल ट्रेवलिंग सरलता से हो जाती है। जब आपका शरीर भी मिट गया, मन भी मिट गया, सिर्फ आप ही रह गए, सिर्फ होना ही रह गया तब आप जरा- सा ख्याल करें, शरीर के बाहर तो आप शरीर के बाहर हो जाएंगे। शरीर आपको सामने पड़ा हुआ दिखाई पड़ने लगेगा।
कभी-कभी अपने आप घट जाता है, वह भी मैं आपसे कह दूं, क्योंकि जो प्रयोग करें उनको अपने आप भी कभी घट जाता है। आपके बिना ख्याल, अचानक आप पाते हैं-- आप शरीर के बाहर हो गए। तब बड़ी बेचैनी होगी। और लगता है डर कर अब वापस शरीर में लौट सकेंगे कि नहीं लौट सकेंगे। आप अपने पूरे शरीर को पड़ा हुआ देख पाते हैं। पहली दफा आप अपने शरीर को पूरा देख पाते हैं। आईने में तो प्रतिछवि दिखाई पड़ती है, आप पहली दफा अपने पूरे शरीर को देख पाते हैं बाहर।
और एक बार जिसने बाहर से अपने शरीर को देख लिया, वह शरीर के भीतर होकर
भी फिर कभी भीतर नहीं हो पाता है। वह फिर बाहर ही रह जाता है। फिर वह सदा बाहर ही होता है। फिर कोई उपाय ही नहीं है उसके भीतर होने का। भीतर हो जाए तो भी उसका बाहर होना बना रहता है। वह पृथक ही बना रहता है। फिर शरीर पर आए दुख उसके दुख नहीं हैं। फिर शरीर पर घटी हुई घटनाएं उस पर घटी घटनाएं नहीं हैं। फिर शरीर का जन्म उसका जन्म नहीं है, फिर शरीर की मृत्यु उसकी मृत्यु नहीं है। फिर शरीर का पूरा जगत उसका जगत नहीं है और हमारा सारा जगत शरीर का जगत है। इतिहास समाप्त हो गया उसके लिए, जीवन कथा समाप्त हो गई उसके लिए। अब तो एक शून्य में ठहराव है, और समस्त आनंद शून्य में ठहरने का परिणाम है। समस्त मुक्ति शून्य में उतर जाने की मुक्ति है समस्त मोक्ष।
लेकिन हम निरंतर बाहर भाग रहे हैं। यह हमारा बाहर भागना आक्रमण है। महावीर ने शब्द बहुत अच्छा प्रयोग किया है--प्रतिक्रमण। प्रतिक्रमण का अर्थ हैः भीतर लौटना; आक्रमण का अर्थ हैः बाहर जाना। प्रतिक्रमण का अर्थ हैः कमिंग बैक टु दि होम, घर वापस लौटना। इसलिए महावीर अहिंसा पर इतना आग्रह करते हैं क्योंकि आक्रमण न घटे चित्त का, तो प्रतिक्रमण नहीं हो पाएगा। संलीनता फलित नहीं होगी। ये सब सूत्र संयुक्त हैं। यह मैं कह रहा हूं इसलिए अलग-अलग कहने पड़ रहे हैं। जीवन में जब यह घटना में उतरने शुरू होते हैं तो ये सब संयुक्त हैं। अनाक्रमण--लेकिन हम सोचते हैं--जब हम किसी की छाती पर छुरा भोंकते हैं तभी आक्रमण होता है। नहीं, जब हम दूसरे का विचार भी करते हैं तब भी आक्रमण हो जाता है। दूसरे का ख्याल भी दूसरे पर आक्रमण है। दूसरे का मेरे चित्त में उपस्थित हो जाना भी आक्रमण है। आक्रमण का मतलब ही यह है कि मैं दूसरे की तरफ बहा। छुरे के साथ गया दूसरे की तरफ, कि आलिंगन के साथ गया दूसरे की तरफ; कि सदभाव से गया कि असदभाव से गया। दूसरे की तरफ जाती हुई चेतना आक्रामक है। मैं दूसरे की तरफ जा रहा हूं, यही आक्रमण है। हम सब जाना चाहते हैं। जाना इसलिए चाहते हैं कि हमारी अपने पर तो कोई मालकियत नहीं है। किसी दूसरे पर मालकियत हो जाए तो थोड़ा मालकियत का सुख मिले। थोड़ा सही, कोई दूसरा मालिक होता है।
मुल्ला नसरुद्दीन गया है एक मनोचिकित्सक के पास और उसने कहा कि मैं बड़ा परेशान हूं--पत्नी से बहुत भयभीत हूं। डरता हूं, मेरे हाथ-पैर कंपते हैं। मुंह में मेरा थूक सूख जाता है जैसे ही मैं उसे देखता हूं। मनोवैज्ञानिक ने कहाः यह कुछ ज्यादा चिंता की बात नहीं है। ज्यादा चिंता की बात तो इससे उलटी बीमारी है। वह उलटी बीमारी बीमारी के लोग पत्नी को देख कर ही हमला करने को उत्सुक हो जाते हैं, सिर तोड़ने को उत्सुक हो जाते हैं, घसीटने को उत्सुक हो जाते हैं, मारने को उत्सुक हो जाते हैं, आक्रामक हो जाते हैं। वे ही असली साइकोपैथ हैं, साइकोपैथिक हैं। यह तो कुछ

भी नहीं, यह तो ठीक है। इसमें कुछ घबराने की बात नहीं। यह तो अधिक लोगों के लिए यही है।
मुल्ला बड़ा उत्सुक हो गया, कुर्सी से आगे झुक आया। उसने कहा कि डाक्टर, एनी चांस ऑफ माई कैचिंग दैट डिसी.ज, साइकोपैथी? कोई मौका है कि मुझे वह बीमारी लग जाए? जिसको आप साइकोपैथी कह रहे हैं? मैं भी घर जाऊं और लट्ठ उठा कर सिर खोल दूं उसका? मन तो मेरा भी यही करता है। लेकिन उसके सामने जाकर मेरे सब मंसूबे गड़बड़ हो जाते हैं। और दिन की तो बात दूर, वर्षों से मैं एक दुःस्वप्न, एक नाइट मेयर देख रहा हूं। वह मैं आपसे कह देना चाहता हूं। कुछ इलाज है?
मनोवैज्ञानिक ने कहाः कौन सा दुःस्वप्न?
तो उसने कहाः मैं रात निरंतर अपनी पत्नी को देखता हूं, और उसके पीछे खड़े एक बड़े राक्षस को देखता हूं।
मनोवैज्ञानिक उत्सुक हुआ। उसने कहाः इंट्रेस्टिंग। और जरा विस्तार
से कहो।
तो नसरुद्दीन ने कहा कि लाल आंखें, जिनसे लपटें निकल रही हैं, तीर बड़े- बड़े, लगता है कि छाती में भोंक दिए जाएंगे। हाथों में नाखून ऐसे हैं जैसे खंजर हों। बड़ी घबराहट पैदा होती है।
मनोवैज्ञानिक ने कहाः घबड़ाने वाला है, भयंकर है।
नसरुद्दीन ने कहाः दिस इ.ज नथिंग, वेट, टिल आई टैल यू अबाउट दि मान्सटर। जरा रुको, जब तक मैं राक्षस के संबंध में न बताऊं तब तक कुछ मत कहो। यह तो मेरी पत्नी है। उसके पीछे जो राक्षस खड़ा रहता है, अभी उसका तो मैंने वर्णन ही नहीं किया। उसने उसका भी वर्णन किया। उसके भयंकर दांत, लगता है कि चपेट डालेंगे, पीस डालेंगे। उसका विशालकाय शरीर, उसके सामने बिल्कुल कीड़ा-मकोड़ा हो जाता हूं। और उसकी घिनौनी बात और उसके शरीर से झरती हुई घिनौनी चीजें और रस ऐसी घबड़ाहट भर देते हैं कि दिन भर वह मेरा पीछा करता है।
मनोवैज्ञानिक ने कहाः बहुत भयंकर, बहुत घबड़ाने वाला।
नसरुद्दीन ने कहा कि वेट, टिल आई टैल यू दैट दि मान्सटर इ.ज नो वन एल्स दैन मी। जरा रुको, वह राक्षस और कोई नहीं, और घबड़ाने वाली बात यह है कि जब मैं गौर से देखता हूं तो पाता हूं, मैं ही हूं।
और यह दुःस्वप्न वर्षों से चल रहा है। जब तक चित्त आक्रामक है, तब तक दूसरे में भी राक्षस दिखाई पड़ेगा। और अगर गौर से देखेंगे तो आक्रामक चित्त अपने को भी राक्षस ही पाएगा। और हम सब आक्रामक हैं। हम सब दुःस्वप्न में जीते हैं। हमारी जिंदगी एक नाइट मेयर है, एक लंबी सड़ांध है, एक लंबा रक्तपात से भरा हुआ नाटक, एक लंबा नारकीय दृश्य।
मुल्ला मर कर जब स्वर्ग के द्वार पर पहुंचा तो स्वर्ग के पहरेदार ने पूछाः कहां से आ रहे हो? उसने कहाः मैं पृथ्वी से आ रहा हूं। उस द्वारपाल ने कहाः वैसे तो नियम यही था कि तुम्हें नरक भेजा जाए, लेकिन चूंकि तुम पृथ्वी से आ रहे हो, नरक तुम्हें काफी सुखद मालूम होगा। नरक तुम्हें काफी सुखद मालूम होगा इसलिए कुछ दिन स्वर्ग में रुक जाओ, फिर तुम्हें नरक भेजेंगे ताकि नरक तुम्हें दुखद मालूम हो सके। तो मुल्ला को कुछ दिनों के लिए स्वर्ग में रोक लिया गया। क्योंकि सब सुख-दुख रिलेटिव हैं। मुल्ला ने बहुत कहा कि मुझे सीधे जाने दो। उस द्वारपाल ने कहाः यह नहीं हो सकता, क्योंकि नरक तो अभी तुम्हें स्वर्ग मालूम होगा। तुम पृथ्वी से आ रहे हो सीधे। अभी कुछ दिन स्वर्ग में रह लो। जरा सुख अनुभव हो जाए, फिर तुम्हें नरक में डालेंगे। तब तुम्हें सताया जा सकेगा।
हम जिसे जिंदगी कह रहे हैं वह एक लंबी नरक यात्रा है। और वह नरक यात्रा का कारण कुल इतना है कि हमारा चित्त आक्रामक है। पर-केंद्रित चित्त आक्रामक होता है, स्व-केंद्रित चित्त अनाक्रमक हो जाता है, प्रतिक्रमण को उपलब्ध हो जाता है। यह प्रतिक्रमण की यात्रा ही संलीनता में डुबा देती है।
आज बाह्य-तप पूरे हुए, कल से हम अंतर-तप को समझने की कोशिश करेंगे।

[illegible] [illegible] [illegible]... !

महावीर-वाणी, भाग 1
चौदहवां प्रवचन

प्रायश्चित्तः पहला अंतर तप (धम्म-सूत्र)

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मे सया मणो।।

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

तप के छह बाह्य अंगों की हमने चर्चा की है, आज से अंतर-तपों के संबंध में बात करेंगे। महावीर ने पहला अंतर-तप कहा है--प्रायश्चित्त। पहले तो हम समझ लें कि प्रायश्चित्त क्या नहीं हैं तो आसान होगा समझना कि प्रायश्चित्त क्या है? अब कठिनाई और भी बढ़ गई है क्योंकि प्रायश्चित्त जो नहीं है वही हम समझते रहे हैं कि प्रायश्चित्त है। शब्दकोशों में खोजने जाएंगे तो लिखा है कि प्रायश्चित्त का अर्थ है-पश्चात्ताप, रिपेंटेंस। प्रायश्चित्त का वह अर्थ नहीं है। पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त में इतना अंतर है जितना जमीन और आसमान में।
पश्चात्ताप का अर्थ हैः जो आपने किया है उसके लिए पछतावा; लेकिन जो आप हैं उसके लिए पछतावा नहीं, जो आपने किया है उसके लिए पछतावा। आपने चोरी की है तो आप पछता लेते हैं चोरी के लिए। आपने हिंसा की है तो आप पछता लेते हैं हिंसा के लिए। आपने बेईमानी की है तो पछता लेते हैं बेईमानी के लिए। आ पके लिए नहीं, आप तो ठीक हैं। आप ठीक आदमी से एक छोटी सी भूल हो गई थी कर्म में, उसे आपने पश्चात्ताप करके पोंछ दिया।
इसलिए पश्चात्ताप अहंकार को बचाने की प्रक्रिया है। क्योंकि अगर भूलें आपके पास बहुत इकट्ठी हो जाएं तो आपके अहंकार को चोट लगनी शुरू होगी--कि मैं बुरा आदमी हूं, कि मैंने गाली दी। कि मैं बुरा आदमी हूं, कि मैंने क्रोध किया। आप हैं बहुत अच्छे आदमी--गाली आप दे नहीं सकते हैं, किसी परिस्थिति में निकल गई होगी। आप पछता लेते हैं और फिर से अच्छे आदमी हो जाते हैं। पश्चात्ताप आपको बदलता नहीं, जो आप हैं वही रखने की व्यवस्था है। इसलिए रोज आप पश्चात्ताप करेंगे और रोज आप पाएंगे कि आप वही कर रहे हैं जिसके लिए कल पछताए थे। पश्चात्ताप आ पके बीइंग, आपकी अंतरात्मा में कोई अंतर नहीं लाता, सिर्फ आपके कृत्यों में कहीं भूल थी, और भूल भी इसलिए मालूम पड़ती है कि उससे आप अपनी इमेज को, अपनी प्रतिमा को जो आपने समझ रखी है, बनाने में असमर्थ हो जाते हैं।
मैं एक अच्छा आदमी हूं, ऐसी मैं, मेरी अपनी प्रतिमा बनाता हूं। फिर इस अच्छे आदमी के मुंह से एक गाली निकल जाती है, तो मेरे ही सामने मेरी प्रतिमा खंडित होती है। मैं पछताना शुरू करता हूं कि यह कैसे हुआ कि मैंने गाली दी। मैं कहना शुरू करता हूं कि मेरे बावजूद यह हो गया, इन्सपाइट ऑफ मी। यह मैं चाहता नहीं था और हो गया। ऐसा मैं कर नहीं सकता हूं और हो गया-- किसी परिस्थिति के दबाव में, किसी क्षण के आवेश में। ऐसा मैं हूं नहीं कि जिससे गाली निकले, और गाली निकल गई। मैं पछता लेता हूं। गाली का जो क्षोभ था वह बिदा हो जाता है। मैं अपनी जगह वापस लौट आता हूं जहां मैं गाली के पहले था। पश्चात्ताप वहीं ला देता है वापस जहां मैं गाली के पहले था। लेकिन ध्यान रखें, जहां मैं गाली के पहले था, उसी में से गा ली निकली थी। मैं फिर उसी जगह वापस लौट आया। उससे फिर गाली निकलेगी।
पी. डी. आस्पेंस्की ने एक बहुत अदभुत किताब लिखी हैः दि स्ट्रेंज लाइफ
ऑफ इवान ओसोकिन, इवान ओसोकिन का विचित्र जीवन। इवान ओसोकिन एक जादूगर फकीर के पास गया और इवान ओसोकिन ने कहा कि मैं आदमी तो अच्छा हूं। मैंने अपने भीतर आज तक एक भी बुराई न पाई। लेकिन फिर भी मुझसे कुछ भूलें हो गई

हैं। वे भूलें अज्ञानवश हुईं। नहीं जानता था कोई चीज, और भूल हो गई। रास्ते पर जा रहा हूं, गड्ढे में गिर पड़ा क्योंकि रास्ता अपरिचित था। मैं गिरने वाला व्यक्ति नहीं हूं। अज्ञान की भूल का मतलब यह होता है, परिस्थिति अज्ञात थी। कोई घटना घट गई, वह मैं घटाना नहीं चाहता था। कौन गड्ढे में गिरना चाहता है? मैं गिरने वाला आदमी नहीं हूं। गड्ढा था, अंधेरा था, रास्ता अपरिचित था, या किसी ने धक्का दे दिया, मैं गिर गया। अगर मुझे दुबारा उसी रास्ते पर चलने का मौका मिले तो मैं तुम्हें बता सकता हूं कि मैं उस रास्ते पर चलूंगा और गड्ढे में नहीं गिरूंगा।
उस फकीर ने कहा कि एक मौका दो मैं तुम्हारी बारह वर्ष उम्र कम किए देता हूं। अब तुम बारह वर्ष बाद आना। और उसने ओसोकिन की उम्र बारह वर्ष कम कर दी। वह एक जादूगर है, उसने उसकी उम्र बारह वर्ष कम कर दी। ओसोकिन उससे वायदा करके गया है कि तुम देखोगे कि बारह वर्ष बाद मैं दूसरा ही आदमी हूं। यही मैं चाहता था कि मुझे एक अवसर और मिल जाए, इसलिए ताकि जो भूलें मुझसे अज्ञान में हो गई हैं, वे दुबारा न हों।
बारह वर्ष बाद ओसोकिन रोता हुआ उस फकीर के पास आया और उसने कहाः क्षमा करना। वह गलती रास्ते की नहीं थी, मेरी ही थी क्योंकि मैंने फिर वही भूलें दोहराई हैं, मैंने फिर वही किया है जो मैंने पहले किया था। आश्चर्य! मैं फिर वही जीया हूं जो पहले जीया था।
उस फकीर ने कहाः मैं जानता था, यही होगा। क्योंकि भूलें कर्म में नहीं होतीं--प्राणों की गहराई में, अस्तित्व में होती हैं। उम्र बदल दो तो कर्म फिर से तुम कर लोगे, लेकिन तुम ही करोगे न! यू विल डू इट अगेन एंड यू बीइंग द सेम। तुम वही होओगे, तुम्हीं वही करोगे फिर से; फिर वही हो जाएगा, जो पहले हुआ था।
ईवान ओसोकिन की जिंदगी ही विचित्र नहीं है, इस अर्थ में हम सबकी जिंदगी विचित्र है। हालांकि कोई जादूगर हमारी उम्र कम नहीं करता, लेकिन जिंदगी हर बार हमें न मालूम कितनी बार मौका देती है। ऐसा नहीं है कि क्रोध का मौका आपको एक ही बार आता है और परिस्थिति एक ही बार आती है। नहीं, इसी जिंदगी में हजार बार आती है, वही होती है और फिर आप वही करते हैं। इससे बचने के लिए आप अपने को धोखा देते हैं कि परिस्थिति हर बार भिन्न है। क्योंकि एक बात तो पक्की है, आप वही हैं। अगर परिस्थिति भिन्न नहीं है तो दोष स्वयं पर आ जाएगा। इसलिए आप हर बार कहते हैं--परिस्थिति भिन्न है, इसलिए फिर करना पड़ा। लेकिन जो जानते हैं, वे कहते हैं कि परिस्थिति का सवाल नहीं है, सवाल आप ही हैं--यू आर द प्राब्लम। और एक जिंदगी नहीं अनेक जिंदगी मिलती हैं, और हम फिर वही दोहराते हैं, फिर वही दोहराते हैं, फिर वही दोहराते हैं।
महावीर के पास कोई साधक आता था तो वे उसे पिछले जन्म के स्मरण में ले जाते थे, सिर्फ इसीलिए ताकि वह देख ले कि वह कितनी बार यही सब दोहरा चुका है और यह कहना बंद कर दे कि मेरे कर्म की भूल है और यह जान ले कि भूल मेरी है। पश्चात्ताप, कर्म गलत हुआ, इससे संबंधित है। प्रायश्चित्त, मैं गलत हूं, इस बोध से संबंधित है। और ये दोनों बातें बहुत भिन्न हैं, इसमें जमीन आसमान का फर्क है। पश्चात्ताप करने वाला वही का वही बना रहता है और प्रायश्चित्त करने वाले को अपनी जीवन चेतना रूपांतरित कर देनी होती है। सवाल यह नहीं है कि मैंने क्रोध किया तो मैं पछता लूं। सवाल यह है कि मुझसे क्रोध हो सका तो मैं दूसरा आदमी हो जाऊं, ऐसा आदमी जिससे क्रोध न हो सके-- प्रायश्चित्त का यह अर्थ है। ट्रांसफर्मेशन ऑफ द लेवल ऑफ दि बीइंग। यह सवाल नहीं है कि मैंने कल क्रोध किया था, आज मैं नहीं करूंगा। सवाल यह है-- कल मुझसे क्रोध हुआ था, मैं कल के ही जीवन तल पर आज भी हूं। वही चेतना मेरी आज भी है। पश्चात्ताप करनेवाला कल के लिए क्षमा मांग लेगा। हर वर्ष हम मांगते हैं मिच्छामि दुक्कड़म, हर वर्ष हम मांगते हैं, क्षमा कर दे। पिछले वर्ष भी मांगा था, उसके पहले भी क्षमा मांगी थी। कब वह दिन आएगा जब कि क्षमा मांगने का अवसर न रह जाए। कि मांगते ही रहेंगे। और जानते हैं भलीभांति कि जहां से क्षमा मांगी जा रही है वहां कोई रूपांतरण नहीं है। वह आदमी वही है जो पिछले वर्ष था।

एक मित्र पिछले पूरे वर्ष से मेरे संबंध में अनूठी कहानियां प्रचारित करते हैं। अब यह पर्युषण पूरे हुए तो उनका कल पत्र आया कि मुझे क्षमा कर दें। ऐसा नहीं कि मैंने जाने अनजाने अपराध किए हों, उनके लिए क्षमा कर दें--पत्र में लिखा है, मैंने अपराध किए हैं, उनके लिए क्षमा कर दें, और मैं हृदय की गहराई से क्षमा मांगता हूं। लेकिन मैं जानता हूं कि पत्र लिखने के बाद उन्होंने वही काम पुनः जारी कर दिया होगा। क्योंकि पत्र लिखने से वह रूपांतरण नहीं हो जाने वाला है। क्षमा मांग लेने से आप नहीं बदल जाएंगे, आप फिर वही होंगे। सच तो यह है--जो क्षमा मांग लेने से आप नहीं बदल जाएंगे, आप फिर वही होंगे। सच तो यह है--जो क्षमा मांग रहा है वही आदमी है जिसने अपराध किया है। प्रायश्चित्त वाला तो हो सकता है क्षमा न भी मांगे, क्योंकि वह अनुभव करे, अब मैं वह आदमी ही नहीं हूं कि जिसने अपराध किया था, अब मैं दूसरा आदमी हूं। वह जाकर इतनी खबर दे दे कि वह आदमी जो तुम्हें गाली दे गया था, मर गया है। मैं दूसरा आदमी हूं। अगर आपके मन को अच्छा लगे तो मैं उसकी तरफ से आपसे क्षमा मांग लूं, क्योंकि मैं उसकी जगह हूं। अन्यथा मेरा कोई लेना देना नहीं है, वह आदमी मर चुका है।
प्रायश्चित्त का अर्थ हैः मृत्यु उस आदमी की जो भूल कर रहा था, उस चेतना की जिससे भूल हो रही थी। पश्चात्ताप का अर्थ हैः उस चेतना का पुनर्जीवन जिससे भूल हो रही है। फिर से रास्ता साफ करना, फिर से पुनः वहीं पहुंच जाना जहां हम खड़े थे और जहां से भूल होती थी--उसी जगह फिर खड़े हो जाना। पैर थोड़े डगमगा जाते हैं अपराध करके, भूल करके। फिर उन पैरों को मजबूत करना हो तो क्षमा सहयोगी होती है। ध्यान रहे, लोग इसलिए क्षमा नहीं मांगते कि वे समझ गए हैं कि उनसे अपराध हो गया, वे इसलिए क्षमा मांगते हैं कि यह अपराध का भाव उनकी प्रतिमा को खंडित करता है। वे इसलिए क्षमा नहीं मांगते हैं कि आपको चोट पहुंची है, क्योंकि वे कल फिर चोट पहुंचाना जारी रखते हैं। वे इसलिए क्षमा मांगते हैं कि अपराध के भाव से उनकी प्रतिमा को चोट पहुंची है। वे उसे सुधार लेते हैं। हम सबका एक सेल्फ इमेज है। सच नहीं है वह जरा भी, लेकिन वही हमारा असली है।
सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को कंधे पर लेकर सुबह घूमने निकला है। सुंदर है उसका बेटा। जो भी रास्ते पर देखता है वह रुक कर ठहर जाता है और कहता है, सुंदर है। नसरुद्दीन कहता हैः दिस इ.ज नथिंग। यू मस्ट सी हि.ज पिक्चर। यह कुछ नहीं है, इसका चित्र देखो, तब तुम्हें पता चलेगा। जो भी नसरुद्दीन से कहता हैः सुंदर है यह तुम्हारा बेटा; वह कहता हैः दिस इ.ज नथिंग। यू मस्ट सी हि.ज पिक्चर। यह तो कुछ भी नहीं है। इसकी पिक्चर देखो घर आकर अलबम में, तब तुमको पता चलेगा।
वह ठीक कह रहा है। हम सब भी जानते हैं कि हम तो कुछ भी नहीं हैं, लेकिन हमारी तस्वीर, वह जो हमारे चित्त के अलबम में है, उसको देखो। उसको ही हम दिखाने की कोशिश में लगे रहते हैं। उसको ही हम दिखाने की कोशिश में लगे रहते हैं। वह तस्वीर बड़ी और है। वह वही नहीं है जो हम हैं। इसलिए जब उस तस्वीर पर कोई दाग पड़ जाता है और हमें लगता है कि दाग पड़ रहा है तो दाग को हम पोंछ लेते हैं। पश्चात्ताप स्याही सोख का काम करता है। वह प्रायश्चित्त नहीं है, प्रायश्चित्त तो तस्वीर को फाड़ कर फेंक देगा और कहेगा--यह मैं हूं ही नहीं, जिसको मैं थोप रहा हूं निरंतर। पश्चात्ताप सिर्फ स्याही के धब्बे को अलग कर देगा। और अगर आप कुशल हुए तो स्याही के धब्बे को इस ढंग से बना देंगे कि वह तस्वीर का हिस्सा औरशृंगार बन जाए। न कुशल हुए तो पोंछने की कोशिश करेंगे, इसमें थोड़ी-बहुत तस्वीर खराब भी हो सकती है।
अगर आपने रवींद्रनाथ की कभी हाथ से लिखी, हस्तलिखित प्रतिलिपियां, उनकी हस्तलिखित पांडुलिपियां देखी हैं तो आप बहुत चकित होंगे। रवींद्रनाथ से कहीं अगर कोई भूल अक्षर में हो जाए तो वे उसको ऐसे नहीं काटते थे, वे उसे काटकर वहां एक चित्र बना देते और कागज को सजा देते। तो उनकी पांडुलिपियां सजी पड़ी हैं। जहां उन्होंने काटा है, वहां सजा दिया है। अच्छा है, पांडुलिपि में करना बुरा नहीं है, आंख को सोहता है। लेकिन आदमी जिंदगी में भी यही करता है। वह पश्चात्ताप धब्बों को चित्र बनाने की

कोशिश या धब्बों को पोंछ डालने की कोशिश है। पश्चात्ताप प्रायश्चित्त नहीं है, लेकिन हम सब तो पश्चात्ताप को ही प्रायश्चित्त समझते हैं।
पश्चात्ताप बहुत साधारण सी घटना है, जो मन का नियम है। मन के नियम को थोड़ा समझ लें कि पश्चात्ताप पैदा सबको होता है। यह मन का सामान्य नियम है। प्रायश्चित्त साधना है। अगर महावीर प्रायश्चित्त का अर्थ पश्चात्ताप करते हों तो यह तो कोई बात ही न हुई।
यह तो सभी को होता है। ऐसा आदमी खोजना कठिन है जो पछताता न हो। अगर आप खोज कर ले आएं, तो वह आदमी ऐसे ही हो सकता है जैसा महावीर हो। बाकी आदमी मिलना मुश्किल है जो पछताता न हो। पश्चात्ताप तो जीवन का सहज क्रम है। हर आदमी पश्चात्ताप करता है। तो इसको साधना में गिनाने की क्या जरूरत है? पश्चात्ताप साधना नहीं, मन का नियम है। मन का यह नियम है कि मन एक अति से दूसरी अति पर डोल जाता है। तो मन के इस नियम में थोड़े गहरे प्रवेश कर जाएं तो पश्चात्ताप समझ में आ जाए। फिर प्रायश्चित्त की तरफ ध्यान उठ सकता है। आपका किसी से प्रेम है तो आप उस आदमी में चुनाव करते हैं और वही-वही देखते हैं जो प्रेम को मजबूत करे--सिलेक्टिव। कोई आदमी किसी आदमी को पूरा नहीं देखता। देख ले तो जिंदगी बदल जाए, उसकी खुद की भी बदल जाए। हम सब चुनाव करते हैं। जिसे मैं प्रेम करता हूं उसमें मैं वे वे हिस्से देखता हूं जो मेरे प्रेम को मजबूत करते हैं और कहते हैं कि मैंने चुनाव ठीक किया है। आदमी प्रेम के योग्य है। प्रेम किया ही जाता ऐसे आदमी से, ऐसा आदमी है। लेकिन यह पूरा आदमी नहीं है। यह मन अपने को चुनाव कर रहा है। जैसे मैं किसी कमरे में जाऊं और सफेद रंगों को चुन लूं और काले रंगों को छोड़ दूं। आज नहीं कल मैं सफेद रंगों से ऊब जाऊंगा क्योंकि मन जिस चीज से भी परिचित होता जाता है, ऊब जाता है। आज नहीं कल मैं ऊब जाऊंगा इस सौंदर्य की सिलेक्टिव, एक चुनाव की गई प्रतिमा से। और जैसे मैं ऊबने लगूंगा वैसे ही वह जो असुंदर मैंने छोड़ दिया था, दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा। वह तभी तक नहीं दिखता था, वह तो है ही।
सुंदरतम व्यक्ति में भी असुंदर हिस्से हैं। असुंदरतम व्यक्ति में भी सौंदर्य छिपा है। जीवन बनता ही है विरोध से, जीवन की सारी व्यवस्था ही विरोध पर खड़ी होती है। काले बादलों में ही बिजली नहीं छिपी होती, हर बिजली की चमक के पीछे काला बादल भी होता है। और हर अंधेरी रात के बाद ही सुबह पैदा नहीं होती, हर सुबह के बाद काली रात आ जाती है। हर दुख में खुशी ही नहीं छिपी है, हर खुशी के भीतर से दुख का अंकुर भी निकलेगा। जीवन ऐसे ही बहता है जैसे नदी दो किनारों के बीच बहती है। और एक किनारे के साथ नहीं बह सकती। भला दूसरा किनारा आपको न दिखाई पड़ता हो, या आप न देखना चाहते हों, लेकिन जब इस किनारे से ऊब जाएंगे तो दूसरा किनारा ही आपका डेरा बनेगा।
तो जब आप एक व्यक्ति में सौंदर्य देखना शुरू करते हैं तो आप चुनाव कर लेते हैं एक किनारे का। भूल जाते हैं--नदी दो किनारों में बहती है। दूसरा किनारा भी है। उस दूसरे के किनारे के बिना न तो नदी हो सकती है, न यह किनारा हो सकता है। अकेला किनारा कहीं होता है? किनारे का मतलब यह होता है कि वह दूसरे का जोड़ है। पर आप चुनाव कर लेते हैं। फिर आज नहीं कल सौंदर्य से थक जाएंगे। सब चीजें थका देती हैं, सब चीजें उबा देती हैं। मन चाहता है--रोज नया, रोज नया। फिर पुराना उबाने लगता है। फिर जब पुराना उबा देता है तो जो हिस्से आपने छोड़ दिए थे पहले चुनाव में वे प्रकट होने लगते हैं। दूसरा किनारा दिखाई पड़ता है और जिसके प्रति आप प्रेम से भरे थे, उसी के प्रति घृणा से भर जाते हैं। जिसके प्रति आप श्रद्धा से भरे थे, उसी के प्रति अश्रद्धा से भर जाते हैं। जिसको आप भगवान कहने गए थे उसी को आप शैतान कहने जा सकते हैं। इसमें कोई अड़चन नहीं है। जिससे आपने कहा था--तेरे बिना जी न सकेंगे; उससे ही आप कह सकते हैं अब तेरे साथ न जी सकेंगे।
मन द्वंद्व में चलता है, क्योंकि चुनाव करता है। इसलिए जिसे द्वंद्व
के बाहर होना है उसे चुनाव रहित होना पड़े, च्वाइसलेस होना पड़े। चुनता ही नहीं है--काला है तो उसे भी देखता है, सफेद है तो उसे भी देखता है और मान लेता है कि काला हो नहीं सकता सफेद के बिना, सफेद हो नहीं सकता काले के बिना--फिर उस आदमी की दृष्टि में कभी परिवर्तन नहीं होता। मैं चकित होता

हूं। सब संबंध परविर्तित होते हैं। एक आदमी मेरे पास आता है, इतनी श्रद्धा और इतनी भक्ति से भर कर आता है कि कभी सोचा भी नहीं जा सकता कि यह आदमी कभी विपरीत चला जाएगा। लेकिन मैं जानता हूं कि इसकी श्रद्धा और भक्ति चुनाव है। यह विपरीत जा सकता है। जब यह विपरीत जाने लगता है तो दूसरे लोग मेरे पास आकर कहते हैं कि यह कैसे संभव है। आपके जो इतना निकट है, आपको जो इतनी भक्ति देता है वह आपके विपरीत जा रहा है। उनको पता नहीं कि यह बिल्कुल नियमानुसार हो रहा है। यह बिल्कुल नियमानुसार हो रहा है। एक किनारा उसने चुना था, अब वह उस किनारे को छोड़ कर दूसरा चुनेगा। और पहले किनारे को जब चुना था तब भी आपने अपने को तर्क दे लिए थे कि मैं सही हूं और दूसरे किनारे को चुनते वक्त भी आप अपने को तर्क दे लेंगे कि आप सही हैं।
और मैं आपसे कहता हूं कि एक किनारे को चुनना गलत है। वह किनारा कौन सा
है, यह सवाल नहीं है। वह तर्क क्या है, यह सवाल नहीं है। जब कोई आकर मुझे भगवान मानने लगता है तब भी मैं जानता हूं, वह एक किनारे को चुन रहा है। वह चुनाव गलत है। एक किनारे को चुन लेना गलत है। यह सवाल नहीं है कि वह क्या तर्क अपने को दे रहा है। वही आदमी कल मुझे शैतान मान लेगा और तब भी तर्क खोज लेगा! मैं नहीं कहता कि उसका शैतान ही मान लेना गलत है। मैं कहता हूं उसका चुनाव गलत है। वह पूरे को नहीं देख रहा।
चुनेगा तो बदलेगा। जहां तक चुनाव है वहां तक परिवर्तन होगा। जब आप क्रोध में होते हैं तब आप एक हिस्सा चुन लेते हैं अपने व्यक्तित्व का--वह जो क्रोध करने वाला है। जब क्रोध निकल जाता है, बिदा हो जाता है तब आप अपने व्यक्तित्व का दूसरा हिस्सा चुनते हैं जो पश्चात्ताप करने वाला है। क्रोध कर लेते हैं एक हिस्से से, वह एक चुनाव था, आपकी प्रतिमा का एक रूप था। फिर पश्चात्ताप कर लेते हैं, वह आपकी प्रतिमा का दूसरा चुनाव है। किनारों के बीच नाव बहती रहती है। आपकी नदी बहती रहती है। आप यात्रा करते रहते हैं। कभी इस किनारे लगा देते हैं नाव को, कभी उस किनारे लगा देते हैं। प्रायश्चित्त दो किनारों के बीच चुनाव नहीं है। प्रायश्चित्त बहुत अदभुत घटना है। पश्चात्ताप देख लेता है, कर्म की कोई भूल है। प्रायश्चित्त देखता है, मैं गलत हूं। कर्म नहीं, क्योंकि कर्म क्या गलत होगा! गलत आदमी से गलत कर्म निकलते हैं, कर्म कभी गलत नहीं होते। गलत आदमी से गलत कर्म निकलते हैं। बबूल के कांटे गलत नहीं होते, वे बबूल की आत्मा से निकलते हैं। कांटे क्या गलत होंगे! वे बबूल की आत्मा से निकलते हैं। लेकिन बबूल जब अपने कांटों को देखता है तो कहता है कि दुखी हूं। वृक्ष तो मैं ऐसा नहीं हूं कि मुझसे कांटे निकलें। परिस्थिति ने निकाल दिए होंगे। या अपने को समझाए कि हो सकता है कि कुछ लोगों के भोजन के लिए मैंने ये कांटे निकाले हों--कि ऊंट हैं, बकरियां हैं, वे भोजन कर सकें, नहीं तो भूखे मर जाएंगे। ऐसे मुझमें कांटे का क्या सवाल है! कांटे भी निकलते हैं तो किसी की करुणा से निकलते हैं।
क्रोध भी आता है आपको तो किसी को बदलने के लिए आता है। कि उस आदमी को बदलना पड़ेगा न! दया के कारण आप क्रोध करते हैं। बाप कर रहा है बेटे पर, मां कर रही बेटी पर--दया के कारण, करुणा के कारण कि इसको बदलना है, नहीं तो बिगड़ जाएगा। और मजा यह है कि सब क्रोध के बाद कहीं कोई सुधार दिखाई नहीं पड़ता। सारी दुनिया क्रोध करती आ रही है। सब इस ख्याल में क्रोध कर रहे हैं कि नहीं तो लोग बिगड़ जाएंगे, और लोग हैं कि बिगड़ते ही चले जा रहे हैं। कोई किसी में अंतर नहीं दिखाई पड़ता है। नहीं, मालूम ऐसा होता है कि क्रोध का संबंध दूसरे को सुधारना कम, यह दूसरे को सुधारना अपने क्रोध के लिए तर्क खोजना ज्यादा है। यह दूसरा भी कल बड़े होकर यही तर्क खोजेगा और रेशनेलाइज करेगा। यह भी अपने बच्चों को ऐसे ही सुधारेगा।
ये जो कर्म हैं, इन पर जिनका ध्यान है वे पश्चात्ताप से आगे नहीं बढ़ेंगे और पश्चात्ताप आगे बढ़ना ही नहीं है--पीछे लौटना है एक कदम, फिर एक कदम वापस; फिर एक कदम आगे, फिर एक कदम पीछे। फिर क्रोध किया, फिर पैर उठा कर पीछे रख लिया; फिर क्रोध किया, फिर पैर उठा कर पीछे रख लिया। यह एक ही जगह पर दौड़ने जैसी क्रिया है, कहीं जाती नहीं। पश्चात्ताप से सजग हों, पश्चात्ताप आपको बदलेगा नहीं; बदलने का धोखा देता है। क्योंकि जब

पश्चात्ताप के क्षण में आप होते हैं तो आप अपने सारे अच्छे गुण चुन लेते हैं। जब आप कहते हैं--मिच्छामि दुक्कड़म, तब आप एक प्रतिमा होते हैं साक्षात क्षमा की। मगर आप बाइलिंग्वल हैं, द्विभाषी हैं। वह दूसरी भाषा भीतर छिपी बैठी है। वह अगर दूसरा आदमी कह देगा कि अच्छा आप तो मानते हो लेकिन मैं नहीं मानता क्योंकि मैंने कोई अपराध आपकी तरफ किया नहीं; तो उसी वक्त दूसरी भाषा आपके भीतर सक्रिय हो जाए कि यह आदमी दुष्ट है। मैंने क्षमा मांगी और इसने क्षमा भी नहीं मांगी। या आप किसी से कहें कि मैं क्षमा मांगता हूं और वह कह दे कि किया क्षमा। तो पीड़ा शुरू हो जाएगी तत्काल। दूसरी भाषा आ जाएगी।
सुना है मैंने कि एक चूहा अपने बिल के बाहर घूम रहा था। अचानक पैरों
की आवाज सुनी--परिचित थी, बिल्ली की मालूम पड़ती थी--घबड़ा कर अपने बिल के भीतर चला गया। लेकिन जैसे ही भीतर गया, चकित हुआ। बाहर तो कुत्ता भोंक रहा था--भों-भों। चूहा बाहर आया। तत्काल बिल्ली के मुंह में चला गया। चारों तरफ देखा, कुत्ता कहीं भी नहीं था। चूहे ने पूछा कि तू मुझे मार डाल, उसमें कोई हर्जा नहीं, लेकिन एक बात और मरते हुए प्राणी की एक जिज्ञासा को पूरा कर दे। वह कुत्ता कहां गया? बिल्ली ने कहाः यहां कोई कुत्ता नहीं है। यू नो, इट पेइ.ज टु बी बाइलिंग्वल। मैं कुत्ते की आवाज करती हूं, हूं बिल्ली एंड इट पेइ.ज। तुम फंस गए मेरे चक्कर में, नहीं तो तुम फंसते नहीं। द्विभाषी हूं, कुत्ते की भाषा बोलती हूं, हूं बिल्ली। इससे चूहे बड़ी आसानी से फंसते हैं।
हम सब बाइलिंग्वल हैं, द्विभाषी हैं, दो-दो भाषा जानते हैं। बोलने की भाषा और है, होने की भाषा और है। पूरे वक्त दो किनारों के बीच चलता रहता है। पश्चात्ताप करके आप बड़े प्रसन्न होते हैं, जैसा क्रोध करके बहुत दुखी और विषाद को उपलब्ध होते हैं। क्रोध करके विषाद आता है कि ऐसा बुरा आदमी मैं नहीं था। पश्चात्ताप करके चित्त प्रफुल्लित होता है, देखो कितना अच्छा आदमी हूं। अहंकार पुनर्प्रतिष्ठित हुआ। नहीं, प्रायश्चित्त का अर्थ-भूल कर्म में नहीं है, भूल मुझमें है, गलत मैं हूं।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने क्लब के बाहर निकल रहा है। एक आदमी एक कोट को पहनने की कोशिश कर रहा है क्लाक रूम से। मुल्ला उससे कहता है कि आप बड़े गलत आदमी हैं। मुल्ला से उसने कहाः मैंने तो कुछ किया ही नहीं! मैं अपना कोट पहन रहा हूं। मुल्ला ने कहाः इसीलिए तो मैं कहता हूं कि आप गलत आदमी हैं। यह कोट मुल्ला नसरुद्दीन का है। उस आदमी ने कहाः यह मुल्ला नसरुद्दीन कौन है? मुल्ला ने कहाः यह मुल्ला नसरुद्दीन मैं हूं, आप मेरा कोट पहन रहे हैं। तो उस आदमी ने कहा कि नासमझ! ऐसा क्यों नहीं कहता कि मैं गलत कोट पहन रहा हूं, ऐसा क्यों कहता है कि मैं गलत आदमी हूं। मुल्ला ने कहाः गलत आदमी ही गलत कोट पहनते हैं।
जब आप कोई गलत काम करते हैं तो आप चाहते हैं कोई ज्यादा से ज्यादा इतना कहे कि आपसे गलत काम हो गया। वह यह न कहे कि आप गलत आदमी हैं, क्योंकि काम की तो बड़ी छोटी सीमा है, एक क्षण में निपट जाएगा। आप! आप तो पूरे जीवन पर आरोपित हैं। अगर कोई कहे, आप गलत हैं, तो यह जीवन भर के लिए निंदा हो गई। अगर कर्म गलत है, एक क्षण की बात है, इससे विपरीत कर्म किया जा सकता है। किए को अनकिया किया जा सकता है, डन को अनडन किया जा सकता है। किए के लिए माफी मांगी जा सकती है। किए के विपरीत किया जा सकता है। कर्म के ऊपर दोष देने में कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन वही आदमी प्रायश्चित्त को उपलब्ध होता है। जो कहता, गलत कोट मैं नहीं पहन रहा, मैं गलत आदमी हूं। लेकिन तब प्राणों में बड़ा मंथन होता है।
तब सवाल यह नहीं है कि मैंने कौन-कौन से काम गलत किए; तब सवाल यह है कि चूंकि मैं गलत हूं इसलिए मैंने जो भी किया होगा, वह गलत होगा। तब चुनाव भी नहीं है कि कौन सा गलत किया और मैंने कौन सा ठीक किया। जब मैं गलत हूं तो मैंने जो भी किया होगा वह गलत किया होगा। बेहोश आदमी शराब पीए हुए रास्ते पर लड़खड़ाता है। वह यह नहीं कहता कि मेरे कौन-कौन से पैर लड़खड़ाए, या कहेगा? और कौन से पैर मेरे ठीक पड़े और कौन से पैर मेरे लड़खड़ाए? जब वह होश में आएगा तब वह कहेगा कि मैं बेहोश था, मेरे सभी पैर लड़खड़ाए। वे जो ठीक पड़ते मालूम

पड़ते थे वे भी गलती से ही ठीक पड़े होंगे क्योंकि ठीक पड़ने का तो कोई उपाय नहीं, क्योंकि मैं शराब पीए था। हम भीतर एक गहरे नशे में होते हैं, और वह गहरा नशा यह है कि हम, एक अर्थ में हम हैं ही नहीं, बिल्कुल सोए हुए हैं। प्रायश्चित्त को महावीर ने क्यों अंतर-तप का पहला हिस्सा बनाया? क्योंकि वही व्यक्ति अंतर्यात्रा पर निकल सकेगा जो कर्म की गलती को छोड़ कर स्वयं की गलती देखना शुरू करेगा। देखिए, तीन तरह के लोग हैं--एक वे लोग हैं जो दूसरे की गलती देखते हैं; एक वे लोग हैं जो कर्म की गलती देखते हैं; एक वे लोग हैं जो स्वयं की गलती देखते हैं। जो दूसरे की गलती देखते हैं वे तो पश्चात्ताप भी नहीं करते। जो कर्म की गलती देखते हैं वे पश्चात्ताप करते हैं। जो स्वयं की गलती देखते हैं, वे प्रायश्चित्त में उतरते हैं। जब दूसरा ही गलत है तब तो पश्चात्ताप का कोई सवाल ही नहीं है।
लेकिन ध्यान रहे, दूसरा कभी भी गलत नहीं होता। इस अर्थ में कभी गलत नहीं होता। इसे बड़ा कठिन होगा समझना कि दूसरा कभी भी गलत नहीं होता। अंतर्यात्रा के पथिक को यह समझ लेना होगा कि दूसरा कभी भी गलत नहीं होता है। आप कहेंगे--आप कैसी बात कर रहे हैं क्योंकि मैं गलत होता हूं तो मैं दूसरे के लिए तो दूसरा हूं ही! और अगर दूसरा गलत नहीं होता तो फिर तो मैं कैसे गलत होऊंगा? जब मैं कह रहा हूं--दूसरा कभी गलत नहीं होता तो इसलिए कह रहा हूं इसलिए नहीं कि दूसरा गलत नहीं होता, दूसरा गलत होता है, लेकिन स्वयं के लिए, आप गलत होते हैं स्वयं के लिए दूसरे के लिए आप गलत नहीं हो सकते।
आप महावीर के पास जाएं तब आपको तत्काल पता चल जाएगा। आप गाली दें, महावीर में गाली ऐसे गूंजेगी जैसे किसी घाटी में गूंजे और विलीन हो जाए। आप महावीर को क्रोधित न करवा पाएंगे। और तब बड़े हैरानी की बात है कि अगर आप क्रोधी आदमी हैं तो आपको और ज्यादा क्रोध आएगा कि दूसरा आदमी क्रोधित तक नहीं हुआ। तो और क्रोध आएगा। जीसस को सूली पर लटकाना पड़ा क्योंकि यह आदमी उन लोगों के सामने अपना दूसरा गाल करता रहा, जो चांटा मारने आए थे। उनका क्रोध भयंकर होता चला गया। अगर यह भी उनको एक चांटा मार देता तो जीसस को सूली पर लटकाने की कोई जरूरत न पड़ती। बात निपट गई होती। समान तल पर आ गए होते। फिर तो कोई कठिनाई न थी।
एनीबीसेंट जे. कृष्णमूर्ति को कैम्ब्रिज और आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी
के अलग-अलग कालेजों में भर्ती कराने के लिए घूम रही थी, पढ़ने के लिए। लेकिन कोई कालेज का प्रिंसिपल कृष्णमूर्ति को लेने को राजी नहीं हुआ। जिस कालेज में भी एनीबीसेंट गई, एनीबीसेंट ने कहा कि यह साक्षात भगवान का अवतार है, यह दिव्य पुरुष है। इनमें वर्ल्ड टीचर, जगत-गुरु का जन्म होने को है।
उन प्रिंसिपल्स ने कहा कि क्षमा करें, इतनी विशिष्टता आप उन्हें दे रही हैं कि हम कालेज में भर्ती नहीं कर सकेंगे। एनीबीसेंट ने कहाः क्यों? तो उन्होंने कहाः इसलिए भर्ती न कर सकेंगे कि एक तो इस बच्चे को परेशानी होगी इतनी महत्ता का बोझ लेकर चलने में, और दूसरे लड़के भी इसको परेशान करेंगे। इसको कठिनाई पड़ेगी इतनी गरिमा लेकर चलने में, और दूसरे लड़के इसको परेशान करेंगे। यह शांति से न पढ़ पाएगा, शांति से न जी पाएगा। इसलिए हम इसे न लेंगे।
लेकिन सभी प्रिंसिपलों ने एक खास कालेज का नाम बताया कि आप वहां चली जाओ, वह कालेज भर्ती कर लेगा।
एनीबीसेंट बहुत हैरान थी, फिर आखिर जब कोई कालेज में जगह नहीं मिली क्योंकि वह कालेज अच्छा कालेज नहीं था, जिसका लोग नाम लेते थे, उसकी प्रतिष्ठा नहीं थी। एनीबीसेंट को जब कोई उपाय न रहा तो वह कृष्णमूर्ति को लेकर उस कालेज में गई। उस कालेज के प्रिंसिपल ने कहा--खुशी से भर्ती हो जाओ, मजे से भर्ती हो जाओ; बिका.ज इन अवर कालेज एवरीवन इ.ज ए गॉड। एवरीवन विल ट्रीट यू इक्वली। कोई दिक्कत न आएगी। इधर सभी लड़के भगवान हैं हमारे कालेज में। कोई कठिनाई न आएगी बल्कि तुमको दिक्कत यही हो सकती है कि कई इसमें बिगर गॉड्स हैं, वे तुमको दबाएंगे, तुमको छोटा गॉड सिद्ध करेंगे। तुम जरा इसके लिए सावधान रहना। बाकी और कोई अड़चन नहीं है। दे विल ट्रीट यू इक्वली। समान व्यवहार करेंगे।

यह जो, हम जो व्यवहार कर रहे हैं दूसरे से, वह दूसरे पर कम निर्भर है,
हम पर ज्यादा निर्भर है। हमें लगता ऐसा ही है कि दूसरे पर निर्भर है, वही हमारी भ्रांति है, वह हम पर ही निर्भर है। हम ही उसे उकसाते हैं जाने अनजाने। और जब दूसरा उसे करने लगता है तो लगता है वह दूसरे से आ रहा है। अब जिस कालेज में हरेक लड़का अपने को भगवान समझता है, उस कालेज में कोई दिक्कत नहीं है प्रिंसिपल को। वह कहता है--कोई अड़चन न आएगी। लेकिन जिसका लेज में ऐसा नहीं है, उसका प्रिंसिपल भयभीत हो रहा है कि इससे अड़चन खड़ी होगी। आसान नहीं होगा यह, कृष्णमूर्ति का यहां रहना। यह अड़चन बनेगी।
महावीर के पास आप जाएंगे तो आपको कठिनाई आएगी, अगर महावीर आ पके साथ समानता का व्यवहार करेंगे तो कठिनाई न आएगी। आप गाली दें महावीर को और महावीर भी आपको गाली दे दें तो आप ज्यादा प्रसन्न घर लौटेंगे क्योंकि बराबर सिद्ध हुए। अगर महावीर गाली न दें और मुस्कुरा दें तो आप रातभर बेचैन रहेंगे घर कि यह आदमी कुछ ऊपर मालूम पड़ता है, इसको नीचे लाना पड़ेगा। तो इसलिए कई बार तो ऐसा हुआ है कि बहुत साधुओं ने सिर्फ इसलिए गाली दी कि आपको उनको नीचे लाने की व्यर्थ कोशिश न करनी पड़े। आप हैरान होंगे, यह जगत बहुत अजीब है। कई साधुओं को इसलिए आपके साथ दुर्व्यवहार करना पड़ा ताकि आपको उनके साथ दुर्व्यवहार न करना पड़े। रामकृष्ण गाली देते थे, ठीक मां- बहन की गाली देते थे। और ढेर फक्कड़ साधु गालियां देते रहे, पत्थर मारते रहे, और सिर्फ इसलिए कि आ पको कष्ट न उठाना पड़े उनको फांसी वगैरह देने का-- आप पर दया करके, यही समझ कर।
और यह बड़े मजे की बात है, अब तक ऐसे किसी साधु को फांसी नहीं दी गई, जिसने गाली दी हो और पत्थर फेंके हों। यह आपको पता है? पूरे इतिहास में मनुष्य जाति के! सुकरात को जहर पिला देते हैं, महावीर को पत्थर मारते हैं, बुद्ध को परेशान करते हैं। हत्या की अनेक कोशिशें की जाती हैं बुद्ध की-- चट्टान सरका दी जाती है, पागल हाथी छोड़ दिया जाता है। जीसस को सूली पर लटकाते हैं, मंसूर को काट डालते हैं। लेकिन ऐसा एक भी उल्लेख नहीं है कि आपने उस साधु के साथ दुर्व्यवहार किया हो जिसने आपके साथ दुर्व्यवहार किया हो। यह बड़े मजे की बात है। यह बड़ा ऐतिहासिक तथ्य है। बात क्या है? असल में जो आपको गाली देता है, यू ट्रीट हिम इक्वली। बात खत्म हो गई। वह आदमी इतना ऊपर नहीं, जिसको फांसी-वांसी लगानी पड़े, नीचे लाना पड़े। अपने ही जैसा है, चलेगा। तो कई कुशल साधु सिर्फ इसलिए गाली देने को मजबूर हुए कि आपको नाहक परेशानी में न पड़ना पड़े, क्योंकि फांसी लगाने में परेशानी साधु को कम होती है, आपको ज्यादा होती है। बड़ा इंतजाम करना पड़ता है।
दूसरा गलत नहीं है इस स्मरण से ही अंतर्यात्रा शुरू होती है। अगर दूसरा गलत है, तब तो अंतर्यात्रा शुरू ही नहीं होगी। दूसरा गलत है या नहीं, यह सवाल नहीं है; दूसरा गलत है, यह दृष्टि गलत है। दूसरा गलत है या नहीं, इस तर्क में आप पड़ेंगे तो कभी दूसरा सही मालूम पड़ेगा, कभी गलत मालूम पड़ेगा। चुनाव शुरू हो जाएगा। दूसरा सही है या गलत है, यह साधक की दृष्टि नहीं है। मैं गलत हूं या नहीं, यह ठहराना साधक की दृष्टि नहीं है। मैं गलत हूं, यह सुनिश्चित मान कर चल पड़ना साधक की दृष्टि है। प्रायश्चित्त तब शुरू होता है जब मैं मानता हूं, मैं गलत हूं। सच तो यह है कि जब तक मैं हूं तब तक मैं गलत होऊंगा ही। होना ही गलत है, वह जो अस्मिता है, वह जो ईगो--"मैं हूं"--वही मेरी गलती है। मेरा होना ही मेरी गलती है। जब तक "मैं नहीं" न हो जाऊं तब तक प्रायश्चित्त फलित नहीं होगा। और जिस दिन मैं नहीं हो जाता हूं, शून्यवत हो जाता हूं उसी दिन मेरी चेतना रूपांतरित होती है और नये लोक में प्रवेश करती है।
फिर भी ऐसा नहीं है कि ऐसी रूपांतरित चेतना में आपको गलतियां न मिल जाएं। क्योंकि गलतियां आप अपने कारण खोजते हैं। एक बात पक्की है कि ऐसी चेतना को आप में गलतियां मिलनी बंद हो जाएंगी। इसलिए तो ऐसी चेतनाएं आपसे कह सकीं कि आप परमात्मा हैं, आप शुद्ध आत्मा हैं, आपके भीतर मोक्ष छिपा है। द किंगडम ऑफ गॉड इ.ज विदिन यू। इसलिए जीसस जुदास के पैर पड़ सके। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि जुदास ने तीस रुपये में जीसस को बेच दिया है सूली पर लटकाने के लिए, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इससे कोई अंतर ही नहीं पड़ता

क्योंकि जिस आदमी ने अपने को बदला हुआ पाया, उसको फिर किसी में कहीं कोई गलती नहीं दिखाई पड़ती। और ज्यादा से ज्यादा अगर उसे कुछ दिखाई पड़ता है तो इतना ही दिखाई पड़ता है कि आप बेहोश हो, और बेहोश आदमी को क्या गलत ठहराना। बेहोश आदमी जो भी करता है, गलत होता है, लेकिन होश वाला आदमी बेहोश आदमी को क्या गलत ठहराए!।
बहुत मजेदार घटनाएं घटती हैं, और होश वाले आदमियों ने अपने संस्मरण नहीं लिखे, वे लिखें तो बड़े अदभुत होंगे। बेहोश आदमियों के बीच जीना होश वाले आदमी को इतना स्ट्रेंज मामला है, इतना विचित्र है, लेकिन किसी ने अपना संस्मरण लिखाया नहीं क्योंकि आप उस पर भरोसा न कर सकेंगे कि ऐसा हो सकता है। ऐसे ही जैसे आपको एक पागलखाने में बंद कर दिया जाए और आप पागल न हों, तब जो जो घटनाएं आपके जीवन में घटेंगी उनसे विचित्र घटनाएं कहीं भी नहीं घट सकतीं। और अगर आप बाहर आकर कहेंगे तो कोई भरोसा नहीं कर सकता कि ऐसा हो सकता है। पागल भरोसा नहीं करेंगे क्योंकि वे पागल हैं। गैर पागल भरोसा नहीं करेंगे क्योंकि उन्हें पागलों का कोई पता नहीं। और आप दोनों हालत में रह लिए, आप पागल नहीं थे और पागलों के बीच में रहे।
एक वृद्ध साधक-सरल, सीधे आदमी हैं। कोई सोच भी नहीं सकता कि उनमें कहीं कोई पर्तें दबी होंगी, सबके भीतर पर्तें दबी हैं। वे गहरे ध्यान में अभी आजोल आश्रम में थे। एक दिन ध्यान में अच्छी गहराई में गए, और गहराई में गए इसीलिए यह घटना घटी, नहीं तो घटती नहीं; अन्यथा सीधा-सादापन था। उन्होंने आनंद मधु को बाहर निकल कर सुबह कहा कि मैं इसी वक्त बंबई जा रहा हूं। मुझे रजनीश की आज ही हत्या कर देनी है। मेरा उनसे इस जन्म में कोई संबंध नहीं, सिवाय इसके कि उन्होंने मुझसे संन्यास लिया है। वह भी एक क्षणभर का मिलना हुआ, इससे ज्यादा कोई संबंध नहीं। पिछले जन्मों को याद करने की मैंने बहुत कोशिश की, कोई याद नहीं पड़ता है कि उनसे मेरा कोई संबंध रहा हो। शांत, सीधे आदमी हैं। समस्त जीवन को छोड़ कर साधना की दिशा में गए, और गहरे गए, इसलिए यह घटना घटी। नहीं तो ऊपर से तो शांत, सीधे हैं। तो क्या हुआ? मधु परेशान हुई। वे एकदम तैयार हैं, हत्या करने जाना है। सामने ही मेरा चित्र रखा था, वह चित्र उसने सामने रख दिया और कहा--पहले इसे फाड़ डालें, पहले इस चित्र की हत्या कर दें फिर आप जाएं। चित्त दूसरे किनारे पर तत्काल चला गया, वे बेहोश होकर गिर पड़े। रोए, पछताए। कुछ किया नहीं है अभी, वह चित्र भी नहीं फाड़ा।
गहरे तल पर कहीं हिंसा का कोई आवरण सबके भीतर है। तो जितने गहरे जाएंगे, उतना हिंसा का आवरण मिलेगा। और हिंसा जब शुद्ध प्रकट होती है तो अकारण प्रकट होती है। अशुद्ध हिंसा है जो कारण खोज कर प्रकट होती है। अकारण मैं कहता हूं जब आप कारण खोज कर क्रोधित होते हैं, तो उसका मतलब है क्रोध अभी बहुत गहरे तल पर नहीं है आपके। जब गहरे तल पर क्रोध होता है, तब आप अकारण क्रोधित होते हैं। अभी तो कारण मिलता है तब क्रोधित होते हैं, तब आप क्रोधित होते हैं इसलिए फौरन कारण खोजते हैं। गहरी पर्तें हैं।
अभी एक युवक मेरे पास अपनी हिंसा पर प्रयोग कर रहा था। अब हर भाव की सात पर्तें होती हैं मनुष्य के भीतर सात शरीरों की पर्तें होती हैं--सेवन बॉडी.ज की, वैसे हर भाव की सात पर्तें होती हैं। ऊपर से गाली दे लेते हैं, ऊपर से पश्चात्ताप कर लेते हैं, इससे कुछ नहीं हो जाता है। भीतर की पर्तें वैसी की वैसी बनी रहती हैं--सुरक्षित। और जितने गहरे उतरते हैं उतने अकारण भाव प्रकट होने शुरू होते हैं। जब गहरी सातवीं पर्त पर पहुंचते हैं तो कोई कारण नहीं रह जाता।
उस युवक को हिंसा ही तकलीफ थी। अपने पिता की हत्या करने का ख्याल है, अपनी मां की हत्या करने का ख्याल है। अब मैं जानता था जो अपनी मां और पिता की हत्या करने के ख्याल से भरा है, अगर वह मेरा शिष्य बना तो मैं फादर इमेज हो जाऊंगा। आज नहीं कल वह मेरी हत्या करने के ख्याल से भरेगा। क्योंकि गुरु को भक्तों ने जब कहा है कि गुरु पिता है और गुरु माता है और गुरु ब्रह्म है, अकारण नहीं कहा है। फादर इमेज, गुरु जो है। जब एक व्यक्ति किसी के चरणों में सिर रखता है और उसे गुरु मान लेता है, तो वही पिता हो गया, वही मां हो गया। लेकिन ध्यान रहे, पिता के प्रति उसके जो ख्याल थे वही अब इस पर

आरोपित होंगे। उसका, जिन्होंने कहा है--तुम पिता हो, तुम माता हो उन्हें कुछ पता नहीं। जब एक आदमी मुझसे आकर कहता है कि आप ही माता, आप ही पिता, आप ही ब्रह्म, आप ही सब कुछ; तब मैं जानता हूं, अब मैं फंसा।
फंसा इसलिए कि अब तक इसकी जितनी भी धारणाएं थीं, अब मेरी तरफ होंगी। इसको कोई भी पता नहीं है। इसलिए मैं कहता हूं--पागलखाने में होने का अनुभव कैसा होता है, इसको कुछ भी पता नहीं। यह तो बहुत सदभाव से कह रहा है, बहुत आनंदभाव से, अहोभाव से। इसमें क्या बुराई हो सकती है। कितनी श्रद्धा से साष्टांग वह युवक मेरे चरणों में पड़ा है और कहता है कि आप ही सब कुछ हैं। लेकिन कल ही वह मुझे सब बता कर के गया है कि वह पिता की हत्या करना चाहता है। मैं जानता हूं आज नहीं कल... । अभी कल मुझे एक मित्र ने आकर खबर दी कि वह कहता है कि मेरी हत्या कर देगा। तो वे घबड़ा गए--जिनको खबर मिली वे। उन्होंने कहा कि यह क्या मामला है, पागलों के बीच रहने का?
एक और मजेदार घटना अभी घट रही है, तो आपको कहूं। एक युवती मेरे पास ध्यान कर रही थी--और यह घटना इतनी महिलाओं को घटी है कि कह देना अच्छा होगा क्योंकि कहीं न कहीं इस संबंध में खबर पहुंचेगी। और पागल आपको कोई खबर दें तो आप भी उतने ही पागल होने से जल्दी भरोसा कर लेते हैं, पकड़ लेते हैं। अब एक महिला दिल्ली में रहती है, वह मुझे वहां से लिखती है कि रात दो बजे, रात आप सशरीर मुझसे संभोग करते हैं, दिल्ली में आकर, ठीक है! दिल्ली में रहती है, इसलिए कोई झंझट नहीं है, इसलिए कोई अड़चन नहीं है।
एक महिला ने मुझे आकर कहा कि मुझे पक्का स्मरण आने लगा है कि मैं पिछले जन्म की आपकी पत्नी हूं। मैंने कहाः होगा, अब इसमें छिपाने जैसी बात नहीं है, बड़े गौरव की बात है। तो जाकर उसने और को बताया, उसने दूसरी महिला को बताया। यह महिला तो ग्रामीण है, ज्यादा समझदार नहीं है, भोली-भाली है। जिसको बताया वह तो यूनिवर्सिटी की ग्रेज्युएट है, पढ़ी लिखी महिला है, बड़े परिवार की है। वह महिला मेरे पास आई और उसने कहा कि यह क्या नासमझी की बात कर रही है, वह औरत। यह नहीं हो सकता, यह बिल्कुल गलत है। तो मैंने कहा कि तुमने ठीक सोचा, उसे समझा देना।
उसने कहाः मैंने उसे समझाया, लेकिन वह मानने को राजी नहीं है। वह कहती
है मुझे पक्का भरोसा है, मुझे स्मरण है। मैंने उसे बहुत समझाया, उस दूसरी स्त्री ने मुझे कहा--लेकिन वह मानने को राजी नहीं है। लेकिन यह बात गलत है, यह प्रचलित नहीं होनी चाहिए। भूल से मैंने एक बात पूछ ली उससे, तो बड़ी मुश्किल हो गई। भूल से मैंने उस स्त्री से पूछा कि मान लो वह मानने को राजी नहीं होती तो तेरा क्या पक्का प्रमाण है कि वह गलत कहती है। वह बोली--इसलिए कि पिछले जन्म में तो मैं आपकी औरत थी। इसलिए दो दो कैसे हो सकती हैं। अब कुछ कहने का मामला ही न रहा, अब बात ही खत्म हो गई। अब इससे बड़ा प्रमाण हो भी क्या सकता है? पागलों के बीच बड़ा मुश्किल है, बड़ा मुश्किल है, अत्यंत कठिन है।
तो मैंने कहा--वह स्त्री तो दिल्ली में है, इसलिए कोई दिक्कत नहीं है। अभी एक अमरीकन लड़की मेरे पास ध्यान कर रही थी दो महीने से। उसने मुझे चार-छह महीने के बाद कहा कि जब आपके पास आकर बैठती हूं, आंखें बंद करती हूं तो मुझे ऐसा लगता है कि आप मुझसे संभोग कर रहे हैं। मैंने कहाः कोई फिकर न करो, संभोग का जो भाव आए, उसको भी भीतर ले जाने की कोशिश करो। वह जो ऊर्जा उठे, उसको भी ऊपर की यात्रा पर ले जाओ। तो उसने मुझसे कहा कि आप मुझे हर दो दिन में कम से कम दस-दस मिनट पास बैठने का मौका दे दें, क्योंकि यह इतना रसपूर्ण है कि संभोग में भी मुझे रस चला गया।
मेरे सामने दो ही विकल्प हैं, या तो मैं उसको इनकार कर दूं, क्योंकि यह खतरा मोल लेना है। लेकिन यह भी मैं देख रहा हूं कि उसको इनकार करना भी गलत है क्योंकि उसे सच में ही परिवर्तन हो रहा है। और अगर संभोग अंतर्मुखी हो जाए तो बड़ी क्रांति घटित होती है।
वह दो महीने मेरे पास प्रयोग करती थी, लेकिन मैंने उससे कहा, ध्यान रखना, इन दो महीने में भूल कर भी शारीरिक संभोग मत करना। वह अपने पति के साथ है। मैंने पूछा कि कितने संभोग करती हो? उसने कहाः सप्ताह में कम से कम दो-तीन, इससे कम में तो नहीं चल सकता। वह पति तो मानने को राजी नहीं है।

तो मैंने कहा कि संभोग चल रहा है, वहां तक तो ठीक है, कल तू गर्भवती हो जाए तो मैं जिम्मेवार न हो जाऊं! यह होने वाला है। उसने कहाः नहीं, यह कैसी बात?
और यही हुआ। अभी कल मुझे किसी ने आकर खबर दी कि उसका पति कहता है कि वह मुझसे गर्भवती हो गई है। ये बड़े मजे की बातें हैं। लेकिन पागलों के बीच जीना भी बड़ा कठिन है। उनके बीच जीना अति कठिन है। इतनी भीड़ है उनकी। पर उनको मैं गलत नहीं कहता। उनको मैं गलत नहीं कहता।
गलत वे नहीं हैं, सिर्फ बेहोश हैं। वे क्या कर रहे हैं, उन्हें पता नहीं है, वे क्या कर रहे हैं, उन्हें पता नहीं। क्या हो रहा है, वह उन्हें पता नहीं। वे क्या प्रोजेक्ट कर रहे हैं, क्या सोच रहे हैं, क्या मान रहे हैं, इसका उन्हें कोई पता नहीं है। तो वे बिल्कुल बेहोश हैं। वह युवती मेरे एक मित्र के घर में ठहरी तो मुझे दूसरे मित्रों ने कहा कि निकलवाओ वहां से। मैंने कहाः यह तो सवाल ही नहीं है। अभी तो वह और मुसीबत में है, उसे वहां से निकलवाना ठीक नहीं है, उसे वहां रहने दो। तकलीफ होगी। उसे वहां रहने दो। किसी ने कहाः पुलिस को दे देना चाहिए। मैंने कहाः यह बिल्कुल पागलपन की बात है। पुलिस क्या करेगी? पुलिस का क्या लेना-देना है उस बात से? अब वह जो युवक कहता फिरता है कि मेरी हत्या कर दें, अगर वह कल मेरी हत्या कर दे तो भी गलत नहीं है। तो भी गलत नहीं है। सिर्फ बेहोश है, सोया हुआ है। और वह सोने में जो भी कर सकता था, कर रहा है।
ध्यान रहे, हमारे चित्त की दो दशाएं हैं--एक सोई हुई चेतना है हमारी और
एक जाग्रत चेतना है। प्रायश्चित्त जाग्रत चेतना का लक्षण है, पश्चात्ताप सोई हुई चेतना का लक्षण है। यह युवक कल आकर मुझसे माफी मांग जाएगा, इसका कोई मतलब नहीं है। आज जो कह रहा है उसका भी कोई मतलब नहीं है, कल यह माफी मांग जाएगा उसका भी कोई मतलब नहीं है। इससे कोई संबंध नहीं है। यह माफी मांगना भी उसी नींद से आ रहा है, यह क्रोध भी उसी नींद से आ रहा है। यह स्त्री गर्भवती समझ रही है मेरे द्वारा हो गई। यह जिस नींद से आ रहा है, कल उसी नींद से कुछ और भी आ सकता है। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। गलत, सही इसमें चुनाव नहीं है, ये सिर्फ सोए हुए लोग हैं। और सोया हुआ आदमी जो कर सकता है, वह कर रहा है।
अभी सोए हुए आदमी के प्रति पश्चात्ताप की शिक्षा से कुछ भी न होगा। इसे स्मरण दिलाना जरूरी है कि यह सवाल नहीं है कि तुम क्या कर रहे हो, सवाल यह है कि तुम क्या हो? तुम भीतर क्या हो, तुम उसी को बाहर फैलाए चले जाते हो। और वही तुम देखने लगते हो। और जितना कोई गहरा उतरेगा उतनी ही अकारण भावनाएं प्रक्षिप्त होती हैं और सजीव और साकार मालूम होने लगती हैं। और जब वह साकार मालूम होने लगती हैं तो फिर ठीक हैं, जो हम देखना चाहते हैं वह हम देख लेते हैं। ध्यान रहे, हम वह नहीं देखते जो है, हम वह देख लेते हैं जो हम देखना चाहते हैं या देख सकते हैं। ध्यान रहे, हम वह नहीं सुनते जो कहा जाता है, हम वह सुन लेते हैं जो हम सुनना चाहते हैं, या हम सुन सकते हैं। हम चुनाव कर रहे हैं। जिंदगी अनंत है, उसमें से हम चुनाव कर रहे हैं। हम भी अनंत हैं, उसमें से भी हम चुनाव कर रहे हैं। कभी हम चुन लेते हैं क्रोध करने की वृत्ति; कभी चुन लेते हैं पश्चात्ताप की वृत्ति, कभी घृणा की, कभी प्रेम की, और हम दोनों हालत में सोए आदमी हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। एक रात जोर से शराबघर के मालिक की टेलीफोन की घंटी बजने लगी--दो बजे रात, गुस्से में परेशान, नींद टूट गई। घंटी उठाई, फोन उठाया। पूछा, कौन है? उसने कहाः मुल्ला नसरुद्दीन। क्या चाहते हो दो बजे रात? उसने कहाः मैं यही पूछना चाहता हूं कि शराब घर खुलेगा कब? व्हेन डू यू ओपन। उसने कहाः यह भी कोई बात है, तू रोज का ग्राहक। दस बजे सुबह खुलता है, यह भी दो बजे रात फोन करके पूछने की कोई जरूरत है? वह गुस्से में फोन पटक कर फिर सो गया।
चार बजे फिर फोन की घंटी बजी। उठाया। कौन है? उसने कहाः मुल्ला नसरुद्दीन। कब तक खोलोगे दरवाजे? मालिक ने कहाः मालूम होता है तू ज्यादा पी गया है या पागल हो गया है। अभी चार ही बजे हैं, दस बजे खुलने वाला है। अगर तू दस बजे आया भी तो तुझे घुसने नहीं दूंगा। आई विल नॉट अलाउ यू इन।
मुल्ला ने कहाः हू वांट्स टु कम इन। आई वांट टु गो आउट। मैं तो भीतर बंद

हूं। और खोलो जल्दी, नहीं तो मैं पीता चला जा रहा हूं। अभी तो मुझे पता चल रहा है कि बाहर भीतर में फर्क है। थोड़ी देर में वह भी पता नहीं चलेगा। अभी तो मुझे फोन नंबर याद है। थोड़ी देर में वह भी नहीं रहेगा। अभी तो मैं बता सकता हूं, मैं मुल्ला नसरुद्दीन हूं। थोड़ी देर में वह भी नहीं बता सकूंगा। जल्दी खोलो।
हम सब ऐसी तंद्रा में हैं, जहां पता भी नहीं चलता कि बाहर क्या है, भीतर क्या है। मैं कौन हूं, यह भी पता नहीं चलता। कहां जाना चाह रहे हैं, यह भी पता नहीं चलता। कहां से आ रहे हैं, यह भी पता नहीं चलता। क्या प्रयोजन है, किसलिए जी रहे हैं? कुछ पता नहीं चलता है। एक बेहोशी है--एक गहरी बेहोशी। उस बेहोशी में हाथ पैर मारे चले जाते हैं। उस हाथ पैर मारने को हम कर्म कहते हैं। कभी किसी को गलत लग जाता है तो माफी मांग लेते हैं; कभी किसी को लगने से कोई प्रसन्न हो जाता है तो कहते हैं--प्रेम कर रहे हैं। कभी लग जाता है, चोट खा जाता है, वह आदमी नाराज हो जाता है तो कह देते हैं-- माफ करना, गलती हो गई। हाथ वही है, अंधेरे में मारे जा रहे हैं। कभी ठीक, कभी गलत, ऐसा लगता मालूम पड़ता है, लेकिन हाथ बेहोश हैं, वे सदा ही गलत हैं। प्रायश्चित्त में उतरना हो तो जान लेना कि मैं गलत हूं; मैं सोया हुआ हूं। गलत का मतलब, सोया हुआ हूं, बेहोश हूं। मुझे कुछ भी पता नहीं है कि मेरे पैर कहां पड़ रहे हैं, क्यों पड़ रहे हैं। आ पको पता है, आप क्या कर रहे हैं? कभी एक दफा झकझोर कर अपने को खड़े होकर आपने सोचा है दो मिनट कि क्या कर रहे हैं इस जिंदगी में आप? यह क्या हो रहा है आपसे? इसीलिए आए हैं? यही है अर्थ? अगर जोर से झकझोरा तो एक सेकेंड के लिए आपको लगेगा कि सारी जिंदगी व्यर्थ मालूम पड़ती है।
प्रायश्चित्त में वही उतर सकता है जो अपने को झकझोर कर पूछ सके कि क्या है अर्थ? इस जिंदगी का मतलब क्या है जो मैं जी रहा हूं? यह सुबह से शाम तक का चक्कर; यह क्रोध और घृणा का चक्कर; यह प्रेम और घृणा का चक्कर; यह क्षमा और दुश्मनी का चक्कर यह सब क्या है? यह धन और यह यश और यह अहंकार और यह पद और मर्यादा, यह सब क्या है? इसमें कोई अर्थ है? कि मैंने जो कुछ भी किया है इसमें मैं किसी तरफ बढ़ रहा हूं, कहीं पहुंच रहा हूं? कोई यात्रा हो रही है? कोई मंजिल करीब आती मालूम पड़ रही है? या मैं चक्कर की तरफ घूम रहा हूं? इन छह बाह्य-तपों के बाद यह आसान हो जाएगा। संलीनता के बाद यह आसान हो जाता है कि जब आपकी शक्ति आपके भीतर बैठ गई है, तब आप झकझोर सकते हैं और पूछ सकते हैं उसको जगा कर कि यह मैं क्या कर रहा हूं? यह ठीक है? यही है? यह कर लेने से मैं तृप्त हो जाऊंगा, संतुष्ट हो जाऊंगा?
आप मर जाएंगे, आपको लगता है--जब तक जीते हैं--बड़ी जगह खाली हो जाएगी। कितने काम बंद हो जाएंगे! कितना विराट चक्कर आप चला रहे थे, लेकिन कब्रिस्तान भरे पड़े हुए हैं, ऐसे लोगों से जो सोचते थे कि उनके बिना दुनिया न चलेगी। दुनिया ही न चलेगी, सब शांत, चांद सूरज सब रुक जाएंगे। मुल्ला नसरुद्दीन को किसी ने पूछा है कि अगर दुनिया मिट जाए तो तुम्हारा क्या ख्याल है? तो उसने पूछा कि कौन सी दुनिया? दो तरह से दुनिया मिटती है। उस आदमी ने कहा, हद हो गई! यह कोई नया सिद्धांत निकाला है तुमने? दुनिया एक ही तरह से मिट सकती है। नसरुद्दीन ने कहाः दो तरह से मिटेगी--एक दिन, जिस दिन मैं मरूंगा, दुनिया मिटेगी। और एक दुनिया मिट जाए, वह दूसरा ढंग है।
हम सब यही सोच रहे हैं कि जिस दिन मैं मरूंगा, दुनिया मिट जाएगी।
मुल्ला मर गया, उसे लोग कब्र में विदा करके वापस लौट रहे हैं। तो रास्ते पर एक अजनबी मिला है और उस अजनबी ने पूछा कि वॉट वा.ज द कम्पलेंट? मर गया नसरुद्दीन, तकलीफ क्या थी? शिकायत क्या थी? जिस आदमी से पूछा, उसने कहाः देयर वा.ज नो कंप्लेंट, देयर इ.ज नो कंप्लेंट। एवरीवन इ.ज कंप्लीटली, थारोली सैटिस्फाइड। कोई शिकायत नहीं है। सब संतुष्ट हैं। मर गया, अच्छा हुआ। गांव का उपद्रव छूटा।
नसरुद्दीन ऐसा नहीं सोच सकता था कभी। वह तो कह रहा था, एक दफा दुनिया
तब मरेगी, जब मैं मरूंगा। प्रलय तो हो गई असली, जिस दिन मैं मर गया।

हम सब जो कर रहे हैं, सोच रहे हैं, उस करने में कोई बड़ा भारी प्राण है, कोई बहुत बड़ा अर्थ है--पानी पर लकीरें खींच रहे हैं और सोच रहे हैं; रेत पर नाम लिख रहे हैं और सोच रहे हैं; का गजों के महल बना रहे हैं और सोच रहे हैं। खो जाते हैं आप किसी को पता भी नहीं चलता कि कब खो गए। मिट जाते हैं आप किसी को पता भी नहीं चलता कि कब मिट गए। संलीनता के बाद साधक अपने भीतर रुककर पूछे कि मैं जो कर रहा हूं इसका कोई भी अर्थ है? मैं जो हूं इसका कोई अर्थ है? मैं कल मिट जाऊंगा, एवरीवन विल बी कंप्लीटली सैटिस्फाइड, सब लोग संतुष्ट होंगे।
एक दफा दिल्ली में एक सर्कस के दो शेर छूट गए। भागे तो रास्ते पर साथ छूट गया। सात दिन बाद मिले तो एक तो सात दिन से भूखा था, बहुत परेशान था, एक पुलिया के नीचे छिपा रहा था। कुछ नहीं मिला उसको, खाने को भी कुछ नहीं मिला, परेशान हो गया। और छिपे-छिपे जान निकल गई। दूसरा लेकिन तगड़ा, स्वस्थ दिखाई पड़ रहा था, मजबूत दिखाई पड़ रहा था। पहले सिंह ने पूछा कि मैं तो बड़ी मुसीबत में दिन गुजार रहा हूं। किसी तरह सर्कस वापस पहुंच जाऊं, इसका ही रास्ता खोज रहा हूं। वह रास्ता भी नहीं मिल रहा है। मर गए, सात दिन भूखे रहे। तुम तो बड़े प्रसन्न, ताजे और स्वस्थ दिखाई पड़ रहे हो। कहां छिपे रहे? उसने कहाः मैं तो पार्लियामेंट हाउस में छिपा था।
खतरनाक जगह तुम गए? वहां इतना पुलिस का पहरा है, वहां भोजन कैसे मिला? उसने कहाः "मैं रोज एक मिनिस्टर को प्राप्त करता रहा।
यह तो बहुत डेंजरस काम है। फंस जाओगे।
तो उसने कहा कि नहीं, जैसे ही मिनिस्टर नदारद होता है, एवरीवन इ.ज कंप्लीटली सैटिस्फाइड। कोई झंझट नहीं होती है। नो वन लिसिन्स हिम। कोई कभी भी अनुभव नहीं करता। वह जगह इतनी बढ़िया है कि वहां जितने लोग हैं, किसी को भी प्राप्त कर जाओ, बाकी लोग प्रसन्न होते हैं। तुम भी वहीं चले चलो। वहां अपने दो क्या पूरे सर्कस के सब शेर आ जाएं तो भी भोजन है और काफी दिन तक रहेगा क्योंकि भोजन खुद पार्लियामेंट हाउस में आने को उत्सुक है, पूरे मुल्क से भोजन आता ही रहेगा। इधर हम कितना ही कम करें, भोजन खुद उत्सुक है। खर्च करके परेशानी उठा कर आता रहेगा। भोजन, उनके लिए भोजन ही है जिनको आप एम.पी. वगैरह कहते हैं। भोजन हैं। पार्लियामेंट हाउस में तस्वीरें लटक रही हैं उन सब लोगों की जो सोचते हैं उनके बिना दुनिया रुक जाएगी, चांद-तारे गति बंद कर देंगे। कुछ नहीं रुकता। कुछ पता ही नहीं चलता इस जगत में आप कब खो जाते हैं।
निश्चित ही आपके किए हुए का कोई भी मूल्य नहीं है, जिसका पता चलता हो।
पर दूसरे के लिए मूल्य हो या न हो, यह पूछना साधक के लिए जरूरी है कि मेरे लिए कोई मूल्य है? यह जो कुछ भी कर रहा हूं, इसकी क्या आंतरिक अर्थवत्ता है? वॉट इ.ज इट्स इनर सिग्नीफिकेंस? इसकी महत्ता और गरिमा क्या है भीतर? यह ख्याल आ जाए तो आप प्रायश्चित्त की दुनिया में प्रवेश करेंगे। प्रायश्चित्त की दुनिया क्या है, यह मैं आपसे कहूं। प्रायश्चित्त की दुनिया यह है कि मैं जैसा भी हूं, सोया हुआ हूं, मैं अपने को जगाने का निर्णय लेता हूं। प्रायश्चित्त जागरण का संकल्प है। पश्चात्ताप, सोए में की गई गलतियों का सोए में ही क्षमा याचना है, क्षमा मांगना है। प्रायश्चित्त सोए हुए व्यक्तित्व को जगाने का निर्णय है, संकल्प है। मैंने जो भी किया है आज तक, वह गलत था क्योंकि मैं गलत हूं। अब मैं अपने को बदलता हूं--कर्मों को नहीं, एक्शन को नहीं, बीइंग को। अब मैं अपने को बदलता हूं, अब मैं दूसरा होने की कोशिश करता हूं। क्या प्रायश्चित्त का यह अर्थ आपके ख्याल में आता है? यह ख्याल में आए तो आप साधक बन जाएंगे। यह ख्याल में न आए तो आप साधारण गृहस्थ होंगे। पश्चात्ताप करते रहेंगे और वही काम दोहराते रहेंगे।
मुल्ला नसरुद्दीन के घर के लोगों ने यह देख कर कि इसके तर्क बड़े पागल होते जा रहे हैं, कुछ अजीब बातें कहता है। कहता है लॉजिकल, कहता तर्कयुक्त है। पागल का भी अपना लाजिक होता है। ध्यान रहे, कई दफे तो पागल बड़े लॉजिशियन होते हैं। बड़े तर्कयुक्त होते हैं। अगर आपने किसी पागल से तर्क किया है तो एक बात पक्की है--एक बात पक्की है कि आप उसे कनविंस न कर पाएंगे।

इस बात की संभावना है कि वह आपको कनविंस कर ले। मगर इसकी कोई संभावना नहीं कि आप उसको कनविंस कर पाएं। क्योंकि पागल का तर्क एब्सल्यूट होता है, पूर्ण होता है।
मुल्ला के तर्क ऐसे होते जा रहे हैं कि घर के लोग, मित्र, परेशान हो गए हैं। एक दिन मुल्ला गांव के धर्मशास्त्री से बात कर रहा है। धर्मशास्त्री ने कहाः कोई सत्य ऐसा नहीं है जिसे हम पूर्णता से घोषणा कर सकें। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि जो आप कह रहे हैं क्या यह पूर्ण सत्य है? उसने कहाः निश्चित, डेफिनेटली। मुल्ला ने कहाः सब गड़बड़ हो गया। आप यह कह रहे हैं--"किसी सत्य को हम पूर्णता से घोषित नहीं कर सकते और अब आप ही कह रहे हैं--"यह सत्य पूर्ण है"।
मुल्ला को मनोचिकित्सक के पास ले जाया गया क्योंकि गांवभर परेशान हो गया है उसके तर्कों से। मनोचिकित्सक ने सालभर इलाज किया। कहते हैं कि साल भर में मुल्ला ठीक हो गया। जिस दिन मुल्ला ठीक हुआ, मनोचिकित्सक ने बड़ी खुशी मनाई। और उसने कहाः आज तुम ठीक हो गए हो, यह मेरी बड़ी सफलता है क्योंकि तुम जैसे आदमी को ठीक करना असंभव कार्य था। इस जिंदगी में किसी को ठीक न किया तो चलेगा। चलो इस खुशी में हम बाहर चलें--फूल खिले हैं, पक्षी गीत गा रहे हैं, सूरज निकला है, सुबह सुंदर है--इस खुशी में हम थोड़ा पहाड़ की तरफ चलें।
वे दोनों पहाड़ की तरफ गए। मुल्ला हांफने लगा, और चिकित्सक है कि भागा चला जा रहा है तेजी से। आखिर मुल्ला ने कहा कि रुको भई। बहुत हो गया। अगर हमारा दिमाग खराब होता तो हम तुम्हारे साथ दौड़ भी लेते। लेकिन अब ठीक हो गया हूं। तुम्हीं कहते हो, तो अब इतना ज्यादा नहीं। तो उस चिकित्सक ने कहाः मील के पत्थर को देखो, कितने दूर आए। अभी कोई ज्यादा दूर नहीं आए। मुल्ला ने देखा और कहाः दस मील। उस चिकित्सक ने कहाः इट इ.ज नॉट सो बैड। टु ईच इट कम्स टु ओनली फाइव माइल्स। पांच मील हमको, पांच मील तुमको। लौटने में ज्यादा दिक्कत नहीं है। मतलब यह है कि नसरुद्दीन तो ठीक हो गए, साल भर में चिकित्सक पागल हो गया। दस मील है लौटना, कोई हर्जा नहीं, पांच-पांच मील पड़ता है एक-एक के हिस्से में। ज्यादा बुरा नहीं है।
पागल को राजी करना मुश्किल है। संभावना यही है कि पागल आपको राजी कर ले। क्योंकि पागल पूरा अपनी तरफ तर्क का जाल बनाकर रखता है। री.जन्स नहीं हैं वे, रेशनेलाइजेशन हैं, तर्काभास हैं। तर्क नहीं हैं वे, तर्काभास हैं।
लेकिन वह बना कर रखता है।
रूजवेल्ट की पत्नी ने एक संस्मरण लिखा है, इलनौर रूजवेल्ट ने। रूजवेल्ट राष्ट्रपति हुआ उसके पहले गवर्नर था अमरीका के एक राज्य में। गवर्नर की पत्नी होने की हैसियत से इलनौर रूजवेल्ट एक दिन पागलखाने के निरीक्षण को गई। एक आदमी ने दरवाजे पर उसका स्वागत किया। उसने समझा कि वह सुपरिन्टेंडेंट है। वह आदमी उसे ले गया। उसने तीन घंटे पागलखाने के एक-एक पागल के संबंध में जो केस, हिस्ट्री, जो ब्योरा दिया, विवरण दिया, इलनौर हैरान हो गई। उसने चलते वक्त उससे कहा कि तुम आश्चर्यजनक हो--तुम्हारी जानकारी, पागलपन के संबंध में तुम्हारा अनुभव, तुम्हारा अध्ययन। तुम जितने बुद्धिमान आदमी से मैं कभी मिली नहीं।
उस आदमी ने कहाः माफ करिए, आप कुछ गलती में हैं। आई एम नॉट ए सुपरिन्टेंडेंट, आई एम वन ऑफ इन्मेट्स। मैं कोई सुपरिन्टेंडेंट नहीं। सुपरिन्टेंडेंट आज बाहर गया है। मैं तो इसी पागलखाने में एक पागल हूं। इलनौर ने कहाः तुम और पागल! तुम जैसा स्वस्थ आदमी मैंने नहीं देखा। किसने तुम्हें पागल किया है?
उसने कहाः यही तो मैं समझा रहा हूं, आज सात साल हो गए समझाते, लेकिन कोई सुनता नहीं। कोई मानने को राजी नहीं। अब कोई पागल कहे, मैं पागल नहीं, कौन मानने को राजी है। सुपरिन्टेंडेंट कहता है कि सभी पागल यही कहते हैं कि हम पागल नहीं हैं। इसमें क्या खास बात है?
रूजवेल्ट की पत्नी ने कहाः यह तो बहुत बुरा मामला है। तुम घबड़ाओ मत, मैं जाकर गवर्नर को आज ही कहूंगी, कल ही तुम्हारी छुट्टी हो जाएगी। तुम

एकदम स्वस्थ आदमी हो साधारण नहीं, असाधारण रूप से बुद्धिमान आदमी हो।
तुमको कौन पागल कहता है? अगर तुम पागल हो तो हम सब पागल हैं।
पागल ने कहाः यही तो मैं समझाता हूं, लेकिन कोई मानता नहीं।
इलनौर ने कहा कि तुम बिल्कुल बेफिकर रहो। मैं आज ही जाकर बात करती हूं। कल सुबह ही तुम मुक्त हो जाओगे। नमस्कार करके, धन्यवाद देकर इलनौर मुड़ी, उस पागल ने उचक कर जोर से लात मारी इलनौर की पीठ पर। सात-आठ सीढ़ियां वह नीचे धड़ाम से जाकर गिरी। बहुत घबड़ा कर उठी।
उसने कहाः तुमने यह क्या किया? यह तुमने किया क्या?
उस पागल ने कहाः जस्ट टु रिमाइंड यू। भूल मत जाना। गवर्नर को कह देना
कि कल सुबह... जस्ट टु रिमाइंड यू।
मगर वह तीन घंटे पर पानी फिर गया। तो तीन घंटे जो वह बोल रहा था, उसमें क्या वह ठीक बोल सकता है? सवाल यह है। क्या उस तीन घंटे में वह ठीक बोल सकता है? नहीं, वह ठीक बोलने का सिर्फ आभास पैदा कर सकता है--आभास, फैलिसी। तर्काभास पैदा कर सकता है। लेकिन असलियत यह नहीं हो सकती कि जो वह बोल रहा है वह ठीक हो। ऐसा दिखाई पड़ सकता है कि बिल्कुल ठीक है। आप पकड़ न पाएं कि उसमें गलती कहां है, यह दूसरी बात है। लेकिन कोई न कोई घड़ी वह प्रकट कर देगा।
सोया हुआ आदमी भी इसी तरह कर रहा है। दिनभर बिल्कुल ठीक है, जरा क्रोध नहीं कर रहा है। अचानक एक रसीद कर देता है चांटा अपने लड़के को कि तू देर से क्यों आया? आप नहीं समझते, आप कहते हैं यह आदमी बिल्कुल ठीक है, बाकी वक्त तो ठीक ही रहता है। यह इसका चांटा बताता है कि बाकी वक्त यह सिर्फ तर्काभास पैदा करता है। यह ठीक नहीं रहता, यह ठीक रह नहीं सकता। क्योंकि उस ठीक आदमी से जो यह निकल रहा है, यह निकल नहीं सकता। एक आदमी एकदम छाती में छुरा मार देता है, किसी को हम कहते हैं कल तक बिल्कुल भला आदमी था--एकदम भला आदमी था। माना कि बिल्कुल भला था, लेकिन वह आभास था। सोया हुआ आदमी अच्छे का सिर्फ आभास पैदा करता है। बुरा होना उसकी नियति है। वह उससे प्रकट होगा ही। क्षण दो क्षण रोक सकता है, इधर-उधर डांवाडोल कर सकता है, लेकिन वह उससे प्रकट होगा ही।
क्या आपको पता है कि आप अपने को पूरे वक्त सम्हाल कर चलते हैं? जो आपके भीतर है उसको दबा कर चलते हैं? जो आप कहना चाहते हैं वह नहीं कहते, कुछ और कहते हैं। जो आप बताना चाहते हैं नहीं बताते, कुछ और बताते हैं। लेकिन कभी- कभी वह उभर जाता है। हवा का कोई झोंका और कपड़ा उठ जाता है, भीतर जो है वह दिख जाता है, कोई परिस्थिति। तब आप कहते हैं, यह कर्म की भूल है, परिस्थिति की नहीं। परिस्थिति ने तो केवल अवसर दिया है कि आपके भीतर जो आप छिपा-छिपा कर चल रहे थे वह प्रकट हो गया।
प्रायश्चित तब शुरू होगा जब आप जैसे हैं, अपने को वैसा जानें। छिपाएं मत, ढांके मत, तो आप पाएंगे, आप उबलते हुए लावा हैं, ज्वालामुखी हैं। ये सब बहाने हैं आपके, ये टीम-टाम हैं। ये ऊपर से चिपकाए हुए पलस्तर हैं, ये बहुत पतले हैं। यह सिर्फ दिखावा है। इस दिखावे के भीतर जो आप हैं, उसको आप स्वीकार करें।
प्रायश्चित्त का पहला सूत्र--जो आप हैं--बुरे भले, निंदा-योग्य, पापी, बेईमान--एक्सेप्ट इट। आप ऐसे हैं। तथ्य की स्वीकृति प्रायश्चित्त है। तथ्य गलती से हो गया, इसको पोंछ देना पश्चात्ताप है। तथ्य हुआ, होता ही है मुझसे; जैसा मैं आदमी हूं, यही मुझसे होता--इसकी स्वीकृति प्रायश्चित्त का प्रारंभ है। स्वीकार, और पूर्ण स्वीकार, कहीं भी कोई चुनाव नहीं। क्योंकि चुनाव आपने किया तो आप बदलते रहेंगे। आज यह, कल वह, परसों वह, आपकी बदलाहट जारी रहेगी। प्रायश्चित्त पूर्ण स्वीकार है, मैं ऐसा हूं। मैं चोर हूं, तो मैं चोर हूं। मैं बेईमान हूं तो मैं बेईमान हूं। नहीं जरूरत है कि आप घोषणा करने जाएं कि मैं बेईमान हूं क्योंकि अक्सर ऐसा होता है कि अगर आप घोषणा करें कि मैं बेईमान हूं तो लोग समझेंगे कि बड़े ईमानदार हैं। मुझे लोगों ने भगवान कहना शुरू किया। मैं चुप रहा बहुत दिन तक, मैंने सोचा कि मैं कहूं कि भगवान नहीं हूं तो उनका और पक्का भरोसा बैठ जाएगा कि यही तो लक्षण है भगवान का, कि वह इनकार करे। वह इनकार करे कि मैं नहीं हूं।

हमारा मन बड़ा अजीब है। अगर आपको किसी को सच में ही बेईमानी करके धोखा देना हो तो आप पहले उसको बता दें कि मैं बहुत बुरा आदमी हूं, मैं बहुत बेईमान हूं। वह आप पर ज्यादा भरोसा करेगा, आप बेईमानी ज्यादा आसानी से कर सकेंगे। और जब आप घोषणा करते हैं कि बेईमान हूं तब देखना कि इसमें कोई रस तो नहीं आ रहा है, क्योंकि दूसरे के सामने घोषणा में इसमें भी रस आ सकता है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि लियो टाल्सटाय ने अपनी आत्म-कथा में जितने पाप लिखे हैं, उतने उसने किए नहीं थे। उसमें बहुत से पाप कल्पित हैं, जो उसने घोषणा करने के लिए लिखे। किए नहीं थे, आप सोच सकते हैं? पुण्यों की कोई घोषणा करे कि मैंने इतना दान किया तो आप कहेंगे कि यह घोषणा हो सकती है। लेकिन कोई कहे कि मैंने इतनी चोरी की, यह भी घोषणा हो सकती है? कोई ऐसा करेगा? आपने कभी सोचा है कि कोई अपने पाप की भी चर्चा करेगा, इतने जोर से? नहीं, पापी करते हैं। लेकिन टाल्सटाय जैसे लोग नहीं करते। जेलखाने में आप जाइए, जिसने दस रुपये की चोरी की है, वह कहता है दस लाख का डाका डाला। क्योंकि दस की भी कोई चोरी करने का मतलब है? तो दस के ही चोर हैं! यह कोई मतलब नहीं है।
एक कैदी कारागृह में प्रविष्ट हुआ। दूसरे कैदी ने, जो वहां सींखचों
से टिक कर बैठा था, उसने कहा--कितने दिन की सजा? उसने कहा कि चालीस साल की सजा। तो उसने कहा कि तू दरवाजे के पास बैठ। हम दीवार के पास रहेंगे। पहले आदमी ने पूछा, क्यों? उसने कहाः हमको पचहत्तर साल की सजा मिली है। तो तेरा मौका पहले आएगा निकलने का। सिक्खड़ मालूम पड़ता है। चालीस साल की कुल! छोटा- मोटा काम किया! हमको पचहत्तर साल की सजा है। हम दीवाल के पास रहेंगे, तू दरवाजे के पास। तेरा मौका निकलने का पहले आएगा। चालीस साल ही का तो मामला है। हमको और आगे पैंतीस साल रहना है। इसका मतलब है कि उन्होंने मास्टरी सिद्ध कर दी कि अब तू इस कमरे में शिष्य बन कर रह।
तो जेलखानों में तो घोषणा चलती है। लेकिन यह कभी ख्याल नहीं आता साधारणतः कि साधु-संतों ने भी जितने पापों की चर्चा की है, उतने वस्तुतः किए हैं। या पाप की घोषणा में भी रस हो सकता है?
मनोवैज्ञानिक कहते हैं--रस हो सकता है। इस हिसाब से हिसाब नहीं लगाए
गए हैं कभी। गांधी की आत्मकथा का कभी न कभी मनोविषण होना चाहिए कि उन्होंने जितने पापों की अपने बचपन में बात की है उतने किए? या उसमें कुछ कल्पित हैं। जरूरी नहीं है कि वे झूठ बोल रहे हैं। आदमी का मन ऐसा है कि वह मान रहा हो कि जो वह कह रहा है, उसने किया, वह जरूरी नहीं है। तो वह जानकर लिख रहे हों कि यह मैंने किया नहीं और लिख रहा हूं। नहीं, बहुत बार दोहरा- दोहरा कर उनको भी रस आ गया हो और लगता हो, किया है। आप बहुत सी ऐसी स्मृतियां बनाए हुए हैं जो आपने कभी की नहीं, जो कभी हुआ नहीं। लेकिन आपने भरोसा कर लिया है, मान कर बैठ गए हैं और धीरे-धीरे राजी हो गए हैं। लियो टाल्सटाय ने इतने पाप नहीं किए ऐसा मनस्विदों का कहना है, पर उसने घोषणा की है।
नहीं तो मैं यह नहीं कह रहा कि प्रायश्चित्त करने वाला घोषणा करे जाकर कि मैं पापी हूं। क्योंकि घोषणा में भी खतरा है। नहीं, प्रायश्चित्त करने वाला अपने ही समझ स्वीकार करे कि मैं ऐसा हूं। किसी के सामने कहने की जरूरत नहीं। इसलिए दूसरा फर्क आपको बताता हूं।
पश्चात्ताप दूसरे के सामने प्रकट करना पड़ता है, प्रायश्चित्त स्वयं
के समक्ष। पश्चात्ताप स्वयं के समक्ष करने का तो कोई मतलब नहीं। क्योंकि किसी को गाली तो दी दूसरे के समक्ष और क्षमा मांग लिया अपने मन में। इसका क्या मतलब है। जब गाली देने दूसरे के पास गए थे तो क्षमा मांगने दूसरे के पास जाना पड़ेगा। कर्म तो दूसरे से संबंधित होता है इसलिए पश्चात्ताप दूसरे से संबंधित होगा। लेकिन आपकी सत्ता तो किसी से संबंधित नहीं, आपसे ही संबंधित है। उसकी घोषणा दूसरे के सामने करना अनावश्यक है। और उसमें रस लें तो खतरा है। अपने ही समक्ष--प्रायश्चित्त अपने समक्ष, अपने ही समक्ष उघाड़ कर देखना है अपनी पूरी नग्नता को कि मैं क्या हूं।
और ध्यान रखें, दूसरे के समक्ष सदा डर है बदलाहट करने का, कुछ और बता देने का। इसलिए कोई भी आदमी सच्ची डायरी नहीं लिख पाता। भला वह दूसरे को

पढ़ने के लिए न लिख रहा हो, लेकिन फिर भी कोई भी आदमी सच्ची डायरी नहीं लिख पाता, क्योंकि दूसरा पढ़ सकता है, इसकी संभावना तो सदा ही बनी रहती है। इसलिए सब डायरीज फाल्स होती हैं, झूठ होती हैं। अगर आपने डायरी लिखी है तो आप भलीभांति जानते हैं उसमें आप कितना छोड़ देते हैं जो लिखा जाना चाहिए था; कितना जोड़ देते हैं, जो नहीं था; कितना सम्हाल देते हैं, जैसे कि बात नहीं थी। लेकिन यह भी हो सकता है, इससे उलटा भी हो सकता है कि जो पाप बहुत छोटा था, उसको आप बहुत बड़ा करके लिखें। अगर आपको पाप की घोषणा करनी है। तो वह भी हो सकता है।
अगस्टीन की किताब कनफेशन संदिग्ध है कि उसमें उसने जो लिखा है, सब हुआ हो। पाप की भी सीमा है। पाप भी आप असीम नहीं कर सकते, पाप की भी सीमा है। और आदमी की सामर्थ्य है पाप करने की। यह आदमी पाप से भी ऊब जाता है और उसका भी सेच्युरेशन पॉइंट है। वहां भी शक्ति रिक्त हो जाती है और आदमी लौट पड़ता है। लेकिन दूसरे का ख्याल हो अगर मन में तो रद्दोबदल का डर है, वह आपका सोया हुआ मन कुछ कर सकता है। इसलिए प्रायश्चित्त है स्वयं के समक्ष। इसका दूसरे से कोई भी लेना-देना नहीं है।
और ध्यान रहे, महावीर प्रायश्चित्त को इतना मूल्य दे पाए, क्योंकि परमात्मा को उन्होंने कोई जगह नहीं दी; नहीं तो पश्चात्ताप ही रह जाता, प्रायश्चित्त नहीं हो सकता था। क्योंकि जब परमात्मा देखने वाला मौजूद है--देन इ.ज इ.ज आलवेज फार सम वन एल्स। चाहे आदमी के लिए न भी हो, लेकिन जब एक ईसाई फकीर एकांत में भी कह रहा है कि हे प्रभु! मेरे पाप हैं ये, तो दूसरा मौजूद है, दि अदर इ.ज प्रेजेंट। वह परमात्मा ही सही, लेकिन दूसरे की मौजूदगी है। महावीर कहते हैं--कोई परमात्मा नहीं है जिसके समक्ष तुम प्रकट कर रहे हो, तुम ही हो। महावीर ने व्यक्ति को इतना ज्यादा स्वयं की नियति निर्णीत किया है, जिसका हिसाब नहीं। तुम ही हो, कोई नहीं, कोई आकाश में सुनने वाला नहीं जिससे तुम कहो कि मेरे पाप क्षमा कर देना। कोई क्षमा करेगा नहीं, कोई है नहीं। चिल्लाना मत, घोषणा से कुछ भी न होगा। दया की भिक्षा मत मांगना, क्योंकि कोई दया नहीं हो सकती। कोई दया करने वाला नहीं है।
प्रायश्चित्त--नहीं, दूसरे के समक्ष नहीं, अपने ही समक्ष अपने नरक की स्वीकृति है। और जब पूर्ण स्वीकृति होती है भीतर, तो उस पूर्ण स्वीकृति से ही रूपांतरण शुरू हो जाता है। यह बहुत कठिन मालूम पड़ेगा कि पूर्ण स्वीकृति से क्यों शुरू हो जाता है? जैसे ही कोई व्यक्ति अपने को पूरा स्वीकार करता है--उसकी पुरानी इमेज, उसकी पुरानी प्रतिमा खंड-खंड होकर गिर जाती है, राख हो जाती है। और अब वह जैसा अपने को पाता है, ऐसा अपने को क्षण भर भी देख नहीं सकता, बदलेगा ही और उपाय नहीं है। जैसे घर में आग लग गई हो और पता चल गया कि आग लग गई, तब आप यह न कहेंगे कि अब हम सोचेंगे, बाहर निकलना है कि नहीं। तब आप यह न कहेंगे कि गुरु खोजेंगे, कि मार्ग क्या है? तब आप यह न कहेंगे कि पहले बाहर कुछ है भी पाने योग्य कि हम घर छोड़ कर निकल जाएं और बाहर भी कुछ न मिले। ये सब उस आदमी की बातें हैं जिसके मन में कहीं न कहीं ख्याल बना है कि घर में कोई आग नहीं लगी। एक बार दिख जाएं लपटें चारों तरफ, आदमी बाहर हो जाता है। जंप, छलांग लग जाती है।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी का आपरेशन हुआ। तो जब उसे आपरेशन की टेबल
पर लिटाया गया तो खिड़कियों के बाहर वृक्षों में फूल खिले हुए हैं, इंद्रधनुष फैला हुआ है। जब उसका आपरेशन हो गया और उसके मुंह से कपड़ा उठाया गया तो उसने देखा कि सब पर्दे बंद हैं, खिड़कियां, द्वार-दरवाजे बंद हैं, तो उसने मुल्ला से पूछा कि सुंदर सुबह थी, क्या सांझ हो गई या रात हो गई? इतनी देर लग गई? मुल्ला ने कहाः रात नहीं हुई है, पांच मिनट हुआ। तो उसने कहाः ये दरवाजे क्यों बंद हैं? तो मुल्ला ने कहाः बाहर के मकान में आग लग गई है। और हम डरे कि अगर कहीं तू होश में आए और एकदम देखे आग लगी, तो समझे कि नरक में पहुंच गए हैं। इसलिए हमने खिड़कियां बंद कर दीं कि नरक में आग जलती रहती है तो तू कहीं यह न सोच ले कि मर गए, खत्म। कभी ऐसा हो जाता है कि सोच लिया कि मर गए तो आदमी मर भी जाता है। तो मुल्ला ने कहाः यह मैंने बंद की हैं खिड़कियां, और मकान में आग लग गई है बाहर।

मुल्ला के खुद के जीवन में ऐसा घटा कि वह बेहोश हो गया और लोगों ने समझा कि मर गया। उसकी अरथी बांध ही रहे थे कि वह होश में आ गया। लोगों ने कहाः अरे, तुम मरे नहीं! मुल्ला ने कहाः मैं मरा नहीं, और जितनी देर तुम समझ रहे थे कि मैं मर गया, उतनी देर भी मैं मरा हुआ नहीं था। मुझे पता था कि मैं जिंदा हूं। तो उन्होंने कहाः तुम बिल्कुल बेहोश थे, तुम्हें पता कैसे हो सकता है। क्या तुम्हें पता था? क्या प्रमाण तुम्हारे भीतर था कि तुम जिंदा हो? उसने कहाः प्रमाण यह था कि मैं भूखा था, मुझे भूख लगी थी। अगर स्वर्ग में पहुंच गया होता तो कल्पवृक्ष के नीचे भूख खत्म हो गई होती। और पैर में मुझे ठंडक लग रही थी। अगर नरक में पहुंच गया होता तो वहां ठंडक कहां है, और दो ही जगहें हैं जाने को। मुझे पता था कि मैं जिंदा हूं।
मुल्ला के गांव का एक नास्तिक मर गया--वह अकेला नास्तिक था। वह मर गया
तो मुल्ला उसको बिदा करने गया। वह लेटा हुआ है। सूट सुंदर उसे पहना दिया गया था, टाई-वाई बांध दी गई थी--सब बिल्कुल तैयार। मुल्ला ने बड़े दुख से कहा, पुअर मैन! थारोली ड्रेस्ड एण्ड नो व्हेअर टु गो? नास्तिक था, न नरक जा सकता था, न स्वर्ग। क्योंकि मानता ही नहीं। तो मुल्ला ने कहाः इतने बिल्कुल तैयार लेटे हो, गरीब बेचारा और जाना उसको कहीं भी नहीं है।
वह जो हमारे भीतर आग है, नरक है, जहां हम खड़े ही हैं। नरक जाने को जगह नहीं है कोई, वहां हम खड़े हुए हैं, वह हमारी
स्थिति है। स्वर्ग कोई स्थान नहीं है। इसलिए महावीर पहले आदमी हैं इस पृथ्वी पर जिन्होंने कहा कि स्वर्ग और नरक मनोदशाएं हैं, माइंड स्टेट्स हैं, चित्त-दशाएं हैं। मोक्ष कोई स्थान नहीं है इसलिए महावीर ने कहा कि वह स्थान के बाहर है--बियांड स्पेस। वह कोई स्थान नहीं है, वह सिर्फ एक अवस्था है। लेकिन जहां हम खड़े हैं, वह नरक है। इस नरक की प्रतीति जितनी स्पष्ट हो जाए उतने आप प्रायश्चित्त में उतरेंगे। और जितनी प्रगाढ़--इंटेंस हो जाए, कि आग जलने लगे आपके चारों तरफ तो छलांग लग जाएगी। और रूपांतरण शुरू हो जाएगा।
उस छलांग के पांच सूत्र हम कल से धीरे-धीरे शुरू करेंगे। यह पहला सूत्र है और ठीक से समझ लेना जरूरी है। संलीनता जैसे अंतिम सूत्र है बाह्य-तप का, और कीमती है, उसके बाद ही प्रायश्चित्त हो सकता है। प्रायश्चित्त बहुत कीमती है क्योंकि वह पहला सूत्र है अंतर-तप का। अगर आप प्रायश्चित्त नहीं कर सकते तो अंतर-तप में कोई प्रवेश नहीं है, वह द्वार है।

आज इतना ही।
रुकें पांच मिनट, कीर्तन करें... !

महावीर-वाणी, भाग 1
पंद्रहवां प्रवचन

विनयः परिणति निर-अहंकारिता की (धम्म-सूत्र)

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मे सया मणो।।

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

अंतर-तप की दूसरी सीढ़ी है, विनय। प्रायश्चित्त के बाद ही विनय के पैदा होने की संभावना है। क्योंकि जब तक मन देखता रहता है दूसरे के दोष, तब तक विनय पैदा नहीं हो सकती। जब तक मनुष्य सोचता है कि मुझे छोड़ कर शेष सब गलत हैं, तब तक विनय पैदा नहीं हो सकती। विनय तो पैदा तभी हो सकती है जब अहंकार दूसरों के दोष देख कर अपने को भरना बंद कर दे। इसे हम ऐसा समझें कि अहंकार का भोजन है दूसरों के दोष देखना। वह अहंकार का भोजन है। इसलिए यह नहीं हो सकता है कि आप दूसरों के दोष देखते चले जाएं और अहंकार विसर्जित हो जाए। क्योंकि एक तरफ आप भोजन दिए चले जाते हैं और दूसरी तरफ अहंकार को विसर्जित करना चाहते हैं, यह न हो सकेगा। इसलिए महावीर ने बहुत वैज्ञानिक क्रम रखा है--प्रायश्चित्त पहले, क्योंकि प्रायश्चित्त के साथ ही अहंकार को भोजन मिलना बंद हो जाता है।
वस्तुतः हम दूसरे के दोष देखते ही क्यों हैं? शायद इसे आपने कभी ठीक
से न सोचा होगा कि हमें दूसरों के दोष देखने में इतना रस क्यों है? असल में दूसरों का दोष हम देखते ही इसलिए हैं कि दूसरों का दोष जितना दिखाई पड़े, हम उतने ही निर्दोष मालूम पड़ते हैं। ज्यादा दिखाई पड़े दूसरे का दोष तो हम ज्यादा निर्दोष मालूम पड़ते हैं। उस पृष्ठभूमि में, जहां दूसरे दोषी होते हैं हम अपने को निर्दोष देख पाते हैं। अगर दूसरे निर्दोष दिखाई पड़ें तो हम दोषी दिखाई पड़ने लगेंगे। तो हम दूसरों की शक्लें जितनी काली रंग सकते हैं, उतनी रंग देते हैं। उनकी काली रंगी शक्लों के बीच हम गौर वर्ण मालूम पड़ते हैं। अगर दूसरों के पास गौर वर्ण हो--सबके पास, तो, हम सहज ही काले दिखाई पड़ने लगेंगे।
दूसरे को दोषी देखने का जो आंतरिक रस है वह स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने की असफल चेष्टा है; क्योंकि निर्दोष कोई अपने को सिद्ध नहीं कर सकता। निर्दोष कोई हो सकता है, सिद्ध नहीं कर सकता। सच तो यह है कि सिद्ध करने की कोशिश में ही निर्दोष न होना छिपा है। निर्दोषता--सिद्ध करने की कोशिश भी नहीं है। कोई यदि आपको किसी के संबंध में कोई पुण्य खबर दे तो मानने का मन नहीं होता। कोई आपसे कहे कि दूसरा व्यक्ति बहुत सज्जन, भला, साधु है तो मानने का मन नहीं होता। मन एक भीतरी रेसिस्टेंस, एक भीतरी प्रतिरोध करता है। मन भीतर से कहता--ऐसा हो नहीं सकता। इस भीतर की लहर पर थोड़ा ध्यान करें, अन्यथा विनय कभी उपलब्ध न होगी।
जब कोई किसी दूसरे की शुभ चर्चा करता है तो मन मानने को नहीं होता। भीतर एक लहर कंपित होती है और कहती है कि प्रमाण क्या है कि दूसरा सज्जन है, साधु है? वह प्रमाण की तलाश इसलिए है ताकि अप्रमाणित किया जा सके कि दूसरा साधु नहीं, सज्जन नहीं। लेकिन कभी आपने इसके विपरीत बात देखी है? अगर कोई किसी के संबंध में निंदा करे तो आपका मन एकदम मानने को आतुर होता है। आप निंदा के लिए प्रमाण नहीं पूछते हैं। अगर कोई आदमी कहे कि फलां आदमी ब्रह्मचारी है; तो आप पूछते हैं--प्रमाण क्या है? लेकिन कोई आदमी कहे फलां आदमी व्यभिचारी है; आपने प्रमाण पूछा है? नहीं, फिर तो कोई जरूरत नहीं रह जाती प्रमाण की। कहना पर्याप्त है। किसी ने कहा तो पर्याप्त है।

और ध्यान रहे, अगर कोई कहे कि दूसरा आदमी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध है तो
आप बड़े मन को मसोस कर मान सकते हैं, प्रसन्नता से नहीं। और जब आप दूसरे को कहेंगे, तो जितने जोर से उसने कहा था उस जोर में कमी आ जाएगी। तीन चार आदमियों में यात्रा करते-करते वह ब्रह्मचर्य खो जाएगा। लेकिन अगर किसी ने कहा--फलां आदमी व्यभिचारी है तो जब आप दूसरे से कहते हैं, तो आपने ख्याल किया है--आप कितना गुणित करते हैं उसे? कितना मल्टीप्लाय करते हैं? जितना रस उसने लिया था, उससे दुगुना रस आप दूसरे को सुना कर लेते हैं। पांच आदमियों तक पहुंचते-पहुंचते पता चलेगा कि उससे ज्यादा व्यभिचारी आदमी दुनिया में कभी पैदा नहीं हुआ था। पांच आदमियों के बीच पाप इतनी बड़ी यात्रा कर लेगा।
इस मन के आंतरिक रस को देखना, समझना जरूरी है। तो विनय की साधना का पहला सूत्र तो है कि हमारे अहंकार के सहारे क्या हैं? हम किस सहारे से अविनीत बने रहते हैं? वे सहारे न गिरे तो विनय उत्पन्न नहीं होगा। निंदा में रस मालूम होता है, स्तुति में पीड़ा मालूम होती है। और इसलिए अगर आपको किसी मजबूरी में किसी की स्तुति करनी पड़ती है तो आप बहुत शीघ्र उसके सामने से हट कर, तत्काल कहीं जाकर उसकी निंदा करके बैंक-बैलेंस बराबर कर लेते हैं। देर नहीं लगती। संतुलन पर ला देते हैं तराजू को बहुत शीघ्र। जब तक संतुलन न आ जाए तब तक मन को चैन नहीं पड़ता। लेकिन इससे उलटा इतने आसानी से नहीं होता। जब आप किसी को गालियां देकर जाते हैं तो तत्काल आप संतुलन स्थापित नहीं करते कि कहीं जाकर उसके गुणों की भी चर्चा कर लें। मन की सहज इच्छा यह है कि दूसरे निदिंत हों। तो दूसरों के दोष तो हम हजारों मील से देख पाते हैं, अपना दोष इतने निकट रह कर भी नहीं देख पाते।
मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने गांव के मेयर को कई बार फोन किया, एक स्त्री बहुत अभद्र व्यवहार कर रही है मेरे साथ। अपनी खिड़की में इस भांति खड़ी होती है कि उसकी मुद्राएं आमंत्रण देती हैं, और कभी-कभी अर्धनग्न भी वह खिड़की से दिखाई पड़ती है। इसे रोका जाना चाहिए। यह समाज की नीति पर हमला है। कई बार फोन किया तो मेयर मुल्ला के घर आया।
मुल्ला अपनी चौथी मंजिल पर ले गया, खिड़की के पास कहा--देखिए, वह सामने
का मकान, उसी में वह स्त्री रहती है। मकान नदी के उस पार कोई आधा मील दूर था। उस मेयर ने कहाः वह स्त्री उस मकान में रहती है और उस मकान की खिड़कियों से आपको टेम्पटेशंस पैदा करती है? उधर से आपको उकसाती है? यहां से तो खिड़की भी ठीक से नहीं दिखाई पड़ रही, वह स्त्री कैसे दिखाई पड़ती होगी? मुल्ला ने कहाः ठहरो--उसके देखने का ढंग--स्टूल पर चढ़ो, यह दूरबीन हाथ में लो, तब दिखाई पड़ेगी। लेकिन दोष उस स्त्री का ही है जो आधा मील दूर है!
और फिर एक दिन ऐसा भी हुआ कि मुल्ला ने अपने गांव के मनोचिकित्सक के दरवाजे को खटखटाया। भीतर गया, पूरा नग्न था।
मनोचिकित्सक भी चौंका। नीचे से ऊपर तक देखा।
मुल्ला ने कहा कि मैं यही पूछने आया हूं और वही भूल आप कर रहे हैं। मैं सड़कों पर से निकलता हूं तो लोग न मालूम पागल हो गए हैं, मुझे घूर-घूर कर देखते हैं। ऐसी क्या मुझमें कमी है या ऐसी क्या भूल है कि लोग जिससे मुझे घूर-घूर कर देखते हैं। मनोवैज्ञानिक खुद ही घूर-घूर कर देख रहा था, क्योंकि मुल्ला निपट नग्न खड़ा था। मुल्ला ने कहाः यह पूरा गांव पागल हो गया है, मालूम पड़ता है। जहां से भी निकलता हूं, वहीं लोग घूर-घूर कर देखते हैं। आपका विश्लेषण क्या है?
मनोवैज्ञानिक ने कहाः ऐसा मालूम पड़ता है कि आप अदृश्य वस्त्र पहने हुए हैं, दिखाई न पड़ने वाले वस्त्र पहने हुए हैं। शायद उन्हीं वस्त्रों को देखने के लिए लोग घूर-घूर कर देखते होंगे।
मुल्ला ने कहाः बिल्कुल ठीक है। तुम्हारी फीस क्या है?
मनोवैज्ञानिक ने सोचा ऐसा आदमी, इससे फीस ठीक से ले लेनी चाहिए। उसने
सौ रुपये फीस के बताए।
मुल्ला ने खीसे में हाथ डाला, नोट गिने, दिए। मनोवैज्ञानिक ने कहा लेकिन हाथ में कुछ भी नहीं है।

मुल्ला ने कहाः यह अदृश्य नोट हैं। ये दिखाई नहीं पड़ते। घूर-घूर कर देखो तो दिखाई पड़ सकते हैं।
आदमी खुद नग्न घूमता हो बाजार में तो भी शक होता है कि दूसरे लोग घूर-घूर कर क्यों देखते हैं? और अपने घर से वह दूरबीन लगा कर आधा मील दूर किसी की खिड़की में देख सकता है और कह सकता है कि वह स्त्री मुझे प्रलोभित कर रही है। हम सब ऐसे ही हैं। हम सबका ताल-मेल ऐसा ही है व्यक्तित्व का। तो विनय तो कैसे पैदा होगी? विनय के पैदा होने का कोई उपाय नहीं है। अहंकार ही पैदा होगा। जब कोई किसी की हत्या भी कर देता है तो वह यह नहीं मानता कि हत्या में मैं अपराधी हूं। वह मानता है कि उस आदमी ने ऐसा काम ही किया था कि हत्या करनी पड़ी। दोषी वही है।
मुल्ला ने तीसरी शादी की थी। तीसरी पत्नी घर में आई तो दो बड़ी-बड़ी तस्वीरें देख कर उसने पूछा कि ये तस्वीरें किसकी हैं? मुल्ला ने कहाः मेरी पिछली दो पत्नियों की। मुसलमान घर में तो चार पत्नियां तो हो ही सकती हैं। उसने पूछाः लेकिन वे हैं कहां? मुल्ला ने कहाः अब वे कहां? पहली मर गई मशरूम पाय.जनिंग से। उसने कुकुरमुत्ते खा लिए जो जहरीले थे। उसने पूछा--और दूसरी कहां है? मुल्ला ने कहाः वह भी मर गई। फ्रैक्चर ऑफ दि स्कल, खोपड़ी के टूट जाने से। बट द फाल्ट वा.ज हर। शी वुड नॉट ईट मशरूम्स। भूल उसकी ही थी। मैं कितना ही कहूं वह मशरूम खाने को, वह कुकुरमुत्ते खाने को राजी नहीं होती थी। तो खोपड़ी के टूटने से मर गई। खोपड़ी मुल्ला ने तोड़ी, क्योंकि वह मशरूम नहीं खाती थी। मगर दोष उसका ही था, भूल उसकी ही थी।
भूल सदा दूसरे की है। भूल शब्द ही दूसरे की तरफ तीर बन कर चलता है। वह कभी अपनी होती ही नहीं। और जब अपनी नहीं होती तो विनय का कोई भी कारण नहीं है। तो अहंकार, यह दूसरे की तरफ जाते हुए तीरों के बीच में निश्चिंत खड़ा होता है, बलशाली होता है। सघन होता है।
इसलिए महावीर ने प्रायश्चित्त को पहला अंतर-तप कहा है कि पहले तो यह जान लेना जरूरी होगा कि न केवल मेरे कृत्य गलत हैं बल्कि मैं ही गलत हूं। तीर सब बदल गए, रुख बदल गया। वे दूसरे की तरफ नहीं जाते, अपनी तरफ मुड़ गए। ऐसी स्थिति में हम्बलनेस, विनय को साधा जा सकता है। फिर भी महावीर ने निर-अहंकारिता नहीं कही। महावीर कह सकते थे निर-अहंकार, लेकिन महावीर ने ईगोलेसनेस नहीं कही; कहा विनय। क्योंकि निर-अहंकार नकारात्मक है और उसमें अहंकार की स्वीकृति है। अहंकार को इनकार करने के लिए भी उसका स्वीकार है। और जिसे हमें इनकार करने के लिए भी स्वीकार करना पड़े, उसका इनकार किया नहीं जा सकता। जैसे कोई आदमी यह नहीं कह सकता कि मैं मर गया हूं क्योंकि मैं मर गया हूं, यह कहने के लिए मैं हूं जिंदा, इसे स्वीकार करना पड़ेगा। जैसे कोई आदमी यह नहीं कह सकता कि मैं घर के भीतर नहीं हूं क्योंकि मैं घर के भीतर नहीं हूं, यह कहने के लिए भी मुझे घर के भीतर होना पड़ेगा। निर-अहंकार की साधना में यही भूल होती है कि अहंकारी मैं हूं, यह स्वीकार करना पड़ता है और इस अहंकार को निर-अहंकार में बदलने की कोशिश करनी पड़ती है। बहुत डर तो यही है कि वह अहंकार ही अपने ऊपर निर-अहंकार के वस्त्र ओढ़ लेगा और कहेगा--देखो, मैं निर-अहंकारी हूं। अहंकार है ही कहां मुझमें। अहंकार यह भी कह सकता है कि अहंकार मुझमें नहीं है। तब वह विनय नहीं रह जाती, वह अहंकार का ही एक रूप है--प्रच्छन्न, छिपा हुआ, गुप्त, और पहले प्रकट रूप से ज्यादा खतरनाक है। इसलिए निर-अहंकार नहीं कहा है जानकर; क्योंकि कोई भी अंतर-तप अगर निषेधात्मक रूप से पकड़ा जाए तो सूक्ष्म हो जाएगी वह बीमारी जिसको आप हटाने चले थे, मिटाना कठिन होगा। हां, विनय आ जाए तो आप निर-अहंकारी हो जाएंगे। लेकिन निर-अहंकारी होने की कोशिश अहंकार को नष्ट नहीं कर पाती। अहंकार इतने विनम्र रूप ले सकता है जिसका हिसाब लगाना कठिन है। अहंकार कह सकता है--मैं तो कुछ भी नहीं, आपके पैरों की धूल हूं। और तब भी इस घोषणा में बच सकता है। इसलिए बहुत बारीक और बहुत सूक्ष्म भेद है। विनय है पाजिटिव। महावीर विधायक जोर दे रहे हैं कि आपके भीतर वह अवस्था जन्मे जहां दूसरा दोषी नहीं रह जाता। और जिस क्षण मुझे अपने दोष दिखाई पड़ने शुरू होते हैं, उस क्षण विनय बहुत-बहुत रूपों में बरसती है। एक तो जो व्यक्ति अपने दोष नहीं देखता वह दूसरे के दोष बहुत कठोरता से देखता

है। जिस व्यक्ति को अपने दोष दिखाई पड़ने शुरू होते हैं वह दूसरे के दोषों के प्रति बहुत सदय हो जाता है; क्योंकि वह जानता है, मेरे भीतर भी यही है। सच तो यह है कि जिस आदमी ने चोरी न की हो उस आदमी को चोरी के संबंध में निर्णय का अधिकार नहीं होना चाहिए। क्योंकि वह समझ ही नहीं पाएगा कि चोरी मनुष्य कैसी स्थितियों में कर लेता है। लेकिन हम चोर को कभी चोर का निर्णय करने को न बैठाएंगे। हम उसको बिठाएंगे जिसने कभी चोरी नहीं की है। उससे जो भी होगा वह अन्याय होगा। अन्याय इसलिए होगा कि वह अति कठोर होगा। वह जो सदयता आनी चाहिए--अपने भीतर की कमजोरी को जान कर दूसरे की कमजोरी भी स्वाभाविक है--ऐसा जो सहृदय भाव आना चाहिए वह उसके भीतर नहीं होगा। इसलिए जानकर आप हैरान होंगे कि तथाकथित जिन्हें हम पापी कहते हैं वे ज्यादा सहृदय होते हैं। और जिन्हें हम महात्मा कहते हैं, वे इतने सहृदय नहीं होते। महात्माओं में ऐसी दुष्टता का और ऐसी कठोरता का छिपा हुआ जहर मिलेगा, जैसा कि पापियों में खोजना कठिन है।
यह बहुत उलटा दिखाई पड़ता है, लेकिन इसके पीछे कारण है। यह उलटा नहीं है। पापी दूसरे पापियों के प्रति सदय हो जाता है क्योंकि वह जानता है--मैं ही कमजोर हूं तो मैं किसकी कमजोरी की निंदा करने जाऊं! इसलिए किसी पापी ने दूसरे पापी के लिए नरक का आयोजन नहीं किया। पुण्यात्मा करते हैं। उनका मन नहीं मानता कि उनको छोड़ा जा सके। और इस बात की पूरी संभावना है कि उनके पुण्य करने में रस केवल इतना ही हो कि वे पापियों को नीचा दिखा सकते हैं। अहंकार ऐसे रस लेता है।
तो एक तो जैसे ही तीर अपनी तरफ मुड़ जाते हैं चेतना के, और अपनी भूलें, सहज भूलें दिखाई पड़नी शुरू हो जाती हैं, वैसे ही दूसरे की भूलों के प्रति एक अत्यंत सदय भाव आ जाता है। तब हम जानते हैं कि दूसरे को दोषी कहना व्यर्थ है। इसलिए नहीं कि वह दोषी न होगा या होगा, इसलिए कि दोष इतने स्वाभाविक हैं। मुझमें भी हैं। और जब स्वयं में दोष दिखाई पड़ने शुरू होते हैं तो दूसरों से अपने को श्रेष्ठ मानने का कोई कारण नहीं रह जाता।
लेकिन जैन शास्त्र जो परिभाषा करते हैं विनय की वह बड़ी और है। वे कहते हैं--जो अपने से श्रेष्ठ हैं, उनका आदर विनय है। गुरुजनों का आदर, माता- पिता का आदर, श्रेष्ठ-जनों का आदर, साधुओं का आदर, महाजनों का आदर, लोकमान्य पुरुषों का आदर--इनका आदर विनय है। यह बिल्कुल ही गलत है, यह आमूल गलत है। यह जड़ से गलत है। यह बात ठीक नहीं है। यह इसलिए ठीक नहीं है कि जो व्यक्ति दूसरे को श्रेष्ठ देखेगा वह किसी को अपने से निकृष्ट देखता ही रहेगा। यह असंभव है कि आपको कोई व्यक्ति श्रेष्ठ मालूम पड़े और कोई व्यक्ति ऐसा न मालूम पड़े जो आपसे निकृष्ट है क्योंकि तराजू में एक पलड़ा नहीं होता है।
आप दूसरे को जब तक श्रेष्ठ देख सकते हैं, यू कैन कम्पेयर, आप तुलना कर सकते हैं। आप कहते हैं कि यह आदमी श्रेष्ठ है क्योंकि मैं चोरी करता हूं, यह आदमी चोरी नहीं करता। लेकिन तब आप इस बात को देखने से कैसे बचेंगे कि कोई आदमी आपसे भी ज्यादा चोर हो। आप कह सकते हैं--यह आदमी साधु है, लेकिन तब आप यह देखने से कैसे बचेंगे कि दूसरा आदमी असाधु है। जब तक आप साधु को देख सकते हैं, तब तक असाधु को देखना पड़ेगा। और जब तक आप श्रेष्ठ को देख सकते हैं तब तक अश्रेष्ठ आपकी आंखों में मौजूद रहेगा। तुलना के दो पलड़े होते हैं।
इसलिए मैं नहीं मानता हूं कि महावीर का यह अर्थ है कि अपने से श्रेष्ठजनों को आदर क्योंकि फिर निकृष्टजनों को अनादर देना ही पड़ेगा। यह बहुत मजेदार बात है। यह हमने कभी नहीं सोचा। हम इस तरह सोचते नहीं। और जीवन बहुत जटिल है और हमारा सोचना बहुत बचकाना है। हम कहते हैं श्रेष्ठजनों को आदर। लेकिन निकृष्ट जन फिर दिखाई पड़ेंगे। जब आप सीढ़ियों पर खड़े हो गए तब पक्का मानना, कि आपको जब आपसे आगे कोई सीढ़ी पर दिखाई पड़ेगा तो जो पीछे है वह कैसे दिखाई न पड़ेगा। और अगर पीछे का दिखाई पड़ना बंद हो जाएगा तो जो आपके आगे है, वह आपसे आगे है यह आपको कैसे मालूम पड़ेगा? वह पीछे की तुलना में ही आगे मालूम पड़ता है। अगर दो ही आदमी खड़े हैं तो कौन आगे है, कौन है आगे?

मुल्ला के जीवन में बड़ी प्रीतिकर एक घटना है। कुछ विद्यार्थियों ने आकर मुल्ला को कहा कि कभी चलकर हमारे विद्यापीठ में हमें प्रवचन दो। मुल्ला ने कहाः चलो अभी चलता हूं, क्योंकि कल का क्या भरोसा? और शिष्य बड़ी मुश्किल से मिलते हैं। मुल्ला ने अपना गधा निकाला, जिस पर वह सवारी करता था, लेकिन गधे पर उलटा बैठ गया। बाजार से यह अदभुत शोभा यात्रा निकली। मुल्ला गधे पर उलटा बैठा, विद्यार्थी पीछे।
थोड़ी देर में विद्यार्थी बेचैन होने लगे। क्योंकि सड़क के लोग उत्सुक होने लगे और मुल्ला के साथ-साथ विद्यार्थी भी फंस गए। लोग कहने लगे--यह क्या मामला है? यह किस पागल के पीछे जा रहे हो? तुम्हारा दिमाग खराब है? आखिर एक विद्यार्थी ने हिम्मत जुटा कर कहा कि मुल्ला, यह क्या ढंग है बैठने का? आप कृपा करके सीधे बैठ जाएं। तुम्हारे साथ हमारी भी बदनामी हो रही है।
मुल्ला ने कहाः लेकिन मैं सीधा बैठूंगा तो बड़ी अविनय हो जाएगी।
उसने कहाः कैसे अविनय?
मुल्ला ने कहाः अगर मैं तुम्हारी तरफ पीठ करके बैठूं तो तुम्हारा अपमान होगा, और अगर मैं तुम्हारी तरफ पीठ करके न बैठूं तो तुम मेरे आगे चलो और मेरा गधा पीछे चले तो मेरा अपमान होगा। दिस इ.ज द ओनली वे टु कम्प्रोमाइज। कि मैं गधे पर उलटा बैठूं, तुम्हारे आगे चलूं, हम दोनों के मुंह आमने-सामने रहें। इसमें दोनों की इज्जत की रक्षा है। और लोगों को कहने दो जो कह रहे हैं। हम अपनी इज्जत बचा रहे हैं दोनों।
ये जो हमारी विनय की धारणाएं हैं, श्रेष्ठजन कौन है, आगे कौन चल रहा है, यह निश्चित ही निर्भर करेंगी कि पीछे कौन चल रहा है। और जितना आप अपने श्रेष्ठजन को आदर देंगे, उसी मात्रा में आप अपने से निकृष्ट जन को अनादर देंगे। मात्रा बराबर होगी, क्योंकि जिंदगी प्रति वक्त संतुलन करती है। अन्यथा बेचैनी पैदा हो जाती है। तो जब आप एक साधु खोजेंगे, तो निश्चित रूप से आप एक असाधु को खोजेंगे, और तुलना बराबर हो जाएगी। जब भी आप एक भगवान खोजेंगे, तब आप एक भगवान खोजेंगे जिसकी निंदा आपको अनिवार्य होगी। जो लोग महावीर को भगवान मानते हैं, वे बुद्ध को भगवान नहीं मान सकते; वे कृष्ण को भगवान नहीं मान सकते। जो लोग कृष्ण को भगवान मानते हैं, वे लोग महावीर को, बुद्ध को भगवान नहीं मान सकते। क्यों नहीं मान सकते? नहीं मान सकते इसलिए कि संतुलन करना पड़ता है जिंदगी में। एक को पल्ले पर भगवान रख दिया तो दूसरे को रखना पड़ेगा जो भगवान नहीं है--दूसरे पल्ले पर। तभी संतुलन पूरा होगा
जैन अगर किताबें भी लिखते हैं बुद्ध के बाबत--क्योंकि बुद्ध और महा वीर समकालीन थे और उनकी शिक्षाएं कई अर्थों में समान मालूम पड़ती हैं--तो मैंने अब तक एक हिम्मतवर जैन नहीं देखा जिसने बुद्ध को भगवान लिखने की हिम्मत की हो। अगर साथ-साथ लिखते भी हैं तो वे लिखते हैं--भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध। बड़े मजे की बात है। बहुत हिम्मतवर हैं ये लोग जो महात्मा बुद्ध लिखते हैं। लेकिन उनकी भी हिम्मत नहीं जुट पाती कि वे भगवान बुद्ध कह सकें। भगवान कृष्ण कहना तो बहुत ही मुश्किल मामला है, क्योंकि शिक्षाएं बहुत विपरीत हैं। तो कृष्ण को तो जैनों ने नरक में डाल रखा है। उनके हिसाब से इस समय कृष्ण नरक में हैं। क्योंकि युद्ध इसी आदमी ने करवाया।
और हिंदुओं ने तो महावीर की कोई गणना ही नहीं की, एक किताब में उल्लेख नहीं किया महावीर का। यानी नरक में डालने योग्य भी नहीं माना। आप यह समझना। कोई हिसाब ही नहीं रखा। अगर बौद्धों के ग्रंथ नष्ट हो जाएं तो जैनों के पास अपने ही ग्रंथों के सिवाय महावीर का हिंदुस्तान में कोई उल्लेख नहीं होगा। हिंदुओं ने तो गणना भी नहीं की कि यह आदमी कभी हुआ भी है। इस भांति महावीर जैसा आदमी पैदा हो, हिंदुस्तान में पैदा हो, चारों तरफ हिंदुओं से भरे समाज में पैदा हो और हिंदुओं का एक भी शास्त्र उल्लेख न कर पाए, यह जरा सोचने जैसा मामला है।
इसलिए जब पहली दफा पाश्चात्य विद्वानों ने महावीर पर काम शुरू किया
तो उन्हें शक हुआ कि यह आदमी कभी हुआ नहीं होगा। क्योंकि हिंदुओं के

ग्रंथों में कोई उल्लेख न हो, यह असंभव है। तो उन्होंने सोचा कि शायद यह बुद्ध का ही ख्याल है जैनों को। यह बुद्ध को ही मानने वाले दो तरह के लोग हैं, और बुद्ध और महावीर को वह जो विशेषण दिए गए वह कई जगह समान हैं। जैसे बुद्ध को भी जिन कहा गया है, महावीर को भी जिन--जिसने अपने को जीत लिया। महावीर को भी बुद्ध पुरुष कहा गया है, बुद्ध को भी बुद्ध कहा गया है। तो शायद, यह बुद्ध का ही भ्रम है। इसलिए पश्चिम के विद्वानों ने तो महावीर को मानने से इनकार कर दिया--कर देने का कारण था कि हिंदू बड़ा समाज है। इसमें कहीं कोई खबर ही नहीं कि महावीर हुए!
ध्यान रहे, जैनों को कृष्ण को स्वीकार करना पड़ा--भला नरक में डालना पड़ा हो। अस्वीकार करना मुश्किल था। इतना बड़ा व्यक्ति था, इतने बड़े समाज का आदर और सम्मान था। लेकिन हिंदू चाहें तो निगलेक्ट कर सकते हैं, उपेक्षा कर सकते हैं, कोई जरूरत नहीं है उल्लेख करने की। पर आश्चर्यजनक है यह कि एक को भगवान कोई मान ले तो फिर दूसरे को मानना बड़ा कठिन हो जाता है। कठिनाई यही हो जाती है कि तौल खड़ी हो गई, अब दूसरे को दूसरे पलड़े पर रखना पड़ेगा और संतुलन बराबर बिठाना होगा।
हम सब संतुलन बिठा रहे हैं। हम सब तुलनाएं कर रहे हैं। इसलिए यह आश्चर्यजनक घटना घटती है कि इस पृथ्वी पर इतने--इतने अदभुत लोग पैदा होते हैं, लेकिन उन अदभुत लोगों में से हम एक का ही फायदा उठा पाते हैं--एक का ही, सबका नहीं उठा पाते। सबके हम हकदार हैं। हम बुद्ध के उतने ही वसीयतदार हैं जितने कृष्ण के, जितने मोहम्मद के, जितने क्राइस्ट के, जितने नानक के या कबीर के। लेकिन नहीं, हम वसीयत छोड़ देंगे। हम तो एक के हकदार होंगे, शेष सबको इनकार कर देंगे। हमें इनकार करना पड़ेगा, क्योंकि हम जब स्वीकार करते हैं श्रेष्ठ को, तो हमें किसी को निकृष्ट की जगह रखना पड़ेगा, नहीं तो श्रेष्ठ को तौलने का मापदंड कहां होगा। इससे विनय पैदा नहीं होती।
जो आदमी कहता है कि मैं महावीर के प्रति विनयपूर्ण हूं, लेकिन बुद्ध
के प्रति नहीं, वह समझ ले कि वह विनीत नहीं है। और यह भी अपने अहंकार को भरने का ही एक ढंग है क्योंकि महा वीर से अपने को जोड़ रहा हूं, महावीर भगवान हैं तो मैं भगवान से जुड़ता हूं। और तब दूसरे जो लोग बुद्ध से अपने को जोड़ कर अहंकार को भर रहे हैं, उनके अहंकार से मेरी टक्कर शुरू हो जाती है। तो मुझे अड़चन होने लगती है कि बुद्ध कैसे भगवान हो सकते हैं। क्योंकि अगर बुद्ध भगवान हैं तो बुद्ध को मानने वाले भी श्रेष्ठ हो जाते हैं। भगवान तो सिर्फ महावीर ही हैं, और उनको मानने वाले श्रेष्ठ हैं, आर्य हैं। वे ही नमक हैं इस पृथ्वी पर, बाकी सब फीके हैं। सारी दुनिया में यही पागलपन पैदा होता है। यह हमारे अहंकार से पैदा हुआ रोग है। विनय का यही अर्थ नहीं है कि आप अपने से श्रेष्ठ को आदर दें।
दूसरी बात यह भी ध्यान रखने की है कि अगर श्रेष्ठ है वह आदमी, इसलिए आप आदर देते हैं तो आपके आदर देने में कोई गुण कहां रहा? इसे भी थोड़ा ख्याल में ले लें। अगर एक व्यक्ति श्रेष्ठ है, तो आदर आपको देना पड़ता है, आप देते नहीं। आपका क्या गुण है? देने में आपका क्या रूपांतरण हो रहा है? अगर एक व्यक्ति श्रेष्ठ है तो आपको आदर देना पड़ता है। ध्यान रहे, आदर देना पड़ता है। वह मजबूरी बन जाती है। वह आपका गुण नहीं है। आपका गुण न हो अगर, तो आपका अंतर-तप कैसे होगा? अंतर-तप तो आपके भीतरी गुणों को जगाने की बात है।
अगर मुझे कोहिनूर सुंदर लगता है, तो वह कोहिनूर का सौंदर्य होगा। लेकिन जिस दिन मुझे सौंदर्य कंकड़-पत्थर में भी दिखाई पड़ने लगे उतना ही, जितना कोहिनूर में दिखता है--सड़क पर पड़े हुए पत्थर में भी दिखाई पड़ने लगे, उस दिन अब कोहिनूर का गुण न रहा, अब मेरा गुण हुआ। जिस दिन मुझे सबके प्रति विनय मालूम होने लगे, बिना तौल के, उस दिन गुण मेरा है। और जब तक मैं तौल-तौल कर आदर देता हूं, तब तक मेरा गुण नहीं है, मजबूरी है। जो श्रेष्ठ है उसे आदर देना पड़ता है। श्रेष्ठ को आदर देने के लिए आपको कुछ प्रयास, कोई श्रम, कोई परिवर्तन नहीं करना होता है। वह आ पका तप कैसे हुआ? वह श्रेष्ठ व्यक्ति का भला तप रहा हो कि वह श्रेष्ठ कैसे हुआ, लेकिन आप उसको आदर देते हैं तो वह आपका तप कैसे हुआ, आपकी साधना कैसे हुई? सूरज निकलता है तो आप नमस्कार कर लेते हैं। फूल खिलता है तो आप गीत गा देते हैं। आप इसमें कहां

आते हैं! आपके बिना भी फूल खिल जाता और आपके गीत से कुछ फूल ज्यादा नहीं खिलता और आपके बिना भी सूरज निकल जाता, और आपके नमस्कार से सूरज की चमक नहीं बढ़ती। आपका कहां इसमें मूल्य है? आप इसमें कहां आते हैं? आप इसमें कहीं भी नहीं आते।
मुल्ला नसरुद्दीन मनोवैज्ञानिक से सलाह लेता था, निरंतर। क्योंकि उसे निरंतर चिंताएं, तकलीफें, मन में न मालूम कैसे जाल खड़े हो जाते थे। सबके होते हैं। उसने मनोवैज्ञानिक को जाकर कहा कि मैं बहुत परेशान हूं, मुझे इनफिरियारिटी काम्प्लेक्स है, हीनता की ग्रंथि सताती है। सुल्तान निकलता है रास्ते से तो मुझे लगता है कि मैं हीन हूं। एक महाकवि गांव में आकर गीत गाता है तो मुझे लगता है कि मैं हीन हूं। नगर सेठ की हवेली ऊंची उठती चली जाती है तो मुझे लगता है, मैं हीन हूं। एक तार्किक तर्क करने लगता है तो मुझे लगता है, मैं हीन हूं। मैं इस हीनता की ग्रंथि से मुक्त कैसे होऊं? उस मनोवैज्ञानिक ने कहाः डोंट सफर अननेसेसरिली। यू आर नॉट सफरिंग फ्रॉम इनफिरियारिटी काम्प्लेक्स, यू आर इनफिरियर। उस मनोवैज्ञानिक ने कहाः आपको हीनता की ग्रंथि से परेशानी नहीं हो रही है, आप हीन हैं। इसमें कोई बीमारी नहीं है, यह तथ्य है।
ध्यान रहे, जब आप किसी के सामने तथ्य की तरह हीन होते हैं, तो आ पको आदर देना पड़ता है। यह कोई आप देते नहीं है। अब एक कालिदास शाकुंतल पढ़ता हो और आपको आदर देना पड़े, और एक तानसेन सितार बजाता हो और आपका सिर झुक जाए तो आप इस भूल में मत पड़ना कि आपने आदर दिया है। आपको आदर देना पड़ा है। लेकिन हमारा मन, जहां हमें देना पड़ता है वहां यह मानता है कि हमने दिया है, यह भी अपने अहंकार की पुष्टि है, मैंने दिया है आदर।
तो महावीर यह नहीं कह सकते कि श्रेष्ठजनों के प्रति आदर, क्योंकि वह होता ही है। उसका कोई मूल्य ही नहीं। बिना किसी भेदभाव के आदर, तब विनय पैदा होती है। श्रेष्ठ का सवाल नहीं है--जीवन के प्रति आदर, अस्तित्व के प्रति आदर, जो है उसके प्रति आदर। वह है, यही क्या कम है! एक पत्थर है, एक फूल है, एक सूरज है, एक आदमी है, एक चोर है, एक साधु है, एक बेईमान है--ये हैं। इनका होना ही पर्याप्त है। और इनके प्रति जो आदर है, अगर यह आदर संभव हो जाए तो आपका अंतर-तप है। तब यह गुण आपका है। तब आप परिवर्तित होते हैं। फिर दूसरी बात यह कैसे तय करेंगे कि कौन श्रेष्ठ है। अगर यह जो शास्त्र कहते हैं--श्रेष्ठ, महाजन, गुरुजन कैसे श्रेष्ठ कहेंगे? कौन है गुरु? कौन है गुरु? क्या है उपाय जांचने का आपके पास? कैसे तौलिएगा? क्योंकि अनेक लोग महावीर के पास आकर लौट जाते हैं और कह जाते हैं कि ये गुरु नहीं हैं। अनेक लोग क्राइस्ट को सूली पर लटका देते हैं यह मान कर कि आवारा, लफंगा है। इसको हटाना दुनिया से जरूरी है, नुकसान पहुंचा रहा है। और ध्यान रहे, जिन लोगों ने जीसस को सूली दी थी वे उस समय के भले और श्रेष्ठजन थे--अच्छे लोग थे, न्यायाधीश थे, धर्मगुरु थे, धनपति थे, राजनेता थे। उस समय के जो भले लोग थे उन्होंने ही जीसस को सूली दी थी। और उनकी सूली देना, देने में अगर हम तौलने चले तो वे ठीक ही मालूम पड़ते हैं, क्योंकि जीसस वेश्याओं के घर में ठहर गए थे। अब जो आदमी वेश्याओं के घर में ठहर गया हो वह आदमी श्रेष्ठ कैसे हो सकता है। क्योंकि जीसस शराबघरों में बैठ कर शराबियों से दोस्ती कर लेते थे और जो शराबघरों में बैठता हो, उसका क्या भरोसा? क्योंकि जीसस उन लोगों के घरों में ठहर जाते थे जो बदनाम थे; तो बदनाम आदमियों से जिसकी दोस्ती हो, वह आदमी तो अपने संग-साथ से पहचाना जाता है। जो अंत्यज थे, समाज से बाह्य कर दिए गए थे, उनके बीच भी जीसस की मैत्री थी, निकटता थी। तो यह आदमी भला कैसे था? फिर यह आदमी आती हुई परंपरा का विरोध करता था, मंदिर के पुरोहितों का विरोध करता था। यह कहता था कि जो साधु दिखाई पड़ रहे हैं, ये साधु नहीं हैं। तो यह आदमी भला कैसे था? तो उस समाज के भले लोगों ने इस आदमी को सूली पर लटका दिया, और आज हम जानते हैं कि बात कुछ गड़बड़ हो गई।
सुकरात को जिन लोगों ने जहर दिया था वे समाज के श्रेष्ठजन थे। कोई बुरे लोगों ने जहर नहीं दिया था। अच्छे लोगों ने जहर दिया था। और इसीलिए दिया था कि सुकरात की मौजूदगी समाज की नैतिकता को नष्ट करने का कारण बन

सकती है। क्योंकि सुकरात संदेह पैदा कर रहा था। तो जो भले जन थे वे चिंतित हुए। वे चिंतित हुए कि इससे कहीं नई पीढ़ी नष्ट न हो जाए। तो सुकरात को जहर देने के पहले उन्होंने एक विकल्प दिया था कि सुकरात अगर तुम एथेंस छोड़ कर चले जाओ और व्रत लो कि अब दुबारा एथेंस में प्रवेश नहीं करोगे तो हम तुम्हें मुक्त छोड़ दे सकते हैं। लेकिन हम तुम्हें एथेंस के समाज को नष्ट नहीं करने देंगे। या तुम यह वायदा करो कि तुम अब एथेंस में शिक्षा नहीं दोगे, तो हम तुम्हें एथेंस में ही रहने देंगे। लेकिन तुम अब जबान बंद रखोगे क्योंकि तुम्हारे शब्द नई पीढ़ी को नष्ट कर रहे हैं। जो लोग थे, वे भले थे। स्वभावतः वे नई पीढ़ी के लिए चिंतित थे। सब भले लोग नई पीढ़ी के लिए चिंतित होते हैं। और उनकी चिंता से नई पीढ़ी रुकती नहीं, बिगड़ती ही चली जाती है।
धनी कौन है, श्रेष्ठ कौन है? धन है जिसके पास वह? पांडित्य है जिसके पास वह? यश है जिसके पास वह? तो फिर यश जिस रास्तों से यात्रा करता है उन रास्तों को देखें तो पता चलेगा, यश बहुत अश्रेष्ठ रास्तों से उपलब्ध होता है। लेकिन सफलता सभी अश्रेष्ठताओं को पोंछ डालती है। धन कोई साधु मार्गों से उपलब्ध नहीं होता है। लेकिन उपलब्धि पुराने इतिहास को नया रंग दे देती है। कौन है श्रेष्ठ? समाज उसे श्रेष्ठ कहता है जो समाज के रीति-नियम मानता है। लेकिन इस जगत में जिन लोगों को हम पीछे श्रेष्ठ कहते हैं वे वे ही लोग हैं जो समाज के रीति-नियम तोड़ते हैं। बुद्ध आज श्रेष्ठ हैं, नानक आज श्रेष्ठ हैं, कबीर आज श्रेष्ठ हैं। लेकिन अपने समाज में नहीं थे। क्योंकि वे समाज के रीति-नियम तोड़ रहे थे, वे बगावती थे, वे दुश्मन थे समाज के।
और आज भी जो महावीर को श्रेष्ठ कहता है, अगर कोई बगावती होगा खड़ा तो उसको कहेगा, यह आदमी खतरनाक है। इसलिए मरे हुए तीर्थंकर ही आदृत होते हैं। जीवित हुआ तीर्थंकर को आदृत होना बहुत मुश्किल है। क्योंकि जीवित तीर्थंकर बगावती होता है। मरा हुआ तीर्थंकर मरने की वजह से धीरे-धीरे स्वीकृत हो जाता है। एस्टाब्लिशमेंट का, स्थापित, न्यस्त मूल्यों का, हिस्सा हो जाता है। फिर कोई कठिनाई नहीं रह जाती। अब महावीर से क्या कठिनाई है? महावीर से जरा भी कठिनाई नहीं है।
महावीर नग्न खड़े थे और महावीर के शिष्य कपड़े की दुकानें कर रहे हैं पूरे मुल्क में। कोई कठिनाई नहीं है। महावीर के शिष्य जितना कपड़ा बेचते हैं कोई और नहीं बेचता। मेरे तो एक निकट संबंधी हैं, उनकी दुकान का नाम है, दिगंबर क्लाथ शाप। दिगंबर क्लाथ शॉप? नंगों की कपड़ों की दुकान? महावीर सुनें तो बड़े हैरान होंगे कि और कोई नाम नहीं मिला तुम्हें? अब कोई दिक्कत नहीं, इससे दिक्कत ही नहीं आती कि दिगंबर और क्लाथ शाप में कोई विरोध है। लेकिन अगर महावीर नंगे दुकान के सामने खड़े हो जाएं तो विरोध साफ दिखाई पड़ेगा कि यह आदमी नंगा खड़ा है, हम कपड़े बेच रहे हैं। हम इसके शिष्य हैं, बात क्या है? अगर नग्न होना पुण्य है तो कपड़े बेचना पाप हो जाएगा, क्योंकि दूसरों को कपड़े पहनाना अच्छी बात नहीं है। फिर नाहक उनको पाप में ढकेलना है। नहीं, लेकिन मरे हुए महावीर से बाधा नहीं आती। ख्याल ही नहीं आता। जब मैंने उन्हें याद दिलाया, उन्होंने कहा--आश्चर्य, हम तो तीस साल से यह बोर्ड लगाए हुए हैं और हमें कभी ख्याल ही नहीं आया कि दिगंबर में और कपड़े में कोई विरोध है।
नहीं, ख्याल ही नहीं आता। मुर्दा तीर्थंकर हमारी व्यवस्था में सम्मिलित हो जाता है। हम उसको, उसकी नोकों को झाड़ देते हैं; उसकी बगावत को गिरा देते हैं; शब्दों पर नया रंग पालिश कर देते हैं, फिर वह ठीक है। लेकिन जिसको इतिहास पीछे से श्रेष्ठ कहता है उसका अपना समय उसे हमेशा उपद्रवी कहता है। किसको आदर? फिर श्रेष्ठ को जांचने का मार्ग भी तो कोई नहीं है। महाजन कौन है! महाजनों येन गतः स पंथा--जिस मार्ग पर महाजन जाते हैं, वही मार्ग है।
लेकिन महाजन कौन है? मोहम्मद महाजन हैं? महावीर को मानने वाला कभी नहीं मान पाएगा कि यह आप क्या बात कर रहे हैं। तलवार लिए हुए हाथ में जो आदमी खड़ा है, वह महाजन है? कौन है महा जन? मोहम्मद को मानने वाला कभी न मान पाएगा कि महावीर महाजन हैं। क्योंकि वह कहता है--जो आदमी बुराई के खिलाफ

तलवार भी नहीं उठाता, वह आदमी नपुंसक है, क्लीव है। जब इतनी बुराई चलती है तो तलवार उठनी चाहिए। नहीं तो तुम क्या हो, तुम मुर्दे हो। धर्म तो जीवंत होना चाहिए। धर्म के हाथ में तो तलवार होगी, इसलिए मोहम्मद के हाथ में तलवार है। हालांकि तलवार पर लिखा है "शांति मेरा संदेश है।" इस्लाम का मतलब शांति होता है। इस्लाम शब्द का मतलब शांति होता है। जैनी यह कभी सोच ही नहीं सकता कि इस्लाम और शांति, इनका कोई संबंध है? लेकिन मोहम्मद कहते हैं--जो शांति तलवार की धार नहीं बन सकती, वह बच नहीं सकती। बचेगी कैसे? कौन है श्रेष्ठ? कैसे तौलिएगा? इसलिए हमने तौलने का एक सरल रास्ता निकाला है, जिसमें तौलना नहीं पड़ता। हम जन्म से तौलते हैं। अगर मैं जैन घर में पैदा हुआ तो महावीर श्रेष्ठ; मुसलमान घर में पैदा हुआ तो मोहम्मद श्रेष्ठ। यह तौलने से बचने की तरकीब है। यह ऐसा उपाय खोजना है जिसमें मुझे तौलना ही नहीं पड़ता। अब जन्म तो हो गया, वह नियति बन गई। उससे तुल जाती है बात कि श्रेष्ठ कौन है। आप सब इसी तरह तौल रहे हैं कि कौन श्रेष्ठ है, किसको आदर देना है! जब आप जैन साधु को आदर देते हैं तो आप यह जान कर आदर देते हैं कि वह साधु है या यह जानकर आदर देते हैं कि वह जैन है।
साधु को तौलने का उपाय कहां है? कैसे तौलिएगा? एक मुंहपट्टी निकाल कर अलग कर दे और आदर खत्म हो जाएगा। तो आप किसको आदर दे रहे थे? मुंहपट्टी को या इस आदमी को? मुंहपट्टी वापस लगा ले, पैर आप छूने लगेंगे। मुंहपट्टी नीचे रख दे, आप पछताएंगे कि इस आदमी का पैर क्यों छुआ? मुंहपट्टी नीचे रख दे--अपने मंदिर में, अपने स्थानक में ठहरने न देंगे। मुंह पट्टी लगा ले-- स्वागत! आप मुंहपट्टी को देख रहे हैं कि आदमी को? लगता ऐसा है कि मुंहपट्टी ही असली चीज है। यानी ऐसा नहीं कहना चाहिए, आदमी मुंहपट्टी लगाए हुए है, ऐसा कहना चाहिए कि मुंहपट्टी आदमी को लगाए हुए है। क्योंकि असली चीज मुंहपट्टी है। आखिर में निर्णय वही करती है। आदमी तो निर्णायक है नहीं। अगर बुद्ध भी आ जाएं आपके मंदिर में तो आप उनको उतना आदर नहीं देंगे जितना मुंहपट्टी लगाए हुए एक बुद्धू को देंगे। क्योंकि मुंहपट्टी कहां है?
यह तरकीबें हमने क्यों खोजी हैं? इसका कारण है। क्योंकि कोई मापदंड
का उपाय नहीं है। इनसे हम रास्ता बना लेते हैं। तौलने का कोई उपाय नहीं है, यह आपकी मजबूरी है। यह आदमी की मजबूरी है कि श्रेष्ठ कौन है, इसके लिए कोई तराजू नहीं है। तो हम फिर ऊपरी चिह्न बना लेते हैं, उनसे तौलने में आसानी हो जाती है। पीछे के आदमी की हम बकवास छोड़ देते हैं। हमारे लिए तो निपटारा हो गया कि यह आदमी साधु है, पैर छुओ, घर जाओ, विनय करो।
लेकिन, महावीर इस तरह की बचकानी बात नहीं कह सकते। यह चाइल्डिश है। महावीर यह नहीं कह सकते हैं कि तुम श्रेष्ठ को आदर देना, क्योंकि श्रेष्ठ को आदर कैसे दोगे? श्रेष्ठ कौन हैं, तुम कैसे जानोगे? और जब तुम श्रेष्ठ को जानने जाओगे तो तुम्हें निकृष्ट को जानना पड़ेगा। और जब तुम श्रेष्ठ की परीक्षा करोगे तो तुम कैसे परीक्षा करोगे? उसके सब पापों का हिसाब-किताब रखना पड़ेगा कि रात में पानी तो नहीं पी लेता; कि छिपा कर कुछ खा तो नहीं लेता; कि साबुन की बटिया तो नहीं अपने झोले में दबाए हुए है; टूथपेस्ट तो नहीं करता है; यह सब रखना पड़ेगा पता! यह सब पता रखना पड़ेगा और यह सब पता वही रख सकता है जिसका निंदा में रस हो, जो दूसरे को निकृष्ट सिद्ध करने चला हो। यह वह आदमी नहीं कर सकता जो विनयपूर्ण है। इससे क्या प्रयोजन है उसे कि कौन आदमी टूथपेस्ट रखता है कि नहीं रखता है। इसका चिंतन ही बताता है कि यह जो आदमी सोच रहा है उसमें विनय नहीं है। महावीर यह नहीं कहते।
महावीर यह कहते हैं कि विनय एक आंतरिक गुण है। बाहर से उसका कोई संबंध नहीं है। अनकंडीशनल है, बेशर्त है। वह यह नहीं कहता कि तुम ऐसे होओगे तो मैं आदर दूंगा। वह यह कहता है कि तुम हो, पर्याप्त है। मैं तुम्हें आदर दूंगा क्योंकि आदर आंतरिक गुण है और आदर मनुष्य को अंतरात्मा की तरफ ले जाता है। मैं तुम्हें आदर दूंगा बेशर्त। तुम शराब पीते हो कि नहीं पीते हो, यह सवाल नहीं है; तुम जीवन हो, यह काफी है। और यह पूरा अस्तित्व तुम्हें जिला रहा है। सूरज तुम्हें रोशनी दे रहा है, वह इनकार नहीं करता कि तुम शराब पीते हो। हवाएं आक्सीजन देने से मुकरती नहीं कि तुम बेईमान हो। आकाश

कहता नहीं कि हम तुम्हें जगह नहीं देंगे क्योंकि तुम आदमी अच्छे नहीं हो। जब यह पूरा अस्तित्व तुम्हें स्वीकार करता है तो मैं कौन हूं जो तुम्हें अस्वीकार करूं! तुम हो, इतना काफी है। मैं तुम्हें आदर देता हूं। मैं तुम्हें सम्मान देता हूं।
यह जीवन के प्रति सहज सम्मान का नाम विनय है--अकारण, खोज-बीन के बिना, क्योंकि खोज-बीन हो नहीं सकती। वह जो करता है, वह आदमी विनीत नहीं होता-- बेशर्त। अगर मैं कहूं कि तुम मेरी शर्तें पूरी करो इतनी, तब मैं तुम्हें आदर दूंगा; तो मैं उस आदमी को आदर नहीं दे रहा हूं। मैं अपनी शर्तों को आदर दे रहा हूं। और जो आदमी मेरी शर्तें पूरी करने को राजी हो जाता है वह आदर योग्य नहीं है, वह गुलाम है। वह आदर पाने के लिए ही बेचारा शर्तें पूरी करने को राजी है। हम अपने साधुओं से कहते हैं, तुम ऐसा करो, पैदल चलो, इधर मत जाओ, उधर मत जाओ तो हम तुम्हें आदर देंगे--ये सब अनकही शर्तें हैं। अगर वह उनमें गड़बड़ करता है, आदर विलीन हो जाता है। अगर इनको मान कर चलता है, आदर जारी रहता है। और इसलिए एक दुर्घटना घटती है कि साधुओं में जो प्रतिभा होनी चाहिए वह धीरे-धीरे खो जाती है। और साधुओं की तरफ सिर्फ जड़बुद्धि लोग उत्सुक हो पाते हैं। क्योंकि जड़ बुद्धि ही आपके इतने नियमों को मान सकते हैं, बुद्धिमान आपके इतने नियमों को नहीं मान सकता।
इसीलिए यह दुर्घटना घटती है कि जब भी सच में कोई साधु पुरुष पैदा होता
है तो उसे नया धर्म खड़ा करना पड़ता है क्योंकि कोई पुराने धर्म में उसके लिए जगह नहीं होती। इसका कारण है। अब एक नानक पैदा हो जाए तो उसका नया धर्म अनिवार्यतया खड़ा हो जाता है, क्योंकि कोई पुराना धर्म उसको जगह न देगा; क्योंकि वह कोई के नियम जबरदस्ती इसलिए मानने को राजी न होगा कि आप आदर देंगे। वह कहता है--आदर की क्या जरूरत है? मैं अपने ढंग से जीऊंगा जो मुझे ठीक लगता है। तब उसका ठीक लगना किसी पुराने धर्म को ठीक नहीं लगेगा, क्योंकि पुराने धर्म किन्हीं और लोगों के आस-पास निर्मित हुए हैं, उनके ठीक होने का ढंग और था।
अब मुसलमान सोच ही नहीं सकते कि नानक में भी कोई समझ हो सकती है। वे मर्दाना को बगल में लिए गांव-गांव गीत गाते फिरते हैं। संगीत की दुश्मनी है इस्लाम में। मस्जिद में संगीत प्रवेश नहीं कर सकता। मस्जिद के सामने से नहीं निकल सकता। और यह आदमी मर्दाना को लिए हुए--और जगह-जगह। मर्दाना मुसलमान था जो नानक के साथ साज बजाता था तो मुसलमानों ने उसको भी डिसओन कर दिया क्योंकि यह आदमी कैसा है! मुसलमान हो ही नहीं सकता। संगीत से तो दुश्मनी है।
मोहम्मद के लिए संगीत में कोई रस न रहा होगा। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। यह भी हो सकता है कि मोहम्मद को संगीत के माध्यम से निम्न वासनाएं जगती हुई मालूम हुई होंगी और उन्होंने इनकार कर दिया। लेकिन सभी को ऐसा होता है, यह जरूरी नहीं है। किन्हीं के भीतर संगीत से श्रेष्ठतम का जन्म होना शुरू होता है।
तो मोहम्मद का अपना अनुभव आधार बनेगा। मोहम्मद को सुगंध बहुत पसंद थी। इसलिए मुसलमान अभी भी ईद के दिन बेचारे इत्र एक दूसरे को लगाते देखेंगे। अभी भी सुगंध से मुसलमानों को प्रेम है। वह प्रेम सिर्फ परंपरा है। मोहम्मद को बहुत पसंद है। असल में मोहम्मद, ऐसा मालूम पड़ता है कि सुगंध मोहम्मद को वहीं ले जाती थी, जहां कुछ लोगों को संगीत ले जाता है। सुगंध भी एक इंद्रिय है; जैसा संगीत कान का रस है, वैसे सुगंध नाक का रस है। लेकिन मालूम होता है कि मोहम्मद सुगंध से बड़ी ऊंचाइयों पर उड़ जाते थे। और उनके लिए सुगंध का कोई एसोसिएशन गहरा बन गया होगा।
संभव है, जब पहली दफा उन्हें इलहाम हुआ, जब उन्हें पहली दफा प्रभु की प्रतीति हुई, या प्रभु का संदेश उतरा तब पहाड़ के आस-पास फूल खिले होंगे। सुगंध उसके साथ जुड़ गई होगी। जरूर कोई ऐसी घटना--फिर सुगंध उनके लिए द्वार बन गई। जब वे सुगंध में होंगे, तब वह द्वार खुल जाएगा।
लेकिन यही बात संगीत में हो सकती है, लेकिन यही बात नृत्य में हो सकती है, यही बात अनेक-अनेक रूपों में हो सकती है, पर, मोहम्मद हों तो शायद समझ

भी जाएं, मोहम्मद तो हैं नहीं, वह तो पीछे चलने वाला आदमी है, वह कहता है कि संगीत नहीं बजने देंगे, क्योंकि संगीत इनकार है।
तो फिर नानक को मुसलमान कैसे स्वीकार करें? हिंदू भी स्वीकार नहीं कर सकते नानक को। क्योंकि नानक गृहस्थ हैं। वे संन्यासी नहीं हैं। पत्नी है, घर है, कपड़े भी वे साधारण पहनते हैं--गृहस्थ। गृहस्थ को हिंदू कैसे स्वीकार करें? ज्ञानी तो संन्यासी होता है।
फिर नानक और भी गड़बड़ करते हैं। सभी जानने वाले लोग एक अर्थ में डिस्टर्बिंग होते हैं, क्योंकि पुरानी सब व्यवस्था से वे फिर नये होते हैं। वे गड़बड़ यह करते हैं कि वे काबा भी चले जाते हैं, वे मस्जिद में भी ठहर जाते हैं। तो हिंदू कैसे मानें कि जो आदमी मस्जिद में भी ठहर जाता है, वह आदमी धार्मिक हो सकता है! मंदिर में ही ठहरना चाहिए।
जो विनय श्रेष्ठ की किन्हीं धारणाओं को मानकर चलती है वह सिर्फ अंधी होगी, परंपरागत होगी, रूढ़िगत होगी, वह क्रांतिकारी नहीं होती है। उससे अंतर-आविर्भाव नहीं होता है। अंतर-आविर्भाव जब होता है तो आदर सहज होता है--वह पत्थर के प्रति भी होता है, पौधे के प्रति भी होता है, अस्तित्व के प्रति भी होता है। इससे कोई संबंध नहीं कि वह कौन है और क्या है, कोई शर्त नहीं है। वह है, बस इतना काफी है।
ऐसी विनय की जो स्थिति है वह प्रायश्चित्त के बाद ही सध सकती है। और
सध जाए तो जीवन में आनंद का हिसाब नहीं रह जाता। क्यों? क्योंकि जितना दूसरों का दोष देखते हैं, मन को उतना ही दुख होता है। और जितने दूसरों के दोष देखते हैं उतने ही अपने दोष नहीं दिखते और नहीं दिखने वाले दुश्मन भीतर छिप कर काम तो चौबीस घंटे करते हैं, बहुत दुख पैदा करवाते हैं। जब दूसरे में कोई दोष नहीं दिखता तो दूसरे से दुख आना बंद हो जाता है। जब कोई आदमी मुझ पर क्रोध करता है तो अगर मैं यह नहीं मानता कि यह उसका दोष है, या बुराई है; इतना मानता हूं कि ऐसा उससे घटित हो रहा है, तो फिर मैं उसके क्रोध से दुखी नहीं होता। अगर मैं जा रहा हूं और एक वृक्ष की शाखा मेरे ऊपर गिर जाए तो खड़े होकर वृक्ष को गाली नहीं देता--हालांकि कुछ लोग देते हैं। बिना गाली दिए वे मान ही नहीं सकते, वृक्ष को भी गाली दे देते हैं। पर वे भी मानेंगे गाली देने के बाद कि बेकार थी बात, सिर्फ आदतवश थी। क्योंकि वृक्ष को क्या पता कि मैं निकल रहा हूं, क्या प्रयोजन मुझे मारने का; चोट पहुंचाने का क्या अर्थ है!
वृक्ष को हम गाली नहीं देते क्योंकि हम मान लेते हैं कि वृक्ष को हमसे कोई प्रयोजन नहीं है। शाखा टूटनी थी, हवा का झोंका भारी था, तूफान तेज था, वृक्ष जरा-जीर्ण था, गिर गया, संयोग की बात कि हम नीचे थे। जो आदमी विनयपूर्ण होता है, जब आप उसको गाली देते हैं तब भी वह ऐसा ही मानता है कि मन में उसके क्रोध भरा होगा, परेशान होगा चित्त, जरा-जीर्ण होगा, गाली निकल गई; संयोग की बात कि हम पास थे। और कोई पास होता, किसी और पर निकलती। मगर इससे विनय में कोई बाधा नहीं पड़ती। इससे दुख भी नहीं आता। इससे यह भी नहीं होता कि ऐसा उसने क्यों किया? ऐसा तो तभी होता है जब हम मानते हैं कि उसे कुछ और करना चाहिए था जो उसने नहीं किया।
विनीत आदमी मानता है, वही होता है जो हो रहा है। वही हो सकता है जो हो रहा है--स्वीकार है वह। पर इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। जीसस जुदास के पैर पड़ लेते हैं उसी रात, जिस रात पकड़े जाते हैं। जुदास के पैर पड़ना, जुदास का हाथ लेकर चूमना। कोई पूछता है कि आप यह क्या कर रहे हैं? और आपको पता है और हमें भी थोड़ी-थोड़ी खबर है कि यह आदमी दुश्मनों के साथ मिला है। जीसस कहते हैं--इससे क्या फर्क पड़ता है! यह क्या करेगा और क्या करता है, यह सवाल नहीं है। यह है, यही काफी आनंद है। फिर शायद दुबारा इससे मिलने का मौका न भी मिले। मैं बच जाऊं तो भी न मिले क्योंकि यह आदमी शायद फिर निकट आने का साहस न जुटा पाए। मैं न बचूं, तब तो सवाल नहीं। मैं कल मर जाऊं तो मेरा यह संबंध, और मेरा इसका पैर को छूना इसे याद रहेगा। वह शायद इसके किसी काम पड़ जाए। पर इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि यह क्या करेगा। यह इररिलेवेंट है।
विनय के लिए यह बात असंगत है कि आप क्या करते हैं, आप हैं, इतना काफी है। विनय बेशर्त सम्मान है। श्वीत्जर ने ठीक शब्द उपयोग किया है महावीर

के विनय का। अगर ठीक शब्द हम पकड़ें इस सदी में तो श्वीत्जर से मिलेगा।
श्वीत्जर ने एक किताब लिखी है--रेवरेंस फॉर लाइफ, जीवन के प्रति सम्मान।
तो यह नहीं है कि एक तितली को बचा लेंगे और एक बिच्छू को न बचाएंगे। श्वीत्जर दोनों को बचाने की कोशिश करेगा। माना कि बिच्छू को बचाने में बिच्छू डंक मार सकता है, यह उसका स्वभाव है। इसके कारण सम्मान में कोई अंतर नहीं पड़ता। हम बिच्छू से यह नहीं कहते कि तुम डंक न मारोगे तो ही हम सम्मान देंगे। हम जानते हैं कि बिच्छू का डंक मारना स्वभाव है। वह डंक मार सकता है। श्वीत्जर उसको भी बचाने की कोशिश करेगा; क्योंकि जीवन के प्रति एक सम्मान का भाव है। और जीवन के प्रति सम्मान हो तो आपके दुख असंभव हैं, क्योंकि सब दुख आप शर्तों के कारण लेते हैं। ध्यान रहे सब दुख सशर्त हैं। आपकी कोई शर्त है इसलिए दुख पाते हैं। जिसको कोई शर्त नहीं है वह दुख पाता। दुख का कोई कारण नहीं रह जाता। और जब आप दुख नहीं पाते तो जो आप पाते हैं वही आनंद है।
जीसस ने कहा हैः अपने शत्रुओं को भी प्रेम करो। नीत्शे ने जीसस के इस वक्तव्य पर आलोचना करते हुए लिखा है कि इसका तो मतलब यह हुआ कि आप शत्रु को तो देखते ही हैं; शत्रु को प्रेम करो, शत्रुता तो दिखाई ही पड़ती है शत्रु में। और जब शत्रुता दिखाई पड़ती है तो प्रेम कैसे करोगे? उसका वक्तव्य तर्कपूर्ण है, लेकिन सम्यक नहीं है। नीत्शे जो कह रहा है वह तर्कयुक्त है, फिर भी सत्य नहीं। जीसस अगर उत्तर दे सकें तो वे यही कहेंगे कि माना कि शत्रुता दिखती है, लेकिन फिर भी प्रेम करो क्योंकि शत्रुता जहां दिखती है वह उसका व्यवहार है और जो उसके भीतर छिपा है वह उसका अस्तित्व है। हमारा सम्मान अस्तित्व के लिए है। वह बेशर्त है। माना कि वह गाली दे रहा है, पत्थर मार रहा है, हत्या करने की कोशिश कर रहा है, वह ठीक है। यह वह कर रहा है, यह वह जाने।
इस संबंध में यह भी आपको याद दिला दूं, उपयोगी होगा कि महावीर, बुद्ध
या कृष्ण इन सबकी चिंतना में बहुत-बहुत फासले हैं, बहुत भेद हैं--होंगे ही। जब भी किसी व्यक्ति से सत्य उतरेगा तो वह नये आकार लेता है, उस व्यक्ति के आकार लेता है। निराकार सत्य तो उतर नहीं सकता। जब किसी से उतरता है तो उस व्यक्ति का आकार ले लेता है। लेकिन एक बहुत अदभुत बात है, इस पृथ्वी पर भारत में पैदा हुए समस्त धर्म एक सिद्धांत के मानने में सहमत हैं, वह है कर्म। बाकी सब मामले में भेद है। बड़े-बड़े मामलों में भेद है। परमात्मा है या नहीं? हिंदू कहेंगे, है, जैन कहेंगे, नहीं है। आत्मा है या नहीं? तो जैन और हिंदू कहते हैं, है; बुद्ध कहते हैं, नहीं है। इतने बड़े मामलों में फासला है। लेकिन एक मामले में, जो हमारी नजर में भी नहीं आता और जो इन सबसे ज्यादा कीमती है, इसीलिए उसमें फासला नहीं है। वह सेंट्रल है, केंद्रीय है। परिधि पर झगड़े हो सकते हैं। वह है, कर्म का विचार। उसमें कोई फर्क नहीं है। ये सारे धर्म इस देश में पैदा हुए हैं, कर्म के विचार से राजी हैं। बुद्ध जो आत्मा से नहीं मानते, परमात्मा को नहीं मानते, वे भी कहते हैं, कर्म है। महावीर परमात्मा को नहीं मानते, वे भी कहते हैं, कर्म है। हिंदू परमात्मा को भी मानते हैं, आत्मा को भी मानते हैं, वे भी कहते हैं, कर्म है। यह कर्म की, इस विनय के संदर्भ में एक बात आपको याद दिला देनी जरूरी है
कि जब भी कोई कुछ कर रहा है वह अपने कर्मों के कारण कर रहा है, आपके कारण नहीं। और जो आप कर रहे हैं वह अपने कर्मों के कारण कर रहे हैं, उसके कारण नहीं। अगर यह ख्याल में आ जाए तो वह विनय सहज ही उतर आएगी। एक आदमी गाली दे रहा है, तो दो वजह हो सकती है इसके विषण में। एक आदमी मेरे पास आता है और मुझे गाली देता है तो इसे मैं दो तरह से जोड़ सकता हूं कि या तो वह इसलिए गाली देता है कि वह मुझे गाली देने योग्य आदमी मानता है। गाली को मैं अपने से जोडूं। और एक रास्ता यह है कि आदमी इसलिए गाली देता है कि उसके अतीत के सब कर्मों ने वह स्थिति पैदा कर दी है कि उसमें गाली पैदा होती है। तब मैं अपने से नहीं जोड़ता, उसके कर्मों से जोड़ता हूं।
अगर मैं अपने से जोड़ता हूं तो बहुत मुश्किल है विनय को साधना। कैसे सधेगी? यह आदमी सामने गाली दे रहा है, इसके प्रति मैं कैसे आदर करूं? मन यह कहेगा कि अगर कोई गाली दे, तुम आदर करो तो तुम उसको गाली देने के लिए और

निमंत्रण दे रहे हो। अगर कोई गाली दे और हम उसे आदर करें तो हम उसको और प्रोत्साहन दे रहे हैं। तर्क निरंतर यह कहता है कि हम प्रोत्साहन दे रहे हैं। इससे तो वह और गाली देगा। और यह भी हम मान लें कि हमें गाली देगा तो कोई हर्ज नहीं, लेकिन हमारे प्रोत्साहन से वह दूसरों को भी गाली देगा। क्योंकि आदमी को रस लग जाए और उसे पता चल जाए कि गाली देने से आदर मिलता है तो हमें दें, तब तक भी ठीक, लेकिन वह दूसरों को भी देगा। अगर किसी आदमी को यह पता चल जाए कि यहां मार-पीट करने से लोग सम्मान देते हैं, साष्टांग दंडवत करते हैं तो वह औरों को भी मारेगा तो जिसका जिम्मा भी हम पर आएगा, क्योंकि हम न आदर देते उसे, न वह मानने के लिए उत्सुक होता।
इसलिए तो मोहम्मद कहते हैं कि उसको वहीं ठीक कर दो जो गड़बड़ करे। नहीं
तो अगर तुमने उसको आदर दिया, दूसरा चांटा--गाल उसके सामने कर दिया, वह अपना चांटा कहीं भी घुमाने लगेगा, किसी को भी लगाने लगेगा इसी आशा में कि अब दूसरा चांटा और मिलने का मौका मिलेगा। दूसरा गाल सामने आता होगा। लेकिन कर्म दूसरी तरह से भी जोड़ा जा सकता है; जो न इस्लाम जोड़ सका, न ईसाइयत जोड़ सकी। इसलिए इस्लाम और ईसाइयत में एक बहुत मौलिक आधार की कमी है। बहुत मौलिक आधार की कमी है। और वह कमी है, कर्म के विचार की।
इसलिए जीसस ने इतने प्रेम की बातें कहीं, और इतना अहिंसात्मक उपदेश दिया, लेकिन ईसाइयत ने सिर्फ तलवार चलाई और खून बहाया। खैर, मोहम्मद के मामले में तो यह भी हम कह सकते हैं कि तलवार उनके खुद के हाथ में थी, इसलिये अगर मुसलमानों ने तलवार उठाई तो उसमें एक संगति है। लेकिन जीसस के मामले में तो यह भी नहीं कहा जा सकता। उस आदमी के हाथ में तो कोई तलवार न थी। लेकिन ईसाइयत ने इस्लाम से कम हत्याएं नहीं कीं। इस सारी दुनिया को, पृथ्वी को रंग देने वाले लोग खून से, ईसाइयत और इस्लाम से आए।
बात क्या होगी? भूल क्या होगी? क्या कारण होगा? जीसस जैसा आदमी जिसने इतने प्रेम की बातें कही, उसकी भी परंपरा इतनी उपद्रवी सिद्ध हुई, इसका कारण क्या है? इसका कारण है, न तो जीसस और न मोहम्मद, दोनों में से कोई भी कर्म को व्यक्ति की स्वयं की अंतर-शृंखला से नहीं जोड़ पाया। वहीं भूल हो गई। वह भूल गहरी हो गई। और जितनी दुनिया वैज्ञानिक होती जाएगी उतनी वह भूल साफ दिखाई पड़ेगी।
इसे ऐसा सोचें कि जब भी आप क्रोध करते हैं तो असल में आप दूसरे पर क्रोध नहीं करते। दूसरा सिर्फ निमित्त होता है। आप क्रोध को संगृहीत किए होते हैं अपने ही कर्मों में, अपने ही कल की यात्रा से। वह क्रोध आपके भीतर भरा होता है जैसे कि कुएं में पानी भरा होता है और कोई बाल्टी डाल कर खींच लेता है। कोई गाली डाल कर आपके क्रोध को बाहर निकाल लेता है, बस। वह निमित्त ही बनता है। तो निमित्त पर इतना क्या क्रोध? कुआं क्यों बाल्टी को गाली दे कि तुझमें पानी है। पानी तो कुएं से ही आता है, बाल्टी सिर्फ लेकर बाहर दिखा देती है। तो विनयपूर्ण आदमी धन्यवाद देगा उसको जिसने गाली दी। क्योंकि अगर वह गाली न देता तो अपने भीतर के क्रोध का दर्शन न होता। वह बाल्टी बन गया। उसने क्रोध बाहर निकाल कर बता दिया।
इसलिए कबीर कहते हैं--निंदक नियरे राखिए, आंगन कुटी छवाय। वह जो तुम्हारी निंदा करता हो, उसको तो अपने घर के बगल में ठहरा लेना; क्योंकि वह बाल्टी डालता रहेगा और तुम्हारे भीतर की चीजें निकाल कर तुम्हें बताता रहेगा। अकेले पड़ गए, पता नहीं कुएं में पानी भरा रहे और भूल जाए कुआं कि मुझमें पानी है क्योंकि कुएं को भी पता तभी चलता है जब बाल्टी कुएं से पानी खींचती है। और अगर फूटी बाल्टी हो तो और ज्यादा पता चलता है। निंदक, सब फूटी बाल्टी जैसे ही होते हैं। भयंकर पानी की बौछार कुएं में होने लगती है। तो कुएं को पहली दफा नींद टूटती है और पता चलता है कि क्या हो रहा है। कुआं खुद सोया रहेगा अगर बाल्टी न हो, पता भी न चलेगा।
इसलिए लोग जंगल भागते हैं। वह बाल्टियों से बचने की कोशिश है। लेकिन उससे पानी नष्ट नहीं हो जाएगा, जंगल आप कितना ही भाग जाएं। जंगल के कुएं को कम पता चलता होगा क्योंकि कभी-कभी कोई यात्री बाल्टी डालता होगा। या अगर रास्ता निर्जन हो और कोई न चलता हो तो कुएं को पता ही नहीं चलता होगा कि मेरे भीतर पानी है। ऐसे ही जंगल में बैठे साधु को हो जाता है। कभी कोई

निकलने वाला कुछ गलत-सही बातें कर दे, तो शायद बाल्टी पड़ती है। अगर रास्ता बिल्कुल निर्जन हो... इसलिए साधु निर्जन रास्ता खोजता है, निर्जन स्थान खोज लेता है। अगर इसीलिए खोज रहा है तो गलती कर रहा है। अगर यही कारण है कि मेरे भीतर जो भरा है वह दिखाई न पड़े किसी के कारण, तो गलती कर रहा है, भयंकर गलती कर रहा है।
महावीर कहते हैं कि दूसरा अपने कर्मों कीशृंखला में नया कर्म करता है। तुमसे उसका कोई भी संबंध नहीं है। इतना ही संबंध है कि तुम मौके पर उपस्थित थे और उसके भीतर विस्फोट के लिए निमित्त बने। इस बात को दूसरी तरह भी सोच लेना है कि तुम भी जब किसी के लिए विस्फोट करते हो तब वह भी निमित्त ही है। तुम ही अपनीशृंखला में जीते और चलते हो।
इसे हम ऐसा समझें तो शायद समझना आसान पड़ जाए। दस आदमी एक ही मकान में हैं, एक आदमी बीमार पड़ जाता है, उसे फ्लू पकड़ लेता है। चिकित्सक उससे कहता है कि वायरस है। लेकिन दस आदमी भी घर में हैं, उनमें से नौ को नहीं पकड़ा है। तो चिकित्सक की कहीं बुनियादी भूल तो मालूम पड़ती है। वायरस इसी आदमी को खोजता है, इसका मतलब केवल इतना है कि वायरस निमित्त बन सके, लेकिन इस आदमी के भीतर बीमारी संगृहीत है। नहीं तो बाकी नौ लोगों को वायरस क्यों नहीं पकड़ रहा है? कोई दोस्ती है, कोई दुश्मनी है! बाकी नौ लोगों को नहीं, इस आदमी को क्यों पकड़ लिया? इस आदमी को इसलिए पकड़ लिया है कि इस आदमी के भीतर वह स्थिति है जिसमें वायरस निमित्त बन कर और फ्लू को पैदा कर सकता है। बाकी नौ के भीतर वह स्थिति नहीं है। तो वायरस आता है, चला जाता है। वह उनके भीतर फ्लू पैदा नहीं कर पाता।
तो अब सवाल यह है--फ्लू वायरस पैदा करता है? अगर ऐसा आप देखते हैं तो
आप महावीर को कभी न समझ पाएंगे। महावीर कहते हैं--फ्लू की तैयारी आप करते हैं, वायरस केवल मैनिफेस्ट करता है, प्रकट करता है। तैयारी आप करते हैं, जिम्मेवार आप हैं। जिम्मेवारी सदा मेरी है। आस-पास जो घटित होकर प्रकट होता है वह सिर्फ निमित्त है, उससे क्रोध का कोई कारण नहीं होता। धन्यवाद दिया भी जा सकता है; अनुग्रह माना भी जा सकता है; क्रोध का कोई का रण नहीं रह जाता। और तब आप में अहंकार के खड़े होने की कोई जगह नहीं रह जाती।
ध्यान रहे, जहां क्रोध है, वहां भीतर अहंकार है। और जहां क्रोध नहीं, वहां भीतर अहंकार नहीं है। क्योंकि क्रोध सिर्फ अहंकार के बीच डाली गई बाधाओं से पैदा होता है, और किसी कारण पैदा नहीं होता। अगर आपके अहंकार को तृप्ति मिलती जाए, आप कभी क्रोधी नहीं होते। अगर सारी दुनिया आपके अहंकार को तृप्त करने को राजी हो जाए तो आप कभी क्रोधी न होंगे। आपको पता ही नहीं चलेगा कि क्रोध भी कोई चीज थी। लेकिन अभी कोई आपके मार्ग में बाधा डालने को खड़ा हो जाए, आपको क्रोध प्रकट होने लगेगा। क्रोध जो है, अहंकार अवरुद्ध जब होता है तब पैदा होता है।
लेकिन अब तो क्रोध का कोई कारण ही न रहा। अगर मैं यह मानता हूं कि आप अपने कर्मों से चलते हैं, मैं अपने कर्मों से चलता हूं, हम राह पर कहीं-- कहीं मिलते हैं--किसी क्रास, किसी चौरस्ते पर मुलाकात हो जाती है, लेकिन फिर भी आप अपने से ही बोलते हैं, मैं अपने से ही बोलता हूं। मैं अपने से ही व्यवहार करता हूं, आप अपने से ही व्यवहार करते हैं। कहीं प्रकट जगत में हमारे व्यवहार एक दूसरे से तालमेल खा जाते हैं। पर वह सिर्फ निमित्त है। उसके लिए किसी को जिम्मेवार ठहराने का कोई कारण नहीं, तो फिर क्रोध का भी कोई कारण नहीं। और क्रोध का कोई कारण न हो तो अहंकार बिखर जाता है, सघन नहीं हो पाता है।
विनय बड़ी वैज्ञानिक प्रक्रिया है। दोष दूसरे में नहीं है, दूसरा मेरे दुख का कारण नहीं है। दूसरा श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ नहीं है। दूसरे से मैं कोई तुलना नहीं करता। दूसरे पर मैं कोई शर्त नहीं बांधता कि इस शर्त को पूरा करोगे तो मेरा आदर, मेरा प्रेम तुम्हें मिलेगा, सम्मान मिलेगा। मैं बेशर्त जीवन को सम्मान देता हूं। और प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्म से चल रहा है। तो अगर मुझसे कोई भूल होती है तो मैं अपने भीतर अपने कर्म कीशृंखला में खोजूं। अगर दूसरे से कोई भूल होती है तो यह उसका काम है इससे मेरा कोई भी संबंध नहीं है। अगर एक आदमी मेरी छाती में आकर छुरा भोंक जाता

है, तो भी यह कर्म उसका है, इससे मेरा कोई भी संबंध नहीं है। छाती में छुरा जरूर मेरे भुंक जाता है लेकिन इससे मेरा फिर भी कोई संबंध नहीं है। यह काम उसका ही है, वही जाने। वही इसके फल पाएगा, नहीं पाएगा, यह उसकी बात है। यह मेरा काम ही नहीं है, इससे मेरा कोई संबंध नहीं है।
महावीर इतना जरूर कहते हैं कि अगर यह मेरी छाती में छुरा भुंकता है,
तो इससे मेरा इतना ही संबंध हो सकता है कि मेरी पिछली यात्रा में मैंने यह तैयारी करवाई हो कि मेरी छाती में छुरा भुंके। इसका मेरी छाती में जाना मेरे पिछले कर्मों की कुछ तैयारी होगी। बस, उससे मेरा संबंध है। लेकिन उस आदमी का मेरी छाती में भोंकना, इससे मेरा कोई संबंध नहीं है। इससे उसकी अपनी अंतर्यात्रा का संबंध है। यह बात साफ-साफ दिखाई पड़ जाए तो हम पैरेलल अंतर्धाराएं हैं कर्मों की, समांतर दौड़ रहे हैं। और प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर से जी रहा है। लेकिन जब-जब हम जोड़ लेते हैं अपने से दूसरे की धारा को, तभी कष्ट शुरू होता है।
विनय केवल इस बात की सूचना है कि मैं अपने से अब किसी को जोड़ता नहीं। इसलिए विनय को महावीर ने अंतर-तप कहा है। क्योंकि वह स्वयं को दूसरों से तोड़ लेना है। बिना पता चले चीजें टूट जाती हैं। और जब मेरे और आपके बीच कोई भी संबंध नहीं रह जाता--प्रेम का नहीं, घृणा का नहीं--संबंध ही नहीं रह जाता, सिर्फ निमित्त के संबंध रह जाते हैं; तब न कोई श्रेष्ठ है, न कोई अश्रेष्ठ है। न कोई मित्र है, न कोई शत्रु है। न कोई मेरा बुरा करने की कोशिश कर सकता है, न कोई मेरा भला करने की कोशिश कर रहा है।
महावीर कहते हैं कि जो कुछ मैं अपने लिए कर रहा हूं, मैं ही कर रहा हूं--भला तो भला, बुरा तो बुरा; मैं ही अपना नरक हूं, मैं ही अपना स्वर्ग हूं, मैं ही अपनी मुक्ति हूं। मेरे अतिरिक्त कोई भी निर्णायक नहीं है, मेरे लिए। तब एक हम्बलनेस, एक विनम्र भाव पैदा होता है जो अहंकार का रूप नहीं, अहंकार का अभाव है। जो अहंकार का डायल्यूट फार्म नहीं है, जो अहंकार का तरल, बिखरा हुआ, फैला हुआ आकार नहीं है--अहंकार का अभाव है।
तो यह आखिरी बात ख्याल में ले लें। विनम्रता यदि साधी जाएगी--जैसा हम साधते हैं कि इसको आदर दो, उसको आदर दो; इसको मत दो, उसको मत दो; आदर का भाव जन्माओ; विनम्र रहो; अहंकारी मत बनो, निर-अहंकारी रहो--तो जो विनम्रता पैदा होगी, इट विल बी ए फार्म ऑफ ईगो, वह अहंकार का ही एक रूप होगी। उससे समाज को थोड़ा फायदा होगा। क्योंकि आपका अहंकार कम प्रकट होगा, दबा हुआ प्रकट होगा, ढंग से प्रकट होगा, सुसंस्कृत होगा, कल्चर्ड होगा। लेकिन आपको कोई फायदा नहीं होगा।
इसलिए समाज की उत्सुकता इतनी ही है कि आप विनम्रता का आवरण ओढ़े रहें।
बस समाज को इससे कोई मतलब नहीं है। समाज की औपचारिक व्यवस्था इतने से चल जाती है कि आप विनम्रता ओढ़े रहें। रहें भीतर अहंकारी, समाज का कोई मतलब नहीं है। लेकिन धर्म को इससे कोई प्रयोजन नहीं है कि आप बाहर क्या ओढ़े हुए हैं। धर्म को प्रयोजन है, आप भीतर क्या हैं? वॉट यू आर?
तो महावीर की जो विनय है वह समाज की व्यवस्था की विनय नहीं है--कि पिता को, कि गुरु को, कि शिक्षक को, कि वृद्ध को आदर दो। महावीर यह भी नहीं कहते कि मत दो। मैं भी नहीं कह रहा हूं कि आप मत दो, बराबर दो। वही समाज का खेल है, जस्ट ए गेम, और जितना समझदार आदमी, उसको उतना ही खेल है।
एक मित्र अभी परसों ही आए और कहने लगे लड़के का यज्ञोपवीत होना है। और
जब से आपको सुना तो लगता है यह तो बिल्कुल बेकार है। लेकिन पत्नी जिद्द पर है, पिता जिद्द पर हैं, पूरा परिवार जिद्द पर है कि यह होकर रहेगा। तो मैं बाधा डालूं कि न डालूं?
तो मैंने कहा कि अगर बिल्कुल बेकार है तो बाधा क्या डालनी! अगर कुछ थोड़ा सार्थक लगता है तो बाधा डालो। अगर तुम्हें लगता है, कि यज्ञोपवीत का यह जो संस्कार-विधि होगी, यह बिल्कुल बेकार है, इतनी बेकार अगर लगने लगी है तो ठीक है। जैसे घर के लोग सिनेमा देखने चले जाते हैं वैसे ही यज्ञोपवीत का समारोह हो जाने दो। जस्ट मेक इट ए गेम। है भी वह खेल। अब अगर पिता को मजा आ रहा है, मां को मजा आ रहा है, पत्नी मजा ले रही है, तो हर्जा क्या है इस खेल को चलने में? चलने दो। इस खेल को खेलो। अगर तुम जिद्द करते हो कि नहीं चलने

देंगे तो तुम भी इसको खेल नहीं मानते, तुम भी समझते हो बड़ी कीमती चीज है।
तुम भी सीरियस हो, तुम भी गंभीर हो कि अगर नहीं होगा तो कुछ फायदा होगा।
जिस चीज के होने से फायदा नहीं हो रहा है, उसके न होने से क्या खाक फायदा होगा। जिसके होने तक से फायदा नहीं हो रहा है, उसके न होने से क्या फायदा हो सकता है? तो मैंने उनसे कहा, चीज इतनी बेकार है कि तुम बाधा मत डालना। बोले, आप और यह कहते हैं! मैं तो यही समझा कि आप कहेंगे कि टूट पड़ो, बिल्कुल होने ही मत देना।
मैं क्यों कहूंगा, ऐसा फिजूल काम, और इतना रस आ रहा हो घर के लोगों को तो--सो इनोसेंट गेम--इतना सरल खेल कि एक लड़के के गले में माला-वाला डालनी है, सिर घुटाना--तो खेलने दें; इसमें क्या हर्ज है? और आदमी बच्चों जैसे हैं, उनको खेल चाहिए ही। अगर खेल न हो तो जिंदगी उदास हो जाती है। इसलिए हम जन्म को भी खेल बनाते; फिर यज्ञोपवीत का खेल खेलते; फिर शादी आती है, उसका खेल चलता। मर जाता है आदमी, तब भी हम खेल बंद नहीं करते। अरथी निकालते, वह भी उत्सव है, समारोह है, बैंडबाजा आदमी को आखिर तक पहुंचा आता है। बस एक लंबा खेल है। पर आदमी बिना खेल के नहीं जी सकता है। इसलिए जिन समाजों में खेल कम हो गए हैं वहां जीना मुश्किल हो गया है, क्योंकि आदमी तो वही का वही है। तो महावीर जैसा आदमी बिना खेल के जी सकता है। लेकिन बिना खेल के कोई तभी जी सकता है जब उसे वास्तविक जीवन का पता चल जाए। वास्तविक जीवन का पता न हो तो इस जीवन को, जिसे हम जीवन कह रहे हैं, यह तो बिना खेल के नहीं जीया जा सकता है। इसमें खेल रखने ही पड़ेंगे।
पश्चिम में यह दिक्कत खड़ी हो गई, तीन सौ साल में पश्चिम के विचारक लोगों ने, जिनको मैं बहुत विचारशील नहीं कहूंगा चाहे वाल्तेयर हों और चाहे बर्ट्रेंड रसल हों, उन सबने पश्चिम के सब खेल निंदित कर दिए और कहा कि सब खेल बेकार हैं। यह क्या कर रहे हो? यह सब गड़बड़ है। इसमें क्या फायदा है? फायदा कोई बता न सका। अगर आप बच्चों से पूछें कि तुम यह जो खेल खेल रहे हो, इसमें क्या फायदा है? अगर आप बच्चों से पूछें कि तुम गेंद इस कोने से उस कोने फेंकते हो, उस कोने से इस कोने में फेंकते हो, इसमें क्या फायदा है? क्या फायदा है! तो मुश्किल में पड़ जाएंगे, फायदा तो बता नहीं सकेंगे। फायदा नहीं बता सकेंगे तो आप कहेंगे, बंद करो। क्योंकि जब फायदा ही नहीं तो क्यों खेलना है।
बच्चे बंद कर देंगे, लेकिन मुश्किल में पड़ जाएंगे, क्योंकि बच्चे क्या करेंगे? वह जो शक्ति बचेगी, उसका क्या होगा? वह जो खेलने में निकल जाता था, वह अब उपद्रव में निकलेगा। सारी दुनिया में बच्चों ने जितने खेल कम कर दिए हैं--सब स्कूलों ने बच्चों के खेल छीन लिए। अब बच्चों ने नये खेल निकाले हैं। आप समझते हैं वह उपद्रव है। वे सिर्फ खेल हैं। वे गेंद फेंक कर मजा ले लेते हैं, अब नहीं फेंकने देते तो वे पत्थर फेंक कर चीजें तोड़ रहे हैं। वह मामला वही है। आपने सब खेल छीन लिए तो उनको नये खेल ईजाद करने पड़ रहे हैं और वे नये खेल महंगे पड़ रहे हैं। वे बच्चों के खेल अच्छे थे। बच्चे एक दूसरे को मार डालते थे, मुकदमा चला देते थे, कोई न्यायाधीश बन जाता था। वे सब खेल हमने छीन लिए। सब बच्चे हमारे, बच्चे होने के समय ही गंभीर और बूढ़े होने लगे। लेकिन खेल तो उनके भीतर जो ऊर्जा है, वह खेल मांग रही है।
पश्चिम में यह दिक्कत खड़ी हुई, सारी फेस्टिविटी नष्ट कर दी है। तो वाल्तेयर से लेकर बर्ट्रेंड रसेल तक के बीच पश्चिम में सारे उत्सव का भाव चला गया। सब चीज बेकार--यह भी नहीं हो सकता, यह भी नहीं हो सकता, और जिंदगी वही की वही। अब बड़ी मुश्किल हो गई, शादी का उत्सव बेकार। इसमें क्या फायदा है, यह तो रजिस्ट्री के आफिस में हो सकता है, यह बैंडबाजा क्यों बजाना? लेकिन आपको पता नहीं, वह जो आदमी बैंडबाजा बजा रहा, उसे खेल में रस था। अब यह आदमी जब रजिस्ट्री के आफिस में जाकर शादी करवाएगा तो घर आकर पाएगा--कुछ भी नहीं हुआ। यह तो बिल्कुल बेकार निकल गया मामला। सिर्फ दस्तखत ही करके आ गए रजिस्टर पर, यह शादी है! तो जो शादी सिर्फ दस्तखत करने से बन सकती है वह दस्तखत करने से किसी दिन टूट जाएगी। उसमें कोई मूल्य नहीं है।

वह शादी एक खेल था जिसमें हम बच्चों को दिखाते थे कि भारी मामला है। कोई छोटा मामला नहीं, तोड़ा नहीं जा सकता। इतना बड़ा मामला है। उसमें इतना शोरगुल मचाते थे, उसको घोड़े पर बिठाते, उसको राजा बना देते, छुरे लटका देते, बैंडबाजा बजा देते, भारी उत्सव मचता। उसको भी लगता कि कुछ हुआ है। कुछ ऐसा हो रहा है जिसको वापस लौटाना मुश्किल है। फिर इस सबके पीछे होता तो वही जो रजिस्ट्री के आफिस में होता है। लेकिन इस सबके पहले जो हो गया है वह एक रूप, एक खेल--वह खेल इतना भारी था कि उसको लौटाना मुश्किल था। और उसकी जिंदगी में याद रहता। शादी चाहे कुछ भी बन जाए बाद में, लेकिन वह जो शादी के पहले हुआ था वह उसे याद रहता। वह बार-बार सपने उसके देखता, वही घोड़े पर बैठना, वही राजा की पोशाक। और अब आज लड़का कहता है, इससे क्या होगा? यह पगड़ी मैं क्यों बांधूं? मत बांधो, लेकिन पत्नी जो हाथ लगेगी, वह छोटी लगेगी, क्योंकि खेल उसके पहले का पूरा नहीं हो पाया, बिना खेल के मिल गई है। नसरुद्दीन की जब पहली दफा शादी हुई, वह सुहागरात को गया। रात आ गई, चांद निकल आया, पूर्णिमा का चांद। नसरुद्दीन खिड़की पर बैठा है। दस बज गए, ग्यारह बज गए, बारह बज गए। पत्नी बिस्तर में लेट गई। उसने एक दफे कहाः अब सो भी जाओ, सो भी जाओ।
नसरुद्दीन ने बारह बजे कहा कि बकवास बंद। मेरी मां कहा करती थी कि सुहागरात की रात इतनी आनंद की रात है कि चूकना मत, तो मैं तो इधर खिड़की पर बैठ कर एक क्षण भी चूकना नहीं चाहता हूं। तू सो जा। कहीं नींद लग गई और चूक गए! तो मैं तो पूरी रात जगूंगा इसी खिड़की पर बैठा हुआ। मुझे तो यह पता लगाना है जो मां ने कहा कि सुहागरात की रात बड़ी आनंद की होती है। तो आज की रात मैं फालतू बातों में नहीं खो सकता। तू सो जा। तुझे अगर बातचीत करनी है तो कल।
इसके मन में सुहागरात की एक धारणा थी। आज ठीक उलटी हालत है। आज सुहागरात जैसी कोई चीज हो ही नहीं सकती।
मैंने सुना है, एक युवक अपनी सुहागरात से, हनीमून से वापस लौटा। मित्रों ने पूछा कि कैसी थी सुहागरात? उसने कहाः जस्ट लाइक बिफोर। अब तो सुहागरात का अनुभव पहले ही उपलब्ध है। उसने कहाः जस्ट लाइक बिफोर, नथिंग न्यू! कुछ नया नहीं है।
पुरानी बुद्धिमत्ता महत्वपूर्ण थी। वह बच्चों जैसे आदमियों के लिए बनाए गये खेलों का इंतजाम था। उन खेलों के बीच आदमी जी लेता था। मैं नहीं कहता, खेल तोड़ दें। खेल जारी रखें। बड़े बूढ़ों को आदर देना जारी रखें, गुरुजनों को आदर दें, साधुओं को आदर दें। खेल जारी रखें। इससे कुछ नुकसान नहीं हो रहा है किसी का। लेकिन उसको विनय मत समझ लें। वह विनय नहीं है। मैं नहीं कहता नसरुद्दीन से कि तू खिड़की पर मत बैठ और चांद को मत देख। लेकिन मैं उससे यह कहता हूं कि इसे सुहागरात मत समझ। सुहागरात नहीं है। तू चांद देख। विनय बहुत और बात है।
लेकिन हम ऐसे जिद्दी हैं जिसका कोई हिसाब नहीं। जैसे नसरुद्दीन था। दूसरी शादी की उसने। गया सुहागरात पर। बड़ा इठला कर, अकड़ कर चल रहा है। फिर पूर्णिमा है। बड़ा आनंदित है वह। रास्ते पर कोई मित्र मिल गया, उसने कहा-- बड़े आनंदित हो। नसरुद्दीन ने कहा कि मेरी सुहागरात है। उस आदमी ने चारों तरफ देखा। लेकिन तुम्हारी पत्नी दिखाई नहीं पड़ती। उसने कहाः आर यू मैड? पहली दफे उसको लेकर आया, उसने सब रात खराब कर दी। इस बार उसको घर ही छोड़ आया हूं। रात भर बकवास करती रही--सो जाओ, यह करो, वह करो। पता नहीं रात कब चुक गई। और मेरी मां कहती थी कि सुहागरात... । इस बार तो उसको घर ही छोड़ आया हूं, अकेले आया हूं। सुहागरात चूकनी नहीं है।
कभी-कभी शब्द मां ने जरूर कहा था और ठीक ही कहा था। लेकिन नसरुद्दीन
जो समझे हैं, वह नहीं कहा था। परंपरा जो समझती है शब्द वही हैं जो महावीर ने कहे थे, लेकिन परंपरा जो समझ लेती है, वह नहीं कहा था। विनय आविर्भाव होता है अंतस का और उसकी मैंने यह वैज्ञानिक प्रक्रिया आपसे कही। यह पूरी हो तो ही आविर्भाव होता है। हां, आप अपने को जो विनीत करने की कोशिश कर रहे हैं, वह जारी रखें। वह एक खेल है, वह अच्छा खेल है। उससे जिंदगी सुविधा से

चलती है, कन्वीनियंटली। बाकी उससे कोई आप जीवन के सत्य को उपलब्ध नहीं होते हैं।

आज इतना ही।
फिर कल आगे सूत्र पर बात करेंगे। लेकिन पांच मिनट बैठें... !

महावीर-वाणी, भाग 1
सोलहवां प्रवचन

वैयावृत्य और स्वाध्याय (धम्म-सूत्र)

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मे सया मणो।।

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

तीसरा अंतर-तप महावीर ने कहा है, वैयावृत्य। वैया वृत्य का अर्थ होता है--सेवा। लेकिन महावीर सेवा से बहुत दूसरे अर्थ लेते हैं। सेवा का एक अर्थ है मसीही, क्रिश्चियन अर्थ है। और शायद पृथ्वी पर ईसाइयत ने, अकेले धर्म ने सेवा को प्रार्थना और साधना के रूप में विकसित किया। लेकिन महावीर का सेवा से वैसा अर्थ नहीं है। ईसाइयत का जो अर्थ है, वही हम सबको ज्ञात है। महावीर का जो अर्थ है, वह हमें ज्ञात नहीं है। और महावीर के अनुयायियों ने जो अर्थ कर रखा है वह अति सीमित, अति संकीर्ण है।
परंपरा वैयावृत्य से इतना ही अर्थ लेती रही है, वह सुविधापूर्ण है इसलिए। वृद्ध साधुओं की सेवा, रुग्ण साधुओं की सेवा--ऐसा परंपरा अर्थ लेती रही है। ऐसा अर्थ लेने के कारण हैं, क्योंकि साधु यह सोच ही नहीं सकता कि वह असाधु की सेवा करे। जो साधु नहीं हैं, वे ही साधु की सेवा करने आते हैं। जैनों में तो प्रचलित है कि जब वे साधु का दर्शन करने जाते हैं तो उनको आप पूछें--कहां जा रहे हैं? तो वे कहते हैं--सेवा के लिए जा रहे हैं। धीरे-धीरे साधु का दर्शन करना भी सेवा के लिए जाना ही हो गया। इसलिए गृहस्थ साधु से जाकर पूछेगा--कुशल तो है, मंगल तो है, कोई तकलीफ तो नहीं? कोई असाता तो नहीं, वह इसीलिए पूछ रहा है कि कोई सेवा का अवसर मुझे दें तो मैं सेवा करूं।
साधु की सेवा, ऐसा वैयावृत्य का अर्थ ले लिया गया। निश्चित ही साधु, तथाकथित साधु का इस अर्थ में हाथ है। क्योंकि महावीर ने--किसकी सेवा, यह नहीं कहा है। तो यह अर्थ महावीर का नहीं है। जो अर्थ है उसमें वृद्ध साधु और रुग्ण साधु और साधु की सेवा भी आ जाएगा। लेकिन यही इसका अर्थ नहीं है। दूसरा सेवा का जो प्रचलित रूप है आज, वह ईसाइयत के द्वारा दिया गया अर्थ है। और भारत में विवेकानंद से लेकर गांधी तक ने जो भी सेवा का अर्थ किया है, वह ईसाइयत की सेवा है। और अब जो लोग थोड़े अपने को नयी समझ का मानते हैं वे महावीर की सेवा से भी वैसा अर्थ निकालने की कोशिश करते हैं।
पंडित बेचरदास दोशी ने महावीर-वाणी पर जो टिप्पणियां की हैं, उनमें उन्होंने सेवा से वही अर्थ निकालने की कोशिश की है, जो ईसाइयत का है। उन्होंने अर्थ निकालने की कोशिश की है, जो ईसाइयत का है। असल में ईसाइयत अकेला धर्म है जिसने सेवा को केंद्रीय स्थान दिया है। और इसलिए सारी दुनिया में सेवा के सब अर्थ ईसाइयत के अर्थ हो गए। और विवेकानंद कितना पश्चिम को प्रभावित कर पाए, इसमें संदेह है, लेकिन विवेकानंद ईसाइयत से अत्याधिक प्रभावित हुए, यह असंदिग्ध है। विवेकानंद से कितने लोग प्रभावित हुए इसका कोई बहुत निश्चित मामला नहीं है। वे एक सेंसेशन की तरह अमरीका में उठे और खो गए। लेकिन विवेकानंद स्थायी रूप से ईसाइयत से प्रभावित होकर भारत वापस लौटे। और विवेकानंद ने जो रामकृष्ण मिशन को गति दी, वह ठीक ईसाई मिशनरी की नकल है। उसमें हिंदू विचारणा नहीं है।
और फिर विवेकानंद से गांधी तक या विनोबा तक जिन लोगों ने भी सेवा पर विचार किया है, वे सभी ईसाइयत से प्रभावित हैं। असल में गांधी हिंदू घर में पैदा हुए तो मन होता है मानने का कि वे हिंदू थे। लेकिन उनके सारे संस्कार--नब्बे प्रतिशत संस्कार जैनों से मिले थे। इसलिए मानने को मन

होता है कि वे मूलतः जैन थे। लेकिन उनके मस्तिष्क का सारा परिष्कार ईसाइयत ने किया। गांधी पश्चिम से जब लौटे तो यह सोचते हुए लौटे कि क्या उन्हें हिंदू धर्म बदल कर ईसाई हो जाना चाहिए। और उन पर जिन लोगों का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है--इमर्सन का, थोरो का, या रस्किन का--ईसाइयत की धारा से सेवा का विचार उनका केंद्र था--उन सबका। तो इसलिए वैयावृत्य पर थोड़ा ठीक से सोच लेना जरूरी है, क्योंकि ईसाइयत की सेवा की धारणा ने और सेवा की सब धारणाओं को डुबा दिया है।
दो तीन बातें--एक तो ईसाइयत की जो सेवा की धारणा है और वही इस वक्त सारी दुनिया में सबकी धारणा है। वह धारणा फ्यूचर ओरिएंटेड है, वह भविष्य उन्मुख है। ईसाइयत मानती है कि सेवा के द्वारा ही परमात्मा को पाया जा सकता है। सेवा के द्वारा ही मुक्ति होगी। सेवा एक साधन है, साध्य मुक्ति है। तो सेवा का जो ऐसा अर्थ है वह सप्रयोजन है, विद परपज है। वह परपजलेस नहीं है, वह निष्प्रयोजन नहीं है। चाहे मैं सेवा कर रहा हूं धन पाने के लिए, चाहे यश पाने के लिए और चाहे मोक्ष पाने के लिए, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मैं कुछ पाने के लिए सेवा कर रहा हूं। वह पाना बुरा भी हो सकता है, अच्छा भी हो सकता है, यह दूसरी बात है। नैतिक हो सकता है, अनैतिक हो सकता है, यह दूसरी बात है। एक बात निश्चित है कि वैसी सेवा की धारणा वासनाप्रेरित है।
इसलिए ईसाइयत की जो सेवा है वह बहुत पैशोनेट है। इसलिए ईसाइयत के प्रचारक के सामने दुनिया के धर्म का कोई प्रचारक टिक नहीं सकता। नहीं टिक सकता इसलिए कि ईसाई प्रचारक एक पैशन, एक तीव्र वासना से भरा हुआ है। उसने सारी वासना को सेवा बना दिया है। इसलिए नकल करने की कोशिश चलती है। दूसरे धर्मों के लोग ईसाइयत की नकल करते हैं, पोच निकल जाती है वह नकल, उसमें से कुछ निकलता नहीं। क्योंकि कम से कम कोई भारतीय धर्म ईसाइयत की धारणा को नहीं पकड़ सकता। उसका कारण यह है कि भारतीय मन सोचता ही ऐसा है कि जिस सेवा में प्रयोजन है वह सेवा ही न रही। महावीर कहते हैं--जिस सेवा में प्रयोजन है, वह सेवा ही न रही। सेवा होनी चाहिए निष्प्रयोजन। उससे कुछ पाना नहीं है।
लेकिन अगर कुछ भी न पाना हो तो करने की सारी प्रेरणा खो जाती है। नहीं, महावीर बहुत उलटी बात कहते हैं। महावीर कहते हैं--सेवा जो है, वह पास्ट ओरिएंटेड है, अतीत से जन्मी है; भविष्य के लिए नहीं है। महावीर कहते हैं-- अतीत में जो कर्म हमने किए हैं, उनके विसर्जन के लिए सेवा है। इसका कोई प्रयोजन नहीं है आगे। उससे कुछ मिलेगा नहीं। बल्कि कुछ गलत इकट्ठा हो गया है, उसकी निर्जरा होगी, उसका विसर्जन होगा। यह दृष्टि बहुत उलटी है। महावीर कहते हैं कि अगर मैं आपके पैर दाब रहा हूं या गांधी जी, परचुरे शास्त्री कोढ़ी के पैर दाब रहे हैं--गांधी भला सोचते हों कि वे सेवा कर रहे हैं, महावीर सोचते हैं कि वे अपने किसी पाप का प्रक्षालन कर रहे हैं। यह बड़ी उलटी बात है। गांधी भला सोचते हों कि वे कोई पुण्य कार्य कर रहे हैं, महावीर सोचते हैं कि वे अपने किए पाप का प्रायश्चित्त कर रहे हैं। यह परचुरे शास्त्री को उन्होंने कभी सताया होगा किसी जन्म की किसी यात्रा में। यह उसका प्रतिफल है। सिर्फ किए को अनकिया कर रहे हैं, अनडन करते हैं। इसमें कोई गौरव नहीं हो सकता। ध्यान रहे, ईसाइयत की सेवा गौरव बन जाती
है और इसलिए अहंकार को पुष्ट करती है। महावीर की सेवा गौरव नहीं है क्योंकि गौरव का क्या कारण है, वह सिर्फ पाप का प्रायश्चित्त है। इसलिए अहंकार को तृप्त नहीं करती है, अहंकार को भर नहीं सकती। सच तो यह है कि महावीर ने जो सेवा की धारणा दी है, बहुत अनूठी है। उसमें अहंकार को खड़े होने का उपाय नहीं है।
नहीं तो मैं कोढ़ी के पैर दाब रहा हूं तो मैं कोई विशेष कार्य कर रहा हूं--अकड़ भीतर पैदा होती है। मैं बीमार को कंधे पर टांग कर अस्पताल ले जा रहा हूं तो मैं कुछ विशेष कार्य कर रहा हूं, मैं कुछ पुण्य अर्जन कर रहा हूं। महावीर कहते हैं--कुछ पुण्य अर्जन नहीं कर रहे हो, इस आदमी को तुम किसी गड्ढे में किसी दिन गिराए होओगे, सिर्फ पूरा कर रहे हो अस्पताल पहुंचा कर। इसे तुमने कभी चोट पहुंचायी होगी, अब तुम मलहम-पट्टी कर रहे

हो। यह पास्ट ओरिएंटेड है। यह तुम्हारा किया हुआ ही, तुम पश्चात्ताप कर रहे हो, प्रायश्चित्त कर रहे हो, उसे पोंछ रहे हो। लिखे हुए को पोंछ रहे हो, नया नहीं लिख रहे हो। इसमें कुछ गौरव का कारण नहीं है।
निश्चित ही ऐसी सेवा करने वाला अपने को सेवक न मान पाएगा। तो महावीर कहते हैं--जिस सेवा में सेवक आ जाए वह सेवा नहीं है। बिना सेवक बने अगर सेवा हो जाए, तो ही सेवा है। यह जरा कठिन पड़ेगा हमें समझना। क्योंकि रस तो सेवक का है, रस सेवा का नहीं है। अगर कोढ़ी के पैर दाबते वक्त आस-पास के लोग कहें--अच्छा, तो किसी पाप का प्रक्षालन कर रहे हो! तो कोढ़ी के पैर दाबने का सब मजा चला जाए। हम चाहते हैं कि लोग तस्वीर निकालें, अखबारों में छापें और कहें कि महासेवक है यह आदमी। यह कोढ़ियों के पैर दाब रहा है।
नीत्शे ने संत फ्रांसिस की एक जगह बहुत गहरी मजाक की है। संत फ्रांसिस ईसाई सेवा के साकार प्रतीक हैं। संत फ्रांसिस को कोई कोढ़ी मिल जाता तो न केवल उसे गले लगाते, बल्कि उसके कोढ़ से भरे हुए ओंठों को चूमते भी। फ्रेड्रिक नीत्शे ने कहा है कि संत फ्रांसिस, अगर मेरे वश में होता तो मैं तुमसे पूछता कि कोढ़ी के ओंठ चूमते वक्त तुम्हारे मन को क्या हो रहा है? और मैं कोढ़ियों से कहता कि बजाय संत फ्रांसिस को मौका देने के कि वे तुम्हें चूमें, जहां वे तुम्हें मिल जाएं, तुम उन्हें चूमो। कोढ़ियों से कहता कि जहां भी संत फ्रांसिस मिल जाएं, छोड़ो मत। उन्हें पकड़ो, गले लगाओ और चूमो। और तब देखो कि संत फ्रांसिस के चेहरे पर क्या परिणाम होते हैं। जरूरी नहीं है कि नीत्शे जैसा सोचता है वैसा संत फ्रांसिस के चेहरे
पर परिणाम हो, क्योंकि वह आदमी गहरा था। लेकिन यह बात बहुत दूर तक सच है कि जो आदमी कोढ़ी के पास उसको चूमने जाता है वह किसी बहुत गरिमा के भाव से भर कर जा रहा है, वह कोई काम कर रहा है जो बड़ा कठिन है, असंभव है। असल में वह वासना के विपरीत काम करके दिखला रहा है। कोढ़ी के ओंठ से दूर हटने का मन होगा, चूमने का मन नहीं होगा। और वह चूम कर दिखला रहा है। वह कुछ कर रहा है, कोई कृत्य।
महावीर कहेंगे--अगर इस करने में थोड़ी भी वासना है--इस करने में अगर थोड़ी भी वासना है, अगर इस करने में इतना भी मजा आ रहा है कि मैं कोई विशेष कार्य कर रहा हूं, कोई असाधारण कार्य कर रहा हूं तो मैं फिर नये कर्मों का संग्रह कर रहा हूं। फिर सेवा भी पाप बन जाएगी, क्योंकि वह भी कर्म बंधन लाएगी। अगर मैं कुछ कर रहा हूं, किए हुए को अनकिया कर रहा हूं तो फिर भविष्य में कोई कर्म बंधन नहीं है। अगर मैं कोई फ्रेश एक्ट, कोई नया कृत्य कर रहा हूं कि कोढ़ी को चूम रहा हूं तो फिर मैं भविष्य के लिए पुनः आयोजन कर रहा हूं, कर्मों कीशृंखला का।
महावीर कहते हैं--पुण्य भी अगर भविष्य-उन्मुख है तो पाप बन जाता है।
यह बड़ा मुश्किल होगा समझना। पुण्य भी अगर भविष्य उन्मुख है तो पाप बन जाता है, क्यों? क्योंकि वह भी बंधन बन जाता है। महावीर कहते हैं--पुण्य भी पिछले किए गए पापों का विसर्जन है। तो महावीर एक मैटा-मैथाफिजिक्स या मैटा-मैथामेटिक्स की बात कर रहे हैं, परा गणित की। वे यह कह रहे हैं जो मैंने किया है उसे मुझे संतुलन करना पड़ेगा। मैंने एक चांटा आपको मार दिया है तो मुझे आपके पैर दबा देने पड़ेंगे। तो वह जो विश्व का जागतिक गणित है उसमें संतुलन हो जाएगा। ऐसा नहीं कि पैर दबाने से मुझे कुछ नया मिलेगा, सिर्फ पुराना कट जाएगा। और जब मेरा सब पुराना कट जाए; मैं शून्यवत हो जाऊं; कोई जोड़ मेरे हिसाब में न रहे; मेरे खाते में दोनों तरफ बराबर हो जाएं आंकड़े; जो मैंने किया वह सब अनकिया हो जाए; जो मैंने लिया वह सब दिया हो जाए; ऋण और धन बराबर हो जाएं और मेरे हाथ में शून्य बच रहे तो महावीर कहते हैं--वह शून्य अवस्था ही मुक्ति है।
अगर ईसाइयत की धारणा हम समझें तो सेवा शून्य में नहीं ले जाती, धन में
ले जाती है, प्लस में। आपका प्लस बढ़ता चला जाता है, आपका धन बढ़ता चला जाता है। आप जितनी सेवा करते हैं उतने धनी होते चले जाते हैं। उतना आपके पास पुण्य संगृहीत होता है। और इस पुण्य का प्रतिफल आपको स्वर्ग में, मुक्ति में, ईश्वर के द्वारा मिलेगा। जितना आप पाप करते हैं, आपके पास ऋण इकट्ठा होता है और इसका प्रतिफल आपको नरक में, दुख में, पीड़ा में मिलेगा। महावीर

कहते हैं--मोक्ष तो तब तक नहीं हो सकता जब तक ऋण या धन कोई भी ज्यादा है। जब दोनों बराबर हैं और शून्य हो गए, एक दूसरे को काट गए, तभी आदमी मुक्त होता है, क्योंकि मुक्ति का अर्थ ही यही है कि अब न मुझे कुछ लेना है और न मुझे कुछ देना है। इसको महावीर ने निर्जरा कहा है।
और निर्जरा के सूत्रों में वैयावृत्य बहुत कीमती है। तो महावीर इसलिए नहीं कहते कि दया करके सेवा करो क्योंकि दया ही बंधन बनेगा। कुछ भी किया हुआ बंधन बनता है। महावीर यह नहीं कहते कि करुणा करके सेवा करो कि देखो यह आदमी कितना दुखी है, इसकी सेवा करो। महावीर यह नहीं कहते कि यह इतना दुखी है इसलिए सेवा करो। महावीर कहते हैं कि अगर तुम्हारा कोई पिछला कर्म तुम्हारा पीछा कर रहा हो तो सेवा करो और छुटकारा पा लो। इसका मतलब? इसका मतलब यह हुआ कि तुम अपने को सेवा के लिए खुला रखो, पैशोनेट सेवा नहीं। निकलो मत झंडा लेकर सुबह से कि मैं सेवा करके लौटूंगा, ऐसा नहीं। घोषणा करके मत तय कर रखो कि सेवा करनी ही है। जिद्द मत करो, राह चलते हो, कोई अवसर आ जाए तो खुला रखो। अगर सेवा हो सकती हो तो अपने को रोको मत।
इसमें फर्क है। एक तो सेवा करने जाओ प्रयोजन से, सक्रिय हो जाओ, सेवक बनो, धर्म समझो सेवा को। महावीर कहते हैं--खुला रखो, कहीं सेवा का अवसर हो, और सेवा भीतर उठती हो तो रोको मत, हो जाने दो। और चुपचाप विदा हो जाओ। पता भी न चले किसी को कि तुमने सेवा की। तुमको स्वयं भी पता न चले कि तुमने सेवा की, तो वैयावृत्य है।
वैयावृत्य का अर्थ है--उत्तम सेवा। साधारण सेवा नहीं। ऐसी सेवा जिसमें पता भी नहीं चलता कि मैंने कुछ किया। ऐसी सेवा जिसमें बोध है कि मैंने कुछ किया हुआ अनकिया, अनडन, कुछ था जो बांधे था, उसे मैंने छोड़ा। इस आदमी से कोई संबंध थे जो मैंने तोड़े। लेकिन अगर इसमें रस ले लिया तो फिर संबंध निर्मित होते हैं--फिर संबंध निर्मित होते हैं। और रस एक तरह का शोषण है--यह भी समझ लेना चाहिए--महावीर की दृष्टि में अगर एक आदमी दुख है और पीड़ित है और मैं उसकी सेवा करके स्वर्ग जाने की चेष्टा कर रहा हूं तो मैं उसके दुख का शोषण कर रहा हूं। मैं उसके दुख को साधन बना रहा हूं। अगर वह दुखी न होता तो मैं स्वर्ग न जा पाता। इसे ऐसा सोचें थोड़ा। तब इसका मतलब यह हुआ कि जिसके दुख के माध्यम से आप स्वर्ग खोज रहे हैं, यह तो बहुत मजेदार मामला है। इस गणित में थोड़े गहरे उतरना जरूरी है।
एक आदमी दुखी है और आप सेवा करके अपना सुख खोज रहे हैं, तो आप उसके दुख
को साधन बना रहे हैं। यही तो सारी दुनिया कर रही है। यह तो सारी दुनिया कर रही है। एक धनपति अगर धन चूस रहा है तो आप उससे कहते हैं कि दूसरे लोग दुखी हो रहे हैं। आप उनके दुख पर सुख इकट्ठा कर रहे हैं। लेकिन एक पुण्यात्मा, दीन की, दुखी की सेवा कर रहा है और अपना स्वर्ग खोज रहा है, तब आपको ख्याल नहीं आता कि वह भी किसी गहरे अर्थों में यही कर रहा है। सिक्के अलग हैं, इस जमीन के नहीं--परलोक के, पुण्य के। बैंक बैलेंस वह यहां नहीं खोल पाएगा, लेकिन कहीं खोल रहा है। कहीं किसी बैंक में जमा होता चला जाएगा।
नहीं, महावीर कहते हैं--दूसरे के दुख का शोषण नहीं, क्योंकि शोषण कैसे सेवा हो सकता है? दूसरा दुखी है तो उसके दुख में मेरा हाथ हो सकता है। उस हाथ को मुझे खींच लेना है, उसी का नाम सेवा है। वह मेरे कारण दुखी न हो, इतना हाथ मुझे खींच लेना है। इसके दो अर्थ हुए--मेरे कारण कोई दुखी न हो, ऐसा मैं जीऊं। और अगर मुझे कोई दुखी मिल जाता है तो मेरे कारण अतीत में वह दुख पैदा न हुआ हो, ऐसा मैं व्यवहार करूं कि अगर मेरा कोई भी हाथ हो तो हट जाए। इसमें कोई पैशन नहीं हो सकता; इसमें कोई त्वरा और तीव्रता नहीं हो सकती; इसमें कोई रस नहीं हो सकता करने का क्योंकि यह सिर्फ न करना है; यह सिर्फ मिटाना और पोंछना है।
इसलिए महावीर की सेवा समझी नहीं जा सकी क्योंकि हम सब पैशोनेट हैं। अगर धर्म भी हमको पागलपन न बन जाए तो हम धर्म भी नहीं कर सकते। अगर मोक्ष भी हमारी जिद्द न बन जाए तो हम मोक्ष भी नहीं जा सकते। अगर पुण्य भी किसी अर्थ में शोषण न हो तो हम पुण्य भी नहीं कर सकते, क्योंकि शोषण हमारी आदत है; शोषण हमारे जीवन का ढंग है। व्यवस्था है हमारी। और वासना हमारा व्यवहार है। जिस चीज में हम वासना जोड़ दें वही हम कर सकते हैं, अन्यथा हम

नहीं कर सकते। तो अगर सेवा धन वासना हो जाए तो हम सेवा भी कर सकते हैं। इसलिए सेवा के लिए आपको उन्मुख करने वाले लोग कहते हैं कि सेवा से क्या- क्या मिलेगा, दान से क्या-क्या मिलेगा। सवाल यह नहीं है कि दान क्या है, सेवा क्या है। सवाल क्या है कि आपको क्या-क्या मिलेगा, आप क्या-क्या पा सकोगे। वे आपको स्वर्ग की पूरी झलक दिखाते हैं। आपसे कुछ भी करवाना हो तो आपकी वासना को प्रज्जवलित करना पड़ता है। आपकी वासना प्रज्जवलित न हो तो आप कुछ भी नहीं करने को राजी हैं।
जीसस से मरने के पहले जीसस के एक शिष्य ने पूछा कि घड़ी आ गई पास, सुनते हैं हम कि आप नहीं बच सकेंगे। एक बात तो बता दें। यह तो पक्का है कि आप ईश्वर के हाथ के पास सिंहासन पर बैठेंगे। हम लोगों की जगह क्या होंगी? हम कहां बैठेंगे? वह जो ईश्वर का राज्य होगा, सिंहासन होगा, आप तो पड़ोस में बैठेंगे, यह पक्का है। हम लोगों की क्रम संख्या क्या होगी? कौन कहां बैठेगा, किस नंबर से बैठेगा? जब भी आदमी कोई त्याग करता है तो पहले पूछ लेता है कि फल क्या होगा? इतना छोड़ता हूं, मिलेगा कितना? और ध्यान रहे, जब छोड़ने में मिलने का ख्याल हो, तो वह छोड़ना है? वह बार्गनिंग है, वह सौदा है। इससे क्या फर्क पड़ता है कि आपको क्या मिलेगा--मोक्ष मिलेगा, स्वर्ग मिलेगा, धन मिलेगा, प्रेम मिलेगा, आदर मिलेगा, इससे कोई सवाल नहीं पड़ता-- मिलेगा कुछ।
महावीर कहते हैं--सेवा से मिलेगा कुछ भी नहीं, कुछ कटेगा। कुछ मिलेगा नहीं, कुछ कटेगा। कुछ छूटेगा, कुछ हटेगा। सेवा को अगर हम महावीर की तरह समझें तो वह मेडिसिनल है, दवाई की तरह है। दवाई से कुछ मिलेगा नहीं, सिर्फ बीमारी कटेगी। ईसाइयत की सेवा टानिक की तरह है, उसमें कुछ मिलेगा। उसका भविष्य है। महावीर की सेवा मेडिसिन की तरह है, उससे बीमारी भर कटेगी, मिलेगा कुछ नहीं।
यह भेद इतना गहरा है, और इस भेद के कारण ही जैन परंपरा सेवा को जन्मा न पाई। नहीं तो जीसस से पांच सौ वर्ष पहले महावीर ने सेवा की बात की थी और उसे अंतर-तप कहा था जो जैन परंपरा उसे जगा न पाई, जरा भी न जगा पाई। क्योंकि कोई पैशन न था, उसमें कोई त्वरा नहीं पैदा होती थी। फिर कुछ कटेगा, कुछ मिटेगा, कुछ छूटेगा, कुछ कमी ही हो जाएगी उलटी। पापी के भी पाप का ढेर थोड़ा कम हो तो उसको भी लगता है कुछ कम हो रहा है। समथिंग इ.ज मिसिंग। मेरे पास जो था उसमें कमी हो गई। बीमार भी लंबे दिनों की बीमारी के बाद जब स्वस्थ होता है तो लगता है समथिंग इ.ज मिसिंग, कुछ खो रहा है। इसलिए जो लंबे दिनों तक बीमारी रह जाए और बीमारी में रस ले ले, वह कितना ही कहे, स्वस्थ होना चाहता है, भीतर कहीं कोई हिस्सा कहता है, मत होओ।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं--सत्तर प्रतिशत बीमार इसलिए बीमार बने रहते हैं कि बीमारी में उन्हें रस पैदा हो गया है, वे बीमारी को बचाना चाहते हैं। आप कहते हैं--अगर बीमारी को बचाना चाहते हैं तो चिकित्सक के पास क्यों जाते हैं, दवा क्यों लेते हैं? यही तो मनुष्य का द्वंद्व है कि वह दोहरे काम एक साथ कर सकता है। इधर दवा ले सकता है, उधर बीमारी को बचा सकता है। क्योंकि बीमारी के भी रस हैं और कई बार स्वास्थ्य से ज्यादा रसपूर्ण हैं। जब आप बीमार पड़ते हैं तो सारा जगत आपके प्रति सहानुभूतिपूर्ण हो जाता है। कितना चाहा कि जब आप स्वस्थ होते हैं तब जगत सहानुभूतिपूर्ण हो जाए, लेकिन तब कोई सहानुभूतिपूर्ण नहीं होता है। जब आप बीमार होते हैं तो घर के लोग प्रेम का व्यवहार करते हुए मालूम पड़ते हैं। जब आप बीमार होते हैं तो ऐसा मालूम होता है कि आप सेंटर हो गए सारी दुनिया के। सारी दुनिया परिधि पर है, आप केंद्र पर हैं। नर्सें घूम रही हैं; डाक्टर चक्कर लगा रहे हैं; परिवार आपके इर्द-गिर्द घूम रहा है; मित्र आ रहे हैं; देखने वाले आ रहे हैं। आप ध्यान रखते हैं कि कौन देखने नहीं आया।
मेरे एक मित्र का लड़का मर गया। जवान लड़का मर गया। उनकी उम्र तो सत्तर वर्ष है। छाती पीट कर रो रहे थे। जब मैं पहुंचा तो पास में उन्होंने टेलीग्राम का ढेर लगा रखा था। जल्दी से मैंने उनसे एक-दो मिनट बात की। लेकिन मैंने देखा उनकी उत्सुकता बात में नहीं है, टेलीग्राम मैं देख जाऊं, इसमें है। तो उन्होंने वे टेलीग्राम मेरी तरफ सरकाए और कहा कि

प्रधानमंत्री ने भी भेजा है और राष्ट्रपति ने भी भेजा है। जब तक मैंने टेलीग्राम सब न देख लिए तब तक उनको तृप्ति न हुई। बड़े दुख में हैं। लेकिन दुख में भी रस लिया जाता है। ये टेलीग्राम वे फाड़ कर न फेंक सके, ये टेलीग्राम वे भूल न सके, इनका वे ढेर लगाए रहे।
पंद्रह दिन बाद जब मैं गया तब वह ढेर और बड़ा हो गया था। ढेर लगाए हुए थे। अपने पास ही रखे रहते थे। कहते थे, आत्महत्या कर लूंगा, क्योंकि अब क्या जीना। जवान लड़का मर गया, मरना मुझे चाहिए था। कहते थे, आत्महत्या कर लूंगा, वह तारों का ढेर बढ़ाते जाते थे। मैंने कहाः कब करिएगा? पंद्रह दिन हो गए हैं। जितने दिन बीत जाएंगे उतना मुश्किल होगा करना। तो उन्होंने मुझे ऐसे देखा जैसे कोई दुश्मन को देखे। उन्होंने कहाः आप क्या कहते हैं, आप और ऐसे! ऐसी बात कहते हैं! क्योंकि वह आत्महत्या करने के लिए इसलिए कह रहे थे पंद्रह दिन से निरंतर कि जब आत्महत्या की कोई भी सुनता था तो बहुत सहानुभूति प्रकट करता था। मैंने कहाः मैं सहानुभूति प्रकट न करूंगा। इसमें आप रस ले रहे हैं। उसी दिन से वे मेरे दुश्मन हो गए।
इस दुनिया में सच कहना दुश्मन बनाना है। इस दुनिया में किसी से भी सच कहना दुश्मन बनाना है। झूठ बड़ी मित्रताएं स्थापित करता है। कभी एक दफा देखें, चौबीस घंटे तय कर लें, सच ही बोलेंगे! आप पाएंगे सब मित्र बिदा हो गए। चौबीस घंटा, इससे ज्यादा नहीं। पत्नी अपना सामान बांध रही है; लड़के बच्चे कह रहे हैं, नमस्कार--मित्र कह रहे हैं कि तुम ऐसे आदमी थे! सारा जगत शत्रु हो जाएगा।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन सुबह बैठ कर अपना अखबार पढ़ रहा है। और जैसा अखबार पर सभी पत्नियां नाराज होती हैं, ऐसा उसकी पत्नी भी नाराज हो रही थी कि क्या सुबह से तुम अखबार लेकर बैठ जाते हो! एक जमाना था कि तुम सुबह से मेरे सूरत की बातें करते थे और अब तुम कुछ बात नहीं करते हो। एक वक्त था कि तुम कहते थे कि तेरी वाणी कोयल जैसी मधुर है; अब तुम कुछ भी नहीं कहते। मुल्ला ने कहा--है तेरी वाणी मधुर, मगर बकवास बंद कर, मुझे अखबार पढ़ने दे। है तेरी वाणी मधुर, पर बकवास बंद कर, मुझे अखबार पढ़ने दो।
दोहरा है आदमी। मजबूरी है उसकी क्योंकि सीधा और सच्चा होने नहीं देता समाज। महंगा पड़ जाएगा। इसलिए झूठ को पोंछता चला जाता है।
मुल्ला ने जब तीसरी शादी की, तो तीसरे दिन रात को पत्नी ने कहा कि अगर तुम बुरा न मानो तो मैं अपने नकली दांत निकाल कर रख दूं, क्योंकि रात मुझे इनमें नींद नहीं आती। मुल्ला ने कहाः थैंक्स, गुडनेस। नाउ आई कैन पुट ऑफ माई फाल्स लैग, माई विग, माई ग्लास--आई एण्ड रिलैक्स। तो मैं अब अपनी लकड़ी की टांग अलग कर सकता हूं, और अपने झूठे बाल अलग कर सकता हूं और कांच की आंख रख सकता हूं और विश्राम कर सकता हूं। धन्य भाग, हे परमात्मा! तूने अच्छा बता दिया। नहीं तो हम भी तने थे, तीन दिन से हम खुद भी कहां सो पा रहे हैं! वह भी नहीं सो पा रही है। क्योंकि वे झूठे दांत सोने कैसे देंगे?
हम सब एक-दूसरे के सामने चेहरे बनाए हुए हैं, जो झूठे हैं। लेकिन रिलैक्स कैसे करें। सत्य रिलैक्स कर जाता है, लेकिन सत्य में जीना कठिन पड़ता है। इसलिए दोहरा हम जीते हैं। एक कोने में कुछ, एक कोने में कुछ, और सब चलाते हैं। बीमारी में रस है, यह कोई बीमार स्वीकार करने को राजी नहीं होता, लेकिन बीमारी में रस है। इतना रस स्वास्थ्य में भी नहीं आता है जितना बीमारी में आता है। इसलिए स्वास्थ्य को कोई बढ़ा-चढ़ा कर नहीं बताता, बीमारी को सब लोग बढ़ा-चढ़ा कर बताते हैं।
यह जो हमारा चित्त है, यह द्वंद्व से भरा है। इसलिए हम करते कुछ मालूम पड़ते हैं, कर कुछ और रहे होते हैं। कहते हैं--गरीब पर बड़ी दया आ रही है, लेकिन उस दया में भी रस लेते मालूम पड़ते हैं। अगर दुनिया में कोई गरीब न रह जाए तो सबसे ज्यादा तकलीफ उन लोगों को होगी जो गरीब की सेवा करने में पैशोनेट रस ले रहे हैं। वे क्या करेंगे? अगर दुनिया नैतिक हो जाए तो साधु जो समाज को नैतिकता समझाते फिरते हैं, ये ऐसे उदास हो जाएंगे जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। ऐसा कभी होता नहीं है इसलिए मौका नहीं आता। एक दफा आप मौका दें और नैतिक हो जाएं, और जब साधु कहे कि आप चोरी मत करो; आप कहें, हम करते ही नहीं। कहे, झूठ मत बोलो; आप कहें, हम बोलते ही नहीं। कहे, बेईमानी

मत करो; आप कहें, हम करते ही नहीं। वह कहे, दूसरे की स्त्री की तरफ मत देखो; आप कहें, बिल्कुल अंधे हैं। देखने का सवाल ही नहीं है। तो आप साधु के हाथ से उसका सारा काम छीने ले रहे हैं। पूरी जड़ें उखाड़ ले रहे हैं। अब साधु क्या करेगा?
साधु क्या करेगा? यह कठिन होगा समझना, लेकिन साधु-असाधु के रोगों पर जीता है। वह पैरासाइट है। वह जो असाधु चारों तरफ दिखाई पड़ते हैं, उन पर ही साधु जीता है। वह पैरासाइट है। अगर दुनिया सच में साधु हो जाए तो साधु एकदम काम के बाहर हो जाए। उसको कोई काम नहीं बचता। और कुछ आश्चर्य न होगा जो साधु आप को समझा रहे थे, अगर समझाने में उनको रस था--यही कि समझाते वक्त आदमी गुरु हो जाता है, ऊपर हो जाता है, सुपीरियर हो जाता है उससे जिसे समझाता है। इसलिए समझाने का रस है। अगर समझाने में रस था, अगर समझाने में आपके अज्ञान का शोषण था, अगर समझाने में आप सीढ़ी थे उसके ज्ञान की तरफ बढ़ने के, तो इसमें कोई हैरानी न होगी कि जिस दिन सारे लोग साधु हो जाएं, उस दिन जो साधुता की समझा रहा था, ईमानदारी की समझा रहा था, वह बेईमानी के राज बताने लगे कि बेईमानी के बिना जीना मुश्किल है। चोरी करनी ही पड़ेगी, असत्य बोलना ही पड़ेगा, नहीं तो मर जाओगे। जीवन में सब रस ही खो जाएगा।
अगर उसको समझाने में ही रस आ रहा था तब अगर वह सच में ही साधु था, समझाना उसका रस न था, शोषण न था। तो वह प्रसन्न होगा, आनंदित होगा। वह कहेगा--समझाने की झंझट भी मिटी। लोग साधु हो गए, अब बात ही खत्म हो गई। अब मुझे समझाने का उपद्रव भी न रहा। अगर सेवा में आपको रस आ रहा था कि आप कहीं जा रहे थे--स्वर्ग, सुख में, आदर में, प्रतिष्ठा में, सम्मान में--अगर सेवा करवाने को कोई भी न मिले तो आप बड़े उदास और दुखी हो जाएंगे। लेकिन अगर सेवा वैयावृत्य थी, जैसा महावीर मानते हैं तो आप प्रसन्न होंगे कि अब आपका ऐसा कोई भी कर्म नहीं बचा है कि जिसके कारण आपको किसी की सेवा करनी पड़े। आप प्रसन्न होंगे, प्रफुल्लित होंगे, प्रमुदित होंगे, आनंदित होंगे। आप कहेंगे धन्यभाग, निर्जरा हुई।
यह भेद है। सेवा में कोई रस नहीं है। सेवा केवल मेडिसिनल है। जो किया
है उसे पोंछ डालना है, मिटा देना है। ध्यान रहे, जो व्यक्ति सेवा करेगा दूसरे की, कहेगा मांगेगा, वृद्ध होने पर सेवा मांगेगा। क्योंकि ये एक ही तर्क के दो हिस्से हैं। लेकिन महावीर की सेवा करने की जो धारणा है, उसमें सेवा मांगी नहीं जाएगी। क्योंकि सेवा कभी इस दृष्टि से की नहीं गई, मांगी भी नहीं जाएगी। मांगने का कोई कारण नहीं है। और अगर कोई सेवा न करेगा तो उससे क्रोध भी पैदा नहीं होगा, उससे कष्ट भी मन में नहीं आएगा। उसे ऐसा भी नहीं लगेगा कि इस आदमी ने सेवा क्यों नहीं की।
इसलिए जो लोग भी सेवा करते हैं वे बड़े टार्च मास्टर्स होते हैं। अगर
आप सेवकों के आश्रम में जाकर देखें, जो कि सेवा करते हैं, तो आप एक और मजेदार बात देखेंगे कि वह सेवा लेते भी हैं, उतनी ही मात्रा में। और उतनी ही सख्ती से। सख्ती उनकी भयंकर होती है। जरा सी बात चूक नहीं सकते। और कभी- कभी अत्यंत हिंसात्मक हो जाते हैं। यह बहुत मजे की बात है कि आप जितने सख्त अपने पर होते हैं उससे कम सख्त अपने पर होते हैं उससे कम सख्त आप किसी पर नहीं होते। आप ज्यादा ही सख्त होंगे। कभी-कभी बहुत छोटी-छोटी बातों में बड़ी अजीब घटना घटती है।
गांधीजी नोआखाली में यात्रा पर थे। कठिन था वह हिस्सा, एक-एक गांव खून
और लाशों से पटा था। एक युवती उनकी सेवा में है, वह उनके साथ चल रही है। एक गांव से अड्डा उखड़ा है, दोपहर वहां से चले हैं, सांझ दूसरे गांव पहुंचे हैं। लेकिन गांधीजी स्नान करने बैठे हैं। देखा तो उनका पत्थर, जिससे वे पैर घिसते थे, वह पीछे छूट गया पिछले गांव में। रात उतर रही है, अंधेरा उतर रहा है। उन्होंने उस लड़की को बुलाया और कहा कि यह भूल कैसे हुई? क्योंकि गांधी तो कभी भूल नहीं करते हैं इसलिए किसी की भूल बरदाश्त नहीं कर सकते। वापस जाओ, वह पत्थर लेकर आओ। नोआखाली, चारों तरफ आगें जल रही हैं, लाशें बिछी हैं। वह अकेली लड़की, रोती, घबड़ाती, छाती धड़कती वापस लौटी।
उस पत्थर में कुछ भी न था। वैसे पचास पत्थर उसी गांव से उठाए जा सकते थे। लेकिन डिसीप्लेनेरियन, अनुशासन! ... जो आदमी अपने घर पर पक्का अनुशासन

रखता है वह दूसरों की गर्दन दबा लेता है। क्योंकि खुद नहीं भूलते कोई चीज। दूसरा कैसे भूल सकता है? तब दिखने वाला ऊपर से जो अनुशासन है, गहरे में हिंसा हो जाता है। यह भी कोई बात थी! आदमी भूल सकता है, भूलना स्वाभाविक है। और कोई बड़ा कोहिनूर हीरा नहीं भूल गया है। पैर घिसने का पत्थर भूल गया है। लेकिन सवाल पत्थर का नहीं है, सवाल सख्ती का है, सवाल नियम का है। नियम का पालन होना चाहिए।
अगर आप अनुशासन, सेवा, नियम, मर्यादा, इस तरह की बातें मानने वाले लोगों के पास जाकर देखें तो आपको दूसरा पहलू भी बहुत शीघ्र दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा। जितने सख्त वे अपने पर हैं उससे कम सख्त वे दूसरे पर नहीं है। जब आप किसी के पैर दाब रहे हैं, तब आप किसी दिन पैर दाब रहे हैं, तब आप किसी दिन पैर दबाए जाने का इंतजाम भी कर रहे हैं मन के किसी कोने में। और अगर आपके पैर न दाबे गए उस दिन, तब आपकी पीड़ा का अंत नहीं होगा।
लेकिन महावीर की सेवा का इससे कोई संबंध नहीं है। महावीर तो कहते हैं
कि अगर मेरी कोई सेवा करेगा तो भी वह इसलिए कर रहा है कि उसके किसी पाप का पक्षालन है। अगर नहीं है कोई पाप का पक्षालन तो बात समाप्त हो गई। कोई मेरी सेवा नहीं कर रहा है। इसमें दूसरे को गौरव दिया जाए तो फिर दूसरे को निंदा भी दी जा सकती है। लेकिन न कोई गौरव है, न कोई निंदा है। वैयावृत्य का ऐसा अर्थ है।
तो आप जब भी सेवा कर रहे हैं तब ध्यान रखें, वह भविष्य-उन्मुख न हो। तो
आप अंतर-तप कर रहे हैं। जब आप सेवा कर रहे हों तो निष्प्रयोजन हो, अन्यथा आप अंतर-तप नहीं कर रहे हैं। जब आप सेवा कर रहे हैं तब उससे किसी तरह के गौरव की, गरिमा की, अस्मिता की कोई भावना भीतर गहन न हो, अन्यथा आप सेवा नहीं कर रहे हैं, वैयावृत्य नहीं कर रहे हैं। वह सिर्फ किए गए पाप को, किए गए कर्म को अनकिया करना हो, बस इतना--तो तप है।
और क्यों इसको अंतर-तप कहते हैं महावीर! इसलिए अंतर-तप कहते हैं, कि यह करना कठिन है। वह सेवा सरल है जिसमें कोई रस आ रहा हो। इस सेवा में कोई भी रस नहीं है, सिर्फ लेना-देना ठीक करना है। इसलिए तप है और बड़ा आंतरिक तप है। क्योंकि हम कुछ करें और कर्ता न बनें, इससे बड़ा तप क्या होगा? हम कुछ करें और कर्ता न बनें; इससे बड़ा तप क्या होगा? सेवा जैसी चीज करें जो कोई करने को राजी नहीं है--कोढ़ी के पैर दबाएं और फिर भी मन में कर्ता न बनें तो तप हो जाएगा और बहुत आंतरिक तप हो जाएगा।
आंतरिक क्यों कहते हैं? आंतरिक इसलिए कहते हैं कि सिवाय आपके और कोई न पहचान सकेगा। बात भीतरी है। आप ही जा सकेंगे; लेकिन आप बिल्कुल जांच लेंगे, कठिनाई नहीं होगी। जो व्यक्ति भी भीतर की जांच में संलग्न हो जाता है वह ऐसे ही जान लेता है। जब आपके पैर में कांटा गड़ता है तो आप कैसे जानते हैं कि दुख हो रहा है! और जब कोई आलिंगन से आपको अपने गले लगा लेता है तो आप कैसे जानते हैं कि हृदय प्रफुल्लित हो रहा है! और जब कोई आपके चरणों में सिर रख देता है तो आपके भीतर जो लहर दौड़ जाती है वह आप कैसे जान लेते हैं? नहीं, उसके लिए बाहर कोई खोजने की जरूरत नहीं, आंतरिक मापदंड आपके पास है। तो जब सेवा करते वक्त आपको किसी तरह भी भविष्य उन्मुखता मालूम पड़े, तो समझना कि महावीर ने उसे सेवा के लिए नहीं कहा है। अगर कोई पुण्य का भाव पैदा हो, तो कहना, तो जानना कि महावीर ने उस सेवा के लिए नहीं कहा है। अगर ऐसा लगे कि मैं कुछ कर रहा हूं, कुछ विशिष्ट, तो समझना कि महावीर ने उस सेवा के लिए नहीं कहा है। अगर यह कुछ भी पैदा न हो और सेवा सिर्फ ऐसे हो जैसे तख्ते पर लिखी हुई कोई चीज को किसी ने पोंछ कर मिटा दिया है। तख्ता खाली हो गया है और भीतर खाली हो गए, तो आप अंतर-तप में प्रवेश करते हैं।
महावीर ने वैयावृत्य के बाद ही जो तप कहा है, वह है स्वाध्याय--चौथा तप। निश्चित ही, अगर सेवा का आप ऐसा प्रयोग करें तो आप स्वाध्याय में उतर जाएंगे, स्वयं के अध्ययन में उतर जाएंगे। लेकिन स्वाध्याय से बड़ा गौण अर्थ लिया जाता रहा है--वह है शास्त्रों का अध्ययन, पठन, मनन। महावीर अध्ययन ही कह सकते थे, स्वाध्याय कहने की क्या जरूरत थी? उसमें "स्व" जोड़ने का क्या प्रयोजन था? अध्ययन काफी था। स्वयं का अध्ययन, स्वाध्याय का अर्थ होता है। शास्त्र का अध्ययन नहीं। लेकिन साधु शास्त्र खोल बैठे हैं

सुबह से, उनसे पूछिए--क्या कर रहे हैं? वे कहते हैं--स्वाध्याय करते हैं।
शास्त्र निश्चित ही किसी और का होगा। स्वाध्याय शास्त्र नहीं बन सकता।
अगर खुद का ही लिखा शास्त्र पढ़ रहे हैं तो बिल्कुल बेकार पढ़ रहे हैं। क्योंकि खुद का ही लिखा हुआ है, अब उसमें और पढ़ने को क्या बचा होगा? जानने को क्या है?
स्वाध्याय का अर्थ हैः स्वयं का अध्ययन। बड़ा कठिन है। शास्त्र पढ़ना
तो बड़ा सरल है। जो भी पढ़ सकता है, वह शास्त्र पढ़ सकता है। पठित होना काफी है, लेकिन स्वाध्याय के लिए पठित होना काफी नहीं है। क्योंकि स्वाध्याय बहुत जटिल मामला है। आप बहुत कांप्लेक्स हैं, आप बहुत उलझे हुए हैं। आप एक ग्रंथियों का जाल हैं। आप एक पूरी दुनिया हैं, हजार तरह के उपद्रव हैं वहां। उस सबके अध्ययन का नाम स्वाध्याय है। तो अगर आप अपने क्रोध का अध्ययन कर रहे हैं तो स्वाध्याय कर रहे हैं। हां, क्रोध के संबंध में शास्त्र में क्या लिखा है, उसका अध्ययन कर रहे हैं तो स्वाध्याय नहीं कर रहे हैं। अगर आप अपने राग का अध्ययन कर रहे हैं तो स्वाध्याय कर रहे हैं। राग के संबंध में शास्त्र में क्या लिखा है, उसका अध्ययन कर रहे हैं तो स्वाध्याय नहीं कर रहे हैं। और आपके भीतर सब मौजूद है, जो भी किसी शास्त्र में लिखा है वह सब आपके भीतर मौजूद है। इस जगत में जितना भी जाना गया है, वह प्रत्येक आदमी के भीतर मौजूद है। और इस जगत में जो भी कभी जाना जाएगा वह प्रत्येक आदमी के भीतर आज भी मौजूद है। आदमी एक शास्त्र है--परम शास्त्र है, द अल्टीमेट स्क्रिप्चर। इस बात को समझें तो महावीर का स्वाध्याय समझ में आएगा।
मनुष्य परम शास्त्र है। क्योंकि जो भी जाना गया है, वह मनुष्य ने जाना। जो भी जाना जाएगा वह मनुष्य जानेगा। काश, मनुष्य स्वयं को ही जान ले, तो जो भी जाना गया है और जो भी जाना जा सकता है वह सब जान लिया जाता है। इसलिए महावीर ने कहा है--एक को जानने से सब जान लिया जाता है। स्वयं को जानने से सर्व जान लिया जाता है। इसके कई आयाम हैं। पहली तो बात यह है कि जानने योग्य जो भी है उसके हम दो हिस्से कर सकते हैं--एक तो आब्जेक्टिव, वस्तुगत; दूसरा सब्जेक्टिव, आत्मगत। जानने में दो घटनाएं घटती हैं--जानने वाला होता है और जानी जाने वाली चीज होती है। विषय होता है जिसे हम जानते हैं, और जानने वाला होता है जो जानता है। विज्ञान का संबंध विषय से है, आब्जेक्ट से है, वस्तु से है। जिसे हम जानते हैं उसे जानने से है। धर्म का संबंध उसे जानने से है जिससे हम जानते हैं; जो जानता है उसे जानने से है। ज्ञाता को जानना धर्म है और ज्ञेय को जानना विज्ञान है। ज्ञेय को हम कितना ही जान लें तो ज्ञाता के संबंध में तो भी पता नहीं चलता। कितना ही हम जान लें चांद-तारे, सूरजों के संबंध में तो भी अपने संबंध में कुछ पता नहीं चलता। बल्कि एक बड़े मजे की बात है कि जितना हम वस्तुओं के संबंध में ज्यादा जान लेते हैं उतना ही हमें वह भूल जाता है, जो जानता है। क्योंकि जानकारी बहुत इकट्ठी हो जाए तो ज्ञाता छिप जाता है। आप इतनी चीजों के संबंध में जानते हैं कि आपको ख्याल ही नहीं रहता कि अभी जानने को कुछ शेष बच रहा है इसलिए विज्ञान बढ़ता जाता है रोज, जानता जाता है रोज। कितने प्रकार के मच्छर हैं, विज्ञान जानता है। प्रत्येक प्रकार के मच्छर की क्या खूबियां है, विज्ञान जानता है। कितने प्रकार की वनस्पतियां हैं, विज्ञान जानता है। प्रत्येक वनस्पति में क्या-क्या छिपा है, विज्ञान जानता है। कितने सूरज हैं, कितने तारे हैं, कितने चांद हैं, विज्ञान जानता है।
आइंस्टीन ने मरते वक्त कहा कि अगर मुझे दुबारा जीवन मिले तो मैं एक संत होना चाहूंगा। क्यों? जो खाट के आस-पास इकट्ठे थे, उन्होंने पूछा-- क्यों? तो आइंस्टीन ने कहाः जानने योग्य तो अब एक ही बात मालूम पड़ती है कि वह जो जान रहा था, वह कौन है? जिसने जान लिया कि चांद-तारे कितने हैं, लेकिन होगा क्या? दस हैं कि दस हजार हैं, कि दस करोड़ हैं कि दस अरब हैं, इससे होगा क्या। दस हैं, ऐसा जानने वाला भी वहीं खड़ा रहता है, दस करोड़ हैं, ऐसा जाननेवाला भी वहीं खड़ा रहता है; दस अरब हैं, ऐसा जानने वाला भी वहीं खड़ा

रहता है। जानकारी से जानने वाले में कोई भी परिवर्तन नहीं होता। लेकिन एक भ्रम जरूर पैदा होता है कि मैं जानने वाला हूं।
महावीर ऐसे जानने वाले को मिथ्या ज्ञानी कहते हैं। कहते हैं--जानने वाला जरूर है, लेकिन मिथ्या जानने वाला है। ऐसी चीजें जानने वाला है जिसे बिना जाने भी चल सकता था, और ऐसी चीज को छोड़ देने वाला है जिसके बिना जाने नहीं चल सकता। जो कीमती है, वह छोड़ देते हैं हम और जो गैर-कीमती है वह जान लेते हैं हम। आखिर में जानना इकट्ठा हो जाता है और जानने वाला खो जाता है। मरते वक्त हम बहुत कुछ जानते हैं, सिर्फ उसे ही नहीं जानते जो मर रहा है। अदभुत है यह बात कि आदमी अपने को नहीं जानता! इसलिए महावीर ने स्वाध्याय को कीमती अंतर-तपों में गिना है
स्वाध्याय चौथा अंतर-तप है। इसके बाद दो ही तप बच जाएंगे और उन दो तपों के बाद एक्सप्लोजन, विस्फोट घटित होता है। तो स्वाध्याय बहुत निकट की सीढ़ी है विस्फोट के। जहां क्रांति घटित होती है, जहां जीवन नया हो जाता है, जहां आपका पुनर्जन्म होता है, नया आदमी आपके भीतर पैदा होता है, पुराना समाप्त होता है। स्वाध्याय बहुत करीब आ गया। अब दो ही सीढ़ी बचती हैं और। इसलिए शास्त्र-अध्ययन स्वाध्याय का अर्थ नहीं हो सकता। शास्त्र-अध्ययन कितना कर रहे हैं लोग, लेकिन कहीं कोई क्रांति घटित नहीं मालूम होती। कहीं कोई विस्फोट नहीं होता है। सच तो यह है कि जितना आदमी शास्त्र को जानता है, उतना ही स्वयं को जानने की जरूरत कम मालूम पड़ती है। क्योंकि उसे लगता है कि सब जो भी जाना जा सकता है, मुझे मालूम है। महावीर क्या कहते हैं; बुद्ध क्या कहते हैं, क्राइस्ट क्या कहते हैं, वह जानता है। आत्मा क्या है, परमात्मा क्या है, वह जानता है--बिना जाने! यह मिरेकल है--बिना जाने! उसे कुछ भी पता नहीं है कि आत्मा क्या है! उसे कोई स्वाद नहीं मिला कभी आत्मा का। उसने परमात्मा की कभी कोई झलक नहीं पाई। उसने मुक्ति के आकाश में कभी एक पंख नहीं मारा। उसके जीवन में कोई किरण नहीं उतरी जिससे वह कह सके कि यह ज्ञान हैं, जिससे प्रकाश हो गया हो। सब अंधेरा भरा है और फिर भी वह जानता है कि सब जानता हूं! इसे महावीर मिथ्या ज्ञान कहते हैं।
शास्त्र से जो मिलता है वह सत्य नहीं हो सकता, स्वयं से जो मिलता है वही सत्य होता है। यद्यपि स्वयं से मिला गया शास्त्र में लिखा जाता है-- स्वयं से मिला गया शास्त्र में लिखा जाता है, लेकिन शास्त्र से जो मिलता है वह स्वयं का नहीं होता। शास्त्र कोई और लिखता है। वह किसी और की खबर है जो आकाश में उड़ा। वह किसी और की खबर है जिसने प्रकाश के दर्शन किए। वह किसी और की खबर है जिसने सागर में डुबकी लगाई। लेकिन आप किनारे पर बैठ कर पढ़ रहे हैं। इसको मत भूल जाना कि किनारे पर बैठ कर आप कितना ही पढ़ें, सागर में डुबकी लगाने वाले के वक्तव्य से आपकी डुबकी नहीं लग सकती। मगर डर यह है कि शास्त्र में डुबकी लगा लेते हैं लोग। और जो शास्त्र में डुबकी लगा लेते हैं वे भूल ही जाते हैं कि सागर अभी बाकी है। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि शास्त्र में डुबकी ऐसी लग जाती है कि वह भूल ही जाता है कि सागर भी आगे है। तो शास्त्र सागर की तरफ ले जाने वाला कम ही सिद्ध होता है, सागर की तरफ जाने में रुकावट वाला ज्यादा सिद्ध होता है। इसलिए महावीर शास्त्राध्ययन को स्वाध्याय नहीं कहते।
इसका यह मतलब नहीं है कि महावीर शास्त्र के अध्ययन को इनकार कर रहे हैं। लेकिन वह स्वाध्याय नहीं है। इसको अगर ख्याल में रखा जाए तो शास्त्र का अध्ययन भी उपयोगी हो सकता है। उपयोगी हो सकता है। अगर यह ख्याल में रहे कि शास्त्र का सागर सागर नहीं; और शास्त्र का प्रकाश प्रकाश नहीं; और शास्त्र का आकाश आकाश नहीं; और शास्त्र का परमात्मा परमात्मा नहीं; और शास्त्र का मोक्ष मोक्ष नहीं--अगर यह स्मरण रहे, और यह स्मरण रहे कि किसी ने जाना होगा, उसने शब्दों में कहा है; लेकिन शब्दों में कहते ही सत्य खो जाता है, केवल छाया रह जाती है--यह स्मरण रहे तो शास्त्र को फेंक कर किसी दिन सागर में छलांग लगाने का मन आ जाएगा। अगर यह स्मरण न रहे, सागर ही बन जाए शास्त्र, सत्य ही बन जाए शास्त्र, शास्त्र में ही सब भटकाव हो जाए तो सागर को छिपा लेगा शास्त्र।

और इसलिए कई बार अज्ञानी कूद जाते हैं परमात्मा में और ज्ञानी वंचित
रह जाते हैं। तथाकथित ज्ञानी, दि सो-कॉल्ड नोअर्स, वे वंचित रह जाते हैं। इसलिए उपनिषद कहते हैं कि अज्ञानी तो अंधकार में भटकते ही हैं, ज्ञानी महाअंधकार में भटक जाते हैं। स्वाध्याय का अर्थ है--स्वयं में उतरो और अध्ययन करो। पूरा जगत भीतर है। वह सब्जेक्टिव, वह आत्मगत जगत पूरा भीतर है। उसे जानने चलो, लेकिन रुख बदलना पड़ेगा। इसलिए स्वाध्याय का पहला सूत्र है--रुख। वस्तु के अध्ययन को छोड़ो, अध्ययन करने वाले का अध्ययन करो। जैसे उदाहरण के लिए, आप मुझे सुन रहे हैं। जब आप मुझे सुन रहे हैं तो आपने कभी ख्याल किया है कि जितनी तल्लीनता से आप मुझे सुनेंगे उतना ही आपको भूल जाएगा कि आप सुनने वाले हैं। जितनी तल्लीनता से आप मुझे सुनेंगे उतना ही आपके स्मरण के बाहर हो जाएगा कि आप भी यहां मौजूद हैं जो सुन रहा है। बोलने वाला प्रगाढ़ हो जाएगा, सुनने वाला भूल जाएगा। हालांकि आप बोलने वाले नहीं, सुनने वाले हैं। जब आप सुन रहे हैं तब दो घटनाएं घट रही हैं। शब्द जो आपके पास आ रहे हैं, आपसे बाहर हैं; और आप जो भीतर हैं। शब्द महत्वपूर्ण हो जाएंगे सुनते वक्त और सुनने वाला गौण हो जाएगा। और अगर आप पूरी तरह तल्लीन हो गए तो बिल्कुल भूल जाएगा। सेल्फ-फार्गेटफुलनेस हो जाएगी, आत्म-विस्मरण हो जाएगा।
मेरे पास लोग आते हैं। जब कोई मेरे पास आता है और वह कहता है--आज आप बहुत अच्छा बोले, तो मैं जानता हूं कि आज क्या हुआ। आज यह हुआ कि वह अपने को भूल गए, और कुछ नहीं हुआ--आत्म-विस्मरण हुआ। आज घंटे भर उनको अपनी याद न रही इसलिए वे कह रहे हैं कि बहुत अच्छा बोले। घंटे भर उनका मनोरंजन इतना हुआ कि उनको अपना पता भी न रहा। पंद्रह वर्ष से निरंतर सुबह-सांझ मैं बोलता रहा हूं। एक भी आदमी नहीं है वह, जो आकर कहता हो--कि आप आज बहुत ठीक बोले। वह कहता है--बहुत अच्छा बोले हैं। क्योंकि अगर ठीक बोले तो कुछ करना पड़ेगा। अच्छा बोले तो हो चुकी है बात। नहीं कहता कोई आदमी मुझसे कि सत्य बोले-- सुखद बोले! सत्य बोले, तो बेचैनी पैदा होगी। सुखद बोले, बात खत्म हो गई। सुख मिल चुका। लेकिन सुख आपको कब मिलता है वह मैं जानता हूं। जब भी आप अपने को भूलते हैं तभी सुख मिलता है--चाहे सिनेमा में भूलते हों; चाहे संगीत में भूलते हों; चाहे कहीं सुनकर भूलते हों; चाहे पढ़ कर भूलते हों; चाहे सेक्स में भूलते हों; चाहे शराब में भूलते हों। आपका सुख मुझे भलीभांति पता है कि कब मिलता है--जब आप अपने को भूलते हैं, तभी मिलता है।
लेकिन जब आप अपने को भूलते हैं तभी स्वाध्याय बंद होता है; जब आप अपने
को स्मरण करते हैं तब स्वाध्याय शुरू होता है। तो जब मैं बोल रहा हूं--एक प्रयोग करें, यहीं और अभी सिर्फ बोलने वाले पर ही ध्यान मत रखें, ध्यान को दोहरा कर दें, डबल एरोड, दोहरे तीर लगा दें ध्यान में--एक मेरी तरफ और एक अपनी तरफ। सुनने वाले का भी स्मरण रहे, वह जो कुर्सी पर बैठा है, वह जो आपकी हड्डी-मांस-मज्जा के भीतर छिपा है, जो कान के पीछे खड़ा है, जो आंख के पीछे देख रहा है, उसका भी स्मरण रहे। रिमेंबर, उसको स्मरण रखें।
कोई फिकर नहीं कि उसके स्मरण करने में अगर मेरी कोई बात चूक भी जाए, क्योंकि मेरी इतनी बातें सुन लीं उनसे कुछ भी नहीं हुआ, और चूक जाएगा तो कोई हर्ज होने वाला नहीं है। लेकिन उसका स्मरण रखें, वह जो भीतर बैठा है, सुन रहा है, देख रहा है, मौजूद है। उसकी प्रेजेंस अनुभव करें। हड्डी, मांस, कान, आंख के भीतर वह जो छिपा है, वह अनुभव करें, वह मालूम पड़े। ध्यान उस पर जाए तो आप हैरान होंगे, तब आपको जो मैं कह रहा हूं वह सुखद नहीं, सत्य मालूम पड़ना शुरू होगा।
और तब जो मैं कह रहा हूं वह आपके लिए मनोरंजन नहीं, आत्म-क्रांति बन जाएगा। और तब जो मैं कह रहा हूं, आपने सिर्फ सुना ही नहीं, जीया भी, जाना भी। क्योंकि जब आप भीतर की तरफ उन्मुख होकर खड़े होंगे तो आपको पता लगेगा कि जो मैं कह रहा हूं वह आपके भीतर छिपा पड़ा है। उससे तालमेल बैठना शुरू हो जाएगा। जो मैं कह रहा हूं वह आपको दिखाई भी पड़ने लगेगा कि ऐसा है। अगर मैं कह रहा हूं कि क्रोध जहर है, तो मेरे सुनने से वह जहर नहीं हो जाएगा, लेकिन अगर आप अपने प्रति जाग गए उसी क्षण और आपने भीतर झांका, तो आपके भीतर काफी जहर इकट्ठा है क्रोध का--रिजर्वायर है, वह दिखाई पड़ेगा। अगर वह दिख जाए

मेरे बोलते वक्त तो मैंने जो कहा वह सत्य हो गया। क्योंकि उसका पैरेलल, वास्तविक सत्य मेरे शब्द के पास जो होना चाहिए था, वह आपके अनुभव में आ गया। तब शब्द कोरा शब्द न रहा, तब आपके भीतर सत्य की प्रतीति भी हुई। सुनते वक्त बोलने वाले पर कम ध्यान रखें, सुनने वाले पर ज्यादा ध्यान रखें--सुनने वालों पर नहीं, सुनने वाले पर। सुनने वालों पर भी लोग ध्यान रख लेते हैं। देख लेते हैं आस-पास कि किस-किस को जंच रहा है। मुझे वैसे लोग भी आकर कहते हैं आज बहुत ठीक हुआ। मैं उनसे पूछता हूं--क्या बात हुई? वे कहते हैं--कई लोगों को जंचा। वे आस-पास देख रहे हैं कि किस किसको जंच रहा है। और कई लोग ऐसे हैं, जब तक दूसरों को न जंचे, उनको नहीं जंचता। बड़ा म्यूचुअल नानसेंस--पारस्परिक मूर्खता चलती है। देख लेते हैं आस-पास कि जंच रहा है तो उनको भी जंचता है। और उनको पता नहीं है कि बगल वाला उनको देख कर, उसको भी जंचता है।
हिटलर अपनी सभाओं में दस आदमी बिठा देता था जो वक्त पर ताली बजाते थे,
और दस हजार आदमी साथ बजाते थे। जब हिटलर ने पहली दफा अपने दस मित्रों को कहा कि तुम भीड़ में दूर-दूर खड़े होकर ताली बजाना तो उन्होंने कहा--हम बजाएंगे तो बड़े बेहूदे लगेंगे। दस आदमी ताली बजाएंगे, दस हजार में और कोई नहीं बजाएगा! हिटलर ने कहा कि मैं आदमियों को जानता हूं। पड़ोस के आदमी को देख कर वे बजाते हैं। तुम फिक्र छोड़ो। तुम सिर्फ जस्ट स्टार्ट, बजेगी ताली। हिटलर के इशारे पर वे ताली बजाते थे। वे चकित हुए कि दस हजार आदमी ताली बजा रहे हैं। क्यों? क्या हो गया? इनफेक्शन है। पड़ोस का बजा रहा है, जरूर कोई बात होगी। और जब आप बजाते हैं, तो आपका पड़ोस वाला सोचता है कि जरूर कोई बात कीमती होगी। लोग ऐसा न समझें--बुद्धू है, अपनी समझ में नहीं आया। वे भी बजा रहे हैं। दस आदमी दस हजार लोगों को ताली बजवा लेते हैं। कभी ख्याल में नहीं आता कि आप क्या कर रहे हैं? आप जो कपड़े पहने हुए हैं, वे किसी दूसरे आदमी ने आपको पहनवा दिए हैं, क्योंकि उसने पहने हुए थे। नहीं, सुनने वालों पर ध्यान नहीं, सुनने वाले पर ध्यान, स्वयं पर ध्यान भूल जाएं सुनने वालों को। उनकी कोई जरूरत नहीं है बीच में आकर खड़े होने की। रास्ते पर चल रहे हैं तो भीड़ दिखाई पड़ती है, दुकानें दिखाई पड़ती हैं; एक आदमी भर नहीं दिखाई पड़ता है, वह जो चल रहा है। वह भर मौजूद नहीं होता। उसका आपको पता ही नहीं होता जो चल रहा है। और सब होते हैं। बड़ी अदभुत अनुपस्थिति है! हम अपने से अनुपस्थित हैं। यह अनुपस्थिति को तोड़ने का नाम ही स्वाध्याय है। टु बी प्रेजेंट टु वनसेल्फ।
गुरजिएफ ने इसे सेल्फ रिमेंबरिंग कहा है, स्व-स्मृति कहा है--स्वयं का स्मरण। कोई भी काम ऐसा न हो पाए, कोई भी बात ऐसी न हो पाए, कोई भी घटना ऐसी न घटे जिसमें मेरे भीतर जो चेतना है वह विस्मृत हो जाए। उसका होश मुझे बना रहे। तो फिर शराब भी कोई पी रहा हो और अगर होश बनाए रखे अपने भीतर कि मैं शराब पी रहा हूं और मैं, मैं मौजूद हूं, तो शराब भी बेहोश नहीं कर पाएगी, और नहीं तो पानी भी बेहोश कर देता है। अगर यह स्मरण बना रहे कि मैं हूं तो शराब एक तरफ पड़ी रह जाएगी और वह चेतना निरंतर अलग खड़ी रहेगी। यह अलग खड़ा रहना चेतना का हम पानी के साथ भी नहीं कर पाते, शराब के साथ तो बहुत दूर होता है। जब हम पीते हैं पानी तो प्यास होती है, पानी होता है, पीने वाला नहीं होता है। होना चाहिए। पीने वाला पहले, प्यास बाद में, पानी और बाद में, तो स्वाध्याय शुरू हो गया।
स्वाध्याय का अर्थ है--मेरे जीवन का कोई कृत्य, कोई विचार, कोई घटना मेरी अनुपस्थिति में न घट जाए। मैं मौजूद रहूं--क्रोध हो तो मैं मौजूद रहूं, घृणा हो तो मैं मौजूद रहूं, काम हो तो मैं मौजूद रहूं। कुछ भी हो तो मैं मौजूद रहूं। मेरी मौजूदगी में घटे।
और महावीर कहते हैं कि बड़ा अदभुत है, जब तुम मौजूद होते हो तो जो गलत
है वह नहीं घटता। स्वाध्याय में गलत घटता ही नहीं। जब मैंने कहा--शराब पीते वक्त अगर आप मौजूद हों, तो आप यह मत समझना कि आपको शराब पीने की सलाह दे रहा हूं कि मजे से पीयो, मौजूद रहो। मौजूद किसको रहना है, लेकिन पीना तो जारी रख सकते हैं! मैं आपसे यह कह रहा हूं कि अगर शराब पीते वक्त आप मौजूद

रहे तो हाथ से गिलास छूट कर गिर जाएगा, शराब पीना असंभव है, क्योंकि जहर सिर्फ बेहोशी में ही पीए जा सकते हैं।
जब मैं आपसे कहता हूं--क्रोध करते वक्त मौजूद रहो तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि मजे से करो क्रोध और मौजूद रहो। बस शर्त इतनी है कि मौजूद रहो, और क्रोध करो, फिर कोई हर्ज नहीं है। मैं आपसे यह कह रहा हूं कि क्रोध करते वक्त अगर आप मौजूद रहे तो दो में से एक ही हो सकता है, या तो क्रोध होगा या आप होंगे। दोनों साथ मौजूद नहीं हो सकते। जब आप क्रोध करते वक्त मौजूद होंगे तो क्रोध खो जाएगा, आप होंगे। क्योंकि आपकी मौजूदगी में क्रोध जैसी रद्दी चीजें नहीं आ सकतीं। जब घर का मालिक जगा हो तो चोर प्रवेश नहीं करते। जब आप जगे हों तब क्रोध घुस जाए, यह हिम्मत क्रोध कर सकता है! आप जब सोए होते हैं तभी क्रोध प्रवेश कर सकता है। वह आपके उस कमजोर क्षण का ही उपयोग कर सकता है, जब आप बेहोश हैं। जब आप होश में हैं तो क्रोध नहीं होगा। इसलिए महावीर जब कहते हैं कि होशपूर्वक जीयो, अप्रमाद से जीयो, जागते हुए जीयो, तो मतलब केवल इतना ही है कि जागकर जीने में जो-जो गलत है वह अपने आप गिर जाएगा। और यह अनुभव आपको होगा स्वाध्याय से कि गलत इसलिए हो रहा था कि मैं सोया हुआ था। गलत के होने का और कोई कारण नहीं है, नो रीजन एट ऑल। सिर्फ एक ही कारण है कि आप सोए हुए हैं।
इसलिए महावीर ने कहा--क्षण में भी मुक्ति हो सकती है। इसी क्षण भी मुक्ति हो सकती है। अगर कोई पूरा जाग जाए, तो गलत इसी वक्त गिर जाता है। तो महावीर यह भी नहीं कहते कि कल के लिए भी रुकना जरूरी है। यह दूसरी बात है कि आप न जाग पाएं तो कल के लिए रुकना पड़े। अगर समग्रता से क्रोध इसी क्षण में जाग जाए तो सब गिर गया कचरा। जिससे हमें लगता था कि हम बंधे हैं, जिससे लगता था जन्मों-जन्मों का कर्म और पाप--वह सब गिर गया।
स्वाध्याय से यह पता चलेगा कि एक ही पाप है--मूर्च्छा, और एक ही पुण्य है--जाग्रत। और स्वाध्याय से यह पता चलेगा कि जब भी हम सोए होते हैं तो जो भी हम करते हैं, वह गलत होता है--ऐसा नहीं कि कुछ गलत होता है, कुछ ठीक होता है--जो भी हम करते हैं वह गलत होता है। और जब हम जागे होते हैं तो ऐसा नहीं कि कुछ गलत और कुछ सही हो सकता है--जो भी होता है वह सही होता है। तो महावीर ने यह नहीं कहा है कि तुम सही करो; महावीर ने कहा है, जाग कर करो, होशपूर्वक करो, स्मृतिपूर्वक करो। क्योंकि स्मृतिपूर्वक गलत होता ही नहीं, ऐसे ही जैसे अंधेरे में मैं टटोलूं और दीवाल से सिर टकरा जाए और दरवाजा न मिले और प्रकाश हो जाए तो दरवाजा मिल जाए, दीवार से टकराना न पड़े।
तो महावीर यह नहीं कहते कि बिना टकराए हुए निकलो। महावीर कहते हैं, रोशनी कर लो और निकल जाओ। क्योंकि अंधेरे में टकराओगे ही। मोक्ष भी खोजोगे तो टकराओगे। परमात्मा को भी खोजोगे तो टकराओगे। अंधेरे में तो कुछ भी करोगे तो टकराओगे, क्योंकि अंधेरा है। और अंधेरे का कोई और कारण नहीं है क्योंकि हम आब्जेक्ट फोकस्ड हैं, हम वस्तुओं पर सारा ध्यान लगाए हुए हैं। वह ध्यान ही रोशनी है। वस्तुओं पर पड़ती हैं तो वस्तुएं चमकने लगती हैं।
कभी आपने ख्याल किया, रोज रास्ते से निकलते हैं। आपके पास साइकिल भी नहीं है। तो कार देख कर आपके मन में ऐसा ख्याल नहीं आता कि कार खरीद लें। इसलिए कार पर आपका बहुत ध्यान नहीं पड़ता। हां कभी-कभी पड़ता है जब कार बगल से कीचड़ उछाल देती है आपके ऊपर निकलते वक्त, तब ध्यान जाता है। ऐसे ध्यान नहीं जाता। आपका फोकस कार पर नहीं बैठता, और जब तक कार पर आपके ध्यान का आपका फोकस नहीं बैठता, तब तक कार को लेने की वासना नहीं उठती।
लेकिन आज आपको लाटरी मिल गई--लाख रुपये मिल गए। अब आप उसी सड़क से गुजरिए, आप हैरान होंगे, आपका फोकस बदल गया। आज आप वह चीजें देखते हैं जो कल आपने देखी नहीं थीं। कल आपके पास साइकिल भी नहीं थी तो कभी-कभी साइकिल पर फोकस लगता था कि कभी दो सौ रुपये इकट्ठे हो जाएं तो एक साइकिल खरीद लें। कभी-कभी रात सपने में साइकिल पर बैठ कर निकल जाते थे। कभी-कभी साइकिल पर बैठा हुआ आदमी ऐसा लगता था कि पता नहीं कैसा आनंद ले रहा होगा। लेकिन फोकस की सीमा है। कार वाले आदमी से प्रतिस्पर्धा नहीं जगती थी, सिर्फ क्रोध जगता था। साइकिल वाले आदमी से प्रतिस्पर्धा जगती थी, क्रोध नहीं जगता था--

एप्रोचेबल था। सीमा के भीतर था, हम भी हो सकते थे साइकिल पर, जरा वक्त की बात थी।
लेकिन आज आपको लाख रुपए मिल गए हैं, आज साइकिल पर आ पका ध्यान ही नहीं जमता, आज साइकिल ख्याल में नहीं आती कि साइकिल भी चल रही है। आज एकदम कारें दिखाई पड़ती हैं। आज कारों में पहली दफा फर्क मालूम पड़ते हैं कि कौन सी कार बीस हजार की है, कौन सी पचास हजार की है, कौन सी लाख की है। यह फर्क कभी नहीं दिखाई पड़ा था, कार कार थी। यह फर्क कभी नहीं दिखाई पड़ा था, यह फर्क आज दिखाई पड़ेगा फोकस में। आज चेतना उस तरफ बह रही है, आज लाख रुपये जेब में हैं। आज वे लाख रुपये उछलना चाहते हैं। आज वे लाख कहते हैं लगाओ ध्यान कहीं। ये लाख रुपये कैसे बैठे रहेंगे, वे कहीं जाना चाहते हैं। वे गति करना चाहते हैं। आज आपका ध्यान दूसरी ही चीजों को पकड़ेगा। आज मकान दिखाई पड़ेंगे जो लाख में खरीदे जा सकते हैं। कार दिखाई पड़ेगी। दुकानों में चीजें दिखाई पड़ेंगी जो आपको कभी नहीं दिखाई पड़ीं थी। सदा थीं, पर आपको कभी दिखाई नहीं पड़ी थीं। बात क्या है? आपको वही दिखाई पड़ता है जिस तरफ आ पका ध्यान होता है। वह नहीं दिखाई पड़ता है जिस तरफ आपका ध्यान नहीं होता।
हमारा सारा ध्यान बाहर की तरफ है, इसलिए भीतर अंधेरा है। आता भीतर से
ही है यह ध्यान, लेकिन भीतर अंधेरा है क्योंकि ध्यान वस्तुओं की तरफ है। स्वाध्याय का अर्थ है--इस रोशनी को भीतर की तरफ मोड़ लो--भीतर देखना शुरू करना। कैसे देखेंगे? तो एक दो उदाहरण ध्यान में ले लें। एक आदमी आता है और आपको गाली देता है। जब वह गाली देता है तब दो घटनाएं घट रही हैं। वह आदमी गाली दे रहा है, यह घट रही है, आब्जेक्टिव है, बाहर है। वह आदमी बाहर है, उसकी गाली बाहर है। आपके भीतर क्रोध उठ रहा है, यह दूसरी घटना घट रही है। यह भीतर है, यह सब्जेक्टिव है। आप कहां ध्यान देते हैं? उसकी गाली पर ध्यान देते हैं तो स्वाध्याय नहीं हो पाएगा। अपने क्रोध पर ध्यान देते हैं, स्वाध्याय हो जाएगा।
एक सुंदर स्त्री रास्ते पर दिखाई पड़ी, कामवासना भीतर उठ गई। आप उस स्त्री का पीछा करते हैं, ध्यान में, तो स्वाध्याय नहीं हो पाएगा। आप उस स्त्री को छोड़ते हैं और भीतर जाते हैं और देखते हैं कि कामवासना किस तरह भीतर उठ रही है, तो स्वाध्याय शुरू हो जाएगा। जब भी कोई घटना घटती है उसके दो पहलू होते हैं--आब्जेक्टिव और सब्जेक्टिव, वस्तुगत और आत्मगत। जो आत्मगत पहलू है, उस पर ध्यान को ले जाने का नाम स्वाध्याय है। जो वस्तुगत पहलू है उस पर ध्यान को ले जाने का नाम मूर्च्छा है। लेकिन हम सदा बाहर ध्यान ले जाते हैं।
जब कोई हमें गाली देता है तो हम उसकी गाली को कई बार दोहराते हैं कि किस तरह दी, उसके चेहरे का ढंग क्या था, क्यों दी, वह आदमी कैसा है, हम उसका पूरा इतिहास खोजते हैं। जो बातें हमने उस आदमी में पहले कभी नहीं देखी थीं, वह हम सब देखते हैं कि नहीं, वह आदमी ऐसा था ही, पहले से ही पता था, अपनी भूल थी, ख्याल न किया। वह गाली कभी भी देता, वह औरों को भी गाली दिया है। फलां आदमी ने यह कहा था कि वह आदमी गाली देता है। आप उस आदमी पर सारी चेतना को दौड़ा देंगे और जरा भी ख्याल न करेंगे कि आप आदमी कैसे हैं भीतर, भीतर क्या हो रहा है? उसकी छोटी सी गाली आपके भीतर क्या कर गई है।
हो सकता है, वह आदमी तो गाली देकर घर सो गया हो मजे में। आप रात भर जग रहे हैं और सोच रहे हैं। हो सकता है, उसने गाली यों ही दी हो, मजाक ही किया हो। कुछ लोग गाली मजाक तक में दे रहे हैं। उसे ख्याल ही न हो कि उसने गाली दी है।
मेरे गांव में, मेरे घर के सामने एक बूढ़ा मिठाईवाला था। वह बहरा भी था,
और गाली, तकियाकलाम थी। मतलब चीजें भी खरीदे तो बिना गाली दिए नहीं खरीद सकता था किसी से। तो अक्सर यह हो जाता था कि वह घास वाली से घास खरीद रहा है और गाली दे रहा है। और वह घासवाली कह रही है कि लेना हो तो ले लो, मगर गाली तो मत दो! तो वह अपने को गाली देकर कहता है कि कौन साला गाली दे रहा है? उसको पता ही नहीं है। वह कहता है--कौन साला गाली दे रहा है? गाली दे ही कौन रहा है? वह गाली दे रहा है, वह इसमें भी अब वह अपने को ही गाली दे रहा है। और अपने को तो कोई गाली नहीं देना चाहता है!

नहीं, इसका कोई बोध नहीं है, गाली इतनी सहज हो गई है कि जो आदमी आपको गाली दे गया, हो सकता है उसे पता ही न हो। आप जो व्याख्याएं निकाल रहे हैं वह आप ही निकाल रहे हैं। भीतर जाएं कृपा करके, उस आदमी की फिकर छोड़ें। भीतर देखें कि उस आदमी ने गाली दी तो मेरे भीतर क्या-क्या व्याख्या पैदा होती है, उसकी गाली की। वह व्याख्या उस आदमी के संबंध में कुछ भी नहीं कहती, सिर्फ आपके संबंध में कुछ कहती है कि आप आदमी कैसे हैं।
अगर आपको गाली दी जाए तो आपके भीतर क्या-क्या होगा, इसको देखें। आप क्या-क्या व्याख्या करते हैं, आपके भीतर क्रोध कैसे उठता है, आप उससे क्या- क्या प्रतिकार लेना चाहते हैं? हत्या करना चाहते हैं; गाली देना चाहते हैं; गर्दन दबाना चाहते हैं; क्या करना चाहते हैं? इस पूरे को उतर जाएं देखने। आप अनुभवी होकर बाहर लौटेंगे। आप इस स्वाध्याय से ज्ञानी होकर बाहर लौटेंगे।
इसके दो मजे होंगे--एक तो आपकी अपने संबंध में जानकारी बढ़ गई होगी। और साथ ही आपको यह भी पता चल गया होगा कि महत्वपूर्ण यह नहीं है कि उसने गाली दी, महत्वपूर्ण यह है कि मैंने कैसा अनुभव किया। और मजा यह है कि आप उसका गाली का उत्तर देने अब कभी न जाएंगे। क्योंकि आप बदल गए होंगे इस ज्ञान से, इस स्वाध्याय से, आप वही आदमी नहीं रह गए जिसको गाली दी गई थी। समथिंग हैज बीन एडेड, समथिंग हैज बीन रिवील्ड। नया कुछ जुड़ गया। सुबह आप दूसरे आदमी होंगे। हो सकता है, आप उससे क्षमा मांग आएं। हो सकता है, आप पाएं कि उसने गाली ठीक ही दी। हो सकता है, आप पाएं कि उसकी गाली उतनी मजबूत न थी जितनी होनी चाहिए थी, जितना बुरा मैं आदमी हूं। हो सकता है कि आप उससे जाकर कहें कि तेरी गाली बिल्कुल ठीक थी और अंडर एस्टिमेटेड थी--यानी मैं आदमी जरा ज्यादा बुरा हूं। यह सब हो सकता है। या हो सकता है, सुबह आप पाएं कि उसकी गाली पर सिर्फ आपको हंसी आ रही है, और कुछ भी नहीं हो रहा है।
यह स्वाध्याय है, यह मैंने उदाहरण के लिए कहा। आपके जीवन की प्रत्येक छोटी सी वृत्ति में, छोटी सी लहर में इसका उपयोग करें। यह शास्त्र आपके भीतर का खुलना शुरू हो जाएगा। पहले इस शास्त्र में गंदगी ही गंदगी मिलेगी, क्योंकि वही हमने इकट्ठी की है, वही हमारा संग्रह है। लेकिन जितनी वह गंदगी मिलेगी उतने आप स्वच्छ होते चले जाएंगे। क्योंकि गंदगी बचाना हो तो गंदगी को न जानना जरूरी है, और गंदगी को मिटाना हो तो जानना ही एकमात्र सूत्र है। जितना आप छिपाए रखते हैं अपनी गंदगी को, वह उतनी ही गहरी बनती जाती है, मजबूत होती चली जाती है। जब आप खुद ही उसको उखाड़ने लगते हैं और देखने लगते हैं तो उसकी पर्तें टूटने लगती हैं, उसकी जड़ें उखड़ने लगती हैं। जाएं भीतर और आप पाएंगे कि बहुत गंदगी है लेकिन जितनी गंदगी आ पको दिखाई पड़ेगी, एक और मजेदार और विपरीत घटना घटेगी और आपको लगेगा आप उतने ही स्वच्छ होते जा रहे हैं। जितने भीतर जाएंगे, उतनी गंदगी कम होती जाएगी। और इसलिए एक मजा और आने लगेगा कि भीतर गंदगी कम होती जाती है तो और भीतर जाने का रस और आनंद आने लगता है। भीतर कंकड़-पत्थर नहीं, हीरे-जवाहरात दिखाई पड़ने लगते हैं, तो दौड़ तेज हो जाती है। और एक घड़ी आएगी कि आप जब सच में भीतर पहुंचेंगे--सच में भीतर, क्योंकि यह जो भी है, यह भी बाहर और भीतर के बीच में है। इसे हम भीतर कह रहे हैं सिर्फ इसलिए कि स्वाध्याय के लिए इसे भीतर समझना जरूरी है।
जितने आप भीतर जाएंगे, जिस दिन आप सेंटर पर पहुंचेंगे, केंद्र पर पहुंचेंगे, उस दिन कोई गंदगी नहीं रह जाएगी। उस दिन आप पाएंगे कि जीवन में उस स्वच्छता का अनुभव हुआ है जिसका अब कोई अंत नहीं है। आपने वह ताजगी पा ली जो अब बूढ़ी नहीं होगी। आपने उस निर्दोषता के तल को छू लिया जिसको कोई कालिमा स्पर्श नहीं कर सकती है। आप उस प्रकाश को पा लिए जहां कोई अंधकार प्रवेश नहीं करता है।
लेकिन यह क्रमशः भीतर उतरना। इसलिए स्वाध्याय को महावीर ने अंतिम नहीं कहा, चौथा तप कहा है। अभी और भी कुछ करने को भीतर शेष रह जाता है। उन दो तपों के संबंध में हम आगे आने वाले दो दिनों में बात करेंगे। पांचवां तप हैः ध्यान; छठवां तप हैः कायोत्सर्ग। पर स्वाध्याय के बिना कोई ध्यान

में नहीं जा सकता। इसलिए महावीर ने जो सीढ़ियां कही हैं, वे अति वैज्ञानिक हैं।
लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं--ध्यान में जाना है। मैं उनकी कठिनाई जानता हूं। वे स्वाध्याय में नहीं जाना चाहते, क्योंकि स्वाध्याय बहुत पीड़ादायी है। और ध्यान में क्यों जाना चाहते हैं? क्योंकि किताबों में पढ़ लिया है, गुरुओं को कहते सुन लिया है कि ध्यान में जाने से बड़ा आनंद आता है।
लेकिन जो अपने अर्जित दुख में जाने को तैयार नहीं है वह अपने स्वभाव
के आनंद में जा नहीं सकता है। पहले तो दुख से गुजरना पड़ेगा; तभी, तभी सुख की झलक मिलेगी। नरक से गुजरे बिना कोई स्वर्ग नहीं है। क्योंकि हमने नरक निर्मित कर लिया है, हम उसमें खड़े हैं। प्रत्येक आदमी यह चाहता है कि नरक में से एकदम स्वर्ग मिल जाए, यहीं। इस नरक को मिटाना न पड़े और स्वर्ग मिल जाए। यह नहीं हो सकता। क्योंकि स्वर्ग तो यहीं मौजूद है, लेकिन हमारे बनाए हुए नरक में छिप गया है, ढंक गया है। ध्यान रहे, स्वर्ग स्वभाव है और नरक हमारा एचीवमेंट, हमारी उपलब्धि है। बड़ी मेहनत करके हमने नरक को बनाया है, बड़ा श्रम उठाया है। उसे गिराना पड़ेगा। स्वाध्याय उसे गिराने के लिए कुदाली का काम करता है। जैसे कोई मकान को खोदना शुरू कर दे।

आज इतना ही।
पर पांच मिनट रुकें, धुन में भागीदार हों और फिर जाएं।

महावीर-वाणी, भाग 1
सत्रहवां प्रवचन

सामायिकः स्वभाव में ठहर जाना (धम्म-सूत्र)

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मे सया मणो।।

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

ग्यारहवां या पांचवां अंतर-तप है ध्यान। जो दस तपों से गुजरते हैं उन्हें तो ध्यान को समझना कठिन नहीं होता। लेकिन जो केवल दस तपों को समझ से समझते हैं, उन्हें ध्यान को समझना बहुत कठिन होता है। फिर भी कुछ संकेत ध्यान के संबंध में समझे जा सकते हैं। ध्यान को तो करके ही समझा जा सकता है, इशारे कुछ बाहर से ध्यान के संबंध में समझे जा सकते हैं। ध्यान प्रेम जैसा है--जो करता है, वही जानता है; या तैरने जैसा है--जो तैरता है, वही जानता है।
तैरेने के संबंध में कुछ बातें कही जा सकती हैं, और प्रेम के संबंध में बहुत बातें कही जा सकती हैं। फिर भी प्रेम के संबंध में कितना भी समझ लिया जाए तो भी प्रेम समझ में नहीं आता। क्योंकि प्रेम एक स्वाद है, एक अनुभव है, एक अस्तित्वगत प्रतीति है। तैरना भी एक एक्झिस्टेंशियल, एक सत्तागत प्रतीति है। आप दूसरे व्यक्ति को तैरते हुए देख कर भी नहीं जान सकते कि वह कैसा अनुभव करता है। आप दूसरे व्यक्ति को प्रेम में डूबा हुआ देख कर भी नहीं जान सकते कि उसे प्रेम किन-किन यात्राओं पर ले जाता है। ध्यान में खड़े महावीर को देख कर भी नहीं जान सकते कि ध्यान क्या है। ध्यान के संबंध महावीर स्वयं भी कुछ कहें तो भी नहीं समझा पाते ठीक से
कि ध्यान क्या है? कठिनाई और भी बढ़ जाती है, प्रेम से भी ज्यादा, कि चाहे कितना ही कम जानते हों लेकिन प्रेम का कोई न कोई स्वाद हम सबको है। गलत ही सही, गलत प्रेम का ही सही, तो भी प्रेम का स्वाद है। गलत ध्यान का भी हमें कोई स्वाद नहीं है, ठीक ध्यान की बात तो बहुत दूर है। गलत ध्यान का भी हमें कोई स्वाद नहीं है जिसके आधार पर समझाया जा सके कि ठीक क्या है। गलत ध्यान में भी हम अपने को रोक लेते हैं।
महावीर ने दो तरह के गलत ध्यान भी कहे हैं। महावीर ने कहा है कि जो व्यक्ति तीव्र क्रोध में आ जाता है वह एक तरह के गलत ध्यान में आ जाता है। अगर आप कभी तीव्र क्रोध में आए हैं तो एक प्रकार के गलत ध्यान में आपने प्रवेश किया है। लेकिन हम तीव्र क्रोध में भी कभी नहीं आते। हम कुनकुने जीते हैं, ल्यूकवार्म; कभी हम उबलती हालत में नहीं आते। अगर आप गहरे क्रोध में आ जाएं, इतने गहरे क्रोध में आ जाएं कि क्रोध ही शेष रह जाए, क्रोध ही एकाग्र हो जाए, जीवन की सारी ऊर्जा क्रोध के बिंदु पर ही दौड़ने लगे। सारी किरणें जीवन की शक्ति की क्रोध पर ही ठहर जाएं, तो आपको गलत ध्यान का अनुभव होगा।
महावीर ने कहा है कि अगर कोई गलत ध्यान में भी उतरे तो उसे ठीक ध्यान में लाना आसान है। इसलिए अकसर ऐसा हुआ है कि परम क्रोधी क्षण भर में परम क्षमा की मूर्ति बन गए। लेकिन धीमे-धीमे जलते हुए जो क्रोधी हैं उन्हें गलत ध्यान का भी कोई पता नहीं है। अगर राग पूरी तरह हो, वासना पूरी तरह हो, पैशन पूरी तरह हो जैसा कि कोई मजनू या फरियाद जब अपने पूरे राग से पागल हो जाता है तब वह भी एक तरह के गलत ध्यान में प्रवेश करता है। तब लैला के सिवाय मजनू को कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता--राह चलते दूसरे लोगों में भी वही दिखाई पड़ती है; खड़े हुए वृक्षों में भी वही दिखाई पड़ती है; चांद-तारों में भी वही दिखाई पड़ती है। इसीलिए तो हम उसे पागल कहते हैं।

और लैला उसे जैसी दिखाई पड़ती है वैसी हमको, किसी को भी दिखाई नहीं पड़ती। उसके गांव के लोग उसे बहुत समझाते रहे कि बहुत साधारण सी औरत है। तू पागल हो गया है। गांव के राजा ने मजनू को बुलाया और अपने परिचित मित्रों की बारह लड़कियों को सामने खड़ा किया जो कि सुंदरतम थीं उस राज्य की। और राजा ने कहाः तू पागल न बन, तुझ पर दया आती है। तुझको सड़कों पर रोते देख कर पूरा गांव पीड़ित है। तू इन बारह सुंदर लड़कियों में से जिसे चुन ले, मैं उसका विवाह तुझसे करवा दूं।
लेकिन मजनू ने कहा कि मुझे सिवाय लैला के कोई यहां दिखाई नहीं पड़ता।
और उस राजा ने कहाः तू पागल हो गया है? लैला बहुत साधारण लड़की है।
तो मजनू ने कहा कि लैला को देखना हो तो मजनू की आंख चाहिए। आपको लैला दिखाई नहीं पड़ सकती। और जिसे आप देख रहे हैं वह लैला नहीं है। उसे मैं देखता हूं।
अब यह जो मजनू कहता है कि मजनू की आंख चाहिए, यह गलत ध्यान का एक रूप है। इतना ज्यादा कामासक्त है, इतना राग से भर गया है कि नैरोडाउन, सारी चेतना एक बिंदु पर सिकुड़ कर खड़ी हो गई है। वह चेतना का बिंदु लैला बन गई है। महावीर ने इन्हें गलत ध्यान कहा है।
यह बहुत मजे की बात है कि महावीर इस जमीन पर अकेले आदमी हैं जिन्होंने गलत ध्यान की भी चर्चा की है। ठीक ध्यान की चर्चा बहुत लोगों ने की है। यह बड़ी विशिष्ट बात है कि महावीर कहते हैं कि है तो यह भी ध्यान--उलटा है, शीर्षासन करता हुआ है। जितना ध्यान मजनू का लैला पर लगा है इतना मजनू का मजनू पर लग जाए तो ठीक ध्यान हो जाए। शीर्षासन करती हुई चेतना है--"पर" पर लगी है, दूसरे पर लगी है। दूसरे पर जब इतनी सिकुड़ जाती है चेतना तब भी ध्यान ही फलित होता है, लेकिन उलटा फलित होता है, सिर के बल फलित होता है। अपनी ओर लग जाए उतनी ही चेतना तो ध्यान पैर खड़ा हो जाता है। सिर के बल खड़े हुए ध्यान से कोई गति नहीं हो सकती।
इसलिए सिर के बल खड़े हुए सभी ध्यान सड़ जाते हैं। क्योंकि गत्यात्मक नहीं हो सकते। सिर के बल चलिएगा कैसे? पैर के बल चला जा सकता है--यात्रा करनी हो तो पैर के बल। चेतना जब पैर के बल खड़ी होती है तो अपनी तरफ उन्मुख होती है, तब गति करती है। और ध्यान जो है, वह डाइनैमिक फोर्स है। उसे सिर के बल खड़े कर देने का मतलब है, उसकी हत्या कर देना। इसलिए जो लोग भी गलत ध्यान करते हैं वे आत्मघात में लगते हैं, रुक जाते हैं, ठहर जाते हैं। मजनू ठहरा हुआ है लैला पर और इस बुरी तरह ठहरा हुआ है कि जैसे तालाब बन गया है। अब वह एक सरिता न रहा जो सागर तक पहुंच जाए। और लैला कभी मिल नहीं सकती।
यह दूसरी कठिनाई है गलत ध्यान की कि जिस पर आप लगाते हैं उसकी उपलब्धि नहीं हो सकती। क्योंकि दूसरे को पाया ही नहीं जा सकता, वह असंभव है,
दूसरे को पाने का कोई उपाय ही नहीं है। इस अस्तित्व में सिर्फ एक ही चीज पाई जा सकती है, और वह मैं हूं, वह मैं स्वयं हूं, उसको ही मैं पा सकता हूं। शेष सारी चीजों पर मैं पाने की कितनी ही कोशिश करूं, वे सारी कोशिशें असफल होंगी। क्योंकि जो मेरा स्वभाव है वही केवल मेरा हो सकता है; जो मेरा स्वभाव नहीं है वह कभी भी मेरा नहीं हो सकता है। मेरे होने की भ्रांतियां हो सकती हैं, लेकिन भ्रांतियां टूटेंगी और पीड़ा और दुख लाएंगी।
इसलिए गलत ध्यान नरक में ले जाता है। सिर के बल खड़ी हुई चेतना अपने ही हाथ से अपना नरक खड़ा कर लेती है। और हम बड़े मजेदार लोग हैं। हम जब नरक में होते हैं, तब हम ध्यान वगैरह के बाबत सोचने लगते हैं। जब आदमी दुख में होता है तो वह पूछता है शांति कैसे मिले। अशांति में होता है तो पूछता है शांति कैसे मिले। मेरे पास लोग आते हैं और वे कहते हैं, और कहते हैं; सुनते हैं ध्यान से बड़ी शांति मिलती है तो हमें ध्यान का रास्ता बता दीजिए। और मजा यह है कि जो अशांति उन्होंने पैदा की है उसमें से कुछ भी वे छोड़ने को तैयार नहीं हैं। अशांति उन्होंने पैदा की है, पूरी मेहनत उठाई है, श्रम किया है। मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपने गांव के फकीर के दरवाजे को रात दो बजे खटखटा रहा है। वह फकीर उठा, उसने कहाः भई इतनी रात! और नीचे देखा तो नसरुद्दीन खड़ा है। तो उसने कहाः नसरुद्दीन कभी तुझे मस्जिद में नहीं देखा, कभी तू मुझे सुनने-समझने नहीं आता। आज दो बजे रात! फिर भी फकीर नीचे

आया। कोई हर्ज नहीं, रात दो बजे आया। पास आया तो देखा कि शराब में डोल रहा है, नशे में खड़ा है। नसरुद्दीन ने पूछा कि जरा ईश्वर के संबंध में पूछने आया हूं। उस फकीर ने कहा कि सुबह आना। व्हेन यू आर सोबर, कम देन। जब होश में रहो तब आना। नसरुद्दीन ने कहाः बट दि डिफिकल्टी इज व्हेन आई एम सोबर, आई डैम केअर अबाउट योर गॉड। जब मैं होश में होता हूं तब तुम्हारे ईश्वर की मुझे चिंता ही नहीं होती है। यह तो मैं नशे में हूं इसीलिए आया हूं। ईश्वर है या नहीं?
हम सब ऐसी ही हालत में पहुंचते हैं। जब हम सुख में होते हैं तब हमें ध्यान की जरा भी चिंता नहीं पैदा होती और जब हम दुख में होते हैं तब हमें ध्यान की चिंता पैदा होती है। और कठिनाई यह है कि दुखी चित्त को ध्यान में ले जाना बहुत कठिन है, क्योंकि दुखी चित्त गलत ध्यान में लगा हुआ होता है। दुख का मतलब ही गलत ध्यान है। जब आप पैर के बल खड़े होते हैं तब आपकी चलने की कोई इच्छा नहीं होती। जब आप सिर के बल खड़े होते हैं तब आप मुझसे पूछते हैं आकर कि चलने का कोई रास्ता है? और अगर मैं आपसे कहूं कि जब आप पैर के बल खड़े हों तब ही चलने का रास्ता काम कर सकता है, तो आप कहते हैं कि जब हम पैर के बल खड़े होते हैं तब तो हमें चलने की इच्छा ही नहीं होती।
इसलिए महावीर ने पहले तो गलत ध्यान की बात की है ताकि आपको साफ हो जाए
कि आप गलत ध्यान में तो नहीं हैं। क्योंकि गलत ध्यान में जो है उसे ध्यान में ले जाना अति कठिन हो जाता है। अति कठिन इसलिए नहीं कि नहीं जाएगा। अति कठिन इसलिए है कि वह गलत ध्यान का प्रयास जारी रखता है। जब आप कहते हैं, मैं शांत होना चाहता हूं तब आप अशांत होने की सारी चेष्टा जारी रखते हैं, और शांत होना चाहते हैं। और अगर आपसे कहा जाए, अशांत होने की चेष्टा छोड़ दीजिए, तो आप कहते हैं वह तो हम समझते हैं, लेकिन शांत होने का उपाय बताएं। और आपको पता ही नहीं है कि शांत होने के लिए कुछ भी नहीं करना पड़ता है। सिर्फ अशांत होने की चेष्टा जो छोड़ देता है वह शांत हो जाता है। शांति कोई उपलब्धि नहीं हैं, अशांति उपलब्धि है। शांति को पाना नहीं है, अशांति को पा लिया है। अशांति का अभाव शांति बन जाता है। गलत ध्यान का अभाव कि ध्यान की शुरुआत हो जाती है।
तो गलत ध्यान का अर्थ है--अपने से बाहर किसी भी चीज पर एकाग्र हो जाना।
द अदर ओरिएंटेड कांशसनेस, दूसरे की तरफ बहती हुई चेतना गलत ध्यान है। और इसलिए महावीर ने परमात्मा को कोई जगह नहीं दी है। क्योंकि परमात्मा की तरफ बहती हुई चेतना को भी महावीर कहते हैं गलत ध्यान। क्योंकि परमात्मा आप दूसरे की तरह ही सोच सकते हैं और अगर स्वयं की तरह सोचेंगे तो बड़ी हिम्मत चाहिए। अगर आप यह सोचेंगे कि मैं परमात्मा हूं तो बड़ा साहस चाहिए। एक तो आप न सोच पाएंगे और आपके आस-पास के लोग भी न सोचने देंगे कि आप परमात्मा हैं। और जब कोई सोचेगा कि मैं परमात्मा हूं तो फिर परमात्मा की तरह जीना भी पड़ेगा। क्योंकि सोचना खड़ा नहीं हो सकता जब तक आप जिएं न। सोचने में खून न आएगा जब तक आप जिएंगे नहीं। हड्डी-मांस-मज्जा नहीं बनेगी जब तक आप जीएंगे नहीं।
तो परमात्मा की तरह जीना हो अगर तब तो ध्यान की कोई जरूरत नहीं रह जाती। इसलिए महावीर कहते हैं--परमात्मा को तो आप सदा दूसरे की तरह ही सोचेंगे। और इसलिए जितने धर्म परमात्मा को मान कर शुरु होते हैं, उनमें ध्यान विकसित नहीं होता हैं, प्रार्थना विकसित होती है। और प्रार्थना और ध्यान के मार्ग बिल्कुल अलग-अलग हैं।
प्रार्थना का अर्थ हैः दूसरे के प्रति निवेदन; ध्यान में कोई निवेदन नहीं है। प्रार्थना का अर्थ हैः दूसरे की सहायता की मांग; ध्यान में कोई सहायता की मांग नहीं है। क्योंकि महावीर कहते हैं--दूसरे से जो मिलेगा वह मेरा कभी भी नहीं हो सकता, मिल भी जाए तो भी। पहले तो वह मिलेगा नहीं, मैं मान ही लूंगा कि मिला। और दूसरे से मिला हुआ, माना हुआ कि मिला हुआ है, तो आज नहीं कल छूटेगा और दुख लाएगा, पीड़ा लाएगा।
इसलिए महावीर कहते हैं--अगर पीड़ा के बिल्कुल पार हो जाना है तो दूसरे
से ही छूट जाना पड़ेगा। दूसरे के साथ जो भी संबंध है वह टूट सकता है, परमात्मा के साथ संबंध भी टूट सकता है। संबंध का अर्थ ही होता है कि जो टूट

भी सकता है। रिलेशनशिप का मतलब ही यह होता है कि जो बन सकती है और टूट सकती है। महावीर कहते हैं--जो बन सकता है, वह बिगड़ सकता है। इसलिए बनाने की कोशिश ही मत करो। तुम तो उसे जान लो जो अनबना है, अनक्रिएटेड है। जो तुम्हारे भीतर है, कभी बना नहीं है, इसलिए उसके मिटने का कोई डर नहीं है। वही तुम्हारा हो सकता है, वही शाश्वत संपदा है।
इसलिए महावीर को जो लोग नहीं समझ सके, उन्होंने कहा नास्तिक है यह आदमी। और उन्हें ऐसा भी लगा कि अब तक जो नास्तिक हुए हैं उनसे भी गहन नास्तिक हैं वे। क्योंकि वे नास्तिक कम से कम इतना तो कहते हैं कि ईश्वर के लिए प्रमाण दो तो हम मान लें। महावीर कहते हैं--ईश्वर हो या न हो, इससे धर्म का कोई संबंध नहीं है, क्योंकि दूसरे को जब भी मैं ध्यान में लेता हूं तो गलत ध्यान हो जाता है। इसलिए महावीर इसकी भी चिंता नहीं करते कि ईश्वर है या नहीं, इसके लिए कोई प्रमाण जुटाएं। निश्चित ही ईश्वरवादियों को महावीर गहन नास्तिक मालूम पड़े, नास्तिकों से भी ज्यादा।
इसलिए तथाकथित आस्तिकों ने चार्वाक से भी ज्यादा निंदा महावीर की की है। और भी खतरा था, क्योंकि चार्वाक की निंदा करनी आसान थी क्योंकि वह कह रहा था--खाओ, पीयो, मौज करो। महावीर की निंदा और मुश्किल पड़ गई। क्योंकि वे जो नास्तिक थे वे खा, पी और मौज कर रहे थे। यह महावीर तो बिल्कुल ही नास्तिक जैसे नहीं थे। यह तो भोग में जरा भी रसातुर नहीं थे। इसलिए इनकी निंदा और भी कठिन, और भी मुश्किल पड़ गई। आदमी तो यह इतने बेहतर थे, जैसा कि बड़े से बड़ा आस्तिक हो पाया है शायद उससे भी ज्यादा बेहतर है। क्योंकि बड़े से बड़ा आस्तिक भी दूसरे पर निर्भर रहता है। ऐसी स्वतंत्रता जैसी महावीर की है, आस्तिक की नहीं हो पाती। या उस दिन हो पाती है जिस दिन या तो भक्त बिल्कुल मिट जाता है और भगवान रह जाता है या भगवान बिल्कुल मिट जाता है और भक्त रहता है। जिस दिन एक ही बचता है, उस दिन हो पाती है।
महावीर प्रार्थना के पक्षपाती नहीं हैं। महावीर दूसरे के ध्यान के पक्षपाती नहीं हैं। फिर महावीर का ध्यान से क्या अर्थ है? वह अर्थ हम समझ लें, और महावीर उस ध्यान तक कैसे आपको पहुंचा सकते हैं, उसे हम समझ लें। महावीर का ध्यान से अर्थ है, स्वभाव में ठहर जाना--टु बी इन वनसेल्फ। ध्यान से अर्थ है--स्वभाव। जो मैं हूं, जैसा मैं हूं, वहीं ठहर जाना। उसी में जीना, उससे बाहर न जाना। अर्थ तो है ध्यान का स्वभाव में ठहर जाना। इसलिए महावीर ने ध्यान शब्द का कम प्रयोग किया, क्योंकि ध्यान शब्द--शब्द ही दूसरे का इशारा करता है। जब भी हम कहते हैं, टु बी अटेंटिव, तभी यह मतलब होता है किसी और पर। जब भी हम कहते हैं ध्यान, तो उसका मतलब होता है--कहां, किस पर? लोग आते हैं पूछने, वे कहते हैं हम
ध्यान करना चाहते हैं, किस पर करें? ध्यान शब्द में ही आब्जेक्ट का ख्याल, विषय का ख्याल छिपा हुआ है। इसलिए महावीर ने ध्यान शब्द का उतना प्रयोग नहीं किया। ध्यान की जगह ज्यादा उन्होंने प्रयोग किया --सामाजिक। वह महावीर का अपना शब्द है, सामायिक। महावीर आत्मा को समय कहते हैं और सामायिक उसे कहते हैं, जब कोई व्यक्ति अपनी आत्मा में ही होता है, तब उसे सामायिक कहते हैं।
इधर एक बहुत अदभुत काम चल रहा है वैज्ञानिकों के द्वारा। अगर वह काम ठीक-ठीक हो सका तो शायद महावीर का शब्द सामायिक पुनरुज्जीवित हो जाए। वह काम यह चल रहा है कि आइंस्टीन ने, प्लांक ने, और अन्य पिछले पचास वर्षों के वैज्ञानिकों ने यह अनुभव किया है कि इस जगत में जो स्पेस है वह थ्री- डायमेंशनल है। जो स्थान है, अवकाश है, आकाश है, वह तीन आयामों में बंटा है। हम किसी भी चीज को तीन आयामों में देखते हैं, वह थ्री-डायमेंशनल है। लम्बाई है, चौड़ाई है, मोटाई है। वह तीन है, तीन आयाम में स्थान है। और यह तीनों के साथ समय, टाइम है।
अब तक बड़ी कठिनाई थी कि यह समय को कैसे इन तीन आयामों से जोड़ा जाए। क्योंकि जोड़ तो कहीं न कहीं होना ही चाहिए। समय और क्षेत्र, टाइम और स्पेस कहीं जुड़े होने चाहिए, अन्यथा इस जगत का अस्तित्व नहीं बन सकता। इसलिए आइंस्टीन ने टाइम और स्पेस की अलग-अलग बात करनी बंद कर दी, और "स्पेसिओटाइम" एक शब्द बनाया, कि समय और क्षेत्र एक ही हैं। काल और

क्षेत्र एक हैं। और आइंस्टीन ने कहा कि समय जो है, वह स्पेस का ही फोर्थ डायमेंशन है, वह क्षेत्र का ही चौथा आयाम है। वह अलग चीज नहीं है। और आइंस्टीन के मरने के बाद इस पर और काम हुआ और पाया गया कि टाइम भी एक तरह की ऊर्जा, एनर्जी है, शक्ति है। और अब वैज्ञानिक ऐसा सोचते हैं कि मनुष्य का शरीर तो तीन आयामों से बना है और मनुष्य की आत्मा चौथे आयाम से बनी है। अगर यह बात सही हो गई तो चौथे आयाम का नाम टाइम होगा। और महावीर ने पच्चीस सौ साल पहले आत्मा को समय कहा है, टाइम कहा है।
कई बार विज्ञान जिन अनुभूतियों को बहुत बाद में उपलब्ध कर पाता है, रहस्य में डूबे हुए संत उसे हजारों साल पहले देख लेते हैं। दस-पंद्रह वर्ष का वक्त है, इस बीच काम जोर से चल रहा है। बड़ा काम रूस के वैज्ञानिक कर रहे हैं। और वे निरंतर इस बात के निकट पहुंचते जा रहे हैं कि समय ही मनुष्य की चेतना है। इसे ऐसा समझें तो थोड़ा ख्याल में आ जाए तो हमें फिर ध्यान की धारणा में, महावीर की धारणा में उतरना आसान हो जाए। इसे ऐसा समझें कि पदार्थ बिना समय के भी कल्पना की जा सकती है, कंसीवेबल है। लेकिन चेतना बिना समय के कल्पना भी नहीं की जा सकती। सोच लें कि समय नहीं है जगत में, तो पदार्थ तो हो सकता है, पत्थर हो सकता है, लेकिन चेतना हीं हो सकेगी। क्योंकि चेतना की जो गति है, वह स्थान में नहीं है, समय में है। चेतना
की जो गति है, वह समय में है, वह स्थान में नहीं है, वह स्पेस में नहीं है--वह टाइम में है, समय में है। जब आप यहां उठ कर आते हैं अपने घर से, तो आपका शरीर यात्रा करता है, एक वह यात्रा होती है स्थान में। आप घर से निकले, और कार में बैठे, बस में बैठे, ट्रेन में बैठे, चले; यह यात्रा स्थान में है। आपकी जगह एक पत्थर भी रख देते तो वह भी कार में बैठ कर यहां तक आ जाता। लेकिन कार में बैठे हुए आपका मन एक और गति भी करता है जिसका कार से कोई संबंध नहीं है। वह गति समय में है। हो सकता है आप जब घर में हों, और जब कार में बैठे हों, तभी आप समय में इस हाल में आ गए हों, मन में इस हाल में आ गए हों। लेकिन कार अभी घर के सामने खड़ी है। सच तो यह है कि आप कार में बैठते ही इसलिए हैं कि आपका मन कार के पहले इस हाल की तरफ गति करता है। इसलिए आप कार में बैठते हैं, नहीं तो आप कार में नहीं बैठेंगे। पत्थर खुद कार में नहीं बैठेगा, उसे किसी को बिठाना पड़ेगा। बैठ कर भी वह वैसा ही रहेगा जैसा अनबैठा था। बैठ कर उसे आप यहां उतार लेंगे, लेकिन उस पत्थर के भीतर कुछ भी न होगा। जब आप कार में बैठे हुए हैं तो दो गतियां हो रही हैं--एक तो आपका शरीर स्थान में यात्रा कर रहा है, और आपका मन समय में यात्रा कर रहा है। चेतना की गति समय में है।
महावीर ने चेतना को समय ही कहा है, और ध्यान को सामायिक कहा है। अगर चेतना की गति समय में है तो चेतना की गति के ठहर जाने का नाम सामायिक है। शरीर की सारी गति ठहर जाए, उसका नाम आसन है, और चित्त की सारी गति ठहर जाए, उसका नाम ध्यान है। अगर आप कार में ऐसे बैठ कर आ जाएं जैसे पत्थर आता है तो आप ध्यान में थे। आपके भीतर कोई गति न हो सिर्फ शरीर गति करे और आप कार में बैठ कर ऐसे आ जाएं, जैसे पत्थर आया है, तो आप ध्यान में थे। ध्यान का अर्थ हैः चेतना हो, गति शून्य हो जाए, मूवमेंट शून्य हो जाए। यह ध्यान का अर्थ है महावीर का। अब इस ध्यान की तरफ जाने के लिए महावीर आपको क्या सलाह देते हैं, इसे हम दो-तीन हिस्सों में समझने की कोशिश करें।
कभी आपने छप्पर छाए हुए मकान के नीचे देखा होगा कि कोई रंध्र से प्रकाश की किरणें भीतर घुस आती हैं। प्रकाश की एक वल्लरी, एक धारा कमरे में गिरने लगती है। सारा कमरा अंधेरा है। छप्पर से एक धारा प्रकाश की नीचे तक उतर रही है। तब आपने एक बात और भी देखी होगी कि उस प्रकाश की धारा के भीतर धूल के हजारों कण उड़ते हुए दिखाई पड़ते हैं। अंधेरे में वे दिखाई नहीं पड़ते, कमरे में वे सभी जगह उड़ रहे है। अंधेरे में दिखाई नहीं पड़ते, सभी जगह उड़ रहे हैं। उस प्रकाश की वल्लरी में दिखाई पड़ते हैं। क्योंकि दिखाई पड़ने के लिए प्रकाश होना जरूरी है। शायद आपको ख्याल आता होगा कि प्रकाश की वल्लरी में ही वे उड़ रहे हैं तो आप गलती में हैं। वे तो पूरे कमरे में उड़ रहे हैं। लेकिन प्रकाश की वल्लरी में दिखाई पड़ रहे हैं।

आपकी चेतना ऐसी ही स्थिती में है। जितने हिस्से में ध्यान पड़ता है, उतने हिस्से में विचार के कण दिखाई पड़ते हैं। बाकी में भी विचार उड़ते रहते हैं, वे आपको दिखाई नहीं पड़ते।
इसलिए मनोवैज्ञानिक मन को दो हिस्सों में तोड़ देता है--एक को वह कांशस कहता है, एक को अनकांशस कहता है। एक को चेतन, एक को अचेतन। चेतन उस हिस्से को कहता है जिस पर ध्यान पड़ रहा है और अचेतन उस हिस्से को कहता है जिस पर ध्यान नहीं पड़ रहा है। चेतना उस हिस्से को कहेंगे जिसमें कि प्रकाश की किरण पड़ रही है और धूल के कण दिखाई पड़ रहे हैं; और अचेतन उसको कहें... बाकी कमरे को जहां अंधेरा है, जहां प्रकाश नहीं पड़ रहा है, धूल कण तो वहां भी उड़ रहे हैं पर उनका कोई पता नहीं चलता है।
आपके चेतन मन में आपको विचारों का उड़ना दिखाई पड़ता है, चौबीस घंटे विचार चलते रहते हैं। सरकते रहते हैं। कभी अपने ख्याल नहीं किया, कि जब प्रकाश की किरण उतरती है अंधेरे कमरे में तो जो धूल का कण उनमें उड़ता हुआ आता है, आपने ख्याल किया, वह आस-पास के अंधेरे से उड़ता हुआ आता है। फिर प्रकाश की किरण में प्रवेश करता है, थोड़ी देर में फिर अंधेरे में चला जाता है। शायद आपको यह भ्रांति हो कि वह जब प्रकाश में होता है तभी उसका अस्तित्व है, तो आप गलती में हैं। आने के पहले भी वह था, जाने के बाद भी वह है।
आपने कभी अपने विचारों का अध्ययन किया है कि वे कहां से आते हैं और कहां चले जाते हैं। शायद आप सोचते होंगे कि इधर से प्रवेश करते हैं और नष्ट हो जाते हैं। पैदा होते हैं और नष्ट हो जाते हैं। पैदा और नष्ट नहीं होते। आपके अंधेरे चित्त से आते हैं, आपके प्रकाश चित्त में दिखाई पड़ते है, फिर अंधेरे चित्त में चले जाते हैं। अगर आप अपने विचारों को उठता देखने की कोशिश करें कि कहां से उठते हैं तो धीरे-धीरे आप पाएंगे कि वे आपके ही भीतर अंधेरे से आते हैं। और अगर आप उनके जन्म स्रोत ध्यान रखें तो धीरे-धीरे आप पाएंगे कि वे आपको अंधेरे में भी दिखाई पड़ने लगे हैं, और जब वे चले जाते हैं तब भी आपके सामने से भरे जा रहे हैं, मिट नहीं रहे हैं। अगर आप उनका पीछा करेंगे तो वे धीरे-धीरे आपको अंधेरे में भी जाते हुए दिखाई पड़ेंगे। आप उनका अंधेरे में भी पीछा कर सकते हैं।
चेतना विचार से भरी है; जैसे आकाश वायु से भरा है वैसी चेतना विचार से भरी है। जब वायु का धक्का लगता है, आपको वायु का पता चलता है, और जब धक्का नहीं लगता है तो पता नहीं चलता है। जब कोई विचार आपको धक्का देता है तब आपको पता चलता है, अन्यथा आपको पता भी नहीं चलता। विचार बहते रहते हैं। आप अपने सौ विचारों में से एक का भी मुश्किल से पता रखते हैं, बाकी निन्यानबे ऐसे ही बहते रहते हैं। और भी मजे की बात है कि हवा तो धक्का देती है तब पता भी चलता है, लोकिन आकाश का आपको कोई पता नहीं चलता क्यांकि वह धक्का भी नहीं देता।
तो आपकी चेतना में जो विचार उड़ते रहे हैं उनका आपको पता चलता है और चेतना का कभी पता नही चलता, क्योंकि उसका कोई धक्का नहीं है। दो उपाय हैं-- या तो आप इन विचारों से बचना चाहें तो इस खपड़े से जो छेद हो गया है उसे बंद कर दें, तो आपको विचार दिखाई नहीं पड़ेंगे। नींद में यही होता है। वह जो चेतना की थोड़ी सी धारा आपको दिखाई पड़ती थी जागने में आप उसको भी बंद करके सो जाते है। फिर आपको कुछ दिखाई नहीं पड़ता सब बंद हो जाता है।
गहरी बेहोशी में भी यही होता है। हिप्नोसिस, सम्मोहन में भी यही होता है। इसलिए विचार से जो लोग पीड़ित हैं, वे लोग अनेक बार अत्म-सम्मोहन की क्रियाएं करने लगते हैं और आत्म-सम्मोहन को ध्यान समझ लेते हैं। वह ध्यान नहीं है। वह सिर्फ अपनी चेतना को बुझा लेना है। अंधेरे में डूब जाना है। उसका भी सुख है। शराब में उसी तरह का सुख मिलता है, गांजे में, अफीम में, उसी तरह का सुख मिलता है। चेतना की जो छोटी सी धारा बह रही थी वह भी बंद हो गई, घुप्प अंधेरे में खो गए। बड़ी शांति मालूम पड़ती है। वह अशांति मालूम पड़ती थी प्रकाश की किरण। महावीर का ध्यान ऐसा नहीं है जिसमें प्रकाश की किरण को बुझा देना है। महावीर का ध्यान ऐसा है जिसमें सारे खपड़ों को अलग

कर देना है, पूरे छप्पर को खुला छोड़ देना है ताकि पूरे कमरे में प्रकाश भर जाए।
यह भी बड़े मजे की बात है, जब पूरे कमरे में प्रकाश भर जाता है तब भी धूलकण दिखाई पड़ना बंद हो जाते है। जब पूरे कमरे में प्रकाश भर जाता है तब भी धूलकण नहीं दिखाई पड़ते; जब पूरे कमरे में अंधेरा हो जाता है तब भी धूलकण दिखाई नहीं पड़ते। जब पूरे कमरे में अंधेरा होता है और जरा से स्थान में रोशनी होती है तब धूलकण दिखाई पड़ते है। असल में धूलकणों को दिखाई पड़ने के लिए प्रकाश की धारा भी चाहिए और अंधेरे की पृष्ठभूमि भी चाहिए।
तो दो उपाय हैं इन कणों को भूल जाने का। एक उपाय तो है कि पूरा अंधेरा
हो जाए तो इसलिए दिखाई नहीं पड़ते क्योंकि प्रकाश ही नहीं है, दिखाई कैसे पड़ेंगे। या पूरा प्रकाश हो जाए तो भी दिखाई नहीं पड़ते क्योंकि इतना ज्यादा प्रकाश है कि उतने छोटे से धूलकण दिखाई नहीं पड़ सकते, प्रकाश दिखाई पड़ने लगता है। पृष्ठभूमि न होने से धूलकण खो जाते हैं।
तो पहला तो यह फर्क समझ लें कि बहुत से प्रयोग हैं ध्यान के जो वस्तुतः मूर्च्छा के प्रयोग हैं, ध्यान के प्रयोग नहीं हैं। जिनमें आदमी अपने कांशस को अनकांशस में डुबा देता है। जिनमें वह गहरी नींद में चला जाता है। उठने के बाद उसे शांति भी मालूम पड़ेगी, स्वस्थ भी मालूम पड़ेगा, ताजा भी मालूम पड़ेगा। लेकिन वे उपाय सिर्फ चेतना को डुबाने के थे। उससे कोई क्रांति घटित नहीं होती।
श्री महेश योगी जो ध्यान की बात सारी दुनिया में करते हैं, वह सिर्फ मूर्च्छा का प्रयोग है। जिसे वे ट्रांसेंडेंटल मेडिटेशन कहते हैं; जिसे भावातीत ध्यान कहते हैं वह ध्यान भी नहीं है, भावातीत तो बिल्कुल नहीं है; न तो ट्रांसेंडेंटल है, न मेडिटेशन है। ध्यान इसलिए नहीं है कि वह केवल एक मंत्र के जाप से स्वयं को सुला लेने का प्रयोग है। और किसी भी शब्द की पुनरुक्ति अगर आप करते जाएं तो तंद्रा आ जाती है--किसी भी शब्द की। शब्द की पुनरुक्ति से तंद्रा पैदा होती है, हिप्नोसिस पैदा होती है। असल में किसी भी शब्द की पुनरुक्ति से बोर्डम पैदा होती है, ऊब पैदा होती है। ऊब नींद ले आती है। तो किसी भी मंत्र के प्रयोग का अगर आप इस तरह प्रयोग करें कि वह आपको ऊब में ले जाए, उबा दे, घबड़ा दे, नाविन्य न रह जाए उसमें, तो मन ऊब कर पुराने से परेशान होकर तंद्रा में और निद्रा में खो जाता है। जिन लोगों को नींद की तकलीफ है उनके लिए यह प्रयोग फायदे का है, लेकिन न तो यह ध्यान है, न भावातीत है। और नींद की बहुत लोगों को तकलीफ है, उनके लिए यह फायदा है, लेकिन इस फायदे से ध्यान का कोई संबंध नहीं है। वह फायदा गहरी नींद का ही फायदा है।
गहरी नींद अच्छी चीज है, बुरी चीज नहीं है। इसलिए मै नहीं कह रहा हूं
कि महेश योगी जो कहते हैं वह बुरी चीज है। बड़ी अच्छी चीज है, लेकिन उसका उपयोग उतना ही है जितना किसी भी ट्रैंक्वेलाइजर का है। ट्रैंक्वेलाइजर से भी अच्छी है क्योंकि किसी दवा पर निर्भर नहीं रहना पड़ता है, भीतरी तरकीब है। भीतरी ट्रिक है। और इसलिए पूरब में महेश योगी का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, पश्चिम में बहुत पड़ा। क्योंकि पश्चिम अनिद्रा से पीड़ित है, पूरब अभी पीड़ित नहीं है। इसका बुनियादी कारण वही है। पश्चिम इनसोमोनिया से परेशान है, नींद बड़ी मुश्किल हो गई है। नींद पश्चिम में एक सुख अनुभव हो रहा है, क्योंकि उसे पाना मुश्किल हो गया है। पूरब में नींद का कोई सवाल नहीं है अभी भी। हा, पूरब जितना पश्चिम होता जाएगा उतना नींद का सवाल उठता जाएगा।
तो पश्चिम में जो लोग महेश योगी के पास आए वे असल में नींद की तकलीफ से परेशान लोग हैं, सो भी नहीं सकते। वे वह तरकीब भूल गए जो कि प्राकृतिक तरकीब थी, वह भूल गए हैं, वह जो नेचुरल प्रोसेस थी सोने की वह भूल गए हैं। उनको आर्टीफिशियल टेक्नीक की जरूरत है जिससे वे सो सकें। लेकिन दो-तीन महीने से ज्यादा कोई उनके पास नहीं रहेगा, भाग जाएगा। क्योंकि जब उसे नींद आने लगी तो बात खत्म हो गई। तब वह कहेगा कि ध्यान चाहिए। नींद तो हो गई ठीक है, लेकिन अब, आगे? वह आगे खींचना मुश्किल हैं, क्योंकि वह प्रयोग कुल जमा नींद का है।

महावीर मूर्च्छा विरोधी हैं, इसलिए महावीर ने ऐसी भी किसी पद्धति की सलाह नहीं दी जिससे मूर्च्छा के आने की जरा सी भी सम्भावना हो। यही महावीर के और भारत के दूसरी पद्धतियों का भेद है। भारत में दो पद्धतियां रही हैं। कहना चाहिए सारे जगत में दो ही पद्धतियां हैं ध्यान की। मूलतः दो तरह की पद्धतियां हैं--एक पद्धति को हम ब्राह्मण पद्धति कहें और एक पद्धति को हम श्रवण पद्धति कहें। महावीर की जो पद्धती है उसका नाम श्रवण पद्धति है। दूसरी जो पद्धति है वह ब्राह्मण की पद्धति है। ब्राह्मण की पद्धति विश्राम की पद्धति है। वह इस बात की पद्धति है जिसे हम कहें--रिलैक्जेशन। परमात्मा में अपने को विश्राम करने दें, छोड़ दो ब्रह्म में अपने को, विश्राम करने दें।
महावीर ने किसी ब्राह्मण पद्धति की सलाह नहीं दी। उन्होंने कहा है कि विश्राम में बहुत डर तो यह है, सौ में निन्यानबे मौके पर डर यह है कि आप नींद में चले जाएं। सौ में निन्यानबे मौके पर डर यह है कि आप नींद में चले जाएं। क्योंकि विश्राम और नींद का गहरा अंतर-संबंध है और आपके जन्मों- जन्मों का एक ही अनुभव है कि जब भी आप विश्राम में गए हैं तभी आप नींद में गए हैं। तो आपके चित्त की एक संस्कारित व्यवस्था है कि जब भी आप विश्राम करेंगे, नींद आ जाएगी। इसलिए जिनको नींद नहीं आती है उनको डाक्टर सलाह देता है रिलैक्जेशन की, शिथिलीकरण की, शवासन की कि तुम विश्राम करो। शिथिल हो जाओ तो नींद आ जाएगी। इससे उलटा भी सही है। अगर कोई विश्राम में जाए तो बहुत डर यह है कि वह नींद में न चला जाए। इसलिए जिसे विश्राम में जाना है उसे बहुत दूसरी और प्रक्रियाओं का सहारा लेना पड़ेगा, जिनसे नींद रुकती हो, अन्यथा विश्राम नींद बन जाती है।
महावीर ने उन पद्धतियों का उपयोग नहीं किया, महावीर ने जिन पद्धतियों
का उपयोग किया वे विश्राम से उलटी हैं। इसलिए उनकी पद्धति का नाम है श्रम, श्रमण। वे कहते हैं--श्रमपूर्वक विश्राम में जाना है, विश्रामपूर्वक नहीं। और श्रमपूर्वक ध्यान में जाना बिल्कुल उलटा है विश्रामपूर्वक ध्यान में जाने के। अगर किसी आदमी को हम कहते हैं कि विश्राम करो तो हम कहते हैं--हाथ पैर ढीले छोड़ दो, सुस्त हो जाओ, शिथिल हो जाओ, ऐसे हो जाओ जैसे मुर्दा हो गए। श्रम की जो पद्धति है वह कहेगी इतना तनाव पैदा करो, इतना टेंशन पैदा करो जितना कि तुम कर सकते हो। जितना तनाव पैदा कर सको उतना अच्छा है। अपने को इतना खींचो, इतना खींचो जैसे कोई वीणा के तार को खींचता चला जाए और टंकार पर छोड़ दे। खींचते चले जाओ, खींचते चले जाओ। तीव्रतम स्वर तक अपने तनाव को खींच लो। निश्चित ही एक सीमा आती है कि अगर आप सितार के तार को खींचते चले जाएं तो तार टूट जाएगा। लेकिन चेतना के टूटने का कोई उपाय नहीं है। वह टूटती ही नहीं।
इसलिए आप खींचते चले जाओ। महावीर कहते हैंः खींचते चले जाओ, एक सीमा आएगी जहां तार टूट जाता है, लेकिन चेतना नहीं टूटती। लेकिन चेतना भी अपनी अति पर आ जाती है, क्लाईमेक्स पर आ जाती है। और जब चरम पर आ जाती है, तो अनजाने तुम्हारे बिना पता हुए विश्राम को उपलब्ध हो जाती है। जैसा मैं इस मुट्ठी को बंद करता जाऊं, बंद करता जाऊं, जितनी मेरी ताकत है, सारी ताकत लगा कर उसे बंद करता जाऊं तो एक घड़ी आएगी कि मेरी ताकत चरम पर पहुंच जाएगी। अचानक मैं पाऊंगा कि मुट्ठी ने खुलना शुरू कर दिया क्योंकि अब मेरे पास बंद करने की और ताकत नहीं है। मुट्ठी को बंद करके खोलने का भी उपाय है।
और ध्यान रहे जब मुट्ठी को पूरी तरह बंद करके खोला जाता है तब जो विश्राम उपलब्ध होता वह बहुत अनूठा है, वह नींद में कभी नहीं ले जाता है। वह सीधा विश्राम में ले जाता है। सौ में से निन्यानबे मौके विश्राम में जाने के हैं, नींद में जाने का मौका नहीं है। क्योंकि आदमी ने इतना श्रम किया है, इतना श्रम किया है, इतना खींचा है, इतना ताना है कि इस तनाव के लिए उसे इतने जागरण में जाना पड़ेगा कि वह उस जागरण से एकदम नींद में नहीं जा सकता है, विश्राम में चला जाएगा।
महावीर की पद्धति श्रम की पद्धति है, चित्त को इतने तनाव पर ले जाना है। तनाव दो तरह का हो सकता है। एक तनाव किसी दूसरी चीज के लिए भी हो सकता है, उसके लिए महावीर कहते हैं गलत ध्यान है। एक तनाव स्वयं के प्रति हो

सकता है, उसे महावीर कहते हैं, वह ठीक ध्यान है। इस ठीक ध्यान के लिए कुछ प्रारंभिक बातें हैं, उनके बिना इस ध्यान में नहीं उतरा जा सकता है। उसके बिना उतारिएगा तो विक्षिप्त हो सकते हैं। एक तो ये दस सूत्र जो मैंने कल तक कहे हैं, ये अनिवार्य हैं। उनके बिना इस प्रयोग को नहीं किया जा सकता। क्योंकि उन दस सूत्रों के प्रयोग से आपके व्यक्तित्व में वह स्थिति, वह ऊर्जा और वह स्थिति आ जाती हैं जिनसे आप चरम तक अपने को तनाव में ले जाते हैं। इतनी सामर्थ्य और क्षमता आ जाती है कि आप विक्षिप्त नहीं हो सकते। अन्यथा अगर कोई महावीर के ध्यान को सीधा शुरू करे, तो वही विक्षिप्त हो सकता है, वह पागल हो सकता है। इसलिए भूल कर भी इस प्रयोग को सीधा नहीं करना है, वे दस हिस्से अनिवार्य हैं। और इसकी प्राथमिक भूमिकाएं हैं ध्यान की, वह मैं आपसे कह दूं। अभी पश्चिम में एक बहुत विचारशील वैज्ञानिक ध्यान पर काम करता है। उसका नाम है, रान हुब्बार्ड। उसने एक नये विज्ञान को जन्म दिया है, उसका नाम है सायंटोलाजी। ध्यान की उसने जो-जो बातें खोज-बीन की हैं वे महावीर से बड़ी मेल खाती हैं। इस समय पृथ्वी पर महावीर के ध्यान के निकटतम कोई आदमी समझ सकता है तो वह रान हुब्बार्ड है। जैनों को तो उसके नाम का पता भी नहीं होगा। जैन साधुओं में तो मैं पूरे मुल्क में घूम कर देख लिया हूं, एक आदमी भी नहीं है जो महावीर के ध्यान को समझ सकता हो, करने की बात तो बहुत दूर है। प्रवचन वे करते हैं रोज, लेकिन मैं चकित हुआ कि पांच-पांच सौ, सात-सात सौ साधुओं के गण का जो गणी हो, प्रमुख हो, आचार्य हो, वह भी एकान्त में मुझसे पूछता है कि ध्यान कैसे करें? यह सात सौ साधुओं को क्या करवाया जा रहा होगा। उनका गुरु पूछता है, ध्यना कैसा करूं? निश्चित ही यह गुरु एकान्त में पूछता है। इतना भी साहस नहीं है कि चार लोगो के सामने पूछ सके।
रान हुब्बार्ड ने तीन शब्दों का प्रयोग किया है, ध्यान की प्राथमिक प्रक्रिया में प्रवेश के लिए। वे तीनों शब्द महावीर के हैं। रान हुब्बार्ड को महावीर के शब्दों का कोई पता नहीं है, उसने तो अंग्रेजी में प्रयोग किया है। उसका एक शब्द है रिमेंबरिंग, दूसरा शब्द है रिटर्निंग और तीसरा शब्द है रि-लिविंग। ये तीनों शब्द महावीर के हैं। रिटर्निंग से आप अच्छी तरह से परिचित हैं--प्रतिक्रमण। री-लिविंग से आप उतने परिचित नहीं है। महावीर का शब्द है--जाति-स्मरण। पुनः जीना उसको जो जिया जा चुका है। और रिमेंबरिंग--महावीर ने, बुद्ध ने, दोनों ने "स्मृति"... वही शब्द बिगड़-बिगड़ कर कबीर और नानक के पास आते-आते "सुरति" हो गया, वही शब्द-स्मृति। रिमेंबरिंग से हम सब परिचित हैं, स्मृति से। सुबह आपने भोजन किया था, आपको याद है। लेकिन स्मृति सदा आंशिक होती है। क्योंकि जब आप भोजन की याद करते हैं शाम को कि सुबह आपने भोजन किया था, तो आप पूरी घटना को याद नहीं कर पाते, क्योंकि भोजन करते वक्त बहुत कुछ घट रहा था। चौके में बर्तन की आवाज आ रही थी; भोजन की सुगंध आ रही थी; पत्नी आस-पास घूम रही थी; उसकी दुश्मनी आपके आस-पास झलक रही थी। बच्चे उपद्रव कर रहे थे, उनका उपद्रव आपको मालूम पड़ रहा था। गर्मी थी कि सर्दी थी वह आपको छू रही थी, हवाओं के झोंके आ रहे थे कि नहीं आ रहे थे--वह सारी स्थिति थी। भीतर भी आपको भूख कितनी लगी थी, मन में कौन से विचार चल रहे थे, कहां भागने के लिए आप तैयारी कर रहे थे, यहां खाना खा रहे थे, मन कहां जा चुका था। यह टोटल सिचुएशन है।
जब आप शाम को याद करते हैं तो सिर्फ इतना ही करते हैं कि सुबह बारह बजे भोजन किया था। यह आंशिक है। जब आप भोजन कर रहे होते हैं तो भोजन की सुगंध भी होती है और स्वाद भी होता है। आपको पता नहीं होगा कि अगर आपकी नाक और आंख बिल्कुल बंद कर दी जाए तो आप प्याज में और सेव में कोई फर्क न बता सकेंगे स्वाद में। आंख पर पट्टी बांध दी जाए और नाक पर पट्टी बांध दी जाए और बंद कर दी जाए, कहा जाए आपके ओंठ पर क्या रखा है अब आप इसको चख कर बताइए, तो आप प्याज में और सेव में भी फर्क न बता सकेंगे। क्योंकि प्याज और सेव का असली फर्क आपको स्वाद से नहीं चलता है, गंध से चलता है और आंख से चलता है। स्वाद से पता नहीं चलता आपको।
तो बहुत घटनाएं भोजन की सिचुएशन में है, वे आपको याद नहीं आतीं। आंशिक याद है बारह बजे भोजन किया था। रिटर्निंग, दूसरा जो प्रतिक्रमण है उसका

अर्थ है पूरी की पूरी स्थिति को याद करना--पूरी की पूरी स्थिति को याद करना। लेकिन पूरी स्थिति को भी याद करने में आप बाहर बने रहते हैं। री- लिविंग का अर्थ है--पूरी स्थिति को पुनः जीना।
अगर महावीर के ध्यान में जाना है तो रात सोते समय एक प्राथमिक प्रयोग अनिवार्य है। सोते समय करीब-करीब वैसी ही घटनाएं घटती हैं जैसा बहुत बड़े पैमाने पर मृत्यु के समय घटती हैं। आपने सुना होगा कि कभी पानी में डूब जाने वाले लोग एक क्षण में अपने पूरे जीवन को रि-लिव कर लेते हैं। कभी-कभी पानी में डूबा हुआ कोई आदमी बच जाता है तो वह कहता है कि जब मैं डुब रहा था, और बिल्कुल मरने के करीब निश्चित हो गया तो उस क्षण को जैसी पूरी जिंदगी की फिल्म मेरे सामने से गुजर गई--पूरी जिंदगी की फिल्म एक क्षण में मैंने देख डाली। और ऐसी नहीं देखी कि स्मरण की हो, इस तरह से देखी कि जैसे मैं फिर से जी लिया। मृत्यु के क्षण में, आकस्मिक मृत्यु के क्षण में जब कि मृत्यु आसन्न मालूम पड़ती है, आ गई मालूम पड़ती है, बचने का कोई उपाय नहीं रह जाता है और मृत्यु साफ होती है, तब ऐसी घटना घटती है। महावीर के ध्यान में अगर उतरना हो तो ऐसी घटना नींद के पहले रोज घटानी चाहिए। जब रात होने लगे और नींद करीब आने लगे तो--रि-लिव, पहले तो स्मृति से शुरू करना पड़ेगा। सुबह से लेकर सांझ सोने तक स्मरण करें।
एक तीन महीने गहरा प्रयोग किया जाए तो आपको पता चलेगा कि स्मृति धीरे- धीरे प्रतिक्रमण बन गई। अब पूरी स्थिति याद आने लगी। और भी तीन महीने प्रयोग किया जाए, प्रतिक्रमण पर तब आप पाएंगे कि वह प्रतिक्रमण पुनर्जीवन बन गया है। अब आप रि-लिव करने लगे। कोई नौ महीने के प्रयोग में आप पाएंगे कि आप सुबह से लेकर सांझ तक फिर से जी सकते हैं--फिर से। जरा भी फर्क नहीं होगा, आप फिर से जिएंगे। और बड़े मजे की बात यह है कि इस बार जब आप जिएंगे तो वह ज्यादा जीवन हो गया बजाय इसके जो कि आप दिन में जीए थे क्योंकि उस वक्त और भी पच्चीस उलझाव थे। अब कोई उलझाव नहीं है। हुब्बार्ड कहता है कि यह ट्रैक पर वापस लौट कर फिर से यात्रा करनी है, उसी ट्रैक पर, जैसे कि टेप-रिकार्ड को आपने सुन लिया दस मिनट, उलटा और फिर दस मिनट वही सुना। या फिल्म आपने देखी, फिर से फिल्म देखी और मन के ट्रैक पर कुछ भी खोता नहीं। मन के पथ पर सब सुरक्षित है, खोता नहीं है।
रात सोने से पहले, अगर महावीर के ध्यान में, सामायिक में प्रवेश करना
हो तो कोई नौ महीने का--तीन-तीन महीने एक-एक प्रयोग पर बिताने जरूरी है। पहले स्मरण करना शुरू करें, पूरी तरह स्मरण करें सुबह से शाम तक, क्या हुआ। फिर प्रतिक्रमण करें। पूरी स्थिति को याद करने की कोशिश करें कि किस-किस घटना में कौन-कौन सी पूरी स्थिति थी। आप बहुत हैरान होंगे, और आपकी संवेदनशीलता बहुत बढ़ जाएगी और बहुत सेंसिटिव हो जाएंगे और दूसरे दिन आपके जीने का रस भी बहुत बढ़ जाएगा क्योंकि दूसरे दिन धीरे-धीरे आप बहुत सी चीजों के प्रति जागरूक हो जाएंगे, जिनके प्रति आप कभी जागरूक न थे।
जब आप भोजन कर रहे हैं, तब बाहर वर्षा भी हो रही है, तब उसके बूंदों की टाप भी आपके कान सुन रहे हैं, लेकिन आप इतने संवेदनहीन हैं कि आपके भोजन में वह बूंदों का स्वर जुड़ नहीं पाता है। तब बाहर की जमीन पर पड़ी हुई नई बूंदों की गंध भी आ रही है, लेकिन आप इतने संवेदनहीन हैं कि वह गंध आपके भोजन में जुड़ नहीं पाती। तब खिड़की में फूल भी खिले हुए हैं, लेकिन फूलों का सौंदर्य आपके भोजन मे संयुक्त नहीं हो पाता है।
आप संवेदनहीन हैं, इनसेंसिटिव हो गए हैं। अगर आप प्रतिक्रमण की पूरी यात्रा करते हैं तो आपके जीवन में सौंदर्य का और रस का और अनुभव का एक नया आयाम खुलना शुरू हो जाएगा। पूरी घटना आपको जीने को मिलेगी। और जब भी पूरी घटना जीयी जाती है, जब भी पूरी घटना होती है, तो आप उस घटना को दुबारा जीने की आकांक्षा से मुक्त होने लगते हैं, वासना क्षीण होती है।
अगर कोई व्यक्ति एक बार भी, किसी भी घटना से परिपूर्णतया बीत जाए, गुजर आए तो उसकी इच्छा उसे रिपीट करने की, दोहराने की फिर नहीं होती है। तो अतीत से छुटकारा होता है और भविष्य से भी छुटकारा होता है। प्रतिक्रमण अतीत और भविष्य से छुटकारे की विधि है। फिर इस प्रतिक्रमण को इतना गहरा करते जाएं कि एक घड़ी ऐसी आ जाए कि अब आप याद न करें, रि-लिव करें,

पुनर्जीवित हो जाएं, उस घटना को फिर से जिएं। और आप हैरान होंगे वह घटना फिर से जीयी जा सकती है।
और जिस दिन आप उस घटना को फिर से जीने में समर्थ हो जाएंगे, उस दिन रात सपने बंद हो जाएंगे। क्योंकि सपने में वही घटनाएं आप फिर से जीने की कोशिश करते हैं, और तो कुछ नहीं करते हैं। अगर आप होशपूर्वक रात सोने के पहले पूरे दिन को पूरा जी लिए हैं तो आपने निपटारा कर दिया, क्लोज्ड हो गए आप। अब कुछ याद करने की जरूरत न रही, पुनः जीने की जरूरत न रही। जो-जो छूट गया था वह भी फिर से जी लिया गया है। जो-जो रस अधूरा रह गया था, जो-जो अनकंप्लीट, अपूर्ण रह गया था, वह पूरा कर लिया गया।
जिस दिन आदमी रि-लिव कर लेता है, उस दिन रात सपने विदा हो जाते हैं। और निद्रा जितनी गहरी हो जाती है, सुबह जागरण उतनी ही प्रगाढ़ हो जाती है। स्वप्न जब विदा हो जाते हैं नींद में तो दिन में विचार कम हो जाते हैं। ये सब संयुक्त घटनाएं हैं। जब रात स्वप्नरहित हो जाती है तो दिन विचार शून्य होने लगता है, विचार रिक्त होने लगता है।
इसका यह मतलब नहीं है कि आप फिर विचार नहीं कर सकते, इसका यह मतलब है
कि फिर आप विचार कर सकते हैं, लेकिन करने का ऑब्सेशन नहीं रह जाता, जरूरी नहीं रह जाता कि करें ही। अभी तो आपको मजबूरी में करना पड़ता है। आप चाहें तो भी, न करें तो भी करना पड़ता है। और जिस विचार को आप चाहते हैं न करें, उसे और भी करना पड़ता है। अभी आप बिल्कुल गुलाम हैं। अभी मन आपकी मानता नहीं। महावीर से अगर पूछें तो विक्षिप्त का यही लक्षण है--जिसका मन उसकी नहीं मानता है। विक्षिप्त का यही लक्षण है, पागल का यही लक्षण है। तो हममें पागलपन की मात्राएं हैं। किसी का जरा कम मानता है, किसी का जरा ज्यादा मानता है, किसी का थोड़ा और ज्यादा मानता है। कोई अपने भीतर ही भीतर करता रहता है, कोई जरा बाहर करने लगता है वही काम। बस इतनी मात्राओं के फर्क हैं--डिग्रीज आफ मेडनेस। क्योंकि जब तक ध्यान न उपलब्ध हो तब तक आप विक्षिप्त होंगे ही।
ध्यान का अभाव विक्षिप्तता है। ध्यान को उपलब्ध व्यक्ति के स्वप्न शून्य हो जाते हैं। ऐसी हो जाती है उनकी रात, जैसे प्रकाश की वल्लरी में धूल के कण न रह गए। जब वह सुबह उठता है तो सच पूछिए वही आदमी सुबह उठता है जिसने रात स्वप्न नहीं देखे। नहीं तो सिर्फ नींद की एक पर्त टूटती है और सपने भीतर दिन भर चलते रहते हैं। कभी भी आंख बंद करिए--दिवा-स्वप्न शुरू हो जाते हैं। सपना भीतर चलता ही रहता है। सिर्फ ऊपर की एक पर्त जाग जाती है। काम चलाऊ है वह पर्त। उससे आप सड़क पर बच कर निकल जाते हैं, उसमें आप अपने दप्फ्तर पहुंच जाते हैं। उसमें अपने आप काम कर लेते हैं--आदत, रोबोट, आपके भीतर जो यंत्र बन गया है वह काम कर लेता है। इतना होश है बस। इसे महावीर होश नहीं कहते हैं।
रात जब स्वप्न पूरी तरह समाप्त हो जाते हैं। तब सुबह आप ऐसे उठते हैं
कि उस उठने का आपको कोई भी पता नहीं है। वह उठने में इतना ही फर्क है जैसे किसी ने एक मिट्टी के तेल में जलती हुई बाती देखी हो--पीला, धुंधला, धुएं से भरा हुआ प्रकाश। और उस आदमी ने पहली दफे सूरज का जागना देखा हो, सूरज का उगना देखा हो, इतना ही फर्क है। अभी जिसे आप जागना कहते हैं वह ऐसा ही मद्दी सी, पीली सी, धीमी सी लौ है। जब रात स्वप्न समाप्त हो जाते हैं, तब आप सुबह उठते हैं जैसे सूरज जगा--उस जागी हुई चेतना में विचार आपके गुलाम हो जाते हैं। मालिक नहीं होते। और महावीर कहते हैं--जब तक विचार मालिक हैं, तब तक ध्यान कैसे हो पाएगा? विचार की मालकियत आपकी होनी चाहिए, तब ध्यान हो सकता है। तब आप जब चाहें विचार करें, जब चाहें तब न करें।
तो दूसरा प्रयोग--एक तो नींद के साथ--दूसरा प्रयोग सुबह जागने के साथ। जैसे ही जागें वैसे ही प्रतीक्षा करें उठ कर कि कब पहला विचार आता है। पहले विचार को पकड़ें, कब आता है। धीरे-धीरे आप हैरान होंगे कि जितना आप जाग कर पहले विचार को पकड़ने को कोशिश करते हैं, उतनी ही देर से आता है। कभी घंटो लग जाएंगे और पहला विचार नहीं आएगा। और यह घंटा जो है विचाररहित, यह आपकी चेतना को शीर्षासन से सीधा खड़ा करने में सहयोगी बनेगा। आप पैर के बल खड़े हो सकेंगे। क्योंकि यह घंटा भर तो बहुत दूर है अगर एक मिनट के लिए भी

कोई विचार न आए तो आपको विचार नरक है, यह अनुभव होना शुरू हो जाएगा। और निर्विचार होना आनंद है, स्वर्ग है यह अनुभव होना शुरू हो जाएगा। एक मिनट को भी विचार न आए तो आपको अपने भीतर विचारों के अतिरिक्त जो है, उसका दर्शन शुरू हो जाएगा। तब धूल नहीं दिखाई पड़ेगी, प्रकाश की वल्लरी दिखाई पड़ेगी।
तब आपका गेस्टाल्ट बदल जाएगा।
अगर आपने कभी कोई गेस्टाल्ट चित्र देखे हैं तो आप समझ पाएंगे। मनोविज्ञान की किताबों में गेस्टाल्ट के चित्र दिए होते हैं। कभी एक चित्र आप में से बहुत लोगों ने देखा होगा, नहीं देखा होगा तो देखना चाहिए। एक बूढ़ी का चित्र बना होता है, एक बूढ़ी स्त्री का चित्र बना होता है। बहुत से गेस्टाल्ट चित्र बने है। बूढ़ी का चित्र बना होता है, आप उसको गौर से देखें तो बूढ़ी दिखाई पड़ती है। फिर आप देखते ही रहें, देखते ही रहें, देखते ही रहें, अचानक आप पाते हैं कि चित्र बदल गया। और एक जवान स्त्री दिखाई पड़नी शुरू हो गई। वह भी उन्हीं रेखाओं में छिपी हुई है। वह भी उन्हीं रेखाओं में छिपी हुई है, लेकिन एक बड़े मजे की बात होगी कि जब तक आपको बूढ़ी का चित्र दिखाई पड़ेगा, तब तक जवान स्त्री का चित्र नहीं दिखाई पड़ेगा। और जब आपको जवान स्त्री का चित्र दिखाई पड़ेगा तो बूढ़ी खो जाएगी। दोनों आप एक साथ नहीं देख सकते, यह गेस्टाल्ट का मतलब है।
गेस्टाल्ट का मतलब है कि पैटर्न है देखने के, और विपरीत पैटर्न एक साथ नहीं देखे जा सकते। जब जवान स्त्री दिखाई पड़ेगी--चित्र वही है, रेखाएं वही हैं, आप वही हैं, कुछ बदला नहीं है। लेकिन आपका ध्यान बदल गया। आप बूढ़ी को देखते-देखते ऊब गए, परेशान हो गए। ध्यान ने एक परिवर्तन ले लिया, उसने कुछ नया देखना शुरू किया। क्योंकि ध्यान सदा नया देखना चाहता है। अब वह जवान स्त्री जो अभी तक आपको नहीं दिखाई पड़ी थी, वह दिखाई पड़ गई। बड़ा मजा यह होगा, आप दोनों को एक साथ नहीं देख सकते हैं, साइमलटेनियसली, युगपत नहीं देख सकते हैं। अब आपको पता है--पहले तो आपको पता भी नहीं था कि इसमें एक जवान चेहरा भी छिपा हुआ है। अब आपको पता है कि दोनों चेहरे छिपे हैं, अब भी आप नहीं देख सकते--अब भी जब तक जवान चेहरा देखते रहेंगे, बूढ़ी का कोई पता नहीं चलेगा। जब आप बूढ़ी को देखना शुरू करेगें, जवान खो जाएगा। गेस्टाल्ट है यह। चेतना विपरीत को एक साथ नही देख सकती। जब तक आप धूल के कण देख रहे हैं,
तब तक आप प्रकाश की वल्लरी नहीं देख सकतें। और जब आप प्रकाश की वल्लरी देखने लगेंगे तब धूल के कण नहीं देख सकते। जब तक आप विचार को देख रहे हैं, तब तक आप चेतना को नहीं देख सकते। जब आप विचार को नहीं देखेंगे, तब आप चेतना को देखेंगे। और चेतना एक दफे जो देख ले, उसके जीवन की सारी की सारी रूप-रेखा बदल जाती है। अभी हमारी सारी रूप-रेखा विचार से निर्धारित होती है, धूलकणों से। फिर हमारी सारी चेतना प्रकाश से प्रवाहित होती है। फिर भी आप दोनों चीजों को एक साथ नहीं देख सकेंगे। जब आप विचार देखेंगे तब चेतना भूल जाएगी। जब आप चेतना देखेंगे तब विचार भूल जाएंगे। लेकिन फिर आपको याद तो रहेगा चाहे कि जवान चेहरा दिखाई पड़ रहा है, आपको याद तो रहेगा कि बूढ़ा चेहरा छिपा हुआ है। फिर आप बूढ़ा चेहरा देख रहे हो तब भी आपको याद रहेगा कि जवान चेहरा भी कहीं मौजूद है, सोया हुआ है, छिपा हुआ है, अप्रगट है।
जिस दिन कोई व्यक्ति निर्विचार हो जाता है उस दिन चेतना पर उसका ध्यान जाता है। तब तक ध्यान नहीं जाता। और एक बार चेतना पर ध्यान चला जाए तो फिर चेतना का विस्मरण नहीं होता है। चाहे आप विचार में लगे रहें, दुकान पर लगे रहें, बाजार में काम करते रहें, कुछ भी करते रहें, भीतर चेतना है, इसकी स्पष्ट प्रतीति बनी रहती है। बीमार हो जाएं, रूग्ण हो जाएं, दुखी हो जाएं, हाथ पैर कट जाएं फिर भी भीतर चेतना है, इसकी स्पष्ट स्मृति बनी रहती है। और जब चाहें तब गेस्टाल्ट बदल सकते हैं। एक्सीडेंट हो रहा है और शरीर टूट कर गिर पड़ा, पैर अलग हो गए हैं। जरूरी नहीं है कि आप पैर को ही देख कर दुखी हों। आप गेस्टाल्ट बदल सकते हैं। आप चेतना को देखने लगे, शरीर गया। शरीर का कोई दुख नहीं होगा। आप शरीर नहीं रहे।
जब महावीर के कान में खीलियां ठोंकी जा रही हैं तो आप यह मत समझना कि महावीर आप ही जैसे शरीर हैं। आप ही जैसे शरीर होंगे तो खीलियों का दर्द होगा। महावीर का गेस्टाल्ट बदल जाता है। अब महावीर शरीर को नहीं देख रहे

हैं, वे चेतना को देख रहे हैं। तो शरीर में खीलियां ठोंकी जा रही हैं तो वे ऐसी ही मालूम पड़ती हैं, जैसे किसी और के शरीर में खीलियां ठोंकी जा रही हैं। जैसे कहीं और दूर डिस्टेंस पर खीलिया ठोंकी जा रही हैं। महावीर दूर हो गए। महावीर मर रहे हैं तो आप ही जैसे नहीं मर रहे हैं। गेस्टाल्ट और है। महावीर चेतना को देख रहे हैं, जो नहीं मरती।
जब जीसस को सूली पर लटकाया जा रहा है तो गेस्टाल्ट और है। जीसस उस शरीर को नहीं देख रहे हैं, जो सूली पर लटकाया जा रहा है। जब मंसूर को काटा जा रहा है तो गेस्टाल्ट और है। मंसूर उस शरीर को नहीं देख रहा है, जो काटा जा रहा है, इसलिए मंसूर हंस रहा है। और कोई पूछता है--मंसूर, तुम काटे जा रहे हो और हंस रहे हो? तो मंसूर ने कहा कि मैं इसलिए हंसता हूं कि जिसे तुम काट रहे हो वह मैं नहीं हं। और जो मैं हूं तुम उसे छू भी नहीं पा रहे हो तो मुझे बड़ी हंसी आ रही है। तुम्हारी तलवारें मेरे आस-पास से गुजर जा रही हैं लेकिन मुझे स्पर्श नहीं कर पाती हैं। यह गेस्टाल्ट का परिवर्तन है, ध्यान का परिवर्तन हे, ध्यान का फोकस बदल गया है, वह कुछ और देख रहा है।
तो रात्रि विचार के लिए तीन प्रक्रियाएं--सुबह पहले विचार की प्रतीक्षा की एक प्रक्रिया और शेष सारे दिन साक्षी का भाव, विटनेस है। जो भी हो रहा है उसका मैं साक्षी हूं, कर्ता नहीं। भोजन कर रहे हैं तो दो चीजें रह जाती हैं। दो भी नहीं रह जातीं, साधारण आदमी को एक ही चीज रह जाती है--भोजन रह जाता है। अगर थोड़ा बुद्धिमान आदमी है तो दो चीजें होती हैं-- भोजन होता है, भोजन करने वाला होता है।
बुद्धिमान से मेरा मतलब है? जो थोड़ा सोच-समझ कर जीता है। जो बिल्कुल
ही गैर-सोच-समझ कर जीता है, भोजन ही रह जाता है, इसलिए वह ज्यादा भोजन कर जाता है, क्योंकि भोजन करने वाला तो मौजूद नहीं था। कल उसने तय किया था कि इतना ज्यादा भोजन नहीं करना है। पच्चीस दफे तय कर चुका है कि इतना ज्यादा भोजन नहीं करना है। इससे यह बीमारी पकड़ती है, यह रोग आ जाता है। रोग से दुखी होता है--यह भोजन इतना नहीं करना। तय कर लिया। कल जब फिर भोजन करने बैठता है तो ज्यादा भोजन करता है और वही चीजें खा लेता है जो नहीं खानी थीं। क्यों? भोजन करने वाला मौजूद ही नहीं रहता। सिर्फ भोजन रह जाता है। भोजन ने तो तय नहीं किया था, इसलिए भोजन को जितना करवाना है, करवा देता है। जिसको हम थोड़ा बुद्धिमान आदमी कहें, वह दोनों का होश रखता हैं--भोजन
का भी, भोजन करने वाले का भी। लेकिन महावीर जिसे साक्षी कहते हैं, वह तीसरा होश है। वह होश इस बात का है कि न तो में भोजन हूं और न मैं भोजन करने वाला हूं। भोजन भोजन है, भोजन करने वाला शरीर है, मैं दोनों से अलग हूं। एक ट्राएंगल का निर्माण है, एक त्रिकोण का, एक त्रिभूज का। तीसरे कोण पर मैं हूं। इस तीसरे कोण पर, इस तीसरे बिंदु पर चौबीस घंटे रहने की कोशिश साक्षीभाव हैं। कुछ भी हो रहा हैं, तीन हिस्से सदा मौजूद हैं और मैं तीसरा हूं, मैं दो नहीं हूं। ज्यादा भोजन कर लेने वाला एक ही कोण देखता है। अगर कहीं प्राकृतिक चिकित्सा के संबंध में थोड़ी जानकारी बढ़ गई तो दूसरा कोण भी देखने लगता है कि मै करने वाला, ज्यादा न कर लूं। पहले भोजन से एकात्म हो जाता था, अब करने वाले शरीर से एकात्म हो जाता है। लेकिन साक्षी नहीं होता। साक्षी तो तब होता है, जब दोनों के पार तीसरा हो जाता है। और जब वह देखता है कि यह रहा भोजन, यह रहा शरीर, यह रहा मैं--और मैं सदा अलग हूं। इसलिए महावीर ने कहा है--पृथकत्व। साक्षी भाव का उन्हांने प्रयोग नहीं किया। उन्होंने पृथकत्व शब्द का प्रयोग किया है--अलगपन। इसको महावीर ने कहा है भेद विज्ञान, दि साइंस ऑफ डिवीजन। महावीर का अपना शब्द है, भेद विज्ञान। दि साइंस टु डिवाइड। चीजों को अपने-अपने हिस्सों में तोड़ देना है। भोजन वहां है, शरीर यहां है, मैं दोनों के पार हूं--इतना भेद स्पष्ट हो जाए तो साक्षी जन्मता है।
तो तीन बातें स्मरण रखें--रात नींद के समय स्मरण, प्रतिक्रमण, पुनर्जीवन। सुबह पहले विचार की प्रतीक्षा, ताकि अंतराल दिखाई पड़े और अंतराल में गेस्टाल्ट बदल जाए। धूलकण न दिखाई पड़ें, प्रकाश की धारा स्मरण में आ जाए। और पूरे समय, चौबीस घंटे, उठते-बैठते-सोते तीसरे बिंदु पर

ध्यान--तीसरे पर खड़े रहना। ये तीन बातें अगर पूरी हो जाएं तो महावीर जिसे सामायिक कहते हैं, वह फलित होती है। तो हम आत्मा मे स्थिर होते हैं।
यह जो आत्मस्थिरता है, यह कोई जड़, स्टेग्नेंट बात नहीं। शब्द हमारे पास नहीं हैं। शब्द हमारे पास दो हैं--चलना, ठहर जाना; गति, अगति; डायनेमिक, स्टेग्नेंट। तीसरा शब्द हमारे पास नहीं है। लेकिन महावीर जैसे लोग सदा ही जो बोलते हैं वह तीसरे की बात है, दि थर्ड। और हमारी भाषा दो तरह के शब्द जानती है, तीसरे तरह के शब्द नहीं जानती। तो इसलिए महावीर जैसे लोगों के अनुभव को प्रकट करने के लिए दोनों शब्दों का एक साथ उपयोग करने के अतिरक्त और कोई रास्ता नहीं है। तब पैराडाक्सिकल हो जाता है। अगर हम ऐसा कह सकें, और कोई अर्थ साफ होता हो--ऐसी अगति जो पूर्ण गति है; ऐसा ठहराव जहां कोई ठहराव नहीं है; मूवमेंट, विदाउट मूवमेंट; तो शायद हम खबर दे पाएं। क्योंकि हमारे पास दो शब्द हैं, और महावीर जैसे व्यक्ति तीसरे बिंदु से जीते हैं। तीसरे बिंदु की अब तक कोई भाषा पैदा नहीं हो सकी। शायद कभी हो भी नहीं सकेगी।
नहीं हो सकेगी, इसलिए कि भाषा के लिए द्वंद्व जरूरी हैं। आपको कभी ख्याल नहीं आता कि भाषा कैसा खेल है। अगर आप डिक्शनरी में देखने जाएं तो वहां लिखा हुआ है--पदार्थ क्या है? जो मन नहीं है। और जब आप मन को देखने जाएं तो वहां लिखा है--मन क्या है? जो पदार्थ नहीं है। कैसा पागलपन है! न पदार्थ का कोई पता है, न मन का कोई पता है। लेकिन व्याख्या बन जाती है, दूसरे के इनकार करने से व्याख्या बना लेते हैं! अब यह कोई बात हुई कि पुरुष कौन है? जो स्त्री नहीं! स्त्री कौन है? जो परुष नहीं! यह कोई बात हुई? यह कोई डेफिनीशन हुई? यह कोई परिभाषा हुई? अंधेरा वह है जो प्रकाश नहीं, प्रकाश वह है जो अंधेरा नहीं! समझ में आता है कि बिल्कुल ठीक है, लेकिन बिल्कुल बेमानी है। इसका कोई मतलब ही न हुआ। अगर मैं पूछूं, दायां क्या है? आप कहते हैं, बायां नहीं है। मैं पूछूं बायां क्या है? तो उसी दाएं से व्याख्या करते हैं जिसकी व्याख्या बाएं से की थी! यह विसियस है, सर्कुलर है।
लेकिन आदमी का काम चल जाता है। सारी भाषा ऐसी है। डिक्शनरी से ज्यादा व्यर्थ की चीज जमीन पर खोजनी बहुत मुश्किल है--शब्दकोश से ज्यादा व्यर्थ की चीज। क्योंकि शब्दकोश वाला कर क्या रहा है? वह पांचवें पेज पर कहता है कि दसवां पेज देखो, और दसवें पेज पर कहता है कि पांचवां देखो। अगर मै आपके गांव में जाऊं और आपसे पूछूं कि रहमान कहां रहते हैं? आप कहें कि राम के पड़ोस में? मैं पूछूं, राम कहां रहते हैं? आप कहें, रहमान के पड़ोस में। इससे क्या अर्थ होता है? हमें अज्ञात की परिभाषा उससे करनी चाहिए जो ज्ञात हो। तब तो कोई मतलब होता है। हम एक अज्ञात की परिभाषा दूसरे अज्ञात से करते हैं। वन अननोन इ.ज डिफाइन्ड बाई एन अदर अननोन। हमें कुछ भी पता नहीं है, एक अज्ञात को हम दूसरे अज्ञात से व्याख्या कर देते हैं। और इस तरह ज्ञात का भ्रम पैदा कर लेते हैं।
नालेज, ज्ञान का जो हमारा भ्रम है वह इसी तरह खडा हुआ है। मगर इससे काम
चल जाता है। इससे काम चल जाता है। काम चलाऊ है यह ज्ञान। पर इससे कोई सत्य का अनुभव नहीं होता। महावीर जैसे व्यक्ति की तकलीफ यह है कि वह तीसरे बिंदु पर खड़ा होता है जहां चीजें तोड़ी नहीं जा सकतीं। जहां द्वंद्व नहीं रह जाता, जहां दो नहीं रह जाते। जहां अनुभूति एक बनती है और उस अनुभूति को वह किससे व्याख्या करे, क्योंकि हमारी सारी भाषा यह कहती है कि यह नहीं। तो किससे व्याख्या करे? वह ज्यादा से ज्यादा इतना ही कह सकता है निषेधात्मक, लेकिन वह निषेधात्मक भी ठीक नहीं है। वह कह सकता है, वहां दुख नहीं, अशांति नहीं। लेकिन जब हम मतलब समझते हैं, तो हमारा क्या मतलब होता है?
अशांति और शांति हमारे लिए द्वंद्व है, महावीर के लिए द्वंद्व से मुक्ति है। हमारे लिए शांति का वही मतलब है जहां अशांति नहीं है। महावीर के लिए शांति का वही मतलब है जहां शांति भी नहीं, अशांति भी नहीं। क्योंकि जब तक शांति है तब तक थोडी बहुत अशांति मौजूद रहती है। नहीं तो शांति का पता नहीं चलता। अगर आप परिपूर्ण स्वस्थ हो जाएं तो आपको स्वास्थ्य का पता

नहीं चलेगा। थोड़ी बहुत बीमारी चाहिए स्वास्थ्य के पता होने को। या आप पूरे बीमार हो जाएं, तो भी बीमारी का पता नहीं चलेगा। क्योंकि बीमारी के लिए भी स्वास्थ्य का होना जरूरी है, नहीं तो पता नहीं चलता।
तो बीमार से बीमार आदमी में भी स्वास्थ्य होता है, इसलिए पता चलता है।
और स्वस्थ से स्वस्थ आदमी में भी बीमारी होती है इसलिए स्वास्थ्य का पता चलता है। लेकिन हमारे पास कोई उपाय नहीं है। हम बाहर से ही खोजते रहते हैं। और बाहर सब द्वंद्व है। लक्षण बाहर से हम पकड़ लेते हैं और भीतर कोई लक्षण नहीं पकड़े जा सकते क्योंकि कोई द्वंद्व नहीं है। तो महावीर ने वह जो तीसरे बिंदु पर खड़ा हो जाएगा व्यक्ति ध्यान में, उसे क्या होगा, इसे समझाने की कोशिश बारहवें तप में की है। वह कोशिश बिल्कुल बाहर से है, बाहर से ही हो सकती है। फिर भी बहुत आंतरिक घटना है, इसलिए उसे अंतर-तप कहा और अंतिम तप रखा है।
ध्यान के बाद महावीर का तप कायोत्सर्ग है। उसका अर्थ है--जहां काया का उत्सर्ग हो जाता है, जहां शरीर नहीं बचता, गेस्टाल्ट बदल जाता है पूरा। कायोत्सर्ग का मतलब काया को सताना नहीं है। कायोत्सर्ग का मतलब है, ऐसा नहीं है कि हाथ-पैर काट-काट कर चढ़ाते जाना है--कायोत्सर्ग का मतलब है, ध्यान को परिपूर्ण शिखर पर पहुंचना है तो गेस्टाल्ट बदल जाता है। काया का उत्सर्ग हो जाता है। काया रह नहीं जाती, उसका कहीं कोई पता नहीं रह जाता। निर्वाण या मोक्ष, संसार का खो जाना है, जस्ट डिसएपियरेंस। आत्म-अनुभव, काया का खो जाना है। आप कहेंगे महावीर तो चालीस वर्ष जिए, वह ध्यान के अनुभव के बाद भी काया थी। वह आपको दिखाई पड़ रही है। वह आपको दिखाई पड़ रही है, महावीर की अब कोई काया नहीं है, अब कोई शरीर नहीं है। महावीर का काया- उत्सर्ग हो गया। लेकिन हमें तो दिखाई पड़ रही है। इसलिए बुद्ध के जीवन में बड़ी अदभुत घटना है। जब बुद्ध मरने लगे तो शिष्यों को बहुत दुख, पीड़ा... ! सारे रोते इकट्ठे हो गए, लाखों लोग इकट्ठे हुए और उन्होंने कहा--अब हमारा क्या होगा? लेकिन बुद्ध ने कहाः पागलो, मैं तो चालीस साल पहले मर चुका। वे कहने लगे कि माना कि यह शरीर है, लेकिन इस शरीर से भी हमें प्रेम हो गया। लेकिन बुद्ध ने कहा कि यह शरीर तो चालीस साल पहले विसर्जित हो चुका है। जापान में एक फकीर हुआ है लिंची। एक दिन अपने उपदेश में उसने कहा कि
यह बुद्ध से झूठा आदमी जमीन पर कभी नहीं हुआ। क्योंकि जब तक यह बुद्ध नहीं था, तब तक था, और जिस दिन से बुद्ध हुआ, उस दिन से है ही नहीं। तो लिंची ने कहाः बुद्ध है, बुद्ध हुए हैं ये सब भाषा की भूलें हैं। बुद्ध कभी नहीं हुए थे। निश्चित ही लोग घबड़ा गए, क्योंकि यह फकीर तो बुद्ध का ही था। पीछे बुद्ध की प्रतिमा रखी थी। अभी-अभी इसने उस पर दीप चढ़ाया था। एक आदमी ने खड़े होकर पूछा कि ऐसे शब्द तुम बोल रहे हो? तुम कह रहे हो, बुद्ध कभी हुए नहीं? ऐसी अधार्मिक बात! तो लिंची ने कहा कि जिस दिन से मेरे भीतर काया खो गई, उस दिन मुझे पता चला। तुम्हारे लिए मैं अभी भी हूं, लेकिन जिस दिन से सच में न हुआ, उस दिन से मैं बिल्कुल नहीं हो गया हूं।
यह नहीं हो जाने का अन्तिम चरण है। वह एक्सप्लोजन है। उसके बाद फिर कुछ भी नहीं है, या सब कुछ है। या शून्य है, या पूर्ण है।

कल हम आखिरी बारहवें तप की बात करेंगे।
बैठें पांच मिनट... !

महावीर-वाणी, भाग 1
अठारहवां प्रवचन

कायोत्सर्गः शरीर से विदा लेने की क्षमता (धम्म सूत्र)

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मे सया मणो।।

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

महावीर के साधना सूत्रों में आज बारहवें और अंतिम तप पर बात करेंगे। अंतिम तप को महावीर ने कहा है--कायोत्सर्ग--शरीर का छूट जाना। मृत्यु में तो सभी का शरीर छूट जाता है। शरीर तो छूट जाता है मृत्यु में, लेकिन मन की आकांक्षा शरीर को पकड़े रखने की नहीं छूटती। इसलिए जिसे हम मृत्यु कहते हैं वह वास्तविक मृत्यु नहीं है, केवल नये जन्म का सूत्रपात है। मरते क्षण में भी मन शरीर को पकड़ रखना चाहता है। मरने की पीड़ा ही यही है कि जिसे हम नहीं छोड़ना चाहते हैं वह छूट रहा है। बेचैनी यही है कि जिसे हम पकड़ रखना चाहते हैं उसे नहीं पकड़ रख पा रहे हैं। दुख यही है कि जिसे समझा था कि मैं हूं, वही नष्ट हो रहा है।
मृत्यु में जो घटना सभी को घटती है, वही घटना ध्यान में उनको घटती है,
जो ग्यारहवें चरण तक की यात्रा कर लिए होते हैं। ठीक मृत्यु जैसी ही घटना घटती है। कायोत्सर्ग का अर्थ है उस मृत्यु के लिए सहज स्वीकृति का भाव। वह घटेगी। जब ध्यान प्रगाढ़ होगा तो ठीक मृत्यु जैसी ही घटना घटेगी। लगेगा साधक को कि मिटा, समाप्त हुआ। इस क्षण में शरीर को पकड़ने का भाव न उठे, इसी की साधना का नाम कायोत्सर्ग है। ध्यान के क्षण में जब मृत्यु जैसी प्रतीति होने लगे तब शरीर को पकड़ने की अभीप्सा, आकांक्षा न उठे, शरीर का छूटता हुआ रूप स्वीकृत हो जाए, सहर्ष, शांति से, अहोभाव से, यह शरीर को विदा देने की क्षमता आ जाए, उस तप का नाम कायोत्सर्ग है।
मृत्यु और ध्यान की समानता को समझ लेना जरूरी है तभी कायोत्सर्ग समझ में आएगा। मृत्यु में यही होता है कि शरीर आपका चुक गया; अब और जीने, और काम करने में असमर्थ हुआ; तो आपकी चेतना शरीर को छोड़ कर हटती है, अपने स्रोत में सिकुड़ती है। लेकिन चेतना सिकुड़ती है स्रोत में फिर भी चित्त पकड़े रखना चाहते है। जैसे किनारा कोई आपके हाथ से खिसका जाता हो; जैसे नाव कोई आपसे दूर हटी जाती हो। शरीर को हम जोर से पकड़ रखना चाहते हैं, और शरीर व्यर्थ हो गया; चुक गया; तो तनाव पैदा होता है। जो जा रहा है उसे रोकने की कोशिश से तनाव पैदा होता है। उसी तनाव के कारण मृत्यु में मूर्च्छा आ जाती है। क्योंकि नियम है, एक सीमा तक हम तनाव को सह सकते हैं, एक सीमा के बाहर तनाव बढ़ जाए तो चित्त मूर्च्छित हो जाता है, बेहोश हो जाता है।
मृत्यु में इसीलिए हर बार हम बेहोश मरते हैं। और इसलिए अनेक बार मर जाने के बाद भी हमें याद नहीं रहता कि हम पीछे भी मर चुके हैं। और इसलिए हर जन्म नया जन्म मालूम होता है। कोई जन्म नया जन्म नहीं है। सभी जन्मों के पीछे मौत की घटना छिपी है। लेकिन हम इतने बेहोश हो गए होते हैं कि हमारी स्मृति में उसका कोई निशान नहीं छूट जाता। और यही कारण है कि हमें पिछले जन्म की स्मृति भी नहीं रह जाती, क्योंकि मृत्यु की घटना में हम इतने बेहोश हो जाते हैं, वही बेहोशी की पर्त हमारे पिछले जन्म की स्मृतियों को हमसे अलग कर देती है। एक दीवाल खड़ी हो जाती है। हमें कुछ भी याद नहीं रह जाता। फिर हम वही शुरू कर देते हैं जो हम बार-बार शुरू कर चुके हैं।
ध्यान में भी यही घटना घटती है, लेकिन शरीर के चुक जाने के कारण नहीं,
मन की आकांक्षा के चुक जाने के कारण, यह फर्क होता है। शरीर तो अभी भी ठीक है लेकिन मन की शरीर को पकड़ने की जो वासना है वह चुक गई। अब कोई मन पकड़ने का

न रहा। तो शरीर और चेतना अलग हो जाते हैं, बीच का सेतु टूट जाता है। जोड़ने वाला हिस्सा है मन, आकांक्षा, वासना वह टूट जाती है। जैसे कोई सेतु गिर जाए और नदी के दोनों किनारे अलग हो जाएं, ऐसे ही ध्यान में विचार और वासना के गिरते ही चेतना अलग और शरीर अलग हो जाता है। उस क्षण तत्काल हमें लगता है कि मृत्यु घटित हो रही है। और साधक का मन होता है--वापस लौट चलूं, यह तो मौत आ गई। और अगर साधक वापस लौट जाए तो बारहवां चरण घटित नहीं हो पाता। अगर साधक वापस लौट जाए तो ध्यान भी अपनी पूरी परिणति पर नहीं पहुंच पाता। अगर साधक वापस लौट जाए भयभीत होकर इस बारहवें चरण से, तो सारी साधना व्यर्थ हो जाती है। इसलिए महावीर ने ध्यान के बाद कायोत्सर्ग को अंतिम तप कहा है। जब यह सेतु टूटे तो इसे खड़े हुए देखते रहना कि सेतु टूट रहा है। और जब शरीर और चेतना अलग हो जाएं ध्यान में तो भयभीत न होना। अभय से साक्षी बने रहना। एक क्षण की ही बात है। एक क्षण ही अगर कोई ठहर गया कायोत्सर्ग में, तो फिर कोई भय नहीं रह जाता। फिर तो मृत्यु भी नहीं रह जाती। जैसे ही शरीर और चेतना एक क्षण को भी अलग होकर दिखाई पड़ गए, उसी दिन से मृत्यु का सारा भय समाप्त हो गया। क्योंकि अब आप जानते हैं आप शरीर नहीं है, आप कोई और हैं। और जो आप हैं, शरीर नष्ट हो जाए तो भी वह नष्ट नहीं होता है। यह प्रतीति, यह अमृत का अनुभव, यह मृत्यु के जो अतीत है उस जगत में प्रवेश कायोत्सर्ग के बिना नहीं होता है।
लेकिन परंपरा कायोत्सर्ग का कुछ और ही अर्थ करती रही है। परंपरा अर्थ
कर रही है कि काया पर दुख आएं, पीड़ाएं आएं, तो उन्हें सहज भाव से सहना। कोई सताए तो उसे सहज भाव से सहना। बीमारी आए तो उसे सहज भाव से सहना। कष्ट आएं, कर्मों के फल आएं तो उन्हें सहज भाव से सहना। यह कायोत्सर्ग का अर्थ नहीं है, क्योंकि काया-क्लेश में ही समाविष्ट हो जाता है। यह तो बाह्य-तप है। अगर यही कायोत्सर्ग का अर्थ है तो महावीर पुनरुक्ति कर रहे हैं, क्योंकि काया-क्लेश में, बाह्य-तप में इसकी बात हो गई है। महावीर जैसे व्यक्ति पुनरुक्ति नहीं करते। वे कुछ कहते हैं तभी जब कुछ कहना चाहते हैं। अकारण नहीं कहते। कायोत्सर्ग का यह अर्थ नहीं है। कायोत्सर्ग का तो अर्थ है काया को चढा देने की तैयारी, काया को छोड देने की तैयारी, काया से दूर हो जाने की तैयारी, काया से भिन्न हूं ऐसा जान लेने की तैयारी; काया मरती हो तो भी देखता रहूंगा, ऐसा जान लेने की तैयारी।
बुद्ध अपने भिक्षुओं को मरघट पर भेजते थे कि वे मरघट पर रहें और लोगों
की लाशों को देखें--जलते, गड़ाए जाते, पक्षियों द्वारा चीरे-फाड़े जाते, मिट्टी में मिल जाते। भिक्षु बुद्ध से पूछते कि यह किसलिए? तो बुद्ध कहते--ताकि तुम जान सको कि काया में क्या-क्या घटित हो सकता है। और जो-जो एक की काया मे घटित होता है वही-वही तुम्हारी काया में भी घटित होगा। इसे देख कर तुम तैयार हो सको, मृत्यु को देख कर तुम तैयार हो सको कि मृत्यु घटित होगी। लेकिन कभी कोई भिक्षु कहता कि अभी तो मृत्यु को देर है, अभी मैं युवा हूं। तो बुद्ध कहते--मैं उस मृत्यु की बात नहीं करता; मैं तो उस मृत्यु की तैयारी करवा रहा हूं जो ध्यान में घटित होती है। ध्यान महा- मृत्यु है--मृत्यु ही नहीं महामृत्यु। क्योंकि ध्यान में अगर मृत्यु घटित हो जाती है तो फिर कोई जन्म नहीं होता। साधारण मृत्यु के बाद जन्म कीशृंखला जारी रहती है। ध्यान की मृत्यु के बाद जन्म कीशृंखला नहीं रहती। इसलिए महावीर इसे कायोत्सर्ग कहते हैं--काया का सदा के लिए बिछुड़ना
हो जाता है। फिर दुबारा काया नहीं है, फिर दुबारा दुबारा काया में लौटना नहीं है। फिर शरीर में पुनरागमन नहीं है, फिर संसार में वापसी नहीं है। कायोत्सर्ग प्वाइंट आफ नो रिटर्न है, उसके बाद लौटना नहीं है।
लेकिन कायोत्सर्ग तक से हम लौट सकते हैं। जैसे पानी को हम गर्म करते हों, निन्यानबे डिग्री से भी पानी लौट सकता है भाप बने बिना। साढ़े निन्यानबे डिग्री से भी लौट सकता है। सौ डिग्री के पहले जरा सा फासला रह जाए तो पानी वापस लौट सकता है, गर्मी खो जाएगी थोड़ी देर में, पानी फिर ठंडा हो जाएगा। ध्यान से भी वापस लौट जा सकता है, जब तक कि कायोत्सर्ग घटित न हो जाए। आपने एक शब्द सुना होगा, भ्रष्ट योगी; पर कभी ख्याल न किया होगा कि भ्रष्ट योगी का क्या अर्थ होता है। शायद आप सोचते होंगे कि कोई भ्रष्ट काम

करता है, ऐसा योगी। भ्रष्ट योगी का अर्थ होता हैः जो कायोत्सर्ग के पहले ध्यान से वासन लौट आए। ध्यान तक चला गया, लेकिन ध्यान के बाद जो मौत की घबड़ाहट पकड़ी तो वापस लौट आया। फिर उसका जन्म हो गया। इसे भ्रष्ट योगी कहेंगे।
भ्रष्ट योगी का अर्थ यह है कि निन्यानबे डिग्री तक पहुंचकर जो वापस लौट आया। सौ डिग्री तक पहुंच जाता तो भाप बन जाता, तो रूपांतरण हो जाता। तो नया जीवन शुरू हो जाता, तो नई यात्रा प्रारंभ हो जाती। ध्यान निन्यानबे डिग्री तक ले जाता है। सौवीं डिग्री पर तो आखिरी छलांग पूरी करनी पड़ती है।
वह है शरीर को उत्सर्ग कर देने की छलांग।
लेकिन हम अपनी तरफ से समझें, जहां हम खड़े हैं वहां शरीर मालूम पड़ता है
कि मेरा है। ऐसा भी नहीं, सच में तो ऐसा मालूम पड़ता है कि मैं शरीर हूं।
हमें कभी कोई एहसास नहीं होता है कि शरीर से अलग भी हमारा कोई होना है।
शरीर ही मैं हूं। तो शरीर पर पीड़ा आती है तो मुझ पर पीड़ा आती है, शरीर को भूख लगती है तो मुझे भूख लगती है, शरीर को थकान होती है तो मैं थक जाता हूं। शरीर और मेरे बीच एक तादात्म्य है, एक आइडेंटिटी है, हम जुड़े हैं, संयुक्त है। हम भूल ही गए हैं कि मैं शरीर से पृथक भी कुछ हूं। एक इंच भर भी हमारे भीतर ऐसा कोई हिस्सा नहीं है जिसे मैंने शरीर से अन्य जाना हो।
इसलिए शरीर के सारे दुख हमारे दुख हो जाते हैं, शरीर के सारे संताप हमारे संताप हो जाते हैं शरीर का जन्म हमारा जन्म बन जाता है; शरीर का बुढ़ापा हमारा बुढ़ापा बन जाता है; शरीर की मृत्यु हमारी मृत्यु बन जाती है। शरीर पर जो घटित होता है, लगता है वह मुझ पर घटित हो रहा है। इससे बड़ी कोई भ्रांति नहीं हो सकती। लेकिन हम बाहर से ही देखने के आदी हैं, शरीर से ही पहचानने के आदी हैं।
सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन का पिता अपने जमाने का अच्छा वैद्य था। बूढ़ा हो गया है बाप। तो नसरूद्दीन ने कहाः अपनी कुछ कला मुझे भी सिखा जाओ। कई दफे तो मैं चकित होता हूं देखकर कि नाड़ी तुम बीमार की देखते हो और ऐसी बातें कहते हो जिनका नाड़ी से कोई संबंध नहीं मालूम पड़ता। यह कला थोड़ी मुझे भी बता जाओ।
बाप को कोई आशा तो न थी कि नसरुद्दीन यह सीख पाएगा, लेकिन नसरुद्दीन
को लेकर अपने मरीजों को देखने गया। एक मरीज को उसने नाड़ी पर हाथ रख कर देखा और फिर कहा कि देखो, केले खाने बंद कर दो। उसी से तुम्हें तकलीफ हो रही है। नसरुद्दीन बहुत हैरान हुआ। नाड़ी से केले की कोई खबर नहीं मिल सकती है। बाहर निकलते ही उसने बाप से पूछा; बाप ने कहा--तुमने ख्याल नहीं किया, मरीज को ही नहीं देखना पड़ता है, आस-पास भी देखना पड़ता है। खाट के पास नीचे केले कि छिलके पड़े थे। उससे अंदाज लगाया।
दूसरी बार नसरुद्दीन गया, बाप ने नाड़ी पकड़ी मरीज की और कहा कि देखो, बहुत ज्यादा श्रम मत उठाओ। मालूम होता है पैरों से ज्यादा चलते हो। उसी की थकान है। अब तुम्हारी उम्र इतने चलने लायक नहीं रही, थोड़ा कम चलो। नसरुद्दीन हैरान हुआ। चारों तरफ देखा, कहीं कोई छिलके भी नहीं हैं, कहीं कोई बात नहीं है। बाहर आकर पूछा कि हद हो गई, नाड़ी से... ! चलता है
आदमी ज्यादा। बाप ने कहाः तुमने देखा नहीं, उसके जूते के तल्ले बिल्कुल घिसे हुए थे। उन्हीं को देख कर... ।
नसरुद्दीन ने कहाः अब अगली बार तीसरे मरीज को मैं ही देखता हूं। अगर ऐसे ही पता लगाया जा रहा है तो हम भी कुछ पता लगा लेंगे। तीसरे घर पहुंचे, बीमार स्त्री का हाथ नसरुद्दीन ने अपने हाथ में लिया। चारों तरफ नजर डाली, कुछ दिखाई न पड़ा। खाट के नीचे नजर डाली फिर मुस्कुराया। फिर स्त्री से कहा कि देखो, तुम्हारी बेचैनी का कुल कारण इतना है कि तुम जरा ज्यादा धार्मिक हो गई हो। वह स्त्री बहुत घबड़ाई। और चर्च जाना थोड़ो कम करो, बंद कर सको तो बहुत अच्छा। बाप भी थोड़ो हैरान हुआ। लेकिन स्त्री राजी हुई। उसने कहा कि क्षमा करें, हद हो गई कि आप नाड़ी से पहचान गए। क्षमा करें, यह भूल अब दोबारा न करूंगी।
तो बाप और हैरान हुआ। बाहर निकल कर बेटे को पूछा, कि हद्द कर दी तूने।
तू मुझसे आगे निकल गया। धर्म! थोड़ा धर्म में कम रुचि लो, चर्च जाना कम करो,

या बंद कर दो तो अच्छा हो, और स्त्री राजी भी हो गई! बात क्या थी? नसरुद्दीन ने कहाः मैंने चारों तरफ देखा, कहीं कुछ नजर न आया। खाट के नीचे देखा तो पादरी को छिपा हुआ पाया। इस स्त्री की यही बीमारी है। और देखा आपने कि आपके मरीज तो सुनते रहे, मेरा मरीज एकदम बोला कि क्षमा कर दो, अब ऐसी भूल कभी नहीं होगी।
लेकिन नसरुद्दीन वैद्य बन न पाया। बाप के मर जाने के बाद नसरुद्दीन
दो चार मरीजों के पास भी गया तो मुसीबत में पड़ा। जो भी मरीज उससे चिकित्सा करवाए, वे जल्दी ही मर गए। निदान तो उसने बहुत किए, लेकिन कोई निदान किसी मरीज को ठीक न कर पाया। नसरुद्दीन बुढ़ापे में कहता हुआ सुना गया है कि मेरा बाप मुझे धोखा दे गया। जरूर कोई भीतरी तरकीब रही होगी, वह सिर्फ मुझे बाहर के लक्षण बता गया।
बाप ने बाहर के लक्षण सिर्फ भीतरी लक्षणों की खोज के लिए कहे थे। और सदा ऐसा होता है। महावीर ने बाहर के लक्षण कहे हैं भीतर की पकड़ के लिए। परंपरा के लक्षण पकड़ लेती है और फिर धीरे-धीरे बाहर के लक्षण ही हाथ में रह जाते हैं। और फिर भीतर के सब सूत्र खो जाते हैं। नाड़ी से कोई मतलब ही नहीं रह जाता आखिर में। तो नसरुद्दीन को यह भी पक्का पता नहीं रहता था कि नाड़ी अंगुलियों के नीचे है भी या नहीं। वह तो आस-पास देख कर निदान कर लेता था। सारी परंपराएं धीरे-धीरे बाह्य हो जाती हैं और नाड़ी से उनका हाथ छूट जाता है। कायोत्सर्ग का मतलब ही केवल इतना रह गया कि अपनी काया को जब भी कष्ट आए, तो उसे सह लेना। लेकिन ध्यान रहे, काया अपनी है, यह कायोत्सर्ग की परंपरा में स्वीकृत है। यह जो झूठी बाह्य परंपरा है वह भी कहती है, अपनी काया को उत्सर्ग करने की तैयारी रखना, लेकिन अपनी वह काया है, यह बात नहीं छूटती।
महावीर का यह मतलब नहीं है कि अपनी काया को उत्सर्ग कर देना। क्योंकि महावीर कहते हैंः जो अपनी नहीं है उसे तुम कैसे उत्सर्ग करोगे? तुम कैसे चढ़ाओगे? अपने को उत्सर्ग किया जा सकता है; अपने को चढ़ाया जा सकता है; लेकिन जो मेरा नहीं है उसे मैं कैसे
चढ़ाऊंगा। महावीर का कार्यात्सर्ग से भीतरी अर्थ है कि काया तुम्हारी नहीं है, ऐसा जानना कायोत्सर्ग है। मैं काया को चढ़ा दूंगा, ऐसा भाव कायोत्सर्ग नहीं है क्योंकि तब तो इस उत्सर्ग में भी मेरे की, ममत्व की धारणा मौजूद है। और जब तक काया मेरी है तब तक मैं चाहे उत्सर्ग करूं, चाहे भोग करूं, चाहे बचाऊं और चाहे मिटाऊं।
आत्महत्या करने वाला भी काया को मिटा देता है, लेकिन वह कायोत्सर्ग नहीं है। क्योंकि वह मानता है कि शरीर मेरा है। इसलिए मिटाता है। एक शहीद सूली पर चढ़ जाता है, लेकिन वह कायोत्सर्ग नहीं है। क्योंकि वह मानता है, शरीर मेरा है। एक तपस्वी आपके शरीर को नहीं सताता, अपने शरीर को सता लेता है, लेकिन मानता है कि शरीर मेरा है। तपस्वी आपके प्रति कठोर न हो, अपने प्रति बहुत कठोर होता है। क्योंकि वह मानता है यह शरीर मेरा है। आपको भूखा न मार सके, अपने को भूखा मार सकता है क्योंकि मानता है यह शरीर मेरा है। लेकिन जहां तक मेरा है वहां तक महावीर के कायोत्सर्ग की जो आंतरिक नाड़ी है, उस पर आपका हाथ नहीं है। महावीर कहते हैंः यह जानना कि शरीर मेरा नहीं है--कायोत्सर्ग है--यह जानना मात्र। यह जानना बहुत कठिन है।
इस कठिनाई से बचने के लिए आस्तिकों ने एक उपाय निकाला है कि वह कहते हैं कि शरीर मेरा नहीं है, लेकिन परमात्मा का है। महावीर के लिए तो वह भी उपाय नहीं, क्योंकि परमात्मा की कोई जगह नहीं है उनकी धारणा में। यह बहुत चक्करदार बात है। आस्तिक, तथाकथित आस्तिक कहता है कि शरीर मेरा नहीं परमात्मा का है, और परमात्मा मेरा है। ऐसे घूम-फिर कर सब अपना ही हो जाता है। महावीर के लिए परमात्मा भी नहीं है। महावीर की धारणा बहुत अदभुत है और शायद महावीर के अतिरिक्त किसी व्यक्ति ने कभी प्रतिपादित नहीं की। महावीर कहते हैंः तुम तुम्हारे हो, शरीर शरीर का है।
इसको समझ लें। शरीर परमात्मा का भी नहीं है, शरीर शरीर का है। महावीर कहते हैः प्रत्येक वस्तु अपनी है, अपने स्वभाव की है, किसी की नहीं है।
मालकियत झूठ है इस जगत में। वह परमात्मा की भी मालकियत हो तो झूठ है।

ओनरशिप झूठ है। शरीर शरीर का है। इसका अगर हम विश्लेषण करें तो बात पूरी ख्याल में आ जाएगी।
शरीर में आप प्रतिपल श्वास ले रहे हैं। जो श्वास एक क्षण पहले आपकी थी, एक क्षण बाद बाहर हो गयीं, किसी और की हो गई होगी। जो श्वास अभी आपकी है, आपको पक्का है आपकी है? क्षण भर पहले आपके पड़ोसी की थी। और अगर हम श्वास से पूछ सकें कि तू किसकी है, तो श्वास क्या कहेगी? श्वास कहेगी--मैं मेरी हूं। इस मेरे शरीर में--जिसे हम कहते हैं मेरा शरीर--इस मेरे शरीर में मिट्टी के कण हैं। कल वे जमीन में थे, कभी वे किसी और के शरीर में रहे होंगे। कभी किसी वृक्ष में रहे होंगे, कभी किसी फल में रहे होंगे। न मालूम कितनी उनकी यात्रा है। अगर हम उन कणों से पूछें कि तुम किसके हो, तो वे कहेंगे--हम अपने हैं। हम यात्रा करते हैं। तुम सिर्फ स्टेशन हो, जिनसे हम गुजरते हैं। जब हम कहते हैं--शरीर मेरा है तो हम वैसी ही भूल करते हैं कि आप स्टेशन से उतरें और स्टेशन कहे कि यह आदमी मेरा है। आप कहेंगे, तुझसे क्या लेना-देना है, हम बहुत स्टेशन से गुजर गए और गुजरते रहेंगे। स्टेशनें आती हैं और चली जाती हैं।
शरीर जिन भूतों से मिल कर बना है, प्रत्येक भूत उसी भूत का है। शरीर जिन पदार्थों से बना है, प्रत्येक पदार्थ उसी पदार्थ का है। मेरे भीतर जो आकाश है वह आकाश का है; मेरे भीतर जो वायु की है; मेरे भीतर जो पृथ्वी है, वह पृथ्वी की है; मेरे भीतर जो अग्नि है वह अग्नि की है; मेरे भीतर जो जल है वह जल का है। यह कायोत्सर्ग है यह जानना।
और मेरे भीतर जल न रह जाए, वायु न रह जाए, आकाश न रह जाए, पृथ्वी न रह जाए, अग्नि न रह जाए, तब जो शेष रह जाता है वही मै हूं। तब जो छठवां शेष रह जाता है, जो अतिरिक्त शेष रह जाता है वही मै हूं। फिर क्या शेष रह जाता है? अगर वायु भी मैं नहीं हूं, अग्नि भी नहीं हूं, आकाश भी नहीं, जल भी नहीं, पृथ्वी भी नहीं; फिर मेरे भीतर शेष क्या रह जाता है? तो महावीर कहते हैंः सिर्फ जानने की क्षमता शेष रह जाती है, दी कैपेसिटी टु नो। सिर्फ जानना शेष रह जाता है। नोइंग शेष रह जाता है।
तो महावीर कहते हैंः मैं तो सिर्फ जानता हूं, जानना मात्र। इस स्थिती
को महावीर ने केवलज्ञान कहा है--जस्ट नोइंग, सिर्फ जानना मात्र। मैं सिर्फ ज्ञाता ही रह जाता हूं, द्रष्टा ही रह जाता हूं, दृष्टि रह जाता हूं, ज्ञान रह जाता हूं। अस्तित्व का बोध, अवेयरनेस रह जाता हूं। और तो सब खो जाता है। कायोत्सर्ग का अर्थ हैः जो जिसका है वह उसका है, ऐसा जानना। अनाधिकृत मालकियत न करना। लेकिन हम सब अनाधिकृत मालकियत किए हुए हैं और जब हम भीतर अनाधिकृत मालकियत करते हैं तो हम बाहर भी करते हैं। जो आदमी अपने शरीर को मानता है कि मेरा है, वह अपने मकान को कैसे मानेगा कि मेरा नहीं है। पश्चिम में इस समय एक बहुत कीमती विचारक है--मार्शल मैकलुहान! वह कहता है, मकान हमारे शरीर का विस्तार है, एक्सटेंशन ऑफ अवर बॉडीज। है भी। मकान हमारे शरीर का ही विस्तार है। दूरबीन हमारी आंख का ही विस्तार है। बंदूक हमारे नाखूनों का ही विस्तार है, ये हमारे एक्सटेंशन हैं। इसलिए जितना वैज्ञानिक युग होता है उतना आपका बड़ा शरीर होता जाता है। अगर आज से पांच हजार साल पहले किसी आदमी को मारना होता तो बिल्कुल उसकी छाती के पास छुरा लेकर जाना पड़ता। अब जरूरत नहीं है। अब एक आदमी को यहां से बैठ कर वाशिंगटन में भी सारे लोगों की हत्या कर देनी हो तो एक मिसाईल, एक बम चलाएगा और सबको नष्ट कर देगा। आपका शरीर अब बहुत बड़ा है। आप बड़े दूर से... अगर मुझे आपको मारना है तो पास आने की जरूरत नहीं है। पांच सौ फीट की दूरी से बंदूक की गोली से आपको मार दूंगा। लेकिन गोली सिर्फ एक्सटेंशन है।
वैज्ञानिक कहते हैंः आदमी के नाखून कमजोर हैं दूसरे जानवरों से, इसीलिए उसने अस्त्र-शस्त्रों का आविष्कार किया, वह सब्स्टीट्यूट है। नहीं तो आदमी जीत नहीं सकता जानवरों से। आपके नाखून बहुत कमजोर हैं जानवरों के मुकाबले। आपके दांत भी बहुत कमजोर हैं जानवरों के मुकाबले। आपके दांत भी बहुत कमजोर हैं जानवरों के मुकाबले में। अगर आप जानवर से टक्कर लें तो आप गए। तो आपको जानवर से टक्कर लेने के लिए सब्स्टीट्यूट खोजना पड़ेगा। जानवर से ज्यादा मजबूत नाखून बनाने पडेंगे। वे नाखून आपके

छुरे, तलवारें, खंजर, भाले हैं। उससे ज्यादा मजबूत आपको दांत बनाने पड़े, जिनसे उसको आप पीस डालें।
आदमी ने जो भी विकास किया है, जिसे हम आज प्रगति कहते हैं, वह उसके शरीर का विस्तार है। इसलिए जितना वैज्ञानिक युग सघन होता जाता है, उतना आत्मभाव कम होता जाता है। क्योंकि बड़ा शरीर हमारे पास है जिससे हम अपने को एक कर लेते हैं। आपका मकान, आपके मकान की दीवारें आपके शरीर का हिस्सा हैं। आपकी कार आपके बढ़े हुए पैर हैं। आपका हवाई जहाज आपके बढ़े हुए पैर हैं। आपको पता हो या न पता हो, आपका रेडियो आपका बढ़ा हुआ कान है। आपका टेलिविजन आपकी बढ़ी हुई आंख है। तो आज हमारे पास जितना बड़ा शरीर है। उतना महावीर के वक्त में किसी के पास नहीं था। इसलिए आज हमारी मुसीबत भी ज्यादा है। तो जो आदमी अपने शरीर को अपना मानता है, वह अपने मकान को भी अपना मानेगा। दुख बढ़ जाएंगे। जितना बड़ा शरीर होगा हमारा, उतने हमारे दुख बढ़ जाएंगे क्योंकि उतनी मुसीबतें बढ़ जाएंगी।
कभी आपने ख्याल किया है, आपकी कार को खरोंच लग जाए तो करीब-करीब आपकी चमड़ी को लग जाती है। शायद एक दफे चमड़ी पर भी लग जाए तो उतनी तकलीफ नहीं होती जितनी कार को लग जाने से होती है। कार आपकी चमकदार चमड़ी बन गई है। वह आपका आवरण है, आपके बाहर। शरीर, महावीर कहते हैं इसकी जरा सी भी मालकियत अगर हुई तो मालकियत बढ़ती जाएगी। और मालकियत का कोई अंत नहीं है। आज नहीं कल चांद पर झगड़ा खड़ा होने वाला है कि वह किसका है। अभी तो पहुंचे हैं हम इसलिए इतनी दिक्कत नहीं है। लेकिन आज नहीं कल झगड़ा खड़ा होने वाला है कि चांद किसका है? अगर रूस और अमरीका में इतना संघर्ष था चांद पर पहले पहुंचने के लिए तो वह सिर्फ वैज्ञानिक प्रतियोगिता ही नहीं थी, उसमें गहरी मालकियत है। पहला झंडा अमरीका का गड़ गया है वहां। आज नहीं कल किसी दिन अंतर्राष्ट्रीय अदालत में यह मुकदमा होगा ही कि चांद किसका है। पहले कौन मालिक बना? इसलिए रूस के वैज्ञानिक चांद की चिंता कम कर रहे हैं और मंगल पर पहुंचने की कोशिश में लग गए हैं। क्योंकि चांद पर किसी भी दिन झगड़ा खड़ा होने ही वाला है, वह मालकियत अब उनकी है नहीं।
इस मालकियत का अंत क्या है? इसका प्रारंभ कहां से होता है? इसका प्रारंभ होता है, शरीर के पास हम जब मालकियत खड़ी करते हैं, तभी विस्तार शुरू हो जाता है। विस्तार का कोई अंत नहीं है। और जितना विस्तार होता है उतने हमारे दुख बढ़ जाते हैं क्योंकि महावीर कहते हैं--आनंद को वही उपलब्ध होता है जो मालिक ही नहीं है। जो अपने शरीर का भी मालिक नहीं है। जो मालकियत करता ही नहीं। कायोत्सर्ग का अर्थ हैः मैं उतने पर ही हूं, जितने पर मेरी जानने की क्षमता का फैलाव है--वही मैं हूं, बस जानने की क्षमता मै हूं। ध्यान के बाद इस चरण को रखने का प्रयोजन है, क्योंकि ध्यान आपके जानने की क्षमता का अनुभव है।
ध्यान का अर्थ ही है--वह जो मेरे भीतर ज्ञान है, उसको जानना। जितना ही मैं परिचित होता हूं कांशसनेस से, चेतना से, उतना ही मेरा जड़ पदार्थो के साथ जो संबंध है वह विछिन्न होता जाता है और एक घड़ी आती है कि भीतर मैं सिर्फ एक ज्ञान की ज्योति रह जाता हूं।
लेकिन अभी हमारा जोड़ दीये से है--मिट्टी के दीये से। उस ज्ञान की ज्योति से नहीं जो दीये में जलती है। अभी हम समझते हैं कि मैं मिट्टी का दीया हूं। मिट्टी का दीया फूट जाता है तो हम सोचते हैं--मैं मर गया। ऐसे ही घर में अगर मिट्टी का दीया फूट जाए तो हम कहते हैं--ज्योति नष्ट हो गई। लेकिन ज्योति नष्ट नहीं होती सिर्फ विराट आकाश में लीन हो जाती है।
कुछ भी नष्ट तो होता नहीं इस जगत में। जिस दिन हमारे शरीर का दीया फूट जाता है, उस दिन भी जो चेतना की ज्योति है, वह फिर अपनी नई यात्रा पर निकल जाती है। निश्चित ही वह अदृश्य हो जाती है, क्योंकि उसके दृश्य होने के लिए माध्यम चाहिए। जैसे रेडियो आप अपने घर में लगाए हुए हैं, जब आप बंद कर देते हैं तब आप सोचते हैं क्या कि रेडियो में जो आवाजें आ रही थीं, उनका आना बंद हो गया? वे अब भी आपके कमरे से गुजर रही हैं, बंद नहीं हो गईं। जब आप रेडियो ऑन करते हैं तभी वे आना शुरू नहीं हो जाती हैं। जब आप रेडिओ ऑन करते हैं तब आप उनको पकड़ना शुरू करते हैं, वे दृश्य होती हैं। वे मौजूद

हैं। जब आपका रेडियो बंद पड़ा है तब आपके कमरे से उनकी ध्वनियां निकल रही हैं, लेकिन आपके पास उन्हें पकड़ने का, दृश्य बनाने का कोई उपाय नहीं है। रेडियो आप जैसे ही लगा देते हैं, रेडियो का यंत्र उन्हें दृश्य कर देता है। श्रावण में वे आपके पकड़ में आ जाते हैं।
जैसे ही किसी व्यक्ति का शरीर छूटता है तो चेतना हमारी पकड़ के बाहर हो जाती है। लेकिन नष्ट नहीं हो जाती। अगर हम फिर से उसे शरीर दे सकें तो वह फिर प्रकट हो सकती है। इसलिए इसमें कोई हैरानी की बात नहीं है कि वैज्ञानिक आज नहीं कल मरे हुए आदमी को भी पुनरुज्जीवित कर सकेंगे। इसलिए नहीं कि उन्होंने आत्मा को बनाने की कला पा ली है, बल्कि सिर्फ इसलिए कि वे रेडियो को सुधारने की तरकीब सीख गए हैं। इसलिए नहीं कि उन्होंने आदमी की आत्मा को पकड़ लिया, बल्कि इसलिए कि उन्होंने जो यंत्र बिगड़ गया था उसे फिर इस योग्य बना दिया कि आत्मा उससे प्रकट हो सके।
इसमें बहुत कठिनाई नहीं मालूम होती, यह जल्दी ही संभव हो जाएगा। लेकिन जैसे-जैसे ये चीजें संभव होती जाती हैं, वैसे-वैसे हमारा काया का मोह बढ़ता चला जाता है। अगर आपको मरने से भी बचाया जा सकता है तब तो आप और भी जोर से मानने लगेंगे कि मै शरीर हूं। क्योंकि शरीर बच जाता है। तो मैं बच जाता हूं। मनुष्य की प्रगति एक तरफ प्रगति है, दूसरी तरफ बड़ा ह्नास है और बड़ा पतन है। एक तरफ हमारी समझ बढ़ती जाती है, दूसरी तरफ हमारी समझ बहुत कम होती चली जाती है। करीक-करीब ऐसा लगता है, हमारी जो समझ बढ़ रही है वह केवल शरीर को आधार मान कर बढ़ती चली जा रही है, उसमे चेतना का कोई आधार नहीं है। इसलिए आदमी आज दुनिया में सर्वाधिक जानता हुआ मालूम पड़ता है फिर भी इससे ज्यादा अज्ञानी समाज खोजना कठिन है।
महावीर जैसे व्यक्ति तो इसको पतन ही कहेंगे, इसको विकास नहीं कहेंगे।
वे कहेंगे कि यह पतन है क्योंकि इससे दुख बढ़ा है, आंनद नहीं बढ़ा है। कसौटी क्या है प्रगति की? कि आनंद बढ़ जाए। साधन बढ़ जाते हैं, दुख बढ़ जाता है। हमारा फैलाव बढ़ गया, मालकियत बढ़ गई, और दुख बढ़ गया। हम अब ज्यादा चीजों पर चिंता करते हैं। महावीर के जमाने में इतनी चीजों पर लोग चिंता नहीं करते थे। अब हमारी चिंताएं बहुत ज्यादा हैं। चिंताएं हमारी बहुत दूर निकल गई हैं। चांद तक के लिए हमारी चिंता है। चिंता हमारी बढ़ गई है, लेकिन वह निश्चिंत चेतना का हमें कोई अनुभव नहीं रहा। कायोत्सर्ग का अर्थ हैः चिंता के जगत से अपना संबंध तोड़ लेना।
कैसे तोड़ेंगे? जब तक आप ध्यान में नहीं उतरेंगे तब तक कायोत्सर्ग की बात आपको मैं समझा रहा हूं, वह ठीक-ठीक ख्याल में नहीं आ सकेगी। लेकिन समझाता हूं, शायद कभी ध्यान में उतरे तो ख्याल में आ जाए। शरीर से कैसे छूटेंगे? तो एक तो निरंतर स्मरण है कि शरीर मैं नहीं हूं, निरंतर स्मरण कि शरीर मैं नहीं हूं। चलते, उठते, बैठते निरंतर स्मरण कि शरीर मैं नहीं हूं। यह निषेधात्मक है, निगेटिव है। लेकिन किसी भी प्रतीति को तोड़ना हो तो जरूरी है। और हम जो भी मान कर बैठते हैं वह प्रतीत होने लगता है। दो में से कुछ एक छोड़ना पड़ेगा। या तो आत्मा मैं नहीं हूं, इस प्रतीति में हमे उतर जाना पड़ेगा, अगर हम--शरीर मैं हूं--इसको गहरा करते है; या शरीर मैं नहीं हूं, इसको हम प्रगाढ़ करते हैं तो मैं आत्मा हूं इसका बोध धीरे-धीरे जगना शुरू हो जाएगा।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपने शराब घर में बहुत उदास बैठा है। मित्रों ने पूछाः इतने परेशान क्यों हो? मुल्ला ने कहाः परेशानी यह है कि पत्नी ने आज अल्टीमेटम दे दिया है आखिरी, और कह दिया है कि आज रात तक शराब पीना बंद नहीं किया तो वह मुझे छोड़ कर अपनी मां के घर चली जाएगी। मित्र ने कहाः यह तो बड़ी कठिनाई हुई, यह तो बड़ी मुश्किल हुई। इससे तो तुम बड़ी कठिनाई में पड़ोगे। क्योंकि मित्र ने सोचा कि शराब छोड़ना मुल्ला नसरुद्दीन को भारी कठिनाई होगी।
मुल्ला ने कहा कि तुम समझ नहीं पा रहे हो। कठिनाई तो होगी, आई विल मिस
हर वेरी मच, मैं पत्नी की बहुत ज्यादा कमी अनुभव करूंगा उसके जाने से। मित्र ने कहाः मैं तो समझता था कि तुम शराब छोड़ दोगे और कठिनाई अनुभव करोगे। नसरुद्दीन ने कहाः मैंने बहुत सोचा, दो में से कुछ एक ही हो सकता है

य तो शराब छोड़ कर मैं कठिनाई अनुभव करूं, या पत्नी को छोड़ कर, कठिनाई अनुभव करूं। फिर मैंने तय किया कि पत्नी को छोड़ कर हर कठिनाई अनुभव करना ठीक है, क्योंकि पत्नी को छोड़ कर कठिनाई को शराब में भुलाया जा सकता है, लेकिन शराब छोड़ कर पत्नी के साथ कुछ भुलावा नहीं, और शराब की ही याद आती है। तो दो में से कुछ एक तय करना ही है।
और एक घटना उसके जीवन में है कि अंततः एक बार पत्नी उसे छोड़ कर ही चली गई। मुल्ला शराब सामने लिए है, अपने घर मे बैठा है, अकेला है। एक मित्र आया। न तो शराब पीता है, ढाल कर गिलास में रखी है। बैठा है। मित्र ने कहाः क्या पत्नी के चले जाने का दुख भुलाने की कोशिश कर रहे हो? मुल्ला ने कहाः मैं बड़ी परेशानी में हूं। दुख ही न बचा, भुलाऊं क्या! इसलिए शराब सामने रखे बैठा हूं, पीयूं भी तो क्यों! दुख ही न बचा तो भुलाऊं क्या, यही परेशानी में हूं।
विकल्प हैं, आल्टरनेटिव्स हैं। जिंदगी में प्रतिपल, प्रति कदम विकल्प हैं। क्योंकि जिंदगी बंद है। हमने एक विकल्प चुना हुआ है--शरीर मैं हूं, तो आत्मा को भूलना ही पड़ेगा। अगर आत्मा को स्मरण करना हो तो शरीर मैं हूं, यह विकल्प तोड़ना जरूरी है। और तोड़ने में जरा भी कठिनाई नहीं हैं, सिर्फ स्मृति को गहरा करने की बात है। आप वही हो जाते हैं जो आप मानते हैं। बुद्ध ने कहा हैः विचार ही वस्तुएं बन जाते हैं। विचार ही सघन होकर वस्तुएं बन जाते हैं। शायद आपको कई बार ऐसा अनुभव हुआ हो कि जरा से विचार के परिवर्तन से आपके भीतर सब परिवर्तित हो जाता है।
अमरीका की एक बहुत बड़ी अभिनेत्री थी ग्रेटा गारबो। उसने अपने जीवन संस्मरणों में लिखा है कि एक छोटे से विचार ने मेरे सारे तादात्म्य को, मेरी इमेज को तोड़ दिया। ग्रेटा गारबो एक छोटे से नाईबाड़े में, सैलून में, लोगों की दाढ़ी पर साबुन लगाने का काम ही करती थी--जब तक वह बाईस साल की हो गई तब तक। उसे पता ही नहीं था कि वह कुछ और भी हो सकती है और यह तो वह सोच भी नहीं सकती थी कि अमरीका कि श्रेष्ठतम अभिनेत्री हो सकती है। और बाईस साल की उम्र तक जिस लड़की को अपने सौंदर्य का पता न चला हो, अब माना जा सकता है कि कभी पता न चलेगा।
उसने अपनी आत्म-कथा में लिखा है। लेकिन एक दिन क्रांति घटित हो गई। एक आदमी आया और मैं उसकी दाढ़ी पर साबुन लगा रही थी। उसे दो-चार पैसे दाढ़ी पर साबुन लगाने के मिल जाते थे। दिनभर वह लोगों की दाढ़ी पर साबुन लगाती रहती थी। उस आदमी ने आईने में देख कर कहाः कितनी सुंदर! और ग्रेटा गारबो ने लिखा है कि मैंने पहली दफा जिंदगी में किसी को कहते सुना--कितनी सुंदर! नहीं तो किसी ने कहा ही नहीं था, नाईबाड़े में दाढ़ी पर साबुन लगानेवाली लड़की, कौन फिकर करता है!
और ग्रेटा गारबो ने लिखा है कि मैने पहली दफा आईने में गौर से देखा, और मेरे भीतर सब बदल गया। मैंने उस आदमी से कहा कि तुम्हारा धन्यवाद, क्योंकि मुझे मेरे सौंदर्य का कोई पता ही न था। तुमने स्मृति दिली दी। उस आदमी ने दुबारा आईने में देखा और ग्रेटा गारबो की तरफ देखा और कहा कि लेकिन, क्या हुआ! जब मैंने कहा तो तू इतनी सुंदर न थी, मैंने तो सिर्फ एक औपचारिक शिष्टाचार के वश कहा, लेकिन अब मैं देखता हूं तू सुंदर हो गई। वह आदमी एक फिल्म डायरेक्टर था और ग्रेटा गारबो को अपने साथ लेकर गया। ग्रेटा गारबो श्रेष्टतम सुंदरियों में एक बन गई।
हो सकता था जिंदगी भर दाढ़ी पर साबुन लगाने का काम ही करती रहती। एक छोटा सा विचार, इमेज, वह जो प्रतिमा थी उसकी अपने मन में, वह बदल गयीं। असली सवाल आपके भीतर आपके तादात्म्य और आपकी प्रतिमा के बदलने का है। आप जन्मों-जन्मों से मान कर बैठे हैं कि शरीर है। बचपन से आपको सिखाया जा रहा है कि आप शरीर हैं। सब तरफ से आपको बहुत भरोसा और विश्वास दिलाया जा रहा है कि आप शरीर हैं। यह आटो-हिप्नोसिस है, यह सिर्फ सम्मोहन है। आप कहेंगे कि सम्मोहन से कहीं इतनी बड़ी घटना घट सकती है? तो मैं आपको एक-दो घटनाएं कहूं तो शायद ख्याल में आ जाए।
अमेजान में एक कबीला है आदिवासियों का। जो बहुत अनूठा है। जैसा मैंने आपसे पीछे कहा है कि फ्रेंच डाक्टर लोरेंजो स्त्रियों को बिना दर्द के

प्रसव करवा देता है सिर्फ धारणा बदलने से, सिर्फ यह कहने से कि दर्द तुम्हारा पैदा किया हुआ है। तुम शिथिल हो जाओ और बच्चा पैदा हो जाएगा बिना पीड़ा के। हम यह मान भी सकते हैं कि शायद समझाने बुझाने से स्त्री के मन पर ऐसा भाव पड़ जाता होगा, लेकिन दर्द तो होता ही है। लेकिन क्या आपको कभी कल्पना हो सकती है कि पत्नी को जब बच्चा पैदा होता हो तो पति के पेट में भी दर्द होता है? अमेजान में होता है और अमेजान में जब पत्नी को बच्चा होता है तो एक कोठरी में पत्नी बंद होती है, दूसरी कोठरी मे पति बंद होता है। पत्नी नहीं रोती-चिल्लाती, पति रोता-चिल्लाता है! पत्नी को बच्चा होता है, पति को दर्द होता है!
यह हजारों साल से हो रहा है। और जब पहली दफा अमेजान के कबीले में दूसरे जाति के लोग पहुंचे तो वे चकित हो गए कि यह क्या हो रहा है। यह हो क्या रहा है! यह तो भरोसे की बात ही मालूम नहीं पड़ती। लेकिन पता चला कि उनके कबीलों में स्त्रियों को कभी दर्द हुआ ही नहीं। जब दर्द होता है पति को ही होता है, और डाक्टरों ने परीक्षा की और पाया कि वह काल्पनिक नहीं है, दर्द पेट में हो रहा है। सारी अंतड़ियां सिकुड़ी जा रही हैं। जैसा पत्नी के पेट में होता है बच्चे के पैदा होते वक्त, वैसा पति को हो रहा है।
ये सब सम्मोहन हैं, जाति का सम्मोहन। जाति हजारों साल से ऐसा मानती रही, वही हो रहा है। जो हम मानते हैं, वही हो जाता है। पति को दर्द हो सकता है अगर जाति की यह धारणा हो। इसमें कोई अड़चन नहीं है। क्योंकि हम जीते सम्मोहन में हैं। हम जो मानकर जीते हैं वही सक्रिय हो जाता है। और हमारी चेतना की मानने की क्षमता अनंत है। यहीं हमारी स्वतंत्रता है, यही मनुष्य की गरिमा है। यही उसका गौरव है। यही उसका गौरव है कि उसकी चेतना की क्षमता इतनी है कि वह जो मान ले वही घटित हो जाता है। अगर आपने मान लिया है कि आप शरीर हैं तो आप शरीर हो गए, और यह सिर्फ आपकी मान्यता है, जस्ट ए बिलीफ। यह सिर्फ आपका भरोसा है। यह सिर्फ आपका विश्वास है।
क्या आपको पता है कि ऐसे कबीले हैं जिनमें स्त्रियां ताकतवर हैं और पुरुष कमजोर हैं! क्योंकि वे कबीले सदा से ऐसे मानते रहे हैं कि स्त्री ताकतवर है, पुरुष कमजोर है। तो जैसे अगर कोई आदमी यहां कमजोरी दिखाए तो आप कहते हैं--कैसा नामर्द। ऐसा उस कबीले में कोई नहीं कह सकता। क्योंकि मर्द का लक्षण यह है कि वह कमजोरी दिखाए। उस कबीले में अगर स्त्रियां कभी कमजोरी दिखाती हैं तो लोग कहते हैं कि कैसा मर्दों जैसा व्यवहार कर रही है। कमजोरी दिखाते हैं, तो मान्यता है।
आदमी मान्यता से जीनेवाला प्राणी है। और हमारी मान्यता गहरी है कि हम शरीर हैं। यह इतनी गहरी है कि नींद में भी हमें ख्याल रहता है कि हम शरीर हैं। बेहोशी में भी हमें पता रहता है कि हम शरीर हैं। इस मान्यता को तोड़ना कायोत्सर्ग की साधना का पहला चरण है। जो लोग ध्यान तक आए हैं उन्हें तो कठिनाई नहीं पड़ेगी, लेकिन आपको तो बिना ध्यान के समझना पड़ रहा है, इसलिए थोड़ी कठिनाई पड़ सकती है। लेकिन फिर भी पहला सूत्र यह है कि मैं शरीर नहीं हूं। इस सूत्र को अगर गहरा कर लें तो अदभुत परिणाम होने शरू हो जाते हैं। उन्नीस सौ आठ में काशी के नरेश के अपेंडिक्स का आपरेशन हुआ। और नरेश
ने कह दिया कि मैं किसी तरह की बेहोशी की दवा नहीं लूंगा। क्योंकि मैं होश की साधना कर रहा हूं, इसलिए मैं कोई बेहोशी की दवा नहीं ले सकता हूं। आपरेशन जरूरी था, उसके बिना नरेश बच नहीं सकता था। चिकित्सक मुश्किल में थे। बिना बेहोशी के इतना बड़ा आपरेशन करना उचित न था। लेकिन किसी भी हालत में मौत होनी थी। नरेश मरेगा अगर आपरेशन न होगा इसलिए एक जोखिम उठाना ठीक है कि होश में ही आपरेशन किया जाए। नरेश ने कहा कि सिर्फ मुझे आज्ञा दी जाए कि जब आप आपरेशन करें, तब मैं गीता का पाठ करता रहूं। नरेश गीता पाठ करता रहा। बड़ा आपरेशन था, आपरेशन पूरा हो गया। नरेश हिला भी नहीं। दर्द का तो उसके चेहरे पर कोई पता न चला।
जिन छह डाक्टरों ने वह आपरेशन किया वे चकित हो गए। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में लिखा है हम हैरान हो गए। और हमने नरेश से पूछा कि हुआ क्या? तुम्हें दर्द पता नहीं चला! नरेश ने कहा कि जब मैं गीता पढ़ता हूं और जब मैं पढ़ता हूं--न हन्यते हन्यमाने शरीरे... शरीर के मरने से तू नहीं मरता है।

नैनं छिदन्ति शस्त्राणि... जब शस्त्र तुझे छेद दिए जाएं तो तू नहीं छिदता। तब मेरे भीतर ऐसा भाव जग जाता है कि मैं शरीर नहीं हूं। बस इतना काफी है। जब मैं गीता नहीं पढ़ रहा होता हूं, तब मुझे शक पैदा होने लगता है। वह मेरी मान्यता कि मैं शरीर हूं, पीछे से लौटने लगती है। लेकिन जब मैं गीता पढ़ता होता हूं तब मुझे पक्का ही भरोसा हो जाता है कि मैं शरीर नहीं हूं। उस वक्त तुम मुझे काट डालो, पीट डालो! मुझे पता भी नहीं चला। तुमने क्या किया है, मुझे पता नहीं चला। क्योंकि मैं उस भाव में डूबा था, जहां मैं जानता हूं कि शरीर छेद डाला जाए तो मैं नहीं छिदता, शरीर जला जाए तो मैं नहीं जलता। आपके भीतर भी भाव की स्थितियां हैं। आपका मन कोई एक फिक्स्ड, एक थिर चीज नहीं है। उसमें फ्लेक्चुएशंस है, उसमें नीचे ऊपर ज्योति होती रहती है। किसी क्षण में आप बहुत ज्यादा शरीर होते हैं, किसी क्षण में बहुत कम शरीर होते हैं। आप चौबीस घंटे आपके मन की भाव-दशा एक नहीं रहती। जब आप किसी एक सुंदर स्त्री को या सुंदर पुरुष को देख कर उसके पीछे चलने लगते हैं तो आप बहुत ज्यादा शरीर हो जाते हैं। तब आपका फ्लेक्चुएशंस भारी होता है। आप बिल्कुल नीचे उतर आते हैं, "जहां मैं शरीर हूं।"
लेकिन जब आप मरघट पर किसी की लाश जलते देखते हैं तब आपका फ्लेक्चुएशंस बदल जाता है। अचानक मन के किसी कोने में शरीर को जलते देख कर शरीर की प्रतिमा खंडित होती है टूटती है। उन क्षणों को पकड़ना जरूरी है, जब आप बहुत कम शरीर होते हैं। उन क्षणों में यह स्मरण करना बहुत कीमती है कि मैं शरीर नहीं हूं। क्योंकि जब आप बहुत
ज्यादा शरीर होते हैं तब यह स्मरण करना बहुत काम नहीं करेगा, क्योंकि पर्त इतनी मोटी होती है कि आपके भीतर प्रवेश नहीं कर पाएगी। यह आपको ही जांचना पड़ेगा कि किन क्षणों में आप सबसे कम शरीर होते हैं--यद्यपि कुछ निश्चित क्षण हैं जिनमें सभी कम शरीर होते हैं। वह क्षण आपको कहूं तो वह कायोत्सर्ग में आपके लिए उपयोगी होंगे।
जब भी सूर्य डूबता है या उगता है तब आपके भीतर भी रूपांतरण होते हैं।
अब तो वैज्ञानिक इस पर बहुत ज्यादा राजी हो गए हैं कि सुबह जब सूर्य उगता है तब सारी प्रकृति में ही रूपांतरण नहीं होता, आपके शरीर में भी... क्योंकि आपका शरीर प्रकृति का एक हिस्सा है। तब आकाश ही नहीं बदलता; आपके भीतर का आकाश भी बदलता है। तब पक्षी ही गीत नहीं गाते, तब पृथ्वी ही प्रफुल्लित नहीं हो जाती, तब वृक्ष ही फूल नहीं खिलाते; आपके भीतर वह जो मिट्टी है वह भी प्रफुल्लित हो जाती है। क्योंकि वह उस मिट्टी का हिस्सा है, वह कोई अलग चीज नहीं है। तब सागर में ही आंदोलन, फर्क नहीं पड़ते; आपके भीतर भी जो जल है, उसमें भी फर्क पड़ते हैं।
और आप जानकर हैरान होंगे कि आपके भीतर जो जल है वह ठीक वैसा है जैसा सागर में है। उसमें नमक की उतनी ही मात्रा है जितनी सागर के जल में है। और आपके शरीर में थोड़ा बहुत जल नहीं है कोई पच्चासी प्रतिशत पानी है। वैज्ञानिक अब कहते हैंः जब सागर के पास आपको अच्छा लगता है तो अच्छा लगने का कारण आपके भीतर पच्चासी प्रतिशत सागर का होना है। और वह जो पच्चासी प्रतिशत सागर है आपके भीतर, वह बाहर के विराट सागर से आंदोलित हो जाता है। एक हार्मनी, एक रिजोनेंस, एक प्रतिध्वनि उसमें होनी शुरू हो जाती है। जब आपको जंगल में जाकर हरियाली को देखकर बहुत अच्छा लगता है, तो उसका कारण आप नहीं है, आपके शरीर का कण-कण जंगल की हरीयाली रह चुका है। वह रेजोनेंट होता है। वह हरे वृक्ष के नीचे जाकर कंपित होने लगता है। वह उससे संबंधित है, वह उसका हिस्सा है। इसलिए प्रकृति के पास जाकर आपको जितना अच्छा लगता है, उतनी आदमी की बनाई हुई चीजों के पास जाकर अच्छा नहीं लगता। क्योंकि वहां कोई रिजोनेंस पैदा नहीं होता। बम्बई की सीमेंट की सड़क पर उतना अच्छा नहीं लग सकता, जितना सोंधी मिट्टी की गंध आ रही हो और आप मिट्टी पर चल रहे हों और आपके पैर धूल को छू रहो हों। तब आपके शरीर और मिट्टी के बीच एक संगीत प्रवाहित होना शुरु हो जाता है।
जब सुबह सूरज निकलता है तो आपके भीतर भी बहुत कुछ घटित होता है, संक्रमण की बेला है। उसको भारत के लोगों ने संध्या कहा है। संध्या का अर्थ होता है--दि पीरियड ऑफ ट्रांजीशन, बदलाहट का वक्त। बदलाहट के वक्त में

आपके भीतर आपकी जो व्यवस्थित धारणाएं है उनको बदलना आसान है। बदलाहट के वक्त में व्यवस्थित धारणाओं को बदलना आसान है क्योंकि सब अराजक हो जाता है। भीतर सब बदलाहट हो गई होती है, सब अस्त-व्यस्त हो गया होता है। इसलिए हमने संध्या को स्मरण का क्षण बनाया है।
संध्या- प्रार्थना, भजन, धुन, स्मरण, ध्यान का क्षण है। उस क्षण में आसानी से आप स्मरण कर सकते हैं। सुबह और सांझ कीमती वक्त है। रात्रि बारह बजे, जब रात्रि पूरी तरह सघन हो जाती है और सूर्य हमसे सर्वाधिक दूर होता है, तब भी एक बहुत उपयोगी क्षण है। तांत्रिकों ने उसका बहुत उपयोग किया है। महावीर रात-रातभर जाग कर खड़े रहे। महावीर ने उसका बहुत उपयोग किया। आधी रात जब सूरज आपसे सर्वाधिक दूर होता है तब भी आपकी स्थिति बहुत अनूठी होती है। आपके भीतर सब शांत हो गया होता है, जैसे प्रकृति में सब शांत हो गया होता है। वृक्ष झुक कर सो गए होते हैं, जमीन भी सो गई होती है--सब सो गया होता है, अपके शरीर में भी सब सो गया होता है। इस सोए हुए क्षण का भी आप उपयोग कर सकते हैं। शरीर जिद्द नहीं करेगा, आपके विरोध में, राजी हो जाएगा। जैसे आप कहेंगे--मैं शरीर नहीं हूं तो शरीर नहीं कहेगा कि हूं। शरीर सोया हुआ है। इस क्षण में आप कहेंगे कि मैं शरीर नहीं हूं तो शरीर कोई रेसिस्टेंस, कोई प्रतिरोध खड़ा नहीं करेगा। इसलिए आधी रात का क्षण कीमती रहा है।
या फिर आपके--जब आप रात सोते हैं--जागने से जब आप सोने में जाते हैं, तब आपके भीतर गियर बदलता है। आपने कभी ख्याल किया है कार में गियर बदलते हुए जब आप एक गियर से दूसरे गियर में गाड़ी को डालते हैं तो बीच में न्यूट्रल से गुजरते हैं, उस जगह से गुजरते हैं जहां कोई गियर नहीं होता है, क्योंकि उसके बिना गुजरे आप दूसरे गियर में गाड़ी को डाल नहीं सकते।
तो जब रात आप सोते हैं, और जागने से नींद में जाते हैं तो आपकी चेतना
का पूरा गियर बदलता है और एक क्षण को आप न्यूट्रल में, तटस्थ गियर में होते हैं। जहां न आप शरीर होते हैं, न आत्मा। जहां आपकी कोई मान्यता काम नहीं करती। उस क्षण में आप जो भी मान्यता दोहरा लेंगे वह आप में गहरे प्रवेश कर जाएगी। इसलिए रात सोते वक्त यह दोहराते हुए सोना कि मैं शरीर नहीं हूं, मैं शरीर नहीं हूं, मैं शरीर नहीं हूं। आप दोहराते रहें, आपको पता न चले कि कब नींद आ गई। आपका दोहराना तभी बंद हो जब अपने से बंद हो जाए। तो शायद उस क्षण के साथ संबंध बैठ जाए, और उस क्षण में और वह क्षण बहुत छोटा है--उस क्षण में अगर यह भाव प्रवेश कर जाए कि मैं शरीर नहीं हूं, जब आप चेतना रुपांतरित कर रहे हैं तो आपके गहरे अचेतन में चला जाएगा।
अभी रूस में उन्होंने एक शिक्षा की नई पद्धति--हिप्नोपीडिया, नींद में शिक्षा देना, शुरू की। उसमें वे इस बात का प्रयोग कर रहे हैं। इसलिए बहुत पुराने दिनों से लोग प्रभु-स्मरण करते हुए, आत्म-स्मरण करते हुए सोते थे। मैं समझता हूं, आप नहीं सोते, आप शायद फिल्म की जो कहानी देख आए हैं, उसको दोहराते हुए सोते हैं। उस क्षण भी आप दोहरा रहे हैं वह आपके भीतर गहरा चला जाएगा। तो अगर आप गलत दोहरा रहे हैं तो आप आत्महत्या कर रहे हैं। आपको पता नहीं कि आप क्या कर रहे हैं।
हिप्नोपीडिया में रूस में आज कोई लाखों विद्यार्थी शिक्षा पा रहे हैं। रेडियो स्टेशन से ठीक वक्त पर उन सबको सूचना मिलती है कि वे दह बजे सो जाएं। जैसे ही वे दस बजे सो जाते हैं, दस बजकर पंद्रह मिनट पर उनके कान के पास तकिए में लगा हुआ यंत्र उन्हें सूचना देना शुरू कर देता है। जो भी उन्हें सिखाना है- अगर उन्हें फें्रच भाषा सिखनी है तो फ्रेंच भाषा की सूचनाएं शुरू हो जाती हैं। और वैज्ञानिक चकित हुए हैं कि जागने में हम जो चीज तीन साल में सिखा सकते हैं वह सोने में तीन सप्ताह में सिखा सकते हैं। और बहुत जल्द दुनिया में क्रांति घटित हो जाएगी और बच्चे स्कूल में दिन में न पढ़ कर रात में ही जाकर सो जाया करेंगे। दिन भर खेल सकते हैं, एक अर्थ में अच्छा होगा क्योंकि बच्चों का खेल छिन जाने से भारी नुकसान हुए हैं। वे उनको वापस मिल जाएंगे। या रात आपके घर में भी वे सो सकते हैं, स्कूल मे जाने की कोई जरूरत न होगी। उनको वहां भी शिक्षा दी जा सकती है, वह कभी-कभी परीक्षा देने स्कूल जा सकते हैं। अभी तक नींद में परीक्षा लेने का

कोई उपाय नहीं है, परीक्षा जागने में लेनी पड़ेगी शायद। लेकिन नींद के क्षण बहुत ज्यादा सूक्ष्म रूप से ग्राहक और रिसेप्टिव हैं, इस बात को वैज्ञानिकों ने स्वीकार कर लिया है।
इसमें भी सर्वाधिक ग्राहक क्षण वह है, जब आप जागने से नींद में बदलते हैं। ठीक इसी तरह सुबह जब आप नींद से जागने में बदलते हैं तब फिर एक ग्राहक क्षण आता है। उस क्षण भी आप स्मरण करते हुए उठें। जब सुबह नींद खुले तब आप स्मरण--पहला स्मरण यह करें कि मैं शरीर नहीं हूं। आंख बाद में खोलें। कुछ और बाद में सोचें। जैसे ही पता चले कि नींद टूट गई, पहला स्मरण कि मैं शरीर नहीं हूं। और ध्यान रहे, अगर आप रात आखिरी स्मरण यही किए हैं कि मैं शरीर नहीं हूं, तो सुबह अपने-आप यह पहला स्मरण बन जाएगा कि मैं शरीर नहीं हं। क्योंकि चित्त का जो लोग अध्ययन करते हैं वे कहते हैं--रात का आखिरी विचार सुबह का पहला विचार होता है। आप अपनी जांच करेंगे तो आपको पक्का पता चल जाएगा कि रात का आखिरी विचार सुबह का पहला विचार होता है। क्योंकि जहां से आप विचार को छोड़ कर सो जाते हैं, विचार वहीं प्रतीक्षा करता रहता है। सुबह जब आप जागते हैं वह फिर आप पर सवारी कर लेता है। जिस विचार को आप रात छोड़ कर सो गए हैं वह सुबह आपका पहला विचार बनेगा। अब अकसर आप क्रोध, लोभ के किसी विचार को रात छोड़ कर सो जाते हैं; सुबह से वह फिर आप पर सवारी कर लेता है।
यह बहुत ज्यादा सेंसेटिव, संवेदनशील क्षण है--सूर्य की बदलाहट या आपकी चेतना की बदलाहट। बीमारी से जब आप स्वस्थ हो रहे हों या स्वास्थ्य से जब आप अचानक बीमार हो गए हों, अगर रास्ते पर आप जा रहे हों और कार का एकदम से एक्सीडेंट हो जाए तो आप उस क्षण का उपयोग कर सकते हैं। अगर कार आपकी एकदम टकरा गई हो अचानक, तो उस वक्त आपके भीतर इतना परिवर्तन होता है, चेतना इतने जोर से, झटके से बदलती है कि अगर आप उस वक्त स्मरण कर लें कि मैं शरीर नहीं हूं, तो वर्षों स्मरण करने से जो नहीं होगा, वह एक स्मरण करने से हो जाएगा। लेकिन जब आपकी कार टकराती है तब आपको एकदम ख्याल आता है कि मरा, मैं शरीर हूं, मर गए। एक्सीडेंट्स का, दुर्घटनाओं का उपयोग किया जा सकता है। मैं शरीर नहीं हूं यह आपके भीतर गहरा जिस भांति भी बैठ सके, वह सब प्रयोग करने जैसे हैं। तो कायोत्सर्ग की पहली घटना घटती है। लेकिन वह नकारात्मक है। इतना काफी नहीं है कि मैं शरीर नहीं हूं।
दूसरा विधायक अनुभव भी जरूरी है कि मैं आत्मा हूं। इस विधायक अनुभव
को भी स्मरण रखना कीमती है। इसको स्मरण रखने के भी क्षण हैं। इस स्मरण को रखने के भी संक्रमण काल हैं। इस स्मरण को गहरा करने का भी आपके भीतर अवसर और मौका है। कब? जैसे आप संभोग करने के बाद वापस लौट रहे हैं। जब आप संभोग के बाद वापस लौट रहे होते हैं--तो आप जान कर हैरान होंगे--उस वक्त आप सबसे कम शरीर हो जाते हैं। और कामवासना के बाद वापस लौटते हैं, तब आप सिर्फ फ्रस्ट्रेशन और विषाद में होते हैं। और ऐसा लगता है--व्यर्थ, भूल, गलती, अपराध में गए। न जाते तो बेहतर। यह ज्यादा देर नहीं टिकेगी बात। घड़ी
दो घड़ी में आप अपनी जगह वापस आ जाएंगे। लेकिन संभोग के क्षण के बाद शरीर को इतने झटके लगते हैं कि उसके बाद आपको, शरीर नहीं हूं यह प्रतीति, और मैं आत्मा हूं यह प्रतीति करने का अदभुत मौका है।
तंत्र ने इसका पूरा उपयोग किया है। इसलिए आप, अगर आप कोई तंत्र से थोड़ा भी परिचित रहा है तो वह जान कर हैरान होगा कि तंत्र ने संभोग का भी उपयोग किया है ध्यान के लिए। क्योंकि संभोग के बाद जितने गहरे में यह बात मन में उठाई जा सकती है कि मैं आत्मा हूं, उतनी किसी और क्षण में उठानी बहुत मुश्किल है। क्योंकि उस वक्त शरीर टूट गया होता है, शरीर की आकांक्षा बुझ गई होती है, शरीर के साथ तादात्म्य जोड़ने का भाव मर गया होता है। यह ज्यादा देर नहीं टिकेगा। और अगर आपकी आदत मजबूत हो गई है, तो आपको पता ही नहीं चलेगा। तो अकसर लोग संभोग के बाद चुपचाप सो जाएंगे। सोने के सिवाय उन्हें कुछ नहीं सूझेगा। लेकिन संभोग के बाद का क्षण बहुत कीमती हो सकता है। लेकिन हमें तो ख्याल भी नहीं रहता है कि हम भूल करते हैं, अपराध करते हैं।

मैंने सुना है कि वेटिकन के पोप ने अपने एक वक्तव्य में कहा कि ईसाइयत में एक सौ तैंतालीस पाप हैं--निंदित पाप। ऐसा माना है। हजारों पत्र वेटिकन के पोप के पास पहुंचे कि हमें पता ही नहीं था कि इतने पाप हैं, कृपा करके पूरी सूची भेजें। वेटिकन का पोप बहुत हैरान हुआ। इतने लोग क्यों उत्सुक हैं सूची के लिए? मुल्ला नसरुद्दीन ने भी उसको पत्र लिखा। उसने सच्ची बात लिख दी। उसने लिखा कि जब से तुम्हारा वक्तव्य पढ़ा, तब से मुझे ऐसा लग रहा है कि कितना हम चूकते रहे। इतने पाप हमने किए ही नहीं। दो-चार पाप करके ही अपनी जिंदगी गुजार रहे हैं। जल्दी से भेजो, जिंदगी बिल्कुल अर्थहीन मालूम पड़ रही है, जब से यह सुना कि एक सौ तैंतालीस पाप हैं। कितना हम मिस कर गए, कितना हम चूक गए, और जिंदगी थोड़ी बची है।
आदमी का जो मन है, वह ऐसा ही है। आपको खबर लगे कि एक सौ तैंतालीस पाप हैं तो आप भी घर जाकर सोचेंगे, गिनती करेंगे। कितने दो-चार ही पांच गिनती में आते हैं। बहुत बड़े पापी हुए तो दस अंगुलियां काफी पड़ेंगी। एक सौ तैंतालीस! चूक गए, जिंदगी बेकार गई, खो गया मौका। इतने हो सकते थे और नहीं किए।
मुल्ला जिस दिन मर रहा था, पुरोहित ने उससे कहा कि अब क्षमा मांग ले परमात्मा से, पश्चाताप कर। मुल्ला ने कहाः क्या खाक पश्चाताप करुं! मैं पश्चाताप यह कर रहा हूं कि जो पाप मैंने नहीं किए, कर ही लिए होते तो अच्छा था। क्योंकि जब माफी ही मांगनी थी तो एक के लिए मांगी कि दस के लिए मांगी, क्या फर्क पड़ता है! फिर तुम कह रहे हो परमात्मा दयालु है। अगर वह दयालु है तो एक भी माफ कर देता, दस भी माफ कर देता। हम नाहक परेशान हुए। माफी मांगनी ही पड़ेगी। वह दयालु भी है, निश्चित दयालु है। हम नाहक चूके। पूरे ही कर लेते। तो मैं पछता रहा हूं--मुल्ला ने कहा--जरूर पछता रहा हूं, लेकिन उन पापों के लिए, जो मैंने नहीं किए, उन पापों के लिए नहीं, जो मैंने किए। मरते वक्त आदमी पछताता है उन पापों के लिए जो उसने नहीं किए। लेकिन किसी भी पाप को करने के बाद का जो क्षण है वह बड़ा उपयोगी है। अगर आपने क्रोध किया है, तो क्रोध के बाद का जो क्षण है उसका उपयोग करें कायोत्सर्ग के लिए। उस वक्त आसान होगा आपको मानना कि मैं आत्मा हूं। उस क्षण शरीर से दूर हटना आसान होगा। अगर शराब पी ली है और सुबह हैंगओवर चल रहा है, तो उस वक्त आसान होगा मानना कि मैं आत्मा हूं। उस वकत शरीर के प्रति एक तरह की ग्लानि का भाव और शरीर अपराधों में ले जाता है, इस तरह का भाव सहज, सरलता से पैदा हो जाता है। जब बीमारी से उठ रहे हैं तब बहुत आसान होगा मानना। अस्पताल में जाकर खड़े हो जाएं, वहां मानना बहुत आसान होगा कि मैं शरीर नहीं हूं। जायें, वहां विचित्र-विचित्र प्रकार से लोग लटके हुए हैं, किसी की टांगे बंधी हुई हैं, किसी की गर्दन बंधी हुई है। वहां खड़े होकर पूछें कि मैं शरीर हूं? तो शरीर हूं तो वह जो सामने लटके हुए रूप दिखाई पड़ेंगे वही हूं। वहां आसान होगा। मरघट पर जाकर आसान होगा कि मैं शरीर नहीं हूं। जिन क्षणों में भी आसानी लगे स्मरण करने की मैं आत्मा हूं, उनको चूकें मत, स्मरण करें। दो स्मरण जारी रखें--निषेध रूप से--मैं शरीर नहीं हूं; विधायक रूप से--मैं आत्मा हूं।
और तीसरी आखिरी बात--शरीर का जो तत्व है, वह उसी तत्व से संबंधित है जो हमारे बाहर फैला हुआ है। मेरी आंख में जो प्रकाश है, वह सूरज का; मेरे हाथों में जो मिट्टी है, वह पृथ्वी की; मेरे शरीर में जो पानी है, वह पानी का; इसका स्मरण रखें। और निरंतर समर्पित करते रहें जो जिसका है उसी का है। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे आपके भीतर वह चेतना अलग खड़ी होने लगेगी जो शरीर नहीं है। और वह चेतना खड़ी हो जाए और ध्यान के साथ उस चेतना का प्रयोग हो, तो आप कायोत्सर्ग कर पाएंगे।
जब ध्यान अपनी प्रगाढ़ता में आएगा, परिपूर्णता में, और शरीर लगेगा छूटता है, तब आपका मन पकड़ने का नहीं होगा। आप कहेंगे, छूटता है तो धन्यवाद! जाता है तो धन्यवाद! जाए तो जाए, धन्यवाद! इतनी सरलता से जब आप ध्यान में शरीर से अपने को छोड़ने मे समर्थ हो जाएंगे, उसी दिन आप मृत्यु के पार और अमृत के अनुभव को उपलब्ध हो जाएंगे। उसके बाद फिर कोई मृत्यु नहीं है। मृत्यु शरीर मोह का परिणाम है। अमृत्व का बोध शरीर मुक्ति का परिणाम है।

इसे महावीर ने बारहवां तप कहा है और अंतिम। क्योंकि इसके बाद कुछ करने को शेष नहीं रह जाता। इसके बाद वह पा लिया जिसे पाने के लिए दौड़ थी; वह जान लिया जिसे जानने के लिए प्राण प्यासे थे। वह जगह मिल गई जिसके लिए इतने रास्तों पर यात्रा की थी। वह फूल खिल गया, वह सुगंध बिखर गई, वह प्रकाश जल गया जिसके लिए अनंत-अनंत जन्मों तक का भटकाव था।
कायोत्सर्ग विस्फोट है, एक्सप्लोजन है। लेकिन उसके लिए भी तैयारी करनी पड़ेगी। उसके लिए यह तैयारी करनी पड़े और ध्यान के साथ उस तैयारी को जोड़ देना पड़ेगा। ध्यान और कायोत्सर्ग जहां मिल जाते हैं, वहीं व्यक्ति अमृत्व को पा लेता है।
ये महावीर के बारह तप मैंने कहे। एक ही सूत्र पूरा हो पाया, कहूं अभी
एक ही पंक्ति पूरी ही पाई, उसकी दूसरी पंक्ति बाकी है। लेकिन उसमें ज्यादा कहने को नहीं है। दूसरी पंक्ति इसकी बाकी है। महावीर ने कहा हैः "धर्म मंगल है। कौन सा धर्म? अहिंसा, संयम, तप। और जो इस धर्म को उपलब्ध हो जाते हैं, जो इस धर्म में लीन हो जाते हैं, उन्हें देवता भी नमस्कार करते हैं।" यह दूसरा हिस्सा इस सूत्र का है।
सुनते वक्त आपको ख्याल में भी न आया होगा कि महावीर जब यह कह रहे हैं
कि उसे देवता भी नमस्कार करते हैं, तो कोई बहुत बड़ी क्रांतिकारी बात कह रहे हैं। महावीर के इस वक्तव्य के पहले आदमी देवताओं को नमस्कार करता रहा। इसके पहले कभी किसी देवता ने आदमी को नमस्कार नहीं किया था। यह पहला वक्तव्य है संगृहीत, जिसमें महावीर ने कहा है कि ऐसे मनुष्य को देवता भी नमस्कार करते हैं। सारा वैदिक धर्म देवताओं को नमस्कार करने वाला है। आपके सुनते वक्त रोज यह दोहराया गया है, आपको ख्याल में न आया होगा की इसमें कोई खास बात है, कोई बड़ा क्रांति का सूत्र है। महावीर जिस समाज में पैदा हुए थे, वह सब देवताओं को नमस्कार करने वाला समाज था। उस समाज में महावीर का यह कहना कि ऐसे मनुष्य को देवता भी नमस्कार करते हैं, बड़ा क्रांतिकारी वक्तव्य था। हम भी सोचेंगे कि देवता क्यों नमस्कार करेंगे मनुष्य को! देवता तो मनुष्य से ऊपर हैं।
महावीर नहीं कहते। महावीर कहते हैं--मनुष्य से ऊपर कोई भी नहीं है। इसलिए मनुष्य की डिगनिटी और मनुष्य की गरिमा और गौरव का ऐसा वक्तव्य दूसरा नहीं है। महावीर कहते हैं--मनुष्य से उपर कुछ भी नहीं है, लेकिन साथ ही वे यह भी कहत हैं कि मनुष्य से नीचे जाने वाला भी और कोई नहीं है। मनुष्य इतने नीचे जा सकता है कि पशु उससे ऊपर पड़ जाएं और मनुष्य इतने ऊपर जा सकता है कि देवता उससे नीचे पड़ जाएं। मनुष्य इतना गहरा उतर सकता है पाप में कि कोई पशु न कर सके। सच तो यह है पशु क्या पाप करते हैं! आदमी को देखकर पशु के पाप का कोई अर्थ नहीं रह जाता। तो मनुष्य नर्क तक नीचे उतर सकता है और स्वर्ग तक ऊपर जा सकता है। देवता पीछे पड़ जाएं, वह वहां खड़ा हो सकता है; पशु आगे निकल जाएं, वहां वह उतर सकता है। मनुष्य की यह जो संभावना है, यह संभावना विराट है। इस संभावना में पाप भी आ जाते, पुण्य भी आ जात; नर्क भी आ जाता, स्वर्ग भी आ जाता है।
लेकिन देवताओं के ऊपर क्या स्थिति बनती होगी? तो महावीर ने कहा हैः नरक मनुष्य के दुखों का फल है, स्वर्ग मनुष्य के पुण्यों का फल है। लेकिन नर्क भी चुक जाता है, पाप का फल भी समाप्त हो जाता है; स्वर्ग भी चुक जाता है, पुण्य का फल भी समाप्त हो जाता है। सिर्फ एक जगह कभी समाप्त नहीं होती, जब कोई आदमी पाप और पुण्य दोनों के पार उठ जाता है। पुण्य भी कर्म है, पाप भी कर्म है। पाप से भी बंधन लगता है--महावीर ने कहा है--वह बंधन लोहे की जंजीरों जैसा है। पुण्य से भी बंधन लगता है, वह सोने के आभूषणों जैसा है। लेकिन दोनों में बंधन है। महावीर कहते हैंः वह मनुष्य जो पाप और पुण्य दोनों के पार उठ जाता है, जो कर्म के ही पार उठ जाता है और स्वभाव में ठहर जाता है, वह देवताओं के भी ऊपर उठ जाता है। वह स्वर्ग के भी ऊपर उठ जाता है। तो आपने दो शब्द सुने हैं महावीर तक, और अनेक धर्म दो शब्दों का उपयोग करते हैं--स्वर्ग और नरक। महावीर एक नये शब्द का भी उपयोग करते हैं--मोक्ष। तीन शब्द उपयोग करते हैं महावीर। नरक वे कहते हैं उस चित्त दशा को जहां पाप का फल मिलता; स्वर्ग वे कहते हैं उस चित्त दशा को जहां पुण्य का फल

मिलता; मोक्ष वे कहते हैं उस चेतना की अवस्था को जहां सब कर्म समाप्त हो जाते है और चेतना अपने स्वभाव में लीन हो जाती है। निश्चित ही वैसी चित्त दशा में देवता भी प्रणाम करें मनुष्य को, तो आश्चर्य नहीं। अभी तो पशु भी हंसते हैं।
मैंने एक मजाक सुनी है। मैंने सुना है कि तीसरा महायुद्ध हो गया, सब समाप्त हो गया। कहीं कोई आवाज सुनाई नहीं पड़ती। एक घाटी में एक गुफा से एक बंदर बाहर निकला, उसके पीछे उसकी प्रेयसी बाहर निकली। वह बंदर उदास बैठ गया और उसने अपनी प्रेयसी से कहाः क्या सोचती हो, शैल वी स्टार्ट इट आल ओवर अगेन? क्या हम आदमी को अब फिर पैदा करें, फिर से दुनिया शुरू करें? डार्विन कहता है आदमी बंदरों से आया है। कहीं तीसरा महायुद्ध हो जाए तो बंदरों को चिंता फिर होगी कि क्या करें? लेकिन वह बंदर कहता है, शैल वी स्टार्ट इट आल ओवर अगेन? क्या फिर करने जैसा भी है या अब रहने दें?
सुना है मैंने कि जब डार्विन ने कहा कि आदमी बंदरों से पैदा हुआ, है तो आदमी ही नाराज नहीं हुए, बंदर भी बहुत नाराज हुए। क्योंकि बंदर आदमी को सदा अपने अंश की तरह देखते रहे हैं, जो रास्ते से भटक गया। लेकिन जब डार्विन ने कहा--यह इवोल्यूशन है, विकास है, तो बंदर नाराज हुए। उन्होंने कहाः इसको हम विकास कभी नहीं मानते। यह आदमी हमारा पतन है। लेकिन बंदरों की खबर हम तक नहीं पहुंची। आदमी बहुत नाराज हुए, क्योंकि आदमी मानते थे, हम ईश्वर से पैदा हुए हैं और डार्विन ने कहा बंदर से, तो आदमी को बहुत दुख लगा। उसने कहाः यह कैसें हो सकता है, हम ईश्वर के बेटे! लेकिन बंदर भी बहुत नाराज हुए।
निश्चित ही आदमी को देख कर बंदर भी हंसते होंगे। आदमी जैसा है वैसा तो पशु भी उसको प्रणाम न करेंगे। महावीर तो आदमी की उस स्थिति की बात कर रहे हैं जैसा वह हो सकता है; जो उसकी अंतिम संभावना है, जो उसमें प्रकट हो सकता है। जब उसका बीज पूरा खिल जाए और फूल बन जाए तो निश्चित ही देवता भी उसे नमस्कार करते हैं। इतना ही।
तीन सौ चौदह सूत्र हैं। एक सूत्र तो पूरा हुआ। लेकिन इस सूत्र को मैंने इस भांति बात की है कि अगर एक सूत्र भी आपकी जिंदगी में पूरा हो जाए तो बाकी तीन सौ तेरह की कोई जरुरत नहीं है। सागर की एक बूंद भी हाथ में आ जाए तो सागर का सब राज हाथ में आ जाता है और एक बूंद के रहस्य को भी कोई समझ ले तो पूरे सागर का भी रहस्य समझ में आ जाता है। दूसरी बूंद को तो इसलिए समझना पड़ता है कि एक बूंद से नहीं समझ पड़ा तो फिर दूसरी बूंद को समझना पड़ता है, फिर तीसरी बूंद को समझना पड़ता है। लेकिन एक बूंद भी अगर पूरी समझ में आ जाए तो सागर में जो भी है वह एक बूंद में छिपा है।
इस एक सूत्र में मैंने कोशिश की कि धर्म की पूरी बात आपके ख्याल में आ जाए। ख्याल में शायद आ भी जाए, लेकिन ख्याल कितनी देर टिकता है! धुएं की तरह खो जाता है। ख्याल से काम नहीं चलेगा। जब बात ख्याल में हो, तभी जल्दी करना कि किसी तरह वह कृत्य बन जाए, जीवन बन जाए--जल्दी करना। कहते हैं कि जब लोहा गर्म हो तभी चोट कर देना चाहिए। अगर थोड़ा भी लोहा गर्म हुआ हो, उस पर चोट करना शुरू कर देना चाहिए। समझने से कुछ समझ में न आएगा, इतना ही समझ में आ जाए कि समझने से करने की कोई दिशा खुलती है, तो पर्याप्त है।

अभी रुकेंगे पांच मिनट, आखिरी दिन का कीर्तन करेंगे। फिर हम जाएंगे।

महावीर-वाणी, भाग 1
उन्नीसवां प्रवचन

धर्मः एक मात्र शरण (धम्म सूत्रः 2)

जरामरणवेगेणं, वुज्झमाणाण पाणिणं।
धम्मो दीवो पइट्ठा य, गई सरणमुत्तमं।।

जरा और मरण में बहते हुए जीव के लिए धर्म ही एकमात्र द्वीप, प्रतिष्ठा, गति और उत्तम शरण है।

अरस्तू ने कहा है कि यदि मृत्यु न हो, तो जगत में कोई धर्म भी न हो। ठीक
ही है उसकी बात, क्योंकि अगर मृत्यु न हो, तो जगत में कोई जीवन भी नहीं हो सकता मृत्यु केवल मनुष्य के लिए है।
इसे थोड़ा समझ लें।
पशु भी मरते हैं, पौधे भी मरते हैं, लेकिन मृत्यु मानवीय घटना है। पौधे मरते है, लेकिन उन्हें अपनी मृत्यु का कोई बोध नहीं है। पशु भी मरते हैं, लेकिन अपनी मृत्यु के संबंध में चिंतन करने में असमर्थ हैं।
तो मृत्यु केवल मनुष्य की ही होती है, क्योंकि मनुष्य जानकर मरता है जानते हुए मरता है। मृत्यु निश्चित है, ऐसा बोध मनुष्य को है। चाहे मनुष्य कितना ही भुलाने की कोशिश करे, चाहे कितना ही अपने को छिपाए, पलायन करे, चाहे कितने ही आयोजन करे सुरक्षा के, भुलावे के; लेकिन हृदय की गहराई में मनुष्य जानता है कि मृत्यु से बचने का कोई उपाय नहीं है।
मृत्यु के संबंध में पहली बात तो यह ख्याल में ले लेनी चाहिए कि मनुष्य अकेला प्राणी है जो मरता है। मरते तो पौधे और पशु भी है, लेकिन उनके मरने का भी बोध मनुष्य को होता है, उन्हें नहीं होता। उनके लिए मृत्यु एक अचेतन घटना है। और इसलिए पौधे और पशु धर्म को जन्म देने में असमर्थ हैं। जैसे ही मृत्यु चेतन बनती है, वैसे ही धर्म का जन्म होता है। जैसे ही
यह प्रतीति साफ हो जाती है कि मृत्यु निश्चित है, वैसे ही जीवन का सारा अर्थ बदल जाता है; क्योंकि अगर मृत्यु निश्चित है तो फिर जीवन की जिन क्षुद्रताओं में हम जीते हैं उनका सारा अर्थ खो जाता है।
मृत्यु के संबंध में दूसरी बात ध्यान में ले लेनी जरूरी है कि वह निश्चित है। निश्चित का मतलब यह नहीं कि आपकी तारीख, घड़ी निश्चित है। निश्चित का मतलब यह कि मृत्यु की घटना निश्चित है। होगी ही। लेकिन यह भी अगर बिल्कुल साफ हो जाए कि मृत्यु निश्चित है, होगी ही। तो भी आदमी निश्चिंत हो सकता है। जो भी निश्चित हो जाता है, उसके बाबत हम निश्चिंत हो जाते हैं, चिंता मिट जाती है।
मृत्यु के संबंध में तीसरी बात महत्वपूर्ण है, और वह यह है कि मृत्यु निश्चित है, लेकिन एक अर्थ में अनिश्चित भी है। होगी तो, लेकिन कब होगी, इसका कोई भी पता नहीं। होना निश्चित है, लेकिन कब होगी, इसका कोई भी पता नहीं है। निश्चित है और अनिश्चित भी। होगी भी, लेकिन तय नहीं है, कब होगी। इससे चिंता पैदा होती है। जो बात होनेवाली है, और फिर भी पता न चलता हो, कब होगी; अगले क्षण हो सकती है, और वर्षो भी टल सकती है। विज्ञान की चेष्टा जारी रही तो शायद सदियां भी टल सकती हैं। इससे चिंता पैदा होती है। कीर्कगार्ड ने कहा है, मनुष्य की चिंता तभी पैदा होती है जब एक अर्थ में कोई बात निश्चित भी होती है और दूसरे अर्थ में निश्चित नहीं भी होती है। तब उन दोनों के बीच में मनुष्य चिंता में पड़ जाते हैं।
मृत्यु की चिंता से ही धर्म का जन्म हुआ है। लेकिन मृत्यु की चिंता हमें बहुत सालती नहीं है। हमने उपाय कर रखे हैं--जैसे रेलगाड़ी में दो डिब्बों के बीच में बफर होते हैं, उन बफर की वजह से गाड़ी में कितना ही धक्का लगे, डिब्बे के भीतर लोगों को उतना धक्का नहीं लगता। बफर धक्के को झेल लेता है। कार में स्प्रिंग होते हैं, रास्ते के गड्ढों को स्प्रिंग झेल लेते हैं। अंदर बैठे हुए आदमी को पता नहीं चलता।

आदमी ने अपने मन में भी बफर लगा रखे हैं जिनकी वजह से वह मृत्यु का जो धक्का अनुभव होना चाहिए, उतना अनुभव नहीं हो पाता। मृत्यु और आदमी के बीच में हमने बफर का इंतजाम कर रखा है। वे बफर बड़े अदभुत हैं, उन्हें समझ लें तो फिर मृत्यु में प्रवेश हो सके, और यह सूत्र मृत्यु के संबंध में है। मृत्यु से ही धर्म की शुरुआत होती है, इसलिए यह सूत्र मृत्यु के संबंध में है।
कभी आपने ख्याल न किया हो, जब भी हम कहते हैं, मृत्यु निश्चित है तो हमारे मन में लगता है, प्रत्येक को मरना पड़ेगा। लेकिन उस प्रत्येक में आप सम्मिलित नहीं होते--यह बफर है, जब भी हम कहते हैं, हर एक को मरना होगा, तब भी हम बाहर होते हैं, संख्या के भीतर नहीं होते। हम गिनने वाले होते हैं, मरनेवाले कोई और होते हैं। हम जानने वाले होते हैं, मरने वाले कोई और होते हैं।
जब भी मैं कहता हूं, मृत्यु निश्चित है, तब भी ऐसा नहीं लगता कि मैं मरूंगा। ऐसा लगता है, हर कोई मरेगा एनानीमस, उसका कोई काम नहीं है, हर आदमी को मरना पड़ेगा। लेकिन मैं उसमें सम्मिलित नहीं होता हूं। मैं बाहर खड़ा हूं, मैं मरते हुए लोगों की कतार देखता हूं। लोगों को मरते हुए देखता हूं, जन्मते देखता हूं। मैं गिनती करता रहता हूं, मैं बाहर खड़ा रहता हूं, मैं सम्मिलित नहीं होता। जिस दिन मैं सम्मिलित हो जाता हूं, बफर टूट जाता है। बुद्ध ने मरे हुए आदमी को देखा और बुद्ध ने पूछाः क्या सभी लोग मर जाते हैं? सारथी ने कहाः सभी लोग मर जाते हैं। बुद्ध ने तत्काल पूछाः क्या मैं भी मरूंगा? हम नहीं पूछते।
बुद्ध की जगह हम होते, इतने से हम तृप्त हो जाते कि सब लोग मर जाते हैं। बात खत्म हो गई। लेकिन बुद्ध ने तत्काल पूछाः क्या मैं भी मर जाऊंगा? जब तक आप कहते हैं, सब लोग मर जाते हैं, जब तक आप बफर के साथ जी रहे हैं। जिस दिन आप पूछते हैं, क्या मैं भी मर जाऊंगा? यह सवाल महत्वपूर्ण नहीं है कि सब मरेंगे कि नहीं मरेंगे। सब न भी मरते हों और मैं मरता होऊ, तो भी मृत्यु मेरे लिए उतनी ही महत्वपूर्ण है।
क्या मैं भी मर जाऊंगा? लेकिन यह प्रश्न भी दार्शनिक की तरह भी पूछा
जा सकता है और धार्मिक की तरह भी पूछा जा सकता है। जब हम दार्शनिक की तरह पूछते हैं, तब फिर बफर खड़ा हो जाता है। तब हम मृत्यु के संबंध में सोचने लगते हैं, "मैं"के संबंध में नहीं। जब धार्मिक की तरह पूछते हैं। तो मृत्यु महत्वपूर्ण नहीं रह जाती, मैं महत्वपूर्ण हो जाता हूं।
सारथी ने कहा कि किस मुंह से मैं आपसे कहूं कि आप भी मरेंगे। क्योंकि
यह कहना अशुभ है। लेकिन झूठ भी नहीं बोल सकता हूं, मरना तो पड़ेगा ही, आपको भी। तो बुद्ध ने कहा, रथ वापस लौटा लो, क्योंकि मैं मर ही गया। जो बात होने ही वाली है वह हो ही गई। अगर यह निश्चित ही है तो तीस, चालीस, पचास साल बाद क्या फर्क पड़ता है! बीच के पचास साल, मृत्यु जब निश्चित ही है तो आज हो गई, वापस लौटा लो।
वे जाते थे एक युवक महोत्सव में भाग लेने, यूथ फेस्टिवल में भाग लेने।
रथ बीच से वापस लौटा लिया। उन्होंने कहाः अब मैं बूढ़ा हो ही गया। अब युवक महोत्सव में भाग लेने का कोई अर्थ न रहा। युवक महोत्सव में तो वे ही लोग भाग ले सकते हैं, जिन्हें मृत्यु का कोई पता नहीं है। और फिर मैं मर ही गया। सारथी ने कहाः अभी तो आप जीवित हैं, मृत्यु तो बहुत दूर है। यह बफर है। बुद्ध का बफर टूट गया, सारथी का नहीं टूटा। सारथी कहता है कि मृत्यु तो बहुत दूर है।
हम सभी सोचते हैं मृत्यु होगी लेकिन सदा बहुत दूर, कभी--ध्यान रहे, आदमी के मन की क्षमता है--जैसे हम एक दीये का प्रकाश लेकर चलें, तो दो, तीन, चार कदम तक प्रकाश पड़ता है ऐसे ही मन की क्षमता है। बहुत दूर रख दें किसी चीज को तो फिर मन की पकड़ के बाहर हो जाता है। मृत्यु को हम सदा बहुत दूर रखते हैं। उसे पास नहीं रखते। मन की क्षमता बहुत कम है। इतने दूर की बात व्यर्थ हो जाती है। एक सीमा है हमारे चिंतन की। दूर जिसे रख देते हैं, वह बफर बन जाता है।

हम सब सोचते हैं, मृत्यु तो होगी; लेकिन बूढ़े से बूढ़ा आदमी भी यह नहीं सोचता कि मृत्यु आसन्न है। कोई ऐसा नहीं सोचता कि मृत्यु अभी होगी; सभी सोचते हैं, कभी होगी। जो भी कहता है, कभी होगी, उसने बफर निर्मित कर लिया। वह मरने के क्षण तक भी सोचता रहेगा कभी... कभी, और मृत्यु को दूर हटाता रहेगा। अगर बफर तोड़ना हो तो सोचना होगा, मृत्यु अभी, इसी क्षण हो सकती है। यह बड़े मजे की बात है कि बच्चा पैदा हुआ और इतना बूढ़ा हो जाता है कि उसी वक्त मर सकता है। हर बच्चा पैदा होते ही काफी बूढ़ा हो जाता है कि उसी वक्त चाहे तो मर सकता है। बूढ़े होने के लिए कोई सत्तर-अस्सी साल रुकने की जरूरत नहीं है। जन्मते ही हम मृत्यु के हकदार हो जाते हैं। जन्म के क्षण के साथ ही हम मृत्यु में प्रविष्ट हो जाते हैं।
जन्म के बाद मृत्यु समस्या है और किसी भी क्षण हो सकती है। जो आदमी सोचता है, कभी होगी, वह अधार्मिक बना रहेगा। जो सोचता है, अभी हो सकती है, इसी क्षण हो सकती है, उसके बफर टूट जाएंगे। क्योंकि अगर मृत्यु अभी हो सकती है तो आपकी जिंदगी का पूरा पर्सपेक्टिव, देखने का परिप्रेक्ष्य बदल जाएगा। किसी को गाली देने जा रहे थे, किसी की हत्या करने जा रहे थे, किसी का नुकसान करने जा रहे थे, किसी से झूठ बोलने जा रहे थे, किसी की चोरी कर रहे थे, किसी की बेईमानी कर रहे थे; मृत्यु अभी हो सकती है तो नये ढंग से सोचना पड़ेगा कि झूठ का कितना मूल्य है अब, बेईमानी का कितना मूल्य है अब। अगर मृत्यु अभी हो सकती है, तो जीवन का पूरा का पूरा ढांचा दूसरा हो जाएगा। बफर हमने खड़े किए है। पहला कि मृत्यु सदा दूसरे की होती है, इट इज आलवेज दी अदर हू डाइज। कभी भी आप नहीं मरते, कोई और मरता है। दूसरा, मृत्यु बहुत दूर है, चिंतनीय नहीं है। लोग कहते हैं, अभी तो जवान हो, अभी धर्म के संबंध में चिंतन की क्या जरुरत है? उनका मतलब आप समझते हैं? वे यह कह रहे हैं, अभी जवान हो, अभी मृत्यु के संबंध में चिंतन की क्या जरुरत है?
धर्म और मृत्यु पर्यायवाची हैं। ऐसा कोई व्यक्ति धार्मिक नहीं हो सकता, जो मृत्यु को प्रत्यक्ष अनुभव न कर रहा हो, और ऐसा कोई व्यक्ति, जो मृत्यु को प्रत्यक्ष अनुभव कर रहा हो, धार्मिक होने से नहीं बच सकता।
तो दूर रखते हैं हम मृत्यु को। फिर अगर मृत्यु न दूर रखी जा सके, और कभी-कभी मृत्यु बहुत निकट आ जाती है, जब आपका कोई निकटजन मरता है तो मृत्यु बहुत निकट आ जाती है। करीब-करीब आपको मार ही डालती है। कुछ न कुछ तो आपके भीतर भी मर जाता है। क्योंकि हमारा जीवन बड़ा सामूहिक है। मैं जिसे प्रेम करता हूं, उसकी मृत्यु में मैं थोड़ा तो मरूंगा ही। क्योंकि उसके प्रेम ने जितना मुझे जीवन दिया था, वह तो टूट ही जाएगा, उतना हिस्सा तो मेरे भीतर खण्डित हो ही जाएगा, उतना तो भवन गिर ही जाएगा।
आपको ख्याल में नहीं है। अगर सारी दुनिया मर जाए और आप अकेले रह जाएं
तो आप जिंदा नहीं होंगे; क्योंकि सारी दुनिया ने आपके जीवन को जो दान दिया था वह तिरोहित हो जाएगा। आप प्रेत हो जाएंगे जीते-जीते, भूत-प्रेत की स्थिति हो जाएगी।
तो जब मृत्यु बहुत निकट आ जाती है तो ये बफर काम नहीं करते और धक्का भीतर तक पहुंचता है। तब हमने सिद्धांतों के बफर तय किए हैं। तब हम कहते हैं, आत्मा अमर है। ऐसा हमें पता नहीं है। पता हो, तो मृत्यु तिरोहित हो जाती है; लेकिन पता उसी को होता है, जो इस तरह के सिद्धांत बनाकर बफर निर्मित नहीं करता। यह जटिलता है। वही जान पाता है कि आत्मा अमर है, जो मृत्यु का साक्षात्कार करता है। और हम बड़े कुशल हैं, हम मृत्यु का साक्षात्कार न हो, इसलिए आत्मा अमर हैं; ऐसे सिद्धांत को बीच में खड़ा कर लेते हैं।
यह हमारे मन की समझावन है। यह हम अपने मन को कह रहे हैं कि घबराओ मत, शरीर ही मरता है, आत्मा नहीं मरती; तुम तो रहोगे ही, तुम्हारे मरने का कोई कारण नहीं है। महावीर ने कहा है, बुद्ध ने कहा है, कृष्ण ने कहा है--सबने कहा है कि आत्मा अमर है। बुद्ध कहें, महावीर कहें, कृष्ण कहें, सारी दुनिया कहे, जब तक आप मृत्यु का साक्षात्कार नहीं करते हैं, आत्मा अमर नहीं है। तब तक आपको भली-भांति पता है कि आप मरेंगे, लेकिन धक्के को रोकने के लिए बफर खड़ा कर रहे हैं।

शास्त्र, सिद्धांत, सब बफर बन जाते हैं। ये बफर न टूटें तो मौत का साक्षात्कार नहीं होता। और जिसने मृत्यु का साक्षात्कार नहीं किया, वह अभी ठीक अर्थों में मनुष्य नहीं है, वह अभी पशु के तल पर जी रहा है। महावीर का यह सूत्र कहता हैः "जरा और मरण के तेज प्रवाह में बहते हुए जीव के लिए धर्म ही एकमात्र द्वीप, प्रतिष्ठा, गति और उत्तम शरण है।"
इसके एक-एक शब्द को हम समझें।
"जरा और मरण के तेज प्रवाह में।" इस जगत में कोई भी चीज ठहरी हुई नहीं है, परिवर्तित हो रही है--प्रतिपल। और इस प्रतिपल परिवर्तन में क्षीण हो रही है, जरा-जीर्ण हो रही है। आप जो महल बनाए हैं, वह कोई हजार साल बाद खण्डहर होगा, ऐसा नहीं, वह अभी खंडहर होना शुरू हो गया है। नहीं तो हजार साल बाद भी खण्डहर हो नहीं पाएगा। वह अभी जीर्ण हो रहा है, अभी जरा को उपलब्ध हो रहा है।
इसे हम ठीक से समझ लें, क्योंकि यह भी हमारी मानसिक तरकीबों का एक हिस्सा है कि हम प्रक्रियाओं को नहीं देखते, केवल छोरों को देखते हैं।
एक बच्चा पैदा हुआ, तो हम एक छोर देखते हैं कि बच्चा पैदा हुआ। एक बूढ़ा मरा तो हम एक छोर देखते हैं कि एक बूढ़ा मरा, लेकिन मरना और जन्मना, एक ही प्रक्रिया के हिस्से हैं; यह हम कभी नहीं देखते। हम छोर देखते हैं, प्रोसेस नहीं, प्रक्रिया नहीं। जब कि वास्तविक चीज प्रक्रिया है। छोर तो प्रक्रिया के अंग मात्र हैं। हमारी आंख केवल छोर को देखती है--शुरू देखती है, अंत देखती है, मध्य नहीं देखती। और मध्य ही महत्वपूर्ण है। मध्य से ही दोनों जुड़े हैं। बच्चा पैदा हुआ, यह एक प्रक्रिया है--पैदा होना। मरना एक प्रक्रिया है, जीना एक प्रक्रिया है। ये तीनों प्रक्रियाएं एक ही धारा के हिस्से हैं।
इसे हम ऐसा समझें कि बच्चा जिस दिन पैदा हुआ, उसी दिन मरना भी शुरू हो गया। उसी दिन जरा ने उसको पकड़ लिया, उसी दिन जीर्ण होना शुरू हो गया, उसी दिन बूढ़ा होना शुरू हो गया। फूल खिला और कुम्हलाना शुरू हो गया। खिलना और कुम्हलाना हमारे लिए दो चीजें हैं, फूल के लिए एक ही प्रक्रिया है।
अगर हम जीवन को देखें, तो वहां चीजें टूटी हुई नहीं है, सब जुड़ा हुआ है,
सब संयुक्त है। जब आप सुखी हुए, तभी दुख आना शुरू हो गया। जब आप दुखी हुए, तभी सुख आना शुरू हो गया। जब आप बीमार हुए, तभी स्वास्थ्य की शुरुआत; जब आप स्वस्थ हुए, तभी बीमारी की शुरुआत। लेकिन हम तोड़कर देखते हैं। तोड़कर देखने में आसानी होती है। क्यों आसानी होती है? क्योंकि तोड़ कर देखने में बड़ी जो आसानी होती है वह यह कि अगर हम स्वास्थ्य और बीमारी को एक ही प्रक्रिया समझें, तो वासना के लिए बड़ी कठिनाई हो जाएगी। अगर हम जन्म और मृत्यु को एक ही बात समझें, तो कामना किसकी करेंगे, चाहेंगे किसे? हम तोड़ लेते हैं दो में। जो सुखद है, उसे अलग कर लेते हैं; जो दुखद है, उसे अलग कर लेते हैं मन में। जगत में तो अलग नहीं हो सकता। अस्तित्व तो एक है। विचार में अलग कर लेते हैं। फिर हमें आसानी हो जाती है।
जीवन को हम चाहते हैं, मृत्यु को हम नहीं चाहते। सुख को हम चाहते हैं, दुख को हम नहीं चाहते। और यही मनुष्य की बड़ी से बड़ी भूल है। क्योंकि जिसे हम चाहते हैं और जिसे हम नहीं चाहते, वे एक ही चीज के दो हिस्से हैं। इसलिए हम जिसे चाहते हैं उसके कारण ही हम उसको निमंत्रण देते हैं। और जिसे हम नहीं चाहते हैं, उसे हटाते हैं मकान के बाहर। और हम उसके साथ उसे भी विदा कर देते हैं, जिसे हम चाहते हैं।
आदमी की वासना टिक पाती है चीजों को खंड-खंड बांट लेने से।
अगर हम जगत की समग्र प्रक्रिया को देखें, तो वासना को खड़े होने का कोई उपाय नहीं है। तब अंधेरा और प्रकाश, दुख और सुख, शांति और अशांति, जीवन और मृत्यु एक ही चीज के हिस्से हो जाते हैं।
महावीर कहते हैं--"जरा और मरण के तेज प्रवाह में।"
जरा का अर्थ है--प्रत्येक चीज जीर्ण हो रही है। एक क्षण भी कोई चीज बिना जीर्ण हुए नहीं रह सकती। होने का अर्थ ही जीर्ण होना है। अस्तित्व का अर्थ ही परिवर्तन है। तो बच्चा भी क्षीण हो रहा है, जीर्ण हो रहा है। महल भी जीर्ण हो रहा है। यह पृथ्वी भी जीर्ण हो रही है। यह सौर परिवार भी जीर्ण

हो रहा है। यह हमारा जगत भी जीर्ण हो रहा है। और एक दिन प्रलय मे लीन हो जाएगा, जो भी हो रहा है।
महावीर ने बड़ी अदभुत बात कही है--महावीर कहत हैं--जो भी है उसे हम अधूरा
देखते हैं। इसलिए कहते हैं--"है"। अगर हम ठीक से देखें तो हम कहेंगे,
जो भी है, वह साथ में हो रहा है, साथ में नहीं भी हो रहा है। दोनो चीजें एक साथ चल रही हैं। जैसे जन्म और मौत दे पैर हों और जीवन दोनों पैरों पर चल रहा हो। जो भी है वह हो भी रहा है और साथ ही नहीं भी हो रहा है। जिर्ण भी हो रहा है।
इसलिए महावीर की बात थोड़ी जटिल मालूम पड़ेगी, क्योंकि हमे फिर भाषा में हमें आसानी पड़ती है। यह कहना आसान होता है कि फलां आदमी बच्चा है, फलां आदमी जवान है, फलां आदमी बूढ़ा है। लेकिन यह हमारा विभाजन ऐसे ही है जैसे हम कहें, यह गंगा हिमालय की, यह गंगा मैदानों की, यह गंगा सागर की; लेकिन गंगा एक है। वह जो पहाड़ पर बहती है, वही मैदान में बहती है। वह जो मैदान में बहती है, वही सागर में गिरती है।
बच्चा, जवान, बूढ़ा, एक धारा है; एक गंगा है। बांट के हमें आसानी होती है। हमारी आसानी के कारण हम असत्य को पकड़ लेते हैं। ध्यान रखें हमारे अधिक असत्य आसानियों के कारण, कन्वीनिएंस के कारण पैदा होते हैं। सुविधापूर्ण हैं, इसलिए असत्य को पकड़ लेते हैं। सत्य असुविधापूर्ण मालूम होता है। सत्य कई बार तो इतना इनकन्वीनिएंस, इतना असुविधापूर्ण मालूम होता है कि उसके साथ जीना मुश्किल हो जाए, हमें अपने को बदलना ही पड़े।
अगर आप बच्चे में बूढ़े को देख सकें और जन्म में मृत्यु को देख सकें तो बड़ा असुविधापूर्ण होगा। कब मनाएंगे खुशी और कब मनाएंगे दुख? कब बजाएंगे बैंड बाजे, और कब करेंगे मातम? बहुत मुश्किल हो जाएगा। बहुत कठिन हो जाएगा। सभी चीजें अगर संयुक्त दिखाई पड़ें तो हमारे जीने की पूरी व्यवस्था हमें बदलनी पड़ेगी। जीने की जैसी हमारी व्यवस्था है, वह बटी हुई कैटेगरीज में, कोटियों में है।
तो हम जरा को नहीं देखते जन्म में। न देखने का एक कारण यह भी है कि यह तेज है प्रवाह। यह जो प्रक्रिया है, बहुत तेज है। इसको देखने की बड़ी सूक्ष्म आंख चाहिए उसको महावीर तत्व-दृष्टि कहते हैं। अगर गति बहुत तेज हो तो हमें दिखाई नहीं पड़ती। अगर पंखा बहुत तेज चले तो फिर उसकी पंखुड़ियां दिखाई नहीं पड़तीं। इतना तेज भी चल सकता है पंखा कि हमें यह दिखाई ही न पड़े कि वह चल रहा है। बहुत तेज चले तो हमें मालूम पड़े कि ठहरा हुआ है। जितनी चीजें हमें ठहरी हुई मालूम पड़ती हैं, वैज्ञानिक कहते हैं, उनकी तेज गति के कारण--गति इतनी तेज है कि हम उसे अनुभव नहीं कर पाते। जिस कुर्सी पर आप बैठे हैं, उसका एक-एक अणु बड़ी तेज गति से घूम रहा है; लेकिन वह हमें पता नहीं चलता, क्योंकि गति इतनी तेज है कि हम उसे पकड़ नहीं पाते। हमारी गति को समझने की सीमा है। अणु की गति हम नहीं पकड़ पाते, वह बहुत सूक्ष्म है। जरा की गति और भी सूक्ष्म और तीव्र है।
जरा का अर्थ है--हमारे भीतर वह जो जीवन धारा है, वह प्रतिपल क्षीण हो रही है। हम जिसे जीवन कहते हैं, वह प्रतिपल बुझ रहा है। हम जिसे जीवन का दीया कहते हैं, उसका तेल प्रतिपल चुक रहा है।
ध्यान की सारी प्रक्रियाएं इस चुकते हुए तेल को देखने की प्रक्रियाएं हैं। यह जरा में प्रवेश है।
अभी जो आदमी मुस्कुरा रहा है, उसे पता भी नहीं कि उसकी मुस्कुराहट जो उसके होठों तक आई है--हृदय से होंठ तक उसने यात्रा की है--जब ओंठ पर मुस्कुराहट आ गई है, उसे पता भी नहीं कि हृदय में शायद दुख और आंसू घने हो गए हों। इतनी तीव्र है गति। जब आप मुस्कुराते हैं, तब तक शायद मुस्कुराहट का कारण भी जा चुका होता है। इतनी तीव्र है गति कि जब आपको अनुभव होता है कि आप सुख में हैं, तब तक सुख तिरोहित हो चुका होता है। वक्त लगता है आपको अनुभव करने में। और जीवन की जो धारा है--जिसको महावीर कहते हैं--सब चीज जरा को उपलब्ध हो रही है, वह इतनी त्वरित है कि उसके बीच के हमें गैप, अंतराल दिखाई नहीं पड़ते।

एक दीया जल रहा है। कभी आपने ख्याल किया कि आपको दीये की लौ में कभी अंतराल दिखाई पड़ते हैं? लेकिन वैज्ञानिक कहते हैं कि दीये की लौ प्रतिपल धुआं बन रही है। नवा तेल नई लौ पैदा कर रहा है। पुरानी लौ मिट रही है, नई लौ पैदा हो रही है। पुरानी लौ विलीन हो रही है, नई लौ जन्म रही है। दोनों के बीच में अंतराल है। खाली जगह है। जरूरी है, नहीं तो पुरानी मिट न सकेगी; नई पैदा न हो सकेगी। जब पुरानी मिटती है और नई पैदा होती है, तो उन दोनों के बीच जो खाली जगह है, वह हमें दिखाई नहीं पड़ती। वह इतनी तेजी से चलता है कि हमें लगता है कि लौ--वही लौ जल रही है।
बुद्ध ने कहा है कि सांझ हम दीया जलाते हैं तो सुबह हम कहते हैं, उसी दीये को हम बुझा रहे हैं, जिसे सांझ जलाया था। उस दीये को हम कभी नहीं बुझा सकते सुबह, जिसे हमनें सांझ जलाया था। वह लौ तो लाख दफा बुझ चुकी जिसको हमने सांझ जलाया था। करोड़ दफा बुझ चुकी। जिस लौ को हम सुबह बुझाते हैं, उससे तो हमारी कोई पहचान ही न थी; सांझ तो वह थी ही नहीं।
तो बुद्ध ने कहा है, हम उसी लौ को नहीं बुझाते। उसी लौ की धारा में आई हुई लौ को बुझाते हैं। संतति को बुझाते हैं। वह लौ अगर पिता थी, तो हजार, करोड़ पीढ़ियां बीत गईं रात भर में। उसकी अब जो संतति है, सुबह इन बारह घंटे के बाद, उसको हम बुझाते हैं।
लेकिन इसे अगर हम फैला कर देखें तो बड़ी हैरानी होगी।
मैंने आपको गाली दी। जब तक आप मुझे गाली लौटाते हैं, यह गाली उसी आदमी
को नहीं लौटती, जिसने आपको गाली दी थी। लौ को तो समझना आसान है कि सांझ जलाई थी और सुबह... लेकिन यह जो जरा की धारा है, इसको समझना मुश्किल है। आप उसी को गाली वापस नहीं लौटा सकते, जिसने आपको गाली दी थी। वहां भी जीवन क्षीण हो रहा है, वहां भी लौ बदलती जा रही है। जिसने आपको गाली दी थी, व आदमी अब नहीं है, उसकी संतति है। उसी धारा में एक नई लौ है। हम कुछ भी लौटा नहीं सकते। लौटाने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि जिसको लौटाना है, वह वही नहीं है, बदल गया।
हैराक्लाइटस ने कहा हैः एक ही नदी में दुबारा उतरना असंभव है। निश्चित ही असंभव है। क्योंकि दुबारा जब आप उतरते हैं, वह पानी बह गया जिसमें आप पहली बार उतरे थे। हो सकता है, अब सागर में हो वह पानी। हो सकता है, अब बादलों में पहुंच गया हो। हो सकता है, फिर गंगोत्री पर गिर रहा हो। लेकिन अब उस पानी से मुलाकात आसान नहीं है दुबारा। और अगर हो भी जाए तो आपके भीतर की भी जीवनधारा बदल रही है। अगर वह पानी दुबारा भी मिल जाए, तो जो उतरा था नदी में, वह आदमी दुबारा नहीं मिलेगा।
दोनों नदी हैं। नदी भी एक नदी है। आप भी एक नदी हैं, आप भी एक प्रवाह हैं--सारा जीवन एक प्रवाह है। इसको महावीर कहते हैं--".जरा।" इसका एक छोर जन्म है, और दूसरा छोर मृत्यु है। जन्म में ज्योति पैदा होती है, मृत्यु में उसकी संतति समाप्त होती है। इस बीच के हिस्से को हम जीवन कहते हैं, जो कि क्षण-क्षण बदल रहा है। यह प्रवाह तेज है। यह प्रवाह इतना तेज है कि इसमें पैर रोक कर खड़ा होना भी मुश्किल है। हालांकि हम सब खड़े होने की कोशिश करते हैं। जब हम एक बड़ा मकान बनाते हैं, तो हम इस ख्याल से नहीं बनाते कि कोई और इसमें रहेगा। या कभी कोई ऐसा आदमी है, जो मकान बनाता है, कोई और इसमें रहेगा? नहीं, आप अपने लिए मकान बनाते हैं। लेकिन सदा आपके बनाए मकानों में कोई और रहता है। आप अपने लिए धन इकट्ठा करते हैं, लेकिन सदा आपका धन किन्हीं और हाथों में पड़ता है। जीवन भर जो आप चेष्टा करते हैं, उस चेष्टा में कहीं भी पैर थमाने को कोई उपाय नहीं है। कोई और, कोई और जहां हम खड़ा होने की चेष्टा कर रहे थे, खड़ा होता है! वह भी खड़ा नहीं रह पाता!
यह बड़े मजे की बात है कि हम सब दुसरां के लिए जीते हैं।
एक मित्र को मैं जानता हूं। बूढ़े आदमी हैं अब तो। पंद्रह वर्ष पहले जब मुझे मिले थे, तो उनका लड़का एम ए करके युनिवर्सिटी के बाहर आया था। तो उन्होंने मुझे कहा कि अब मेरी और तो कोई महत्त्वाकांक्षा नहीं है; मेरे लड़के को ठीक से नौकरी मिल जाए, इसकी शादी हो जाए, यह व्यवस्थित हो जाए। उनका लड़का व्यवस्थित हो गया, नौकरी मिल गई। उनके लड़के को अब तीन बच्चे हैं।

अभी कुछ दिन पहले उनका लड़का मेरे पास आया। उसने कहाः मेरी तो कोई ऐसी बड़ी आकांक्षा नहीं है; बस ये मेरे बच्चे ठीक से पढ़-लिख जाएं, इनकी ठीक से नौकरी लग जाए, ये व्यवस्थित हो जाएं।
इसको मैं कहता हूं--उधार जीना। बाप इनके लिए जीए, ये अपने बेटों के लिए
जी रहे हैं, इनके बेटे भी अपने बेटों के लिए जीएंगे।
जीना कभी हो ही नहीं पाता। जीना कभी हो ही नहीं पाता, लेकिन तब सारी स्थिति बड़ी असंगत, बेतुकी मालूम पड़ती है। अगर मैं इन सज्जन से कहूं तो उनको दूख लगेगा। मैंने सुन लिया और उनसे कुछ कहा नहीं। अगर मैं इनसे कहूं कि बड़ी अजीब बात है, तुम्हारे बेटे भी यही करेंगे कि अपने बेटों के जीने के लिए।
मगर इस सारे उपद्रव का अर्थ क्या है? कोई आदमी जी नहीं पाता, और सब आदमी उनके लिए चेष्टा करते हैं जो जीएंगे, और वे भी किन्हीं और के जीने के लिए चेष्टा करेंगे। इस सारे... इस सारी कथा का अर्थ क्या है?
कोई अर्थ नहीं मालूम पड़ता। अर्थ मालूम पड़ेगा भी नहीं, क्योंकि जिस प्रवाह में हम खड़े होने की कोशिश कर रहे हैं, न हम खड़े हो सकते हैं, न हमारे बेटे खड़े हो सकते हैं, न उनके बेटे खड़े हो सकते हैं; न हमारे बाप खड़े हुए, न उनके बाप कभी खड़े हुए। जिस प्रवाह में हम खड़े होने की कोशिश कर रहे हैं, उसमें कोई खड़ा हो ही नहीं सकता। इसलिए एक ही उपाय है कि हम सिर्फ आशा कर सकते हैं कि हमारे बेटे खड़े हो जाएंगे, जहां हम खड़े नहीं हुए। इतना तो साफ हो जाता है कि हम खड़े नहीं हो पा रहे, फिर भी आशा नहीं छूटती। चलो, हमारे खून का हिस्सा, हमारे शरीर का टुकड़ा कोई खड़ा हो जाएगा। लेकिन जब आप खड़े नहीं हो पाए, तो ध्यान रखें, कोई भी खड़ा नहीं हो पाएगा। असल में जहां खड़े होने की कोशिश कर रहे हैं, वह जगह खड़े होने की है ही नहीं।
महावीर कहते हैंः "जरा और मरण के तेज प्रवाह में बहते हुए जीव के लिए धर्म ही एकमात्र शरण है।"
इस प्रवाह में जो शरण खोजेगा, उसे शरण कभी भी नहीं मिलेगी। इस प्रवाह में कोई शरण है ही नहीं। यह सिर्फ प्रवाह है।
तो महावीर के दो हिस्से ठीक से समझ लें।
एक--जिसे हम जीवन कहते हैं, उसे महावीर जरा और मरण का प्रवाह कहते हैं। उसमें अगर खड़े होने की कोशिश की तो आप खड़े होने की कोशिश में ही मिट जाएंगे। खड़े नहीं हो पाएंगे। उसमें खड़े होने का उपाय ही नहीं है। और ऐसा मत सोचना, जैसा कि कुछ नासमझ सोचते चले जाते हैं--जैसा कि नेपोलियन कहता है कि मेरे शब्दकोश में असंभव जैसा कोई शब्द नहीं है। यह बचकानी बात है। यह बहुत बुद्धिमान आदमी नहीं कह सकता। और नेपोलियन बहुत बुद्धिमान हो भी नहीं सकता। क्योंकि वह कहता है कि मेरे शब्दकोश में असंभव जैसी कोई बात नहीं है। लेकिन इस कहने के दो साल बाद ही वह जेलखाने में पड़ा हुआ है--हेलना के।
सोचता था सारे जगत को हिला दूं। सोचता था, पहाड़ों को कह दूं हट जाओ, तो उन्हें हटना पड़े। लेकिन हेलना के द्विप में एक दिन सुबह घूमने निकला है और एक घासवाली औरत पगडंडी से चली आ रही है। नेपोलियन के सहयोगी ने चिल्ला कर कहा कि ओ घसियारिन, रास्ता छोड़ दे। लेकिन घसियारिन ने रास्ता नहीं छोड़ा। क्योंकि हारे हुए नेपोलियन के लिए कौन घसियारिन रास्ता छोड़ने को तैयार हो सकती है? और मजा यह है कि अंत में नेपोलियन को ही रास्ता छोड़ कर नीचे उतर जाना पड़ा और घसियारिन रास्ते से गुजर गई।
यह वही नेपोलियन है जिसने कुछ ही दिन पहले कहा था कि मेरे शब्दकोश में असंभव जैसा कोई शब्द नहीं है। अगर मैं आल्प्स पर्वत से कहूं कि हट, तो उसे हटना पड़े। वह एक घसियारिन को भी नहीं कह सकता कि हट।
महावीर कहते हैं कि कछ असंभव है। बुद्धिमान आदमी वह नहीं है, जो कहता
है कि कुछ भी असंभव नहीं है। न ही वह आदमी बुद्धिमान है जो कहता है, सभी कुछ असंभव है। बुद्धिमान आदमी वह है, जो ठीक से परख कर लेता है कि क्या असंभव है और क्या संभव है। बुद्धिमान आदमी वह है, जो जानता है क्या असंभव है और क्या संभव है।

एक बात निश्चित रूप से असंभव है कि जरा-मरण के तेज प्रवाह में कोई शरण नहीं है। यह असंभव है। इसमें पैर जमा कर खड़े हो जाने का कोई भी उपाय नहीं है। इस असंभव के लिए जो चेष्टा करते हैं, वे मूढ़ हैं।
असंभव का मतलब यह नहीं होता है कि थोड़ी कोशिश करेंगे तो हो जाएगा।
असंभव का मतलब यह नहीं होता कि संकल्प की कमी है, इसलिए नहीं हो रहा है। असंभव का मतलब यह नहीं होता है कि ताकत कम है, इसलिए नहीं हो रहा है। असंभव का मतलब होता है--स्वभावतः जो हो नहीं सकता, प्रकृति के नियम में जो नहीं हो सकता।
महावीर यह नहीं कहते कि आकाश में उड़ना असंभव है। जो कहते हैं, वे गलत साबित हो गए। और महावीर जैसे आदमी कभी नहीं कहेंगे कि आकाश में उड़ना असंभव है। जब पशु-पक्षी उड़ लेते हैं, तो आदमी उड़ ले; इसमें कोई बहुत असंभावना नहीं है। जब पशु-पक्षी उड़ लेते हैं, तो आदमी भी कोई इंतजाम कर लेगा और उड़ लेगा। चांद पर पहुंच जाना, महावीर नहीं कहेंगे असंभव है। क्योंकि चांद और जमीन के बीच फासला कितना ही हो, आखिर फासला ही है। फासले पूरे किए जा सकते हैं।
इस संबंध में ईसाइयत कमजोर है; ईसाइयत ने ऐसी बातें असंभव कहीं, जिनको विज्ञान ने संभव करके बता दिया और उसके कारण पश्चिम में धर्म की प्रतिष्ठा गिर गई। धर्म की प्रतिष्ठा गिरने का कारण यह बना कि ईसाइयत ने ऐसे दावे किए थे कि यह हो ही नहीं सकता, वह हो गया। जब हो गया तो फिर ईसाइयत मुश्किल में पड़ गई। लेकिन इस मामले में भारतीय धर्म अति वैज्ञानिक हैं। महावीर ने ऐसा कोई दावा नहीं किया है, जो विज्ञान किसी दिन गलत कर सके। जैसे यह दावा, महावीर कहते हैंः "जरा मरण के तीव्र प्रवाह में कोई शरण नहीं है।" इसे कभी भी, कोई भी स्थिति में गलत नहीं किया जा सकता। क्योंकि वह गहरे से गहरा जीवन के नियम का हिस्सा है।
शरण मिल सकती है उसमें, जो स्वयं परिवत्रित न होता हो, जो स्वयं ही परिवर्तित हो रहा है, उसमें शरण कैसी!
शरण का मतलब होता हैः आप मेरे पास आए, और आपने कहा कि मुझे शरण दें, दुश्मन मेरे पीछे लगे हैं, मुझे बचाएं। मैं आपको कहता हूं कि ठीक है, मैं आपको आश्वासन देता हूं कि मैं आपको बचाऊंगा। लेकिन मेरे आश्वासन का मतलब तभी हो सकता है, जब मैं कल भी मैं ही रहूं। कल जब मैं ही नहीं रहूंगा, तो दिए गए आश्वासन का कितना मूल्य है? मैं खुद ही बदल रहा हूं, तो मेरे आश्वासन का क्या अर्थ है?
कीर्कगार्ड ने कहा है कि मैं कोई आश्वासन नहीं दे सकता--आई कैन नाट प्रामिस ऐनीथिंग। इसलिए नहीं दे सकता, कि मैं किस भरोसे आश्वासन दूं, कल सुबह मैं ही मैं रह जाऊंगा, इसका कोई पक्का नहीं। तो जिसने आश्वासन दिया था, वही जब नहीं रहेगा, तो आश्वासन का क्या अर्थ है? जो खुद बदल रहा है, वह क्या आश्वासन दे सकता है? जहां परिवर्तन ही परिवर्तन है, वहां शरण कैसी? करीब-करीब ऐसा है कि दोपहर है और घनी धूप है, और आप एक वृक्ष की छाया में बैठ गए हैं। लेकिन आपको पता है कि वृक्ष की छाया बदल रही है। थोड़ी देर में यह हट जाएगी। यह वृक्ष की छाया शरण नहीं बन सकती, क्योंकि यह छाया है और बदल रही है, यह परिवर्तित हो रही है।
इस जगत में जहां-जहां हम शरण खोजते हैं, वे सभी कुछ परिवर्तित हो रहे हैं। जिसे हम पकड़ते हैं, वह खुद ही बहा जा रहा है। बहाव को हम पकड़ने की कोशिश करते हैं और उस आश्वासन में जीते हैं, जो खुद बदल रहा है। उसके साथ कैसी शरण संभव हो सकती है?
इसलिए महावीर कहते हैं--"जरा-मरण के तीव्र प्रवाह में कोई भी शरण नहीं है"।
चाहे धन, चाहे यश, चाहे पद, चाहे प्रतिष्ठा, चाहे मित्र, पति-पत्नी, संबंध, पुत्र--सब बहे जा रहे हैं। इस बहाव में, जहां हजार-हजार बहाव हो रहे हैं, जो आदमी सोचता है कि पकड़ कर रुक जाऊं, ठहर जाऊं, पैर जमा लूं, वह आदमी दुख में पड़ेगा। यही दुख हमारे जीवन का नरक है।
किसी के प्रेम को हम सोचते हैं--शरण। सोचते है, मिल गई छाया। और किसी
का प्रेम हमें बरगद की छाया की तरह घेरे रहेगा। लेकिन सब चीजें बदल रही

हैं। कल छाया बदल जाएगी, सुबह छाया कहीं होगी, दोपहर कहीं होगी, सांझ कहीं होगी। फिर छाया ही नहीं बदल जाएगी, आज घना था वृक्ष, कल पतझड़ आएगा, पत्ते ही गिर जाएंगे। कोई छाया न बनेगी। आज वृक्ष जवान था, कल बूढ़ा हो जाएगा। आज वृक्ष फैला था, छाते की तरह आकाश में, कल सूखेगा। और यह सूखना, सिकुड़ना, यह प्रतिपल चल रहा है। तो जो वृक्ष के नीचे बैठा है यह आशा बांध कर कि "मुझे छाया मिल गई, अब मैं एक जगह रह जाऊं।" उसे आंख नहीं खोलनी चाहिए--पहली शर्त। अगर वह आंख खोलेगा तो कठिनाई में पड़ेगा। उसे अंधा होना चाहिए। और फिर चाहे कितनी ही धूप पड़े, उसे सदा यही व्याख्या करनी चाहिए कि यह छाया है। फिर चाहे कितना ही उलटा हो जाए, वृक्ष में पतझड़ आ जाए, उसे माने ही चलना चाहिए कि फूल खिले हैं, और बसंत की बहार है।
हम सब यही कर रहे हैं। आज जो प्रेम है, कल नहीं होगा। तब हम आंख बंद करके माने चले जाएंगे कि यह प्रेम है। आज जो मित्रता है, कल नहीं होगी, तब भी हम माने चले जाएंगे कि यह मित्रता है। आज जो सुगंध थी, कल दुर्गंध हो जाएगी, तब भी हम माने चले जाएंगे।
आंख बंद करके हमें जीना पड़ता है; क्योंकि जहां हम शरण ले रहे हैं, वहां शरण लेने योग्य कुछ भी नहीं है। और तब आंखें खोलने में डर लगने लगता है। तब हम अपने से ही भयभीत हो जाते हैं। हम किसी चीज को फिर बहुत साफ नहीं देख पाते। क्योंकि डर हैं कि जो हम मान रहे हैं कहीं ऐसा न हो कि वहां हो ही नहीं। तो फिर हम आंख बंद करके जीने लगते हैं।
हम सब अंधों की तरह जीते हैं, बहरों की तरह जीते हैं। फिर जो है, उसको
हम नहीं देखते। जो था, हम माने चले जाते हैं कि वही है और हम उसको मान कर ही व्यवहार किए चले जाते हैं।
यह जो हमारी चित्त दशा है, विक्षिप्त है। लेकिन कारण क्या है? कारण यह नहीं है कि मैंने जिसे प्रेम किया वह आदमी ईमानदार न था, नहीं, यह कारण नहीं हैं। मैंने जिसे प्रेम किया, वह एक प्रवाह था। ईमानदार और बेईमान का कोई सवाल नहीं है। इसका यह मतलब नहीं कि मैंने जिस पर मैत्री का भरोसा किया, वह भरोसे योग्य न था, नहीं वह एक प्रवाह था। मैंने प्रवाह का भरोसा किया।
चलती हुई, बहती हुई हवाओं पर जो भरोसा करता है, वह कठिनाई में पड़ेगा ही। यह कठिनाई किसी की बेईमानी से पैदा नहीं होती, न किसी के धोखे से पैदा होती है। मेरा तो अनुभव ऐसा है कि इस सारे जगत में निन्यानवे प्रतिशत कठिनाइयां कोई जानकर पैदा नहीं करता प्रवाह से पैदा होती हैं। आदमी बदल जाते हैं और रोक नहीं सकते अपने को बदलने से।
कोई बच्चा कब तक बच्चा रहेगा, जवान होगा ही। निश्चित ही बचपन में उस बच्चे ने मां को जो आश्वासन दिए, वे जवान होकर नहीं दे सकता। बच्चे के जवान होने में ही यह बात छिपी है कि मां की तरह पीठ हो जाएगी, जिसकी तरफ मुंह था। यह हो ही जाएगा। यह बच्चा मां की तरफ ऐसे देखता था जैसे उससे सुंदर इस जगत में कोई भी नहीं, लेकिन एक दिन मां की तरफ पीठ हो जाएगी। कोई और सौंदर्य दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा, और तब मां को लगेगा कि धोखा हो गया। सभी मांओं को लगता है कि धोखा हो गया। अपना ही लड़का--लेकिन उनको पता नहीं कि उनको जिस पति ने प्रेम किया था, वह भी किसी का लड़का था। वहां भी धोखा हो गया था। अगर वह भी अपनी मां को ही प्रेम करता चला जाता तो उसका पति होने वाला नहीं था। लड़का जवान होगा, तो मां से जो प्रेम था, वह बदलेगा। छाया हट जाएगी, किसी और पर पड़ेगी, किसी और को घेर लेगी। तब धोखा नहीं हो रहा, सिर्फ हम प्रवाह को प्रेम कर रहे थे, यह जाने बिना कि वह प्रवाह है। हम मानते थे कि कोई थिर चीज है, इसलिए अड़चन हो रही है, इसलिए कठिनाई हो रही है।
आज दस लोग आपको आदर देते हैं आप बड़े आश्वस्त हैं। कल ये दस लोग आपको आदर नहीं देंगे, आप बड़े निराश और दुखी हो जाएंगे। ऐसा नहीं कि ये दस लोग बुरे थे। ये दस लोग प्रवाह थे। प्रवाह बदल जाएंगे। हम आदर देते भी--एक ही आदमी को सदा आदर नहीं दे सकते। हम प्रवाह हैं। हम आदत देते-देते भी ऊब जाते हैं। आदर के लिए भी हमें नया आदमी खोजना पड़ता है।
हम प्रेम भी एक ही आदमी को नहीं दे सकते, हम प्रवाह हैं। हम प्रेम देते-देते भी ऊब जाते हैं। हमें प्रेम के लिए भी नये लोग खोजने पड़ते हैं।

हम एक सतत बदलाहट हैं और हम ही बदलाहट है, ऐसा नहीं। हमारे चारों तरफ जो भी है, सब बदलाहट है। अगर हम इस जगत को इसकी बदलाहट में देख सकें, तो हमारे दुखी होने का कोई भी कारण नहीं है। वृक्ष की छाया बदल जाएगी, वृक्ष भी क्या कर सकता है, सूरज बदल रहा है। और सूरज को क्या मतलब है इस वृक्ष की छाया से, और वृक्ष क्या कर सकता है? वर्षा नहीं आएगी, और वर्षा को क्या मतलब है इस वृक्ष से? और वृक्ष क्या कर सकता है कि भारी ताप हुई, सूर्य की आग बरसी, पत्ते सूख गए और गिर गए। क्या मतलब है धूप को इस वृक्ष से? और जो छाया में नीचे बैठा है, इस वृक्ष को क्या प्रयोजन है उस आदमी से कि वह छाया में नीचे बैठा है।
यह सारा का सारा जगत अनंत प्रवाह है। उस प्रवाह में जो भी पकड़ कर शरण खोजता है वह दुख में पड़ जाता है। लेकिन तब क्या कोई शरण है ही नहीं?
एक संभावना यह है कि शरण है ही नहीं, जैसा कि शापनहार जर्मन विचारक ने कहा है कि कोई शरण नहीं है। दुख अनिवार्य है, यह एक दशा है। अगर आदमी ठीक से सोचेगा तो एक विकल्प यह उठता है कि दुख अनिवार्य है, दुख होगा ही। यह बड़ा निराशाजनक है। लेकिन शापनहार कहता है सत्य यही है, हम कर भी क्या सकते है। फ्रॉयड ने पूरे जीवन चिंतन करने के बाद यही कहा कि आदमी सुखी हो नहीं सकता।
क्यों? क्योंकि जहां भी पकड़ता है, वहीं चीजें बदल जाती हैं। और ऐसी कोई चीज नहीं है जो न बदले और आदमी पकड़ ले। शॉपनहार कहता है कि सब दुख है। सुख सिर्फ आशा है, दुख वास्तविकता है। सुख का एक ही उपयोग है--सुख है तो नहीं, सिर्फ उसकी आशा का एक उपयोग है कि आदमी दुख को झेल लेता है। दुख को झेलने में राहत मिलती है, सुख की आशा से। लगता है, आज नहीं कल मिलेगा, आज नहीं कल मिलेगा; तो आज का दुख झेलने में आसानी हो जाती है! लेकिन सुख है नहीं। क्योंकि सभी कुछ प्रवाह है, सभी कुछ बदला जा रहा है। आपकी आशाएं कभी पुरी नहीं होंगी क्योंकि आपकी आशाएं ऐसे जगत में पूरी हो सकती है, जहां चीजें बदलती न हों।
इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।
आप जो भी आशाएं करते हैं, वे एक ऐसे जगत की करते हैं, जहां सब चीजें ठहरी हुई हैं। मैं जिसे प्रेम करता हूं तो प्रेम की क्या आशा है, आप जानते हैं? प्रेम की आशा है--अनंत हो, शाश्वत हो, सदा रहे, फिर कभी कुम्हलाए न, कभी मुरझाए न, कभी बदले न। यह आशा एक ऐसे जगत की है, जहां प्रवाह न हो, चीजें सब थिर-थिर हों।
अगर ठीक से समझें, तो एक बिल्कुल मरे हुए जगत की। क्योंकि जहां जरा सी
भी बदलाहट होगी, वहां सब अस्तव्यस्त हो जाएगा। हम एक ऐसा जगत चाहते हैं, बिल्कुल मरा हुआ जगत, जहां सब चीजें ठहरी है। सूरज अपनी जगह है, छाया अपनी जगह है, प्रेम अपनी जगह है--सब ठहरा हुआ है। आदर, श्रद्धा अपनी जगह है, बेटा अपनी जगह है, पति अपनी जगह है--सब ठहरा हुआ है। तो हम एक मौन का जगत बना लें, बिल्कुल मृत, जहां कोई चीज कभी नहीं बदलती। लेकिन तब भी हम सुखी न होंगे। क्योंकि तब लगेगा, सब मर गया।
फ्रॉयड कहता है, आदमी की आकांक्षाएं असंभव है। वह कभी सुखी नहीं हो सकता। अगर जगत बदलता रहे तो वह दुखी होता है कि जो चाहा था वह नहीं हुआ। अगर जगत बिल्कुल थिर हो जाए, जो वह चाहे वही हो जाए, तो भी वह दुखी हो जाएगा। क्योंकि तब उसमें कोई रस न रहेगा।
अगर गुलाब का फूल खिले और खिला ही रहे, कभी न मुरझाए, तो प्लास्टिक के फूल में और गुलाब के फूल में फर्क क्या होगा? और आप भगवान से प्रार्थना करने लगोगे कि कभी तो यह मुरझाए। कभी तो ऐसा हो कि यह गिरे और बिखर जाए। अग यह छाती पर भारी पड़ने लगा।
कहते हैं आप, शाश्वत प्रेम! आपको पता नहीं। शाश्वत प्रेम मिल जाए, तो
एक ही प्रार्थना उठेगी, इससे छुटकारा कैसे हो?
हम सब चाहते हैं, ठहरा हुआ जगत। लेकिन चाह सकते हैं क्योकि वह मिलता नहीं। मिल जाए तो कठिनाई खड़ी हो जाए। फ्रायड कहता है, आदमी एक असंभव आकांक्षा है।

ज्यां पाल सार्त्र ने इस बात को अभी एक नया रुख दिया, और वह कहता है, मैन इ.ज एन एब्सर्ड पैशन। वासना ही मूढ़तापूर्ण है। आदमी एक वासना है, जो मूढ़तापूर्ण है। कुछ भी हो जाए, आदमी दुखी होगा। दुख अनिवार्य है।
महावीर के इस विश्लेषण से एक तो रास्ता यह है, जो शापनहार या फ्रायड
या सार्त्र कहते हैं। लेकिन महावीर निराशावादी नहीं हैं। महावीर कहते हैं कि जगत एक प्रवाह है; लेकिन इस जगत में छिपा हुआ एक ऐसा तत्व भी है, जो प्रवाह नहीं है--उसे महावीर धर्म कहते हैं।
"जरा और मरण के तेज प्रवाह में बहते हुए जीव के लिए धर्म ही एकमात्र द्वीप, प्रतिष्ठा, गति और शरण है।"
यह जो हम देख रहे हैं चारों तरफ बहता हुआ, यही अगर सब कुछ है, तो निराशा
के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। और अगर निराशा के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है, तो सिर्फ मूढ़ ही जी सकते हैं, बुद्धिमान आत्मघात कर लेंगे। कुछ बुद्धिमान तो आत्मघात करते हैं और कहते हैं कि सिर्फ मूढ़ ही जी सकते हैं। थोड़ी दूर तक यह बात सच भी मालूम पड़ती है कि मूढ़ ही जी सकते हैं। जीने के लिए घनी मूढ़ता चाहिए।
अब यह जो बाप कह रहा है कि बेटे को काम पर लगा देने के लिए जी रहा है।
यह बेटा अपने बेटे को काम पर लगा देने के लिए जी रहा है। बड़ी घनी मूढ़ता चाहिए, इस सबको चलाए रखने के लिए अंधापन चाहिए, दिखाई ही न पड़े कि हम क्या कर रहे हैं। अगर यह दिखाई पड़ जाए कि सभी कुछ निराशा है, और कहीं कोई शरण नहीं है, किसी चीज का कोई भरोसा नहीं, कहीं पैर टिक नहीं सकते, धारा प्रतिपल बही जा रही है। और भविष्य अनजान है, और हर घड़ी जीवन की मौत बनती जाती है। हर सुख दुख में बदल जाता है और हर जन्म अंततः मृत्यु को लाता है। अगर यह साफ दिखाई पड़ जाए, तो आप तत्काल वहीं के वहीं बैठ जाएंगे। यह तो बहुत घबरानेवाला होगा, यह बेचैन करेगा, यह संताप से भर देगा।
और पश्चिम में, इधर संताप बढ़ा है। पश्चिम में एक विचार-दर्शन है, एक्झिस्टेंशियलिज्म, अस्तित्ववाद। वह महावीर के पहले हिस्से से राजी है। लेकिन महावीर अदभुत आदमी मालूम पड़ते हैं। जीवन में सब दुख देख कर भी महावीर आनंदित हैं। यह बड़ी असंभव घटना मालूम पड़ती है, क्योंकि महावीर और बुद्ध ने जीवन के दुख की जितनी गहरी चर्चा की है, इस जगत में कभी किसी ने नहीं की। फिर भी महावीर से ज्यादा प्रफुल्लित, आनंदित और नाचता हुआ व्यक्तित्व खोजना मुश्किल है। महावीर से ज्यादा खिला हुआ आदमी खोजना मुश्किल है, शायद जमीन ने फिर ऐसा आदमी दुबारा नहीं देखा।
कहानियां हैं महावीर के बाबत वे बड़ी प्रीतिकर हैं। प्रीतिकर हैं कि महावीर अगर रास्ते पर चलें, तो कांटा भी अगर सीधा पड़ा हो तो तत्काल उलटा हो जाता है। कहीं महावीर को गड़ न जाए।
कोई कांटा उलटा नहीं हुआ होगा। आदमी इतनी चिंता नहीं करते तो कांटे इतनी क्या चिंता करेंगे? आदमी महावीर को पत्थर मार जाते हैं, कान में खीलें ठोंक जाते हैं तो कांटे--अगर कांटे ऐसी चिंता करते हैं तो आदमी से आगे निकल गए। लेकिन जिन्होंने कहा है, किन्हीं कारण से कहा है। वैज्ञानिक तथ्य नहीं है, लेकिन बड़ा गहरा सत्य है और जरुरी नहीं है सत्य के लिए कि वह वैज्ञानिक तथ्य हो ही। सत्य बड़ी और बात है, इस बात में सत्य है। इस बात में इतना सत्य है कि कोई उपाय ही नहीं है महावीर को कांटे के गड़ने का। कैसा ही कांटा हो, महावीर के लिए उलटा ही होगा। और हमारे लिए कांटा कैसा ही हो, सीधा ही होगा, न भी हो, तो भी होगा। हम मखमल की गद्दी पर चलें, तो भी कांटे गड़ने वाले हैं। महावीर कांटों पर भी चलें तो कांटे नहीं गड़ते हैं, यही मतलब है। कांटों की तरफ से नहीं है यह बात। यह बात महावीर की तरफ से है। महावीर के लिए कोई उपाय नहीं है कि कांटा गड़ सके।
जो आदमी दुख की इतनी बात करता है कि सारा जीवन दुख है, उस आदमी को कांटा नहीं गड़ता दुख का! जरूर इसने किसी और जीवन को भी जान लिया। इसका अर्थ हुआ कि यही जीवन सब कुछ नहीं है। जिसे हम जीवन कहते हैं, वह जीवन की परिपूर्णता नहीं है, केवल परिधि है। जिसे हम जीवन जानते हैं, वह केवल सतह है, उसकी गहराई नहीं। और इस सतह से छूटने का तब तक कोई उपाय नहीं है, जब तक सतह के साथ हमारी आशा बंधी है। इसलिए महावीर इस सतह के सारे दुख को उघाड़ कर

रख देते हैं; इस सारे दुख को उघाड़ कर रख देते हैं। इसका सारा हड्डी, मांस-मज्जा खोल कर रख देते हैं कि यह दुख है।
यह इसलिए नहीं कि आदमी दुखी हो जाए। यह इसलिए नहीं कि आदमी आत्मघात कर ले। यह इसलिए कि आदमी रूपांतरित हो जाए, उस नये जीवन में प्रविष्ट हो जाए जहां दुख नहीं है। यह एक नई यात्रा का निमंत्रण है।
इसलिए महावीर निराशावादी नहीं हैं, दुखवादी नहीं हैं, पैसिमिस्ट नहीं हैं। महावीर आनंदवादी हैं। फिर दुख की इतनी बात करते हैं। पश्चिम में तो बहुत गलतफहमी पैदा हुई है।
अलबर्ट शवीत्जर ने भारत के ऊपर बड़ी से बड़ी आलोचना की है, और बहुत समझदार व्यक्ति यों में शवीत्जर एक है। उसने कहा कि भारत जो है वह दुखवादी है। इनका सारा चिंतन, इनका सारा धर्म दुख से भरा है, ओत-प्रोत है, निराशावादी हैं। इन्होंने जीवन की सारी की सारी जड़ों को सुखा डाला है और इन्होंने जीवन को कालिख से पोत दिया है।
शवीत्जर थोड़ी दूर तक ठीक कहता है। हमने ऐसा किया है। लेकिन फिर भी शवीत्जर की आलोचना गलत है। अगर महावीर के ऊपर के वचनों को कोई देखकर चले तो लगेगा ही; सब जरा है, सब दुख है, सब पीड़ा है।
अगर महावीर से आप कहें कि देखते है यह स्त्री कितनी सुंदर है! तो महावीर कहेंगे थोड़ा और गहरा देखो। थोड़ा चमड़ी के भीतर जाओ। थोड़ा झांको, तब तुम्हें असली सौंदर्य का पता चलेगा। तब तुम्हें हड्डी, मांस-मज्जा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिलेगा।
सुना हैं मैंने, मुल्ला नसरुद्दीन जवान हुआ। एक लड़की के प्रेम में पड़ा। उसके पिता ने उसे समझाने के लिए कहा कि तू बिल्कुल पागल है। थोड़ा समझ-बूझ से काम ले। जरा सोच, जिस सौंदर्य के पीछे तू दीवाना है, दैट ब्यूटी इ.ज ओनली स्किन-डीप--वह सौंदर्य केवल चमड़ी की गहराई का है--तो मुल्ला नसरुद्दीन ने कहाः दैट इज इनफ फार मी, आई एम नॉट ए कैनिबाल। मेरे लिए काफी है। अगर चमड़ी पर सौंदर्य है। मैं कोई आदमखोर तो नहीं हूं कि भीतर तक की स्त्री को खा जाऊं। ऊपर-ऊपर काफी है, भीतर का करना क्या है? आई एम नॉट ए कैनिबाल।
ठीक कहा, हम भी यही मान कर जीते हैं। ऊपर-ऊपर काफी है, भीतर जाने की जरूरत क्या है? लेकिन यह सवाल स्त्री का ही नहीं है, यह सवाल पुरुष का ही नहीं है, यह सवाल हमारे पूरे जीवन को देखने का है। ऊपर ही ऊपर जो मानते हैं, काफी है, वे प्रवाह से कभी छुटकारा न पा सकेंगे। क्योंकि प्रवाह के बाहर जो जगत है, वह ऊपर नहीं है, वह भीतर है। लेकिन बड़ा मजा है, स्त्री के भीतर हड्डी, मांस-मज्जा ही अगर हो तब तो नसरुद्दीन ठीक कहता है कि इस झंझट में पड़ना ही क्यों? लेकिन स्त्री की हड्डी, मांस-मज्जा के भी भीतर जाने का उपाय है। और हड्डी, मांस-मज्जा के भीतर वह जो स्त्री की आत्मा है, वह प्रवाह के बाहर है।
तो तीन बातें हम समझ लें।
एक तो सतह है, फिर सतह के नीचे छिपा हुआ जगत है। और फिर सतह के नीचे की
भी गहराई में छिपा हुआ केंद्र है। परिधि है, फिर परिधि और कं्रेद के बीच का फासला है और फिर केंद्र है। जब तक कोई केंद्र पर न पहुंच जाए तब तक न तो सत्य का कोई अनुभव है, न सौंदर्य का कोई अनुभव है। सौंदर्य का भी अनुभव तभी होता है जब हम किसी दूसरे व्यक्ति के केंद्र को स्पर्श करते हैं। प्रेम का भी वास्तविक अनुभव तभी होता है, जब हम किसी व्यक्ति के केंद्र को छू लेते हैं, चाहे क्षणभर को ही सही, चाहे एक झलक ही क्यों न हो।
जीवन में जो भी गहन है, जो भी महत्वपूर्ण है, वह केंद्र है। लेकिन परिधि पर हम अगर घूमते रहें, घूमते रहें, तो जन्मों-जन्मों तक घूम सकते हैं। जरूरी नहीं है कि हम कितना घूमें कि केंद्र तक पहुंच जाएं। एक आदमी एक चाक की परिधि पर बैठ जाए और घूमता रहे, घूमता रहे जन्मों-जन्मों तक, कभी भी केंद्र पर नहीं पहुंचेगा। हम ऐसे ही घूम रहे हैं। इसीलिए हमने इस जगत को संसार कहा है।

संसार का अर्थ हैः एक चक्र, जो घूम रहा है। उसमें दो उपाय हैं होने के, संसार में होने के दो ढंग हैं--एक ढंग है परिधि पर होना, एक ढंग है उसके केंद्र पर होना। केंद्र पर होना धर्म है।
महावीर कहते हैंः "धर्म स्वभाव है।" "वत्थू सहावो धम्म"।" वह जो प्रत्येक वस्तु का स्वभाव है, उसका आंतरिक, अंतरतम, वही धर्म है। महावीर के लिए धर्म का अर्थ रिलीजन नहीं है, ख्याल रखना, मजहब नहीं है। महावीर के लिए धर्म से मतलब--हिंदू, जैन, ईसाई, बौद्ध, मुसलमान नहीं है।
महावीर कहते हैं, धर्म का अर्थ है--तुम्हारा जो गहनतम स्वभाव है, वही तुम्हारी शरण है। जब तक तुम अपने उस गहनतम स्वभाव को नहीं पकड़ पाते हो, तब तक तुम प्रवाह में भटकते ही रहोगे; और प्रवाह में जरा और मृत्यु के सिवाय कुछ भी नहीं है।
प्रवाह में है मृत्यु। केंद पर है अमृत। प्रवाह में है जरा, दुख। केंद्र पर है, आनंद। प्रवाह में है चिंता, संताप, केंद्र पर है शून्य, शांति। प्रवाह है संसार, केंद्र है मोक्ष।
महावीर को अगर ठीक से समझें तो जहां-जहां हम पर्त को पकड़ लेते हैं-- परिवर्तनशील पर्त को, वही हम संसार में पड़ते हैं। जहां हम परिवर्तनशील पर्त को उघाड़ते हैं, उघाड़ते चले जाते हैं, तब तक, जब तक कि अपरिवर्तित का दर्शन न हो जाए।
यह उघाड़ने की प्रक्रिया ही योग है। और जिस दिन यह उघड़ जाता है और हम उस स्वभाव को जान लेते हैं जो शाश्वत है, जिसका कोई जन्म नहीं, फिर कभी मृत्यू नहीं होगी। हम सब खोजना चाहते हैं जरूर, अमृत। हम सब चाहते हैं कि ऐसी घड़ी आए, जहां मृत्यू न हो। लेकिन वह घड़ी आएगी, जब हम उसको खोज लेंगे जिसका कोई जन्म नहीं हुआ। जब तक हम उसे न खोज लें जिसका कोई जन्म नहीं हुआ, तब तक अमृत का कोई पता नहीं चलेगा।
हम सब खोजना चाहते हैं आनंद--लेकिन आनंद से हमारा मतलब है--दुख के विपरीत। महावीर कहते हैं, आनंद से अर्थ है उसका, जो कभी दुखी नहीं हुआ--यह बड़ी अलग बात है। हम चाहते हैं आनंद मिल जाए, लेकिन हम उसी मन से आनंद चाहते है जो सदा दुखी हुआ। जो मन सदा दुखी हुआ, वह कभी भी आनंदित नहीं हो सकता। उसका स्वभाव दुखी होना है। महावीर कहते हैं, आनंद चाहिए तो खोज लो उसे, तुम्हारे भीतर जो कभी दुखी नहीं हुआ। फिर अगर चाहते हो अमृत, तो खोज लो अपने भीतर उसे, जिसका कभी जन्म नहीं हुआ। इसे वे कहते हैं--धर्म। धर्म का महावीर का वही अर्थ है, जो लाओत्से का ताओ से है। धर्म से वही मतलब है जो हम इस अस्तित्व की आंतरिक... प्रकृति। मेरे भीतर भी वह है, आपके भीतर भी वह है। आपके भीतर खोजना मुझे आसान न होगा। आपके पास मैं खोजने जाऊंगा तो आपकी परिधि ही मुझे मिलेगी।
इसे थोड़ा देखें।
हम दूसरे आदमी को कभी भी उसके भीतर से नहीं देख सकते, या कि आप देख सकते हैं? आप दूसरे आदमी को सदा बाहर से देख सकते हैं। आप मुस्कुरा रहे हैं, तो मैं आपकी मुस्कुराहट देखता हूं। लेकिन आपके भीतर क्या हो रहा है, यह मैं नहीं देखता। आप दुखी हैं, तो आपके आंसू देखता हूं; आपके भीतर क्या हो रहा है, यह मैं नहीं देखता। अनुमान लगाता हूं मैं कि आसूं हैं, तो भीतर दुख होता होगा; मुस्कुराहट है, तो भीतर खुशी होती होगी। दूसरा आदमी अनुमान है, इनफ्रेंस है। भीतर तो मैं केवल अपने को ही देख सकता हूं। तब हो सकता है, ऊपर आंसू हों और भीतर दुख न हो। ऊपर मुस्कुराहट हो और भीतर दुख हो।
भीतर तो मैं अपने ही देख सकता हूं। एक ही द्वार मेरे लिए स्वभाव में उतरने का खुला है--वह मैं स्वयं हूं। दूसरा मेरे लिए बंद द्वार है, उससे मैं कभी नहीं उतर सकता।
हम सब दूसरे से उतरने की कोशिश कर रहे हैं। हमारा प्रेम, हमारी मित्रता, हमारे संबंध, सब दूसरे से उतरने की कोशिशें हैं। दूसरे से हम प्रवाह में रहेंगे। इसलिए महावीर ने बड़ी हिम्मत की बात कही। महावीर ने ईश्वर को भी स्वीकार नहीं किया। क्योंकि महावीर ने कहा, ईश्वर भी
दूसरा हो जाता है--दि अदर। उससे भी कुछ हल नहीं होगा।

तो महावीर ने कहा कि मैं तो आत्मा को ही परमात्मा कहता हूं और किसी को परमात्मा नहीं कहता। कोई दूसरा परमात्मा नहीं, तुम स्वयं ही परमात्मा हो।
एक ही द्वार है तुम्हारे अपने भीतर जाने का, वह तुम स्वयं हो। परिधि को छोड़ो और भीतर की तरफ हटो। क्या है उपाय, कैसे हम छोड़ें परिधि को?
एक आखिरी सूत्र।
जो भी बदल जाता हो, समझो कि वो मैं नहीं हूं।
शरीर बदलता चला जाता है। महावीर कहते हैं, जो बदलता जाता है, समझो कि मैं नहीं हूं। शरीर प्रतिपल बदल रहा है, एक धारा है। अभी आपका मां के पेट में गर्भाधान हुआ था, उस अणु का अगर चित्र आपके सामने रख दिया जाए, तो आप यह पहचान भी न सकेंगे कि आप यह थे। लेकिन एक दिन वही आपका शरीर था, फिर जिस दिन आप जन्मे थे, वह तस्वीर आपके सामने रख दी जाए तो आप पहचान न सकेंगे कि यह मैं ही हूं। एक दिन यही आपका शरीर था। अगर आपके पिछले जन्म की लाश आपके सामने रख दी जाए तो आप पहचान न सकेंगे, एक दिन आप वही थे। अगर आपके भविष्य का कोई चित्र आपके सामने रख दिया जाए तो आप पहचान न सकेंगे, एक दिन आप वह हो सकते हैं। शरीर प्रतिपल बदल रहा है।
महावीर कहते हैंः "जो बदल रहा है, वह मैं नहीं हूं।" इसको धारण करो, इसको गहन में उतारते चले जाओ। यह तुम्हारे चेतन-अचेतन में पोर-पोर में डूब जाए कि जो बदल रहा है, वह मैं नहीं हूं।
मन भी बदल रहा है, प्रतिपल बदल रहा है। शरीर थोड़ा धीरे-धीरे बदलता है।
मन तो और तेजी से बदल रहा है। तो महावीर कहते हैं, "जो बदल रहा है, वो "मैं" नहीं हूं।" मन भी "मैं" नहीं हूं। प्रतिपल धारणा को गहरा करते चले जाओ, यही एकाग्र चिंतन रह जाए कि मन भी "मैं" नहीं हूं। अभी यह विचार क्षणभर नहीं टिकता, दूसरा विचार, वह भी नहीं टिकता, तीसरा विचार। मन एक धारा है विचारों की। वह भी "मैं" नहीं हूं। ऐसा डूबते जाओ भीतर, डूबते जाओ भीतर, जब तक तुम्हें परिवर्तनशील कुछ भी दिखाई पड़े, तत्काल अपने को तोड़ लो उससे, दूर हो जाओ। एक दिन उस जगह पहुंच जाओगे जहां कुछ परिवर्तनशील नहीं दिखाई पड़ेगा, जिससे तोड़ना हो आपने को। जिस दिन वह घड़ी आ जाए जहां कुछ भी परावर्तित होता हुआ न दिखाई पड़े, जानना कि धर्म में प्रवेश हुआ। वही स्वभाव है।
महावीर कहते हैं, कि यही स्वभाव द्वीप है। यही स्वभाव प्रतिष्ठा है। यही स्वभाव गति है। गति का अर्थ--यही स्वभाव एकमात्र मार्ग है, और कोई गति नहीं है और यही स्वभाव उत्तम शरण है।
अगर जाना ही है किसी शरण में, तो इस स्वभाव की शरण चले आओ। अगर किन्हीं चरणों में सिर रख ही देना है, तो इसी स्वभाव के चरणों में सिर रख दो। और कोई चरण काम नहीं पड़ सकते, और कोई शरण सार्थक नहीं है।
स्वभाव ही शरण है।
और अगर हमने महावीर के चरणों में सिर रखा और अगर हमने कहा कि जिसने जाना है, स्वयं को, उसकी शरण में हम जाते हैं, तो यह केवल अपनी शरण आने के लिए एक माध्यम है। इससे ज्यादा नहीं। जो इस शरण में ही रुक जाए, वह भटक गया।
महावीर की भी शरण अगर कोई जाता है तो सिर्फ इसलिए कि अपनी शरण में आ सके। और महावीर की भी शरण जाता है, इसलिए कि हम नहीं पहुंच पाए अपने स्वभाव तक, कोई पहुंच गया है। जो हम हो सकते हैं, कोई हो गया है। जो हमारी संभावना है, किसी के लिए वास्तविक हो गई। लेकिन वह भी वस्तुतः हम अपने ही स्वभाव की शरण जा रहे हैं। उसके अतिरिक्त कोई गति, कोई द्वीप, कोई शरण नहीं है।

आज इतना ही।
लेकिन पाच मिनट रुकें।

महावीर-वाणी, भाग 1
बीसवां प्रवचन

धर्म का मार्ग: सत्य का सीधा साक्षात् (धम्म सूत्र: 3)

जहा सागडिओ जाणं, समं हिच्चा महापहं।
विसमं मग्गमोइण्णो, अक्खे भग्गम्मि सोयई।।
एवं धम्मं विउक्कम, अहम्मं पडिवज्जिया।
बाले मुच्चुमुहं पत्ते, अक्खेभग्गे व सोयई।।
जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई।
अहम्मं कुणमाणस्स, अफला जन्ति राइओ।।
जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई।
धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जन्ति राइओ।।
जरा जाव न पीडेई, वाही जाव न वड्ढई।
जाविन्दिया न हायंति, ताव धम्मं समायरे।।

जिस प्रकार मूर्ख गाड़ीवान जान-बूझ कर साफ-सुथरे राजमार्ग को छोड़ विषम (टेढ़े-मेढ़े, ऊबड़-खाबड़) मार्ग पर चल पड़ता है और गाड़ी की धुरी टूट जाने पर शोक करता है, वैसे ही मूर्ख मनुष्य जान-बूझ कर धर्म मार्ग को छोड़ कर अधर्म मार्ग को पकड़ लेता है और अंत में मृत्यु मुख में पहुंचने पर जीवन की धुरी टूट जाने पर शोक करता है।
जो रात और दिन एक बार अतीत की ओर चले जाते हैं, वे फिर कभी वापस नहीं लौटते हैं। जो मनुष्य अधर्म करता है, उसके वे रात-दिन बिल्कुल निष्फल रहते हैं। लेकिन जो मनुष्य धर्म करता है, उसके वे रात-दिन सफल हो जाते हैं।
जब तक बुढ़ापा नहीं सताता, जब तक व्याधियां नहीं बढ़तीं, जब तक इंद्रियां अशक्त नहीं होती, तब तक धर्म का आचरण कर लेना चाहिए, बाद में कुछ नहीं होगा।

मृत्यु के संबंध में थोड़ी सी बातें और।
पहली बातः मृत्यु अत्यंत निजी अनुभव है। दूसरे को हम मरता हुआ देखते हैं, लेकिन मृत्यु को नहीं देखते! दुसरे को मरता हुआ देखना, मृत्यु का परिचय नहीं है। मृत्यु आंतरिक घटना है। स्वयं मरे बिना देखने का कोई भी उपाय नहीं है। शायद इसलिए, जब भी हम मृत्यु के बारे में सोचते हैं तो ऐसा लगता है, मृत्यु दूसरे की होगी। क्योंकि हमने दूसरों को ही मरते देखा है। जब हम दूसरे को मरते देखते हैं तो हम क्या देखते हैं? हम इनता ही देखते हैं कि जीवन क्षीण होता चला जाता है। शरीर से जीवन की ज्योति विदा होती चली जाती है। लेकिन उस क्षण में जहां जीवन और शरीर पृथक होते हैं, हम मौजूद नहीं हो सकते। केवल वही व्यक्ति मौजूद होता है, जो मर रहा है। तो किसी को मरते हुए देखना, मृत्यु को देखना नहीं है। मृत्यू तो स्वयं ही देखी जा सकती है। आपके लिए कोई दूसरा नहीं मर सकता है, प्रॉक्सी से मरने का कोई उपाय नहीं है। अत्यंत निजी घटना है। उधार मृत्यु का अनुभव नहीं हो सकता। और हमारा सब अनुभव उधार है। हमने सदा दूसरों को मरते हुए देखा है। शायद इसलिए मृत्यु का जो आघात हमारे ऊपर पड़ना चाहिए, वह नहीं पड़ता। उसकी गहराई हमारे ख्याल में नहीं आती।
क्या जीवन में कोई और भी ऐसा भी अनुभव है जो मृत्यु जैसा हो? एक अनुभव है, लेकिन एक बारगी ख्याल भी न आए कि उसका और मृत्यु से कोई संबंध हो सकता है। वह अनुभव है प्रेम।
प्रेम और मृत्यु बड़े एक से अनुभव हैं। फिर तीसरा कोई अनुभव वैसा नहीं है। आपके लिए श्वास भी दूसरा आदमी ले सकता है। आपका हृदय भी, जरूरी नहीं कि आपका ही धड़के, दुसरे का भी आपके लिए धड़क सकता है। आपका हृदय अगर पूरा अलग कर दिया जाए और दूसरे हृदय से जोड़ दिया जाए, तो भी आप जीवित रह लेंगे। खून भी दूसरे का आपकी नाड़ियों में बह सकता है, श्वास भी यंत्र आप के लिए ले सकता है, लेकिन प्रेम आपके लिए कोई दूसरा कर नहीं सकता है।

प्रेम अत्यंत निजी अनुभव है। मृत्यु और प्रेम बड़े संयुक्त हैं। इसलिए जिन लोगों ने प्रेम के संबंध में गहराई से सोचा है, उन्हें मृत्यु के संबंध में भी सोचना पड़ा। और जिन्होंने मृत्यु की खोज-बीन की है, वे अंततः प्रेम के रहस्य में भी प्रवेश किए हैं।
कुछ बातें हमारे अनुभव में भी हैं, जिन्होंने बहुत नहीं सोचा होगा। जैसे, जो आदमी प्रेम से डरता है, वह मृत्यु से भी डरेगा। जो आदमी मृत्यु से डरता है, वह कभी प्रेम में नहीं पड़ेगा। जो व्यक्ति प्रेम की गहराई में उतर गया है, मृत्यु के प्रति बिल्कुल अभय हो जाता है। इसलिए प्रेमी निश्चिंतता से मर सकते हैं। प्रेमी को मृत्यु में कोई भय नहीं रह जाता। लेकिन जिसने कभी प्रेम न किया हो, वह मृत्यु से बहुत डरेगा। तब एक दुष्चक्र निर्मित होता है, एक विसियस सर्किल बन जाता है। मृत्यु से डरता है, इसलिए प्रेम में भी नहीं उतरता, क्योंकि प्रेम का अनुभव भी गहरे में मृत्यु का ही अनुभव है। जब तक कोई पूरी तरह मिटता नहीं, तब तक प्रेम का जन्म भी नहीं होता।
इसलिए प्रेम एक आध्यात्मिक अर्थों में मृत्यु है। प्रेम वही कर सकता
है जो अपने को मिटा लेने को राजी हो। जब तक कोई इतना नहीं मिट जाता कि बचे ही नहीं, तब तक प्रेम का फूल नहीं खिलता। इसलिए जिसने प्रेम को जान लिया हो, उसने मृत्यु को भी जान लिया। या जिसने मृत्यु को जान लिया हो, उसने प्रेम को भी जान लिया।
प्रेम और मृत्यु बड़ी संयुक्त घटनाएं हैं। गहरे आंतरिक तल पर वे एक ही चीज के दो रूप हैं। यह बहुत हैरानी की बात है। लेकिन, विचारणीय है। मृत्यु तो हम जब मरेंगे, तब होगी। दूसरे को मरते देखकर हम मृत्यु का कोई अनुभव नहीं कर सकते। खुद मरेंगे, तभी अनुभव होगा। लेकिन एक उपाय है प्रेम, जिससे हम मृत्यु का अनुभव आज भी कर सकते हैं।
फिर प्रेम का ही और विराट रूप है, प्रार्थना। फिर प्रेम का ही सार अंश है, ध्यान। वे सब मृत्यु का रूप हैं। हिंदू शास्त्रों में तो कहा है कि गुरु मृत्यु है। इसी अर्थ में कहा गया है कि गुरु के पास तभी कोई पहुंच सकता है जब वह इस स्थिति में अपने को छोड़ दे, जैसे कि खुद मिट गया। और अगर गुरु के पास मृत्यु घटित न हो, तो गुरु से कोइ संबंध नहीं जुड़ता।
श्रद्धा भी मृत्यु है। वह प्रेम का ही एक रूप है। यह मृत्यु तो जीवन
के अंत में आएगी, जिसे हम दूसरे में घटते देखते हैं। लेकिन प्रेम आज भी घट सकता है। प्रार्थना आज भी हो सकती है। ध्यान में आज भी प्रवेश हो सकता है। जो लोग ध्यान में प्रवेश कर जाते हैं, मृत्यु का भय मिट जाता है। सिर्फ ध्यानी मृत्यु के बाहर हो जाता है, जैसे प्रेमी बाहर हो जाता है। क्यों? इसलिए नहीं कि ध्यान के द्वारा मृत्यु पर विजय हो जाती है। इसलिए भी नहीं कि प्रेम के द्वारा मृत्यु पर विजय हो जाती है। बल्कि इसलिए कि जो प्रेम में मर कर देख लेता है वह जान जाता है कि जो मरता है, वह मैं नहीं हूं। ध्यान में जो मरकर देख लेता है, वह जान जाता है कि जो मरता है, वह मेरी परिधि है, मेरी देह है, मेरे आवरण है, मैं नहीं हूं।
मृत्यु से गुजर कर जाना जाता है कि मेरे भीतर कोई अमृत भी है। इस अमृत
के बोध से मृत्यु नहीं मिटती। मृत्यु तो घटेगी ही, महावीर को भी घटेगी और कृष्ण को भी घटेगी और बुद्ध को भी घटेगी। मृत्यु तो घटेगी ही, लेकिन तब यह मृत्यु केवल दूसरों के लिए होगी। दूसरे देखेंगे कि महावीर मर गए, और महावीर जानते रहेंगे कि वे नहीं मर रहे हैं। भीतर कोइ मृत्यु घटित नहीं होगी, तब मृत्यु बाहरी घटना हो जाएगी, खुद के लिए भी। ऐसा अनुभव न हो पाए तो जीवन व्यर्थ गया।
इसे हम समझ लें तो फिर ये सूत्र समझ में आए।
एक बीज हम बोते हैं। वृक्ष बढ़ता है, बड़ा होता है। कब आप कहते हैं कि वृक्ष सफल हुआ? बीज बोया सफल हुआ? जब फल लगते हैं, जब फल पकते हैं, जब फूल खिलते हैं; वृक्ष जो दे सकता था, जब पूरा दे देता है, तब हम कहते हैं, सफल हुआ श्रम। जिस वृक्ष पर फल न लगें, बांझ रह जाए, उस वृक्ष को हम सफल न कहेंगे। हम कहेंगे, कही अवरोध आ गया, कहीं रास्ता भटक गया, कहीं वृक्ष ऐसे

रास्ते पर चला गया, जहां जीवन की निष्पत्ति नहीं होती। जहां जीवन में निर्णय नहीं आता। इस वृक्ष का होना व्यर्थ हो गया।
मनुष्य भी एक वृक्ष है और मनुष्य भी एक बीज है। सभी मनुष्य फल तक नहीं पहुंचते। पहुंचना चाहिए। पहुंच सकते हैं। सभी के लिए संभव है, लेकिन हो नहीं पाता। कुछ लोग भटक जाते हैं। कुछ लोग, ऐसे मार्ग पर चले जाते हैं, जहां उनके जीवन में कोई फल नहीं लगते, और जहां उनके जीवन में कोई फूल नहीं खिलते। और जहां उनका जीवन निष्फल हो जाता है।
जीवन को हम देखें, तो जीवन की अंतिम घटना है मृत्यु। अगर इसे हम ऐसा समझें तो जीवन का जो आखिरी चरण है, शिखर है, वह मृत्यु है। जन्म तो शुरुआत है, मृत्यु अंत है। मृत्यु में ही पता चलेगा कि व्यक्ति का जीवन सफल हुआ या असफल हुआ। अंतिम घड़ी में ही जांच-पड़ताल हो जाएगी। निर्णय हो जाएगा।
अगर आप हंसते हुए मर सकतें है तो जीवन सफल हुआ, फूल खिल गए। अगर आप रोते हुए ही मरते हैं तो जीवन व्यर्थ गया, फूल नहीं खिल पाए। क्योंकि जब सब खिल जाता है तो मृत्यु एक आनंद है। जब कुछ भी नहीं खिल पाता तो मृत्यु एक पीड़ा है, क्योंकि मैं बिना कुछ हुए मर रहा हूं। समय व्यर्थ गया, अवसर चूक गया। मैं कुछ हो नहीं पाया, जो हो सकता था। जो मेरे भीतर छिपा था वह बाहर न आया। जो गीत मैं गा सकता था, वह अनगाया रह गया। तब पीड़ा है।
हम में से अधिक लोग रोते हुए ही मरते हैं। रोता हुआ मरण इस बात की खबर
है कि जीवन असफल गया। मृत्यु जब हंसती हुई होती है, जब मृत्यु फूल की तरह खिलती है, जब मृत्यु एक आनंद होती है, तो उसका अर्थ है कि इस जीवन की गहनताओं में छिपा हुआ जो अमृत था, उसका इस व्यक्ति का पता चल गया। अब मृत्यु सिर्फ विश्राम है। अब मृत्यु अंत नहीं है, बल्कि अब मृत्यु पूर्णता है, बल्कि अब मृत्यु एक लंबी निष्फल जीवन की समाप्ति नहीं है, बल्कि एक फुलफिलमेंट है, एक पूर्णता है। एक जीवन पूरा हुआ।
जैसे कोई नदी मरुस्थल में खो जाए और सागर तक न पहुंच पाए, वैसा अधिक लोगों का जीवन है, कही खो जाता है, पूर्ण नहीं हो पाता। जैसे कोई नदी सागर में पहुंच जाए, गीत गाती, नाचती सागर में मिल जाए।
मरुस्थल में नदी खो जाती है, सागर में भी नदी खोती है। लेकिन मरुस्थल में नदी असफल हो जाती है, सागर में नदी सफल हो जाती है। इसलिए मरुस्थल में खोती नदी रोती हुई खोएगी; सागर में गिरती हुई नदी नाचती हुई, अहोभाव से भरी हुई। खोना तो दोनों में है।
मृत्यु में हम भी खोते हैं, लेकिन रोते हुए। जैसे मरुस्थल में सब अवसर व्यर्थ हो गया। महावीर भी खोते हैं, लेकिन हंसते हुए। वह जो अवसर मिला था, उससे जो भी हो सकता था, वह पूरा हो गया है।
इस बात को समझ कर सूत्र को समझें।
"जिस प्रकार मूर्ख गाड़ीवान जान-बूझ कर साफ-सुथरे राजमार्ग को छोड़, विषम टेढ़े-मेढ़े, ऊबड़-खाबड़ मार्ग पर चल पड़ता है और गाड़ी की धुरी टूट जाने पर शोक करता है, वैसे ही मूर्ख मनुष्य भी जान-बूझ कर धर्म को छोड़, अधर्म को पकड़ लेता है और अंत में मृत्यु के मुख में पहुंचने पर, जीवन की धुरी टूट जाने पर शोक करता है।"
इसमें बहुत सी बातें हैं। एक, महावीर ने बड़ी अदभुत बात कही है और वह यह
कि "मूर्ख गाड़ीवान जान-बूझ कर", यह बड़ी उलटी बात है। अगर गाड़ीवान मूर्ख है, तो जान-बूझ कर क्या अर्थ रखता है, और अगर गाड़ीवान जान-बूझ कर ही गलत रास्ते पर चलता है, तो मूर्ख कहने का क्या प्रयोजन, लेकिन महावीर का प्रयोजन है। जब महावीर कहते हैं कि मूर्ख गाड़ीवान जान-बूझ कर।
मूर्खता अज्ञान का नाम नहीं है। मूर्खता, उन ज्ञानियों के लिए कही जाती है जो जान-बूझ कर... बच्चे को हम मूर्ख नहींं कहते, अबोध कहते हैं। बच्चे को हम, अगर भूल करे, तो मूर्ख नहीं कहते, बच्चा ही कहते हैं, निर्दोष कहते हैं, अभी उसे पता ही नहीं है। मूर्ख तो आदमी तब होता है, जब उसे पता होता है और फिर भी जान-बूझ कर गलत रास्ते पर चला जाता है।
जानवरों को हम मूर्ख नहीं कह सकते, अज्ञानी तो वे हैं; बच्चों को हम मूर्ख नहीं कह सकते, अज्ञान वे हैं। मूर्ख तो हम उनको ही कह सकते हैं जो

ज्ञानी भी हैं, तब जान-बूझ कर भूल शुरू होती जा है और जान-बूझ कर भूल ही मूर्खता है। लेकिन कयों कोई जान-बूझ कर भूल करता होगा?
क्योंकि सुकरात ने कहा है, कोई जान-बूझ कर भूल नहीं कर सकता। यूनान में इस पर लंबा विवाद रहा है और इस विवाद में सारे जगत की संस्कृतियों के अलग-अलग अनुवाद हैं कि कोई आदमी जब भूल करता है तो जान-बूझ कर करता है, या कि अनजान करता है। सुकरात ने कहा है, कोई आदमी जान-बूझ कर भूल नहीं कर सकता। उसकी बात में भी सच्चाई है। कभी आप जान-बूझ कर आग में हाथ डाल सकते हैं? असंभव है। जान-बूझ कर कोई कैसे भूल करेगा, क्योंकि भूल दुख देती है, पीड़ा देती है। भूल तो अनजाने ही हो सकती है।
लेकिन महावीर कहते हैं कि जान-बूझ कर भी भूल हो सकती है। जान-बूझ कर भी भूल तब हो सकती है जब आप जानते हैं कि आग में हाथ ड़ालने से हाथ जलेगा ही। लेकिन फिर भी ऐसी परिस्थितियां पैदा की जा सकती हैं कि आप अहंकार वश आग में हाथ ड़ाल दे। अगर यह प्रतियोगिता हो रही हो कि कौन कितनी देर तक आग में हाथ रख सकता है, तो आप जान-बूझ कर भी आग में हाथ ड़ाल सकते हैं।
अहंकार के कारण आदमी जान-बूझ कर भूल कर सकता है। सिर्फ एक ही कारण है जान-बूझ कर भूल करने का, अहंकार के कारण। अगर आपके अहंकार को रस मिलता हो तो आप जान-बूझ कर भूल कर सकते हैं। कोई गाड़ीवान क्यों साफ-सुथरे राजमार्ग को छोड़ कर, ऊबड़-खाबड़ मार्ग पर चलेगा!
ऊबड़-खाबड़ मार्ग पर अहंकार को तृप्ति मिलती है। राजमार्ग पर तो सभी चलते हैं, वहां कोई अहंकार को रस नहीं है। जब कोई उलटे-सीधे मार्ग पर चलता है तो अहंकार को रस मिल जाता है।
एवरेस्ट पर चढ़ने से कौन सा रस मिलता होगा? एवरेस्ट की चोटी पर खड़े होकर क्या उपलब्धि होती है? जब तेनसिंह और हिलेरी पहली दफे एवरेस्ट पर खड़े हो गए होंगे, तो उन्होंने क्या पाया होगा? एक बड़ी सूक्ष्म अहंकार की तृप्ति--जहां कोई भी नहीं पहुंच पाया वहां पहुंचने वाले वे पहले मनुष्य हैं। और तो कुछ भी एवरेस्ट पर मिलने को नहीं है। यात्रा के अंत पर मिलता क्या है? यात्रा के अंत पर मिलता है, अहंकार की तृप्ति।
तो जो आदमी ऊबड़-खाबड़ मार्ग चुनता है जीवन में, वह जान कर चुनता है। सीधे रास्ते पर तो सभी चलते हैं। राजमार्ग पर चलना भी कोई चलना है? जब आदमी ऐसे बीहड़ रास्ते पर चलता है, जहां चलना दुर्गम है, जहां एक-एक कदम उठाना मुश्किल है, जहां हर घड़ी कष्ट, हर घड़ी खतरा है; तो अहंकार को बड़ा रस आता है।
नीत्शे ने कहा हैः "लिव डेंजरसली, खतरनाक ढंग से जीयो।" क्योंकि नीत्शे कहता है, जीवन में एक तृप्ति है, और वह तृप्ति है पावर, शक्ति। लेकिन शक्ति का अनुभव तभी होता है, जब हम विपरीत से जूझते हैं। सरल के साथ शक्ति का अनुभव नहीं होता। जहां कोई भी चल सकता है, वहां शक्ति का कैसा अनुभव? जहां बच्चे भी निरापद चल लेते हैं, जहां अंधे भी चल लेते हैं, वहां शक्ति का क्या अनुभव? शक्ति का अनुभव तो वहां है, जहां कदम-कदम पर कठिनाई है, जहां पहुचना असंभव है। इसलिए अहंकारी ऐसे रास्ते चुनते है, जो पहुंचाने के लिए नहीं होते हैं, सिर्फ अहंकार के संघर्ष के लिए होते हैं। मूर्ख गाड़ीवान जान-बूझ कर ऊबड़-खाबड़ विषम रास्ते चुन लेता है, क्योंकि वहां उसके अहंकार की प्रतिष्ठा हो सकती है। तो मूर्खता का गहनतम सूत्र है अहंकार। मूर्खता का संबंध ज्ञान से नहीं है, अज्ञान से नहीं है। मूर्खता का संबंध अहंकार से, इगो से है। जितना अहंकारी व्यक्ति होगा, उतना मूर्ख होगा।
मजा यह है कि आप अपने ज्ञान का उपयोग भी मूर्खता के लिए कर सकते हैं, क्योंकि आप अपने ज्ञान से भी अपने अहंकार को भर सकते हैं। अगर कोई व्यक्ति अपने ज्ञान से भी अपने अहंकार को ही भर रहा हो तो यह प्रयास मूर्खतापूर्ण है।
अज्ञान से तो लोग भूलें करते हैं, लेकिन ज्ञान से भी लोग भूल करते हैं। और बड़ी से बड़ी भूल जो ज्ञान से हो सकती है, वह यह कि हम अपने इस अहंकार को खड़ा करने के लिए गलत मार्ग चुन लें, जान-बूझ कर। आपको भी ख्याल होगा जिंदगी में, कई बार विषम मार्ग चुनने में बड़ा सुख मिलता है। कठिन है जो,

लंबा है जो रास्ता, विघ्न जहां बहुत हैं, आपदाएं जहां हैं, विपत्तियां जहां है; उसे चुनने में बड़ा रस आता है।
रस क्या हैं? जीतने का रस। जब रास्ते में कोई विपत्ति होती है, तब हम जीतते हैं। जब रास्ते में कोई विपत्ति नहीं होती तो क्या खाक जीतना! इसलिए जो लोग इस भांति चलते हैं, उनके जीवन में हजार जटिलताएं खड़ी हो जाती हैं। उनका सारा जीवन, एक ही गणित को मान कर चलता है; जहां विपत्ति हो, जहां बाधा हो, जहां अड़चन हो, जो असंभव मालूम पड़े, उसे करने में उन्हें रस आता है।
और इस जगत में अधर्म से असंभव कुछ भी नहीं। अधर्म इस जगत में सबसे असंभव है। एवरेस्ट चढ़ा जा सकता है, चांद पर उतरा जा सकता है, मंगल पर भी आदमी उतर ही जाएगा, लेकिन यह कुछ भी असंभव नहीं है। अधर्म सबसे असंभव है। अधर्म का मतलब क्या? कल मैंने आपको कहा, धर्म का अर्थ है स्वभाव; अधर्म का अर्थ है स्वभाव के विपरीत। निश्चित ही स्वभाव के विपरित जाना सबसे असंभव बात है। आदमी स्वभाव से विपरीत जा ही कैसे सकता है? स्वभाव का अर्थ ही है कि जिसके विपरीत आप न जा सकें। जैसे आग ठंड़ी होना चाहे, तो यह स्वभाव के विपरीत हुआ। जैसे पानी ऊपर चढ़ना चाहे तो यह स्वभाव के विपरीत हुआ। ऐसे ही अधर्म का अर्थ है, जो स्वभाव के विपरीत है, वही टेढ़ा-मेढ़ा है।
धर्म तो बहुत सरल और सीधा है; लेकिन मजा है कि धर्म में हम तभी उत्सुक होते हैं, जब वह टेढ़ा-मेढ़ा हो। सीधे धर्म में हम जरा भी उत्सुक नहीं होते। कोई बताए कि इतने उपवास करो, ऐसे खड़े रहो रात भर, नंगे रहो, कि कोड़े मारो शरीर को, कि सुखाओ, हड्डी-हड्डी हो जाओ, तब जरा रस आता है कि हां, यह कोई बात हुई।
जब धर्म भी टेढ़ा-मेढ़ा हो तो मूर्ख गाड़ीवान उत्सुक होता है। इसलिए ध्यान रखना, धर्म की तरफ जो उत्सुकता दिखाई पड़ती है, उसमें नब्बे--नब्बे से भी कम--निन्यानबे प्रतिशत मूर्ख गाड़ीवान होते हैं। जिनका कुल कारण यह होता है, कि कोई असंभव करने जैसा दिखाई पड़ रहा है। तब उनको बड़ा रस आता है। अगर उनको कहो कि आराम से बैठ कर भी, छाया में भी, धर्म उपलब्ध हो सकता है, धर्म का सारा रस ही खो जाएगा। आसान हुआ, रस खो गया। बुद्धिमान आदमी को आसान हो तो रस बढ़ेगा। लेकिन अहंकारी आदमी को, आसान हो तो रस खो जाएगा।
इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।
तपश्चर्या का अधिकतम रस टेढ़े-मेढ़ेपन के कारण है। जब आप अपने को सता रहे होते हैं, तब आपको लगता है, हां, कुछ कर रहें हैं! भूखे हैं, पानी नहीं पी रहे हैं; तब आपको लगता है, आप कुछ कर रहे हैं। क्यों? क्योंकि बड़ा दुर्गम है, बड़ा अस्वाभाविक है। भूख स्वाभाविक है, भूखा रह जाना अस्वाभाविक है। भूख सहज है, भूख के विपरीत लड़ना असहज है। लेकिन जितना असहज हो, धारा के विपरीत हो, उतना हमें लगता है कि हां, कुछ अहंकार को रस आ रहा है। इसलिए तपस्वियों से ज्यादा प्रखर अहंकार और कहीं खोजना मुश्किल है। झोपड़े में रह रहा है, तो अहंकार बढ़ेगा। झाड़ के नीचे है तो और बढ़ जाएगा। धूप खड़ा रहे, तो और बढ़ जाएगा। अगर विश्राम करता ही नहीं, खड़ा ही रहता है तपस्वी, तो और बढ़ जाएगा।
यह सारी की सारी चेष्टा सिकंदर और नेपोलियन की चेष्टा से भिन्न नहीं है। लेकिन हमें दिखती है भिन्न, क्योंकि हमारी समझ नहीं है। इस चेष्टा का एक ही अर्थ है कि जो असंभव है, वह हम करके दिखा दें। अगर आदमी सहज जी रहा हो, तो हमें ख्याल में भी नहीं आ सकता है कि वह धार्मिक हो सकता है।
सहज आदमी हमारे ख्याल में नहीं आता कि धार्मिक भी हो सकता है। लेकिन कबीर ने कहा हैः "साधो, सहज समाधि भली।" कारण है कहने का। सहज का अर्थ यह जो महावीर कह रहे हैं, वह समझदार आदमी, जो सीधे सादे, साफ-सुथरे राजमार्ग को चुनता है; इसलिए कि कहीं पहुंचना है, इसलिए नहीं कि कुछ जीतना है।
ये दोनों अलग दिशाएं हैं। कहीं पहुंचना है तो व्यर्थ श्रम लगाने की कोई आवश्यकता नहीं है तब बीच में बाधाए खड़ी करने की कोई आवश्यकता नहीं है। लेकिन अगर कहीं पहुंचना नहीं है, सिर्फ अहंकार अर्जित करना है यात्रा में, तो फिर बाधाएं होनी चाहिए। तो आदमी अपने हाथ से भी बाधाएं निर्मित करता है। पैदल जाता है, तीर्थयात्रा को। मुझ से तीर्थयात्री कहतें हैं कि जो

मजा पैदल जाकर तीर्थयात्रा करने का है, वह ट्रेन में बैठ कर जाने में नहीं है।
स्वभावतः कैसे हो सकता है? लेकिन जो और आगे बढ़ गए हैं गाड़ी को टेढ़े- मेढ़े उतारने में, वह जमीन पर साष्टांग दंडवत करते हुए तीर्थयात्रा करते हैं। उनका वश चले अगर, तो वे शीर्षासन करते हुए भी यह तीर्थयात्रा करें। लेकिन तब जो मजा आएगा, निश्चित ही वह पैदल करने वालों को नहीं आ सकता। क्यों? वह मजा क्या है? वह तीर्थ पहुंचने का मजा नहीं है। वह अहंकार निर्मित करने का मजा है। जो कोई नहीं कर सकता, वह मैं कर रहा हूं।
धर्म हो, कि धन हो, कि यश हो, जो भी हो; हम मार्ग इरछे-तिरछे चुनते हैं
जान कर, महावीर कहते है, वह अधर्म है। असल में अधर्म तिरछा ही होगा सीधा नहीं होता। कभी आपने ख्याल किया है? एक झूठ बोलें, तो बड़ी तिरछी यात्राएं करनी पड़ती हैं। सच बोलें, सीधा। सच बिल्कुल वैसा है, जैसे इक्युलिड की रेखा--दो बिंदुओं के बीच सबसे कम दूरी। इक्युलिड की व्याख्या है रेखा की-- दो बिंदुओं के बीच सबसे कम दूरी। तो रेखा सीधी होती है। दो बिंदुओं के बीच जितना लंबा चक्कर लगाते जाए, उतनी रेखा बड़ी तिरछी होती चली जाती है।
सत्य भी दो बिंदुओं के बीच सबसे कम दूरी है। असत्य सबसे बड़ी लंबी यात्रा है। इसलिए एक असत्य, फिर दूसरा, फिर तीसरा। एक को सम्हालने के लिए एक लंबी श्रृंखला है। बड़ा मजा है कि सत्य को संभालने के लिए कोईशृंखला नहीं होती। एक सत्य अपने में काफी होता है। सत्य एटामिक है। एक अणु काफी है।
झूठशृंखला है, सीरीज है। एक झूठ काफी नहीं है। एक झूठ को दूसरे झूठ का सहारा चाहिए। दूसरे झूठ को और झूठों का सहारा चाहिए, और झूठ हमेशा अधर में अटका रहता है, कितना ही सहारा देते जाओ, उसके पैर जमीन से नहीं लगते। क्योंकि हर झूठ जो सहारा देता है वह खुद भी अधर में होता है। आप सिर्फ पोस्टपोन करते हैं, पकड़े जाने को, बस। जब मैं एक झूठ बोलता हूं तब तत्काल मुझे दूसरा झूठ बोलना पड़ता है कि पकड़ा न जाऊं। दूसरा बोलता हूं, तीसरा बोलना पड़ता है कि पकड़ा न जाऊं। फिर यह भय कि पकड़ा न जाऊं, तो मैं स्थगित करता जाता हूं। हर झूठ थोड़ी राहत देता है, फिर नये झूठ को जन्म देता है। सत्य सीधा है।
यह बड़ी हैरानी की बात है कि सत्य को याद रखने की भी जरूरत नहीं है, सिर्फ झूठ को याद रखना पड़ता है। इसलिए जिनकी स्मृति कमजोर है, वे झूठ नहीं बोल सकते। झूठ बोलने के लिए स्मृति की कुशलता चाहिए। क्योंकि लंबी याददाश्त चाहिए। एक झूठ बोला है, उसकी पूरीशृंखला बनानी पड़ेगी। यह वर्षों तक चल सकती है। इसलिए झूठ बोलने वालों का मन बोझिल होता चला जाता है। सच बोलने वाले का मन खाली होता है, कुछ रखना नहीं पड़ता। कुछ सम्हालना नहीं पड़ता।
धर्म भी एक सीधी यात्रा है, सरल यात्रा है। लेकिन धर्म में हमें रस नहीं, रस हमें टेढ़े-मेढ़ेपन में है; क्योंकि रस हमें अहंकार में है।
अभी स्पास्की और बॉबी फिशर में शतरंज की होड़ थी। अगर स्पास्की पहले दिन ही कह दे कि लो तुम जीत गए। इतनी सरल हो अगर जीत, तो जीत में कोई रस न रह जाएगा। जीत जितनी कठिन है, जितनी असंभव है, जितनी मुश्किल है, उतनी ही रसपूर्ण हो जाती है। और मजा यह है, आदमी इसके लिए कैसे-कैसे उपाय करता है! शतरंज बड़ा मजेदार उपाय है।
आदमी एक नकली युद्ध करता है--नकली! कुछ भी नहीं है वहां, न हाथी हैं, न घोड़े हैं, न कु छ है--नकली है सब, लेकिन रस असली है। रस वही है जो असली हाथी घोड़े से मिलता है। बिल्कुल वह महंगा धंधा था। पुराने लोग उस धंधे को काफी कर चुके।
खेल, युद्ध का संक्षिप्त अहिंसात्मक संस्करण है। उसमें भी हम लड़ते हैं नकली साधनों से, लेकिन थोड़ी ही देर में नकली साधन भूल जाते हैं और असली हो जाते हैं। कोई घोड़ा क्या घोड़ा होगा मैदान पर, जो शतरंज के बोर्ड पर हो जाता है। क्यों? आखिर इस नकली लकड़ी के घोड़े में इतना रस? यह असली कैसे हो जाता है? जिस घोड़े पर भी अहंकार की सवारी हो जाए, वह असली हो जाता है। अहंकार चलता है, घोड़े थोड़े ही चलतें हैं! फिर जितनी कठिनाई हो, जितनी

असंभावना हो और जितना सस्पेंस हो, और जितना संदेह हो जीत में, उतनी ही बात बढ़ती चली जाती है।
आदमी ने बहुत उपाय किए हैं, जिनसे वह जो सीधा संभव है, उसको भी बहुत लंबी यात्रा करके संभव करता है। इसे महावीर कहते हैं, जान-बूझ कर, साफ-सुथरे राजमार्ग को छोड़ कर। जैसा मूर्ख गाड़ीवान पछताता है।
कब पछताता है मूर्ख गाड़ीवान? जब धुरी टूट जाती है। जब गाड़ी उलटे-सीधे रास्ते पर, पत्थरों पर, कंकड़ों पर, मरुस्थल में उलझ जाती है कहीं, और गाड़ी की धुरी टूट जाती है। जब एक चाक बहुत नीचे हो जाता है, तब धुरी टूटती है। धुरी टूटने का मतलब है कि दोनों चाक जहां समान नहीं होते, असंतुलित हो जाते हैं। वहां धुरी टूट जाती है। वहां दोनों को संभालने वाली धुरी टूट जाती है। तब पछताता है, तब दुखी होता है, लेकिन तब कुछ भी नहीं किया जा सकता। तब कुछ भी करना मुश्किल हो जाता है।
जीवन में भी हम धुरी को तोड़ कर पछताते हैं। जो पहले समझ लेता है, वह कुछ कर सकता है। जो तोड़ कर ही पछताने का आदी है, तो जीवन ऐसी घटना नहीं है कि तोड़ कर पछताने का कोई उपाय हो। जो मृत्यु के बाद ही पछताएगा, उसके लिए फिर पीछे लौटने का उपाय नहीं है। हम भी पछताते हैं जब धुरी टूट जाती है। धुरी हमारी भी तब टूटती है जब असंतुलन बड़ा हो जाता है, एक चाक ऊपर और एक चाक बहुत नीचे हो जाता है।
यह होगा ही तिरछे रास्तों पर।
"अधर्म को पकड़ लेता है, और अंत में मृत्यु के मुख में पहुंचने पर जीवन
की धुरी टूट जाने पर शोक करता है।"
अधर्म को हम पकड़ते ही इसलिए हैं, अहंकार की वहां तृप्ति है। और धर्म
को हम इसलिए नहीं पकड़ते हैं कि वहां अहंकार से छुटकारा है। धर्म की पहली शर्त है, अहंकार छोड़ो। वही अड़चन है। अधर्म का निमंत्रण है, आओ, अहंकार की तृप्ति होगी। वही चुनौती है, वही रस है। अधर्म के द्वार पर लिखा है, बढ़ाओ अंहकार को, बड़ा करो। धर्म के द्वार पर लिखा है, छोड़ दो बाहर, अहंकार को। भीतर आ जाओ।
तो जिनको भी इस बात में रस है कि मैं कुछ हूं, उन्हें धर्म की तरफ जाने में बड़ी कठिनाई होगी। जो इस बात को समझने की तैयारी में है कि मैं ना कुछ हूं, उनके लिए धर्म का द्वार सदा ही खुला हुआ है। जिनको जरा भी है कि मैं कुछ हूं, वे अधर्म में खींच लिए जाएंगे--चाहे वे मंदिर जाएं, मस्जिद जाएं, गुरुद्वारा जाएं, कहीं भी जाएं--जिनको यह रस है कि मैं कुछ हूं, जो मंदिर में प्रार्थना करते वक्त भी यह देख रहे हैं कि कितने लोगों ने मुझे प्रार्थना करते देखा, जो यह देख रहे हैं कि कितने लोग मुझे तपस्वी मानते हैं, उपासक मानते हैं, कितने लोग मुझे साधु मानते हैं; जो अभी भी उस में रस ले रहे हैं वे कहीं से भी यात्रा करें, उनकी यात्रा ऊबड़-खाबड़ मार्ग पर, अधर्म के रास्ते पर हो जाएगी।
इसका मतलब यह हुआ कि जो आदमी स्वयं में कम उत्सुक है और स्वयं को दिखाने में ज्यादा उत्सुक है, वह अधर्म के रास्ते पर चला जाता है। जिस आदमी को इस में कम रस है कि मैं क्या हूं, और इस में ज्यादा रस है कि लोग मेरे संबंध में क्या सोचते हैं, वह अधर्म के रास्ते पर चला जाता है। जो लोगों कि आंखों में एक प्रतिबिंब बनाना चाहता है, एक इमेज, वह अधर्म के रास्ते पर चला जाता है।
धर्म के रास्ते पर तो केवल वे ही जा सकते हैं, जो स्वयं में उत्सुक हैं। स्वयं की वास्तस्विकता में, स्वयं के आवरण, आभूषण, स्वयं की साज सज्जा, स्वयं का शृंगार, दूसरों की आंखों में बनी स्वयं की प्रतिमा में जिनकी उत्सुकता नहीं है, केवल वे ही धर्म के रास्ते पर जा सकते हैं। क्योंकि दूसरे तो तभी आदर देते हैं, जब आप कुछ असंभव करके दिखाएं। दूसरे तो तभी आपको मानते हैं जब आप कोई चमत्कार करके दिखाएं। दूसरे तो तभी मानते हैं जब आप कुझ ऐसा करें, जो वे नहीं कर सकते हैं। तब।
जब आप किसी को आदर देते हैं तो आपने कभी ख्याल किया है, आपके आदर देने
का कारण क्या होता है? सदा कारण यही होता है कि जो आप नहीं कर सकते, वह यह आदमी कर रहा है। अगर आप भी कर सकते हैं, तो आप आदर न दे सकेंगे।

आप जाते हैं, कोई सत्य साईं बाबा एक ताबीज हाथ से निकाल कर दे देते हैं, तो आप आदर करते हैं। एक मदारी आदर न कर सकेगा। ताबीज तो कुछ भी नहीं, वह कबूतर निकाल देता है हाथ से। वह जानता है कि इसमें आदर जैसा कुछ भी नहीं है, यह साधारण मदारीगीरी है। वह आदर न दे सकेगा। आप आदर दे सकेंगे, क्योंकि आप नहीं कर सकते। जो आप नहीं कर सकते, वह चमत्कार है। फिर यह ताबीजों से ही संबंधित होता तो बहुत हर्जा न था, क्योंकि ताबीजों में बच्चों के सिवाय कोई उत्सुक नहीं होता, न कबूतरों में कोई बच्चों के सिवाय उत्सुक होता है; लेकिन यह और तरह से भी संबंधित है।
आप एक दिन भूखे नहीं रह सकते, और एक आदमी तीस दिन का उपवास कर लेता है,
तब आपका सिर उसके चरणों में लग जाता है। यह भी वही है, इसमें भी कुछ मामला नहीं है। आप ब्रह्मचर्य नहीं साध सकते और एक आदमी बाल ब्रह्मचारी रह जाता है, आपका सिर उसके चरणों में लग जाता है। यह भी वही है, कोई फर्क नहीं है। कोई भी फर्क नहीं है।
कारण सदा एक ही है भीतर हर चीज के, कि जो आप नहीं कर सकते। तब इसका यह मतलब हुआ कि अगर आपको भी अहंकार की तृप्ति करनी हो तो आप को कुछ ऐसा करना पड़े, जो लोग नहीं कर सकते। या कम से कम दिखाना पड़े कि आप कर सकते हैं, जो लोग नहीं कर सकते।
तो जो व्यक्ति अहंकार में उत्सुक है, वह सदा ही तिरछे रास्तों में उत्सुक होगा। ताबीज पेटी से निकाल कर आपके हाथ में दे देना बिल्कुल सीधा काम है, लेकिन पहले ताबीज को छिपाना, और फिर इस तरकीब से निकालना कि दिखाई न पड़े, कहां से निकल रहा है, तिरछा काम है। तिरछा है तो आकर्षक है, आपको भी पता चल जाए कि ताबीज कैसे पेटी से कपड़े की बांह के भीतर गया, फिर बांह से कैसे हाथ तक आया, एक दफा आप को पता चल जाए, चमत्कार तिरोहित हो जाए। फिर दुबारा आपको इसमें कोई श्रद्धा न मालूम होगी।
आपको भी पता चल जाए कि भूखा रहने की तरकीब क्या है, फिर उपवास में भी आपकी श्रद्धा न रह जाएगी। आपको भी पता चल जाए कि ब्रह्मचारी रहने की तरकीब क्या है, फिर आपको उसमें भी रस न रह जाएगा।
जो आप भी कर सकते हैं... यह बड़े मजे की बात है कि किसी आदमी की अपने में श्रद्धा नहीं है। जो आप भी कर सकते हैं, उसमें आपकी कभी श्रद्धा नहीं होगी। जो दुसरा कर सकता है, और आप नहीं कर सकते हैं, तो श्रद्धा होती है। तो जो भी आदमी अहंकार खोज रहा है--अहंकार का मतलब, दूसरों की श्रद्धा खोज रहा है, सम्मान खोज रहा है--वह आदमी तिरछे रास्ते चुन लेगा।
मूर्ख गड़ीवान ऐसे ही मूर्ख नहीं है, बहुत समझदारी से मूर्ख है। उस मूर्खता में एक विधि है।
महावीर कहते हैं, लेकिन जीवन के रास्ते पर भी यही होता है। मनुष्य जान-बूझ कर धर्म को छोड कर अधर्म को चुन लेता है।
आपको साफ-साफ पता होता है, यह सरल और सीधा रास्ता है; लेकिन उसमें अहंकार की तृप्ति नहीं होती। तब आप तिरछा रास्ता चुनते हैं। यह जान-बूझ कर चुनते हैं। इसको समझ लेना जरूरी है। क्योंकि अगर आप बिना जाने-बूझे चुनते हैं तब बदलने का कोई उपाय नहीं है, इसलिए महावीर का जोर है कि आप जान-बूझ कर चुनते हैं। अगर आप बिना जाने-बूझे चुनते हैं तब तो फिर बदलने का कोई उपाय नहीं है। अगर जान-बूझ कर चुनते हैं, तो बदलाहट हो सकती है।
बदलाहट का अर्थ ही यह है कि आप ही मालिक हैं चुनाव के। आपने ही चाहा था इसलिए तिरछे रास्ते पर गए। आप चाहेंगे तो सीधे रास्ते पर आ सकते हैं। यह आपकी चाह ही है जो आपको भटकाती है। इसमें कोई दूसरा पीछे से काम नहीं कर रहा है।
फ्रॉयड कहता है, आदमी जान-बूझ कर कुछ भी नहीं करता, धर्म और अधर्म के बीच यही विकल्प है। फ्रॉयड कहता है, मनुष्य जान-बूझ कर कुछ भी नहीं करता, सब अनकांशस होता है, सब अचेतन होता है, जानकर आदमी कुछ भी नहीं करता। फ्रॉयड ने यह बात पिछले पचास सालों मे इतने जोर से पश्चिम के सामने सिद्ध कर दी। और वह आदमी अदभुत था। उसकी खोज में कई सत्य थे, लेकिन अधूरे सत्य थे और अधूरे सत्य असत्यों से भी खतरनाक सिद्ध होते हैं। क्योंकि अधूरा सत्य, सत्य भी मालुम पड़ता है और सत्य होता भी नहीं। और कोई भी आदमी

अधूरे सत्य को नहीं पकड़ता है। जब अधूरे सत्य को पकड़ता है, तो उसे पुरा सत्य मान कर पकड़ता है। तब उपद्रव शुरू हो जाते हैं।
फ्रॉयड ने पश्चिम को समझा दिया कि आदमी जो भी कर रहा है, वह सब अचेतन है। अगर यह बात सच है, तो फिर आदमी के हाथ में परिवर्तन का कोई उपाय नहीं।
इसलिए शराबी ने सोचा कि अब मैं कर भी क्या सकता हूं। व्यभिचारी ने सोचा, अब उपाय भी क्या है। यह सब अचेतन है, यह सब हो रहा है। इसमें मैं कुछ भी नहीं कर सकता।
और इस सदी ने बिना जाने जगत के इतिहास का सबसे बड़ा भाग्यवाद जन्माया।
भाग्यवादी कहते थे, परमात्मा कर रहा है; फ्रायड कहता है, अचेतन कर रहा है। लेकिन एक बात में दोनों राजी हैं कि हम नहीं कर रहे हैं। हमारे हाथ में बात नहीं है। परमात्मा कर रहा है। विधि ने लिख दिया खोपड़ी पर, वह हो रहा है।
फ्रायड कहता है, पीधे से अचेतन चला रहा है, और हम चल रहे हैं। जैसे कोई गुड्डियों को नचा रहा हो। हमारे हाथ में कुछ भी नहीं है। पहले परमात्मा नचाता था गुड्डियों को, अब अनकांशस, अचेतन नचा रहा है। सिर्फ शब्द बदल गए हैं। लेकिन आदमी के हाथ में कोई ताकत नहीं।
महावीर परमात्मा के भी खिलाफ है और अचेतन के भी। महावीर कहते हैं, तुम
जो भी कर रहे हो, ठीक से जानना, तुम कर रहे हो। आदमी को इतना जादा उत्तरदायी किसी दूसरे ने कभी नहीं माना, जितना महावीर ने माना। महावीर ने कहा कि अंततः तुम ही निर्णायक हो, और इसलिए कभी भूलकर नहीं कहना कि भाग्य ने, विधि ने, परमात्मा ने, किसी ने करवा दिया। जो तुमने किया है, तुमने किया है। इसमें जोर देने का कारण है और वह कारण यह है कि जितना यह स्पष्ट होगा कि मैं कर रहा हूं, उतनी ही बदलाहट आसान है। क्योंकि अगर मैं अपने चुनाव से उल्टे रास्ते पर नहीं गया हूं, भेजा गया हूं, तो जब मैं भेजा जाऊंगा सीधे रास्ते पर तो चला जाऊंगा। जब मैं भेजा गया हूं उलटे रास्ते पर, तो मैं कैसे लौट सकता हूं? जब भेजेगी प्रकृति, भेजेगी नियति, भेजेगा परमात्मा, तो ठीक है, मैं लौट जाऊंगा। न मैं गया, न मैं लौट सकता हूं। मैं एक पानी मे बहता हुआ तिनका हूं। मेरी अपनी कोई गति नहीं है, मेरा अपना कोई संकल्प नहीं है। महावीर का यह जोर कि तुम जान-बूझ कर गलत कर रहे हो, कारणवश है और वह कारण यह है कि अगर जान-बूझ कर रहे हो तो ही बदलाहट हो सकती है। नहीं तो फिर कोई ट्रांसफार्मेशन, मनुष्य के जीवन में फिर कोई कं्राति संभव नहीं है। इसलिए महावीर बड़े साहस से ईश्वर को बिल्कुल इनकार कर दिए, क्योंकि ईश्वर के रहते महावीर को लगा कि आदमी को सदा एक सहारा होता है कि वह जो करेगा, उसकी बिना आज्ञा के तो पत्ता भी नहीं हिलता, तो हम कैसे हिलेंगे। तो हम कहते हैं, उसकी आज्ञा के बिना पत्ता नहीं हिलता। अब हम व्यभिचारी हैं अब हम कैसे व्यभिचार से हिल जाएं! जब वह हिलाएगा, उसकी मर्जी।
आदमी बेईमान है, अपने परमात्माओं के साथ भी। आदमी बड़ा कुशल है और परमात्मा भी कुछ कर नहीं सकता। आदमी को जो उससे बुलवाना है, बुलवाता है। जो उससे करवाना है, करवाता है। मजा यह है कि परमात्मा की बिना आज्ञा के पत्ता हिलता है, या नहीं हिलता है, यह तो पता नहीं, आपकी बिना आज्ञा के परमात्मा भी नहीं हिल सकता। वह आप ही उसको हिलाते रहते हैं, जैसी मर्जी, आप ही अंततः निर्णायक है।
इसलिए महावीर कहते हैंः "जान-बूझ कर।" लेकिन कितना ही कोई जान-बूझ कर गलत रास्ते पर जाए, रास्ता तो गलत ही होगा, और गलत रास्ते पर धुरी टुटेगी ही। रास्ते के गलत होने का मतलब ही इतना है कि जहां धुरी टूट सकती है। और तो कोई मतलब नहीं है। इसलिए अधर्म में गया हुआ आदमी रोज टूटता चला जाता है। निर्मित नहीं होता, बिखरता है।
चोरी करके देखें, झूठ बोल कर देखें, बेईमानी करके देखें, धोखा करके देखें, किसी की हत्या करें, होगा क्या? आपकी आत्मा की धुरी टूटती चली जाती है, आप भीतर टूटने लगते हैं। भीतर इंटिग्रेशन, अखंडता नहीं रह जाती, खंड-खंड हो जाता है। कभी कुछ, जिसको धर्म कहा है, वह करके देखें तो भीतर अखंडता आती है।
इसको ऐसा सोचें कि जब आप झूठ बोलते हैं, तब आपके भीतर टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं, एक आत्मा नहीं होती। एक हिस्सा तो भीतर कहता ही रहता है कि मत

करो, गलत है। एक हिस्सा तो जानता ही रहता है कि यह यच नहीं है। आप सारी दुनिया को झुठ बोल सकते हैं, लेकिन आपने से कैसे बोलिएगा? भीतर तो पता चलता ही रहता है कि यह झुठ है। इसलिए सतह पर भर आप झूठ के लेबल चिपका सकते हैं, आपकी अंतरात्मा तो जानती है कि यह झुठ है। इसलिए आप इकट्ठे नहीं हो सकते।
आपकी परीधि और आपके केंद्र में विरोध बना रहेगा। भीतर कोई कहता ही रहेगा कि यह झूठ है, यह नहीं, यह नहीं बोलना था। जो बोला है वह ठीक नहीं था। यह भीतर खंड-खंड कर जाएगा।
अब जो आदमी हजार झूठ बोल रहा है, उसके हजार खंड हो जाएंगे लेकिन जो आदमी सच बोल रहा है, उसके भीतर कोई खंड नहीं होता। क्योंकि सच के विपरीत कोई कारण नहीं होता। और मजा यह है कि अगर कभी विपरीत भी हो, जैसा कि सच बोलते में भी कभी परिधि कहती है, मत बोलो, नुकसान होगा; लेकिन तभ भी सच आता है भीतर से और झूठ आता है बाहर से।
भीतर हमेशा मजबूत होता है। इसलिए परिधि ज्यादा देर टिक नहीं पाती, टूट जाती है। लेकिन जब आप झूठ बोलते हैं परिधि की मान कर, तब कभी भी कितना ही बोलते चले जाएं, टिक नहीं सकता। रोज सम्हालें, फिर भी नहीं सम्हलता; क्योंकि भीतर गहरे में आप जानते ही हैं कि यह झूठ है। वह हजार तरह से निकलने की कोशिश करता है। इसलिए जो आदमी झूठ बोलता है वह भी किसी से बता देता है कि यह झूठ है।
आप जानते हैं क्यों? हम सब अपने इंटिमेसीज रखते हैं, आंतरिकताएं रखते हैं, जहां हम सब बता देते हैं। उससे मन हलका होता है। नहीं बता पाए दुनिया को, कोई फिकर नहीं, अपनी पत्नी को तो बता दिया! इससे राहत मिलती है। वह जो सच है भीतर, धक्के दे रहा है। उसे प्रकट करो। नहीं है हिम्मत कि सारी दुनिया को प्रकट कर दें, तो किसी को तो बता पाते हैं।
इस दुनिया में उस आदमी से अकेला कोई भी नहीं, जिसके कोई भी इतना निकट नहीं है, जिससे कम से कम वह झूठ बता सके कि जो-जो मैं गलत कर रहा हूं, वह यह है। मनोवैज्ञानिक तो कहते हैं कि प्रेम का लक्षण ही यह है कि जिसके सामने तुम पूरे सच्चे प्रकट हो जाओ। अगर एक भी ऐसा आदमी नहीं है जगत में, जिसके सामने आप पूरे नग्न हो सकते हैं अंतःकरण से, तो आप समझना आपको प्रेम का कोई अनुभव नहीं हुआ है।
लेकिन जो आदमी सारे जगत के सामने अंतःकरण से नग्न हो सकता है, उसको प्रार्थना का अनुभव हुआ है। एक व्यक्ति के सामने भी आप पूरे सच हो जाते हैं तो जो क्षणभर को राहत मिलती है, जो सुगंध आती है, जो ताजी हवाएं दौड़ जाती हैं प्राणों के आर पार, वे भी काफी हैं। लेकिन जब कोई व्यक्ति समस्त जगत के सामने सच हो जाता है, जैसा है, वैसा ही हो जाता है, तब उसके जीवन में दुर्गंध का कोई उपाय नहीं है।
महावीर धर्म कहते हैं, स्वभाव की सत्यता को, जैसा है भीतर वैसा ही। कोई टेढ़ा-मेढ़ा नहीं। ठीक वैसा ही, नग्न जैसे दर्पण के सामने कोई खड़ा हो। ऐसा जो सहज है भीतर, वह जगत के सामने प्रकट हो जाए। इस अभिव्यक्ति का, सहज अभिव्यक्ति का जो अंतिम फल है वह है, मृत्यु मोक्ष बन जाती है। और हमारे समस्त झूठों के संग्रह का जो अंतिम फल है, पूरा जीवन एक असत्य, अप्रामाणिक अन-आथेंटिक यात्रा हो जाती है। चलते बहुत है, पहुंचते कहीं भी नहीं। दौड़ते बहुत हैं, मंजिल कोई भी हाथ नहीं आती। सिर्फ मरते हैं। जीवन कहीं पहुंचाता नहीं, सिर्फ भटकाता है। जो रात और दिन एक बार अतीत की ओर चले जाते हैं, वे फिर कभी वापस नहीं लौटते। जो मनुष्य अधर्म करता है, उसके वे रात-दिन बिल्कुल निष्फल जाते हैं। लेकिन जो मनुष्य धर्म करता है, उसके वे रात-दिन सफल हो जाते हैं।
महावीर के लिए सफलता का क्या अर्थ है? बैंक बैलेंस? कि कितने लोग आपको मानते हैं? कि कितने अखबार आपकी तस्वीर छापते हैं? कि कितनी नोबल प्राइज आपको मिल जाती हैं? नहीं, महावीर इसे सफलता नहीं कहते। थोडा सा उनकी जिंदगी देखें जिनको नोबल प्राइज मिलती है। उनमें से अधिक आत्महत्या कर लेते हैं। जो आत्महत्या नहीं करते, वे मरे-मरे जीते हैं।

अर्नेस्ट हेमिंग्वे का नाम सुना होगा। कौन इतनी सफलता पाता है? नोबल प्राइज है, धन है, प्रतिष्ठा है, सारे जगत में नाम है। बडा कोई लेखक न था उसके समय में। लेकिन अर्नेस्ट हेमिंग्वे अंत में आत्महत्या कर लेता है। बड़ी अदभुत सफलता है। बाहर इतनी सफलता और भीतर इतनी पीड़ा है कि आत्महत्या कर लेनी पड़ती है। अपने को सहना मुश्किल हो जाता है, तभी तो कोई आत्महत्या करता है। जब अपने को बर्दाश्त करना आसान नहीं रह जाता, एक-एक पल, एक-एक घड़ी आदमी अपने को भारी पड़ने लगता है, तभी तो मिटाता है!
तो जिसको इतनी सफलता है चारों तरफ, इतना यश, गौरव है, वह भी भीतर इतनी दिक्कत में पड़ा है! भीतर की धुरी टूट गई है। सारी दुनिया तारीफ कर रही है चकों की, धुरी तो दुनिया को दिखाई नहीं पड़ती, वह तो भीतर है, स्वयं को दिखाई पड़ती है। सारी दुनिया चांदी के वर्क, सोने के वर्क लगा रही है चाकों पर; और सारी दुनिया कह रही है, क्या अदभुत चके हैं, कितनी-कितनी ऊबड़-खाबड़ यात्राएं कीं! और भीतर धुरी टूट गई, वह गाड़ी ही जानती है कि अब क्या होना है! इन चकों पर लगे हुए सितारे काम नहीं पड़ेंगे। अंत में तो धुरी ही... उस धुरी की सफलता महावीर के लिए क्या हो सकती है? महावीर के लिए सफलता एक ही है।
समय तो बीत जाता है। उस समय में हम दो काम कर सकते है--या तो उस समय में
हम अपनी आत्मा को इकट्ठा कर सकते हैं, या उस समय में हम अपनी आत्मा को बिखेर सकते हैं, तोड़-तोड़, टुकड़े-टुकड़े कर सकते हैं।
समय तो बीत जाएगा, फिर लौट कर नहीं आता, लेकिन उस समय में हमने जो किया है, वह हमारे साथ रह जाता है। वह कभी नहीं खोता इस बात को ठीक से समझ लें। समय तो कभी नहीं लौटता, लेकिन समय में जो घटता है, वह कभी नहीं जाता।
वह सदा साथ रह जाता है। तो मैंने क्या किया है समय में, उससे मेरी आत्मा निर्मित होती है। महावीर ने तो आत्मा को समय का नाम ही दे दिया है। महावीर ने तो कहा है, आत्मा, यानी समय। ऐसा किसी ने भी दुनिया में नहीं कहा।
क्योंकि महावीर ने कहा कि समय तो खो जाएगा, लेकिन समय के भीतर तुमने क्या किया है, वही तुम्हारी आत्मा बन जाएगी, वही तुम्हारा सृजन है।
तो हम समय के साथ विध्वंसक हो सकते हैं, सृजनात्मक हो सकते हैं। विध्वंसक का अर्थ है कि हम जो भी कर रहे हैं उससे हमारी आत्मा निर्मित नहीं हो रही है। झूठ बोलने से एक आदमी की आत्मा निर्मित नहीं होती। चोरी करने से आत्मा निर्मित नहीं होती। धन मिल सकता है, झूठ बोलने से यश मिल सकता है। सच तो यह है कि बिना झूठ बोले यश पाना बड़ा मुश्किल है। बिना चोरी किए धन पाना बहुत मुश्किल है। जब धन मिलता है तो निन्यानबे प्रतिशत चोरी के कारण मिलता है, एक प्रतिशत शायद बिना चोरी के मिलता हो। जब प्रतिष्ठा मिलती है तो निन्यानबे प्रतिशत झूठ, प्रचार से मिलती है; एक प्रतिशत शायद, उसका कोई निश्चय नहीं है।
एक बात तय है कि अधर्म से जो मिलता है, उससे आपकी आत्मा निर्मित नहीं होती। अधर्म से जो भी मिलता है, वह आत्मा की कीमत मिलता है। बाहर तो कुछ मिलता है, भीतर कुछ खोना पड़ता है। हम हमेशा मूल्य चुकाते हैं।
जब आप झूठ बोलते हैं, तो मैं इसलिए नही कहता झूठ मत बोलें, कि इससे दूसरे को नुकसान होगा। दूसरे को होगा कि नहीं होगा, यह पक्का नहीं है। आपको निश्चित हो रहा है, यह पक्का है। दूसरा अगर समझदार हुआ, तो आपके झूठ से कोई नुकसान नहीं होने वाला है; और दूसरा अगर नासमझ है, तो आपके सत्य से भी नुकसान हो सकता है।
दूसरा महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण आप है। अंततः जब आप कुछ भी गलत
कर रहे हैं, तो आप भीतर आत्मा के मूल्य में चुका रहे हैं; व्यर्थ का एक कंकड़, इकट्ठा कर रहे हैं और भीतर एक आत्मा का खंड खो रहे हैं। महावीर इसको असफलता कहते हैं कि एक आदमी जीवन में सब कुछ इकट्ठा कर ले और आखिर में पाए, कि खुद की धुरी टूट गई, सब पा ले और आखिर में पाए, कि खुद को खोकर पाया है यह, तब मृत्यु के क्षण में जो पछतावा होता है, लेकिन तब समय वापस नहीं आ सकता। पुनर्जन्म की सारी भारतीय धारणाएं इसीलिए हैं कि पिछला समय तो वापस नहीं आ सकता। नया समय आपको दुबारा मिलेगा। पुराने समय को लौट आने का कोई उपाय नहीं, लेकिन नया जन्म मिलेगा। फिर से नया समय मिलेगा। लेकिन

जिन्होंने पुराने समय में मजबूत आदतें निर्मित कर ली है, संस्कार भारी कर लिए हैं, वे नये समय का फिर से वैसा ही उपयोग करेंगे।
थोड़ा सोचें, अगर कोई आपसे कहे कि आपको हम फिर से जन्म दे देते हैं; आपका क्या करने का इरादा है? तो आप क्या करेंगे? सोचें थोड़ा, तो आप पाएंगे कि जो आपने अभी किया है, थोड़ा बहुत माडिफाइड, इधर-उधर थोड़ा बहुत हेर-फेर, पत्नी थोड़ी और अच्छी नाकवाली चुन लेंगे, कि मकान थोड़ा और नया डिजाइन का बना लेंगे। करेंगे क्या?
मुल्ला नसरुद्दीन से मरते वक्त किसी ने पूछा था कि फिर से जन्म मिले
तो क्या करोगे? तो उसने कहा, जो पाप मैंने बहुत देर से शुरू किए, वे जल्दी शुरू कर दूंगा, क्योंकि जो पाप मैंने किए, उनके लिए मुझे कोई पछतावा नहीं होता। जो मैं नहीं कर पाया हूं, उनका हमेशा मुझे पछतावा रहता है।
आप ही ख्याल करना, पाप का पछतावा बहुत कम लोगों को होता है। जो आप पाप नहीं कर पाए, उसका पछतावा सदा बना रहता है। और करके पछताना उतना बुरा नहीं है, न कर के पछताना बिल्कुल व्यर्थ है।
कभी आपने ख्याल किया कि जो-जो आप नहीं कर पाए हैं, जो चोरी नहीं कर पाए, उसके लिए भी पछता रहे हैं। जो झूठ नहीं बोल पाए उसके लिए भी पछताते हैं। जो बेईमानी अगर कर लेते! ... तो अभी कहीं के गवर्नर होते, या कहीं चीफ मिनिस्टर होते, नहीं कर पाए। नाहक जेल गए और आए। जरा सी तरकीब लगा लेते, तो मन पीड़ा झेलता चला जाता है।
अगर आपको नया समय भी मिले, तो आप पुनरूक्ति ही करेंगे; क्योंकि आपको मूल ख्याल में नहीं है कि आपने जो किया, वह क्यों किया? वह अहंकार के कारण आपने गलत रास्ता चुना। अगर अहंकार मौजूद है, आप फिर गलत रास्ता चुनेंगे। फिर गलत रास्ता चुनेंगे।
अहंकार प्रवृत्ति है--गलत रास्ता चुनने की। अगर अहंकार खो जाए, तो आप समय का उपयोग कर सकते हैं। इसलिए महावीर ने अंतिम सूत्र में बात कही-- "जब तक बुढ़ापा नहीं सताता, जब तक व्याधियां नहीं सतातीं, जब तक इंद्रियां अशक्त नहीं होतीं, तब तक धर्म का आचरण कर लेना चाहिए। बाद में कुछ भी नहीं होगा।"
यहां हिंदू और जैन विचार में एक बहुत मौलिक भेद है। हिंदू विचार सदा
से मानता रहा है कि संन्यास, धर्म, ध्यान, योग सब बुढ़ापे के लिए है। अगर महावीर ने इस विचार में कोई बड़ी से बड़ी क्रांति पैदा की तो इस सुत्र में है। वह यह कि यह बुढ़ापे के लिए नहीं है।
बड़े मजे की बात है कि अधर्म जवानी के लिए है, और धर्म बुढ़ापे के लिए; भोग जवानी के लिए, और योग बुढ़ापे के लिए। क्यों? क्या योग के लिए किसी शक्ति की जरूरत नहीं है? जब भोग तक के लिए शक्ति की जरूरत है, तो योग के लिए शक्ति की जरूरत नहीं है? लेकिन उसका कारण है--उसका कारण है, और वह कारण यह है कि हम भलीभांती जानते हैं, कि भोग तो बुढ़ापे में किया नहीं जा सकता, योग देखेंगे। हो गया तो ठीक है, न हुआ तो क्या हर्ज है। भोग छोड़ा नहीं जा सकता, योग छोड़ा जा सकता है। तो भोग तो अभी कर लें और योग को स्थगित रखें। जब भोग करने योग्य न रह जाएं, तब योग कर लेंगे।
लेकिन ध्यान रखना, वही शक्ति, जो भोग करती है, वही शक्ति योग करती है। दुसरी कोई शक्ति आपके पास है नहीं। आदमी के पास शक्ति तो एक ही है; उसी से वह भोग करता है, उसी से वह योग करता है। इसलिए महावीर की दृष्टि बड़ी वैज्ञानिक है। महावीर कहते हैं कि जिस शक्ति से भोग किया जाता है, उसी से तो योग किया जाता है। वही जो वीर्य, वह जो ऊर्जा संभोग बनती है, वही वीर्य, वही ऊर्जा, तो समाधि बनती है। जो मन भोग का चिंतन करता है, वही मन तो ध्यान करता है। जो शक्ति क्रोध में निकलती है, वही शक्ति तो क्षमा में खिलती है। उसमें फर्क नहीं है, शक्ति वही है। शक्ति हमेशा तटस्थ है, न्यूट्रल है। आप क्या करते हैं, इस पर निर्भर करता है।
एक आदमी अगर ऐसा कहे कि धन मेरे पास है, उसका उपयोग मैं भोग के लिए करूंगा, और जब धन मेरे पास नहीं होगा तब जो बचेगा, उसका उपयोग दान के लिए करूंगा।

मुल्ला नसरुद्दीन मरा तो उसने आपनी वसीयत लिखी। वसीयत में उसने लिखवाया अपने वकिल को कि लिखो, मेरी आधी संपत्ति मेरी पत्नी के लिए, नियमानुसार। मेरी आधी संपत्ति मेरे पांच पुत्रों में बांट दी जाए; और बाद में जो कुछ बचे गरीबों को दान कर दिया जाए। लेकिन वकील ने पूछाः कुल संपत्ति कितनी है? मुल्ला ने कहाः यह तो कानूनी बात है, संपत्ति तो बिल्कुल नहीं है। संपत्ति तो मैं खतम कर चुका हूं। लेकिन वसीयत रहे, तो मन को थोड़ी शांति रहती है; कि कुछ करके आए, कुछ छोड़ कर आए।
करीब-करीब जीवन-ऊर्जा के साथ हमारा यही व्यवहार है।
महावीर कहते हैंः "भोग के जब क्षण हैं, तभी योग के भी क्षण हैं।" भोग
जब पकड़ रहा है, तभी योग भी पकड़ सकता है। इसलिए महावीर कहते हैंः जब बुढ़ापा सताने लगे, तब व्याधियां बढ़ जाएं, और इंद्रियां अशक्त हो जाएं, तब धर्म का आचरण नहीं हो सकता है; तब सिर्फ धर्म की आशा हो सकती है; आचरण नहीं।
आचरण शक्ति मांगता है। इसलिए जिस विचारधारा में, बुढ़ापे को धर्म के आचरण की बात मान लिया गया, उस विचारधारा में बुढ़ापे में सिवाय भगवान से प्रार्थना करने के फिर कोई और उपाय बचता नहीं। इसलिए लोग फिर राम नाम लेते हैं आखिर में। फिर और तो कुछ कर नहीं सकते, कुछ और तो हो ही नहीं सकता है। जो हो सकता था, वह सारी शक्ति गवां दी; जिससे हो सकता था, वह सारा समय खो दिया। जब शक्ति प्रवाह में थी और ऊर्जा जब शिखर पर थी, तब हम कचरा-कूड़ा बीनते रहे। और जब हाथ से सारी शक्ति खो गई, तब हम आकाश के तारे छूने की सोचते हैं। तब सिर्फ हम आंख बांध कर, बंद करके राम नाम ले सकते हैं।
राम नाम अधिकतर धोखा है। धोखे का मतलब? राम नाम में धोखा है, ऐसा नहीं, राम नाम लेने वाले में धोखा है। धोखा इसलिए है कि अब कुछ नहीं कर सकते, अब तो राम नाम ही सहारा है। साधु संन्यासी बिल्कुल समझाते रहते हैं कि यह कलियुग है, अब कुछ कर तो सकते नहीं। अब तो बस राम नाम ही एक सहारा है। लेकिन मतलब इसका वही होता है जो आमतौर से होता है। किसी बात को आप नहीं जानते तो आप कहते हैं, सिर्फ भगवान ही जानता है। उसका मतलब, कोई नहीं जानता। राम नाम ही सहारा है। उसका ठीक मतलब कि अब कोई सहारा नहीं है।
महावीर कहते हैं इसके पहले की शक्तियां खो जाएं, उन्हें रूपांतरित कर लेना। इसके पहले... और बड़े मजे की बात यह है कि जो उन्हें रूपांतरित कर लेता है खोने के पहले, शायद उसे बुढ़ापा कभी नहीं सतता। क्योंकि बुढ़ापा वस्तुतः शारीरिक घटना कम और मानसिक घटना ज्यादा है। महावीर भी तो शरीर से बूढ़े हो जाएंगे, लेकिन मन से उनकी जवानी कभी नहीं खोती।
इसलिए हमने महावीर का कोई चित्र बुढ़ापे का नहीं बनाया, न कोई मूर्ति बुढ़ापे कि बनाई। क्योंकि वह बनाना गलत है। महावीर बूढ़े हुए होंगे, और उनके शरीर पर झुर्रियां पड़ी होंगी, क्योंकि शरीर किसी को भी क्षमा नहीं करता। और शरीर के नियम हैं, वह महावीर की फिकर नहीं करता, किसी की फिक्र नहीं करता। उनकी आखें भी कमजोर हो गई होंगी, उनके पैर भी डगमगाने लगे होंगे, शायद उन्हें भी लकड़ी का सहारा लेना पड़ा हो--कुछ पता नहीं। लेकिन हमने कभी उनके बुढ़ापे की कोई मूर्ति नहीं बनाई, क्योंकि वह असत्य है। तथ्य तो हो सकती है, फैक्ट तो हो सकती है, लेकिन वह असत्य होगी।
महावीर के बाबत सच्ची खबर उससे न मिलेगी। वह भीतर से सदा जवान बने रहे, क्योंकि बुढ़ापा वासनाओं में खोई गई शक्तियों का भीतरी परिणाम है। बाहर तो शरीर पर बुढ़ापा आएगा, वह समय की धारा में अपने आप घटित हो जाएगा, लेकिन भीतर जब शरीर की शक्तियां वासना में गवांई जाती हैं, अधर्म में, टेढ़े-मेढ़े रास्तों पर जब धुरी टूट जाती है, तब भीतर भी एक बुढ़ापा आता है, एक दीनता।
वासना में बिताए हुए आदमी का जीवन सबसे ज्यादा दुखद बुढ़ापे में हो जाता है। और बहुत कुरूप हो जाता है। क्योंकि धुरी टूट चुकी होती है और हाथ में सिवाय राख के कुछ भी नहीं होता, सिर्फ पापों की थोडी स्मृतियां होती हैं और वह भी सालती है। और समय व्यर्थ गया, उसकी भी पीड़ा कचोटती है।
इसलिए बुढ़ापा हमें सबसे ज्यादा कुरूप मालूम पड़ता है। होना नहीं चाहिए। क्योंकि बुढ़ापा तो शिखर है जीवन का, आखिरी। सर्वाधिक सुंदर होना चाहिए। इसलिए जब कभी कोई बूढ़ा आदमी जिंदगी में गलत रास्तों पर न चल कर

सीधे-सरल रास्तों से चला होता है, तो बुढ़ापा बच्चों जैसा निर्दाष, पुनः हो जाता है। और बच्चे इतने निर्दाष नहीं हो सकते। क्योंकि अज्ञानी हैं। बुढ़ापा एक अनुभव से निखरता और गुजरता है। इसलिए बुढ़ापा जितना निर्दाष हो सकता है--और कभी सफेद बालों का सिर पर छा जाना--अगर भीतर जीवन में भी इतनी शुभ्रता आती चली गई हो, तो उस सौंदर्य की कोई उपमा नहीं है।
जब तक बूढ़ा आदमी सुंदर न हो, तब तक जानना कि जीवन व्यर्थ गया है। जब तक बुढ़ापा सौंदर्य न बन जाए, लेकिन बुढ़ापा कब सौंदर्य बनता है? जब शरीर तो बूढ़ा हो जाता है, लेकिन भीतर जवानी की ऊर्जा अक्षुण्ण रह जाती है। तब इस बुढ़ापे की झुर्रियों के भीतर से वह जवानी की जो अक्षुण्ण ऊर्जा है, जो वीर्य है, जो शक्ति है, जो बच गई, जो रूपांतरित हो गई, उसकी किरणें इन बुढ़ापे की झुर्रियों से बाहर पड़ने लगती हैं, तब एक अनूठे सौंदर्य का जन्म होता है।
इसलिए हमने महावीर, बुद्ध, राम, कृष्ण किसी का भे बुढ़ापे का कोई चित्र नहीं रखा है। अच्छा किया हमने। हम ऐतिहासिक कौम नहीं हैं। हमें तथ्यों की बहुत चिंता नहीं है, हमें सत्यों की फिकर है जो तथ्यों के भीतर छिपे होते हैं, गहरे में छिपे होते हैं। इसलिए हमने उनको जवान ही चित्रित किया है।
महावीर कहते हैं, जब है शक्ति, तब उसे बदल डालो। पीछे पछताने का कोई भी अर्थ नहीं है।

आज इतना ही।
पांच मिनट रुकें, कीर्तन करें, फिर जाएं।

महावीर-वाणी, भाग 1
इक्कीसवां प्रवचन

सत्य सदा सार्वभौम है (सत्य-सूत्र)

निच्चकालऽप्पमत्तेणं, मुसावायविवज्जणं।
भासियव्वं हियं सच्चं, निच्चाऽऽउत्तेण दुक्करं।।
तहेव सावज्जऽणुमोयणी गिरा,
ओहारिणी जा य परोवघायणी।
से कोह लोह भय हास माणवो,
न हासमाणो वि गिरं वएज्जा।।

सदा अप्रमादी व सावधान रहते हुए असत्य को त्याग कर हितकारी सत्य-वचन
ही बोलना चाहिए। इस प्रकार का सत्य बोलना सदा बड़ा कठिन होता है।
श्रेष्ठ साधु पापमय, निश्चयात्मक और दूसरों को दुख देने वाली वाणी न बोलें। इसी प्रकार श्रेष्ठ मानव को क्रोध, लोभ, भय और हंसी-मजाक में भी पापवचन नहीं बोलना चाहिए।

सूत्र के पहले एक दो प्रश्न पूछे गए हैं।
मैंने परसों कहा कि हिंदू विचार संन्यास को जीवन की अंतिम अवस्था की बात मानता है। किन्हीं मित्र को इसे सुन कर अड़चन हुई होगी। मैं निकलता था बाहर, तब उन्होंने पूछा कि हिंदू शास्त्रों में तो जगह-जगह ऐसे वचन भरे पड़े हैं कि जब शक्ति हो, तभी साधना कर लेनी चाहिए!
चलते हुए रास्ते में उनसे ज्यादा नहीं कहा जा सकता था। मैंने उनसे इतना ही कहा कि ऐसे वचन अगर आपको पता हों तो उनका आचरण शुरू देना चाहिए। लेकिन हमारा मन बड़ा अनुदार है, सभी का। हम सभी सोचते हैं कि मेरे धर्म में सब कुछ है। यह अनुदार वृत्ति है। क्योंकि इस पृथ्वी पर कोई भी धर्म पूरा नहीं है, हो भी नहीं सकता। जैसे ही सत्य अभिव्यक्त होता है, अधूरा हो जाता है। और जब यह अधूरा सत्य संगठित होता है तो और भी अधूरा हो जाता है। और जब हजारों लाखों सालों तक यह संगठन जकड़ बनता चला जाता है, तो और भी क्षीण होता चला जाता है।
सभी संगठन अधूरे सत्यों के संगठन होते हैं। इसलिए इस जगत के सारे धर्म मिल कर एक पूरे धर्म की संभावना पैदा करते हैं। कोई अकेला धर्म पूरे धर्म की संभावना पैदा नहीं करता। क्योंकि सभी धर्म सत्यों को अलग-अलग पहलुओं से देखी गई चेष्टाएं हैं।
हिंदू विचार अत्यंत व्यवस्था को स्वीकार करता है। इसलिए हिंदू विचार
ने जीवन को चार हिस्सों में बांट दिया है। ब्रह्मचर्य आश्रम है, गृहस्थ आश्रम है, वानप्रस्थ आश्रम है और फिर संन्यास आश्रम है। यह वड़ी गणित की व्यवस्था है, इसके अपने उपयोग हैं, अपनी कीमत है।
लेकिन जीवन कभी भी व्यवस्था में बंधता नहीं, जीवन सब व्यवस्था को तोड़कर बहता है। इस व्यवस्था को हमने दो नाम दिए हैं, वर्ण और आश्रम। हमने समाज को भी चार हिस्सों में बांट दिया और हमने जीवन को भी चार हिस्सों में बांट दिया। यह बंटाव उपयोगी है।
हिंदू मन को यह कभी स्वीकार नहीं रहा कि कोई जवान आदमी संन्यासी हो जाए, कि कोई बच्चा संन्यासी हो जाए। संन्यास आना चाहिए, लेकिन वह जीवन की अंतिम बात है। इसका अपना उपयोग है, इसका अपना अर्थ है, क्योंकि हिंदू ऐसा मानता रहा है कि संन्यास इतनी बड़ी घटना है कि सारे जीवन के अनुभव के बाद ही खिल सकती है। इसका अपना उपयोग है।
लेकिन महावीर और बुद्ध ने एक क्नांति खड़ी की इस व्यवस्था में। और वह क्रांति यह थी कि संन्यास का फूल कभी भी खिल सकता है। कोई वृद्धावस्था तक रुकने की जरूरत नहीं है। न केवल इतना, बल्कि महावीर ने कहा कि जब युवा है चित्त और जब शक्ति से भरा है शरीर, तभी जो भोग में बहती है ऊर्जा, वह अगर योग की तरफ बहे, तो संन्यास का फूल खिल सकता है।

यह एक दूसरे पहलू से देखने की चेष्टा है, इसका भी अपना मूल्य है।
इसमें बहुत फर्क हैं, और कारण हैं फर्कों के।
इसे हम थोड़ा समझ लें।
हिंदू विचार ब्राह्मण की व्यवस्था है। ब्राह्मण का अर्थ होता है, गणित, तर्क, योजना, नियम, व्यवस्था। जैन और बौद्ध विचार क्षत्रियों के मस्तिष्क की उपज हैं--क्नांति, शक्ति, अराजकता।
जैनियों के चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय हैं। बुद्ध क्षत्रिय हैं। बुद्ध
के पिछले सारे जन्मों की जो और भी कथाएं हैं, वे भी क्षत्रिय की ही हैं। बुद्ध ने जिन और बुद्धों की बात की है, वे भी क्षत्रिय हैं।
क्षत्रिय के सोचने का ढंग ऊर्जा पर निर्भर होता है, शक्ति पर।
ब्राह्मण के सोचने का ढंग अनुभव पर, गणित पर, विचार पर, मनन पर निर्भर होता है। इसलिए ब्राह्मण एक व्यवस्था देता है। क्षत्रिय अराजक होगा। शक्ति सदा अराजक होती है। इसलिए जवान अराजक होते हैं, बूढ़े अराजक नहीं होते। जवान क्रांतिकारी होते हैं, बूढ़े क्रांतिकारी नहीं होते। अनुभव उनकी सारी क्नांति की नोकों को झाड़ देता है। जवान गैर अनुभवी होता है। गैर-अनुभवी होता है, शक्ति से भरा होता है। उसके सोचने के ढंग अलग होते हैं। फिर इतिहासज्ञ कहते हैं, और ठीक कहते हैं कि भारत की यह जो वर्ण-व्यवस्था थी, जिसमें ब्राह्मण सबसे ऊपर था। उसके बाद क्षत्रिय था, वैश्य था, शूद्र था। निश्चित ही, जब भी बगावत होती है किसी विचार, किसी तंत्र के प्रति, तो जो निकटतम होता है, नंबर दो पर होता है, वही बगावत करता है। नंबर तीन और चार के लोग बगावत नहीं कर सकते। इतना फासला होता है कि बगावत का कारण भी नहीं होता।
इसलिए ब्राह्मणों के खिलाफ जो पहली बगावत हो सकती थी, वह क्षत्रियों
से ही हो सकती थी। वे बिल्कुल निकट थे, दूसरी सीढ़ी पर खड़े थे। उनको आशा बनती थी कि वे धक्का देकर पहली सीढ़ी पर हो सकते हैं। शूद्र बगावत नहीं कर सकता था, वह बहुत दूर था, बहुत सीढ़ियां पार करनी थीं। वैश्य बगावत नहीं कर सकता था।
बड़े मजे की बात है, मनुष्य के ऐतिहासिक उत्क्रम में ब्राह्मणों के प्रति पहली बगावत क्षत्रियों से आई। ब्राह्मणों को सत्ता से उतार दिया क्षत्रियों ने। लेकिन आपको पता है कि क्षत्रियों को फिर वैश्यों ने सत्ता से उतार दिया, और अब वैश्यों को शूद्र सत्ता से उतार रहे हैं।
हमेशा निकटतम से होती है क्नांति। जो नीचे था, वह आशान्वित हो जाता है
कि अब मैं निकट हूं सत्ता के, अब धक्का दिया जा सकता है। बहुत दूर इतना फासला होता है कि आशा और आश्वासन भी नही बंधता है।
जैन और बौद्ध, क्षत्रिय मस्तिष्क की उपज हैं। क्षत्रिय जवानी पर भरोसा करता है, शक्ति पर। शक्ति ही सब कुछ है। इसके सब आयामों में प्रयोग हुए, सब आयामों में। महावीर ने इसका ही प्रयोग साधना में किया, और महावीर ने कहा कि जब ऊर्जा अपने शिखर पर है, तभी उसका रूपांतरण कर लेना उचित है। क्योंकि रूपांतरण करने के लिए भी शक्ति की जरूरत है। और जब शक्ति क्षीण हो जाएगी तब कई दफा धोखा भी पैदा होता है। जैसे, बूढ़ा आदमी सोच सकता है कि मैं ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो गया।
असमर्थता ब्रह्मचर्य नहीं है। अगर ब्रह्मचर्य को उपलब्ध कोई होता है,
तो युवा होकर ही हो सकता है। क्योंकि तभी कसौटी है, तभी परीक्षा है। वृद्ध होकर ब्रह्मचर्य होना, ब्रह्मचरी होना मजबूरी हो जाती है। साधन खो जाते हैं। जब साधन खो जाते हैं तो साधना का कोई अर्थ नहीं रह जाता। जब साधन होते हैं, उत्तेजना होती है, कामपिटिशन होता है, जब ऊर्जा दौड़ती हुई होती है किसी प्रवाह में, तब उसके रुख को बदल लेना साधना है।
इसलिए महावीर का सारा बल युवा शक्ति पर है।
दूसरी बात, महावीर और बुद्ध दोनों की क्नांति वर्ण और आश्रम के खिलाफ है। न तो वे समाज में वर्ण को मानते हैं कि कोई आदमी बंटा हुआ है खण्ड-खण्ड में, न वे व्यक्ति के जीवन में बंटाव मानते हैं कि व्यक्ति बंटा हुआ है खंड-खंड में।

वे कहते हैं, जीवन एक तरलता है। और किसी को वृद्धावस्था में अगर संन्यास का फूल खिला है, तो उसे समाज का नियम बनाने की कोई भी जरूरत नहीं है। किसी को जवानी में भी खिल सकता है। किसी को बचपन में भी खिल सकता है। इसे नियम बनाने की कोई भी जरूरत नहीं है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति बेजोड़ है।
इसे थोड़ा समझ लें।
हिंदू चिंतन मानकर चलता है कि सभी व्यक्ति एक जैसे हैं। इसलिए बांटा
जा सकता है। जैन और बौद्ध चिंतन मानता है कि व्यक्ति बेजोड़ हैं, बांटे नहीं जा सकते। हर आदमी बस अपने जैसा ही है। इसलिए कोई नियम लागू नहीं हो सकता। उस आदमी को अपना नियम खुद ही खोजना पड़ेगा। और इसलिए कोई व्यवस्था ऊपर से नहीं बिठाई जा सकती। न तो हम समाज को बांट सकते हैं कि कौन शूद्र है और कौन ब्राह्मण है। क्योंकि महावीर जगह-जगह कहते हैं कि मैं उसे ब्राह्मण कहता हूं, जो ब्रह्म को पा ले। उसको ब्राह्मण नहीं कहता जो ब्राह्मण घर में पैदा हो जाए। मैं उसे शूद्र कहता हूं, जो शरीर की सेवा में ही लगा रहे। उसे शूद्र नहीं कहता जो शूद्र के घर पैदा हो आए। जो शरीर की ही सेवा में और शृंगार में लगा रहता है चौबीस घंटे, वह शूद्र है।
बड़े मजे की बात है, इसका अर्थ हुआ कि एक अर्थ में हम सभी शूद्र की भांति पैदा होते हैं, सभी। जरूरी नहीं है कि हम सभी ब्राह्मण की भांति मर सकें। मर सकें तो सौभाग्य है। सफल हो गए।
और फिर एक-एक व्यक्ति अलग है, क्योंकि महावीर कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति हजारों-हजारों जन्मों की यात्रा के बाद आया है। इसलिए बच्चे को बच्चा कहने का क्या अर्थ है? उसके पीछे भी हजारों जीवन का अनुभव है। इसलिए दो बच्चे एक जैसे बच्चे नहीं होते। एक बच्चा बचपन से ही बूढ़ा हो सकता है। अगर उसे अपने अनुभव का थोड़ा-सा भी स्मरण हो तो बचपन में ही संन्यास घटित हो जाएगा। और एक बूढ़ा भी बिल्कुल बचकाना हो सकता है। अगर उन्हें इसी जीवन की कोई समझ पैदा न हुई हो, तो बुढ़ापे में भी बच्चों जैसा व्यवहार कर सकता है। तो महावीर कहते हैं, यात्रा है लंबी। सभी हैं बूढ़े; एक अर्थ में सभी को अनुभव है। इसलिए जब ऊर्जा ज्यादा हो तब इस अनंत-अनंत जीवन के अनुभव का उपयोग करके जीवन को रूपांतरित कर लेना चाहिए।
लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि हिंदू परिवारों में युवा संन्यासी नहीं हुए। लेकिन वे अपवाद हैं। और जो महत्वपूर्ण संन्यासी हिंदू परंपरा में हुए, शंकर जैसे लोग, वे सब बुद्ध और महावीर के बाद हुए।
संन्यास की जो धारा शंकर ने हिंदू विचार में चलाई, उस पर महावीर और बुद्ध का अनिवार्य प्रभाव है। क्योंकि हिंदू विचार से मेल नहीं खाती कि जवान आदमी संन्यास ले ले। इसलिए शंकर के जो विरोधी हैं, रामानुज, वल्लभ, निंबार्क, वे सब कहते हैं कि वे प्रच्छन्न बौद्ध हैं, छिपे हुए बौद्ध हैं। वे असली हिंदू नहीं है। ठीक हिंदू नहीं हैं, क्योंकि सारी गड़बड़ कर डाली है। बड़ी गड़बड़ तो यह कर दी कि आश्रम की व्यवस्था तोड़ डाली। शंकर तो बच्चे ही थे, जब उन्होंने संन्यास लिया। महावीर तो जवान थे, जब उन्होंने संन्यास लिया। शंकर तो बिल्कुल बच्चे थे। तैंतीस साल में तो उनकी मृत्यु ही हो गई। लेकिन कोई विचार पर किसी की बपौती भी नहीं होती कि कोई विचार जैन का
है कि बौद्ध का है। विचार तो जैसे ही मुक्त आकाश में फैल जाता है, सब का हो जाता है। लेकिन फिर भी स्त्रोत का अनुग्रह सदा स्वीकार होना चाहिए, और इतनी उदारता होनी चाहिए कि हम स्वीकार करें कि कौन सी बात किसने दान दी है।
युवक संन्यासी हो, और जीवन जब प्रखर शिखर पर है ऊर्जा के, तब रूपांतरण शुरू हो जाए। इस दिशा में जो दान है, वह जैन और बौद्धों का है। इसके खतरे भी हैं। हर सुविधा के साथ खतरा जुड़ा होता है। हर उपयोगी बात के साथ गड्ढा भी जुड़ा होता है खतरे का।
निश्चित ही, जब युवा व्यक्ति संन्यास लेंगे तो संन्यास में खतरे बढ़ जायेंगे। जब बूढ़ा आदमी संन्यास लेगा, संन्यास में खतरे नहीं होंगे। बूढ़ें को संन्यासी होना मुश्किल है, लेकिन अगर बूढ़ा संन्यासी होगा तो खतरे बिल्कुल नहीं हैं। इसलिए महावीर को अतिशय नियम निर्मित करने पड़े।

क्योंकि जब युवा संन्यासी होंगे, तो खतरे निश्चित-निश्चित बढ़ जानेवाले हैं। युवक और युवतियां जब संन्यासी होंगे और उनकी वासना प्रबल वेग में होगी, तब खतरे बहुत बढ़ जानेवाले हैं। इसलिए एक बहुत पूरी की पूरी आयोजना करनी पड़ी नियमों की कि ये खतरे काटे जा सकें।
इसलिए जैन विचार कई दफा बहुत सप्रेसिव, बहुत दमनकारी मालूम होता है।
वह है नहीं।
दमनकारी इसीलिए मालूम होता है कि एक-एक चीज पर अंकुश लगाना पड़ा है।
क्योंकि इतनी बढ़ती हुई उद्दाम वासना है, अगर इस पर चारों तरफ से व्यवस्था न हुई तो संभावना इसकी कम है कि योग की तरफ बहे। संभावना यह है कि यह भोग की तरफ बह जाए।
इसलिए हिंदू विचार आज के युग को ज्यादा अपील करेगा; क्योंकि उसमें इतना नियम का जोर नहीं है; क्योंकि वृद्ध अगर संन्यासी होगा तो उसका वृद्ध होना ही, उसकी समझ ही नियम बन जाएगी। उस पर बहुत अतिशय, चारों तरफ बाड़ लगाने की जरूरत नहीं है। उसे छोड़ा जा सकता है, उसकी समझ पर। उससे कहने की जरूरत नहीं है कि ऐसा मत करना, ऐसा मत करना, ऐसा मत करना--हजार नियम बनाने की जरूरत नहीं है।
बुद्ध से आनंद पूछता है कि स्त्रियों की तरफ देखना कि नहीं? तो बुद्ध कहते हैं, कभी नहीं
देखना। आनंद पूछता है, और अगर मजबूरी में अनायास, आकस्मिक स्त्री दिखाई ही पड़ जाए, तो? तो बुद्ध कहते हैं, बोलना मत। आनंद कहता है, ऐसी हालत हो, स्त्री बीमार हो या कोई ऐसी स्थिति बन जाए कि बोलना ही पड़े? तो बुद्ध कहते हैं, होश रखना कि किससे बोल रहे हो।
ऐसा विचार हिंदू चिंतन में कहीं भी खोजे न मिलेगा। कहीं भी खोजे न मिलेगा। लेकिन उसका कारण है। यह युवकों को दिया गया संदेश है। हिंदू चिंतन ने तो क्रमबद्ध व्यवस्था की है--ब्रह्मचर्य। यह ब्रह्मचर्य बुद्ध और महावीर के ब्रह्मचर्य से भिन्न है। कभी-कभी शब्द भी बड़ी दिक्कत देते हैं।
ब्रह्मचर्य पहला है हिदूं विचार में। यह ब्रह्मचर्य गृहस्थ के विपरीत नहीं है। बुद्ध और महावीर का ब्रह्मचर्य गृहस्थ के विपरीत है। हिंदू ब्रह्मचर्य गृहस्थ की तैयारी है, उसके विपरीत नहीं है। युवक को ब्रह्मचारी होना चाहिए, इसलिए नहीं कि वह योग में चला जाए, बल्कि इसलिए कि शक्ति संगृहीत हो, इकट्ठी हो, तो भोग की पूरी गहराई में उतर जाए; यह बड़ा अलग मामला है। इसलिए ब्रह्मचर्य पहले। पच्चीस वर्ष तक युवक ब्रह्मचारी हो, इसलिए नहीं कि योग में चला जाए, अभी योग बहुत दूर है, बल्कि इसलिए कि ठीक से भोग में चला जाए। क्योंकि हिंदू मानता ही यह है कि अगर ठीक से कोई भोग में चला जाय, तो भोग से छुटकारा हो जाता है।
जिस चीज को भी हम ठीक से जान लेते हैं, वह व्यर्थ हो जाती है। अगर ठीक
से न जान पाएंतो वह पीछा करती है। अगर बुढ़ापे में भी आपको कामवासना पीछा करती हो तो उसका मतलब ही यह है कि आप कामवासना जान न पाए, आप पूरी ऊर्जा न लगा पाए कि अनुभव पूरा हो जाता, कि आप उसके बाहर निकल आते। जब अनुभव पूरा होता है, हम उसके बाहर हो जाते हैं। जब अधूरा होता है, हम अटके रह जाते हैं। तो ब्रह्मचर्य इसलिए है कि शक्ति पूरी इकट्ठी हो जाए, और प्रबल वेग से आदमी गृहस्थ में प्रवेश कर सके, वासना में प्रवेश कर सके, प्रबल वेग से। पच्चीस वर्ष, पचास वर्ष तक वह वासना के जीवन में पूरी तरह डूबा रहे, पूरी तरह समग्रता से। यही उसे बाहर निकालने का कारण बनने लगेगा।
और तब पच्चीस वर्ष तक वह जंगल की तरफ मुंह कर ले, वानप्रस्थ हो जाए। रहे घर में, अभी जंगल चला न जाए, क्योंकि एक दम से घर और जंगल जाने में हिंदू विचार को लगता है, छलांग हो जाएगी, क्रमिक न होगा। और जो आदमी एकदम घर से जंगल में चला गया, वह घर को जंगल में ले जाएगा। उसके मस्तिष्क में जंगल... जंगल बाहर होगा, मस्तिष्क में घर आ जाएगा।
हिंदू विचार कहता है, पच्चीस साल तक वह घर पर ही रहे, जंगल की तरफ मुंह रखे। ध्यान जंगल का रखे, रहे घर पर। अगर जल्दी चला जाएगा तो रहेगा जंगल में, ध्यान होगा घर का। पच्चीस साल तक सिर्फ ध्यान को जंगल ले जाए। जब पूरा

ध्यान जंगल पहुंच जाए, तब वह भी जंगल चला जाए, तब वह संन्यासी हो। पिचहत्तर वर्ष की उम्र में संन्यासी हो।
इसके अपने उपयोग हैं। कुछ लोगों के लिए शायद यही प्रीतिकर होगा।
लेकिन हम हैं बेईमान। हम हर सत्य से अपने हिसाब की बातें निकाल लेते हैं। हम सोचेंगे, ठीक, यह हमारे लिए बिल्कुल उपयोगी जंचता है। इसलिए नहीं कि आपके लिए उपयोगी है, बल्कि सिर्फ इसलिए कि इसमें पोस्टपोन, स्थगन करने की सुविधा है। न बचेंगे पिचहत्तर साल के बाद, और न यह झंझट होगी। और घर में ही रहेंगे, रहा वानप्रस्थ, वन की तरफ मुंह रखने की बात, सो वह भीतरी बात है, किसी को उसका पता चलेगा नहीं।
अपने को धोखा हम किसी भी चीज से दे सकते हैं।
फिर महावीर की सारी जो साधना प्रक्रिया है, वह हिंदू साधना प्रक्रिया
से अलग है। और इसलिए महावीर की साधना प्रक्रिया का ही उपयोग करना पड़ेगा, अगर जवान संन्यासी हो तो। क्योंकि तब ऊर्जा के प्रबल वेग को रूपांतरित करने की क्रियाओं का उपयोग करना पड़ेगा।
बूढ़ा सौम्यता से संन्यास में प्रवेश करता है। जवान तूफान, आंधी की तरह संन्यास में प्रवेश करता है। इन सबकी प्रक्रियाएं अलग हैं। एक बात लेकिन तय है कि महावीर और बुद्ध ने युवा जीवन ऊर्जा को संन्यास में बदलने की जो कीमिया है, उसके पहले सूत्र निर्मित किए। वह हिंदू विचार की देन नहीं है। और अगर हिंदू संन्यासी, पीछे युवक संन्यास भी लिए, और युवा संन्यास के आंदोलन भी चलाए शंकराचार्य ने, तो उन पर अनिवार्य रूप से महावीर और बुद्ध की छाप है।
इतना अनुदार नहीं होना चाहिए कि सभी कुछ हमसे ही निकले। परमात्मा सब तरफ है, और परमात्मा हजार आवाजों में बोला है, और सब आवाजें परिपूरक हैं। किसी न किसी दिन हम उस सारभूत धर्म को खोज लेंगे, जो सब धर्मों में अलग-अलग पहलुओं से छिपा है। उस दिन ऐसा कहने की जरूरत न होगी कि हिंदू धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म। ऐसा ही कहने की बात रह जाएगी, धर्म की तरफ जाने वाला जैन रास्ता, धर्म की तरफ जाने वाला बौद्ध रास्ता, धर्म की तरफ जाने वाला हिंदू रास्ता; ये सब रास्ते हैं ओैर धर्म की तरफ जाते हैं।
इसलिए हम अपने मुल्क में इनको संप्रदाय कहते थे, धर्म नहीं। कहना भी नहीं चाहिए। धर्म तो एक ही हो सकता है, संप्रदाय अनेक हो सकते हैं। संप्रदाय का अर्थ है, मार्ग। धर्म का अर्थ है, मंजिल।
एक और मित्र ने पूछा है कि अधर्म का आचरण मनुष्य इसलिए करता है कि मैं सामान्य नहीं हूं, विशेष हूं। उससे अहंकार को पुष्टि मिलती है। क्रोध से दूर रहने का, अस्तित्व जैसा है वैसा स्वीकार करने का, साधना करने का, मैं भी यथाशक्ति प्रयत्न करता हूं। इन कार्यों में आनंद भी मिलता है। हो सकता है, उसमें अहंकार की पुष्टि भी होती हो। अहंकार को विलीन करने की प्रक्रिया में भिन्न प्रकार का अहंकार भी समर्पित हो जाता है। सामान्य मनुष्य अहंकार के सिवाय और है क्या? क्या यह संभव है कि अहंकार का ही किसी इष्ट दिशा में संशोधन होते-होते आखिर में कुछ प्राप्त करने योग्य तत्व बच रह जाए?
ये दो साधना पद्धतियां हैं। एक, कि अहंकार को हम शुद्ध करते चले जायें। क्योंकि जब अहंकार शुद्धतम हो जाता है तो बचता नहीं। शुद्ध होते- होते, होते-होते ही विलीन हो जाता है। एक। इसके सारे मार्ग अलग हैं कि हम अहंकार को कैसे शुद्ध करते चले जायें। खतरे भी बड़े हैं। क्योंकि अहंकार शुद्ध हो रहा है या परिपुष्ट हो रहा है, इसकी परख रखनी बड़ी कठिन है।
दूसरा रास्ता है, हम अहंकार को छोड़ते चले जायें, शुद्ध करने की कोशिश
ही न करें, सिर्फ छोड़ने की कोशिश करें। जहां-जहां दिखाई पड़े, वहां-वहां त्याग करते जायें। इसके भी खतरे हैं। खतरा यह है कि हमारे भीतर एक दूसरा अहंकार जन्म जाए कि मैने अहंकार का त्याग कर दिया है, कि मैं ऐसा हूं, जिसके पास अहंकार बिल्कुल नहीं है।
साधना निश्चित ही खतरनाक है। जब भी आदमी किसी दिशा में बढ़ता है तो भटकने के डर भी निश्चित हो जाते हैं। और कोई रास्ता ऐसा बंधा हुआ रास्ता नहीं है कि सुनिश्चित हो, कि आप जाएंऔर मंजिल पर पहुंच ही जायें। क्योंकि

इस अज्ञात के लोक में आपके चलने से ही रास्ता निर्मित होता है। रास्ता पहले से निर्मित हो तब तो आसानी हो जाए। यह कोई रेल की पटरियों जैसा मामला हो कि डिब्बों के भटकने का उपाय ही नहीं है, पटरी पर दौड़ते चले जायें, तब तो ठीक है।
यह रेल की पटरियों जैसा मामला नहीं है। यहां रास्ता, लोह-पथ निर्मित नहीं है कि आप एक
दफे पटरी पर चढ़ गए तो फिर उतरने का उपाय नहीं है, चलते ही चले जायेंगे
और मंजिल पर पहुंचेंगे ही। नियति इतनी स्पष्ट नहीं है।
और अच्छा है कि नहीं है, इसलिए जीवन में इतना रस, और रहस्य और आनंद है। अगर रेल की पटरियों की तरह आप परमात्मा तक पहुंच जाते हों, तो परमात्मा भी एक व्यर्थता हो जाएगी।
खोजना पड़ता है। सत्य की खोज, परमात्मा की खोज, मूलतः पथ की खोज है। और
पथ भी अगर निर्मित हों बहुत से, तो भी आसान हो जाए कि हम अ को चुनें, ब को चुनें, स को चुनें। एक
दफा तय कर लें और फिर चल पड़ें।
पथ की खोज, पथ का निर्माण भी है। आदमी चलता है, और चल कर ही रास्ता बनाता है, इसलिए खतरे हैं। इसलिए भटकने के सदा उपाय हैं। पर अगर सचेतना हो, तो सभी विधियों से जाया जा सकता है। अगर अप्रमाद हो, अगर होश हो, जागरूकता हो, तो कोई भी विधि का उपयोग किया जा सकता है। और अगर होश न हो, तो सभी विधियां खतरे में ले जायेंगी। इसलिए एक तत्व अनिवार्य है--रास्ता कोई हो, मार्ग कोई हो, विधि कोई हो--होश, अवेयरनेस अनिवार्य है।
अगर आप अहंकार को शुद्ध करने में लगे हैं तो अहंकार के शुद्ध करने का क्या अर्थ होता है? पापी का अहंकार होता है कि मुझसे बड़ा डाकू कोई भी नहीं है। यह भी एक अहंकार है। साधु का अहंकार होता है कि मुझसे बड़ा साधु कोई भी नहीं है। पापी का अहंकार कहें कि काला अहंकार है। साधु का अहंकार कहें कि शुभ्र अहंकार है। लेकिन अगर साधु को होश न हो, डाकू को तो होगा ही नहीं होश, नहीं तो डाकू होना मुश्किल है। साधु को अगर होश न हो, और यह बात मन को ऐसा ही रस देने लगे कि मुझसे बड़ा साधु कोई नहीं है, जैसा कि डाकू को देती है, कि मुझसे बड़ा डाकू कोई नहीं है, तो यह भी काला अहंकार हो गया, यह भी अशुद्ध हो गया।
मुझसे बड़ा साधु कोई नहीं, इसमें अगर साधुता पर जोर हो और होश रखा जाए,
तो अहंकार शुद्ध होगा। इसमें "मुझसे बड़ा" इस पर जोर रखा जाए, तो... तो अहंकार अशुद्ध होगा। मुझसे बड़ा साधु कोई नहीं, इस भाव में साधुता ही महत्वपूर्ण हो, और मुझे यह भी पता चलता रहे कि जब तक मुझे यह लग रहा है कि मुझसे बड़ा कोई नहीं, तब तक मेरी साधुता में थोड़ी कमजोरी है। क्योंकि साधु को यह भी पता चलना कि मैं बड़ा हूं, असाधु का लक्षण है।
कोई मुझसे छोटा है, तो यह हिंसा है। इसको धीरे-धीरे छोड़ते जाना है। एक दिन साधु ही रह जाए, मुझसे बड़ा, मुझसे छोटा कोई भी न रह जाए। मैं साधु हूं, इतना ही भाव रह जाए तो अहंकार और शुद्ध हुआ।
लेकिन अभी मैं साधु हूं, तो असाधु से मेरा फासला बना हुआ है। अभी असाधु के प्रति मैं सदय नहीं हूं। अभी असाधु मुझे अस्वीकार है। अभी कहीं गहरे में असाधु के प्रति निंदा है, कंडेमनेशन है। इसे भी चला जाना चाहिए, नहीं तो मैं साधु पूरा नहीं हूं।
तो जिस दिन मुझे यह भी पता न चले कि मैं साधु हूं कि असाधु हूं, इतना ही
रह जाए कि "मैं हूं", साधु असाधु का फासला गिर जाए, तो अहंकार और भी शुद्ध हुआ।
लेकिन, मैं हूं, इसमें भी अभी दो बातें रह गईं--"मैं" और "होना"। यह मैं
भी बाधा है, यह भी वजन है। यह होने को जमीन से बांध रखता है। अभी पंख पूरे नहीं खुल सकते, अभी उड़ नहीं सकते, अभी आकाश में पूरा नहीं उड़ा जा सकता।
इस मैं को भी आहिस्ता-आहिस्ता विलीन कर देना है, और इतना ही रह जाए कि हूं, होना मात्र रह जाए, जस्ट बीइंग, इतना भर ख्याल रह जाए कि "हूं", तो यह अहंकार की शुद्धतम अवस्था है। लेकिन यह भी अहंकार की अवस्था है। जब यह भी

खो जाता है कि हूं या नहीं। जब मात्र अस्तित्व रह जाता है, तब अहंकार से हम आत्मा में छलांग लगा गए।
यह शुद्ध करने की बात हुई। लेकिन शुद्ध करने में भी छोड़ते तो जाना ही होगा। और एक होश सदा रखना होगा कि जो भी मेरा भाव है, उस भाव में आधा हिस्सा गलत होगा, आधा हिस्सा सही होगा। तो पचास प्रतिशत जो गलत है, वह मैं पचास प्रतिशत सही के लिए कुर्बान करता रहूं, और करता चला जाऊं, जब तक कि एक ही न बच जाए। लेकिन एक जब बचता है, तब भी अहंकार की आखिरी रेखा बच गई; क्योंकि एक का भी दो से फासला तो होता है। जब एक भी न बचे, जब अद्वैत भी न बचे, जब अद्वैत भी खो जाए, जब हम ऐसे हो जाएं, जैसे फूल हैं, जैसे पत्थर हैं, जैसे आकाश है, हैं लेकिन इसका भी कोई पता नहीं कि "हैं", जब इतनी सरलता हो जाए भीतर कि दूसरे का सारा बोध खो जाए, तब छलांग आत्मा में लगी।
यह तो शुद्ध करने का उपाय है, लेकिन खतरे हैं। क्योंकि जोर अगर हमने गलत पर दिया तो शुद्ध होने की बजाय अशुद्ध होता चला जाएगा। और जब अशुद्धि शुद्धता के रूप में आती है तो बड़ी प्रीतिकर होती है। जंजीरें अगर आभूषण बन कर आएंतो बड़ी प्रीतिकर होती हैं, और कारागृह भी अगर स्वर्ण का बना हो, हीरे मोतियों से सजा हो तो मंदिर मालूम हो सकता है।
दूसरा उपाय है कि हम प्रतिपल, जहां भी "मैं" का भाव उठे, जहां भी; उसे उसी क्षण छोड़ दें। मेरा मकान, तो हम सिर्फ मकान पर ध्यान रखें, और मेरा को उसी क्षण छोड़ दें; क्योंकि कोई मकान मेरा नहीं है। हो भी नहीं सकता। मैं नहीं था, तब भी मकान था; मैं नहीं रहूंगा तब भी मकान होगा। मैं केवल एक यात्री हूं, एक विश्रामालय में थोड़े क्षण को, और बिदा हो जाने को।
यह मेरा "मैं" जहां भी जुड़े तत्काल उसे वहीं तोड़ देना है। मेरी पत्नी, मेरा पुत्र, मेरा धन, मेरा नाम, मेरा वंश, जहां भी यह मेरा जुड़े उसे तत्काल तोड़ देना। उसे जुड़ने ही नहीं देना। शुद्ध करने की कोशिश ही नहीं करनी, उसे जुड़ने नहीं देना है, उसे छोड़ते ही चले जाना है।
मेरा धर्म, मेरा मंदिर, मेरा शास्त्र--जहां भी मेरा जुड़े उसे तोड़ते जाना है। फिर मेरा शरीर, मेरा मन, मेरी आत्मा, जहां भी मेरा जुड़े, उसे तोड़ते चले जाना है। अगर यह मेरा टूट जाए, सब जगह से और एक दिन आपको लगे कि मेरा कुछ भी नहीं, मैं भी मेरा नहीं, उस दिन छलांग हो जाएगी।
लेकिन रास्ता अपना-अपना चुन लेना पड़ता है। क्या आपको प्रीतिकर लगेगा। प्रतिपल तोड़ते जाना प्रीतिकर लगेगा, या प्रतिपल शुद्ध करते जाना प्रीतिकर लगेगा। श्रेष्ठतर मेरा बनाना उचित लगेगा कि मेरे को जड़ से ही तोड़ देना ही उचित लगेगा।
इसकी जांच भी अत्यंत कठिन है। इसलिए साधना में गुरु का इतना मूल्य हो गया। उसकी जांच अति कठिन है कि आपके लिए क्या ठीक होगा। अकसर तो यह होता है कि जो आपके लिए गलत होगा, वह आपको ठीक लगेगा। यह कठिनाई है। जो गलत होगा आपके लिए वह आपको तत्काल ठीक लगेगा, क्योंकि आप गलत हैं। गलत आपको आकर्षित करेगा तत्काल।
जो आपको आकर्षित करे, जरूरी मत समझ लेना कि आपके लिए ठीक है। होशपूर्वक प्रयोग करना पड़े--होशपूर्वक जो आप कहते हैं कि यह मेरे लिए ठीक है, सौ में निन्यानबे मौके तो यह हैं कि वह आपके लिए गलत होगा। क्योंकि आप गलत हैं और आपके आकर्षण अभी गलत होंगे इसलिए गुरु की जरूरत पड़ी, ताकि शिष्य अपनी आत्महत्या न कर ले। शिष्य आत्महत्याएं करते हैं। और कई बार तो बहुत मजा होता है, शिष्य गुरु को भी जाकर बताते हैं कि मेरे लिए क्या उचित है। आप ऐसा करवाइए, यह मेरे लिए उचित है।
वे खुद ही अनुचित हैं, वे जो भी चुनेंगे वह अनुचित होगा। उचित नहीं हो सकता। और जो उचित है, वह उन्हें विपरीत मालूम पड़ेगा कि यह तो विपरीत है, यह मुझसे न हो सकेगा। इसलिए गुरु की जरूरत पड़ी कि वह सोच सके, निदान कर सके, खोज सके कि क्या ठीक होगा; निष्पक्ष दूर खड़े होकर पहचान सके कि क्या ठीक होगा।
आप खुद ही उलझे हुए हैं, आप पहचान न सकेंगे। आप खुद ही बीमार हैं, अपनी बीमारी का निदान करना जरा मुश्किल हो जाता है। क्योंकि मन बीमारी की वजह से बेचैन होता है। मन जल्दी ठीक होने के लिए अधैर्य से भरा होता है। मन

किसी भी तरह बीमारी इसी वक्त समाप्त हो जाए, इसमें ज्यादा उत्सुक होता है।
बीमारी क्या है, इसकी शांति से परीक्षा की जाए, इसमें उत्सुक नहीं होता।
इसलिए बीमार अपना निदान नहीं कर पाता है।
लेकिन, बिना गुरु के भी चला जा सकता है। तब एक ही रास्ता है, "ट्रायल एण्ड एरर।" एक ही रास्ता है कि भूल करें। और सुधार करें, प्रयोग करे। और जो आपको ठीक लगे उस पर प्रयोग करें। एक वर्ष तय कर लें कि इस पर प्रयोग करता ही रहूंगा फिर इसके परिणाम देखें, वे दुखद हैं, अप्रीतिकर हैं, अहंकार को घना करते हैं। दूसरा प्रयोग करें, छोड़ दें।
एक उपाय है भूल-चूक, अनुभव। दूसरा उपाय है, जो भूल-चूक से गुजरा हो, अनुभव तक पहुंचा हो, उससे पूछ लें। दोनों की सुविधाएं हैं, दोनों के खतरे हैं।
अब सूत्र।
"सदा अप्रमादी, सावधान रहते हुए, असत्य को त्याग कर हितकारी सत्य वचन
ही बोलने चाहिए। इस प्रकार का सत्य बोलना सदा बड़ा कठिन है।"
बड़ी शर्तें महावीर ने सत्य में लगाई हैं। सत्य बोलना चाहिए, इतना महावीर कह सकते थे। इतना नहीं कहा। महावीर पर्त-पर्त चीजों को उघाड़ने में अति कुशल हैं। इतना काफी था कि सत्य वचन बोलना चाहिए। इससे ज्यादा और क्या जोड़ने की जरूरत है? लेकिन महावीर आदमी को भलीभांति जानते हैं, और आदमी इतना उपद्रवी है कि सत्य बोलना चाहिए, इसका दुरुपयोग कर सकता है। इसलिए बहुत-सी शर्तें लगायीं।
सदा अप्रमादी, होशपूर्वक सत्य बोलना चाहिए।
कई बार आप सत्य बोलते हैं सिर्फ दूसरे को चोट पहुंचाने के लिए। असत्य
ही बुरा होता है, ऐसा नहीं, सत्य भी बुरा होता है, बुरे आदमी के हाथ में। आप कई बार सत्य इसलिए बोलते हैं कि उससे हिंसा करने में आसानी होती है। आप अंधे आदमी को कह देते हैं, अंधा। सत्य है बिल्कुल। चोर को कह देते हैं, चोर। पापी को कह देते हैं, पापी। सत्य है बिल्कुल। लेकिन महावीर कहेंगे, बोलना नहीं था।
क्योंकि जब आप किसी को चोर कह रहे हैं तो वस्तुतः आप उसकी चोरी की तरफ इंगित करना चाहते हैं, या चोर कह कर उसे अपमानित करना चाहते हैं? वस्तुतः आपको प्रयोजन है सत्य बोलने से? या एक आदमी को अपमानित करने से? वस्तुतः जब आप किसी को चोर कहते हैं, तो आपको पक्का है कि वह चोर है? या आपको मजा आ रहा है किसी को चोर कहने में? क्योंकि जब भी हम किसी को चोर कहते हैं, तो भीतर लगता है कि हम चोर नहीं हैं। वह जो रस मिल रहा है, वह सत्य का रस है? वह सत्य का रस नहीं है।
इसलिए महावीर कहते हैंः "सदा अप्रमादी।" पहली शर्त होशपूर्वक सत्य बोलना। बेहोशी में बोला गया सत्य, असत्य से भी बदतर हो सकता है। सावधान रहते हुए, एक-एक बात को देखते हुए, सोचते हुए सावधानीपूर्वक, ऐसे मत बोल देना तत्काल। बोलने के पहले क्षण भर चेतना को सजग कर लेना, रुक जाना, ठहर जाना, सब पहलुओं से देख लेना ऊपर उठ कर; अपने से, परिस्थिति से।
सावधान का अर्थ है, क्या होगा परिणाम? क्या है हेतु? जब आप बोल रहे हैं सत्य, क्या है हेतु? क्यों बोल रहे हैं? क्या परिणाम की इच्छा है? बोलकर क्या चाहते हैं कि हो जाए?
सत्य बोलकर आप किसी को फंसा भी दे सकते हैं। सत्य बोल कर... आपके भीतर क्या हेतु है, क्या मोटिव? क्योंकि महावीर का सारा जोर इस बात पर है कि पाप और पुण्य कृत्य में नहीं होते, हेतु में होते हैं। मोटिव में होते हैं, एक्ट में नहीं होते।
एक मां अपने बेटे को चांटा मार रही है। इस चांटा मारने में... और एक दुश्मन एक दुश्मन को चांटा मार रहा है, फिजियोलॉजिकली, शरीर के अर्थ में कोई भेद नहीं है। और अगर एक वैज्ञानिक मशीन पर दोनों के चांटे को तौला जाए तो मशीन बता नहीं सकेगी, चांटे का वजन बता देगी, कितने जोर से पड़ा, कितनी चोट पड़ी, कितनी शक्ति थी चांटे में, कितनी विद्युत थी, सब बता देगी। लेकिन यह नहीं बता पाएगी कि हेतु क्या था? लेकिन मां के द्वारा मारा गया चांटा,

दुश्मन के द्वारा मारा गया चांटा, दोनों एक से कृत्य हैं, लेकिन एक से हेतु नहीं हैं।
जरूरी नहीं है कि मां का चांटा भी हर बार मां का ही चांटा हो। कभी-कभी मां का चांटा भी
दुश्मन का चांटा होता है। इसलिए मां भी दो बार चांटा मारे तो जरूरी नहीं है कि हेतु एक ही हो। इसलिए माताएं ऐसा न समझें कि हर वक्त चांटा मार रही हैं, तो हेतु मां का होता है। सौ में निन्यानबे मौके पर दुश्मन का होता है। मां भी इसलिए चांटा नहीं मारती कि लड़का शैतानी कर रहा है, मां भी इसलिए चांटा मारती है कि लड़का मेरी नहीं मान रहा है। शैतानी बड़ा सवाल नहीं है, सवाल मेरी आज्ञा है, सवाल मेरा अधिकार है, सवाल मेरा अहंकार है।
तो मां का चांटा भी सदा मां का नहीं होता। महावीर मानते हैं कि मोटिव क्या है? भीतर क्या है? किस कारण?
इस फर्क को समझ लें।
एक बच्चा शैतानी कर रहा है और मां ने चांटा मारा। आप कहेंगे, कारण साफ
है कि बच्चा शैतानी कर रहा था। लेकिन यह हेतु नहीं है, यह कारण नहीं है कि बच्चा शैतानी कर रहा था। हेतु आपके भीतर होगा, क्योंकि कल भी यह बच्चा इसी वक्त शैतानी कर रहा था, लेकिन आपने नहीं मारा। आज मारा। कल भी परिस्थिति यही थी। परसों भी यह बच्चा शैतानी कर रहा था। लेकिन तब आपने पड़ोसियों से उसकी प्रशंसा की कि मेरा बच्चा बड़ा शैतान है। कल मारा नहीं, देख लिया, आज मारा। क्या बात है? हेतु बदल रहे हैं, कारण तो तीनों में एक हैं; आपके भीतर हेतु बदल रहे हैं। जब आपने पड़ोसी से कहा, मेरा बच्चा बड़ा शैतान है, तब आपके अहंकार को तृप्ति मिल रही थी। इस बच्चे की शैतानी आपको रस पूर्ण मालूम पड़ी। कल बच्चा शैतानी कर रहा था, आप अप्ने भीतर खोए थे, आप अपने में लीन थे। इस बच्चे की शैतानी ने आपको कोई चोट नहीं पहुंचाई। आज सुबह ही पति से या पत्नी से कलह हो गई है और आप अपने भीतर नहीं जा पाते और क्रोध उबल रहा है, और यह बच्चा शैतानी कर रहा है। चांटा पड़ जाता है।
यह चांटा आपके भीतर के क्रोध के हेतु से उपजता है। यह बच्चे का कारण सिर्फ बहाना है, खूंटी है, कोट आपके भीतर से आकर टंगता है। महावीर कहते हैं, सावधानीपूर्वक। उसका अर्थ है--हेतु को देखते हुए कि मैं क्यों सच बोल रहा हूं।
"सावधान रहते हुए असत्य को त्याग कर हितकारी सत्य वचन ही बोलने चाहिए।"
सावधान रहें और जो भी असत्य मालूम पड़े, उसे त्याग दें। कोई भी मूल्य हो, महावीर मूल्य नहीं मानते। साधक के लिए एक ही मूल्य है, उसकी आत्मा का निर्माण, सृजन। कोई भी कीमत हो, अप्रमाद से सावधानीपूर्वक हेतु की परीक्षा करके, जो भी असत्य है, उसे तत्काल छोड़ दें।
यह निगेटिव बात हुई, नकारात्मक, असत्य को छोड़ दें। और इसके बाद वे कहते हैं हितकारी सत्य वचन ही बोलें। अभी सत्य वचन में फिर एक शर्त है, वह यह कि वह दूसरे के हित में हो।
आपके भीतर कोई हेतु न हो बुरा, यह भी काफी नहीं है। क्योंकि मेरे भीतर कोई हेतु बुरा न हो, फिर भी आपका अहित हो जाए। तो महावीर कहते हैं, वैसा जो दूसरे का अहित कर दे वैसा सत्य भी नहीं। बड़ी शर्तें हो गईं। असत्य का त्याग सीधी बात न रही। असत्य के त्याग में असावधानी का त्याग हो गया। प्रमाद का त्याग हो गया। और दूसरे के अहित का भी त्याग हो गया, और तब जो सत्य बचेगा वही बोलें। आप मौन हो जायेंगे। बोलने को शायद कुछ बचेगा नहीं। महावीर बारह वर्ष तक मौन रहे, इस साधना में। न बोलेंगे वे। हम कहेंगे हद्द हो गई। अगर सत्य भी बोलना है, तो भी बोलने को बहुत बातें हैं। आप गलती में हैं। अगर महावीर जैसी निकट कसौटी आपके पास हो तो मौन हो जाना पड़ेगा। क्योंकि असत्य बहुत प्रकार के हैं। पहले तो असत्य ऐसे हैं, जिनको आप सत्य माने हुए बैठे हैं, जो सत्य हैं नहीं। और अगर आपके समाज ने भी उनको माना है तो आपको पता ही नहीं चलता कि ये असत्य हैं।
आप कहते हैं, ईश्वर है। आपको पता है? महावीर नहीं बोलेंगे। वे कहेंगे
यह मेरे लिए असत्य है, मुझे पता नहीं। लेकिन जिस समाज में आप पैदा हुए हैं,

अगर यह असत्य कि ईश्वर है--असत्य इसलिए नहीं कि ईश्वर नहीं है, असत्य इसलिए कि बिना जाने इसे मानना असत्य है। जिस समाज में आप पैदा हुए हैं, वह मानता है कि ईश्वर है, तो आप भी मानते हैं कि ईश्वर है। आपने फिर कभी लौटकर सोचा ही नहीं कि है भी?
जब मैं मंदिर के सामने हाथ जोड़ रहा हूं, तो यह हाथ जोड़ना तब तक असत्य
है जब तक मुझे ईश्वर का कोई पता न हो। महावीर मंदिर के सामने हाथ न जोड़ेंगे। क्योंकि महावीर कहते हैं, सामूहिक असत्य है, कलेक्टिव अनट्रूथ। जब पूरा समूह बोलता है, तो आपको पता ही नहीं चलता। बल्कि पता ही तब चलता है, जब समूह में कोई बगावती पैदा हो जाता है। वह कहता है, कहां है ईश्वर? तब आपको क्रोध आता है।
अगर आपके पास सत्य है तो उसे दिखा देना चाहिए। क्रोध का कोई कारण नहीं। लेकिन जब कोई पूछता है, कहां है ईश्वर? तो आप दिखाने को उत्सुक नहीं होते, उसको मारने को उत्सुक हो जाते हैं। यह आपकी वृत्ति बताती है, क्योंकि क्रोध सदा असत्य से पैदा होता है, सत्य से पैदा नहीं होता। अगर ईश्वर है, तो दिखा दो। इस गरीब ने कुछ गलत नहीं पूछा है। एक जिज्ञासा की है। लेकिन नास्तिक को हम सदा मारने को उत्सुक होते हैं। इसका मतलब है कि आस्तिकता झूठी है। होकस-पोकस है। उसमें कुछ नहीं है, ऊपरी ढांचा है। जरा ही कोई उंगली डाल देता है तो भीतर खलबली मच जाती है।
आप मानते हैं कि आपके भीतर आत्मा है। आपको पता है? कभी मुलाकात हुई? छोड़ो ईश्वर! ईश्वर बड़ी दूर है। भीतर आत्मा बिल्कुल पास है, कहते हैं हृदय से भी करीब। मुहम्मद कहते हैं कि गले की फड़कती नस से भी करीब। इसका आपको पता है? यह भी किताब में पढ़ा है? बड़ा मजेदार है।
रामकृष्ण के पास एक दिन एक आदमी आया। रामकृष्ण ने कहा कि सुना है कि पड़ोस में तुम्हारे मकान गिर गया। उसने कहा, मैंने सुबह का अखबार अभी देखा नहीं। जरा जाता हूं, देखता हूं। पड़ोसी का मकान गिरे, तो भी अखबार में ही पता चलता है। मगर यह भी ठीक है, क्योंकि पड़ोस अब कोई छोटी बात नहीं है, बड़ी बात है। और पड़ोस पुराने गांव से भी बड़ी बात है। नहीं पता चला होगा। लेकिन आपको आपकी आत्मा का पता भी अखबार में पढ़ने से चलता है कि है, कि नहीं है। अखबार में एक लेख निकल जाए कि आत्मा नहीं है, तो आपको भी शक आ जाता है। किताब में पढ़ लें कि आत्मा है, आपको भरोसा आ जाता है। लोग पूछते फिरते हैं, आत्मा हैं? बड़े मजे की बात है, और सब चीजें पूछी जा सकती हैं दूसरे से। यह भी दूसरे से पूछने की बात है? आप यह पूछ रहे हैं, मैं हूं? कोई मुझे बता दे कि मैं हूं।
महावीर कहते हैं, यह भी असत्य है। मत कहो कि मैं हूं, जब तक तुम्हें पता न चल जाए। मत कहो कि भीतर आत्मा है, जब तक तुम्हें पता न चल जाए। कौन जाने, सिर्फ हुड्डी मांस का जोड़ हो, और यह बोलना और चालना सिर्फ एक बाई-प्रॉडक्ट हो। जैसा कि चार्वाक ने कहा है कि पान में हम पांच चीजें मिला लेते हैं, फिर होठों पर लाली आ जाती है। वह लाली बाई-प्रॉडक्ट है। क्योंकि उन पांच चीजों को अलग-अलग मुंह में ले जाएंतो लाली नहीं आती। पांचों को मिला दें तो पांचों के मिलने से लाली पैदा हो जाती है! लेकिन लाली कोई चीज नहीं है, पांचों का दान है। पांचों को अलग कर लें, लाली खो जाती है। पांच को अलग करके आप यह नहीं कह सकते कि लाली अब कहीं है। छिप गई, अदृश्य हो गई, सिर्फ खो जाती है।
तो चार्वाक ने कहा कि यह शरीर भी पांच तत्वों का जोड़ है। इसमें जो आत्मा दिखाई पड़ती है, वह बाई-प्रॉडक्ट है, उत्पत्ति है। वह कोई तत्व नहीं है। तत्व तो पांच हैं। उनके जोड़ से, उनके संयोग से आत्मा दिखाई पड़ती है। पांचों तत्वों को अलग कर लें, आत्मा बचती नहीं। खो जाती है। समाप्त हो जाती है।
तो महावीर कहते हैं, कौन जाने, चार्वाक सच हो। तो झूठ मत बोलें कि मैं आत्मा हूं, कि मैं अमर हूं, यह मत बोलें। मत कहें कि पुर्नजन्म है, जब तक जान न लें। मत कहें कि पीछे जन्म थे, जब तक जान न लें। मत कहें कि पुण्य का फल सदा ठीक होता है। मत कहें कि पाप सदा दुख में ले जाता है। जब तक जान न लें।

अगर सत्य की ऐसी बात हो तो चुप हो जाना पड़े। सामूहिक असत्य है। फिर रोजमर्रा के कामचलाऊ असत्य हैं, जिनको हम कभी सोचते नहीं कि असत्य हैं। रास्ते पर एक आदमी मिला, पूछते हैं, कैसे हैं, कहते हैं बड़े मजे में हैं। कभी नहीं सोचते कि क्या कहा! बड़े मजे में हैं! एक दफा फिर से सोचें, बड़े मजे में हैं? कहीं कोई भीतर समर्थन न मिलेगा। लेकिन जब कोई पूछता है, रास्ते पर, कैसे हैं? तो कहते हैं, बड़े मजे में हैं। और जब कहते हैं, बड़े मजे में हैं, तो पैर की चाल बदल जाती है। टाई वगैरह ठीक करके चलने लगते हैं। ऐसा लगता भी है कि बड़े मजे में हैं।
दूसरे से कहने में ऐसा लगता भी है। चार लोग पूछ लें तो दिल खुश हो जाता है। कोई न पूछे,
दिल उदास हो जाता है। जब कोई आदमी कहता है, हे! हलो! भीतर गुदगुदी हो जाती है। लगता भी है उस क्षण में कि जिंदगी बड़े मजे में जा रही है।
हम दूसरे से ही कह रहे हों, ऐसा नहीं है, इसलिए ये कामचलाऊ असत्य हैं।
ये उपयोगी हैं, एक दूसरे को हम ऐसे सहारा देते रहते हैं उसके झूठों में।
महावीर कहते हैं, काम चलाऊ असत्य भी नहीं। कुछ भी हम बोलते रहते हैं।
आदतन असत्य हैं--आदतन। कोई कारण नहीं होता, कोई हेतु नहीं होता, आदतन बोलते रहते हैं।
मेरे एक प्रोफेसर थे। किसी भी किताब का नाम लो, वे सदा कहते, हां मैंने पढ़ी थी, पंद्रह-बीस साल हो गए। यह आदतन था। क्योंकि पंद्रह-बीस साल वे सदा कहते थे। सारी किताबें उन्होंने पंद्रह-बीस साल पहले नहीं पढ़ी होंगी। कोई सोलह साल पहले पढ़ी होगी, कोई दस साल पहले पढ़ी होगी, कोई पचास साल पहले पढ़ी होंगी। बूढ़ें आदमी थे, लेकिन वे सदा कहते, पंद्रह-बीस साल पहले मैंने यह किताब पढ़ी थी। यह तकिया कलाम था--आदतन।
फिर मैंने ऐसी-ऐसी किताबों के नाम लिए जो कि हैं ही नहीं, पर वे उनके लिए भी कहते कि हां मैंने पढ़ी थी, पंद्रह-बीस साल पहले। तब मुझे पता चला कि वे झूठ नहीं बोलते हैं, आदतन झूठ बोलते हैं। ऐसा उनकी आंख से भी पता नहीं चलता था कि वे झूठ बोल रहे हैं। और झूठ बोलने का कोई कारण भी नहीं था। कोई उन किताबों को पढ़ा हो, न पढ़ा हो, इससे उनकी प्रतिष्ठा में भी फर्क नहीं पड़ता था। वे काफी प्रतिष्ठित थे।
एक दिन मैंने उनको जाकर कहा कि यह किताब तो है ही नहीं, जिसको आपने पंद्रह-बीस साल पहले पढ़ा था। न तो यह कोई लेखक है, न यह कोई किताब है। तो उन्हें होश आया। उन्होंने कहा, कि वह मेरी आदत हो गई है।
पर यह आदत क्यों हो गई है? इस आदत के पीछे कहीं गहरा कोई हेतु है! ऐसी कोई किताब हो कैसे सकती है जो प्रोफेसर ने न पढ़ी हो। वह हेतु है, बहुत गहरा दब गया वर्षों पीछे। लेकिन अब आदतन है।
आप बहुत सी बातें आदतन बोल रहे हैं। जो असत्य हैं।
महावीर बारह साल तक चुप हो गए। फिर ऐसी बातें हैं, जो अनिश्चित हैं। इसलिए जब आप कह देते हैं कि फलां आदमी पापी है, तो आप गलत बात कह रहे हैं; क्योंकि आपको जो खबर है वह पुरानी पड़ चुकी है। पापी इस बीच पुण्यात्मा हो गया हो। क्योंकि पापी कोई ठहरी हुई बात नहीं है, जो आज सुबह पापी था, सांझ साधु हो सकता है। और जो आज सुबह परम साधु था, सांझ पापी हो सकता है। जिंदगी तरल है, लेकिन शब्द फिक्स्ड होते हैं। आप कहते हैं फलां आदमी पापी है। महावीर न कहेंगे। वे कहेंगे कि आदमी एक प्रवाह है। तो महावीर कहेंगे स्यात। शायद पापी हो, शायद पुण्यात्मा हो।
फिर जो आदमी पापी है वह पाप करने में भी पूरा पापी नहीं होता। उसके पाप में भी पुण्य का हिस्सा हो सकता है, और जो आदमी पुण्य कर रहा है, उसके पुण्य में भी पाप का हिस्सा हो सकता है।
आदमी बड़ी घटना है, कृत्य बड़ी छोटी बात है। चोर भी आपस में सत्य बोलते हैं और ईमानदार होते हैं। और जिनको हम साधु कहते हैं, उनसे ज्यादा सत्य बोलते हैं आपस में, और ज्यादा ईमानदार होते हैं। दस साधुओं को पास बिठाना मुश्किल है, दस चोर गले मिल जाते हैं। दस साधुओं को इकट्ठा करना ही मुश्किल है। पहले तो इस पर ही झगड़ा हो जाएगा कि कौन कहां बैठे; कौन नीचे बैठे, कौन ऊपर बैठे। किसी चोर में कभी झगड़ा नहीं हुआ है इस बात पर।

साधु के भीतर भी असाधु छिपा है, चोर के भीतर भी साधु छिपा है। चोर की चोरी बाहर है, पीछे साधु छिपा है। चोरी भी करनी हो तो वचन मानना पड़ता है, नियम मानने पड़ते हैं, सच्चाई रखनी पड़ती है, ईमानदारी रखनी पड़ती है।
मैने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन पर चोरी का एक मुकदमा चला। पकड़ इसलिए गया कि वह सात बार एक ही राज में एक दुकान में घुसा। सातवीं बार पकड़ा गया। मजिस्ट्रेट ने उससे पूछा कि नसरुद्दीन, चोरी भी हमने बहुत देखी, मुकदमे भी बहुत देखे। एक ही रात में सात बार घुसना, एक ही मकान में, मामला क्या है? अगर ज्यादा ही सामान ढोना था, तो संगी साथी क्यों नहीं रखते हो? अकेले ही सात दफा!
नसरुद्दीन ने कहाः "बड़ा मुश्किल है। लोग इतने बेईमान हो गए हैं कि किसी को संगी साथी बनाना चोरी तक में मुश्किल हो गया है। एक और दुकान भी कपड़े की, जो भी चुरा कर ले गया, पत्नी ने कहा, नापसंद है। फिर वापस। रात भर कपड़े ढोता रहा, उसमें ही फंसा। और लोग इतने बेईमान हो गए हैं कि अकेले ही चोरी करनी पड़ती है। किसी का भरोसा नहीं किया जा सकता, चोरी तक में।" साधुओं में तो कभी भरोसा आपस में रहा नहीं, लेकिन चोरों में सदा रहा है।
और चोर कभी चोर को धोखा नहीं देता। चोरी का भी कोड है। जैसे हिंदू कोड बिल है वैसा चोरों का कोड है। उनका अपना नियम है, वै कभी धोखा नहीं देते। महावीर कहते हैं, जब हम किसी को चोर कहते हैं, तो हम पूरा ही चोर कह देते हैं, जो कि गलत है। जब हम किसी को साधु कहते हैं तो पूरा ही साधु कह देते हैं जो कि गलत है। जीवन मिनण है, सभी चीजें मिली-जुली हैं। मत कहो। बड़ा मुश्किल है। फिर क्या बोलिएगा? क्या बोलिएगा?
एक आदमी कहता है, सुबह सूरज निकला है, बड़ा सुंदर है। यह सत्य है? मुश्किल है कहना, क्योंकि यह सत्य निजी सत्य है। और एक का निजी सत्य दूसरे का निजी सत्य न भी हो। जिसका बच्चा आज सुबह मर गया है, सूरज आज उसे सुंदर नहीं मालूम पड़ेगा। तो सूरज सुंदर है, यह निजी सत्य है। यह एब्सलूट सत्य नहीं है। जिसका बच्चा मर गया है वह रो रहा है, और आज वह चाहता है कि सूरज उगे ही न। अब कभी सूरज न उगे। अब दिन कभी हो ही न। अब अंधेरा ही छा जाए, और सब रात ही हो जाए। अब यह सूरज उसे दुश्मन की तरह मालूम होगा, जब सुबह उगेगा। यह सुंदर नहीं हो सकता।
सूरज कब सुंदर होता है? जब आपके भीतर सूरज को सुंदर बनाने की कोई घटना घटती है। सूरज असुंदर हो जाता है, जब आपके भीतर सूरज को अंधेरा करने की कोई घटना घट जाती है।
आप अपने को ही फैला कर जगत में देखते रहते हैं। तो जो आप देखते हैं वह निजी सत्य है, प्राइवेट ट्रूथ। और सत्य कभी निजी नहीं होता। असत्य निजी होते हैं। सत्य तो सार्वजनिक होता है, यूनिवर्सल होता है। सार्वभौम होता है। इसलिए महावीर कहेंगे, शायद सूरज सुंदर है। कभी न कहेंगे कि सूरज सुंदर है। कहेंगे, शायद परहेप्स। क्यों? महावीर एक वचन में भी ऐसा न कहेंगे कभी कि ऐसा है। वे ऐसा कहेंगे, हो सकता है। वे यह भी कहेंगे, इससे विपरीत भी हो सकता है।
यह सूरज हजारों लाखों लोगों के लिए निकला है। कोई दुखी होगा, सूरज असुंदर होगा। कोई सुखी होगा, सूरज सुंदर होगा। कोई चिंतित होगा, सूरज दिखाई ही नहीं पड़ेगा। कोई कविता से भरा होगा और सूरज पूरा जीवन और आत्मा बन जाएगी। कुछ कहा नहीं जा सकता, यह निजी सत्य है।
महावीर बारह वर्ष तक चुप रह गए, क्योंकि सत्य बोलना बहुत कठिन है। इसलिए महावीर कहते हैं, इस प्रकार का सत्य बोलना सदा बड़ा कठिन है। ऐसा सत्य जो बोलना चाहता हो उसे लंबे मौन से गुजरना पड़ेगा। गहरे परीक्षण से गुजरना पड़ेगा। और तब महावीर ने बोला।
इसलिए अगर जैन यह कहते हैं कि महावीर जैसी वाणी फिर नहीं बोली गई तो इसका कारण है। महावीर जैसा मौन भी कभी नहीं साधा गया। इसलिए महावीर जैसी वाणी भी फिर नहीं बोली गई। इतने मान से, इतने परीक्षण से, इतनी कठिनाइयों से, इतनी कसौटियों से, गुजर कर जो आदमी बोलने को राजी हुआ, उससे जो वह बोला है वह बहुत गहरा और मूल्य का ही है। नहीं तो वह बोलता ही नहीं।

"श्रेष्ठ साधु पापमय, निश्चयात्मक, और दूसरों को दुख देने वाली वाणी न बोले।" श्रेष्ठ साधु पापमय, निश्चयात्मक, सर्टेंन बातें न बोले। ऐसा न कह दे कि वह आदमी चोर है। इतना निश्चयात्मक होना असत्य की तरफ ले जाता है। यह बड़ी अदभुत बात है, यह थोड़ा सोच लेने जैसी बात है। हम तो कहेंगे कि सत्य निश्चय होता है। लेकिन महावीर कहते हैं, सत्य इतना बड़ा है कि हमारे किसी निश्चित वाक्य में समाहित नहीं होता। जब हम कहते हैं, फलां आदमी पैदा हुआ, तब यह अधूरा सत्य है, क्योंकि उस आदमी ने मरना शुरू कर दिया।
संत अगस्तीन ने लिखा है, उसका बाप मर रहा है। मरण शैय्या पर पड़ा है।
डाक्टर इलाज कर रहे हैं। आखिर इलाज काम नहीं आया। एक दिन तो काम आता नहीं।
कभी न कभी डाक्टर हारता है, और मौत जीतती है। वह लड़ाई हारने वाली ही है।
डाक्टर बीच-बीच में कितना ही जीतता रहे, आखिर में हारेगा ही। उस लड़ाई में अंतिम जीत डाक्टर के हाथ में नहीं है, सदा मौत के हाथ में है।
इसलिए मामला ऐसा है, जैसे एक बिल्ली को आपने चूहा दे दिया, वह उससे खेल रही है। वह छोड़ देती है, क्योंकि छोड़ने में मजा आता है। फिर पकड़ लेती है। फिर छोड़ देती है। उससे चूहा चौंकता है, भागता है, और बिल्ली निश्चिंत हैं, क्योंकि अंत में वह पकड़ ही लेगी। यह सिर्फ खेल है।
तो मौत आदमी के साथ ऐसे ही खेलती है। कभी छोड़ देती है, जरा बीमारी ज्यादा बीमारी छोड़ दी--ड़ाक्टर बड़ा प्रसन्न! मरीज भी बड़ा प्रसन्न! और मौत सबसे ज्यादा प्रसन्न! क्योंकि वह खेल चलता है, क्योंकि जीत निश्चित है। इस खेल में कोई अड़चन नहीं है। कभी चूहा बिल्ली से चूक भी जाए, मौत से आदमी नहीं चूकता।
डाक्टर इकट्ठे हुए, सारे गांव के डाक्टर इकट्ठे हो गए और उन्होंने कहा, नाउ वी आर हेल्पलेस। नाउ नथिंग कैन बी डन। नाउ दिस मैन कैन नाट रिकवर। अब कुछ हो सकता नहीं, अब यह आदमी मरेगा ही। नाउ दिस मैन कैन नाट रिकवर। अगस्तीन ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि उस दिन मुझे पता चला कि जो बात डाक्टर मरते वक्त कहते हैं यह तो जब बच्चा पैदा होता है तभी कहनी चाहिए, नाउ दिस चाइल्ड कैन नॉट रिकवर। यह बच्चा जो पैदा हो गया, अब नहीं बच सकता। उसी दिन कह देना चाहिए कि नाउ दिस चाइल्ड कैन नॉट रिकवर। पैदा होने के बाद मौत से बच सकते है? फिजूल इतने दिन रुकते हैं कहने के लिए कि नाउ दिस मैन कैन नॉट रिकवर। उसी दिन कह देना चाहिए।
महावीर कहते हैं, निश्चयात्मक मत होना, अगर सत्य होना है तो। सत्य होने का मतलब ही यह है कि जीवन है अनंत पहलुओं वाला, और जब भी हम बोलते हैं, एक पहलू जाहिर होता है। एक पहलू, अनंत पहलुओं में से। अगर हम उस पहलू को इतना निश्चय से बोलते हैं कि ऐसा मालूम होने लगे कि यही पूर्ण सत्य है, तो असत्य हो गया।
इसलिए महावीर ने सप्त-भंगी निर्मित की--बोलने का सात अंगों वाला ढंग।
तो महावीर से आप एक सवाल पूछिए तो वे सात जवाब देते थे। क्योंकि वे कहते कि... और सात जवाब सुनते-सुनते आपकी बुद्धि चकरा जाए, और फिर आपको एक भी जवाब समझ में न आए। क्योंकि आप पूछ रहे हैं कि यह आदमी जिंदा है कि मर गया। अब यह साफ कहना चाहिए कि हां, मर गया कि हां, जिंदा है, इसमें सात का क्या सवाल है। लेकिन महावीर कहते, स्यात मर गया, शायद जिंदा है, शायद दोनों है। शायद दोनों नहीं है। ऐसा वे सात भंगियों में उत्तर देते। आपको कुछ समझ में न पड़ता। लेकिन महावीर सत्य बोलने की अथक चेष्टा किए हैं, ऐसी चेष्टा किसी आदमी ने पृथ्वी पर कभी नहीं की।
लेकिन सत्य बोलने की चेष्टा अति जटिल मामला है। जब कहते हैं आप, एक आदमी मर गया, जरूरी नहीं है, मर गया हो। क्योंकि अभी इसकी छाती पर मसाज की जा सकती है। अभी इसे आक्सीजन दी जा सकती है। अभी खून दौड़ाया जा सकता है और हो सकता है यह जिंदा हो जाए। तो आपका कहना कि यह मर गया है, गलत है।
रूस में पिछले महायुद्ध में कोई बीस लोगों पर प्रयोग किए गए। उसमें
से छह जिंदा हो गए, वे अभी भी जिंदा है। डाक्टर ने लिख दिया था, वे मर गए। मृत्यु भी कई हिस्सों में घटित होती है शरीर में। मृत्यु कोई इकहरी घटना नहीं है। जब आप मरते हैं तो पहले आपके जो बहुत जरूरी... बहुत जरूरी हिस्से हैं, वे टूटते हैं, ऊपरी हिस्से टूट जाते हैं, जो आपको परिधि पर

सम्हाले हुए हैं, जो आपको शरीर से जोड़े हुए हैं, वे हिस्से टूटते हैं। लेकिन अभी आप मर नहीं गए। अभी आप जिलाए जा सकते हैं। अभी अगर हृदय दूसरा लगाया जा सके तो आप फिर जी उठेंगे, धड़कन फिर शुरू हो जाएगी। लेकिन यह हो जाना चाहिए छह सेकेंड के भीतर। अगर छह सेकेंड पार हो गए... तो जो लोग भी हृदय के टूट जाने से मरते हैं, हार्ट फेल्योर से मरते हैं वे छह सेकेंड के भीतर उनमें से बहुत-से लोग पार हो गए... तो जो लोग भी हृदय के टूट जाने से मरते हैं, हार्ट फेल्योर से मरते हैं वे छह सेकेंड के भीतर उनमें से बहुत से लोग पुनरुज्जीवित हो सकते हैं, और इस सदी के भीतर पुनरुज्जीवित हो जाएंगे। लेकिन छह सेकेंड के भीतर उनका हृदय बदल दिया जाना चाहिए। इसका तो इतना जल्दी उपाय हो नहीं सकता, इसका एक ही उपाय वैज्ञानिक सोचते हैं जो कि जल्दी कारगर हो जाएगा कि एक एक्सट्रा, स्पेयर हृदय पहले से ही लगा रखना चाहिए। और यह आटोमेटिक चेंज होना चाहिए। जैसा ही पहला हृदय बंद हो, दूसरा धड़कना शुरू हो जाए, तो ही छह सेकेंड के भीतर यह हो जाएगा। आदमी जिंदा रहेगा। लेकिन अगर छह सेकेंड से ज्यादा हो गया, तो मस्तिष्क के गहरे तंतु टूट जाते हैं, उनको स्थापित करना मुश्किल है। और एक दफा वे टूट जाएंतो फिर हृदय भी नहीं धड़क सकता। क्योंकि वह भी मस्तिष्क की आज्ञा से ही धड़कता है। आपको पता हो आज्ञा का या न पता हो।
इसलिए अगर आदमी कोई पूरे मन से भाव कर ले मरने का, तो इसी वक्त मर सकता है। या कोई जीवन की बिल्कुल आशा छोड़ दे इसी वक्त, तो मस्तिष्क अगर आशा छोड़ दे पूरी तो हृदय धड़कना बंद कर देगा, क्योंकि आज्ञा मिलनी बंद हो जाएगी।
इसलिए आशावान लोग ज्यादा जी लेते हैं, निराश लोग जल्दी मर जाते है।
ध्यान रखना, दुनिया में सहज मृत्युएं बहुत कम होती हैं। स्वाभाविक मृत्यु बड़ी मुश्किल घटना है। अधिक लोग आत्महत्या से मरते हैं--अधिक लोग।
लेकिन जब कोई छुरा मारता है, तो हमें दिखाई पड़ता है और जब कोई निराशा मारता है भीतर, तो हमें दिखाई नहीं पड़ता है। जब कोई जहर पी लेता है तो हमें दिखाई पड़ता है कि उसने आत्मघात कर लिया, बिचारा! और आप भी आत्मघात से ही मरेंगे। सौ में निन्यानबे मौके पर आदमी आत्मघात से मरता है।
पशु मरते है स्वाभाविक मृत्यु, आदमी नहीं मरता। मर नहीं सकता आदमी, क्योंकि उसके जीवन पर वह पूरे वक्त प्रभाव डाल रहा है--आशा, निराशा, जीना, नहीं जीना, वह भीतर से प्रभावित कर रहा है। और जिस दिन मन पूरा राजी हो जाता है कि नहीं, उसी दिन हृदय की धड़कन बंद हो जाती है। इसलिए अगर मस्तिष्क के तंतु टूट गए तो फिर मुश्किल है। अभी मुश्किल है, सौ दो सौ साल में मुश्किल नहीं होगा, क्योंकि मस्तिष्क के तंतु भी रिप्लेस, किसी न किसी दिन किए जा सकते हैं। कोई अड़चन नहीं है। तब आदमी जिंदा हो जाएगा।
तो आदमी कब मरा हुआ है, कब कहें?
जब तक शरीर और आत्मा का संबंद नहीं टूट जाता तब तक आदमी मरा हुआ नहीं है। और यह संबंध कब टूटता है, अभी तक तय नहीं हो सका। कहीं टूटता है, लेकिन कब टूटता है, अभी तक तय न हो सका। किसी गहरे क्षण में जाकर टूट जाता है, फिर कुछ भी नहीं किया जा सकता। फिर मस्तिष्क बदल डालो, फिर हृदय बदल डालो, फिर सारा खून बदल डालो, फिर पूरा शरीर बदल डालो, तो भी वह लाश ही होगी।
एक दफा शरीर और आत्मा का संबंद टूट जाए... तो क्या शरीर और आत्मा का संबंध टूट जाए, तब हमें कहना चाहिए कि आदमी मर गया? लेकिन तब भी यह बात अधूरी है, क्योंकि मरा कोई भी नहीं, शरीर सदा से मरा हुआ था, वह मरा हुआ है। और आत्मा सदा से अमर थी, वह अब भी अमर है। मरा कोई भी नहीं। तो कब हम कहें कि आदमी मर गया!
यह मैंने एक उदाहरण के लिए लिया।
महावीर कहेंगे, स्यात। निश्चयात्मक कुछ मत बोलना, एब्सोल्यूटिस्टिक कुछ मत बोलना।
इसलिए महावीर शंकर को पसंद न पड़े। बुद्ध को भी पसंद न पड़े। हिंदुस्तान में बहुत कम विचारकों को पंसद पड़े। क्योंकि विचारक का मजा यह होता है कि कुछ निश्चित बात पता चल जाए, नहीं तो मजा ही खो जाता है।
शंकर कहते हैं, ब्रह्म है। महावीर कहेंगे, स्यत। शंकर कहेंगे, माया है। महावीर कहेंगे, स्यात। चार्वाक कहता है, आत्मा नहीं है। महावीर कहते

हैं, स्यात। ईश्वर नहीं है, महावीर उसे भी कहेंगे, स्यात। वे कहते यह हैं कि हम जो भी बोल सकते हैं, जो भी कहा जा सकता है वह सदा ही अंश होगा। और उस अंश को पूर्ण मान लेना असत्य है। इसलिए महावीर कहते हैं, सभी दृष्टियां असत्य होती हैं--सभी दृष्टियां। सभी देखने के ढंग अधूरे होते हैं, इसलिए असत्य होते हैं। और पूर्ण देखने का कोई ढंग नहीं है। क्योंकि सभी ढंग अधूरे होंगे।
मैं आपको कहीं से भी देखूं, वह अधूरा होगा। कैसे भी देखूं, वह अधूरा होगा। इसलिए महावीर कहते हैं, पूर्ण को तो वही देख सकता है, जो सब दृष्टियों से मुक्त हो गया हो। इसलिए महावीर के दर्शन का, "सम्यक दर्शन" का अर्थ है--सब दृष्टियों से मुक्त हो जाना। एक ऐसी स्थिति में पहुंच जाना, जहां कोई दृष्टि शेष नहीं रह जाती, देखने का कोई ढंग शेष नहीं रह जाता। तब आदमी पूर्ण सत्य को जानता है। लेकिन जान सकता है, जब कहेगा, फिर दृष्टि का उपयोग करना पड़ेगा। तब वह फिर अधूरा हो जाएगा। इसलिए महावीर की यह बात समझ लेने जैसी है।
सत्य पूरा जाना जा सकता है, लेकिन कहा कभी नहीं जा सकता। जब भी कहा जाएगा, वह असत्य हो ही जाएगा। इसलिए सावधानी बरतना और निश्चयात्मक रूप से कुछ भी मत कहना।
हप तो असत्य को भी इतने निश्चय से कहते हैं जिसका हिसाब नहीं। और महावीर कहते हैं सत्य को भी निश्चय से मत कहना। हम तो असत्य को भी बिल्कुल दावे की तरह कहते हैं। सच तो यह है कि जितना बड़ा असत्य होता है, उतना जोर से हम टेबल पीटते हैं। क्योंकि सहारा देना पड़ता है। जितना असत्य बोलना हो, उतना जोर से बोलना चाहिए। धीमे बोलो, लोग समझेंगे, कुछ गड़बड़ है। जोर से बोलो। टेबल को पीटकर बोलो।
सागर यूनिवर्सिटी के वाइस चांसलर थे डाक्टर गौड़। वे बड़े वकील थे। उन्होंने मुझ से कहा कि मेरे गुरू ने मुझे कहा कि जब तुम्हारे पास कानूनी प्रमाण हों अदालत में, तो धीरे बोलने से भी चल जाएगा। जब तुम्हारे पास प्रमाण हों कानूनी, तो किताबें ले जाने की और कानूनों का उल्लेख करने की कोई आवश्यकता नहीं। जब तुम्हारे पास कानूनी प्रमाण न हों तो अदालत बड़े- बड़े ग्रंथ लेकर पहुंचना। और जब तुम्हें पक्का हो कि इसके विपरीत प्रमाण है, तब टेबल को जितने जोर से पीट सको, जज के सामने पीटना।
जितना बड़ा असत्य हो, उतने निश्चय से बोलना पड़ता है। नहीं तो आपके असत्य को कोई मानेगा कैसे? इसलिए असत्य बोलने के लिए भोली शक्ल हो, निश्चयवाला मन हो, आवाज तेज हो, तो आप कुशल हो सकते हैं, नहीं तो मुश्किल में पड़ेंगे। साधु होने के लिए भोली शक्ल हो, उतनी आवश्यक नहीं। इसलिए अकसर भोली शक्ल के साधु खोजना मुश्किल है, लेकिन भोली शक्ल के अपराधी निरंतर मिल जायेंगे; क्योंकि अपराध के लिए भोली शक्ल अनिवार्य जरूरत है! झूठ बोलने के लिए और तरह के प्रमाण चाहिए, हवा चाहिए।
महावीर कहते हैं, सत्य को भी निश्चय से मत बोलना। इसलिए महावीर का बहुत प्रभाव नहीं पड़ा। हैरानी की बात है, महावीर जैसी ज्वलंत प्रतिभा के व्यक्ति का प्रभाव न्यून पड़ा, न के बराबर पड़ा। जीसस को मानने वाली आधी दुनिया है। बुद्ध को मानने वाले करोड़ों-करोड़ों लोग हैं। मोहम्मद को मानने वाले करोड़ों-करोड़ों लोग हैं। महावीर को मानने वाले कोई भी नहीं है। वह जो पच्चीस लाख लोग दिखाई पड़ते हैं उनको मानते हुए, वे भी मजबूरी में। कोई मानने वाला नहीं है।
महावीर को मानना कठिन है, क्योंकि मानने में गुरु के पास आदमी जाता है इसलिए कि हम अनिश्चित हैं, आप निश्चयता से कुछ कहें तो भरोसा मिले, और महावीर निश्चय से बोलते नहीं। वे कहते हैं, एक ही बात निश्चित है कि निश्चित रूप से सत्य बोला नहीं जा सकता।
तो जो आदमी आश्वासन खोजने आया है--और सभी लोग आश्वासन खोजने आते हैं गुरु के पास--वह ऐसे गुरु को कैसे मान पाएगा! महावीर को मानने के लिए तो बड़ी गहन जिज्ञासा चाहिए, बड़ी गहन जिज्ञासा। आश्वासन की तलाश नहीं, सांत्वना नहीं, खोज।

इसलिए बहुत थोडे से लोग महावीर को मान पाए। ज्यादा लोग कभी भी मान सकेंगे, यह शक मालूम पड़ता है। लेकिन किसी न किसी दिन जैसे-जैसे मनुष्य का मन विस्तीर्ण होगा और सत्य के अनंत पहलू हमें दिखाई पड़ने शुरू होंगे, वैसे-वैसे हमें, निश्चय का जोर गिर जाएगा। निश्चय कमजोरी है, अनिश्चय बड़ी प्रज्ञा है।
आइंस्टीन अनिश्चत है विज्ञान के जगत में। महावीर अनिश्चत है दर्शन के जगत में। ये दो शिखर है, अदभुत। महावीर ने दर्शन को जितना दिया उतना ही आइंस्टीन ने विज्ञान को दिया। दोनों अनिश्चित है। महावीर का नाम है स्यातवाद, आइंस्टीन का नाम है रिलेटिविटी। आइंस्टीन कहता है, कोई भी सत्य निरपेक्ष नहीं है, सापेक्ष है, तुलना में है, किसी की तुलना में है, सीधा पूर्ण सत्य कुछ भी नहीं है।
विज्ञान को हम सोचते थे, बहुत निश्चित बात, लेकिन नया विज्ञान एकदम अनिश्चित होता चला जाता है। मेरी अपनी समझ यह है कि जहां भी सत्य के निकट पहुंचता है मनुष्य, वहीं अनिश्चित हो जाता है।
जब हम दर्शन में सत्य के निकट पहुंचे महावीर के साथ, तो अनिश्चय हो गया। स्यात, रिलेटिव, निरपेक्ष नहीं सापेक्ष। कहो, लेकिन जानकर, कि अधूरा है। अंश है, पूरा नहीं है। और कहो जानकर कि उससे विपरीत भी सही हो सकता है। तुम्हारा वक्तव्य, तुम जो कहते हो वह बताता है, लेकिन किसी का खंडन नहीं करता।
विज्ञान में आइंस्टीन के साथ हम फिर दूसरी दिशा से सत्य के निकट पहुंचे। सब अनिश्चित हो गया। आइंस्टीन ने कहा, कहो, लेकिन ध्यान रखना कि सब तुलनात्मक है। कोई चीज पूर्ण नहीं है, सब अधूरा है। और इसलिए अनिश्चय ज्ञान का अनिवार्य अंग है। वक्तव्य अनिश्चित होंगे, अनुभव निश्चित हो सकता है।
सत्य के लिए इतनी कठिन शर्तें--क्रोध, लोभ, भय, हंसी-मजाक में भी असत्य नहीं बोलना चाहिए।
हंसी-मजाक में भी हम अहैतुक नहीं बोलते सत्य, उसमें हेतु होता है।
अकसर तो जब आप मजाक करते हैं किसी का, तो चोट पहुंचाने के लिए ही करते हैं।
इसलिए बुद्धिमान आदमी दूसरे का मजाक न करके, अपना ही मजाक करता है। दूसरे पर कोई मजाक हिंसा हो सकती है।
यह मुल्ला नसरुद्दीन की मैं इतनी कहानियां आपको कहता हूं। इसकी कहानियां खुद के ऊपर किए गए मजाक हैं, खुद के ऊपर किए गए मजाक हैं। हर कहानी में मुल्ला खुद ही फंसता है। खुद ही मूढ़ सिद्ध होता है। अपने पर हंस रहा है।
नसरुद्दीन ने कहा है कि जो दूसरों पर हंसता है, वह नासमझ और जो अपने पर हंस सकता है, वह समझदार है।
हम मजाक भी करते हैं, तो उसमें चोट है, आघात है किसी के लिए। फ्रॉयड ने मजाक पर बड़ी खोज की है। वह महावीर से राजी होता, अगर उसको पता चलता कि महावीर ने कहा है कि मजाक में भी असत्य मत बोलना। फ्रॉयड ने कहा है, तुम्हारी सब मजाकें तरकीबें हैं। तुम जो हिम्मत से सीधा नहीं बोल पाते, वह तुम मजाक से बोलतो हो।
इसलिए कभी ख्याल किया आपने कि अगर आप जितनी जोक्स आपने सुनी हों उनमें निन्यानबे प्रतिशत सेक्स से संबंधित क्यों होती हैं? और जिस मजाक में कामवासना न आ जाए, उसमें मजाक जैसा भी मालूम नहीं पड़ता। क्यों? क्योंकि सेक्स के संबंध में हम सीधा नहीं बोल सकते, इसलिए मजाक से बोलते हैं। वह झूठ है हमारा, छिपाया हुआ। जो हम सीधा नहीं बोल सकते, उसे हम गोल-गोल घुमा-घुमा कर बोलते हैं।
कभी आपने ख्याल किया कि मजाक में आप किसको अपमानित करते हैं?
समझ लें कि एक रास्ते पर एक राजनीतिक नेता एक केले के छिलके पर फिसल
कर गिर पड़े, तो आपको ज्यादा मजा आएगा, बजाय एक मजदूर गिर पड़े तो। क्यों? क्योंकि राजनीतिक नेता को आप नीचे गिरा कर देखने की बड़ी दिल से इच्छा रख कर बैठे हैं। एक मजदूर गिर पड़े तो दया भी आएगी कि बेचारा। एक राजनीतिक गिर पड़े तो दिल खुश हो जाएगा। केला, छिलका वही है, गिरने की घटना वही है। लेकिन

राजनीतिक नेता गिरता है तो इतना मजा क्यों आता है? बहुत दिनों से चाहा था कि गिरे। जो हम न कर पाए वह केले के छिलके ने कर दिखाया। इसलिए दिल खुश हो जाता है।
हमारी मजाक में भी हमारे हेतु हैं। हम जब हंसते हैं, तब भी हमारे हेतु हैं। हम न तो अकारण हंस सकते है और न अकारण रो सकते हैं। सब जगह हेतु है। महावीर कहते हैं, वहां भी खोजते रहना, सावधान रहना, मजाक में भी असत्य नहीं।

आज इतना ही
रुकें पांच मिनट, कीर्तन करें।

महावीर-वाणी, भाग 1
बाईसवां प्रवचन

कामवासना है दूसरे की खोज (ब्रह्मचर्य-सूत्रः 1)

विरई अबंभचेरस्स, काम-भोगरसन्नुणा।
उग्गं महव्ययं बंमं, धारेयव्वं सुदुक्करं।।
मूलमेयमहम्मस्स महोदोससमुस्सयं।
तम्हा मेहुणसंसग्गं, निग्गंधा वज्जयन्ति णं।।
विभूसा ईत्थिसंसग्गो, पणीयं रसभोयणं।
नरस्सऽत्तगवेसिस्स, विस तालउडं जहा।।

जो मनुष्य काम और भोगों के रस को जानता है, उनका अनुभवी है, उसके लिए अब्रह्मचर्य त्याग कर, ब्रह्मचर्य के महाव्रत को धारण करना अत्यंत दुष्कार है।
निर्ग्रंथ मुनि अब्रह्मचर्य अर्थात मैथुन-संसर्ग का त्याग करते हैं, क्योंकि यह अधर्म का मूल ही नहीं, अपितु बड़े दोषों का भी स्थान है।
जो मनुष्य अपना चित्त शुद्ध करने, स्वरूप की खोज करने के लिए तत्पर है उसके लिए देह काशृंगार, स्त्रियों का संसर्ग और स्वादिष्ट तथा पौष्टिक भोजन दूध, मलाई, घी, मक्खन, विविध मिठाइयां आदि--का सेवन विष जैसा।

काम-ऊर्जा, सेक्स एनर्जी, मनुष्य के पास एकमात्र ऊर्जा है।
एक ही शक्ति है मनुष्य के पास, उस शक्ति को हम कोई भी नाम दें। वह शक्ति दो
दिशाओं में गतिमान हो सकती है।
काम-ऊर्जा किसी दूसरे के प्रति गतिमान हो, तो यौन बन जाती है, और काम-ऊर्जा स्वयं के प्रति गतिमान हो तो योग बन जाती है।
ऊर्जा एक है, दिशाओं के भेद से सारा जीवन भिन्न हो जाता है।
पानी को हम गर्म करें सौ डिग्री तक तो भाप बन जाता है, हलका हो जाता है. द्माकाश की तरफ उड़ने में सक्षम हो जात है। पानी को हम ठंडा करें शून्य डिग्री के नीचे, पत्थर का बर्फ हो जाता है, भारी हो जाता है। जमीन की गुरुत्वाकर्षण की शक्ति उस पर वजनी हो जाती है।
भाप भी पानी है, बर्फ भी पानी है--भाप आकाश की तरफ उड़ती है, बर्फ जमीन
की तरफ गिर जाती है।
ऊर्जा एक है, दिशांए दो हैं।
जिसे हम यौन कहते हैं, सेक्स कहते हैं, वह उसी एक्स, अज्ञात ऊर्जा का नीचे की तरफ प्रवाह है। शून्य डिग्री के नीचे बर्फ बन जाना है। तब जमीन का गुरुत्वाकर्षण उस पर सघन हो जाता है। वही ऊर्जा, वही एक्स, अज्ञात शक्ति ऊपर की तरफ उठनी शुरू हो जाए, सौ डिग्री के पार, परमात्मा की तरफ, भाप की तरह उठनी शुरू हो जाती है। जमीन का नीचे का खिंचाव समाप्त हो जाता है। शक्ति एक है, दिशांए अलग हैं।
तो पहली बात तो यह समझ लेनी जरूरी है कि शक्ति एक है। उसके उपयोग पर निर्भर करेगा कि वह आपकों कहां ले जाए!
दूसरी बात यह समझ लेनी जरूरी है कि शक्ति तटस्थ है। शक्ति स्वयं आपसे नहीं कहती कि क्या करें। शक्ति आपको हेतु नहीं देती, गति नहीं देती। शक्ति तटस्थ आपके भीतर मौजूद है। आप ही जो करना चाहें उस शक्ति का उपयोग करते हैं, शक्ति आपसे कुछ भी नहीं करवाती। आप नीचे की ओर बहाना चाहें तो ऊर्जा नीचे की ओर बहेगी, ऊपर की ओर बहाना चाहें तो ऊपर की ओर बहेगी। निर्णायक आप हैं, शक्ति नहीं। शक्ति आपके हाथ में है। अगर नीचे ले जाएंगे तो नीचे के जो सुख-दुख हैं वे मिलेंगे। अगर ऊपर ले जाएंगे तो ऊपर के जो अनुभव हैं, वे मिलेंगे।
तीसरी बात समझ लेनी जरूरी है कि इस शक्ति के रूपांतरण के दो उपाय हैं।
एक उपाय का नाम है योग, उपायका नाम है तंत्र। दोनों विपरीत हैं। दोनों

उपाय जितने विपरीत हो सकते हैं उतने विपरीत हैं, लेकिन दोनों का लक्ष्य एक है।
मार्ग विपरीत भी एक लक्ष्य पर पहुंचा सकते हैं। इस संबंध में थोड़ी बात समझ लें, फिर यह सूत्र समझना आसान होगा।
तंत्र की मान्यता है कि काम-ऊर्जा का पूरा अनुभव जब तक न हो, तब तक काम-ऊर्जा को रूपांतरित नहीं किया जा सकता। काम-ऊर्जा का जितना गहन अनुभव हो सके, उतना ही काम के रस से मुक्ति हो जाती है। यह महावीर से बिल्कुल उलटा सूत्र है।
इसे थोड़ा ठीक से समझ लें तो फिर महावीर का, जो बिल्कुल विपरीत दृष्टीकोण है, वह समझना आसान हो जाएगा। कंट्रास्ट में, एक दूसरे को सामने रखकर देखना आसान हो जाएगा।
तंत्र मानता है कि हम केवल उसी से मुक्त हो सकते हैं, जिसका हमें अनुभव हो। लेकिन क्यों? हम उसी से क्यों मुक्त हो सकते हैं, जिसका हमें अनुभव हो? तब तो इसका यह अर्थ होगा कि जिस दिन हमें मोक्ष का अनुभव होगा, हम मोक्ष से मुक्त हो जाएंगे। तब तो इसका यह अर्थ होगा, जिस दिन हमें आनंद का अनुभव होगा हम आनंद से मुक्त हो जाएंगे। तब तो इसका यह अर्थ होगा कि जिस दिन हम आत्मा का अनुभव कर लेंगे, उस दिन आत्मा व्यर्थ हो जाएगी।
नहीं, तंत्र का कहना यह है, जिस अनुभव की पूरी प्रक्रिया से गुजरकर अगर मुक्ति न हो तो समझना कि वह अनुभव स्वभाव है। और जिस अनुभव से गुजरकर मुक्ति हि जाए, समझना कि वह परभाव है।
उस अनुभव से मुक्ति हो जाती है जिसमें पहले सुख मालूम पड़ता था और पीछे दुख मिलता हैं उस अनुभव से मुक्ति हो जाती है जिसके ऊपर तो लिखा था अमृत, लेकिन खोल फाड़ने पर जहर मिलता है। उस अनुभव से मुक्ति हो जाती है जो व्यर्थ सिध्द हो जाता है।
इसलिए तंत्र कहता है, काम का पूरा अनुभव आवश्यक है, ताकि काम का रस विलीन हो जाए। क्योंकि काम का रस भ्रांत है। रस है नहीं, प्रतीत होता है। जो प्रतीत होता है, अगर पूरे अनुभव से गुजरा जाए तो विलीन हो जाएगा।
रात के अंधेरे में मुझे एक रस्सी सांप मालूम पड़ती है। उससे मैं कितना
ही भागूं वह मेरे लिए रस्सी न हो पाएगी, सांप ही बनी रहेगी।
तंत्र कहता है, निकट जाऊं, प्रकाश को जला लूं, देख लूं, जान लूं, अनुभव में आ जाए कि रस्सी है; सांप नहीं है। तो भय विलीन हो जाएगा।
कामवासना मालूम होती है स्वर्ग है। मालूम होता है, कामवासना में गहरा आनंद है। अगर वस्तुतः आनंद है तो तंत्र कहता है, छोड़ना पागलपन है। अगर वस्तुतः आनंद नहीं है तो अनुभव से गुजरकर जान लेना जरूरी है कि रस्सी रस्सी है, सांप नहीं है। और जिस दिन यह दिखाई पड़ जाएगा कि अनुभव आनंदहीन है, न केवल आनंदहीन बल्कि दुख परिपूरित है, उस दिन उसे कौन पकड़ना चाहेगा? यह तंत्र की दृष्टि है। यह एक उपाय है। दूसरा एक उपाय है जो महावीर की दृष्टि है, जो योग की दृष्टि है। और ये दोनों बिल्कुल विपरीत हैं, पोलर अपोजिट्स हैं।
महावीर कहते हैं, जिसका अनुभव हो जाए, उससे छुटकारा मुश्किल है। महावीर कहते हैं, जिसका हम अनुभव करते हैं तो अनुभव की प्रक्रिया में आदत निर्मित होती है। जितना अनुभव करते हैं, उतनी आदत निर्मित होती है। और आदत का एक दुष्चक्र है--आदत का एक दुष्चक्र है। धीरे-धीरे यांत्रिक हो जाता है। एक अनुभव किया, दूसरा अनुभव किया, फिर यह अनुभव हमारे शरीर की, रोएं- रोएं की मांग बन जाती है। फिर इस अनुभव के बिना अच्छा नहीं लगता, और अनुभव से भी अच्छा नहीं लगता। अनुभव करते हैं तो लगता है कुछ भी न मिला, और अनुभव नहीं करते हैं तो लगता है कुछ खो रहा है। तो अनुभव करते हैं, पछताते हैं, और तब फिर खाली जगह मालूम होने लगती है, फिर अनुभव करते हैं।
महावीर कहते हैं, जिसका अनुभव कर लिया जाए, अनुभव आदत का निर्माता हो जाता है... , और आदमी जीता है आदत से।
आप चौबीस घंटे जो करते हैं, वह सिर्फ आदत है। जरूरी नहीं है कि करने के लिए कोई अंतःप्रेरणा रही हो। ठीक वक्त रोज भोजन करते हैं, उस वक्त शरीर कहता है, भूख लगी है। जरूरी नहीं है कि भूख लगी हो। और घड़ी अगर बदल कर रख दी

जाए, और आप एक बजे रोज भोजन लेते हैं और आपको पता न हो कि घड़ी धोखा दे रही है, अभी ग्यारह ही बजे हैं और घड़ी में एक बज गया, तो आपका पेट खबर देना शुरू करेगा कि भूख लग गई है। मन को खबर हुई कि एक बज गया, कि आदत दोहरनी शुरू हो जाएगी।
आप जिस वक्त सोते हैं, अगर उसी वक्त न सो जाएं तो नींद तिरोहीत हो जाती है। अगर नींद वास्तविक थी और आप रोज बारह बजे रात सोते थे, तो एक बजे रात तक और भी तीव्रता से आनी चाहिए। लेकिन अगर बारह बजे नहीं सोए, एक बज गया, तो नींद आती ही नहीं। वह जो बारह बजे की नींद थी, आदतन थी, हैबिचुअल थी, वास्तविक नींद नहीं थी। अगर आपको एक बजे भूख लगती है और तीन बज गए, तो आप हैरान होंगे, भूख मर जाती है। बढ़नी चाहिए। अगर वास्तविक भूख है तो एक बजे वाली भूख तीन बजे और गहरी हो जानी चाहिए। लेकिन तीन बजे भूख मर जाती है। क्योंकी भूख आदतन थी।
सभ्य आदमी जितना सभ्य होता है, उतनी आदत से जीता है। न असली भूख रह जाती है, न असली नींद रह जाती है। तब आदमी का काम-अनुभव भी आदत हो जाता है।
तब जरूरी नहीं कि भीतर कोई अंतःप्रेरणा हो। पति-पत्नी आदत हो जाते हैं। और आदत दोहरती चली जाती है।
एक बहुत बड़े विचारक डी.एच. लारेंस ने लिखा है कि विवाह अनुभव कम, आदत ज्यादा है। वही कमरा, वही बिस्तर, वही रंग-रोनक, वही पत्नी, वही समय--आदत। डी. एच. लारेंस ने लिखा है कि एक बात मुझे इतनी कष्टकर है जितनी और कोई नहीं। रोज उसी बिस्तर पर सोना। उसने लिखा है कि मैं कहीं भी मरना पसंद करूंगा, बिस्तर पर नहीं। ऐसे आमतौर से निन्यानबे प्रतिशत लोग बिस्तर पर मरते हैं। क्योंकि आदमी बड़ा मजेदार है।
अगर आप हवाई जहाज में बैठे हैं, तो लोग कहते हैं कि मत बैठो। कभी-कभी लाख में एकाध आदमी हवाई जहाज में मरता है। घोड़े पर सवारी करें, तो लोग कहते हैं, मत करो। कभी-कभी हजार में एक आदमी घोड़े से गिरकर मर जाता है। लेकिन कोई आपसे नहीं कहता, बिस्तर पर मत सोओ, निन्यानबे प्रतिशत आदमी बिस्तर पर मरतें हैं। अधिकतम दुर्घटनांए बिस्तर पर घटती हैं। डी. एच. लारेंस ने कहा है, बिस्तर एक आदत है। और ठीक समय पर जैसे भूख लगती है और नींद आती है, ठीक समय पर काम की वृत्ति पैदा हो जाती है। और तब लोग आदतें दोहराते रहते हैं। महावीर कहते हैं, अनुभव आदत का निर्माण करता है और आदमी से जीता है होश से नहीं जीता। अगर होश से जीए तो तंत्र की बात ठीक हो सकती है। लेकिन आदमी जीता है आदत से, होश से नहीं जीता। इसलिए महावीर की बात में भी अर्थ है।
महावीर कहते हैं, एक बार आदत बननी शुरू हो जाए तो फिर बनती चली जाती है। बीज को जमीन में मत डालो तो अंकुर नहीं निकलता। एक बार डाल दो फिर अंकुर निकलता चला जाता है और वृक्ष बन जाता है। और वृक्ष में हजार करोड़ बीज लग जाते हैं। लेकिन बीज को जमीन में मत डालो, रखा रहने दो तो अंकुर नहीं निकलता है। एक दफा अनुभव में गुजरो, बीज जमीन पकड़ लेता है। और फिर आदत का अंकुर बढ़ना शुरू हो जाता है। फिर वह बढ़ता चला जाता है। फिर वह बड़ा होता चला जाता है।
इसलिए महावीर ने बच्चों को भी दीक्षा का मार्ग खोला। बल्कि महावीर के हिसाब से बच्चे को ही दीक्षा देनी चाहिए। अब तो मनोवैज्ञानिक भी कहते है कि सात साल की उम्र के बाद आदमी में बदलाहट मुश्किल हो जाती है। तो अगर सात साल, प्राथमिक सात वर्ष एक ढंग के निर्मित कर दिए जाएं तो आदमी फिर उन्ही ढंगों में जीता चला जाता है। इसलिए पहले सात वर्ष पूरे सत्तर वर्ष की संक्षिप्त कथा हैं। फिर वही दोहरता चला जाता है।
यह बड़ी मजे की बात है, इस पर थोड़ा सोचना जरूरी है कि आदत कितनी अदभुत है। आप अपनी मां को प्रेम करते हैं, सभी बच्चे करते हैं। लेकिन आपने कभी ख्याल न किया होगा कि मां प्रेम भी वैज्ञानिक अर्थों में सिर्फ आदत है। इस पर लारेंज ने बहुत काम किया। और लारेंज ने सब्स्टीट्यूट मदर्स, परिपूरक माताओं के प्रयोग किए।
जैसे एक बत्तख का बच्चा पैदा हुआ, तो बत्तख का बच्चा पैदा होता है, तो बत्तख ही उसे सबसे पहले मिलती है। मुर्गी का बच्चा पैदा होता है, तो

मुर्गी ही उसे सबसे पहले मिलती है। स्वभावतः, आदमी का बच्चा पैदा होता है, तो पहला दर्शन और पहला अनुभव मां का होता है।
लारेंज ने ऐसे प्रयोग किए कि मुर्गी का बच्चा पैदा हो, तो मुर्गी का उसे अनुभव न हो पाए। मुर्गी छिपा ली जाए। मुर्गी की जगह उसने एक रबर का फुग्गा फुला कर रख दिया। बच्चे को पहला जो दर्शन हुआ बच्चे को, जो पहला अनुभव हुआ। वह पहला अनुभव अंतिम अनुभव है। पहला अनुभव सबसे गहन अनुभव है। क्योंकि सबसे पहली आदत है। फिर सब कुछ उसके ऊपर निर्मित होगा।
उस बच्चे ने रबर का फुग्गा देखा। वह रबर के फुग्गे के प्रति वैसा ही आसक्त हो गया जैसा मां के प्रति। इसके बाद रबर का फुग्गा हवा में उड़ाया जाए तो बच्चा उसके पीछे
दौड़े, लेकिन मां पास हो तो उसकी तरफ ध्यान भी न दे। मां व्यर्थ हो गई, क्योंकि वह आदत न बन पाई। यह रबर का फुग्गा सार्थक हो गया, यह मां बन गया। लारेंज कहता है, कि मां कोई अर्थ नहीं। वह पहली आदत है। लेकिन और बड़े अनुभव हुए। यह जो मुर्गी का बच्चा रबर के गुब्बारे के पास बड़ा हुआ, इसको खाना, इसको पीना, सब यांत्रिक विधि से दिया गया, इसकी मां से नहीं। इसका मां से कोई संबंध नहीं जोड़ा गया। एक बड़ी हैरानी की बात हुई कि इस बच्चे के मन में मादाओं के प्रति कोई रस पैदा नहीं हुआ। वह मुर्गियों में उत्सुक नहीं रहा, उसके जीवन में सेक्स सूख गया।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जिस बच्चे को मां से पहला संपर्क न हो, जीवन
में स्त्री से उसके गहरे संबंध न हो पाएंगे। मां ही पहली आदत है। और इसलिए हर आदमी अपनी पत्नी में मां को खोजता है, जाने अनजाने, चेतन अचेतन में मां को रहता है। और बड़ी कठिनाई यह है कि मां दुबारा मिल नहीं सकती पत्नी मे ं। इसलिए पत्नी से कभी चैन और शांति मिल नहीं सकती। मां पत्नी हो नहीं सकती, और कोई पत्नी मां बनने को राजी नहीं, और कठिनाई तो यह है कि यह अचेतन आकांक्षा है। इसलिए अगर कोई पत्नी मां बनने को राजी हो तो भी पति को दुख होगा।
पुरुषों का इतना आकर्षण स्त्रियों के स्तन में, मां के संबंध में बनी पहली आदत का परिणाम है, और कुछ भी नहीं है। मां से पहली आदत बनी, दूसरी आदत स्तन से बनी। इसलिए पुरुष स्त्री के स्तन में इतने आतुर हैं, इतने उत्सुक हैं।
चित्रकार, मूर्तिकार, फिल्में, वे सब स्त्री के स्तन के पास चली जाती हैं। कहानियां, कवितांए, रोमांस, वे सब स्त्री के स्तन के आस पास निर्मित होता चला जाता है। उससे कुछ और पता नहीं चलता सिर्फ इतना ही पता चलता है, जैसे मुर्गी रबर के गुब्बारे के पास आसक्त हो गई, बच्चा स्तन के प्रति आसक्त हो गया। और बूढ़ा भी मुक्त नहीं हो पाता उस आदत से। बूढ़ा भी मुक्त नहीं हो पाता स्तन की आदत से। वह रस कायम ही रहता है, वह रस बना ही रहता है। अगर आदतें इतनी महत्वपूर्ण हैं, तो महावीर कहते हैं, जिस अनुभव से छूटना हो उस अनुभव में न उतरना ही उचित है। उतर जाने के बाद छूटना रोज-रोज मुश्किल होता चला जाएगा। महावीर मनुष्य को एक यंत्र की भांति देखते हैं और निन्यानबे प्रतिशत आदमी यंत्र हैं। तो महावीर कहते हैं, यंत्रवत आदमी का जो जीवन है वह वहीं रोक दिया जाना चाहिए जहां से चीजों की शुरुआत होती है।
क्या इस बात की संभावना है कि अगर एक व्यक्ति को काम के समस्त अनुभवों, परिस्थितियों से बाहर रखा जा सके, तो उसके जीवन में काम का प्रवाह पैदा नहीं होगा?
इस बात की संभावना नहीं है कि काम का प्रवाह पैदा नहीं होगा। एक दिन बच्चा युवा होगा, शक्ति से भरेगा, ऊर्जा आएगी, शरीर का यंत्र शक्ति देगा, काम ऊर्जा भर उठेगी। काम से, काम की ऊर्जा से, सारी परिस्थितियां भी रोक ली जाए, तो भी बच्चा भरेगा। लेकिन, एक फर्क पड़ेगा। उस बच्चे के पास आदतों के सुनिश्चित मार्ग न होंगे। ऊर्जा भर जाएगी, लेकिन आदतों के बहने के लिए कोई निर्मित मार्ग न होंगे। उस बच्चे की ऊर्जा को किसी भी दिशा में रूपांतरित करना आसान होगा।

जिनके मार्ग निर्मित हो गए हैं, उन्हे नये मार्ग बनाना कठिन होता है। क्योंकि ऊर्जा पुराने मार्ग पर बिना श्रम के बहती है। अगर कोई भी मार्ग निर्मित न हो, तो नया मार्ग निर्मित करना बहुत आसान होता है; क्योंकि ऊर्जा बहना चाहती है। और कोई भी मार्ग मिल जाए तो गति से उस मार्ग पर अग्रसर हो जाती है।
महावीर की यही दृष्टि है। वे कहते हैं, काम का अनुभव खातरे में ले जाएगा, फिर ब्रह्मचर्य की तरफ आना मुश्किल होता चला जाएगा। इसलिए अनुभव से बचना।
इसे ध्यान से समझ लें--अनुभव से बचना दमन नहीं है, रिप्रेशन नहीं है। जिसको फ्रॉयड ने दमन कहा है, वह अनुभव से बचना दमन नहीं है। महावीर के लिए अनुभव से बचना ऊर्जा को दबाना नहीं है, अनुभव से बचना ऊर्जा को नया मार्ग देना है। जो ऊर्जा नीचे की तरफ बह रही है, उसे अगर ऊपर की तरफ ले जाना है, तो नीचे की तरफ बहने का अनुभव न हो तो ऊपर की तरफ मार्ग बनाना आसान होगा। लेकिन तब, तंत्र की ओर महावीर के योग की सारी प्रक्रियाएं विपरीत हो जाएंगी, सारी प्रक्रियाएं। तंत्र जो भी करेगा, महावीर के लिए वह गलत हो जाएगा और महावीर जो भी करेंगे, वह तंत्र के लिए गलत होगा।
मेरी दृष्टी में दोनों मार्गों से पहुंचना संभव है। दोनों मार्गों पर अलग-अलग बात पर जोर है ऊपर से, लेकिन भीतर एक ही बात पर जोर है, वह भी आपसे कह दूं।
वह जोर, तंत्र कहता है रस से मुक्ति होगी, अनुभव से। महावीर कहते हैं,
रस लेना ही मत, तो मुक्ति होगी। लेकिन रस से मुक्ति दोनों में केंद्रीय है। रस से मुक्ति कैसे होगी इन बातों में, दोनों में भेद है।
इसलिए तंत्र, उन लोगों के लिए आसान पड़ेगा जो होश जगाने में लगे है। जो लोग होश को जगाने में नहीं लगे हैं, उनके लिए तंत्र खतरनाक होगा। इसलिए तंत्र बहुत थाड़े से लोगों के काम की बात मालूम पड़ती है। इसलिए तंत्र का व्यापक प्रभाव नहीं हो सका। लेकिन भाविष्य में तंत्र का व्यापक प्रभाव होगा, क्योंकि वह सारा समाज का, जीवन का ढांचा रोज-रोज तंत्र के ज्यादा अनुकूल आता जा रहा है। और लोग अनुभव से, रसविहीन होते चले जा रहे हैं।
यह जान कर आपको हैरानी होगी कि जिन देशों में यौन की जितनी स्वतंत्रता है, यौन के प्रति उतनी ही विरक्ति, पैदा होती जा रही है। जिन मुल्कों में यौन की जितनी... जितनी गूलामी है, जितनी परतंत्रता है, उतनी यौन के प्रति उत्सुकता है। अगर सारा जगत ठीक से समृद्ध हुआ, समृद्ध होने का मतलब दो ही होता है, क्योंकि आदमी की दो ही भूख हैं--एक शरीर की भूख है, जो रोटी से पूरी होती है, मकान से पूरी होती है, सामान से पूरी होती है। और एक यौन की भूख है, जो प्रेम से पूरी होती है। अगर इन दोनों का अतिरेक हो गया तो तंत्र की सार्थकता बढ़ती चली जाएगी। लेकिन अभी भी वह अतिरेक हुआ नहीं है।
और महावीर जो कह रहे हैं वह बिल्कुल विपरीत है। उस विपरीतता में जो मौलिक बिंदु है, वह हम ख्याल में ले लें तो फिर सूत्र समझ में आ जाए। तंत्र कहता है, जिससे मुक्त होना है, उसमें जाओ। महावीर कहते हैं, जिससे मुक्त होना है, उसको छुओ ही मत। पहले कदम पर रुक जाओ। क्योंकि अंतिम कदम पर तुम रुक सकोगे, इसका भरोसा कम है।
तंत्र कहता है, अगर शराब से मुक्त होना है तो शराब पीयो और होश को संभालो। शराब की मात्रा उतनी ही बढ़ाते जाओ जितना होश बढ़ता जाए, लेकिन होश सदा ऊपर रहे और शराब कभी भी बेहोश न कर पाए।
और तांत्रिकों ने अदभुत प्रयोग किए। और ऐसे तांत्रिक हैं कि उनको कितना ही नशा पिला दो, बेहोश न कर पाओगे। बेहोशी न आए तो शराब पीई भी और नहीं भी पीई। शरीर में तो शराब गई, और चेतना में शराब को कोई सस्पर्श न हुआ।
तो तंत्र कहता है, चेतना को मुक्त करो, शराब को जाने दो शरीर में, लेकिन चेतना को अछूता रहने दो।

यह कठिन है। लंबी साधना की बात है। और सबके लिए शायद संभव भी नहीं, हालांकि सब करना चाहेंगे। लेकिन तंत्र का सूत्र पूरा करना कठिन है, क्योंकि तंत्र का सूत्र यह है कि होश न खो जाए, तो शराब पीयो।
महावीर कहते हैं, अगर होश खोता हो, तो बेहतर है, पीयो ही मत। लेकिन दोनों एक बात में राजी हैं कि होश नहीं खोना चाहिए। महावीर कहते हैं, पीयो ही मत, कहीं होश न खो जाए। तंत्र कहता है, पीयो और होश को बढ़ाओ।
यह सभी बातों के संबंघ में है।
महावीर कहते हैं, मांस नहीं। तंत्र कहता है, मांस का भी प्रयोग किया
जा सकता है। लेकिन तंत्र कहता है, चाहे सब्जी खाओ, चाहे मांस खाओ, भीतर मन में कोई भेद न पड़े। यह बहुत कठिन बात है।
तंत्र कहता है कि अभेद को पाना है, अद्वैत को पाना है तो कोई भेद न पड़े। मांस खाओ तो, सब्जी लो तो, कोई भेद भीतर न पड़े। अगर भेद पड़ गया, तो मांस खाना खतरनाक हो गया। अगर भेद न पड़े भीतर कोई--जहर भी पिया या अमृत भी--भीतर कोई भेद न पड़े। भीतर अनासक्त मन बना रहे, दोनों बराबर मालूम पड़े, तो तंत्र कहता है, तो फिर मांसाहार, मांसाहार नहीं है।
महावीर कहते हैं, यह कठिन है कि भेद न पड़े। जिनके जीवन में हर चीज में भेद है, वह कितना ही कहे कि सोना हमारे लिए मिट्टी है, फिर भी सोना सोना है और मिट्टी मिट्टी है। जिनके जीवन में हर चीज में भेद है, जो इंच भर बिना भेद के नहीं चलते, वह मदिरा और मांस लेकर पानी पी जाएंगे, इसकी आशा करनी कठिन है। तो महावीर कहते हैं, जहां से गिर जाने का डर हो वहां गति मत करो। इसलिए पूरी प्रक्रिया का रूप बदल जाएगा।
"जो मनुष्य काम और भोगों के रस को जानता है, उसका अनुभवी है, उसके लिए अब्रह्मचर्य त्याग कर ब्रह्मचर्य के महाव्रत को धारण करना अत्यंत दुष्कर है।"
आदत को तोड़ना अत्यंत दुष्कर है, और आप सब जानते हैं कि काम की आदत गहनतम आदत है। एक आदमी सिगरेट पीता है, उसे छोड़ना मुश्किल है। हालांकि पीने वाले सभी यह सोचते हैं कि जब चाहें, तब छोड़ दें। पीने वाले कभी यह नहीं सोचते कि हम कोई अडिक्टेड हैं, या हम कोई उसके गुलाम हो गए।
मुल्ला नसरुद्दीन को उसके डाक्टर ने कहा कि अब तुम शराब बंद कर दो, क्योंकि शराब से अडिक्शन पैदा होता है। आदमी गुलाम हो जाता है। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि रहने दो, चालीस साल से पी रहा हूं, अभी तक अडिक्टेड नहीं हुआ, अब क्या खाक होऊंगा! अनुभव से कहता हूं कि चालीस साल से रोज पी रहा हूं, अभी तक अडिक्टेड नहीं हुआ।
आप जो भी करते हैं, सोचते हैं, जब चाहें तब छोड़ दें, इतना आसान नहीं है। जरा सी आदत भी छोड़नी आसान नहीं। आदत बड़ी वजनी है। आपकी आत्मा आदत से बहुत कमजोर है। एक छोटी सी आदत छोड़ना चाहें, तब आपको पता चलेगा कि कितना मुश्किल है, लेकिन काम तो गहनतम आदत है, क्योंकि बायोलाजिकल है, जैविक है। गहनतम आपके प्राणों में काम की ऊर्जा छिपी है, क्योंकि आदमी का जन्म होता है काम से, उसका रोआं-रोआं निर्मित होता है काम से, उसका एक-एक कोष्ठ पैदा होता है काम के कोष्ठ से।
आप काम का ही विस्तार हैं। आप हैं इसलिए जगत में कि आपके माता-पिता, उनके पिता, उनकी मां करोड़ों-करोड़ों वर्ष से काम ऊर्जा को फैला रहे हैं। आप उसका एक हिस्सा हैं। आपके माता-पिता की कामवासना का आप फल हैं।
इस फल के रोएं-रोएं में, कण-कण में कामवासना छिपी है। और सब आदतें ऊपरी हैं। कामवासना गहनतम आदत है। इसलिए महावीर कहते हैं, अगर आदत निर्मित होनी शुरू हो जाए तो अत्यंत दुष्कर है। फिर अब्रह्मचर्य का त्याग करके ब्रह्मचर्य में प्रवेश करना अत्यंत दुष्कर है।
असंभव वे नहीं कहते, इसलिए तंत्र का पूर्ण निषेध नहीं है। दुष्कर कहते हैं। और निश्चित ही, जिनको सिगरेट पीना छोड़ना मुश्किल हो, उनके लिए महावीर ठीक ही कहते हैं। जो सिगरेट भी न छोड़ सकते हों, वे सोचते हों कि काम के अनुभव को छोड़ देंगे, तो वे आत्महत्या में लगे हैं। उनके लिए यह संभव नहीं होगा।

इसलिए तंत्र की भी शर्तें भी बड़ी अजीब हैं। तंत्र पहले और सब तरह की आदतें तुड़वाता है, और जब निश्चिंत हो जाता है तांत्रिक गुरु कि सब तरह की आदतें टूट गईं तब, तब वह इन गहन प्रयोगों के लिए आज्ञा देता है।
तंत्र की शर्तें कठोर हैं। तंत्र मानता है, जब तक प्रत्येक स्त्री में मां का दर्शन न होने लगे, न केवल मां का, बल्कि जब तक प्रत्येक स्त्री में तारा का, दुर्गा का, देवी का, भगवती का, परम मां का, जगत जननी का स्मरण न होने लगे, तब तक तंत्र नहीं कहता कि संभोग के द्बारा समाधि उपलब्ध हो सकेगी।
तो तंत्र की प्राथमिक प्रक्रियाओं में स्त्री में मां का दर्शन, परम जननी का दर्शन। इसके प्रयोग हैं। इसलिए सभी तांत्रिक ईश्वर को मां के रूप में देखते हैं, पिता के रूप में नही। और जब मां दिखाई पड़ने लगे प्रत्येक स्त्री में, तभी तंत्र का प्रयोग किया जा सकता है।
और तंत्र के प्रयोग की जो पूरी आयोजना है, वह अति कठिन है। अति कठिन इसलिए है कि पहले स्त्री को तिरोहित करना होता है। वह समाप्त हो जाए, विलीन हो जाए, स्त्री मौजूद न रहे, और तब ही उसके साथ संभोग में परम पवित्र भाव से प्रवेश करना होता है। अगर क्षण भर को भी वासना आ जाए, तो तंत्र का प्रयोग असफल हो जाता है। लेकिन वह दूभर है। महावीर कहते हैं, दुष्कर है। आसान आदमी के लिए यही है कि वह जिससे मुक्त होना चाहता हो, उसकी आदत निर्मित न करे।
यह आसान क्यों है? क्योंकि जब ऊर्जा भीतर भरती है तो बहना चाहती है। ऊर्जा का लक्षण है बहना। जैसे नदी बहती है सागर की तरफ, ऐसे ऊर्जा भी किसी से मिलने के लिए बहती है।
ये मिलन दो तरह के हो सकते हैं। यह मिलन या तो अपने से बाहर घटित होगा
कि किसी पुरुष का स्त्री से, किसी स्त्री का पुरुष से। यह एक बहाव है। एक और बहाव है भीतर की तरफ, अपने से ही मिलने का। यह जो आंतरिक बहाव है, अगर बाहर बहने की आदत न हो तो शक्ति खुद इतनी भर जाएगी कि वह भीतर के द्वार खटखटाने लगेगी और भीतर बढ़ना शुरू हो जाएगी।
ब्रह्मचर्य पर इतना जोर इसी कारण है। इस कारण कि शक्ति खुद भी मार्ग खोजने लगे, और नीचे की कोई आदत न हो, बाहर की कोई आदत न हो, दूसरे के प्रति बहने की कोई
आदत न हो, तो मार्ग न मिले। और जब मार्ग नहीं मिलता और शक्ति बढ़ती चली जाती है और बांध तोड़ना चाहती है, तब साधक आसानी से भीतर जाने वाला मार्ग खोल सकता है। शक्ति खुद ही सहयोगी हो जाती है, खोलने के लिए।
इसलिए महावीर कहते हैंः "निर्ग्रंथ मुनि अब्रह्मचर्य अर्थात मैथुन-संसर्ग का त्याग करते हैं। क्योंकि यह अधर्म का मूल ही नहीं, अपितु बड़े से बड़े दोषों का भी स्थान है।"
अगर ऊर्जा बाहर की तरफ बहती है, तो समस्त अधर्म का मूल है। क्योंकि धर्म की परिभाषा हमने की है, स्वभाव। धर्म का अर्थ हुआ, अपने को पा लेना। अधर्म का फिर अर्थ हुआ, अपने से बाहर किसी को पाने की कोशिश, दी अदर, दूसरे को पाने की कोशिश। धर्म का अर्थ है, स्वयं को पाना; तो अधर्म का अर्थ हुआ, पर को पाना। इसलिए कामवासना से ज्यादा अधर्म कुछ भी नहीं हो सकता। क्योंकि कामवासना का अर्थ ही है, दूसरे की खोज। धर्म का अर्थ है, अपनी खोज। तो महावीर कहते हैंः "अधर्म का मूल है, और बड़े से बड़े दोषों का स्थान भी।"
इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है।
हमारे जीवन में जितने दोष पैदा होते हैं, उनमें निन्यानबे प्रतिशत कामवासना से संबंधित होते हैं। आदमी अगर धन इकट्ठा करने के लिए पागल हो जाता है, तो उसे चाहे पता हो न पता हो, आदमी धन इसलिए पाना चाहता है कि अंततः धनसे कामवासना पाई जा सकती है।
आदमी पद पाना चाहता है, यश पाना चाहता है अंततः इसीलिए कि उससे कामवासना ज्यादा सुगमता से पूरी की जा सकती है। आदमी जीवन में और जो-जो करने निकल पड़ता है उस सब के पीछे गहन में कामवासना छिपी होती है। यह दूसरी

बात है कि वह पूरा न कर पाए। वह साधन को ही पूरा कने में लगा रहे और साध्य तक न पहुंच पाए। यह दूसरी बात है। लेकिन गहन में साध्य एक ही होता है। क्यों ऐसा है? क्योंकि आदमी कामवासना का विस्तार है और आदमी के भीतर मैंने कहा, दो भूखें है, आप जब भोजन करते हैं तो यह आपके जीवन की सुरक्षा है, और जब आप यौन में उतरते हैं तो यह जाति के जीवन की सुरक्षा है। वह भी एक भोजन है।
आप अगर भोजन करना बंद कर दें, तो आप मरेंगे। अगर आप कामवासना बंद कर दें, तो आप जाति को मारने का कारण बनते हैं। इसलिए जर्मनी के बड़े प्रसिद्ध विचारक इमैनुअल कांट ने तो ब्रह्मचर्य को अनीति कहा है। और उसके कारण हैं कहने के, उसका कहना यह है कि अगर सारे लोग ब्रह्मचर्य का पालन करें तो जीवन तिरोहित हो जाएगा। और कांट कहता है, नीति का यह नियम है, ऐसा नियम, जिसका सब लोग पालन कर सकें। जिसका सब लोग पालन न कर सकें और अगर सब लोग पालन करें, तो जीवन जो कि नीति का आधार है, संभावना है, वही तिरोहित हो जाए, तो वह अनीति है।
फिर तो ब्रह्मचर्य भी नहीं पाला जा सकता। अगर जीवन तिरोहित हो जाए, तो
जो नियम की पूर्णता स्वयं ही नष्ट कर देती हो, वह नियम नैतिक नहीं है। एक अर्थ में ठीक है। आप किसी को मारते हैं, यह हिंसा है। आप अगर कामवासना को रोक लेते हैं तो भी आप उनकी हिंसा कर रहे हैं, जो इस कामवासना से पैदा हो सकते थे।
कांट के हिसाब से ब्रह्मचर्य हिंसा है। जो हो सकते थे, जो जन्म ले सकते थे उनको आप रोक रहे हैं। तो कांट कहता है, कोई आदमी अगर भूखा रहे तो यह उतना बड़ा पाप नहीं है, क्योंकि वह अपने लिए कुछ... अपने ऊपर कुछ कर रहा है। ठीक है, स्वतंत्र है। लेकिन कोई आदमी ब्रह्मचारी रहे तो खतरनाक है, क्योंकि इसका... इसका अर्थ हुआ कि वह जाति को नष्ट करने का उपाय कर रहा है। लेकिन कांट की सोचने की एक सीमा है। इस जीवन के अलावा कांट के लिए और कोई जीवन नहीं है। इस जीवन के पार और कोई रहस्य का लोक नहीं है।
महावीर कहते है कि जो ऊर्जा इस जगत में प्राणियों को जन्म देने के काम आती है वही ऊर्जा स्वयं को उस जगत में जन्म देने के काम आती है। ऊर्जा वही है--आत्म जन्म, खुद का ही पुनर्जन्म, उसके ही लिए काम आती है।
तो महावीर के तर्क अलग हैं। महावीर कहते हैं--और अब तो विज्ञान समर्थन देता है, एक संभोग में कोई दस करोड़ सेल, वीर्याणु छूटते हैं--तो महावीर कहते हैं, एक संभोग में दस करोड़ जीवन छूटते हैं, दो घंटे के भीतर वे सब मर जाते हैं। तो प्रत्एक संभोग में दस करोड़ जीवन की हत्या का पाप है। और एक आदमी अगर अपने जीवन में संयमपूर्वक संभोग करे तो चार हजार संभोग कर सकता है। चार हजार संभोग में, प्रति संभोग में दस करोड़ जीवाणु नष्ट होते हैं। तो आप गणित को फैला दें। अगर आपके दस-पांच बच्चे पैदा भी हो जाते हैं तो अरबों खरबों जीवन की हत्या पर।
जीवन बड़ा अदभुत है। दस करोड़ जीवाणु छूटते हैं संभोग में और उनमें संघर्ष शुरू हो जाता है उसी वक्त। बाजार में ही प्रतियोगिता नहीं है, दिल्ली में ही प्रतियोगिता नहीं है। जैसे ही दस करोड़ ये जीवाणु स्त्री की योनि में मुक्त होते हैं, इनमें संघर्ष शुरू हो जाता है। ये दस करोड़ लड़ने लगते हैं आपस में कि कौन आगे निकल जाए। क्योंकि एक ही स्त्री अंडे तक पहुंच सकता है। वे जो आलंपिक में दौड़े होती हैं वे कुछ भी नहीं हैं। बड़ी से बड़ी दौड़, जिसका आपको पता भी नहीं चलता, जिस पर सारा जीवन निर्भर होता है, वह बड़े अज्ञात में होती है। ये दस करोड़ धावक दौड़ पड़ते हैं। इनमें से एक पहुंच पाता है। बाकी सब मर जाते हैं रास्ते में और वह एक भी सदा नहीं पहुंच पाता। जितनी जमीन की संख्या है इस वक्त, इतनी संख्या एक आदमी पैदा कर सकता है। साढ़े तीन अरब लोग हैं। एक-एक आदमी के पास उसके वीर्य में इतने जीवाणु हैं कि साढ़े तीन अरब लोग पैदा कर दें। एक आदमी एक जीवन में इतनी हत्याएं करता है। ये सब मर जाते हैं, ये बच नहीं सकते।
महावीर का हिसाब यह है कि यह बड़ी हिंसा है इसलिए अब महावीर अब्रह्मचर्य को हिंसा कहते हैं। यह बड़ी भारी महान हिंसा है क्योंकि इतने

प्राण! यह सारी की सारी ऊर्जा रूपांतरित हो सकती है और इस सारी ऊर्जा के आधार पर स्वयं का नव-जन्म हो सकता है।
फिर महावीर यह भी नहीं मानते कि इस जगत को होना कोई अनिवार्यता है। यह
न हो तो कुछ हर्जा नहीं है। क्योंकि इसके होने से सिवाय हर्जें के और कुछ भी नहीं होता। यह पृथ्वी खाली हो तो हर्जा क्या है? आप न हुए तो ऐसा क्या बिगड़ जाता है? फूल ऐसे ही खिलेंगे, चांद ऐसा ही निकलेगा, समुद्र ऐसी ही दहाड़ मारेगा, हवाएं इतनी ही शान से बहेंगी, सिर्फ बीच में आपके मकानों की बाधा न होगी। आपके होने न होने से फर्क पड़ता है? आप नहीं हुए तो क्या होता है? आपके होने से जमीन सिर्फ एक नरक बन जाती है।
महावीर कहते हैं, यह जो चेतना रोज-रोज शरीर में उतरती है, उपद्रव ही पैदा करती है। इसे शरीर से मुक्त करना है और किसी दूसरे लोक में इसको जन्म देना है, जहां कोई संघर्ष नहीं है। मोक्ष और संसार में इतना ही अर्थ है। संसार में हर चीज संघर्ष है, हर चीज, चाहे आपको पता चलता हो या न पता चलता हो। यहां एक श्वास भी मैं लेता हूं तो किसी की श्वास छीनकर लेता हूं। यहां मैं जीता हूं तो किसी को मार कर जीता हूं। यहां होने का अर्थ ही किसी को मिटाना है। यहां कोई उपाय ही नहीं है, यहां जीवन मौत से ही चलता है। यहां हिंसा भोजन है। चाहे कोई मांस खाता हो या न खाता हो, पशु-पक्षी मारता हो न मारता हो; लेकिन कुछ भी खाता हो, सब भोजन हिंसा है। हिंसा से बचा नहीं जा सकता। कोई उपा य नहीं है।
तो महावीर कहते हैं, एक ऐसा लोक भी है चेतना का, जहां कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है, जहां कोई संघर्ष नहीं है। ध्यान रहे, सारा संघर्ष शरीर के कारण है। आत्मा के कारण कोई भी संघर्ष नहीं है। इस पृथ्वी पर भी जो लोग आत्मा को पाने में लगते हैं, उनका किसी से कोई संघर्ष नहीं है।
अगर मैं धन पा रहा हूं तो किसी का छीनूंगा। अगर मैं सौंदर्य की खोज कर रहा हूं तो किसी न किसी को कुरूप कर दूंगा। मैं कुद भी कर रहा हूं, बाहर के जगत में कोई न कोई छिनेगा, कोई न कोई पीछे पड़ेगा। लेकिन अगर मैं ध्यान कर रहा हूं, अगर मैं भीतर शांत होने की कोशिश कर रहा हूं अगर मैं भीतर एक अंतर्यात्रा पर जा रहा हूं, मौन, होश खोज रहा हूं तो मैं किसी से कुछ भी नहीं छीन रहा हूं। मुझसे किसी को कोई नुकसान नहीं होता, मुझसे किसी को लाभ हो सकता है।
महावीर के होने से किसी को कोई नुकसान नहीं हुआ, लाभ बहुत हुआ है। लेकिन संसार में, जितना बड़ा आदमी हो, उतना ज्यादा नुकसान पहुंचाने वाला होता है। वह बड़ा किसी भी दिशा में हो। उसका बड़प्पन ही निर्भर है दूसरे से छीनने पर।
संसार में छीना-झपटी नियम है, क्योंकि शरीर छीना-झपटी का प्रारंभ है।
वह मां के गर्भ से ही शुरू हो जाती है, छीना-झपटी। वह फिर जीवन भर चलती जाती है।
मोक्ष का अर्थ हैः जहां शुद्ध है चेतना, शरीर से मुक्त। जहां कोई संघर्ष नहीं है। जहां होना, दूसरे की हत्या और हिंसा पर निर्भर नहीं है।
तो महावीर कहते हैं, इस ऊर्जा का उपयोग उस जगत में प्रवेश के लिए है।
यह प्रवेश दूसरे की तरफ दौड़ने से कभी भी न होगा। और कामवासना दूसरे की तरफ दौड़ती है। कामवासना दूसरे से बांधती है, और कामवासना दूसरे पर निर्भर करा देती है। इसलिए कामवासना से जुड़े हुए व्यक्तियों में सदा कलह बनी रहेगी। कलह का मतलब केवल इतना ही है, कि कोई भी आदमी गुलाम नहीं होना चाहता। और कामवासना गुलाम बना देती है।
आप किसी को प्रेम करते हैं, तो आप उस पर निर्भर हो जाते हैं। उसके बिना आपको सुख, संतोष, क्षणभर के लिए जो झलक मिलती हो वह नहीं मिल सकती। वह उसके हाथ में है, चाबी उसके हाथ में है, और उसकी चाबी आपके हाथ में हो जाती है। चाबियां बदल जाती हैं। पत्नी की चाबी पति के हाथ में, पति की चाबी पत्नी के हाथ में। निश्चित ही गुलामी अनुभव होनी शुरू हो जाती है। जिसके कारण हमें सुख मिलता है, उसके हम गुलाम हो जाते हैं और जिसके कारण हमें दुख मिल सकता है, उसके कारण भी हम गुलाम हो जाते है। फिर गुलामी के प्रति विद्रोह चलता है।

अभी एक बहुत विचारशाल मनोवैज्ञानिक ने एक किताब लिखी है--दि इंटिमेट एनिमी। वह पति-पत्नी के संबंध में किताब है--आंतरिक शत्रु। आंतरिकता भी बनी रहती है, शत्रुता भी चलती रहती है। शत्रुता अनिवार्य है। पति-पत्नी के बीच मित्रता आकस्मिक है, शत्रुता अनिवार्य है। मित्रता सिर्फ इसलिए है ताकि शत्रुता टूट ही न जाए, जुड़ी रहे। बनी रहे, चलती रहे। जब टूटने के करीब आ जाती है, तो मित्रता है। फिर मित्रता जमा देती है उखड़ा रूप। फिर शत्रुता शुरू हो जाती हैं। शत्रुता अनिवार्य है। उसका कारण है, क्योंकि जिसके प्रति हम निर्भर हो जाते है, उसके प्रति दुर्भाव शुरू हो जाता है। उससे बदला लेने का मन हो जाता है, वह दुश्मन हो जाता है।
महावीर कहते हैं, कि जब तक हम दूसरे के प्रति बह रहे हैं, तब तक हम गुलाम रहेंगे। कामवासना सबसे बड़ी गुलामी है। इसलिए ब्रह्मचर्य को सबसे बड़ी स्वतंत्रता कहा है और इसलिए ब्रह्मचर्य को मोक्ष का अनिवार्य हिस्सा मान लिया महावीर ने।
"जो मनुष्य अपना चित्त शुद्ध करने, स्वरूप की खोज करने के लिए तत्पर है, उसके लिए देह काशृंगार, स्त्रियों का संसर्ग, और स्वादिष्ट तथा पौष्टिक भोजन का सेवन विष जैसा है।"
जिसे अपना चित्त शुद्ध करना हो, जिसे स्वरूप की उपलब्धि करनी हो, क्यों उसके लिए देह काशृंगार, क्यों उसके लिए स्त्री का संसर्ग या पुरुष का संसर्ग, और स्वादिष्ट तथा पौष्टिक भोजन विष जैसा है? क्यों?
इसके कारण हम ठीक से ध्यान में ले लें।
देह काशृंगार हम करते ही इसलिए हैं कि हमारी उत्सुकता किसी और में है। देह काशृंगार कोई अपने लिए नहीं करता, सदा दूसरे के लिए करता है। जिसके प्रति हम आश्वस्त हो जाते हैं, उसके लिए फिर हम देह काशृंगार नहीं करते। इसलिए दूसरों की पत्नियां ज्यादा सुंदर मालूम पड़ती हैं, अपनी पत्नीयां उतनी सुदंर नहीं मालूम पड़तीं। क्योंकि पत्नियां आश्वस्त हो जाती हैं पति के प्रति। अब रोज-रोजशृंगार करने की कोई जरूरत नहीं। जिसको जीत लिया, अब उसको जीतने को रोज-रोज क्या कारण है? तो पति उनकी असली शक्ल देखता है। उससे वह ऊब जाता है। पड़ोसी उनकी नकली शक्ल देखते हैं, जो बाहर तैयार होकर आती हैं; इसलिए पड़ोसी उनमें रस लेते मालूम पड़ते हैं।
पश्चिम में मनावैज्ञानिक समझाते हैं स्त्री को, अगर पति को सदा ही अपने में उत्सुक रखना हो तो सदा ही वह रोज-रोज जीते, इसके उपाय करते रहना चाहिए। जीत निश्चित न हो जाए क्योंकि जीत जब निश्चित हो जाती है, जो पुरुष का रस खो जाता है। पुरुष जीत में उत्सुक है।
दूसरे की पत्नी कम सुंदर भी हो, तो भी ज्यादा आकर्षक मालूम हो सकती है। क्योंकि आकर्षण जीत में है। जितना दुरूह हो जाए, उतना मुश्किल मालूम पड़ने लगता है। जितना मुश्किल मालूम पड़ने लगे, उतनी चुनौती मिलती है। शृंगार हम करते ही दूसरों के लिए हैं, अपने लिए नहीं। अगर आपको अकेले जंगल में छोड़ दिया जाए, तो आप सोचें कि आप क्या करेंगे? आपशृंगार नहीं करेंगे और भला कुछ भी करें। सजाएंगे नहीं, क्योंकि सजाने का मतलब है, किसके लिए?
इसलिए हमने इंतजाम कर रखा था, पति मर जाए तो फिर हम विधवा स्त्री को सजने नहीं देते, क्योंकि हम उससे पूछते हैं कि किसके लिए? वह अगर अपने लिए ही सज रही थी, तो विधवा को भी सजने में क्या हर्ज है? वह पति के लिए सज रही थी। अब चूंकि पति नहीं है, इसलिए किसके लिए? और अगर विधवा को हम सजते देखें, तो शक पैदा होता है कि उसने कहीं न कहीं पति की तलाश शुरू कर दी है; इसलिए हम उसको सजने नहीं देते। उसको हम सब तरफ के कुरूप करने की कोशिश करते हैं।
बड़े मजे की बात है कि क्या सौंदर्य दूसरे के लिए है? असल में सौंदर्य
एक फंदा है, एक जाल है जिसमें हम किसी को फंसाना चाहते हैं।
महावीर कहते हैं, जब दूसरे में उत्सुकता ही नहीं तोशृंगार का क्या प्रयोजन? इसलिए महावीर ने कहा, तुम जैसे हो, अपने लिए अगर तुम पृथ्वी पर अकेले होते तो वैसे ही रहो। इसलिए महावीर नग्न हो गए। इसलिए महावीर ने शरीर की सजावट छोड़ दी। इसका यह मतलब नहीं है कि महावीर शरीर के शत्रु हो

गए। न। इसका यह भी मतलब नहीं कि महावीर ने अपने शरीर को कुरूप कर लिया, क्योंकि वह तो दूसरी अतिशयोक्ति होती।
सौंदर्य भी अगर हम निर्माण करते हैं, तो दूसरे के लिए, कुरूपता भी अगर निर्माण करते हैं, तो दूसरे के लिए। जिस दिन पत्नी नाराज हो उस दिन वह पति के सामने सब तरह से कुरूप रहेगी, सजेगी नहीं। यह भी दूसरे के लिए। अगर सजने से सुख देने का उपाय था, तो कुरूप रह कर दुख देने का उपाय है।
महावीर ने दूसरे का ख्याल छोड़ दिया। अपने लिए जैसा जी सकते थे वैसा जीने लगे। इससे वे कुरूप नहीं हो गए, बल्कि सही अर्थों में पहली दफा एक सौंदर्य निखरा, जो दूसरे के लिए नहीं था, जो अपने भीतर से आ रहा था, जो अपने ही लिए था, जो स्वभाव था।
शृंगार झूठ है, और इसलिएशृंगार में छिपा हुआ सौंदर्य एक धोखा है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं किशृंगार की चेष्टा वह जो वास्तविक सौंदर्य होना चाहिए था, उसकी कमी की पूर्ति है। इसलिए जितनी सुंदर स्त्री होगी, उतना कमशृंगार करेगी। जितनी कुरूप स्त्री होगी, उतना ज्यादाशृंगार करेगी। कुरूप समाज सब तरह से आभूषणों से लद जाएगा। सुंंदर समाज आभूषणों को छोड़ देगा। हम कमी पूर्ति कर रहे हैं, लेकिन दृष्टि दूसर पर है--दृष्टि सदा दूसरे पर है।
पुरुष क्यों इतनाशृंगार नहीं करता? पुरुष कुछ और करता है क्योंकि स्त्रियां सौंदर्य में कम उत्सुक हैं, शक्ति में ज्यादा उत्सुक हैं। पुरुष शक्ति में कम उत्सुक हैं सौंदर्य में ज्यादा उत्सुक हैं, इसलिए स्त्रियां पूरी जिंदगीशृंगार में बिताती हैं। पुरुषशृंगार की फिकर नहीं करता। उसका कारण है। उसका कारण इतना है कि पुरुष के लिए शक्ति अगर हो उसके पास, तो वही स्त्री की उत्सुकता का कारण है। कितना धन उसके पास है, कितना बलिष्ठ शरीर उसके पास है, यह स्त्री के लिए मूल्यवान है।
स्त्री के मन में सौंदर्य का अर्थ शक्ति है। पुरुष के मन में सौंदर्य
का अर्थ कमनीयता है, कोमलता है, शक्ति नहीं। पर पुरुष शक्ति को बढ़ाने में लगा रहता है, जिस चीज से भी शक्ति मिलती है, धन से मिलती है, यश से मिलती है तो धन की दौड़ करता है, यश की दौड़ करता है। मगर वह भी दूसरे के लिए है। महावीर कहते हैं, यह दूसरे के लिए होना, यही संसार है। अपने लिए हो जाना मुक्ति है। यह जो दूसरे के लिए होने की चेष्टा है इसमेंशृंगार भी होगा, स्त्रियों संसर्ग भी होगा--स्त्री से या पुरुष से मतलब नहीं है-- विपरीत यौन से। विपरीत यौन के पास रहने की आकांक्षा होगी। क्योंकि जब भी विपरीत यौन पास होगा, तभी आपको लगेगा, आप हैं। और जब वह पास नहीं होगा तभी आप उदास हो जाएंगे, लगेगा आप नहीं हैं।
तो देखें, अगर बीस पुरुष बैठे हों, उनमें चर्चा चल रही हो और फिर एक सुंदर स्त्री उस कमरे में आ जाए, तो कमरे की रौनक बदल जाती है। चेहरे बदल जाते हैं, चर्चा में हलकापन आ जाता है, भारीपन मिट जाता है, विवाद की जगह ज्यादा संवाद मालूम पड़ने लगता है। क्यों? बीस ही पुरुष, स्त्री के आते अनुभव पहली दफा करते हैं कि वे पुरूष हैं। वह स्त्री की जो मौजूदगी है वह उनके पुरुष के प्रति सचेतना बन जाती है। उनकी रीढ़ें सीधी हो जाएंगी, वे ठीक सम्हल कर बैठ जाएंगे, टाई ठीक कर लेंगे, कपड़े वगैरह सब सुधार लेंगे। विपरीत मौजूद हो गया। आकर्षण शुरू हो गया।
विपरीत का आकर्षण है। इसलिए पुरुषों के अगर क्लब हों, तो उदास होंगे, अकेले पुरुषों के क्लब बिल्कुल उदास होंगे। वहां कोई रौनक न होगी। अकेली स्त्रियों की भी अगर बैठक हो तो थोड़ी बहुत देर में, जो स्त्रियां मौजूद नहीं है, जब उनकी निंदा चुक जाएगी, तो सब फालतू मालूम पड़ने लगेगा।
दो स्त्रियों में मित्रता भी मुश्किल है। मित्रता का एक ही कारण हो सकता है कि अगर कोई तीसरी स्त्री दोनों की शत्रु हो तो--कोई उपाय नहीं है। पुरुषों में मित्रता हो जाती है क्योंकि उनके बहुत शत्रु हैं चारो तरफ। मित्रता बनाते ही हम इसलिए हैं कि शत्रु के खिलाफ लड़ना है। स्त्रियों में कोई मैत्री नहीं बन सकती है। और उनकी बैठक हो तो उसमें चर्चा योग्य भी कुछ नहीं हो सकता, सब छिछला होगा। लेकिन एक पुरुष को प्रवेश करा दें और सारी स्थिती बदल जाएगी।

यह अचेतन सब होता है। यह अचेतन सब होता है, इसके लिए चेतन रूप से आपको कुछ करना नहीं होता है। आपकी ऊर्जा ही करती है।
दूसरे की हम तलाश करते हैं, ताकि हम अपने को अनुभव कर सकें। विपरीत को
हम खोजते हैं, ताकि हमें अपना पता चल सके।
इसलिए महावीर कहते हैं, विपरीत का संसर्ग--जिसे ब्रह्मचर्य साधना है, जिसे स्वरूप की तलाश करनी है उसे छोड़ देना चाहिए। ख्याल ही विपरीत का छोड़ देना चाहिए। क्योंकि आत्मा विपरीत से नहीं जानी सकती, केवल शरीर विपरीत से जाना जा सकता है।
शरीर के तल पर आप स्त्री हैं, पुरुष हैं। आत्मा के तल पर आप न स्त्री हैं न पुरुष हैं। अगर आत्मा को खोजना है, तो विपरीत का कोई उपयोग नहीं है। अगर शरीर की ही खोज जारी रखनी है, तो विपरीत के बिना कोई उपयोग नहीं है। वैज्ञानिक कहते हैं कि कभी न कभी स्त्री और पुरुष अलग-अलग नहीं थे।
बाइबिल की कहानी बड़ी सच मालूम पड़ती है। बाइबिल में कहानी है कि ईश्वर अकेला रहते-रहते ऊब गया, अकेला-अकेला रहे तो कोई भी ऊब जाए। उसने आदम को पैदा किया। फिर आदम अकेला ऊबने लगा, तो उसकी पसली निकाल कर उसने हव्वा, ईव को पैदा किया। स्त्री को पैदा किया।
कीर्कगार्ड ने बड़ा गहरा मजाक किया है। उसने कहा, पहले ईश्वर अकेला ऊब रहा था। फिर उसने आदम को पैदा किया। फिर आदम और ईश्वर ऊबने लगा। फिर उसने आदम की हड्डी से ईव को पैदा किया। फिर ईव और आदम ऊबने लगे, उन्होंने बच्चे पैदा किए--केन और अबेल को पैदा किया। फिर केन, अबेल, आदम, ईव, ईश्वर, सब ऊबने लगे। पूरा परिवार ऊबने लगा। तो फिर उन्होंने पूरा संसार पैदा किया, और अब पूरा संसार ऊब रहा है।
लेकिन बाइबिल की कहानी कहती है कि आदम की हड्डी से ईश्वर ने ईव को पैदा किया। यह बात अब तक तो मिथ, पुराण कल्पना थी; लेकिन विज्ञान की खोजों ने सिद्ध किया कि इसमें एक सच्चाई है।
जैसे हम पीछे लौटते हैं जीवन में तो अमीबा, जो पहला जीवन का अंकुरण है पृथ्वी पर, उसमें स्त्री और पुरुष एक साथ हैं। उसका शरीर दोनों का है। उसको पत्नी खोजने कहीं जाना नहीं पड़ता। उसकी पत्नी उसके साथ ही जुड़ी है, वह पति पत्नी एक है। वह पहला रूप है अमीबा। फिर बाद में, बहुत बाद में अमीबा टूटा और उसके दो हिस्से हुए।
इसलिए स्त्री पुरुष में इतना आकर्षण है, क्योंकि बायोलॉजी के हिसाब
से वे एक बड़े शरीर के दो टूटे हुए हिस्से हैं, इसलिए वे पास आना चाहते हैं। निकट आना चाहते हैं, जड़ना चाहते हैं, फिर से। संभोग उनकी जुड़ने की कोशिश है। इस कोशिश में उन्हें जो क्षण भर का मेल मालूम पड़ता है, वही उनका सुख है। यह जो जुड़ने की कोशिश है, शरीर के तल पर अर्थपूर्ण है क्योंकि आधे-आधे हैं दोनों, और दोनों को अधूरापन लगता है। पर आत्मा के तल पर न कोई पुरुष है, न कोई स्त्री है।
इसलिए महावीर कहते हैं, जो स्वरूप को खोज रहा हो, शरीर को नहीं, उसके लिए विपरीत के संसर्ग की सार्थकता तो है ही नहीं, खतरा भी है। क्योंकि जैसे ही विपरीत मौजूद होगा, उसका शरीर प्रभावित होना शुरू हो जायेगा। वह कितना ही अपने को रोके, उसके शरीर के अणु विपरीत के प्रति खिंचने लगेंगे। यह खिंचाव वैसा ही है जैसे हम चुंबक को रख दें और लोहे के कण उसकी तरफ खिंच आएं।
जैसे ही पुरुष मौजूद होगा, स्त्री मौजूद होगी, दोनों के शरीरों के कण
का रुख आकर्षण का हो जाता है; वे एक दूसरे के करीब आने को उत्सुक हो जाते हैं। आपकी इच्छा और अनिच्छा का सवाल नहीं है। आपकी बायोलॉजी, आपके शरीर का ढांचा, आपकी बनावट, आपका होना ऐसा है कि स्त्री और पुरुष के करीब होते ही तत्काल खिंचाव शुरू हो जाता है। उस खिंचाव को आप रोकते हैं, क्योंकि वह मेरी पत्नी नहीं है, वह मेरा पति नहीं है, आप उसको रोकते हैं। वह सभ्यता है, संस्कृति है, नियम है, लेकिन खिंचाव शुरू हो जाता है। वह खिंचाव आपको आत्मा के तल पर जाने से रोकेगा। आपकी ऊर्जा नीचे की तरफ बहने लगेगी। इसलिए महावीर कहते हैं, यह संसर्ग खतरनाक है ब्रह्मचर्य के साधक को। स्वादिष्ट और पौष्टिक भोजन भी, वे कहते हैं, खतरनाक है। विष जैसा है,

क्यों? क्योंकि आपकी जो भी वीर्य ऊर्जा है, वह आपके पौष्टिक भोजन से निर्मित होती है। आपकी जो भी कामवासना है वह पौष्टिक भोजन से निर्मित होती है।
तो महावीर कहते हैं, इतना भोजन लो, जिससे शरीर चल जाता हो, बस। इससे ज्यादा भोजन, जो अतिरिक्त शक्ति देगा, वह कामवासना बनती है। तो महावीर कहते हैं, यह जो अतिरिक्त भोजन है, यह तुम्हें नहीं मिलता, तुम्हारी कामवासना को मिलता है।
इस थोड़ी बात को हम समझ लें।
एक अनिवार्य शक्ति जरूरी है। चलने, उठने-बैठने, काम करने, बोलने इस सबके लिए एक खास केलरी की शक्ति जरूरी है। उतनी केलरी शरीर में लग जाती है। उसके अतिरिक्त जो आपके पास बचता है, वही आपकी कामवासना को मिलता है। ध्यान रखें, हमारे पास जब भी कुछ अतिरिक्त बचता है--जब भी, शरीर में नही, बाहर भी--अगर आपके बैंक-बैलेंस में आपके खर्च और व्यवस्था और जीवन की व्यवस्था को बचा कर कुछ बचता है, तो वह भोग और विलास में लगेगा। उसका कोई और उपयोग नहीं है।
अतिरिक्त हमेशा विलास है। इसलिए जिन समाजों के पास समृद्धी बढ़ेगी वे विलासी हो जाएंगे। यह बड़ी कठिनाई है।
गरीब की अपनी तकलीफें हैं, अमीर की अपनी तकलीफें हैं। गरीब की जीवन की जरूरतें पूरी नहीं हैं, इसलिए बेईमान हो जाएगा, चोर हो जाएगा, अपराधी हो जागेगा। अमीर के पास जरूरत से ज्यादा है, इसलिए विलासी हो जाएगा। संतुलन बड़ा मुश्किल है।
महावीर कहते हैं, संतुलन, सम्यक, उतना भोजन जितने से शरीर का काम चल जाता हो। उससे कम भी नहीं, उससे ज्यादा भी नहीं,। महावीर का जोर सम्यक आहार पर है। इतना, कि जितने से काम चल जाता हो। लेकिन हम ज्यादा लिए चले जाते हैं।
इसमें जो चीजें गिनाई हैं उन्होंने--दूध, मलाई, घी, मक्खन--यह थोड़ा सोचने जैसी है।
दूध असल में अत्याधिक कामोत्तेजक आहार है और मनुष्य को छोड़ कर पृथ्वी
पर कोई पशु इतना कामवासना से भरा हुआ नहीं है, और उसका एक कारण दूध है। क्योंकि कोई पशु, बचपन के कुछ समय के बाद दूध नहीं पीता, सिर्फ आदमी को छोड़ कर। पशु को जरूरत भी नहीं है। शरीर का काम पूरा हो जाता है। सभी पशु दूध पीते हैं अपनी मां का, लेकिन दूसरों की माताओं का दूध सिर्फ आदमी पीता है, और वह भी आदमी की माताओं का नहीं, जानवरों की माताओं का भी पीता है।
दूध बड़ी अदभुत बात है, और आदमी की संस्कृति में दूध ने न मालूम क्या- क्या किया है, इसका हिसाब लगाना कठिन है। बच एक उम्र तक दूध पीए, यह नैसर्गिक है। इसके बाद दूध समाप्त हो जाना चाहिए। सच तो यह है, जब तक मां के सतन से बच्चे को दूध मिल सके, बस तब तक ठीक है। उसके बाद दूध की आवश्यकता नैसर्गिक नहीं है। बच्चे का शरीर बन गया, निर्माण हो गया--दूध की जरूरत थी, हड्डी थी, खून था, मांस बनाने के लिए--स्ट्रक्चर पूरा हो गया, ढांचा तैयार हो गया। अब सामान्य भोजन काफी होगा। अब भी अगर दूध दिया जाता है, तो यह सारा दूध कामवासना का निर्माण करता है। यह अतिरिक्त है। इसलिए वात्स्यायन ने काम सूत्र में कहा है कि हर संभोग के बाद पत्नी को अपने पति को दूध पिलाना चाहिए। ठीक कहा है।
दूध जिस बड़ी मात्रा में वीर्य बनाता है, और कोई चीज नहीं बनाती। क्योंकि दूध जिस बड़ी मात्रा में खून बनाता है और कोई चीज नहीं बनाती। खून बनता है, फिर खून से वीर्य बनता है। तो दूध से निर्मित जो भी है, वह कामोत्तेजक है। इसलिए महावीर ने कहा है, वह उपयोगी नहीं है। खतरनाक है, कम से कम ब्रह्मचर्य के साधक के लिए खतरनाक है। ठीक है, काम-सूत्र में और महावीर की बात में कोई विरोध नहीं है। भोग के साधक के लिए सहयोगी है, तो योग के साधक के लिए अवरोध है। फिर पशुओं का दूध है वह। निश्चित ही पशुओं के लिए, उनके शरीर के लिए, उनकी वीर्य-ऊर्जा के लिए जितना शक्तिशाली दूध चाहिए, उतना पशु मादाएं पैदा करती हैं।

जब एक गाय दूध पैदा करती है, तो आदमी के बच्चे के लिए पैदा नहीं करती, सांड के लिए पैदा करती है। और जब आदमी का बच पीए उस दूध को और उसके भीतर सांड जैसी कामवासना पैदा हो जाए, तो इसमें कुछ आश्चर्य नहीं हैं। वह आदमी का आहार न था। इस पर अब तो वैज्ञानिक भी काम करते हैं, और आज नहीं कल हमें समझना पड़ेगा कि अगर आदमी में बहुत-सी पशु प्रवृत्तीयां हैं, तो कहीं उनका कारण पशुओं का दूध तो नहीं है। अगर उसकी पशु प्रवृत्तीयों को बहुत बल मिलता है, तो उसका कारण पशुओं का आहार तो नहीं है!
आदमी का क्या आहार है, यह अभी तक ठीक से तय नहीं हो पाया। लेकिन वैज्ञानिक हिसाब से अगर आदमी के पेट की हम जांच करें, जैसा कि वैज्ञानिक किए हैं, तो वे कहते हैं, आदमी का आहार शाकाहारी ही हो सकता है। क्योंकि शाकाहारी पशुओं के पेट में जितना बड़ा इंटेस्टाइन की जरूरत होती है, उतनी बड़ी इंटेस्टाइन आदमी के भीतर है। मांसाहारी जानवरों की इंटेस्टाइन छोटी होती है, जैसे शेर की, बहुत छोटी होती है। क्योंकि मांस पचा हुआ आहार है, बड़ी इंटेस्टाइन की जरूरत नहीं है। पचा पचाया है, तैयार है भोजन। उसने ले लिया, वह सीधा का सीघा शरीर में लीन हो जाएगा। बहुत छोटे पाचन यंत्र की जरूरत है।
इसलिए बड़े मजे की बात है कि शेर चौबीस घंटे में एक बार भोजन करता है। काफी है। बंदर शाकाहारी है, देखा आपने उसको! दिनभर चबाता रहता है। उसकी इंटेस्टाइन बहुत लंबी हैं। और उसको दिन भर भोजन चाहिए। इसलिए वह दिन भर चबाता रहेगा।
आदमी का भी बहुत मात्रा में एक बार खाने की बजाय, छोटी-छोटी मात्रा में बहुत बार खाना उचित है। वह बंदर का वंशज है। और जितना शाकाहारी हो भोजन, उतना कम कामोत्तेजक है। जितना मांसाहारी हो उतना कामोत्तेजक होता जाएगा।
दूध मांसाहार का हिस्सा है। दूध मांसाहार है, क्योंकि मां के खून ओर मांस से ही निर्मित होता है। शुद्धतम मांसाहार है। इसलिए जैनी, जो अपने को कहते हैं हम गैर-मांसाहारी है, कहना नहीं चाहिए, जब तक वे दूध न छोड़ दें। क्वेकर ज्यादा शुद्ध शाकाहारी हैं क्योंकि वे दूध नहीं लेते। वे कहते हैं, दूध एनिमल फूड है। वह नहीं लिया जा सकता। लेकिन दूध तो हमारे लिए पवित्रतम है, पूर्ण आहार है, सब उससे मिल जाता है, लेकिन बच्चे के लिए, और वह भी उसकी अपनी मां का। दूसरे की मां का दूध खतरनाक है। और बाद की उम्र में तो फिर दूध-मलाई और घी और ये सब और उपद्रव हैं। दूध से निकले हुए। मतलब दूध को हम और भी कठिन करते चले जाते हैं, जब मलाई बना लेते हैं, फिर मक्खन बना लेते हैं, फिर घी बना लेते हैं, तो घी शुद्धतम कामवासना हो जाती है। और यह सब अप्राकृतिक है, और इनको आदमी लिए चला जाता है। निश्चित ही, उसका आहार फिर उसके आचरण को प्रभावित करता है।
तो महावीर ने कहा है, सम्यक आहार, शाकाहारी आहार, बहुत पौष्टिक नहीं केवल उतना जितना शरीर को चलाता है। ये सम्यक रूप से सहयोगी हैं उस साधक के लिए, जो अपनी तरफ आना शुरू हुआ।
शक्ति की जरूरत है, दूसरे की तरफ जाने के लिए शांति की जरूरत है, स्वयं
की तरफ आने के लिए। अब्रह्मचारी, कामुक शक्ति के उपाय खोजेगा। कैसे शक्ति बढ़ जाए। शक्तिवर्द्धक दवाइयां लेता रहेगा, कैसे शक्ति बढ़ जाए। ब्रह्मचारी का साधक कैसे शक्ति शांत बन जाए, इसकी चेष्टा करता रहेगा। जब शक्ति शांत बनती है तो भीतर बहती है। और जब शांति भी शक्ति बन जाती है, तो बाहर बहनी शुरू हो जाती है।

आज इतना ही
पांच मिनट रुकें।

महावीर-वाणी, भाग 1
तेईसवां प्रवचन

ब्रह्मचर्यः कामवासना से मुक्ति (ब्रह्मचर्य-सूत्रः 2)

सद्दे रूवे य गंधे य, रसे फासे तहेव य।
पंचविहे कामगुणे, निच्चसो परिवज्जए।।
कामाणुगिद्धिप्पभवं खु दुक्खं,
सव्वस्स लोगस्स सदेवगस्स।
जे काइयं माणसियं च किंचि,
तस्सऽन्तगं गच्छइ वीयरागो।।
देवदाणव गंधव्वा जक्खरक्खसकिन्नरा।
बंभयारि नमंसन्ति टुक्करं जे करेन्ति तं।।
एस धम्मे धुवे निच्चे, सासए जिणदेसिए।
सिद्धासिज्झन्ति चाणेण, सिज्झिस्सन्तितहाऽवरे।।

शब्द, रूप गंध, रस और स्पर्श इन पांच प्रकार के काम गुणों को भिक्षु सदा के लिए त्याग दें।
देवलोक सहित समस्त संसार के शारीरिक तथा मानसिक सभी प्रकार के दुख का मूल काम-भोगों की वासना ही है। जो साधक इस संबंध में वीतराग हो जाता है, वह शारीरिक तथा मानसिक सभी प्रकार के दुखों से छुट जाता है।
जो मनुष्य इस प्रकार दुष्कर ब्रह्मचर्य का पालन करता है, उसे, देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर आदि सभी नमस्कार करते हैं।
यह ब्रह्मचय धर्म ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है और जिन्नोपदिष्ट है।
इसके द्वारा पूर्वकाल में कितने ही जीव सिद्ध हो गए हैं, वर्तमान में हो रहे हैं, और भविष्य में होंगे।

पहले एक प्रश्न।
एक मित्र ने पूछा हैः "यदि कामवासना जैविक, बायोलॉजिकल है, केवल जैविक है, तब तो तंत्र की पद्धति ही ठीक होगी। लेकिन यदी मात्र आदतन, हैबिचुअल है, तब महावीर की विधि से श्रेष्ठ और कुछ नहीं हो सकता। क्या है--जैविक या आदतन?"

दोनों है और इसीलिए जटिलता है। ऊर्जा तो जैविक है, बायोलॉजिकल है, लेकिन उसकी अभिव्यक्ति बड़ी मात्रा में आदत पर निर्भर होती है।
पशु और आदमी में जो बड़े से बड़ा अंतर है, वह यही है, कि पशु की आदत भी बायोलॉजिकल है, उसकी आदत भी जैविक है। इसलिए पशुओं में सेक्सुअल पर्वर्सन, कोई काम विकृतियां दिखाई नही पड़तीं। आदमी के साथ सभी कुछ स्वतंत्र हो जाता है। आदमी के साथ कामवसना की जैविक-ऊर्जा भी स्वतंत्र अभिव्यक्तियां लेनी शुरू कर देती है।
जैसे, पशुओं में समलिंगी-यौन, होमोसेक्सुअलिटी नहीं पाई जाती--उन पशुओं को छोड़ कर, जो अजायबघरों मे रहते हैं या आदमियों के पास रहते हैं। पशु यह सोच भी नहीं सकते अपनी निसर्ग अवस्था में कि पुरुष, पुरुष के प्रति कामातुर हो सकता है, स्त्री, स्त्री के प्रति कामातुर हो सकती है। आदमी इंस्टिंक्ट से, इसकी जो निसर्ग के द्वारा दी गई आदतें हैं, उनसे ऊपर उठ जाता है। वह बदलाहट कर सकता है। उसकी जो ऊर्जा हे, वह नये मार्गों पर बह सकती है। तो एक पुरुष पुरुष के प्रेम में पड़ सकता है, एक स्त्री स्त्री के प्रेम में पड़ सकती है। और यह मात्रा बढ़ती ही जाती है।
किन्से ने वर्षों के अध्ययन के बाद अमेरिका में जो रिपोर्ट दी है वह
यह है कि कम से कम साठ प्रतिशत लोग एकाध बार तो जरूर ही समलिंगी यौन का व्यवहार करते हैं। और करीब-करीब पच्चीस प्रतिशत लोग जीवन भर समलिंगी यौन में उत्सुक होते हैं। यह बहुत बड़ी घटना है।
स्त्री का पुरुष के प्रति आकर्षण, पुरुष का स्त्री के प्रति आर्कषण स्वाभाविक है, लेकिन पुरुष का पुरुष के प्रति, स्त्री का स्त्री के प्रति

अस्वाभाविक है। पर अस्वाभाविक, पशुओं को सोचें तो, आदमी के लिए कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है। आदमी जड़ आदतों से मुक्त हो गया है, इसलिए ब्रह्मचर्य पशुओं के लिए अस्वाभाविक है, आदमी के लिए नहीं। आदमी चाहे तो ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो सकता है। कोई पशु ब्रह्मचर्य को उपलब्ध नहीं हो सकता। क्योंकि पशु की कोई स्वतंत्रता नहीं है अपनी ऊर्जा को रूपांतरित करने को, पर आदमी स्वतंत्र है।
तंत्र या योग दोनों ही मनुष्य की काम-ऊर्जा को रूपांतरीत करना चाहते हैं। यह रूपांतरण दो तरह से हो सकता है, या तो काम-ऊर्जा के गहन अनुभव में जाया जाए--होशपूर्वक, या फिर सारी आदत बदल दी जाए, ताकि काम ऊर्जा नई आदत के मार्ग को पकड़ कर उर्ध्वगामी हो जाए। रूपांतरण सदा ही अति से होता है एक्सट्रीम से होता है।
अगर आप एक पहाड़ से कूदना चाहते हैं तो आपको किनारे से ही कूदना पड़ेगा,
आप पहाड़ के मध्य से नहीं कूद सकते। कूदने का अर्थ ही होता है कि जहां खाई निकट है वहां से आप कूद सकते हैं।
जीवन में जो भी छलांग होती है, वह अति से होती है। मध्यसे कोई छालांग नहीं हो सकती। अति, छोर से आदमी कूदता है। काम-ऊर्जा की दो अतियां है--या तो काम ऊर्जा में इतने समग्र भाव से, पूरी तरह उतर जाए व्यक्ति कि छोर पर पहुंच जाए काम के अनुभव के, तो वहां से छलांग हो सकती है। और या फिर इतना अस्पर्शित रहे, बाहर रहे, काम के अनुभव में प्रवेश ही न करे, द्वार पर ही खड़ा रहे तो वहां से भी छलांग हो सकती है। मध्य से कोई छलांग नहीं है। सिर्फ बुद्ध ने कहा है कि मध्य मार्ग है। महावीर मध्य को मार्ग नहीं कहते, तंत्र भी मध्य का मार्ग नहीं कहता। बुद्ध ने कहा है कि "मध्य मार्ग" है। लेकिन अगर बुध्द की बात को भी हम ठीक से समझें तो वह मध्य को इतनी अति तक ले जाते हैं कि मध्य मध्य नहीं रह जाता, अति हो जाता, वे कहते हैं, इंच भर बाएं भी नहीं, इंच भर दाएं भी नहीं, बिल्कुल मध्य का मतलब है, नई अति। अगर कोई बिल्कुल मध्य में रहने की कोशिश करे तो वह नये छोर को उपलब्ध हो जाता है। मध्य में जैसा मैंने कल कहा, अगर पानी को हम शून्य डिग्री के नीचे ले जाएं तो बर्फ बन जाए छलांग हो गई। अगर हम उसे भाप बनाना चाहें तो सौ डिग्री गर्मी तक ले जाएं तो छलांग हो गई। लेकिन कुनकुना पानी कोई छलांग नहीं ले सकता। न इस तरफ, न उस तरफ, वह मध्य में है।
अधिक लोग कुनकुने पानी की तरह हैं, ल्युक वार्म। न वे बर्फ बन सकते हैं न वे भाप बन सकते हैं। वे छोर पर नहीं हैं कहीं से जहां से छलांग हो सके। प्रत्येक व्यक्ति को छोर पर जाना पड़ेगा, एक अति पर जाना पड़ेगा।
ये दो अतियां हैं, योग और तंत्र की। योग अभिव्यक्ति को बदलता है, तंत्र अनुभूति को बदलता है। दोनों तरफ से यात्रा हो सकती है।
इन मित्र ने कहा है, अगर तंत्र थाड़े ही लोगों के लिए है तो आप उसकी चर्चा न ही करते तो अच्छा था। वह खतरनाक हो सकता है।
जो चीज खतरनाक हो, उसकी चर्चा ठीक से कर लेनी चाहिए। क्योंकि खतरे से बचने का एक ही उपाय है कि हम उसे जानते हों। दूसरा कोई उपाय नहीं है लेकिन जब मैं कहता हूं, तंत्र बहुत थोड़े लोगों के लिए है, तो आप यह मत समझ लेना कि योग बहुत ज्यादा लोगों के लिए है। बहुत थोड़े लोग ही छलांग लेते हैं, चाहे योग से, चाहे तंत्र से, अधिक लोग तो कुनकुने ही रहते हैं जीवन भर, न कभी उबलते, न कभी ठंडे होते। यहां जो मिडियाकर, यह जो मध्य में रहने वाला बड़ा वर्ग है, यह कोई छलांग नहीं लेता, और यह छलांग ले भी नहीं सकता। दोनों छोर से छलांग होती है। छोर पर हमेशा थोड़े से लोग पहुंच पाते हैं। छोर पर पहुंचने का अर्थ है, कुछ त्यागना पड़ता है।
ध्यान रहे, किसी भी छोर पर जाना हो तो कुछ त्यागना पड़ता है। अगर तंत्र
की तरफ जाना हो, तो भी बहुत कुछ त्यागना पड़ता है। अगर योग की तरफ जाना हो, तो भी बहुत कुछ त्यागना पड़ता है। अलग-अलग चीजें त्यागनी पड़ती हैं, लेकिन त्यागना तो पड़ता ही है। छोर पर पहुंचने का मतलब ही यह है कि मध्य में रहने की जो सुविधा है, वह त्यागनी पड़ती है। मध्य में कभी कोई खतरा नहीं है। वह जो सुरक्षा है, वह त्यागनी पड़ती है।

जैसे-जैसे आदमी छोर पर जाता है, वैसे-वैसे खतरे के करीब आता है। जहां परिवर्तन हो सकता है, वहां खतरा भी होता है। जहां विस्फोट होगा, जहां क्रांति होगी, वहां हम खतरे के करीब पहुंच रहे हैं। इसलिए अधिक लोग बीच में, भीड़ के बीच में जीते हैं। खतरे से सुरक्षा रहती है। दोनों ही खतरनाक है। लेकिन जिंदगी केवल वे ही लोग अनुभव कर पाते हैं, जो असुरक्षा में उतरने की हिम्मत रखते हैं।
तंत्र भी साहस है, योग भी। कोई महावीर भी बहुत लोग नहीं हो पाते। वह भी आसान नहीं है। आसान कुछ भी नहीं है। आसान है सिर्फ क्रमशः मरते जाना, जीना तो कठिन है। कठिनाई असुरक्षा में उतरने की है, अज्ञात में उतरने की है। कुछ लोग तंत्र से पहुंच सकते हैं, कुछ लोग योग से पहुंच सकते हैं। यह व्यक्ति को खोज करनी पड़ती है कि वह किस मार्ग से पहुंच सकता है। लेकिन कुछ सूचनाएं दी जा सकती हैं--एक, अपने अचेतन को थोड़ा टटोलना चाहिए। अगर अचेतन ऐसा कहता है कि तंत्र तो बड़ा मजेदार होगा, कि इसमें तो कुछ छोड़ना भी नहीं, भोग ही भोग है। वही रास्ता ठीक है, तो समझना कि यह रास्ता आपके लिए ठीक नहीं है। यह आप अपने को धोखा दे रहे हैं।
हर आदमी अपने अचेतन वृत्ति को थोड़े से ही निरीक्षण से जांच सकता है। बड़ी जटिल बात नहीं है। भीतरी रस आपको पता ही रहता है कि आप किसलिए कर रहे हैं। अपने को धोखा देना बहुत कठिन है, असंभव है। थोड़ा सा होश रखें तो आपको जाहिर रहेगा कि आप यह किसलिए कर रहे हैं। अगर आपको रस मालूम पड़ रहा हो तंत्र में तो तंत्र आपके लिए मार्ग नहीं है। अगर आपको योग में रस मालूम पड़ रहा हो तो योग भी आपके लिए मार्ग नहीं है।
कुछ लोगों को योग में रस मालूम पड़ता है। आत्मपीड़क, खुद को सताने वाले लोग, मैसोचिस्ट जिनको मनोवैज्ञानिक कहते हैं, जो अपने को सताने में मजा लेते हैं, ऐसे लोगों को योग में बड़ा रस मालूम पड़ता है। उपवास में, तप में, धूप में खड़ा होने में, नग्न होने में उन्हें बड़ा रस मालूम पड़ता है। किसी भी तरह उन्हें अपने को सताने में रस मालूम पड़ता है।
अगर आपको अपने आपको सताने में रस मालूम पड़ रहा हो, तो आप समझना, योग आपके लिए मार्ग नहीं है। योग आपके लिए बीमारी है। अगर आपको भोग में रस मालूम पड़ रहा हो, इसलिए तंत्र के बहाने आप भोग में उतर रहे हों, तो तंत्र आपके लिए खतरनाक है, बीमारी है।
एक बात ठीक से समझ लेनी चाहिए; चित्त की अस्वस्थता को किसी भी चीज से सहारा देना खतरनाक है। फिर रस न पड़ रहा हो, तो क्या उपाय है? कैसे हम जानें कि इसमे हमें रस नहीं पड़ रहा है? एक बात ध्यान में रखनी जरूरी है--जब भी हम किसी मार्ग से, किसी अंत की तरफ जा रहे हों, तो अंत में रस होना चाहिए, मार्ग में रस नहीं होना चाहिए।
आप एक मंजिल पर जा रहे हैं एक रास्ते से, तो आपको मंजिल में रस होना चाहिए, रास्ते में रस नहीं होना चाहिए। अगर आपको रास्ते में रस है, इसीलिए मंजिल को आपने चुन लिया है कि रास्ता सुखद है, सुंदर छाया है, वृक्ष हैं, फूल हैं, इसलिए इस मंजिल को चून लें तो खतरा है। रास्ता कभी मत चुनें, मंजिल चुनें और मंजिल के अनुकूल रास्ता चुनें, और रास्ते पर बहुत रस न लें। रास्ते में रस जो लेगा वह अटक जाएगा। हम सारे लोग रास्ते में रस लेते हैं, हम रास्ता ही ऐसा चुनते हैं।
फ्रायड ने कहा है कि आदमी इतना कुशाल है कि वह सब तरह के रेशनेलाइजेशन
कर लेता है, सब तरह की तर्कबद्ध व्यवस्था कर लेता है। वह जो चुनना चाहता है, वही चुनता है और चारों तरफ तर्क का आवरण खड़ा कर लेता है, और अपने को समझा लेता है कि यह मैंने किसी अंतवृत्ति के कारण नहीं, किसी वासना के कारण नहीं, बड़े विवेकपूर्वक चुना हैं यह धोखा बहुत आसान है। लेकिन अगर कोई सजग हो, तो इसे ताड़ना कठिन नहीं है। हम... हम हमेशा ही जान सकते हैं, देख सकते हैं कि हमारे भीतर दो तल तो नहीं हैं। दो तल का मतलब यह होता है कि ऊपर आप कुछ समझा रहे हैं अपने को, भीतर से बात कुछ और है।
एक आदमी उपवास कर रहा है, ऊपर से समझ रहा है कि यह साधना है। लेकिन उसे जांचना चाहिए, कहीं उसे खूद को भूखा मारने में किसी तरह का गर्हित रस तो नहीं आ रहा है!

ऐसे लोग हैं जो खुद को सताने में रस लेते हैं। और जब तक वे अपने को न सताएं उन्हें किसी तरह का आनंद नहीं आता। खुद को सताने में उन्हें ऐसे ही मजा आने लगता है, जेसे कुछ लोगों को दूसरों को सताने में मजा आता है। अब खुद के साथ एक फासला कर लेते हैं।
मेसोच एक बड़ा लेखक हुआ। वह जब तक अपने को कोड़े न मार ले रोज, कांटे न चुभा ले, तब तक उसको रस ही न आए। इसलिए उसी के नाम पर मैसाचिज्म, आत्मपीड़न सिद्धांत का निर्माण हो गया।
कोई आदमी कांटे बिछा कर उस पर लेटा हुआ है, वह अपने को कितना ही कहे कि
हम कोई साधना कर रहे हैं, लेकिन कांटों पर लेटने में यह उसे जांच करनी चाहिए कि कहीं कुल रस इतना ही तो नहीं है कि मैं अपने को सता सकता हूं।
जब आप अपने को सताते हैं तो आपको लगता है कि आप अपने मालिक हो गए। जब
आप अपने को सताते हैं तो आपको लगता है, कि अब यह शरीर आपके ऊपर मालिक नहीं रहा। और अगर इसे सताने में भीतरी सुख मिलने लगे, जैसे कि कोई खाज को खुजलाता है और सुख मिलता है, ऐसा ही सताने में सुख मिलने लगे, तो समझना कि आप पैथोलाजिकल, रुग्ण दिशाओं में यात्रा कर रहे हैं।
यही तंत्र के बाबत भी सच है। आदमी कह सकता है कि मैं तो सिर्फ इसलिए कामवासना में उतर रहा हूं, ताकि कामवासना से मुक्त हो सकूं। लेकिन यह दूसरों को धोखा देने में कोई अड़चन नहीं है, खुद तो जानता ही रहेगा कि मैं सच में कामवासना से मुक्त होने के लिए उतर रहा हूं या यह सिर्फ एक बहाना है, एक एक्सक्यूज है, और मैं उतरना चाहता हूं कामवासना में। यह खुद के सामने निरीक्षण सदा बना रहे, तो आज नहीं कल, थोड़ी बहुत भूल-चूक करके आदमी उस रास्ते को पा जाता है, जो मंजिल तक पहुंचाने वाला है।
कौन सा रास्ता आपके लिए मंजिल तक पहुंचाने वाला है, आपके अतिरिक्त निर्णय करना दूसरे को कठिन होगा। अड़चन होगी। लेकिन आप अगर अपने को धोखा ही देते चले जाएं तो आपको भी बहुत अड़चन होगी। लेकिन जो अपने को धोखा देने में लगा है, उसका धर्म से कोई संबंध ही नहीं है। अभी साधना से उसका कोई जाड़ नहीं बैठा है।
आदत भी तोड़ी जा सकती है, अनुभूति भी बदली जा सकती है--ये दो छोर हैं-- आदत, अभिव्यक्ति मार्ग; अनुभूति, भीतर बहने वाली ऊर्जा।
ऐसा समझें कि यह बिजली का बल्ब जल रहा है। यहां अंधेरा करना हो तो दो उपाय हैं--या तो बिजली बल्ब तक न आने दी जाए, बटन बंद कर दी जाए, तो अंधेरा हो जाए, या बटन चलती भी रहे तो बल्ब तोड़ दिया जाए, तो भी अंधेरा हो जाए। तंत्र का प्रयोग, वह जो भीतर ऊर्जा बह रही है, उसको बदलने का है। महावीर का प्रयोग वह जो बाहर अभिव्यक्ति का माध्यम बन गया, उसे तोड़ देने का है। दोनों से पहुंचा जा सकता है। लेकिन जब भी एक मार्ग की कोई बात करेगा, तो दूसरे मार्ग के विपरीत उसे बोलना पड़ता है, अन्यथा समझना बिल्कुल कठिन और असंभव हो जाए। अगर तंत्र पढ़ेंगे तो लगेगा कि महावीर जैसा व्यक्ति कभी नहीं पहुंच सकता। अगर महावीर को पढ़ेंगे तो लगेगा कि तांत्रिक कभी नहीं पहुंचे होंगे। जो जिस मार्ग की बात कर रहा है वह उस मार्ग के लिए पूरा स्पष्ट कर रहा है। और सभी मार्ग अपने आप में पूरे हैं। उनसे पहुंचा जा सकता है। लेकिन उससे यह सिद्ध नहीं होता कि विपरीत से नही पहुंचा जा सकता है। महावीर का यह सूत्र हम समझें।
"शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श इन पांच प्रकार के काम गुणों कों भिक्षु सदा के लिए त्याग दे।"
तंत्र कहता है, समस्त इंद्रियों का पूरा अनुभव। महावीर कहते हैं, समस्त इंद्रियों का अवरोध, समस्त इंद्रियों का निषेध।
कामवासना सिर्फ कामवासना ही नहीं है, और कामेंद्रिय सिर्फ कामेंद्रिय ही नहीं है, सभी इंद्रिय कामेंद्रिय हैं।
जब आप किसी को हाथ से छूते हैं किसी के शरीर को, तभी छूते हैं, ऐसा नहीं। जब आप आंख से छूते हैं, तब भी छूते हैं। आंख भी छूती है किसी के शरीर को, हाथ भी छूता है। और जब किसी की आवाज आपको प्रीतिकर और मधुर लगती है, उत्तेजक लगती है, तब कान भी छूता है, और जब पास से गुजर जाते किसी के शरीर की गंध आपको आंदोलित कर जाती है, तो नाक भी छूती है।

हाथ बहुत स्थूल रूप से छूते हैं, आंख बहुत सूक्ष्म रूप से छूती है, लेकिन स्पर्श सभी इंद्रिय करती हैं। जननेंद्रिय गहनतम स्पर्श करती है, लेकिन सभी स्पर्श हैं।
तो महावीर कहते हैं, अगर वासना से पूरी तरह छूटना है, तो स्पर्श की जो कामना है अनेक-अनेक रूपों में, वह सभी त्याग देनी चाहिए। आंख से भी भोग न हो, कान से भी भोग न हो, स्वाद से भी भोग न हो। भोग की वृत्ति इंद्रियों के द्वार से बाहर यात्रा न करे। जब आप किसी को देखना चाहते हैं, कामवासना शुरू हो गई। किसी की आवाज सुनना चाहते हैं, कामवासना शुरू हो गई। कामवासना यौन ही नहीं है, यह ख्याल में ले लें।
और जिसने यह समझा हो कि यौन ही कामवासना है, वह गलती में पड़ेगा। यौन तो उसकी चरम निष्पत्ति है, लेकिन यात्रा का प्रारंभ तो दूसरी इंद्रियों से शुरू हो जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि आंख जब देखना चाहे, तब भीतर से ध्यान को आंख से हटा लेना। आंख को
देखने देना, लेकिन भीतर जो रस ध्यान लेता है देखने का, उसे हटा लेना, यह... यह संभव है। इसकी पूरी साधना है।
आप एक फूल को देख रहे हैं, फूल सुंदर है। अगर महावीर को ठीक से समझना हो, आप बड़े हैरान होंगे जान कर कि जहां-जहां सौंदर्य दिखाई पड़ता है, वहां- वहां यौन उपस्थित होता है।
फूल है क्या? वृक्ष का यौन है, वृक्ष का सेक्स है। कोयल गीत गा रही है, कान को मधुर लगता है, लेकिन कोयल का गीत है क्या? कोयल का यौन है। मोर नाच रहा है, उसके पंख आकाश में छाता बन कर फैल गए हैं, इंद्रधनुष बना दिया है, सुंदर लगता है। लेकिन मोर के पंख हैं क्या? यौन है।
जहां-जहां आपने सौंदर्य देखा है, वहां-वहां यौन छिपा है। इसलिए जब आप किसी स्त्री के चेहेरे की प्रशंसा करते हैं, तो शायद मन में थोड़ा संकोच भी होता हो कि करें, न करें। लेकिन जब आप कहते हैं, कितना सुंदर मोर है, तब आपको जरा भी ख्याल नहीं होता कि भेद कुछ भी नहीं है। वह जो मोर पंख फैला कर नाच रहा है वह यौन आकर्षण का निमंत्रण है। वह जो कोयल कुहुक रही है, वह साथी की तलाश है, वह जो फूल सुगंध फेंक रहा है और खिल गया है आकाश में, वह निमंत्रण है कि उस फूल में छिपे हुए वीर्य-कण हैं, मधुमक्खियां आएं, तितलियां आएं, उन वीर्य-कणों को ले जाएं और छितरा दें दूसरे फूलों पर। अगर हम चारों तरफ जगत में गहरी खोज करें, तो जहां-जहां हमें सौंदर्य
का अनुभव होता है वहां-वहां छिपी हुई कामवासना होगी। सुगंध अच्छी लगती है, लेकिन आपको अंदाजा नहीं होगा, बायोलॉजिस्ट कहते हैं कि सुगंध का जो बोध है वह यौन से जुड़ा हुआ हैं।
पशु गंध से ही आकर्षित होते हैं, इसलिए पशु एक मादा... नर-मादा एक दूसरे
की योनि गंध लेते हुए दिखाई पड़ेंगे। वे गंध से आकर्षित होते हैं। गंध ही निर्णायक है। जब मादाएं पशुओं की कामातुर होती हैं तो उनकी योनि से विशेष गंध फैलनी शुरू हो जाती है। वही गंध निमंत्रण है, वह गंध दूर तक फैल जाती है। और नर को आकर्षित करती है। जैसे ही वह गंध मिलती है, नर आकर्षित हो जाता है।
आदमी भी गंध का बहुत उपयोग करता है। स्त्रियां जानती हैं कि गंध कीमती है और गंध आकर्षण निर्मित कर लेती है। गंध का आदमी दो तरह से उपयोग करता है--एक तो आकर्षित करने को, एक शरीर की गंध को छिपाने के लिए। क्योंकि शरीर की गंध भी यौन निमंत्रण है। उसे छिपाना जरूरी है।
संभोग के क्षण में स्त्री-पुरुषों के शरीर की गंध बदल जाती है, क्रोध
के क्षण में स्त्री-पुरुषों के शरीर की गंध बदल जाती है। प्रेम के क्षण में स्त्री-पुरुषों के शरीर की गंध बदल जाती है। आपके शरीर में एक-सी गंध नही रहती चौबीस घंटे। आपका मन बदलता है, शरीर की गंध बदल जाती है।
गंध है, स्वाद है, रस है, ध्वनी है, वे सभी के सब कामवासना से जुड़े हुए हैं। अगर हम ऐसा समझें तो कुछ कठिनाई न होगी कि जननेंद्रिय केंद्रीय इंद्रिय है और सारी इंद्रियां उसके उपांग हैं। उसकी शाखाएं हैं। जैसे जननेंद्रिय ने आंख को निर्मित किया है कि खोजो मेरे लिए रूप। जैसे जननेंद्रिय मे कान को निर्मित किया है कि खोजो मेरे लिए ध्वनि।

जननेंद्रिय ने सारी इंद्रियों को निर्मित किया है, वे उसके द्वार हैं। जहां से वह जगत में प्रवेश करती है। जहां से वह जगत में तलाश करती है, जहां से वह जगत में खोजती है।
कामवासना इंद्रियों के द्वार से जगत में फैलती है, हर इंद्रिय काम-इंद्रिय है। यह महावीर की बात ठीक से ख्याल में ले लेनी जरूरी है। इसलिए महावीर कहते हैं, भिक्षु वह जो साधना में लीन हुआ है--साधक, वह समस्त इंद्रियों से अपने ध्यान को हटा ले। अगर समस्त इंद्रियों से ध्यान को हटा लिया जाए तो काम-इंद्रियों का नब्बे प्रतिशत द्वार अवरुद्ध हो जाता है, वह बाहर नहीं बह सकती। आप थोडा सोचें। आपकी आंखे बंद हों, तो सौंदर्य का कितना अर्थ समाप्त हो जाएगा!
अंधा आदमी भी सौंदर्य का अनुभव करता है, लेकिन हाथ से छूकर ही कर पाता है। लेकिन हाथ से जो छुएगा, उसके सौंदर्य का हिसाब बदल जाएगा। आंख से देखे हुए सौंदर्य की बात और है। आपकी सारी इंद्रियां बंद हो गई हों, तो आपके लिए सौंदर्य का क्या अर्थ होगा? कोई भी अर्थ नहीं रह जाएगा। सारा अर्थ इंद्रियों का अनुदान है।
महावीर कहते हैं, अपने को सिकोड़ लेना, केंद्र पर रोक लेना, किसी इंद्रिय से बाहर नहीं जाना। इंद्रियां जबरदस्ती किसी को बाहर नहीं ले जातीं। हम जाना चाहते हैं, इसलिए जाते हैं। जब हम नहीं जाना चाहते, इंद्रियां व्यर्थ हो जाती हैं।
आपके घर में आग लगी है और एक सुंदर स्त्री सामने से निकलती है, बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ती। आंख देखेगी, आंख का काम देखना है, लेकिन आप आंख के पीछे मौजूद नहीं हैं, अभी, ध्यान मकान में लगी आग की तरफ चला गया है। कोई दिखाई नहीं पड़ेगा। कोई सुंदर गीत गा रहा हो, सुनाई नहीं पड़ेगा। कोई आकर चारों तरफ गुलाब की सुगंध छिड़क दे, नाक को पता नहीं चलेगा। क्या हुआ है? सारा ध्यान आग की तरफ आकर्षित हो गया। अभी आग इतनी महत्वपूर्ण हो गई है कि ध्यान बंट नहीं सकता, और इंद्रियों की तरफ ध्यान नहीं जा सकता।
महावीर कहते हैं, जिसे ब्रह्मचर्य इतना महत्वपूर्ण हो गया हो कि वही उसे मुक्ति का मार्ग है, ऐसी प्रतीति हो रही हो, उसे कठिन नहीं होगा कि वह अपने ध्यान को इंद्रियों से अलग कर ले। हमें कठिन होगा, बहुत कठिन होगा, क्योंकि इंद्रियां ही हमारा जीवन है। इंद्रियों के अतिरिक्त हमारा कोई अनुभव नहीं है। जो हमने जाना है, जो हमने जीया है वह इंद्रियों से ही जाना और जीया है। और बड़ा अदभुत है इंद्रियों का लोभ। क्योंकि इंद्रियों से जो हम जानते हैं, वह स्वप्नवत है।
फूल को आपने देखा है? लेकिन फूल तो बहुत दूर है, आप देखते क्या हैं? वैज्ञानिक से पूछें, या महावीर से पूछें, फूल में आप देखते क्या हैं? फूल को तो देख नहीं सकता कोई आदमी, क्योंकि फूल कभी आंख के भीतर जाता नहीं। आप देखते क्या हैं? फूल से सूरज की किरणें आती हैं लौट कर। वे किरणें आपकी आंख पर पड़ती हैं। वे किरणें भी भीतर नहीं जा सकतीं, सिर्फ आंख की सतह को स्पर्श करती हैं। आंख की सतह के भीतर जो रासायनिक द्रव्य हैं वे उन किरणों से संचलित हो जाते हैं। वे रासायनिक द्रव्य आपकी आंखों के पीछे छिपे हुए तंतुओं का जो जाल है, उसको कंपित करते हैं। वे कंपन आप तक पहुंचते हैं। उन्हीं कंपनों को आपने देखा है।
इसलिए तो एक बड़ी अदभूत घटना घटती है। एक नग्न स्त्री को आप देखें तो जैसे तंतु कंपते हैं, वैसे एक नग्न स्त्री का चित्र देख कर भी कंपते हैं। इसलिए तो पोरनोग्राफी, अश्लील साहित्य का इतना मूल्य है। क्योंकि तंतु तो उसी तरह हिलने लगते हैं, मजा तो उसी तरह आने लगता है। बल्कि सच तो यह है कि नग्न स्त्री को देखकर उतना मजा कभी नहीं आता, जितना नग्न स्त्री के चित्र को देख कर आता है। उसके कई कारण हैं।
स्त्री की वास्तविक मौजूदगी आपके ध्यान में बाधा बनती है। चित्र में कोई मौजूद नहीं होता, आप अकेले होते हैं, ध्यानस्थ हो जाते हैं, और भीतर आपको रस आने लगता है। उतना ही रस आने लगता है, शायद ज्यादा भी आने लगता है। क्योंकि वास्तविक स्त्री के साथ कल्पना का उपाय नहीं रह जाता। वास्तविक स्त्री सामने मौजूद है, अब कल्पना करने को कोई उपाय नहीं है। लेकिन चित्र

आपको कल्पना देता है और चित्र कहता है, जब चित्र सुंदर है तो वास्तविक स्त्री कितनी सुंदर न होगी और आपके कल्पना के पंख फैल जाते हैं।
इसलिए जो लोग चित्र में रस लेने लगते हैं, उनको वास्तविक स्त्री फीकी मालूम पड़ने लगती है। इसलिए आपसे स्त्रियां बहुत होशियार हैं। उन्होंने चित्रों में कभी रस नहीं लिया। वास्तविक पुरुष के प्रेम में भी वे आंख बंद कर लेती हैं, क्योंकि कल्पना वास्तविक से सदा ज्यादा सुंदर है। स्त्रियां होशियार हैं। आप उन्हें आलिंगन में ले, वे आंख बंद कर लेंगी। आंख बंद करने का मतलब यह कि अब आप वास्तविक पुरुष कम, काल्पनिक, देवता ज्यादा हो गए। अब उनके भीतर एक कल्पना का देव खड़ा है। इसलिए पुरुष जल्दी स्त्रियों से ऊब जाते हैं, स्त्रियां उतनी जल्दी पुरुषों से नहीं ऊबतीं। यह बड़े मजे की बात है।
फ्रॉयड ने गहन विश्लेषणों से यह कहा है कि स्त्री और पुरुष हमेशा परिपूरक हैं, हर चीज में। फ्रायड ने दो शब्दों का उपयोग किया है एक को वह कहता है, वोयूर, जो देखने में उत्सुक है। जो देखने में उत्सुक हैं पुरुष, तो वह कहता है वोयूर। वह देखने में उत्सुक है। स्त्री को वह कहता है एक्झिबीशनिस्ट, जो दिखाने में उत्सुक है। दोनों परिपूरक हैं। क्योंकि कोई तो दिखाने वाला चाहिए तब देखने वाले को कोई रस हो, और कोई देखने वाला चाहिए, तब दिखाने वाले को कोई रस हो। स्त्री-पुरुष सब दिशाओं में परिपूरक हैं। इसलिए पुरुष सदा चाहता है कि प्रेम अंधेरे में न हो, प्रकाश में हो। स्त्री सदा चाहती है, प्रेम अंधेरे में हो। प्रकाश में न हो।
पुरुष देखना चाहता है, स्त्री देखना नहीं चाहती। इसलिए पुरुषों ने नग्न स्त्रियों के बहुत चित्र निर्मित किए, लेकिन स्त्रियों ने नग्न पुरुषों में कोई रस... कोई रस ही नहीं लिया कभी। स्त्री को थाड़ी परेशानी ही होती है नग्न पुरुष को देख कर, कोई सुख नहीं मिलता। लेकिन पुरुष के सामने स्त्री कपड़े भी पहने खड़ी हो तो कल्पना में वह उसे नग्न करना शुरू कर देता है।
यह जो हमारे चित्त की कल्पना है, यह जब हम कल्पना करते हैं, तब तो कल्पना होती ही है, जब हम वास्तविक कुछ अनुभव करते हैं, तब भी कल्पना से ज्यादा क्या होता है? एक फूल को देखें, स्त्री को देखें, पुरुष को देखें, आपको भीतर मिलता क्या है? वास्तविक तो कुछ नहीं मिलता, कुछ कंपन उपलब्ध होते हैं। उन्हीं कंपनों के लोक को हम संसार कहते हैं।
जब आपको अच्छी सुगंध मालूम पड़ती है तो होता क्या है? कंपन, वाइब्रेशंस। जब आपको अच्छा स्वाद आता है तो होता क्या है? जीभ में कंपन, वाइब्रेशंस।
हमारा सारा सुख वाइब्रेशंस है। और बड़े मजे की बात है, अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि ये वाइब्रेशंस बिना किसी बाहरी, वास्तविक चीज के पैदा किए जा सकते हैं। जैसे मस्तिष्क में एक इलेक्ट्रोड लगाया जा सकता है, एक बिजली का तार जोड़ा जा सकता है और जिस तरह सुंदर स्त्री को देख कर आपके मन के तंतु कंपते हैं, बिजली से कंपाए जा सकते हैं। और जब वे तंतु बिजली से कंपेंगे, आपको वही मजा आना शुरू हो जाएगा जो आपको सुंदर स्त्री को देख कर आएगा। अभी एक वैज्ञानिक साल्टर ने चूहों के साथ बहुत से प्रयोग किए। उसका
एक प्रयोग बहुत हैरानी का है। वह कभी न कभी आदमी को उस प्रयोग से बहुत कुछ सीखना पड़ेगा। उसने एक प्रयोग किया कि चूहे को जब चूही मादा को देखकर सूख मिलना शुरू होता है, तो उसके मस्तिष्क में क्या होता है, कौन से कंपन होते हैं। चूहों के सारे कंपन उसने अध्ययन किए वर्षों तक। फिर उन कंपनों की सूक्ष्मतम विधी उसने खोज ली, फिर बिजली से उन कंपनों को पैदा करने का उपाय निर्मित कर लिया। फिर एक चूहे को इलेक्ट्रोड लगा दिया, न केवल इलेक्ट्रोड लगा दिया, बल्कि चूहे के पंजे के पास बिजली का बटन भी लगा दिया कि जब भी वह चाहे उन कंपनों को, बटन को दबा दे। भीतर उसके कंपन शुरू हो जाएं और उसे वही मजा आने लगे जो मादा के साथ संभोग में आता है।
आप जानकर हैरान होंगे कि चूहे ने फिर खाना-पीना बिल्कुल छोड़ दिया। मादाएं आस-पास घुमती रहें, उनमें भी रस छोड़ दिया। फिर तो वह एक ही काम करता रहा, बटन को दबाना। चौबीस घंटे चूहा सोया नहीं। उसने हजारों दफे बटन दबाई,

वह बिल्कुल... जब तक बिल्कुल थक कर चूर होकर गिर नहीं गया तब तक वह एक ही काम करता रहा, बटन दबाने का। जैसे ही वह बटन दबाता, भीतर कंपन शुरू होते हैं, वे ही कंपन, जो उसको संभोग में होते हैं।
संभोग में पुरुष को--आपको भी क्या होता है, स्त्री को भी क्या होता है? कुछ वाइब्रेशंस, कुछ कंपन। उन कंपनों के सिवाय कुछ भी नहीं है। वे जो कंपन हैं, अगर बिजली के बटन से पैदा हो जाएं तो आपको पता लगेगा कि आप किस लोक में जी रहे हैं। वह चूहा ही बटन दबाकर जी रहा हो, ऐसा मत सोचना आप, आप भी उन्ही बटनों को दबा कर जी रहे हैं। बटन आपके प्राकृतिक हैं, चूहे के लिए कृत्रिम थे।
आज नहीं कल आदमी अपने लिए भी कृत्रिम बटन बना लेगा। और मैं मानता हूं
कि जिस दिन आदमी ने अपने आंतरिक कंपनों को पैदा करने के लिए छोटे उपाय कर लिए, उस दिन स्त्री-पुरुष के बीच कोई रस नहीं रह जाएगा। क्योंकि तब आप ज्यादा बेहतर ढंग से उन्हीं कंपनों को पैदा कर सकते हैं। तब दूसारे पर निर्भर रहने की कोई जरुरत नहीं। अपने खीसे में एक छोटी सी बैटरी लिए आप चल सकते हैं। जब आपका मन हो, आप बटन दबा लें और भीतर आपके संभोग के कंपन शुरु हो जाएं। और जो बात बैटरी से हो सके, और ज्यादा सुगमता से हो सके और कभी भी हो सके, उसके लिए कौन पति-पत्नी का उपद्रव लेने जाता है!
साल्टर की खोज भविष्य के लिए बड़ी महत्वपूर्ण सिद्ध होने वाली है। पर मैं आपसे इसलिए साल्टर की खोज की बात कर रहा हूं, ताकि आप महावीर को समझ सकें। महावीर कहते हैं। किस बचपन में उलझे हो? जो भी तुम अनुभव कर रहे हो सुख, वे सिर्फ छोटे से कंपन हैं। उन कंपनों का क्या मूल्य है? स्वप्नवत! और आदमी जन्मों-जन्मों, जीवन-जीवन उन्हीं कंपनों में अपने को गवां देता है। उन्हीं में अपने को खो देता है। कोई स्वाद के लिए जीता है, कोई सुगंध के लिए जीता है, कोई रूप के लिए जीता हे, कोई ध्वनि के लिए जीता है। लेकिन यह जीना क्या है? क्या हम कुछ कंपनों से तृप्त हो जाएंगे? होता तो यह है कि जितना पुनरुक्त करते हैं उन कंपनों को, उतनी ऊब बढ़ती चली जाती है। फंसते भी जाते हैं, आदत भी बनती है, ऊबते भी चले जाते हैं, कुछ मिलता भी नहीं मालूम पड़ता। और फिर भी एक मजबूरी, एक ऑब्सेशन, और हम वही करते चले जाते हैं, जिससे कुछ मिलता दिखाई नहीं पड़ता। धीरे-धीरे सब कंपन बोथले हो जाते हैं। फिर उनसे कुछ भी पैदा नहीं होता, लेकिन न उन कंपनों को करें, तो उदासी मालूम पड़ती है, खालीपन मालूम पड़ता है, एंप्टीनेस मालूम पड़ती है। इसलिए करना भी पड़ता है।
महावीर कहते हैं, जो व्यक्ति कंपनों में उलझा है, वह संसार में उलझा है। इन कंपनों से ऊपर उठे बिना कोई व्यक्ति आत्मा को उपलब्ध नहीं होता। कैसे ऊपर उठेंगे? तो वे कहते हैं, शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श इन पांच प्रकार के काम गुणों को भिक्षु सदा के लिए त्याग दे। क्या करेंगे त्याग में आप? क्या पानी न पीएंगे? क्या भोजन न करेंगे? और जब पानी पीएंगे, भोजन करेंगे तो स्वाद आएगा। क्या आखें न खोलेंगे?
रास्ते पर चलेंगे, आंख खोलनी पड़ेगी। आवाज होगी, कोई गीत गाएगा। कोई मधुर स्वर सुनाई पड़ेगा, कान सुनेंगे। त्याग कैसे करेंगे?
त्याग का एक ही गहन अर्थ है, और वह कि जब भी कोई चीज सुनाई पड़े, स्वाद में आए, दिखाई पड़े तो ध्यान को उससे तोड़ लेना, भीतर ध्यान को तोड़ लेना। आंखें चाहे देखें, तुम मत देखना। जीभ स्वाद ले, तुम स्वाद मत लेना।
जनक को किसी ने पूछा था, किसी संन्यासी ने, कि आप इस महल में, इन रानियों के बीच, इतने वैभाव में रहकर किस प्रकार ज्ञानी हैं? तो जनक ने कहा, कुछ दिन रुको, समय पर उत्तर मिल जाएगा। और उत्तर समय पर ही मिल सकते हैं, समय के पहले दिए गए उत्तर किसी अर्थ के नहीं होते।
संन्यासी जनक के पास रुका--एक दिन, दो दिन, तीन दिन। चौथे दिन सुबह ही सुबह भोजन के लिए संन्यासी आ रहा था, जनक खुद बैठ कर उसे भोजन कराते थे। सिपाहियों की एक टुकड़ी आई, संन्यासी को घेर लिया और संन्यासी को कहा महाराज ने कहा है कि आज सांझ आपको सूली पर चढ़ा दिया जाएगा।
उस संन्यासी ने कहा, लेकिन मेरा अपराध, मेरा कसूर?

सिपाहियों ने का, यह आप महाराज से ही पूछ लेना। हमें जितनी आज्ञा है,
वह इतनी है।
फिर वे उसे लेकर भोजन के लिए आए, फिर वह भोजन के लिए थाली पर बैठा। महाराज बैठ कर पंखा झलते रहे। वह भोजन भी करता रहा। लेकिन उस दिन स्वाद नहीं आया। सांझ मौत थी, ध्यान हट गया।
भोजन के बाद जनक ने पूछा कि सब ठीक तो था! कोई कमी तो न थी!
उसने कहाः "क्या ठीक था? क्या कमी न थी?"
सम्राट ने पूछाः "रसोइए ने अभी-अभी खबर दी कि वह नमक डालना भूल गया आपको पता नहीं चला?"
उस संन्यासी ने कहाः "कुछ भी पता नहीं चला, भोजन किया भी या नहीं किया।
यह भी ऐसा लगता है, जैसे कोई स्वप्न, सांझ मौत। पूछना चाहता हूं कि क्या है मेरा कसूर?"
जनक ने कहाः "कोई कसूर नहीं, न कोई मौत होने को है। इतना ही कहना था कि अगर मौत का स्मरण बना रहे तो इंद्रियां भोगों में रहकर भी दूर हट जाती हैं।"
तब जीभ पर कंपन होते हैं, लेकिन स्वाद नहीं आता। तब कान पर कंपन होते हैं, लेकिन रस पैदा नहीं होता।
रस पैदा होता है कंपन और ध्यान के जोड़ से।
जीभ पर स्वाद आता है, कंपन पैदा होते हैं। आत्मा ध्यान भेजती है जीभ तक, दोनों का जोड़ होता है, तब रस पैदा होता है।
आंख देखती है रूप को कंपन होते हैं। भीतर से आत्मा ध्यान को भेजती है, कंपन और ध्यान का मिलन होता है, तब सौंदर्य का बोध होता है। तब रस पैदा होता है।
रस दो चीजों का जोड़ है--बाहर से आए कंपन और भीतर से आए ध्यान। ध्यान धन कंपन = रस। अगर ध्यान हट जाए कंपन से तो रस विलीन हो जाता है। इसी को महावीर ने त्याग कहा है। यह त्याग अत्यंत भीतरी घटना है। इस त्याग के दो रूप हैं। जो व्यर्थ के कंपन हों उन्हे छोड़ ही देना उचित है। जो अनिवार्य कंपन हों उनसे ध्यान को अलग कर लेना चाहिए। जो अनिवार्य कंपन हों उनसे ध्यान तोड़ लेना, जो गैर अनिवार्य कंपन हों उन कंपनों का त्याग कर देना। तो धीरे-धीरे, धीरे-धीरे इंद्रियां अलग और आत्मा अलग हो जाती है। जब सब जगह से ध्यान का रस विलीन हो जाता है तो हमें पता चलता है कि शरीर अलग और मैं अलग हूं। हमें पता नहीं चलता, शरीर अलग और मैं अलग हूं, इसका एक ही कारण है कि हमारा ध्यान निरंतर ही बाहर से आए हुए कंपनों से जुड़ जाता है। उस जोड़ के कारण ही हम शरीर से जुड़े हैं। वह जोड़ टूट जाए, हम शरीर से टूट जाते हैं। आत्म अनुभव रस परित्याग के बिना संभव नहीं है।
"देव लोक सहित समस्त संसार के शारीरिक तथा मानसिक सभी प्रकार के दुख
का मूल काम भोगों की वासना है। जो साधक इस संबंध में वीतराग हो जाता है वह शारीरिक तथा मानसिक सभी प्रकार के दुखों से छूट जाता है।"
हमारा जानना कुछ और है, हमारा जानना यह है कि समस्त सुखों का मूल इंद्रियों का आनंद है। आपने कोई ऐसा सुख जाना है जो इंद्रियों के अतिरिक्त जाना हो? नहीं जाना होगा। सभी सुखों के मूल में इंद्रियां मालूम पड़ती हैं। कभी भोजन में कुछ आनंद आ जाता है, कभी आंख देख लेती है किस दृश्य को--जरूरी नहीं, वह दृश्य स्त्री-पुरुष का हो, वह काश्मीर का हो, डल झील का हो--इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आंख देख लेती है किसी झील को, आंख देख लेती है किसी चांद को, रस आ जाता है, सुख आ जाता है।
आपने कभी कोई ऐसा सुख जाना है, जो इंद्रियों के बिना आपको आया हो? अगर वैसा सुख आपको अनुभव हो जाए, तो उसी को महावीर ने आनंद कहा है। लेकिन हमारा कोई ऐसा अनुभव नहीं है। पर महावीर कहते हैं, समस्त दुखों का मूल वासना है, और हम सोचते हैं समस्त सुखों का आधार। तो थोड़ा सोचना पड़े।
आपने कोई ऐसा दुखा जाना है जो इंद्रियों के बिना आपको मिला हो? न आपने कोई ऐसा सुख जाना है, जो इंद्रियों के बिना मिला हो; न ऐसा कोई दुख जाना है, जो इंद्रियों के बिना मिला हो। महावीर कहते हैं कि इंद्रियों के बिना भी

एक सुख मिल सकता है जिसका नाम आनंद है। इंद्रियों के बिना कोई दुख नहीं मिल सकता, इसलिए उसका कोई नाम नहीं है। आनंद के विपरीत कोई नाम नहीं है। इसलिए महावीर कहते हैं कि इंद्रियों का सुख भ्रांती है, इंद्रियों का दुख ही वास्तविकता है। फिर जिसे हम सुख कहते हैं, उसके कारण ही हमें दुख मिलता है। आज स्वाद में सुख मिलता है, तो क्या होगा इसका परिणाम? इसके दो परिणाम होंगे। अगर यह स्वाद कल न मिले तो दुख मिलेगा अगर यह स्वाद कल भी मिले, परसों भी मिले, तो भी दुख मिलेगा। स्वाद न मिले, तो पीड़ा अनुभव होगी पाने की। स्वाद मिलता रहे, तो बोथला हो जाएगा, ऊब पैदा हो जाएगी। इसलिए जिनको रोज अच्छा भोजन मिलता है उनका स्वाद खो जाता है, उनको फिर स्वाद नहीं आता। जिनको अच्छे बिस्तर पर रोज सोने को मिलता है, उन्हें फिर बिस्तर का पता चलना बंद हो जाता है।
जो भी आपके पास है, उसका आपको पता नहीं चलता। तो सुख अगर मिलता रहे तो विलीन हो जाता है। न मिले तो दुख देता है। सुख हर हालत में दुख देता है। मिले तो, न मिले तो। जिसे हम सुख कहेते हैं, वह दुख के लिए एक द्वार ही है, उससे बचने का कोई उपाय नहीं है। जो सुख की तरफ आकर्षित हुआ वह दुख में गिरेगा।
दुख दो तरह के हो सकते हैं--मिलने का दुख हो सकता है, न मिलने का दुख हो सकता है। ज्यादा से ज्यादा हम दुख बदल सकते हैं। इससे ज्यादा संसार में कोई उपाय नहीं है। एक दुख को छोड़ कर दूसरे दुख पर जा सकते हैं। एक दुख को छोड़ कर दुसरे दुख पर जाने में बीच में थोड़ा अंतराल पड़ता है उसे ही लोक सुख कहते हैं। जितनी देर को वे दुखमें नहीं होते, उतनी देर को वह सुख कहते हैं। हमारा सुख नकारात्मक है, निगेटीव है।
इसलिए महावीर कहेते हैं, समस्त दुखों का इंद्रियां हैं। जब तक यह हमें दिखाई न पड़ जाए, तब तक हम इंद्रियों से ऊपर उठने की चेष्टा में भी संलग्न न होंगे। अगर हमें यही दिखाई पड़ता रहे, कि समस्त सुखों का मूल इंद्रियां हैं, तो स्वभावतः हम अपने संसार को फैलाए चले जाएंगे। पुनर्जन्म का एक ही मूल कारण है कि इंद्रियां सुख का आधार हैं। मोक्ष
का एक ही कारण है कि इंद्रियां दुख का आधार हैं।
तो हम अपने सुख की थोड़ी तलाश करें। जब भी आपको सुख मिले, आप थोड़ी खोज करना। पहेले तो यह देखना कि यह सुख क्या है? जैसे ही आप देखेंगे, निन्यानबे प्रतिशत सुख तिरोहीत हो जाएगा। जिसे आप प्रेम करते हैं, उसका हाथ आपके हाथ में आ गया, तो फिर आंख बंद करके जरा ध्यान करना कि क्या सुख मिल रहा है, तब सिर्फ हाथ-हाथ में रह जाएगा। और थोड़ा ध्यान करेंगे तो वजन हाथ में रह जाएगा। और थोड़ा ध्यान करेगें तो सिर्फ पसीना हाथ में छूट जाएगा।
कौन-सा सुख मिल रहा था, उसको जरा गौर से देखना। जब मुंह में भोजन डाला
हो और रस आ रहा हो, स्वाद मालूम पड़ रहा हो तब जरा आंख भी बंद कर लेना और उस पर ध्यान करना कि कौन सा सुख मिल रहा है। निन्यावबे प्रतिशत सुख तत्काल तिरोहित हो जाएगा। थोड़ी देर में आप पाएंगे कि मुंह सिर्फ एक यांत्रिक काम कर रहा है चबाने का। जीभ एक यांत्रिक काम कर रही है खबर देने की कि कौन सा भोजन ले जाने योग्य है, कौन सा भोजन नहीं ले जाने योग्य है। स्वाद का उतना जीवन के लिए उपयोग है कि कहीं जहर न खा लिया जाए, कि कहीं कडवी चीज न खा ली जाए, कहीं कुछ व्यर्थ भीतर न चला जाए। उतना तो अस्तित्वगत उपयोग है। उतनी ही जीभ की खबर है। जीभ सचेतन रूप से उतनी खबर देती रहेगी। कान खबर दे रहे हैं, आंखे खबर दे रही हैं। ये जीवन के सर्वाइवल मेजर्स हैं, बचने के उपाय हैं। इससे ज्यादा मूल्य खतरनाक हैं। सुख ज्यादा मूल्य देने की बात है। इसे ठीक से जो आदमी खोज करेगा अपने भीतर, वह पाएगा कि जब सुख होता है
तब कुछ होता नहीं, सिर्फ ख्याल होता है, सिर्फ कल्पना होती है। सिर्फ माना हुआ ख्याल होता है। सिर्फ माना हुआ एक सम्मोहित ख्याल होता है।
आपको कोई एक चमकदार पत्थर लाकर दे-दे और कहे कि बहुमूल्य हीरा है। और आपको भरोसा हो जाए उस आदमी का या उस आदमी पर आपको भरोसा रहा हो, तो उस रात... उस रात आप सो न सकेंगे इतने सुख से भर जाएंगे। सुबह पता चले कि वह पत्थर का ही टुकड़ा है, हीरा नहीं है, सिर्फ कांच है चमकता हुआ, सब सुख तिरोहित हो

जाएगा। रात जो सुख आपने लिया वह हीरे के कारण नहीं था क्योंकि हीरा तो वहां है नहीं। आपकी मान्यता के कारण है। आपका प्रोजेक्शन था, आपका "प्रक्षेप" था। आपने एक धारणा हीरे पर फैला ली, वह आपको सुख दे गई। जिस स्त्री में आपको सौंदर्य दिखता है, जिस पुरुष में सौंदर्य दिखता है, जहां आपको रस दिखता है, वह आपकी फैली हुई धारणा है। उस धारणा के कारण ही सारा उपद्रव है।
इस धारणा को ही ठीक से देख ले कोई व्यक्ति तो सुख तिरोहित हो जाता है।
और तब दुख का एक सागर दिखाई पड़ता है। तब वास्तविकता दिखाई पड़ती है सुख की छाया के नीचे छिपी हुई, कि हम सिर्फ दुख झेल रहे हैं। अनेक-अनेक प्रकार के दुख झेल रहे हैं, अभाव के, भाव के; होने के, न होने के; गरीबी के, समृद्धि के; यश के; अपयश; न मालूम कितने दुख झेल रहे हैं।
इतना दुख का यह उदघाटन, पश्चिम में लोगों को लगा कि ये महावीर, ये बुद्ध, से सब दुखवादी हैं। ये क्यों इतना दुख को उघाड़ते हैं? क्यों घाव को उघाड़ते हैं? अच्छा हो कि घाव हो तो पलस्तर करके ढांक देना चाहिए। गंदी नाली हो तो थोड़ी सी सुगंध ऊपर छिड़क कर फूल लगा देना चाहिए।
ये... ये क्यों सारे घावों को उघाड़ कर भीतर पीड़ा को, भीतर की दुर्गंध को बाहर लाना चाहते हैं? ये बड़े खतरनाक लोग मालूम पड़ते हैं। ये तो जीवन को नष्ट कर देंगे, ये तो जीवन के प्रति एक विरक्ती, जीवन के प्रति एक अलगाव पैदा कर देंगे।
लेकिन नहीं, महावीर और बुद्ध का वैसा प्रयोजन नहीं है। वे चाहते हैं
कि जो सत्य है वह दिखाई पड़ जाए। जीवन की जो भ्रांति है वह टूट जाए, तो शायद हम किसी और गहरे जीवन की खोज में जा सकें। वह जो हमने ढांक-ढांक कर एक झूठा जीवन बना रखा है उसकी पर्त-पर्त उखड़ जानी चाहिए। वे जो हमने झूठे मुखौटे लगा रखे हैं, वे जा हमने झूठी धारणाएं अपने चारों तरफ फैला रखी हैं, वे सब गिर जानी चाहिए। वे गिर जाएं तो शायद हमारी जीवन उर्जा व्यर्थ कामों में संलग्न न रहे और सार्थक की खोज पर निकल जाए।
इसलिए महावीर कहते हैं कि "जो मनुष्य इस प्रकारण दुष्कर ब्रह्मचर्य
का पालन करता है, इंद्रियों से अपने को खींच लेता है, भीतर तोड़ देता है रस, उसे देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर सभी नमस्कार करते हैं।" महावीर और बुद्ध पहले व्यक्ति हैं मनुष्य जाति के इतिहास में-- निश्चित ही महावीर पहले, क्योंकि बद्ध महावीर से थोड़े बाद में पैदा हुए-- महावीर पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने कहा कि एक ऐसा क्षण भी है मनुष्य की चेतना का, जब देवता भी उसे नमस्कार करते हैं, नहीं तो दुनिया के सारे धर्म मानते हैं कि मनुष्य सदा देवताओं को नमस्कार करता है।
देवता मनुष्य को नमस्कार करते हैं, इससे ज्यादा मनुष्य के प्रति महिमा की बात और कुछ और नहीं हो सकती। महावीर ने कहा कि ऐसा भी क्षण है मनुष्य के जीवन में, जब देवता उसे नमस्कार करते हैं। इसका क्या अर्थ हुआ? इसका अर्थ हुआ कि देवता भ्रांति में हैं। चेतना जब पूरी जागती है मनुष्य की और सुख का भ्रम टूट जाता है, तो स्वर्ग का भ्रम भी टूट जाता है। देवता स्वर्ग के वासी हैं। उसका अर्थ है--सुख के वासी हैं। देवता इंद्रियो में ही जीते हैं। बड़ा मजा है, इसलिए हमने इंद्र नाम दिया है देवताओं के सम्राट को। वह इंद्रियां ही इंद्रियां है। इसलिए इंद्र है। देवता सुख में ही जीते हैं। देवता का अर्थ है--जो सुख में ही जी रहा है। लेकिन इसका तो मतलब यह हुआ कि महावीर के हिसाब से कि जो इंद्रियो में और सुख में जी रहा है, वह बड़ी गहन भ्रांति में जी रहा है। वह एक लंबे स्वप्न में डूबा है। वह स्वप्न सुखद होगा, प्रीतिकर होगा, दुखद न होगा, लेकिन एक लंबा स्वप्न है। अगर महावीर को हम ठीक से समझें तो नरक, एक नाइट मेयर, एक दुख स्वप्न, लंबा दुख स्वप्न है। स्वर्ग एक सुख स्वप्न है, एक अच्छा सपना है, लंबा।
इसलिए महावीर ने कहा है कि देवता को भी मोक्ष पाना हो, तो उसे वापस मनुष्य के जन्म में आ जाना पड़ता है। मनुष्य चौराहा है। देवता को भी मोक्ष पाना हो तो मनुष्य तक वापस लौट आना पड़ता है। मनुष्य के अतिरिक्त मुक्त होने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन जरूरी नहीं है कि कोई मनुष्य होने से ही

मुक्त हो जाए। मनुष्य होने से केवल मुक्ति की संभावना है, लेकिन अगर आप भी स्वप्न में डूबे रहते हैं तो आप उस अवसर को खो देंगे।
मनुष्य का अर्थ है--जहां हम जाग सकते हैं, जहां हम चाहें तो इंद्रियों
से अपने को तोड़ ले सकते हैं, जहां हम चाहें तो रस समाप्त हो सकता है और चेतना रसमुक्त हो सकती है। इस स्थिति को महावीर ने वीतराग कहा है। चेतना जब ऐसी स्थिति में होती है तो उसका बाहर कोई भी रस नहीं है, कोई भी। बाहर जाने की कोई आकांक्षा शेष न रही। किसी से भी कुछ मिल सकता है, यह भाव गिर गया। कहीं से कोई मांगना न रहा, कोई प्रार्थना न रही, कोई अभीप्सा न रही। इस चेतना की अवस्था को महावीर कहते हैं, वीतराग।
"जो वीतराग है वह शारीरिक और मानसिक सभी दुखों से छूट जाता है।"
"यह ब्रह्मचर्य धर्म ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है और जिनोपदिष्ट है।"
यह शब्द जिनोपदिष्ट थोड़ा समझ लेने जैसा है।
हिंदू कहते हैं, वेद ईश्वर के वचन हैं, इसलिए सत्य हैं। मुसलमान कहते हैं कि कुरान ईश्वर का संदेश है, इसलिए सत्य है। ईसाई कहते हैं कि बाइबिल ईश्वर के निजी संदेशवाहक, उनके अपने बेटे जीसस के वचन हैं, ईश्वर से आया हुआ संदेश है आदमी के लिए, इसलिए सत्य है।
महावीर एकदम अशास्त्रीय हैं। वे किसी शास्त्र को प्रमाण नहीं मानते।
वे वेद को प्रमाण नहीं मानते। इसलिए हिंदुओं ने तो महावीर को नास्तिक कहा। क्योंकि जो वेद को न माने, वह नास्तिक।
महावीर जैसे परम आस्तिक को भी नास्तिक कहना पड़ा, क्योंकि वेद के प्रति उनकी कोई श्रद्धा नहीं, शास्त्र के प्रति उनकी कोई श्रद्धा नहीं। उनकी श्रद्धा अजीब है, अनूठी है। उनकी श्रद्धा उस आदमी में है, जिसने अपनी इंद्रियों को जीत लिया हो--उसके वचन में।
जिनोपदिष्ट का अर्थ होता है, उस आदमी का वचन जिसने अपनी इंद्रियों को जीत लिया है। कोई परमात्मा नहीं, कोई ऊपरी शक्ति नहीं, बल्कि उस व्यक्ति की शक्ति ही परम प्रमाण है जिसने अपनी इंद्रियों को जीत लिया है। इसलिए महावीर कहते हैं, जिनोपदिष्ट--जिसने अपने को जीता हो। जिन का अर्थ होता है, जिसने अपने को जीता हो। जिसकी सारी इंद्रियों की गुलामी टूट गई हो, जो अपने भीतर स्वतंत्र हो गया हो, जो अपने भीतर मुक्त हो गया हो; इस व्यक्ति के वचन का मूल्य है। देवताओं के वचन को महावीर कहते हैं, कोई मूल्य नहीं, क्योंकि वे अभी वासना ग्रस्त हैं।
अगर हम वेद के देवताओं को देंखे, तो इंद्र को आप फुसला ले सकते हैं, जरा सी खुशामद और स्तुति से। राजी कर ले सकते हैं, जो भी आपको करवाना हो। नाराज भी हो सकता है इंद्र अगर आप ठीक-ठीक प्रार्थना, उपासना न करें नियम से आदर, स्तुति न करें तो इंद्र नाराज भी हो सकता है। अगर हम यहूदी ईश्वर को देखें, तो वह खतरनाक बातें कहता हुआ मालूम पड़ता है कि अगर मुझे नहीं माना तो मैं तुम्हें नष्ट कर दूंगा। आग में जलाऊंगा, सड़ाऊंगा।
महावीर कहते हैं कि इन वचनों का क्या मूल्य हो सकता है! वे कहते हैं, वही चेतना परम शास्त्र है, जिसने अपनी इंद्रियों को जीत लिया हो। उसकी बात भरोसे योग्य है।
क्यों?
जो अभी इंद्रियों कें धोखे में पड़ता है, उसकी बात का भरोसा कुछ भी नहीं। जो अभी इंद्रियों के सपने से नहीं जाग सका, उसकी बात का कुछ भी भरोसा नहीं। महावीर को ज्ञात है, उस समय जो भी देवताओं की चारों तरफ चर्चा थी, उनमें महावीर को कोई भी देवता स्तुति के योग्य नहीं लगा। क्योंकि बड़ी अजीब कहानियां हैं।
कहानी है कि ब्रह्मा ने पृथ्वी को बनाया, अर्थात पृथ्वी ब्रह्मा की बेटी हुई, और बेटी को देख कर ब्रह्मा एकदम कामातुर हो गए तो बेटी के पीछे कामातुर होकर भागे। बेटी घबड़ा गई तो वह गाय बन गई, तो ब्रह्मा बैल हो गए और गाय के पीछे भागे। महावीर को बड़ी कठिनाई मालूम पड़ेगी कि ऐसे ब्रह्मा के वचन का क्या मूल्य हो सकता है। यह तो साधारण पिता भी अपने को रोकता है,

ब्रह्मा न रोक सके! कहानी में मूल्य तो बहुत है, पर मूल्य मनोवैज्ञानिक है।
फ्रॉयड ने कहा है कि हर पिता के मन में अपनी जवान बेटी को भोगने की कामना कहीं न कहीं सरक उठती है। क्योंकि जवान बेटी को देख कर फिर एक बार उसको अपनी पत्नी जब जवान थी, उसका स्मरण सदा हो आता है।
यह कहानी तो बड़ी मनोवैज्ञानिक है कि अगर ब्रह्मा ने अपनी बेटी को पैदा किया और वह इतनी सुंदर थी कि ब्रह्मा खुद आकर्षित हो गए, तो यह बात तो बताती है कि बाप भी बेटी प्रति कामातुर हो सकता है--ब्रह्मा तक हो गए! लेकिन महावीर के लिए इसमें दूसरी सूचना है। वह सूचना यह है कि जो देवता कामातुर हैं, उनकीं स्तुति का कोई भी अर्थ न रहा। इसलिए महावीर बड़े हिम्मतवर आदमी हैं। वे कहते हैं, जब कोई व्यक्ति इस वीतरागता को उपलब्ध होता है, तो देवता उसके चरणों में सिर रख देते हैं। यही बात कष्टपूर्ण भी लगी हिंदू मन को। क्योंकि कहानियां हैं कि जब महावीर ज्ञान को उपब्लध हुए तो इंद्र और ब्रह्मा सब उनके चरणों में सिर रख दिए। यह बहुत कठिन मालूम पड़ती हैं... यह बात कठिन मालूम पड़ती है।
बुद्ध जब ज्ञान को उपब्लध हुए तो सारा देवलोक उतरा और चारों-तरफ उनके चरणों में साष्टांग लेट गया।
हिंदू मन को चोट लगी कि जिन देवताओं की हम पूजा करते, प्रार्थना करते,
वे इस गौतम बुद्ध के सामने या इस वर्द्धमान महावीर के सामने आकर चरणों में सिर रख दिए! यह बात ही अपवित्र मालूम पड़ती है। लेकिन महावीर और बुद्ध को हम समझें तो इस बात की बड़ी महिमा है। मनुष्य को पहली दफा देवताओं के ऊपर रखने का प्रयास--बड़ा गहन प्रयास है। मनुष्य को पहली दफा वासना के परम छुटकारे की तरफ इशारा है।
महावीर कहते हैं, देवता भी तुम हो जाओ, स्वर्ग भी तुम्हारे हाथ में आ जाए और अगर इंद्रियां तुम्हारी, तुम्हारे नियंत्रण में नहीं, और तुम उनके मालिक नहीं हो, तो तुम गुलाम हो, कीड़े-मकोड़ों जैसे ही गुलाम हो। कीड़ा-मकोड़ा भी क्यों कीड़ा-मकोड़ा है? क्योंकि इंद्रियो का गुलाम है। और देवता भी कीड़ा- मकोड़ां है, क्योंकि वह भी इंद्रियों का गुलाम है।
आदमी जाग सकता है। क्यों? देवता क्यों नहीं जाग सकता? सुख में जागना बहुत मुश्किल है। दुख में जागना आसान है। सुख में नींद सघन हो जाती है, दुख में नींद टूट जाती है। पीड़ा हो तो निखारती है, सुख हो सब धुंधला-धुंंधला कर जाती है। सुख में जंग लग जाती है।
दुख में आदमी प्रखर होता है।
इसलिए बहुत मजे की बात है कि सुखी परिवारों में कभी प्रखर चेतनाएं मुश्किल से पैदा हो जाती हैं। प्रखर बुद्धि, प्रखर प्रतिभा, अगर सब सुख हो तो क्षीण हो जाती मालूम पड़ती है। जंग लग जाती है। कुछ करने जैसा नहीं लगता। रॉकफेलर के घर में लड़का पैदा हो, तो सब पहले से मौजूद होता है, कुछ करने जैसा नहीं मालूम पड़ता। पाने को कुछ दिखाई नहीं पड़ता। जब तक कि रॉकफेलर के लड़के में बुद्ध या महावीर की चेतना न हो कि इस संसार में पाने योग्य कुछ नहीं, तो चलो दूसरे संसार को पाने निकल पड़ें। जब इस संसार में कुछ पाने योग्य नहीं लगता तो आप बैठ जाते हैं मुर्दे की तरह, आपकी सब चेतना बैठ जाती है।
दुनिया में अधिकतम प्रतिभाएं संघर्षशील घरों से आती हैं, दुख से आती हैं। दुख निखारता है, उत्तेजित करता है, चुनौती देता है। देवता सो जाएंगे, क्योंकि वहां सुख ही सुख है--कल्पवृक्ष, सुख, अप्सराएं, सब यौवन, सब सुगंध। इंद्रियों की जो वासना है, वह परिपूर्ण रूप से तृप्त हो, ऐसी स्वर्ग
की हमारी धारणा है। इंद्रियों की कोई वासना तृप्त न हो, दुख ही दुख भर जाए, ऐसी हमारी नरक की धारणा है। लेकिन महावीर अगर यह कहते हैं कि दुख में आदमी जागता है इसलिए मनुष्य देवता के भी पार जा सकता है तब तो नरक और भी जाग जाना चाहिए। क्योंकि नरक में और भी सघन दुख है।
लेकिन एक बड़ी गहरी बात है। अगर पूरा-पूरा सुख हो, तो भी आदमी नहीं जाग पाता। अगर एकदम दुख ही दुख हो, तो भी आदमी नहीं जाग पाता। क्योंकि दुख ही दुख हो तो भी चेतना दब जाती है। जहां सुख और दुख दोनों के अनुभव होते हैं

वहां चेतना सदा जगी रहती है। सुख ही सुख हो तो भी सो जाता है मन, दुख ही दुख हो तो भी सो जाता है मन। संघर्ष तो पैदा होता है जहां दोनों हों, तुलना हो, चुनाव हो।
एक बड़े मजे की बात है, मनुष्य के इतिहास से भी साबित होती है। जब तक कोई समाज बिल्कुल ही गरीब रहता है तब तक बगावत नहीं करता। हजारों साल से दुनिया गरीब है, लेकिन बगावत नहीं होती है। शायद हम सोचते होंगे कि इसलिए बगावत नहीं होती थी कि लोग बड़े सुखी थे। नहीं, सुख का कोई अनुभव ही नहीं था। दुख शाश्वत था। बगावत नहीं होती थी। अब बगावत सारी दुनिया में हो रही है। और बगावत वहीं होती है जहां आदमी को दोनों अनुभव शुरू हो जाते हैं--सुख के भी और दुख के भी। तब वह और सुख पाना चाहता है, तब वह पूरा सुख पाना चाहता है, तब वह बगावत करता है।
दुखी आदमी, बिल्कुल दुखी आदमी बगावत नहीं करता। ऐसा दुखी आदमी बगावत करता है जिसे सुख की आशा मालूम पड़ने लगती है। नहीं तो बगावत नहीं होती। दुनिया में जितने बगावती स्वर पैदा हुए हैं, वे सब मध्य वर्ग से आते हैं-- चाहे मार्क्स हो, और चाहे एंजिल्स हो और चाहे लेनिन हो और चाहे माओ हो, चाहे स्टैलिन हो, य सब मध्यवर्गीय बेटे हैं।
मध्य वर्ग का मतलब है जो दुख भी जानता है और सुख भी जातना है। जिसकी एक टांग गरीबी में उलझी है और एक हाथ अमीरी तक पहुंच गया है। मध्य वर्ग का अर्थ है, जो दोनों के बीच में अटका है। जो जानता है कि एक धक्का लगे तो मैं अभी गरीब हो जाऊं, और अगर एक मौका लग जाए तो अभी मैं अमीर हो जाऊं। जो बीच में है। यह बीच का आदमी बगावत का ख्याल देता है दुनिया को। क्योंकि यह ख्याल देता है, सुख मिल सकता है। सुख पाया जा सकता है। इसके हाथ के भीतर मालूम पड़ता है। मिल न गया हो लेकिन संभावना निकट मालूम पड़ती है। थोड़ा और यह लंबा हो जाए तो सुख मिल जाए। और दुख भी इससे छूटता मालूम पड़ता है। अगर थोड़ी हिम्मत जुटा ले तो दुख छूट जाए। करीब-करीब मनुष्य स्वर्ग और नरक के बीच में मध्यवर्गीय है। देवता हैं ऊपर, नारकीय हैं नीचे, बीच में है मनुष्य। मनुष्य का एक पैर तो नरक में खड़ा ही रहता है पूरे वक्त दुख में, और एक हाथ सुख को छूता रहता है।
इसलिए महावीर कहते हैं, मनुष्य संक्रमण, ट्रांजिटरी अवस्था है। और जहां संक्रमण है वहां क्रांति हो सकती है। जहां संक्रमण है वहां बदलाहट हो सकती है। नीचे है नरक, ऊपर है स्वर्ग, बीच में है मनुष्य। मनुष्य चाहे तो नरक में गिरे, चाहे तो स्वर्ग में और चाहे तो दोनों से छूट जाए। नरक का पैर भी बाहर खींच ले, स्वर्ग का हाथ भी नीचे खींच ले। यह जो बीच में आदमी खड़ा हो जाए--महावीर कहते हैं, इस आदमी के देवता भी चरण में गिर जाते हैं। लेकिन कब आप नरक का पैर खींच पाएंगे?
महावीर कहते हैं, जब तक तुम्हारा एक हाथ स्वर्ग पकड़ता है, तब तक तुम्हारा एक पैर नरक में रहेगा। वह स्वर्ग पकड़ने की चेष्टा से ही नरक पैदा हो रहा है। सुख पाने की आकांक्षा
दुख बन रही है। स्वर्ग की अभीप्सा नरक का कारण बन रही है। जब तुम एक हाथ स्वर्ग से नीचे खींच लोगे, तुम अचानक पाओगे, तुम्हारा नीचे का पैर नरक से मुक्त हो गया। वह उस बढ़े हुए हाथ का ही दूसरा अंग था।
और जब आदमी न स्वर्ग न नरक--महावीर ने कहा है, स्वर्ग मत चाहना। क्योंकि स्वर्ग की चाहना नरक की ही चाहना है। इसलिए महावीर ने एक नया शब्द गढ़ा। हिंदू विचार में उसके लिए पहले कोई जगह न थी। हिंदू विचार स्वर्ग और नरक में सोचता था। महावीर ने एक नया शब्द दिया, "मोक्ष"।" मोक्ष का अर्थ हैः न स्वर्ग, न नरक; दोनों से छुटकारा।
अगर हम वैदिक ऋषियों की प्रार्थना देखें, तो वे प्रार्थना कर रहे हैं स्वर्ग की, सुख की। महावीर की अगर हम धारणा समझें, तो वह स्वर्ग की और सुख की कामना नहीं कर रहे हैं। क्योंकि महावीर कहते हैं, सुख और स्वर्ग की कामना हे तो दुख और नरक का आधार है। महावीर कहते हैं, मैं सुख और दुख से कैसे मुक्त हो जाऊं। वैदिक ऋषि गाता है कि मैं कैसे दुख से मुक्त हो जाऊं और सुख को पा लूं। महावीर कहते हैं, मैं कैसे सुख और दुख दोनों से मुक्त हो जाऊं? यह बड़ी गहन मनोवैज्ञानिक खोज है। यह अन्वेषण गहरा है।

महावीर मोक्ष की बात करते हैं। बुद्ध निर्वाण की बात करते हैं। यह बात द्वंद्व के बाहर जाने वाली बात है, कैसे दोनों के पार हो जाऊं। यह जो ब्रह्मचर्य है, यह जो यात्रा-पथ है, दोनों के बाहर हो जाने का; यह जो ऊर्जा को भीतर ले जाना है, ताकि सुख और दुख से बाहर हैं
दोनों, उनसे छुटकारा हो जाए, यह ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है, जिनोपदिष्ट है।
इसके द्वारा पूर्वकाल में अनेक जीव सिद्ध हो गए, वर्तमान में हो रहे हैं, महावीर कहते हैं, और भविष्य में होंगे।
यह शाश्वत है मार्ग। इस विधि से पहले भी लोग जागे, जिन हुए। महावीर कहते हैं, आज भी हो रहे हैं। और महावीर कहते हैं, भविष्य में भी होते रहेंगे। यह मार्ग सदा ही सहयोगी रहेगा।
लेकिन हम बड़े अदभुत लोग हैं। महावीर के साधु-संन्यासी भी लोगों को समझाते हैं कि यह पंचम-काल है, इसमें कोई मुक्त नहीं हो सकता! जैसा हिंदू मानते हैं, कलिकाल है, कलियुग है, ऐसा जैन मानते है, पंचम-काल है। इसमें कोई मुक्त नहीं हो सकता। इससे हमको राहत भी मिलती है कि जब कोई हो ही नहीं सकता, तो हम भी अगर हुए तो कई हर्ज नहीं हैं। इससे साधु-संन्यासियों को भी सुख रहता है, क्योंकि आप उनसे भी नहीं पूछ सकते कि आप मुक्त हुए! पंचम-काल है, कोई मुक्त नहीं हो सकता।
महावीर की ऐसी दृष्टी हो नहीं सकती। क्योंकि महावीर कहते हैं, चेतना कभी भी मुक्त हो सकती है। समय कोई बंधन नहीं है। इसलिए वे कहते हैं, यह मार्ग शाश्वत है। पीछे भी लोग मुक्त हुए, आज भी हो रहे हैं, महावीर कहते हैं, और भविष्य में भी होते रहेंगे। जो भी इस मार्ग पर जाएगा वह मुक्त हो जाएगा। इस मार्ग पर जाने की जो कुंजी, जो सीक्रेट की है, वह उतनी ही है कि हम सुख और दुख दोनों को छोड़ने को राजी हो जाएं। इंद्रियां जो हमें संवाद देती हैं उनके साथ हमारा ध्यान जुड़ कर रस का निर्माण न करे। यह रस बिखर जाए भीतर तो शरीर और आत्मा अलग-अलग हो जाते हैं। सेतु गिर जाता है, संबंध टूट जाता है।
और जिस दिन हम जान लेते हैं कि मैं अलग हूं शरीर से। ध्यान अलग है, इंद्रियो से। चेतना अलग है, पार्थिव आवरण से। उस दिन नरक और स्वर्ग दोनों विलीन हो जाते हैं। वे दोनों स्वप्न थे। उस दिन हम पहली बार अपने भीतर छिपी हुई आत्यंतिक स्वतंत्रता का अनुभव करते हैं। महावीर इस अवस्था को सिद्ध अवस्था कहते हैं।
सिद्ध का अर्थ है--वह चेतना जो अपनी संभावना की परिपूर्णता को उपलब्ध
हो गई। जो हो सकती थी, हो गई। जो खिल सकता था फूल, पूरा, खिल गया। इसकी कोई निर्भरता बाहर न रही। यह सब भांति स्वतंत्र हो गई। इसका सारा आनंद अब भीतर से आता है। आंतरिक निर्झर बन गया है। अब इसका कोई आनंद बाहर से नहीं आता, और जिसका कोई आनंद बाहर से नहीं आता,
उसके लिए कोई भी दुख नहीं है।

आज इतना ही।
पांच मिनट रुकें, फिर जाएं।

महावीर-वाणी, भाग 1
चौबीसवां प्रवचन

संग्रहः अंदर के लोभ की झलक (अपरिग्रह-सूत्र)

न सो परिग्गह वुत्तो, नायपुत्तेण ताइणा।
मुच्छा परिग्गहो वुत्ती, इइ वुत्तं महेसिणा।।
लोहस्सेस अणुफ्फोसी, मन्ने अन्नरामवि।
जे सिया सन्निहिकामे, गिही पव्वइए न से।।

प्राणीमात्र के संरक्षक ज्ञातपुत्र (भगवान महावीर) ने कुछ वस्त्र आदि स्थूल पदार्थों के रखने को परिग्रह नहीं बतलाया है। लेकिन इन सामग्रियों में असक्ति, ममता व मूर्च्छा रखना ही परिग्रह है, ऐसा उन महर्षि ने बताया है।
संग्रह करना, यह अंदर रहने वाले लोभ की झलक है। अतएव मैं मानता हूं कि
जो संग्रह करने की वृत्ति रखते हैं, वे गृहस्थ हैं, साधु नहीं।

पहले एक प्रश्न।
एक मित्र ने पूछा है कि "रस परित्याग का क्या अर्थ है। क्या रस परित्याग का यही अर्थ है कि कोई भी इंद्रियजनित कंपन से ध्यान न जुड़े। फिर तो रस त्यागी को आंख, कान वगैरह बंद करके ही चलना उचित होगा। अंधे, बहरे, गूंगे सर्वश्रेष्ठ त्यागी सिद्ध होंगे। क्या यही महावीर और आपका ख्याल है?"

रस परित्याग का अर्थ अंधापन, बहरापन नहीं है, लेकिन बहुत लोगों ने वैसा अर्थ लिया है। ध्यान को इंद्रियों से तोड़ना तो कठिन, इंद्रियों को तोड़ देना बहुत आसान है। आंख जो देखती है, उससे रस को छोड़ना तो कठिन, आंख को फोड़ देना बहुत कठिन नहीं है। किन्हीं ने तो आंखें फोड़ ही ली हैं वस्तुतः! किन्हीं ने धुंधली कर ली हैं। आंख बंद करके चलने से कुछ भी न होगा, क्योंकि आंख बंद करने की जो वृत्ति पैदा हो रही है वह जिस भय से पैदा हो रही है। वह भय त्याग नहीं है।
और मन के नियम बहुत अदभुत हैं। जिससे हम भयभीत होते हैं, उससे हम बहुत गहरे में प्रभावित भी होते हैं। अगर मैं सौंदर्य को देख कर आंख बंद कर लूं तो वह भी सौंदर्य से प्रभावित होना है। उससे यह पता नहीं चलता कि मैं सौंदर्य की जो वासना थी, उससे मुक्त हो गया। उससे इतना ही पता चलता है कि सौंदर्य की वासना भरपूर है, और मैं इतना भयभीत हूं अपनी वासना से कि भय के कारण मैंने आंख बंद कर ली हैं। लेकिन जिस भय से आंख बंद की है, वह आंख के भीतर चलता रहेगा। आवश्यक नहीं है कि हम बाहर ही देखें, तभी रूप दिखाई पड़े। अगर रस भीतर मौजूद है तो रस भीतर भी रूप को निर्मित कर लेता है। स्वप्न निर्मित हो जाते हैं, कल्पना निर्मित हो जाती है। और बाहर तो जगत इतना सुंदर कभी भी नहीं है जितना हम भीतर निर्मित कर सकते हैं। जो स्वप्न का जगत है, वह हमारे हाथ में है। अगर रस मौजूद हो और आंख फोड़ डाली जाए तो हम सपने देखने लगेंगे, और सपने बाहर के संसार से ज्यादा प्रीतिकर हैं। क्योंकि बाहर का संसार तो बाधी भी डालता है। सपने हमारे हाथ का खेल है। हम जितना सुंदर बना सकें, बना लें। अैर हम जितनी देर उन्हें टिकाना चाहें, टिका लें। फिर वे सपने की प्रतिमाएं किसी तरह का अवरोध भी उपस्थित नहीं करतीं।
बहुत लोग संसार से भयभीत होकर स्वप्न के संसार में प्रविष्ट हो जाते हैं। जिनको स्वप्न के संसार में प्रविष्ट होना हो, उन्हें आंखें बंद कर लेना बड़ा सहयोगी होगा, क्योंकि खुली आंख सपना देखना बड़ा मुश्किल है।
लेकिन इससे रस विलीन न होगा, रस और प्रगाढ़ होकर प्रकट होगा।
आपके दिन उतने रसपूर्ण नहीं हैं, जितनी आपकी रातें रसपूर्ण हैं। और आपकी जागृति उतनी रसपूर्ण नहीं है, जितने स्वप्न आपके रसपूर्ण हैं।
स्वप्न में आपका मन उन्मुक्त होकर अपने संसार का निर्माण कर लेता है।

स्वप्न में हम सभी स्रष्टा हो जाते हैं और अपनी कल्पना का लोक निर्मित कर लेते हैं। बाहर का जगत थोड़ी बहुत बाधा भी डालता होगा, वह बाधा भी नष्ट हो जाती है।
रस परित्याग का अर्थ इंद्रियों को नष्ट कर देना नहीं है। रस परित्याग
का अर्थ है इंद्रियों और चेतना के बीच जो संबंध है, जो बहाव है, जो मूर्च्छा है, उस क्षीण कर लेना।
इंद्रियां खबर देती हैं, वे खबर उपयोगी हैं। इंद्रियां सूचनाएं लाती हैं, संवेदनाएं लाती हैं बाहर के जगत की, वे अत्यंत जरूरी हैं। उन इंद्रियों से लाई गई सूचनाओं, संवेदनाओं पर मन की जो गहरी भीतरी आसक्ति है, वह जो मन का रस है, वह जो मन का ध्यान है, जो मन का उन इंद्रियों से लाई गई खबरों में डूब जाना है, खो जाना है, वहीं खतरा है।
मन अगर खोए न, चेतना अगर इंद्रियों की लाई हुई सूचनाओं में डूबे न, मालिक बनी रहे, तो त्याग है। इसे ऐसा समझें, इंद्रियां जब मालिक होती हैं चेतना की, और चेतना अनुसरण करती है इंद्रियों की, तो भोग है। और जब चेतना मालिक होती है इंद्रियों की, और इंद्रियां अनुसरण करती हैं चेतना का, तो त्याग है।
मैं मालिक बना रहूं, इंद्रियां मेरी मालिक न हो जाएं। इंद्रियां जहां मुझे ले जाना चाहें, वहां खींचने न लगें; मैं जहां जाना चाहूं जा सकूं। और मै जहां जाना चाहूं, वहां जाने वाले रास्ते पर इंद्रियां मेरी सहयोगी हों। रास्ता मुझे देखना हो तो आंख देखे, ध्वनि मुझे सुननी हो तो कान ध्वनि सुने, मुझे जो करना हो इंद्रियां उसमें मुझे सहयोगी हो जाएं, इंस्ट्रूमेंटल हों--यही उनका उपयोग है।
हमारी इंद्रियां और हमारा जो संबंध है वह मालिक का है या गुलाम का, इस
पर ही सभी कुछ निर्भर करता है। यह मेरा हाथ, जो मैं उठाना चाहूं वही उठाए, तो मैं त्यागी हूं, और यह मेरा हाथ मुझसे कहने लगे कि यह उठाना ही पड़ेगा, और मुझे उठाना पड़े, तो मैं भोगी हूं, यह मेरी आंख, जो मैं देखना चाहूं, वही देखे तो मैं त्यागी हूं। और यह आंख ही मुझे सुझाने लगे कि यह देखो, यह देखना ही पड़ेगा, इसे देखे बिना नहीं जाया जा सकता, तो मैं भोगी हूं। भोग और त्याग का इतना ही अर्थ है कि इंद्रियां मालिक हैं या चेतना मालिक है? चेतना मालिक है तो रस विलीन हो जाता है। इसका अर्थ यह नहीं कि इंद्रियां विलीन हो जाती हैं, बल्कि सच तो उल्टी बात है, इंद्रियां परिशुद्ध हो जाती हैं। इसलिए महावीर की आंखें जितनी निर्मलता से देखती हैं, आपकी आंखें नहीं देख सकती। इसलिए, हम महावीर को अंधा नहीं कहते, द्रष्टा कहते हैं, आंख वाला कहते हैं।
बुद्ध के हाथ जितना छूते हैं, उतना आपके हाथ नहीं छू सकते। नहीं छू सकते इसलिए कि भीतर का जो मालिक है, वह बेहोश है। नौकर मालिक हो गए हैं। भीतर की जो बेहोशी है वह संवेदना को पूरा गहरा नहीं होने देती, पूरा शुद्ध नहीं होने देती। बुद्ध की आंखें ट्रांसपेरेंट हैं। आपकी आंखों में धुआं है। वह धुआं आपकी गुलामी से पैदा हो रहा है। अगर ठीक से हम समझें, तो हम अंधे हैं आंखे होते हुए भी; क्योंकि भीतर जो देख सकता था आंखों से, वह मूर्च्छित है, सोया हुआ है। बुद्ध या महावीर जागे हुए हैं, अमूर्च्छित हैं। आंख सिर्फ बीच का काम करती है, मालकियत का नहीं। आंख अपनी तरफ से कुछ भी जोड़ती नहीं, आंख अपनी तरफ से कोई व्याख्या नहीं करती। भीतर जो है वह देखता है। आप अपनी खिड़की पर खड़े होकर बाहर की सड़क देख रहे हैं। खिड़की भी अगर इस देखने में कुछ अनुदान करने लगे, तो कठिनाई होगी। फिर आप वह न देख पाएंगे जो है। वह देखने लगेंगे जो खिड़की दिखाना चाहती है। लेकिन खिड़की कोई बाधा नहीं डालती, खिड़की सिर्फ राह है जहां से आप बाहर झांकते हैं। आंख भी बुद्ध और महावीर के लिए सिर्फ एक मार्ग है, जहां से वे बाहर झांकते हैं। यह आंख सुझाती नहीं, क्या देखो; यह आंख कहती नहीं, ऐसा देखो; यह आंख कहती नहीं, ऐसा मत देखो। यह आंख सिर्फ शुद्ध मार्ग है।
तो महावीर जितनी निर्दोषता से देखते हैं, हम नहीं देख पाते। महावीर अगर आपका हाथ, हाथ में लें, तो वे आपको ही छू लेंगे। जब हम एक दूसरे का हाथ लेते हैं तो सिर्फ हड्डी मांस ही स्पर्श हो पाता है। छू लेंगे आपको ही

क्योंकि बीच में कोई वासना का वेग नहीं है। कोई वासना का बुखार नहीं है। सब शांत है। हाथ सिर्फ छूने का ही काम करता है। इस हाथ की अपने तरफ से कोई आकांक्षा, कोई वासना नहीं है, तो महावीर इस हाथ के द्वारा आपके भीतर तक को स्पर्श कर लेंगे।
इंद्रियां महावीर और बुद्ध की अत्यंत निर्मल हो गई हैं। वे शुद्ध हो
गई हैं, वे उतना ही काम करती हैं, जितना करना जरूरी हैं। अपनी तरफ से वे कुछ भी जोड़ती नही।
हमारी सारी इंद्रियां विक्षिप्त है, और विक्षिप्त होंगी। क्योंकि जब मालिक मूर्च्छित है तो नौकर सम्यक नहीं हो सकते। जब एक रथ का सारथी सो गया हो तो घोड़े कहीं भी दौड़ने लगें, यह स्वाभाविक है। और उन सारे घोड़ों के बीच कोई तालमेल न रह जाए, यह भी स्वाभाविक है।
हमारी इंद्रियों के बीच कोई ताल-मेल भी नहीं है, भोगी की सभी इंद्रियां उसे विपरीत दिशाओं में खींचती रहती हैं। आंख कुछ देखना चाहती है, कान कुछ सुनना चाहता है, हाथ कुछ और छूना चाहते हैं इन सबके बीच विरोध है, इस विरोध से बड़ा कंट्राडिक्शन है, जीवन में बड़ी विसंगतियां पैदा होती हैं।
जैसे, आप एक स्त्री के प्रेम में पड़ गए हैं, एक पुरुष के प्रेम में पड़
गए हैं। आपने कभी ख्याल नहीं किया होगा कि सभी प्रेम इतनी कठिनाइयों में क्यों ले जाते हैं, और सभी प्रेम अंततः दुख क्यों बन जाते हैं। उसका कारण हैं। किसी का चेहरा आपको सुंदर लगा, यह आंख का रस है। अगर आंख बहुत प्रभावी सिद्ध हो जाए तो आप प्रेम में पड़ जाएंगे। लेकिन कल उसकी गंध शरीर की आपको अच्छी नहीं लगती, तब नाक इनकार करने लगेगी। आप उसके शरीर को छूते हैं, लेकिन उसके शरीर की ऊष्मा आपके हाथ को अच्छी नहीं लगती, तो हाथ इनकार करने लगेंगे।
आपकी सारी इंद्रियों के बीच कोई ताल-मेल नही हैं, इसलिए प्रेम विसंवाद हो जाता है। एक इंद्रिय के आधार पर आदमी चुन लेता है, बाकी इंद्रियां धीरे-धीरे अपना-अपना स्वर देना शुरू करेंगी और तब एक ही व्यक्ति के प्रति कोई इंद्रिय अच्छा अनुभव करती है, दूसरी इंद्रिय बुरा अनुभव करती है। आपके मन में हजार विचार एक ही व्यक्ति के प्रति हो जाते हैं।
और हममें से अधिक लोग आंख का इशारा मान कर चलते हैं। क्योंकि आंख बडी प्रभावी हो गई है। हमारे चुनाव में, नब्बे प्रतिशत आंख काम करती है। हम आंख की मान लेते हैं, दूसरी इंद्रियों की हम कोई फिकर नहीं करते। आज नहीं कल कठिनाई शुरू हो जाती है। क्योंकि दूसरी इंद्रियां भी असर्ट करना शुरू करती हैं, अपने वक्तव्य देना शुरू करती हैं।
आंख की गुलामी मानने को कान राजी नहीं है। इसलिए आंख ने कितना ही कहा
हो कि चेहरा सुंदर है, इस कारण वाणी को कान मान लेगा कि सुंदर है, यह आवश्यक नहीं है। आंख की आवाज को, आंख की मालकियत को, नाक मानने को राजी नहीं है। आंख ने कहा हो कि शरीर सुंदर है, लेकिन नाक तो कहेगी कि शरीर से जो गंध आती है, अप्रीतिकर है।
फिर क्या होगा? एक ही व्यक्ति के प्रति पाचों इंद्रियों के अलग-अलग वक्तव्य जटिलता पैदा कर देते हैं। यह जो जटिलता है, केवल उसी व्यक्ति में नही होती, जिसका भीतर मालिक जगा होता है।
तो फिर पांचों इंद्रियों को जोड़ने वाला एक केंद्र भी होता है। हमारे भीतर कोई केंद्र नहीं है। हमारी हर इंद्रिय मालकियत जाहिर करती है। और हर इंद्रिय का वक्तव्य आखिरी है। कोई
दूसरी इंद्रिय उसके वक्तव्य को काट नहीं सकती। हम सभी इंद्रियों के वक्तव्य इकट्ठे करके एक विसंगतियों का ढेर हो जाते हैं।
हमारे भीतर--जिसे हम प्रेम करते हैं--उसके प्रति घृणा भी होती है। क्योंकि एक इंद्रिय प्रेम करती है, एक घृणा करती है। और हम इसमें कभी तालमेल नहीं बिठा पाते। तो ज्यादा से ज्यादा हम यही करते हैं कि हम इंद्रिय को रोटेशन में मौका देते रहते हैं। हमारी इंद्रिया रोटरी-क्लब के सदस्य हैं।

कभी आंख को मौका देते हैं तो वह मालकियत कर लेती है, तब। कभी कान को मौका देते हैं, तब वह मालकियत कर लेता है। लेकिन इनके बीच कभी ताल-मेल निर्मित नहीं हो पाता। कोई संगति कोई सामंजस्य, कोई संगीत पैदा नहीं हो पाता। इसलिए जीवन हमारा एक दुख हो जाता है।
जब भीतर का मालिक जगता है, तो वही संगति है, वही तालमेल है, वही हार्मनी है। सारी इंद्रियां, सारथी जग गया, और लगाम हाथ में आ गई और सारे घोड़े एक साथ चलने लगे। उनकी गति में एक लय आ गई। एक दिशा, एक आयाम आ गया। मूर्च्छित मनुष्य इंद्रियों के द्वारा अलग-अलग रास्तों पर खींचा जाता है। जैसे एक ही बैलगाड़ी अलग-अलग रास्तों पर, चारों तरफ जुते हुए बैलों से खींची जा रही हो। यात्रा नहीं हो पाती घसीटन होती है, और आखिर में सब अस्थि पंजर ढीले हो जाते हैं। कुछ परिणाम नहीं निकलता। जीवन निष्पत्तिहीन होता है, निष्कर्षरहित होता है।
रस परित्याग का अर्थ है--इंद्रियों की मालकियत का परित्याग, इंद्रियों का परित्याग नहीं। आंख नही फोड़ लेनी, कान नहीं फोड़ देना। वह तो मूढ़ता है। हालांकि वह आसान है। आंख फोड़ने में क्या कठिनाई है? जरा सा जिद्दी स्वभाव चाहिए, जोश चाहिए, हठवादिता चाहिए। आंख फोड़ी जा सकती है। सोच-विचार नही चाहिए, आंख आसानी से फोड़ी जा सकती है। और फूट गई तो फिर तो कोई उपाय नहीं है। लेकिन रस इतना आसानी से नहीं छोड़ा जा सकता। रस लंबा संघर्ष है, बारीक है, डेलिकेट है, सूक्ष्म है, नाजुक है और सतत। आंख तो एक बार मे फोड़ी जा सकती है, रस जीवन भर में धीरे-धीरे, धीरे-धीरे छोड़ा जा सकता है। इसलिए त्यागियों को असान दिखा आंख का फोड़ लेना। कोई हिम्मतवर है, इकट्ठी फोड़ लेते हैं, कोई उतने हिम्मतवर नहीं हैं तो धीरे-धीरे फोड़ते हैं। कोई उतने हिम्मतवर नहीं तो फोड़ते नहीं, सिर्फ आंख बंद करके जीने लगते हैं। लेकिन वह हल नहीं है। इसका यह भी अर्थ नहीं है कि आप नाहक ही आंख खोल कर जीएं।
अधिक लोक नाहक आंख खोल कर जीते हैं। रास्ते से जा रेहे हैं, तो दीवालों पर लगे पोस्टर भी उनको पढ़ने ही पड़ते हैं। वह नाहक आंख खोल कर जीना है। जिससे कोई प्रयोजन न था, जिससे कोई अर्थ न था और जिस पोस्टर को हजार दफे पढ़ चुके हैं क्योंकि उसी रास्ते से हजार बार गुजर चुके हैं। आज फिर उसको पढ़ेंगे।
पता नहीं, हमारी आंख पर हमारा कोई भी वश नहीं मालूम होता, इसलिए ऐसा हो रहा है। लेकिन उस पोस्टर को पढ़ लेना सिर्फ पढ़ लेना ही नहीं है, वह आपके भीतर भी जा रहा है और आपके जीवन को प्रभावित करेगा। ऐसा कुछ भी नहीं है जो आप भीतर ले जाते हैं जो आपको प्रभावित न करे। सब भोजन है--चाहे आप आंख से पोस्टर पढ़ रहे हों, वह भी भोजन है, वह भी आपके भीतर जा रहा है।
शंकर ने इन सबको ही आहार कहा है। कान से जो सुनते हैं, वह कान का भोजन है। मुंह से जो लेते हैं, वह मुंह का भोजन है। आंख से जो देखते हैं, वह आंख का भोजन है। इसका यह भी मतलब नहीं है कि आप व्यर्थ ही आंख खोल कर चलते रहें कि व्यर्थ ही कान खोल कर बाजार के बीच में बैठे जाएं। होश रखना जरूरी है। जो सार्थक है, उपादेय है, उसे ही भीतर जाने दें। जो निरर्थक है, निरुपादेय है, घातक है, उसे भीतर न जाने दें।
चुनाव जरूरी है, और चुनाव के साथ मालकियत निर्मित होती है। कौन चुने? लेकिन, आंख के पास चुनने की कोई क्षमता नहीं है; देख सकती है। कान सुन सकता है। चुनेगा कौन? आप। लेकिन आपका तो कोई पता नहीं है। आप तो कही हैं ही नहीं। इसलिए जिंदगी में कोई चुनाव नहीं है।
आप कुछ भी पढ़ते हैं, कुछ भी सुनते हैं, कुछ भी देखते हैं, वह सब आपके भीतर जा रहा है। और आपके कचरे का एक ढेर बना देता है। अगर आपके मन को उघाड़ कर रखा जा सके बाहर तो कचरे का एक ढेर मिलेगा, जिसमें कोई संगति न मिलेगी। कबाड़, कुछ भी इकट्ठा कर लिया है। इकट्ठा करते वक्त सोचा भी नहीं। आप अपने घर में एक चीज लाने में जितना विचार करते हैं कि ले जाना कि नहीं, जगह घर में है या नहीं, कहां रखेंगे, क्या करेंगे, उतना भी विचार मन के भीतर ले जाने में आप नहीं करते। जगह है भीतर? वह भी कभी नहीं सोचते। जो ले जा रेहे है वह ले जाने योग्य है? वह भी कभी नहीं सोचते। कुछ भी।

कभी आपने किसी आदमी से कहा है कि अब बातचीत आप जो कर रहे हैं, बंद कर दें, मेरे भीतर मत डालें। कभी नहीं कहा है। कुछ भी कोई आपके भीतर डाल सकता है। आप कोई टोकरी हैं, कचरे की? जिसमें कोई भी कुछ डाल सकता है। आप के घर में पड़ोसी कचरा फेंके तो आप पुलिस में रिपोर्ट कर देंगे, और पड़ोसी आपकी खोपड़ी में रोज कचरा फेंकता है, आपने कभी कोई रिपोर्ट नहीं की है। बल्कि एक दिन न फेंके तो आपको लगता है, दिन खाली-खाली जा रहा है। आओ, फेंको।
नहीं, हमें होश ही नहीं कि हम भीतर क्या ले जा रहे हैं। आंख, न तो फोड़नी उचित है और न जरूरत से ज्यादा खोलनी उचित है। इसलिए महावीर ने तो कहा है कि साधु इतना देख कर चले जितना आवश्यक है। महावीर ने कहा है कि आंख चार फीट देखे, चलते वक्त भिक्षु की। अगर आंख चार फीट देखे, तो उसका मतलब हुआ आप को नाक का अग्र हिस्सा दिखाई पड़ता रहेगा, बस। आंख झुकी होगी, चार फीट देखेगी। क्योंकि महावीर ने कहा है, चलने के लिए चार फीट देखना काफी है। फिर आगे बढ़ जाते हैं, चार फीट फिर दिखाई पड़ने लगता है, इतना काफी है। कोई दूर का आकाश चलने के लिए देखना आवश्यक नहीं है। उतना देखें, जितना जरूरी हो, काम के लिए। उतना सुनें जितना जरूरी हो, उतना बोलें जितना जरूरी हो, तो इसके परिणाम होंगे।
इसके दो परिणाम होंगे--एक तो व्यर्थ आपके भीतर इकट्ठा नहीं होगा वह आपकी शक्ति क्षीण करता है। दूसरा आपकी शक्ति बचेगी। वह शक्ति ही आपके उर्ध्वगमन के लिए मार्ग बनने वाली है। उसी शक्ति के सहारे आप अंतर की यात्रा पर निकलेंगे।
हम तो करीब-करीब एक्झास्टेड हैं, खत्म हैं। कुछ बचता ही नहीं सांझ होते-होते, दिन भर में सब चुक जाता है। सांझ हम चुके चुकाए, चली हुई कारतूस की तरह अपने बिस्तर पर गिर जाते हैं। मगर रात भर भी हम शक्ति को इकट्ठा नहीं कर रहे हैं, खर्च कर रहे हैं। इसलिए एक मजे की घटना घटती है, लोग थके हुए बिस्तर में जाते हैं और सुबह और थके हुए उठते हैं। रात भी सपने चल रहे हैं और हम थक रहे हैं। हमारी जिंदगी एक लंबी थकान बन जाती है। एक शक्ति का संचयन नहीं। और जहां शक्ति नहीं है, वहां कुछ भी नहीं हो सकता।
तो दो परिणाम है--एक तो व्यर्थ इकट्ठा न हो, हमारे भीतर स्पेस, खाली जगह चाहिए। जिस आदमी के भीतर आकाश नहीं है, उस आदमी का आत्मा से कोई संबंध नहीं हो सकता। जिस आदमी के भीतर आकाश नहीं है, वह उस परमात्मा के अतिथि को निमंत्रण भी नहीं भेज सकता। उसके भीतर वह मेहमान आ जाए तो ठहराने की जगह भी नहीं है।
भीतरी आकाश, इनर स्पेस, धर्म की अनिवार्य खोज है। हम जिसे बुला रहे, जिसे पुकार रहे, जिसे खोज रहे, उसके लायक हमारे भीतर जगह होनी चाहिए। स्थान होना चाहिए। वह रिक्तता बिल्कुल नहीं है। आप भरे हुए हैं, ठसाठस भरे हुए हैं। परमात्मा की भी सामर्थ्य नहीं, लोग कहते हैं कि सर्वशक्तिमान है, मगर आपके भीतर घुसने की उसकी भी सामर्थ्य नहीं। जगह ही नहीं है वहां और शायद इसलिए आप भी अपने भीतर नहीं जा पाते, बाहर घूमते रहते हैं। वहां जगह तो चाहिए। और वहां आपने क्या भर रक्खा है, यह कभी आपने सोचा?
कभी दस मिनट बैठ जाएं और एक कागज पर जो आपके मन के भीतर चलता हो, उसको लिख डालें, तब आपको पता चलेगा, आपने क्या भीतर भर रखा है कही कोई फिल्म की कड़ी आ जाएगी कहीं पड़ोसी के कुत्ते का भौंकना आ जाएगा, कहीं रास्ते पर सुनी हुई कोई बात आ जाएगी, पता नहीं क्या-क्या कचरा वहां सब इकट्ठा है। और इस पर शक्ति व्यय हो रही है। चाहे आप फिल्म की एक कड़ी दोहराते हों और चाहे आप प्रभु का स्मरण करते हों, एक शब्द का भी भीतर उच्चारण शक्ति का ह्नास है। फिर उसका क्या उपयोग कर रहे हैं, यह आप पर निर्भर है। अगर व्यर्थ ही खोते चले जा रहे हैं, तो आखिर में जीवन के अगर आप पाएं, आप सिर्फ खो गए, कुछ पाया नहीं, तो इसमें आश्चर्य नहीं है।
हमारी मृत्यु अक्सर हमें उस जगह पहुंचा देती है जहां अवसर था, शक्ति थी, लेकिन हम उसे फेंकते रहे। कुछ सृजन नहीं हो पाया। हमारी मृत्यु एक लंबे विध्वंस का अंत होती है, एक लंबे आत्मघात का अंत, एक सृजनात्मक, एक क्रिएटिव घटना नहीं।

महावीर की सारी उत्सुकता इसमें है कि भीतर एक सृजन हो जाए, व सृजन ही आत्मा है।
इस सूत्र को हम समझें।
"प्राणीमात्र के संरक्षक ज्ञानपुत्र ने कुछ वस्त्र आदि स्थूल पदार्थों के रखने को परिग्रह नहीं बतलाया है।"
महावीर ने नहीं कहा है कि आपके पास कुछ चीजे हैं तो आप परिग्रही हैं। महावीर ने यह भी नहीं कहा है कि आप सब चीजें छोड़ कर खड़े हो गए तो आप अपरिग्रही हो गए, कि आपने सब वस्तुओं का त्याग कर दिया।
वस्तुएं हैं, इससे कोई गृहस्थ नहीं होता; और वस्तुएं नही हैं, इससे कोई साधु नहीं होता। लेकिन अधिक साधु यही करते रहते हैं। कितनी कम वस्तुएं हैं, इससे सोचते हैं कि साधुता हो गई। साधुता या गृहस्थ महावीर के लिए आंतरिक घटना है। वे कहते हैं, वस्तुओं मे कितनी मूर्च्छा है, कितना लगाव है। इन सामग्रियों में आसक्ति, ममता, मूर्च्छा रखना ही परिग्रह है। मूर्च्छा परिग्रह है। बेहोशी परिग्रह है, बेहोशी का क्या मतलब है? होश का क्या मतलब है? जब आप किसी चीज के लिए जीने लगते हैं, तब बेहोशी शुरू हो जाती है। एक आदमी धन के लिए जीता है, तो बेहोश है। वह कहता है, मेरी जिंदगी इसलिए है कि धन इकट्ठा करना है। धन मेरे लिए है, ऐसा नहीं, धन किसी और काम के लिए है, ऐसा भी नहीं, मैं धन के लिए हूं। मुझे धन इकट्ठा करना है। मैं एक मशीन हूं, एक फैक्ट्री हूं, मुझे धन इकट्ठा करना है।
जब एक आदमी वस्तुओं को अपने से ऊपर रख लेता है, और जब एक आदमी कहने लगता है कि मैं वस्तुओं के लिए जी रहा हूं, वस्तुएं ही सब कुछ हैं, मेरे जीवन का लक्ष्य, साध्य--तब मूर्च्छा है। लेकिन हम सारे लोग इसी तरह जीते हैं। छोटी सी चीज आपकी खो जाए तो ऐसा लगता है, आत्मा खो गई। कभी आपने ख्याल किया? उस चीज का कितना ही कम मूल्य क्यों न हो, रात नींद नहीं आती। चिंता, भीतर मन में चलती हैं। दिनों तक पीछा करती है। एक छोटी सी चीज का खो जाना। बच्चों जैसी हमारी हालत है। एक बच्चे की गुड़िया टूट जाए तो रोता है, छाती पीटता है। मुश्किल हो जाता है उसे यह स्वीकार करना कि गुड़िया अब नहीं रही। दो-चार दिन उसके आंखों मे आंसू भर-भर आते हैं। लेकिन यह बच्चे की ही बात होती तो क्षम्य थी, बूढ़ों की भी यह बात है। जरा सा कुछ खो जाए। यह बड़े मजे की बात है कि उसके होने से कभी कोई सुख न मिला हो, तो भी खो जाए, तो खोने से दुख मिलता है।
आपके पास कोई चीज है। जब तक थी, तब तक आपको उससे कोई सुख न मिला। आपकी तिजोड़ी मे एक सोने की ईंट रखी है, उससे आपको कोई सुख नहीं मिला। ऐसा कभी हुआ कि उसकी वजह से आप नाचे हों, आनंदित हुए हों, ऐसा कभी नहीं हुआ। लेकिन आज ईंट चोरी चली गई, छाती पीट कर रो रहे हैं। जिस ईंट से कभी कोई खुशी नहीं मिली, उसके लिए रोने का क्या अर्थ है? और जो ईंट तिजोड़ी में ही रखी थी वह सोने की थी कि पत्थर की इससे क्या फर्क पड़ता है? कोई फर्क नहीं पड़ता। छाती पर वजन ही रखना है तो सोने का रख लो कि पत्थर का रख लो।
महावीर का अर्थ है मूर्च्छा से, वस्तुएं हमसे ज्यादा मूल्यवान हो जाएं तो मूर्च्छा है।
रस्किन ने कहा है कि धनी आदमी तब होता है, जब वह धन को दान कर पाता है। नहीं तो गरीब ही होता है। रस्किन का मतलब यह है कि आप धनी उसी दिन हैं, जिस दिन आप धन को छोड़ पाते हैं। अगर नहीं छोड़ पाते तो आप गरीब ही हैं। पकड़ गरीबी का लक्षण है, छोड़ना मालकियत का लक्षण है। अगर किसी चीज को आप छोड़ पाते हैं, तो समझना कि आप उसके मालिक हैं; और अगर किसी चीज को आप केवल पकड़ ही पाते हैं तो आप भूल कर मत समझना कि आप उसके मालिक हैं। इसका तो बड़ा अजीब मतलब हुआ। इसका मतलब हुआ कि जो चीजें आप किसी को बांट देते हैं, उनके आप मालिक हैं। और जो चीजें आप पकड़ कर बैठे रहते हैं, उनके आप मालिक नहीं हैं। दान मालकियत है; क्योंकि जो आदमी दे सकता है, वह यह बता रहा है कि वस्तु मुझसे नीची है, मुझसे ऊपर नहीं। मैं दे सकता हूं। देना मेरे हाथ में है। और जो व्यक्ति देकर प्रसन्न हो सकता है, उसकी मूर्च्छा टूट गई। जो व्यक्ति केवल लेकर ही प्रसन्न होता है और देकर दुखी हो जाता है, वह मूर्च्छित है। त्याग का ऐसा है अर्थ।

त्याग का अर्थ हैः दान की अनंत क्षमता, देने की क्षमता। जितना बड़ा हम
दे पाते हैं, जितना ज्यादा हम दे पाते हैं, उतने ही हम मालिक होते चले जाते हैं। इसलिए महावीर ने सब दे दिया। महावीर ने कुछ भी नहीं बचाया। जो भी उनके पास था, सब देकर वे नग्न होकर चले गए। इस सब देने में, सिर्फ एक आंतरिक मालकियत की उदघोषणा है। इस देने को याद भी नहीं रखा कि मैंने कितना दे दिया! अगर याद भी रखे कोई, तो उसका मतलब हुआ कि वस्तुओं की पकड़ जारी है। अगर कोई कहे कि मैंने इतना दान कर दिया, इसे दोहराए!
एक मित्र मेरे पास आए थे। उन्होंने कहा, पर्चा भी छपाए हुए हैं वे, कि
एक लाख रुपया उन्होंने दान किया हुआ है। उन्होंने मुझे कहा कि मैं अब तक लाख रुपया दान कर चुका हूं। नहीं, उनकी पत्नी ने मुझे कहा कि मेरे पति लाख रुपया दान कर चुके हैं। उन्होंने पत्नी की तरफ बड़ी हैरानी से देखा और कहा कि पर्चा पुराना है, अब तो एक लाख, दस हजार!
एक पैसा दान नहीं हो सका इन सज्जन से। एक लाख दस हजार इनके एकाउंट में
अब भी उसी भांति हैं जैसे पहले थे, उसी तरह गिनती में है। यह भला कह रहे हों कि दान कर दिया है, दान हो नहीं पाया। क्योंकि जो दान याद रह जाए वह दान नहीं है।
सुना है मैंने, मुल्ला नसरुद्दीन के घर में कोई मेहमान आया हुआ है। बहुत दिन का पुराना मित्र है और मुल्ला उसे खिलाए चले जा रहे हैं। कोई बहुत बढ़िया मिठाई बनाई है। बार-बार आग्रह कर रहे हैं, तो उस मित्र ने कहा कि बस अब रहने दें। तीन बार तो मैं ले ही चुका हूं। मुल्ला ने कहा, छोड़ो भी, ले तो तुम छह बार चुके हो, लेकिन गिन कौन रहा है? फिकर छोड़ो, ले तुम छह बार चुके हो, लेकिन गिन कौन रहा है?
आदमी का मन ऐसा है, गिन भी रहा है और सोचता है गिन कौन रहा है? त्याग अकसर ऐसा ही चलता है। आदमी कहता है, छोड़ दिया और दूसरी तरफ से पकड़ लेता है, गिनती किए चला जाता है। फिर भी सोचता है, गिन कौन रहा है? पैसा तो मिट्टी है, लेकिन एक लाख दस हजार मैंने दान कर दिया। मिट्टी के दान को कोई याद रखता है। दान तो हम तभी याद रखते हैं जब सोने का होता है। लेकिन अगर मिट्टी ही है तो फिर याददाश्त की कोई जरूरत नहीं।
दान की कोई स्मृति नहीं होती सिर्फ चोरी की स्मृति होती है। चोरी को याद रखना पड़ता है। और अगर दान भी याद रहे तो चोरी के ही समान हो जाता है। अर्थ क्या है? अर्थ इतना है कि हम इस भांति सम्मोहित हो सकते हैं वस्तुओं से, हिप्नोटाइज्ड हो सकते हैं कि हमारी आत्मा वस्तुओं में प्रवेश कर जाए। एक कार सरसराती रास्ते से गुजर जाती है। कार तो गुजर जाती है, हवा के झोंके के साथ आपकी आत्मा भी कार के साथ बह जाती है। वह छवि आंख में रह जाती है। वह सपनों में प्रवेश कर जाती है। मन में एक बात घूमने लगती है, उस रंग की, वैसी गाड़ी, पकड़ लेती है। इसे अगर हम विज्ञान की भाषा में समझें, तो यह हिप्नोटिज्म है, यह सम्मोहन है। आप उस कार के रंग से, रूप से, आकृति से सम्मोहित हो गए। अब आपके चित्त में एक प्रतिमा बन गई है। वह प्रतिमा जब तक न मिल जाए, आप दुखी होंगे।
हम वस्तुओं से सम्मोहित होते हैं। व्यक्तियों से ही होते हों, तो भी ठीक है, हम वस्तुओं से भी सम्मोहित होते हैं। देख लेते हैं एक आदमी की कमीज, रंग पकड़ लेता है, रूप पकड़ लेता है। आपकी आत्मा बह गई आपके बाहर और कमीज से जाकर जुड़ गई। अपने से बाहर बह जाना और किसी से जुड़ जाना, और फिर ऐसा अनुभव करना कि उसके मिले बिना सुख न होगा, यह सम्मोहन का लक्षण है। जहां- जहां हम सम्मोहित होते हैं, वहां-वहां लगता है, इसके बिना अब सुख न होगा। जब भी आपको लगे कि इसके बिना सुख न होगा, तो आप समझ लेना कि आप हिप्नोटाइज्ड हो गए, आप सम्मोहित हो गए।
सम्मोहन करने के लिए कोई आपकी आंखों में झांक कर घंटे भर तक देखना आवश्यक नहीं है। सम्मोहित करने के लिए आपको किसी टेबल पर लिटाकर किसी मेक्सकोली को या किसी को आपको बेहोश करना आवश्यक नहीं है। आप चौबीस घंटे सम्मोहित हो रहे हैं, और चारों तरफ उपाय किए गए हैं आपको सम्मोहित करने के, क्योंकि सारा व्यवसाय जीवन का, सम्मोहन पर खड़ा है।

ख्याल में नहीं है, सारी एडवरटाइजमेंट की कला सम्मोहन पर खड़ी है, वह आपको सम्मोहित कर रही है। रोज रेडियो आपसे कह रहा है कि यही सिगरेट, यही साबुन, यही टुथपेस्ट श्रेष्ठतम है। बस इसको कहे चला जा रहा है। अखबार में रोज बड़े-बड़े अक्षरों में आप यही पढ़ रहे हैं। रास्ते पर निकलते हैं, पोस्टर भी यही कहता है। और इस सबको कहने के और सम्मोहित करने के सारे उपाय किए जाते हैं, क्योंकि अगर कोई इतना ही कहे कि बिनाका टुथपेस्ट सबसे अच्छा है, तो मन में बहुत गहरा नहीं जाता। लेकिन पास में एक खूबसूरत अभिनेत्री को भी खड़ा कर दिया जाए, तो मन में ज्यादा जाता है। अब बिनाका अभिनेत्री का सहारा लेकर मन की गहराइयों में चला जाएगा। अभिनेत्री मुस्कुराती हो, झूठे सही, लेकिन मोतियों जैसे चमकते दांत पकड़ लेते हैं मन को। बिनाका गौण हो जाता है, अभिनेत्री प्रमुख हो जाती है। अभिनेत्री का सहज सम्मोहन है क्योंकि सेक्स का सहज सम्मोहन है। वासना, कामवासना का सहज सम्मोहन है। इसलिए आज दुनिया में कोई भी चीज बेचनी हो, तो बिना स्त्री के सहारे के बेचना मुश्किल है; या बिना पुरुष के सहारे के बेचना मुश्किल है।
पहले उसे सम्मोहित करने के लिए काम-आविष्ट करना जरूरी है। अगर अभिनेत्री नग्न खड़ी हो, तो आपको पता नहीं होगा... अब वैज्ञानिक कहते हैं कि आपकी आंखों की जो पुतली है, तत्काल बड़ी हो जाती है, जब नग्न स्त्री को आप देखते हैं। और आप कुछ भी करें, वह नॉन-वालेंटरी है। आपके हाथ में नहीं है मामला। आप कितना ही संयम साधें और कुछ भी करें, आप आंख की पुतली को बड़ा होने से नहीं रोक सकते। जब आप नग्न चित्र देखते हैं, तब आंख की पुतली तत्काल बड़ी हो जाती है। क्यों? क्योंकि आपके भीतर की आसक्ति पूरी तरह देखना चाहती है। तो आंख का जो लेंस है, बड़ा हो जाए, ताकि पूरा चित्र भीतर चला जाए।
और जब आंख की पुतली बड़ी हो जाती है, वही मेक्सकोली आपकी आंख में पांच मिनट देख कर करता है, वह एक नग्न स्त्री बिना आपकी तरफ देखे कर देती है। आंख की पुतली बड़ी हो जाती है, चित्र तत्काल भीतर चला जाता है, जैसे कैमरे के लेंस से चित्र भीतर चला जाता है। उस स्त्री के साथ बिनाका टुथपेस्ट भी भीतर चला जाता है। यह कंडीशनिंग हो जाती है। अगर रोज-रोज यह होता रहे, तो जब भी आप सुंदर स्त्री के संबंध में सोचेंगे, आपके भीतर बिनाका भी आवाज लगाएगा, और एक दिन आप जब दुकान पर जाकर कहेंगे कि बिनाका टुथपेस्ट दे दें, तो आप बिनाका टुथपेस्ट नहीं मांग रहे हैं, आप अनजाने अचेतन मन से बिनाका के साथ जो स्मृति जुड़ गई है स्त्री की, वह मांग रहे हैं। यह सम्मोहन है। यह सम्मोहन हजार तरह से चलता है, चारों तरफ चलता है। और ऐसा नहीं कि कोई जानकर जब विज्ञापन से आपको सम्मोहित करता है, यह तो अब होश की बात हो गई, विज्ञापनदाता समझ गया है कि आपको कैसे पकड़ना है। मन के पकड़ने के नियम जाहिर हो गए हैं। लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। नियम जाहिर नहीं थे, तब भी... आदमी वस्तुओं से सम्मोहित हो रहा था। हम सदा ही वस्तुओं से सम्मोहित होते रहे हैं। इस सम्मोहन का नाम मूर्च्छा है।
मूर्च्छा का अर्थ हैः कोई वस्तु इस भांति आपको पकड़ ले कि मन में यह भाव पैदा हो जाए कि इसके बिना अब कोई सुख नहीं मिल सकता। महावीर कहते हैं, जिस आदमी को ऐसा भाव पैदा हो गया, उसको दुख मिलेगा। जब तक वस्तु न मिलेगी, तब तक लगेगा, इसके बिना सुख नहीं मिल सकता, और जब वस्तु मिल जाएगी तो... वस्तु के कारण नहीं दिखाई पड़ रहा था कि सुख मिलेगा कि नहीं मिलेगा, यह आपका सम्मोहन था। वस्तु के मिलते ही टूट जाएगा।
इसे ठीक से समझ लें।
सम्मोहन तभी तक रह सकता है, जब तक आपके हाथ में वस्तु न हो। आपको लगे
कि कोहिनूर हीरा मेरे पास हो तो मैं जगत का सबसे बड़ा आदमी हो जाऊंगा, लेकिन जब तक आपके हाथ में कोहिनूर हीरा नहीं है, तभी तक यह सम्मोहन काम कर सकता है। कोहिनूर हीरा आपके हाथ में आ जाए, सम्मोहन नहीं बचेगा। क्योंकि कोहिनूर हीरा हाथ में आ जाएगा और सुख का कोई पता नहीं चलेगा। तो सम्मोहन तत्काल टूट जाएगा। सम्मोहन टूटेगा तो दुख शुरू हो जाएगा। और जितनी बड़ी अपेक्षा बांधी थी सुख की, उतने ही बड़े गर्त में दुख के गिर जाएंगे। अपेक्षा के अनुकूल दुख होता है, ठीक उसी अनुपात में। अगर आपने सोचा था कि

कोहिनूर के मिलते ही मोक्ष मिल जाएगा तो फिर कोहिनूर के मिलते ही आपसे बड़ा दुखी आदमी दुनिया में दूसरा नहीं होगा। इसलिए धनी आदमी दुखी हो जाते हैं।
गरीब आदमी इतना दुखी नहीं होता। यह जरा अजीब लगेगी मेरी बात।
गरीब आदमी कष्ट में होता है, दुख में नहीं होता। अमीर आदमी कष्ट में नहीं होता, दुख में होता है। कष्ट का मतलब है अभाव और दुख का मतलब है, भाव। कष्ट हम उस चीज से उठाते हैं, जो हमें नहीं मिली है और जिसमें हमें आशा है कि मिल जाए तो सुख मिलेगा। इसलिए गरीब आदमी हमेशा आशा में होता है, सुख मिलेगा, आज नहीं कल, कल नहीं परसों; इस जन्म में नहीं, अगले जन्म में, मगर सुख मिलेगा। यह आशा उसके भीतर एक थिरकन बनी रहती है। कितना ही कष्ट हो, अभाव हो, वह झेल लेता है, इस आशा के सहारे कि आज है कष्ट, कल होगा सुख। आज को गुजार देना है। कल की आशा उसे खींचे लिए चली जाती है। फिर एक दिन वही आदमी अमीर हो जाता है।
अमीर का मतलब, जो-जो इसने सोचा था आशा में, वह सब हाथ में आ जाता है। इस जगत में इससे बड़ी कोई दुर्घटना नहीं है, जब आशा आपके हाथ में आ जाती है। तब तत्क्षण सब फ्रस्ट्रेशन हो जाता है, सब विषाद हो जाता है। क्योंकि इतनी आशाएं बांधी थीं, इतने लंबे--लंबे सपने देखे थे, वे सब तिरोहित हो जाते हैं। हाथ में कोहिनूर आ जाता है, सिर्फ पत्थर का एक टुकड़ा मालूम पड़ता है। सब आशाएं खो गईर्ं। अब क्या होगा? अमीर आदमी इस दुख में पड़ जाता है कि अब क्या होगा? अब क्या करना है? कोई आशा नहीं दिखाई पड़ती आगे।
धन बड़े विषाद में गिरा देता है; कष्ट में नहीं, दुख में गिरा देता है। इसलिए दुख जो है वह समृद्ध आदमी का लक्षण है, कष्ट जो है गरीब आदमी का लक्षण है। और कष्ट और दुख, भाषाकोश में भले ही उनका एक ही अर्थ लिखा हो, जीवन के कोष में बिल्कुल विपरीत अर्थ हैं। और मजा यह है कि कष्ट कभी इतना कष्टपूर्ण नहीं है, जितना दुख। क्योंकि दुख आंतरिक हताशा है और कष्ट बाहरी अभाव है। लेकिन भीतर आशा भरी रहती है
आपको पता नहीं है कि आप खोज रहे हैं कि ईश्वर का दर्शन हो जाए, ईश्वर
का दर्शन हो जाए। हो जाए किसी दिन तो उससे बड़ा दुख फिर आपको कभी न होगा। अगर आपने सारी आशाएं इसी पर बांध रखी हैं कि ईश्वर का दर्शन हो जाए।
समझ लो कि किसी दिन ईश्वर आपसे मजाक कर दे--ऐसे वह कभी करता नहीं--और मोरमुकुट बांध कर, बांसुरी बजा कर आपके सामने खड़ा हो जाए, तो थोड़ी बहुत देर देखिएगा फिर! फिर क्या करिएगा? फिर करने को क्या है? फिर आप उससे कहेंगे कि आप तिरोधान हो जाओ, तब आप फिर पहले जैसे लुप्त हो जाओ ताकि हम खोजें। रवींद्रनाथ ने लिखा है कि ईश्वर को खोजा मैंने बहुत-बहुत जन्मों तक। कभी किसी दूर तारे के किनारे उसकी झलक दिखाई पड़ी, लेकिन जब तक मैं अपनी धीमी सी गति से चलता-चलता वहां तक पहुंचा, तब तक वह दूर निकल गया था। कहीं और जा चुका था। कभी किसी सूरज के पास उसकी छाया दिखी, और मैं जन्मों-जन्मों उसको खोजता रहा, खोज बड़ी आनंदपूर्ण थी। क्योंकि सदा वह दिखाई पड़ता था कि कहीं है।
फासला था। फासला पूरा हो सकता था। फिर एक दिन बड़ी मुश्किल हो गई। मैं उसके द्वार पर पहुंच गया। जहां तख्ती लगी थी कि भगवान यहीं रहता है। बड़ा चित्त प्रसन्न हुआ छलांग लगा कर सीढ़ियां चढ़ गया। हाथ में सांकल लेकर ठोंकने जाता ही था दरवाजे पर, पुराने किस्म का दरवाजा होगा, कालवेल नहीं रही होगी। रवींद्रनाथ ने कविता भी लिखी, उसको काफी समय हो गया। कालबेल होती तो वह मुश्किल में पड़ जाते क्योंकि वह एकदम से बज जाती।
सांकल हाथ में लेकर ठोंकने ही जाता था कि तभी मुझे ख्याल आया कि अगर आवाज मैंने कर दी और दरवाजा खुल गया और ईश्वर सामने खड़ा हो गया, फिर! फिर क्या करिएगा? फिर तो सब अंत हो गया, फिर तो मरण ही रह गया हाथ में, फिर कोई खोज न बची; क्योंकि कोई आशा न बची। फिर कोई भविष्य न बचा, क्योंकि कुछ पाने को न बचा।
ईश्वर को पाने के बाद और क्या पाइएगा? फिर मैं क्या करूंगा? फिर मेरा अस्तित्व क्या होगा? सारा अस्तित्व तो तनाव है, आशा का, आकांक्षा का, भविष्य का। जब कोई भविष्य नहीं, कोई आशा नहीं, कोई तनाव नही, फिर मैं क्या

करूंगा? मेरे होने का क्या प्रयोजन है फिर? फिर मैं होऊंगा भी कैसे? वह तो होना बहुत बदतर हो जाएगा।
रवींद्रनाथ ने लिखा है, धीमे से छोड़ दी मैंने वह सांकल कि कहीं आवाज
हो ही न जाए। पैर के जूते निकाल कर हाथ में ले लिए, कहीं सीढ़ियों से उतरते वक्त पग ध्वनि सुनाई न पड़ जाए। और जो मैं भागा हूं उस दरवाजे से, तो फिर मैंने लौट कर नहीं देखा। हालांकि अब मैं फिर ईश्वर को खोज रहा हूं, और मुझे पता है कि उसका घर कहां है। उस जगह को भर छोड़ कर सब जगह खोजता हूं।
बहुत मनोवैज्ञानिक है, सार्थक है बात, अर्थपूर्ण है। आप जहां-जहां सम्मोहन रखते हैं, सम्मोहन का अर्थ--जहां-जहां आप सोचते हैं, सुख छिपा है, वहां-वहां पहुंच कर दुखी होंगे। क्योंकि वह आपकी आशा थी, जगत का अस्तित्व नहीं था। वह जगत का आश्वासन न था, आपकी कामना थी, वह आपने ही सोचा था, वह आपने ही कल्पित किया था, वह सुख आपने आरोपित किया था। दूर-दूर रहना, उसके पास मत जाना, नहीं तो वह नष्ट हो जाएगा। जितने पास जाएंगे उतनी मुसीबत होने लगेगी।
इंद्रधनुष जैसा है सुख। पास जाएं, खो जाता है; दूर रहें, बहुत रंगीन। महावीर कहते हैं इस मूर्च्छा को मैं परिग्रह कहता हूं। यह जो वस्तुओं में सुख रखने की और खोजने की चेष्टा है, इसे मूर्च्छा कहता हूं। पहले हम वस्तुओं में अपनी आत्मा को रख देते हैं, फिर उसको खोजने निकल जाते हैं। फिर जब वस्तु मिल जाती है तो आत्मा को पाते नहीं, ठीकरा वस्तु हाथ में रह जाती है। तब छाती पीट कर रोते हैं। थोड़ी बहुत देर रोना होता है, फिर तत्काल हम किसी दूसरी वस्तु में आत्मा को रख लेते हैं। वस्तुओं का कोई अंत नहीं, इसलिए जीवन की यात्रा का भी कोई अंत नहीं। चलती जाती है यात्रा। आज यहां, कल वहां।
पुरानी कहानियों में बच्चों की, आपने पढ़ा होगा कि सम्राट अपनी आत्मा
को पक्षियों में छिपा देते। कोई तोते में अपनी आत्मा को रख देता है। जब तक तोता न मारा जाए, तब तक वह सम्राट नहीं मरता।
यह सम्राट रखते हों या न रखते हों, लेकिन यह कहानी बड़ी प्रतीकात्मक है। हम सब भी अपनी आत्मा को वस्तुओं में रख देते हैं, और जब तक हम उन वस्तुओं को पा न लें, तब तक जिंदगी बड़े मजे से चलती है। उन वस्तुओं को पाने से ही आत्मा उन वस्तुओं से खिसक जाती है। नष्ट हो जाती है। तब जिंदगी मुश्किल में पड़ जाती है।
यह जो मुसीबत है, यह एक आत्म-सम्मोहन, ऑटो-हिप्नोसिस का परिणाम है। इसको महावीर ने मूर्च्छा कहा है। कैसे इसे तोड़ें? वस्तुओं से कैसे मुक्त हों? इसका यह मतलब नहीं कि महावीर को प्यास लगेगी तो पानी नहीं पीएंगे। लेकिन महावीर पानी के प्रति मूर्च्छित नहीं हैं। वह ऐसा नहीं सोचते कि पानी पीने से प्यास मिट जाएगी। वह जानते हैं, प्यास तो फिर दो घड़ी बाद पैदा हो जाएगी। पानी प्यास को थोड़ी देर पोस्टपोन करता है। स्थगित करता है। वे नहीं सोचते कि खाना खाने से पेट भर जाएगा। खाना खाने से पेट का जो गैर भरापन है, वह थोड़ी देर के लिए सरक जाएगा। इसका यह मतलब नहीं है कि वे पेट को खाली रखते, या पानी नहीं पीते। वह पानी भी पीते हैं, पेट को जब जरूरत होती है भोजन भी देते हैं; लेकिन उनका कोई सम्मोहन नहीं है कि पानी स्वर्ग हो जाएगा, ऐसा उनका सम्मोहन नहीं।
हम सब ऐसी हालत में हैं, जैसे एक आदमी रेगिस्तान में पड़ा हो, प्यासा तड़प रहा हो। उस वक्त उसको ऐसा लगता है, अगर पानी मिल जाए, तो सब मिल गया। हमारी हालत ऐसी है कि हम सोच रहे हैं कि अगर पानी मिल जाए तो सब मिल गया। एक मित्र एक राज्य के मिनिस्टर हैं। वे मेरे पास आते थे। वे मुझसे आकर बोले, मुझे सिर्फ नींद आ जाए तो मुझे स्वर्ग मिल गया। और कुछ नहीं चाहिए। मैं आपके पास न आत्मा जानने आया, न परमात्मा की खोज के लिए आया, मैं तो सिर्फ एक ही आशा से आया हूं कि मुझे नींद आ जाए, तो मुझे सब मिल गया। मैंने उन्हें कुछ श्वास के ध्यान के प्रयोग बताए और मैंने कहा वह तो मिल ही जाएगा, कोई तकलीफ नहीं हैं। उन्होंने कहा, बस, यह अगर मुझे मिल जाए तो मुझे और कुछ चाहिए भी नहीं।

यह रेगिस्तान में पड़े हुए आदमी की हालत है कि पानी मिल जाए तो सब मिल जाए, और आप सबको पानी मिला हुआ है। और कुछ नहीं मिलता पानी मिलने से। लेकिन रेगिस्तान में ऐसा लगता है कि पानी मिल जाए तो सब मिल जाए। रेगिस्तान पानी के प्रति इतना बड़ा सम्मोहन पैदा कर देता है कि वह पड़ा हुआ आदमी सोच भी नहीं सकता कि पानी के मिलने के बाद कुछ और भी दुनिया में पाने को चीज रह जाएगी। उन मित्र ने कुछ दिन ध्यान का प्र्रयोग किया, उनको नींद आ गई। महीने
भर बाद वे आए, और बोले, नींद तो आने लगी और कुछ भी नहीं हुआ।
मैंने, जब वह पहले आए थे तो टेप कर लिया था, जो-जो वह कह गए थे। मैंने टेप लगवाया और मैंने कहा, सुनिए। आप कहते थे, नींद मिल जाए तो सब मिल जाए। नींद मिल जाए तो न मुझे ईश्वर चाहिए, न आत्मा चाहिए। और अब जब नींद मिल गई तो आप कहते हैं, नींद तो मिल गई, और कुछ भी नहीं मिला।
उन्होंने मुझे धन्यवाद तक नहीं दिया। स्वर्ग वगैरह तो दूर, बल्कि मुझे उनकी बात सुन कर ऐसा लगा कि मुझसे कोई अपराध हो गया। उन्होंने कहा, नींद तो मिल गई, और कुछ भी नहीं मिला। वह मुझसे शिकायत करने आए हैं, ऐसा उनका भाव लगा कि और कुछ भी नहीं मिला।
मैंने उनसे पूछाः और क्या चाहिए? जिस दिन वह भी मिल जाएगा, आप ऐसा ही आकर कहोगे, ईश्वर तो मिल गया, और कुछ भी नहीं मिला। वह और है क्या? वह और कब मिलेगा? वह और कहीं है नहीं, वह हटता हुआ क्षितिज है, होरीजन है। जो भी चीज मिल जाती है, वह उससे हट जाता है, वह आगे निकल जाता है। हम कहते हैं वह... वह और कुछ है नहीं। वह हमारा सम्मोहन है जो आगे खिसक जाता है।
हम वस्तुओं में नहीं जीते, हम उस और के सम्मोहन में जीते हैं। वह मिल जाए, तो सब मिल जाए। जब वह मिल जाता है, तो हमारा और, और आगे सरक जाता है। आकाश छूता दिखता है जमीन को, उसे हम क्षितिज कहते हैं। कहीं छूता नहीं आकाश जमीन को, लेकिन दिखता है छूता हुआ। आंख से ही देखने से कुछ सच नहीं होता दुनिया में। लोग कहते हैं, हम तो प्रत्यक्ष को मानते हैं। वह आकाश छूता दिखाई पड़ता है प्रत्यक्ष, जमीन को। आंखे भी बड़ा धोखा देती हैं। जाएं, खोजने उस क्षितिज को। आगे बढ़ेंगे, क्षितिज भी आगे बढ़ता जाएगा। लेकिन कहीं भी खड़े रहें, आगे आकाश छूता हुआ दिखाई पड़ता रहेगा। वह है और, क्षितिज, कहीं छूता नहीं। कहीं भी मनुष्य की वासना तृप्ति को नहीं छूती। कहीं आकाश पृथ्वी को नहीं छूता। वासना आगे बढ़ती है, तृप्ति आगे हट जाती है--और। और यह और कभी भी नहीं मिलता।
इसे महावीर मूर्च्छा कहते हैं। मूर्च्छा परिग्रह है। वस्तुओं का होना नहीं, वस्तुओं में स्वर्ग का दिखई देना। मकान का होना परिग्रह नहीं है; लेकिन मकान में अगर किसी को मोक्ष दिखाई पड़ रहा है, परमात्मा, तो परिग्रह है। धन परिग्रह नहीं है, लेकिन धन में अगर किसी को दिखाई पड़ रहा है परमात्मा, तो परिग्रह है। धन, धन है, मगर बड़े मजे के लोग हैं हम सब। या तो हम कहते हैं, धन परमात्मा है, या हम कहते हैं, धन मिट्टी है। लेकिन, धन, धन है, ऐसा कोई कहनेवाला नहीं मिलता।
धन सिर्फ धन है; न मिट्टी, न परमात्मा। या तो हम शिखर पर रखते हैं, वह
भी झूठ है। और जब हम झूठ से परेशान हो जाते हैं, तो हम दूसरा झूठ पैदा करते हैं कि धन मिट्टी है। धन मिट्टी भी नहीं है। धन सिर्फ धन है। वस्तुएं जो हैं, वही हैं, लेकिन हम कुछ न कुछ करेंगे। या तो स्वर्ग से जोड़ेंगे, या नरक से जोड़ेंगे। हम नरक से क्यों जोड़ना चाहते हैं? स्वर से जोड़-जोड़ कर जब हम ऊब जाते हैं और कोई स्वर्ग नहीं पाते, तो क्रोध में हम नरक से जोड़ना शुरू कर देते हैं। जिसको हम पहले कहते थे स्वर्ग, वह जब नहीं मिलता तो हम अपने को समझाने के लिए कहने लगते हैं, वह तो नरक है, पाने योग्य नहीं है। पहले हम धन में कहते थे, मिल जाएगा सब कुछ; अब हम कहते हैं, धन में क्या रखा है? हाथ का मैल है, मिट्टी है। मगर यह भी तरकीब है मन की। धन सिर्फ धन है। धन का मतलब है, वह विनिमय का साधन है।
मिट्टी विनिमय का साधन नहीं है। उससे चीजें बदली जा सकती हैं, मिट्टी
से नहीं बदली जा सकतीं। वह चीजों के बदलने का उपयोगी माध्यम है। ठीक है, उतना काफी है। उससे ज्यादा आशा रखना गलत है। वह ज्यादा आशा जब हार जाती है, तो हम नीचे गिराकर देखना शुरू करते हैं। हम दूसरी अति पर हट जाते हैं। एक

अति से दूसरी अति पर जाना बहुत आसान है, लेकिन वस्तु के सत्य पर रुक जाना बहुत कठिन है।
धन सिर्फ धन है, उपयोगी है। न उसमें स्वर्ग है, न उसमें नरक है। हां, जो उसमे स्वर्ग देखेगा, उसे उसमें नरक मिलेगा। जो उसमें नरक देखने की कोशिश कर रहा है, उसके भीतर कहीं न कहीं, अभी भी उसमें स्वर्ग दिखाई पड़ रहा है। जो वही देख लेता है, जो धन है, उतना जितना है, उसकी मूर्च्छा टूट गई।
महावीर का अति जोर सम्यक बोध पर है, राइट अंडरस्टैंडिंग पर है। हर चीज को, वह जैसी है वैसा ही जान लेना। इंच भर अपने मन को न जोड़ना। इंच भर अपनी आकांक्षाएं, आशाओं को स्थापित न करना। जो जितना है, जैसा है उतना ही जान लेना अपने प्रोजेक्शन, अपने प्रक्षेप संयुक्त न करना। लेकिन हम नहीं बच सकते। किसी को हम कहेंगे सुंदर है, किसी को हम कहेंगे कुरूप है, किसी को हम कहेंगे मित्र है, किसी को हम कहेंगे शत्रु है। और जब हम यह वक्तव्य देते हैं, तब हमने आकांक्षाएं जोड़नी शुरू कर दीं।
मित्र जब आप किसी को कहते हैं, तो क्या मतलब है आपका? आपका मतलब कै कि इससे कुछ अपेक्षाएं पूरी हो सकती हैं। मित्र है, मुसीबत में काम पड़ेगा। मित्र है, इससे हम आशा रख सकते हैं कि कल ऐसा करेगा। शत्रु से भी आपकी आशाएं हैं कि वह क्या-क्या करेगा। विपरीत आशाएं हैं। आप में बाधा डालेगा, लेकिन आपने कुछ जोड़ दीं आशाएं।
जब आपने किसी को कहा मित्र, तो आपने आशाएं जोड़ लीं, जब आपते किसी को कहा शत्रु, तो आपने आशाएं जोड़ लीं। आप सम्मोहन के जगत में प्रवेश कर गए। जब आपने अ को अ कहा, ब को ब कहा, न मित्र को मित्र कहा, न शत्रु को शत्रु कहा। जब आपने जो है, उतना ही जाना, उसमें कुछ अपनी तरफ से भविष्य न जोड़ा तो आप मूर्च्छा के बाहर हो गए।
मूर्च्छा के बाहर होने की विधि के तीन सूत्र--
एक--वस्तुओं को उनके तथ्य में देखना, आशाओं में नहीं।
दो--वस्तुओं को कभी भी साध्य न समझना, साधन।
तीन--स्वयं की मालकियत कभी भी वस्तुओं के मरुस्थल में न खो जाए, इसके लिए सचेत रहना।
"सामग्रियों में आसक्ति, ममता, मूर्च्छा रखना ही परिग्रह है, ऐसा उन महर्षि ने बताया है। संग्रह करना, यह अंदर रहने वाले लोभ की झलक है।"
बाहर हम जो भी करते हैं, वह भीतर की झलक है। बाहर का हमारा सारा व्यवहार हमारे अंतस का फैलाव है। आप बाहर जो भी करते हैं, वह आपके भीतर की खबर देता है। जरा सी भी बात आप बाहर करते हैं, वह भीतर की खबर देता है। आप बैठे हैं, या बैठे-बैठे टांग भी हिला रहे हैं कुर्सी पर तो वह आपके भीतर की खबर दे रहा है। क्योंकि टांग ऐसे नहीं मिलती, उसे हिलाना पड़ता है। आप हिला रहे हैं। आपको पता भी न हो, और पता हो जाए तो तत्काल टांग रुक जाए। इस वक्त किसी की भी टांग नहीं हिल रही होगी। तत्काल रुक जाए। लेकिन हिल रही थी, और आपको पता चला तो रुक भी गई। इसका मतलब क्या हुआ, आपके भीतर बहुत-कुछ चल रहा है, जिसका आपको पता नहीं। और आपके भीतर बहुत-कुछ हो रहा है जो बाहर भी प्रकट हो रहा है, लेकिन आपको पता नहीं।
इसलिए बड़े मजे की घटना घटती है। दूसरों के दोष हमें जल्दी दिखाई पड़ जाते हैं, अपने दोष मुश्किल से दिखाई पड़ते हैं; क्योंकि खुद के दोष अचेतन चलते रहते हैं। ऐसा कोई जान कर नहीं करता कि अपने दोष नहीं देखना चाहता, लेकिन खुद के दोष इतने अचेतन हो गए होते हैं, इतने हम आदी हो गए होते हैं कि दिखाई नहीं पड़ते। दूसरे के तत्काल दिखाई पड़ जाते हैं। क्योंकि दूसरा सामने खड़ा होता है। फिर अपने दोषों के साथ हमारे लगाव होते हैं, मूर्च्छाएं होती हैं, अंधापन होता है। दूसरे के दोष के प्रति हम बिल्कुल निरीक्षक, शुद्ध निरीक्षक होते हैं।
इसलिए ध्यान रखना, आपके संबंध मे दूसरे जो कहें, उसे बहुत गौर से सोचना। जल्दी उसे इनकार मत कर देना। क्योंकि बहुत मौके ये हैं कि वे सही होंगे।
और आपके संबंध में आप जो मानते चले जाते हैं, उसको जल्दी स्वीकार मत
कर लेना, बहुत कारण तो यह है कि वह सिर्फ आदतन है। आप ऐसा मानते रहे हैं।

अपने संबंध में अपनी जो धारणा हो, उस पर बहुत सोच-विचार करना, बहुत कठोरता से। और दूसरे आपके बाबत जो कहते हों, उस पर बहुत विनम्रता से, जल्दबाजी किए बिना सोच-विचार करना। अक्सर दूसरे सही पाए जाएंगे। आप गलत पाए जाओगे। क्योंकि आपको अपने होने का अधिक हिस्सा अचेतन है। आपको पता ही नहीं कि आप क्या कर रहे हैं।
यह जो हमारी स्थिती है, इसमें प्रतिपल हमारा जो भीतर है, भीतरी है, वह बाहर आ रहा है। हमारे द्वार पर उसकी झलक दिखाई पड़ती है।
एक आदमी संग्रह करता है। धन संग्रह करता है। इकट्ठा करता चला जाता है धन। धन मूल्यवान नहीं है बड़ा। धन न हो तो आप पोस्टल स्टैम्प इकट्ठा कर सकते हैं। उसमें कोई अड़चन नहीं पड़ती। यही काम हो जाएगा। सिगरेट की डिब्बियां इकट्ठी कर सकते हैं, वही काम हो जाएगा। कई दफा हमें लगता है कि बड़ी इनोसेंट हॉबी है किसी आदमी की, बड़ी निर्दोष। कि पोस्टल स्टैम्प इकट्ठा करता है। सवाल यह नहीं है कि आप क्या इकट्ठा करते हैं। भीतर कहीं कोई चीज खालीपन अनुभव कर रही है, उसको आप भरते चले जाते हैं। इसका यह मतलब नहीं कि आप कुछ भी इकट्ठा मत करें। इसका कुल मतलब इतना है कि लोभ के कारण इकट्ठा मत करें।
जरूरत और लोभ में बड़ा फर्क है, आवश्यकता और लोभ मे बड़ा फर्क है। बडे मजे की बात है, लोभी अक्सर आपनी आवश्यकताएं पूरी नही कर पाता। क्योंकि लोभ के कारण आवश्यकता पूरी करने में भी जो खर्च करना है, वह उसकी हिम्मत के बाहर होता है। अक्सर ऐसा होता है कि एक धनी आदमी है, लेकिन अपनी बीमारी का इलाज नही करता; क्योंकि उसमें खर्च करना पड़े। वह खर्च करना उसे कठिन मालूम पड़ता है। तो यह तो हद्द हो गई। आवश्यकता के लिए धन उपयोगी हो सकता है, लेकिन इस आदमी के लिए आवश्यकता से कोई बड़ी चीज है, और वह है भीतर का गड्ढा, लोभ। वहां चीजें भरी होनी चाहिए, वहां जरा सी भी कोई चीज हट जाए तो उसे खालीपन लगता है। खालीपन मे बेचैनी मालूम पड़ती है।
धनी अक्सर कंजूस हो जाते हैं, गरीब कंजूस नहीं होते। इसका मतलब यह नहीं कि अगर यह गरीब कल अमीर हो जाए तो कंजूस नही होगा। गरीब कंजूस नहीं होते इसका कुल कारण इतना है कि भीतर वैसे ही खाली हैं, थोड़ा बचाने से भी कोई फर्क नहीं पड़ता। खाली तो रहेंगे ही, इसलिए गरीब आदमी सहज खर्च कर लेता है लेकिन अमीर आदमी को लगता है कि सब तो भर गया, जरा सा कोना खाली है। इसको भर लें तो तृप्ति हो जाए। वह कोना कभी नहीं भरता वह कोना बड़ा होता जाता है। वह कभी नही भरता, एक कोना सदा खाली रह जाता है। क्योंकि हम अपनी आत्मा वस्तुओं से भर नहीं सकते, सिर्फ धोखा दे सकते हैं भरने का। कोई वस्तु भीतर नहीं जाती, वस्तु तो बाहर रह जाती है। इसलिए भीतर के खालीपन को भर नहीं सकती।
लेकिन, यह भीतर का खालीपन, महावीर कहते हैं, लोभ है। जब एक आदमी बाहर संग्रह करता है तो वह इतनी खबर देता है कि भीतर खाली है। वह खालीपन गट्ढे की तरह पुकारता है, भरो। वह लोभ है। इस लोभ को हम हजार ढंग दे सकते हैं, इस लोभ को कोई आदमी धन से भर सकता है, कोई आदमी ज्ञान से भर सकता है, कोई आदमी त्याग से भर सकता है। बड़ा मुश्किल होगा मामला। क्योंकि हम त्यागी को कभी लोभी नहीं कहते।
लेकिन आपने चार उपवास किए, फिर सोचा की आठ कर लें तो पुण्य और ज्यादा होगा। तो यह लाभ है। चार करने वाला सोचता है कि अगले साल आठ कर लूं, तो क्या फर्क हुआ। चार लाख जिसके पास हैं, वह सोचता है अगले साल आठ लाख हो जाएं। गणित में कहां भेद है। इस वर्ष आपने इतनी तपश्चर्या की, सोचते हैं, अगले वर्ष दुगुनी कर लें। कहां भेद है? ज्यादा, और ज्यादा लोभ की मांग है। त्याग से भी लोभ अपने कि भर सकता है। धन से भी भर सकता है, ज्ञान से भी भर सकता है। और जान लूं, और जान लूं तो उससे भी भराव शुरू हो जाएगा।
महावीर कहते हैं, बाहर का संग्रह अंदर के लोभ की झलक है। संग्रह को छोड़ कर भाग जाने से लोभ नहीं मिटेगा।
आइने में आपका चेहरा दिखाई पड़ रहा है, कुरूप है, तो कुरूप दिखाई पड़ रहा है। एक डंडा उठा कर आईना तोड़ दें, झलक नदारद हो जाएगी; लेकिन आप नदारद नही

हो जाएंगे। और आपका कुरूप चेहरा भी नदारद नहीं हो जाएगा। सिर्फ झलक नदारद हो जाएगी।
मेरे भीतर लोभ है, मैं धन इकट्ठा कर रहा हूं। धन दर्पण है। समझ मे आ गया मुझे कि धन का संग्रह लोभ है, धन छोड़ कर मैं भाग गया। दर्पण मैंने तोड़ दिया, मैं वही का वही हूं, झलक टूट गई। यह समझ लेना।
महावीर कहते हैं, लोभ की झलक है। झलक को तोड़ने से लोभ नहीं टूटेगा, सिर्फ झलक दिखाई पड़नी बंद हो जाएगी।
अब मैं भाग गया जंगल में। अब मैं तपश्चर्या कर रहा हूं, त्याग कर रहा हूं, और अब मैं त्याग का संग्रह कर रहा हूं। वह आदमी मैं वही हूं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। घर छोड़ कर चला जाऊं आश्रम। घर के मुकदमें नहीं लडूंगा तो आश्रम के मुकदमें लडूंगा लेकिन अदालत जाऊंगा। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मेरा मकान, मेरा बेटा, मेरी पत्नी, मेरा पति इनको छोड़ दूंगा तो कहूंगा, मेरा धर्म, मेरा शास्त्र, मेरा वेद, मेरे महावीर, मेरे बुद्ध, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वहां लकड़ियां उठ जाएंगी और सिर खुल जाएंगे।
एक मित्र मुझे मिलने आए थे; अभी थे। उनकी पत्नी धार्मिक है, जैसे कि धार्मिक लोग होते हैं तो मुझसे पूछने लगे कि यहां पास में कोई जैन मंदिर हो, तो मेरी पत्नी बिना नमस्कार किए भोजन नहीं करती। तो मैंने कहा यहां बहुत जैन मंदिर हैं। चले जाएं, जो भी जैन मंदिर मिले, नमस्कार करा दें। कोई बड़ी कठिन बात नहीं है, बंबई में। वे गए। एक मित्र को मैंने साथ कर दिया कि इनको किसी जैन मंदिर पहुंचा दें। उस बेचारे को क्या पता? कि जैन मंदिर मे भी बड़े फर्क होते हैं। वे थे दिगंबर, वह ले गया श्वेतांबर। उसने बता दिया कि यह रहा मंदिर, आप अंदर जाकर नमस्कार कर लें। लेकिन वे देवी उदास होकर वहीं सीढ़ियों पर बैठ गईं। उसने कहा यह हमारा मंदिर नहीं है। ये हमारे महावीर नहीं हैं। हमें तो दिगंबर मंदिर ले चलो। यह तो श्वेतांबर मंदिर है। वह सज्जन अब तक यही सोचते रहे थे बेचारे कि जैन मंदिर, यानी जैन मंदिर। उनको कभी ख्याल न था कि इसमें भी, महावीर में भी टाइप, प्रकार होते हैं। उस स्त्री ने उस मंदिर मे जाकर नमस्कार करने से इन्कार कर दिया। वे उनके महावीर नही हैं। ऐसे मंदिर हैं जैनियों के जहां सुबह दस बजे तक महावीर श्वेतांबर रहते हैं, दस बजे के बाद दिगंबर हो जाते हैं। तो दस बजे तक श्वेतांबर नमस्कार करते, दस के बाद दिगंबर नमस्कार करते।
आदमी गुड्डा-गुड्डियों के खेलों के ऊपर कभीं नही उठ पाता, और इन पर मुकदमे चलते हैं। क्योंकि अगर दस से साढ़े दस बजे तक महावीर श्वेतांबर ही रह गए, तो वह जो दूसरे उपासक हैं, वे लट्ठ लेकर खड़े हो जाते हैं। न मालूम कितने जैनियों के मंदिरों पर पुलिस ने ताला डाल रखा है, क्योंकि भक्त तय नही कर पाते। महावीर ताले में बंद हैं, क्योंकि भक्त तय नही कर पाते कि कैसे बाटें! कैसे आधा-आधा करें! फिर मेरे महावीर, और मेरे बुद्ध, और मेरे राम, और मेरे कृष्ण। मगर वह मेरा खड़ा रहता है, ममता खड़ी रहती है, मूर्च्छा खड़ी रहती है। आदमी झलक को तोड़ दे, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता, जब तक आदमी अपने भीतर की स्थिति को न बदल लें।
दर्पणों को मिटाने से कोई भी सार नहीं। दर्पण बड़े मित्र हैं, झलक देते हैं, आपकी खबर देते हैं। अच्छा है, दर्पणों को रहने दें, लेकिन भीतर जो कुरूपता है, उसे मिटाएं। तो दर्पण, जिस दिन कुरूपता नहीं होगी भीतर, उस दिन बता देंगे कि अब आप सुंदर हो गए हैं। अब भीतर लोभ नहीं है।
धन छोड़ने से कोई प्रयोजन हल नहीं होता है, लोभ छोड़ने से प्रयोजन हल होता है। लोभ बड़ी अलग बात है और एक आंतरिक क्रांति है। लोभ कब छूटता है? लोभ है क्यों?
लोभ है इसलिए कि हम भीतर खाली हैं, अर्थहीन, एंप्टी, रिक्त, कुछ भी वहां नहीं है। इसलिए लोभ है। किसी भी चीज से भर दें, यह बात बुरी नहीं है, भरने की। कठिनाई इसलिए खड़ी हो जाती है कि जिन चीजों से हम भरने जाते हैं, वे भीतर जा नहीं सकतीं। क्या है जो भीतर जा सकता है? उसकी खोज करनी चाहिए। या कहीं ऐसा तो नहीं है कि भीतर हम खाली हैं ही नहीं। यह हमारा ख्याल ही है, और यह ख्याल इसलिए है कि हम भीतर कभी गए नही। हमने ठीक जांच पड़ताल न की। या

यह ख्याल इसलिए है कि बाहर के जगत से खालीपन का जो अर्थ होता है भीतर के जगत में वहीं नहीं होता।
एक कमरा खाली है। लाओत्सु ने कहा है, एक कमरा खाली है, तो हम कहते हैं खाली है। लेकिन लाओत्सु कहता है, तुम ऐसा भी तो कह सकते हो कि कमरा अपने से भरा है, और कोई चीज से नहीं भरा, अपने से भरा है। तुम ऐसा भी कह सकते हो, कमरा खालीपन से भरा है। खालीपन भी एक भरावट है। लेकिन जो फर्नीचर को ही भरावट समझते हैं, उतको कमरा खाली दिखई पड़ेगा। खाली दिखाई पड़ने का कारण यह नहीं कि कमरा खाली है, खाली दिखाई पड़ने का कारण यह है कि आपके भरेपन की परिभाषा। हमने अब तक चीजों को ही भरापन समझा है। आत्मा में कोई चीज नहीं है। इसलिए हमको आत्मा खाली दिखाई पड़ती है। फिर हम चीजों से ही भरते चले जाते हैं। फिर लोभ का पागलपन पैदा हो जाता है, कभी भराव पैदा नहीं होता। महावीर कहते हैं कि भीतर जाकर जो देख ले, वह पाता है, आत्मा तो भरी ही हुई है। अपने से भरी है, किसी और से नहीं। जिस दिन उसका भरपन हमें पता चल जाता है, उस दिन लोभ तिरोहित हो जाता है। क्योंकि फिर भरने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। जिस दिन लोभ हट जाता है, उस दिन संग्रह की पागल दौड़ समाप्त हो जाती है।
यह जो संग्रह करने की वृत्ति रखते हैं, ऐसे लोग गृहस्थ हैं, साधु नहीं, फिर यह वृत्ति कुछ भी हो। किस चीज का आप संग्रह करते हैं, इससे भेद नहीं पड़ता। आप संग्रह करते हैं, तो आप गृहस्थ हैं। अगर आप संग्रह नहीं करते हैं, तो आप साधु हैं। इसलिए साधु या गृहस्थ होना ऊपरी घटना नहीं है, बड़ी आंतरिक क्रांति है।
मैंने सुना है, एस्किमो परिवारों में एक रिवाज है। एक फ्रेंच यात्री
जब पहली दफा एस्किमो ध्रुवीय देशों में गया, तो उसे कुछ पता नहीं था। बहुत गरीब हैं एस्किमो, गरीब से गरीब हैं, लेकिन शायद उनसे संपन्न आदमी पाना भी बहुत मुश्किल है। उस फ्रेंच लेखक ने लिखा है कि मैने उनसे ज्यादा समृद्ध लोग नहीं देखे। पता उसे कैसे चला? जिस घर में भी वह ठहरा, फ्रेंच आदत का, उसे कुछ पता नहीं था कि यहां रिवाज क्या है, यहां का हिसाब क्या है? किसी एस्किमो से उसने कह दिया कि तुम्हारे जूते तो बहुत खूबसूरत हैं! उसने तत्काल जूते भेंट कर दिए। उसके पास दूसरी जोड़ी नहीं है। बर्फीली जगह है, नंगे पैर चलना जीवन को जोखम में डालना है, लेकिन यह सवाल नहीं है।
दो-चार दिन बाद उसे बड़ी हैरानी हुई कि वह जिससे भी कुछ कह दे कि यह चीजे बड़ी अच्छी है, वह तत्काल भेंट कर देता है। तब उसे पता चला कि एस्किमो मानते हैं कि जो चीज किसी को पसंद आ गई, वह उसकी हो गई। उसने पूछा कि इसके मानने का कारण क्या है? तो जिस वृद्ध से उसने पूछा, उस वृद्ध ने कहा, इसके दो कारण हैं, एक तो चीजें किसी की नहीं हैं, चीजें हैं। दूसरा इसके मानने का कारण है कि जिसके पास है, उसके लिए तो अब व्यर्थ हो गई है। जिसके पास नहीं है, वह सम्मोहित हो रहा है। अगर उसे न मिले तो उसका सम्मोहन लंबा हो जाएगा, उसे तत्काल दे देनी जरूरी है ताकि उसका सम्मोहन टूट जाए। और तीसरा कारण यह है कि जिस चीज के हम मालिक हैं, उसकी मालकियत का मौका ही तभी आता है, जब हम किसी को देते हैं। नहीं तो कोई मौका नहीं आता।
चीजों का होना, आपको गृहस्थ नहीं बनाता; चीजों का पकड़ना, क्लिंगिंग आपको गृहस्थ बनाता है। ये एस्किमो संन्यासी हैं, साधु हैं। जिसे हम साधु कहते हैं, अगर उसके भीतर हम झांकें तो वहां संग्रह मौजूद रहता है। बना रहता है, तो फिर वह गृहस्थ है। बाहर से आप क्या हैं, यह बहुत मूल्य का नहीं है। भीतर से आप क्या हैं, यही मूल्य का है। लेकिन भीतर से आप क्या हैं, यह आपके अतिरिक्त कौन जानेगा? कैसे जानेगा? इसलिए सदा अपने भीतर पर एक आंख रखनी चाहिए निरीक्षण की, कि मैं भीतर क्या हूं। चीज को पकड़ता हूं? चीज मूल्यवान है बहुत? चीज न होगी तो मैं मर जाऊंगा, मिट जाऊंगा, मैं चीजों का एक जोड़ हूं, तो मैं गृहस्थ हूं। फिर भाग कर जंगल में जाने से कुछ भी न होगा। फिर इस गृहस्थ होने की भीतरी व्यवस्था को तोड़ना पड़ेगा।
संन्यासी होना एक आंतरिक क्रांति है। यह भीतर घटित हो जाए, तो फिर बाहर वस्तुएं हों या न हों, गौण है।

महावीर ने मूर्च्छा को परिग्रह कहा है, अमूर्च्छा को संन्यास कहा है।
महावीर का सूत्र है--जो सोता है, वह असाधु है। सुत्ता अमुनि। जो जागता है-- वह साधु है। असुत्ता मुनि! जो सोया नहीं है, जागा हुआ है, वह साधु है।
भीतरी जागरण साधुता है, भीतरी बेहोशी असाधुता है।

आज इतना ही।
कीर्तन में सम्मिलित हों।

महावीर-वाणी, भाग 1
पच्चीसवां प्रवचन

अरात्रि भोजनः शरीर-ऊर्जा का संतुलन (अरात्रि-भोजन-सूत्र)

अत्थंगयंमि आइज्चे, पुरत्था य अणुग्गए।
आहारमाइयं सव्वं, भणसा वि न पत्थए।।
पाणिवह-मुसावायाऽदत्त मेहुण-परिग्गहा विरओ।
राइभोयणविरओ, जीवो भवइ अणासवो।।

सूर्योदय के पहले और सूर्यास्त के बाद श्रेयार्थी को सभी प्रकार के भोजन-पान आदि की मन से भी इच्छा नहीं करनी चाहिए। हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन, परिग्रह और रात्रि-भोजन से जो जीव विरत रहता है, वह निराश्रव अर्थात निर्दोष हो जाता है।

सूत्र से पहले एक प्रश्न।
एक मित्र ने पूछा हैः "पाने योग्य चीज को अधिकतर मात्रा में पाने की चेष्टा करना भी क्या लोभ है? अधिक धन प्राप्त करके अधिक दान करने को आप क्या कहेंगे?"
काम, क्रोधादि शत्रुओं में से आमतौर से लोभ के प्रति हमने थोड़ा अन्याय किया है। क्रोध और मोह जैसा संपूर्णतया अनिष्ट लोभ नहीं है। या तो लोभ को मैंने संपूर्णतया गलत समझा है। लोभ के संबंध में थोड़ी बातें ख्याल में ले लेनी जरूरी हैं।
एक तो काम, क्रोध और मोह, लोभ के मुकाबले कुछ भी नहीं हैं। लोभ बहुत गहरी घटना है। छोटा बच्चा पैदा होता है, तब उसके भीतर काम नहीं होता, पर लोभ होता है। काम तो आएगा बाद में, लेकिन लोभ जन्म के साथ होता है।
क्रोध तो प्रासंगिक है। कभी परिस्थिति प्रतिकूल होती है तब उठता है।
लेकिन परिस्थिति प्रतिकूल ही इसलिए मालूम पड़ती है कि लोभ भीतर है।
क्रोध लोभ का अनुसंग है। अगर भीतर लोभ न हो तो क्रोध नहीं होगा। जब आपके लोभ में कोई बाधा डालता है, इसलिए क्रोध पैदा होता है। जब आपके लोभ में कोई सहयोगी नहीं होता, विरोधी हो जाता है तब क्रोध पैदा होता है।
लोभ ही क्रोध के मूल में है। गहरे देखें, तो काम का विस्तार, वासना का विस्तार भी लोभ का ही विस्तार है। बायोलॉजिस्ट, जीवशास्त्री कहते हैं कि मनुष्य की मृत्यु व्यक्ति की तरह तो निश्चित है, लेकिन व्यक्ति मरना नहीं चाहता। अमरता भी एक लोभ है, मैं रहूं सदा, मैं कभी मिट न जाऊं। लेकिन इस शरीर को हम मिटते देखते हैं। अब तक कोई उपाय नहीं इस शरीर को बचाने का। जीवशास्त्री कहते हैं, इसलिए मनुष्य कामवासना को पकड़ता है। मैं नहीं बचूंगा तो भी कोई हर्ज नहीं, मेरा कोई बचेगा। मेरा यह शरीर नष्ट हो जाएगा, लेकिन इस शरीर के जीवाणु किसी और में जीवित रहेंगे।
पुत्र की इच्छा, अमरता की ही इच्छा है। मेरा कोई हिस्सा जीता रहे, बना रहे--वह भी लोभ है।
काम, लोभ का विस्तार है। क्रोध और काम, लोभ के मार्ग में आ गए अवरोध से पैदा हुई वितृष्णा है। मोह--जहां-जहां लोभ रुक जाता है, उसका नाम है--जिस-जिस पर लोभ रुक जाता है।
समझ लें, क्रोध है बाधा, मोह है सहयोग। जो मेरे लोभ में बाधा डालता है,
उस पर मुझे क्रोध आता है। जो मेरे लोभ में सहयोगी बनता है, उस पर मुझे मोह आता है। वह लगता है, मेरा है। उससे ममता जगती है। इसलिए क्रोध, मोह और काम अत्यंत गहरे में ग्रीड, लोभ के ही विस्तार हैं। जिस व्यक्ति का लोभ गिर जाता है उसके ये तीनों, जिनको हम शत्रु कहते हैं, ये भी गिर जाते हैं।
लोभ के बिना क्रोध करिएगा कैसे? हां, यह हो सकता है कि क्रोध के बिना
भी लोभ रहे। यह असंभव है कि लोभ के बिना कामवासना हो, लेकिन कामवासना के बिना भी लोभ हो सकता है। कैसे?
ब्रह्मचर्य में भी लोभ हो सकता है। और मैं, और ब्रह्मचारी, और ब्रह्मचारी, हो जाऊं, यह भी लोभ का हिस्सा हो सकता है।

आत्मा में भी लोभ हो सकता है और परमात्मा में भी लोभ हो सकता है। अकसर ऐसा होता है कि लोभी अपने लोभ के लिए, जब संसार हाथ से छूटने लगता है तो दूसरे लोभ की चीजों को पकड़ना शुरू कर देते हैं। जो यहां धन पकड़ता था, वहां धर्म को पकड़ने लगता है। लेकिन पकड़ वही है। लोभ का भाव वही है। संसार खो गया, कोई हर्ज नहीं, स्वर्ग न खो जाए। यहां यश न मिला, प्रतिष्ठा न मिली, कोई हर्ज नहीं, उस परलोक में भी कही आनंद न खो जाए, कहीं ऐसा न हो कि यह संसार तो खो ही गया दूसरा संसार भी खो जाए, यह लोभ पकड़ता है।
इसलिए मनोवैज्ञानिक कहते हैं, अधिक लोग बूढ़े होकर धार्मिक होने शुरू
हो जाते हैं, लोभ के कारण। जवान आदमी से मौत जरा दूर होती है। अभी दूसरे लोक की इतनी चिंता नहीं होती। अभी आशा होती है कि यहीं पा लेंगे, जो पाने योग्य है। यहीं कर लेंगे इकट्ठा। लेकिन मौत जब करीब आने लगती है, हाथ-पैर शिथिल होने लगते हैं और संसार की पकड़ ढ़ीली होने लगती है इंद्रियों की, तो भीतर का लोभ कहता है, यह संसार तो गया ही, अब दूसरे को मत छोड़ देना। "माया मिली न राम।" कहीं ऐसा न हो कि माया भी गई, राम भी गए। तो अब राम को जोर से पकड़ लो।
इसलिए बूढ़े लोग मंदिरों, मस्जिदों की तरफ यात्रा करने लगते हैं। तीर्थयात्रियों में देखें, बूढ़े लोग तीर्थ की यात्रा करने लगते हैं। ये वही लोग हैं जिन्होंने जवानी में तीर्थ के विपरीत यात्रा की है।
कार्ल गुस्ताव जुंग ने, इस सदी के बड़े से बड़े मनोचिकित्सक ने कहा है,
कि मानसिक रूप से रुग्ण व्यक्तियों में जिन लोगों की मैंने चिकित्सा की है, उनमें अधिकतम लोग चालीस वर्ष के ऊपर थे। और उनकी निरंतर चिकित्सा के बाद मेरा यह निष्कर्ष है कि उनकी बीमारी का एक ही कारण था कि पश्चिम में धर्म खो गया है। चालीस साल के बाद आदमी को धर्म की वैसी ही जरूरत है, जुंग ने कहा है, जैसे जवान आदमी को विवाह की। जवान को जैसे कामवासना चाहिए, वैसे बूढ़े को धर्म-वासना चाहिए। जुंग ने कहा है, अधिक लोगों कि परेशानी यह थी कि उनको धर्म नहीं मिल रहा है। इसलिए पूरब में कम लोग पागल होते हैं, पश्चिम में ज्यादा लोग। पूरब में जवान आदमी भला पागल हो जाए, बूढ़ा आदमी पागल नहीं होता। पश्चिम में जवान आदमी पागल नहीं होता, बूढ़ा आदमी पागल हो जाता है। जैसे-जैसे जवानी हटती है, वैसे-वैसे रिक्तता आती है। यौवन की वासना खो आती है और बुढ़ापे की वासना को कोई जगह नहीं मिलती। मन बेचैन और व्यथित हो जाता है।
हमारा बूढ़ा सोचता है आत्मा अमर है, आश्वासन होते हैं। हमारा बूढ़ा सोचता है, माला जप रहे हैं, राम नाम ले रहे हैं, स्वर्ग निश्चित है। सांत्वना मिलती है। पश्चिम के बूढ़े को कोई भी सांत्वना नहीं रही। पश्चिम का बूढ़ा बड़े कष्ट में है, बड़ी पीड़ा में है। सिवाय मौत के आगे कुछ भी देखाई नहीं पड़ता है उस पार।
उस पार लोभ को कोई मौका नहीं। जवानी के लोभ विषय खो गए और बुढ़ापे के लोभ के लिए कोई ऑब्जेक्ट, कोई विषय नहीं मिल रहे। मौत का तो लोभ हो नहीं सकता अमरता का हो सकता है। बूढ़ा आदमी शरीर का क्या लोभ करेगा! शरीर तो खो रहा है, हाथ खिसक रहा है। तो शरीर के ऊपर, पार कोई चीज हो तो लोभ करे।
लोभ अदभुत है, विषय बदल ले सकता है। धन ही पर लोभ हो, ऐसा आवश्यक नहीं। लोभ किसी भी चीज पर हो सकता है। वासना छूट जाए काम की तो लोभ मोक्ष की वासना बन सकता है।
तो लोभ की गहराई हम समझ लें। क्यों, लोभ के साथ अन्याय नहीं हुआ है।
जिन्होंने भी समझा है लोभ को, उन्होंने उसे मूल में पाया है। ग्रीड मूल है। तो लोभ शब्द से हमें समझ में नहीं आता, क्योंकि सुन-सुन कर हम बहरे हो गए हैं। इस शब्द में हमें बहुत ज्यादा दिखाई नहीं पड़ता।
लोभ का मतलब है कि भीतर मैं खाली हूं और मुझे अपने को भरना है। और यह खालीपन ऐसा है कि भरा नहीं जा सकता। यह खालीपन हमारा स्वभाव है, खाली होना हमारा स्वभाव है। भरने की वासना लोभ है इसलिए लोभ सदा असफल होगा। और कितना ही सफल हो जाए तो भी असफल रहेगा। हम अपने को भर न पाएंगे। हम चाहे धन से, चाहे पद से, यश से, ज्ञान से, त्याग से, व्रत से, नियम से, साधना से, इन सबसे भी भरते रहें तो भी अपने को भर न पएंगे। वह भीतर विराट शून्य है।

उस विराट शून्य का नाम ही आत्मा है। तो जब तक कोई व्यक्ति सूना होने
को राजी नहीं हो जाता, शून्य होने को, तब तक उस आत्मा का कोई दर्शन नहीं होता। और लोभ हमें शून्य नहीं होने देता, इसलिए लोभ को इतना मूल्य दिया है और इतना उससे छुटकारे की बात की है। लोभ हमें शून्य नहीं होने देता। और लोभ हमें भटकाए रखता है, दौड़ाए रखता है। और जब तक हम भीतर शून्य न हो जाएं, तब तक स्वयं का कोई साक्षात्कार नहीं है। क्योंकि शून्य होना ही स्वयं होना है।
जब तक मैं भरा हूं, मैं किसी और चीज से भरा हूं। इसे ठीक समझ लें।
भरने का मतलब ही किसी और चीज से भरे होना है। हम कहते हैं, बर्तन भरा है, बर्तन भरा है इसका मतलब है कि कुछ और इसमें पड़ा है। अगर बर्तन स्वयं है तो खाली होगा, भरा नहीं हो सकता। हम कहते हैं, मकान भरा है, उसका मतलब है, किसी और चीज से भरा है। अगर मकान स्व्यं है तो खाली होगा, भरा नहीं हो सकता। हम कहते हैं, आकाश बादलों से भरा है। इसका मतलब है, बादल कुछ और है। जब बादल न होंगे, तब आकाश स्वयं होगा।
भराव सदा पराए से होता है, स्वयं का कोई भराव नहीं होता। जब भी आप स्वयं होंगे, शून्य होंगे और जब भी भरे होंगे किसी और से भरे होंगे। वह और धन हो, प्रेम हो, मित्र हो, शत्रु हो, संसार हो, मोक्ष हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। बट द अदर, हमेशा दूसरा होगा। जिससे आप भरते हैं।
जिसको भरना है, वह दूसरे से भरेगा। जिसको खाली होना है, वही स्वयं हो सकता है। इसका मतलब हुआ कि लोभ स्वयं को भरने की आकांक्षा है। अलोभ, स्वयं के खालीपन में जीने का साहस है। इसलिए लोभ भयंकर है। लोभ ही हमारा संसार है। जब तक मैं सोचता हूं कि किसी चीज से अपने को भर लूं, जब तक मुझे ऐसा लगता है कि भरे बिना मैं चैन में नहीं हूं... ।
आप अकेले में कभी चैन में नहीं होते। हर आदमी तलाश कर रहा है साथी की, मित्र की, क्लब की, सभा की, समाज की। हर आदमी खोज कर रहा है दूसरे की, अकेला होने को कोई भी राजी नहीं। अपने साथ किसी को भी चैन नहीं मिलता। और बड़े मजेदार हैं हम लोग। हम खुद अपने साथ चैन नहीं पाते और सोचते हैं, दूसरे हमारे साथ चैन पाएं। हम खुद अपने को अकेले में बरदाश्त नहीं कर पाते और हम सोचते हैं, दूसरे न केवल हमें बरदाश्त करें, बल्कि अहोभाव मानें। हम खुद अपने साथ रहने को राजी नहीं हैं, लेकिन हम चाहते हैं दूसरे समझें कि हमारा साथ उनके लिए स्वर्ग है।
अकेला आदमी भागता है जल्दी, किसी से मिलने को।
मार्क ट्वेन ने मजाक में एक बड़ी ब.ढिया बात कही है। मार्क ट्वेन बीमार था। किसी मित्र ने पूछा कि ट्वैन, तुम स्वर्ग जाना चाहोगे कि नरक? मार्क ट्वेन ने कहा कि इसी चिंतन में मैं भी पड़ा हूं। लेकिन बड़ी दुविधा है, फॉर क्लाइमेट हेवेन इ.ज बेस्ट, बट फॉर कंपनी हैल। अगर सिर्फ स्वास्थ्य सुधार ही करना हो, मगर अकेला रहना पड़ेगा स्वर्ग में, आबोहवा तो बहुत अच्छी है वहां, लेकिन कंपनी बिल्कुल नहीं है।
महावीर स्वामी बगल में बैठे भी हों आपके, तो भी कंपनी नहीं हो सकती। कंपनी चाहिए तो नरक। वहां जानदार, रंगीले लोग हैं, वहां कंपनी है, वहां चर्चा है, मजाक है, बातचीत है।
उसने तो मजाक में ही कहा था, लेकिन बात में थोड़ी सच्चाई है, लेकिन इसे दूसरे पहलू से देखें तो यह मजाक गंभीर हो जाता है। असल में जो लोग भी भीतर नरक में हैं, वह हमेशा कंपनी की खोज में होते हैं। जो लोग भीतर खुद से दुखी हैं, वे साथी खोजते हैं। जो भीतर आनंदित है, वह अपना साथी काफी है, किसी और साथ की कोई जरूरत नहीं।
सुना है मैंने इकहार्ट के बाबत, ईसाई फकीर हुआ है। पश्चिम ने जो थोड़े
से कीमती आदमी दिए हैं, महावीर और बुद्ध की हैसियत के, उनमें से एक। इकहार्ट अकेला बैठा है। एक मित्र रास्ते से गुजरता था। उसने सोचा, बेचारा अकेला बैठा है, ऊब गया होगा। बह मित्र आया और उसने कहा कि अकेले बैठे हो, मैंने सोचा जाता तो हूं ज्ररूरी काम से, लेकिन थोड़ा तुम्हें साथ दे दूं, टु गिव यू कंपनी।

इकहार्ट ने कहाः हे परमात्मा! अब तक मैं अपने साथ था, तुमने आकर मुझे अकेला कर दिया। आई वॉ.ज अप टु नाउ विद मी, यू हैव मेड मी एलोन। अब तक मैं अपने साथ था, तुमने आकर मुझे अकेला कर दिया। तुम्हारी बड़ी कृपा होगी, कि तुम अपनी कंपनी कहीं और ले जाओ। तुम किसी और को साथ दो। हम अपने साथ में काफी हैं, पर्याप्त हैं।
जो अपने भीतर सोचता है, अपर्याप्त हूं, वह साथ खोजता है।
लोभ अपने भीतर से अतृप्ति है। लोभ का मतलब है, मैं अपने से राजी नहीं हूं। कुछ और चाहिए राजी होने के लिए। और जो अपने से राजी नहीं है उसे कुछ भी मिल जाए, वह कभी राजी नहीं हो सकता। क्योंकि कुछ भी मिल जाए, वह मुझसे दूर ही रहेगा मेरे निकट तो मैं ही हूं। कितनी ही सुंदर पत्नी खोज लूं, फासला रहेगा। और कितना ही अच्छा मकान बना लूं, फासला रहेगा। और कितना ही धन का अंबार लग जाए, फासला रहेगा। मेरे पास तो मेरे अतिरिक्त कोई भी नहीं आ सकता। मैं अपने साथ तो रहूंगा ही, धन हो कि गरीबी, साथी हो कि अकेलापन, मैं अपने साथ तो रहूंगा ही। और अगर मैं अपने से ही राजी नहीं हूं तो मैं जगत में कभी भी राजी नहीं हो सकता।
लोभ का मतलब है, अपने से राजी न होना। किसी और से राजी होने की कोशिश
है लोभ। जब कोई इस कोशिश में सफलता दे देता है, तो मोह हो जाता है। तब हम कहते हैं, इसके बिना मैं नहीं जी सकता। यह है मोह। कहते हैं, अगर यह हट गया तो मेरी जिंदगी बेकार है, यह है मोह। फिर कोई बाधा डालता है और मेरी इस लोभ की खोज में अवरोध बन जाता है, तो क्रोध उठता है, मिटा डालूंगा इसे। जिससे मोह बनता है, उससे हम कहते हैं, अगर यह मिट जाए तो मैं जी न सकूंगा। और जिससे हमारा क्रोध बनता है, तो हम कहते हैं, जब तक यह है मैं जी न सकूंगा। इसे मिटा डालो।
मोह और क्रोध विपरीत पहलू हैं, एक ही घटना के। और यह जो लोभ है हमारे भीतर,
दूसरे की तलाश--इस दूसरे की तलाश में हमारी जो शक्तियों का नियोजन है, उसका नाम काम है, उसका नाम सेक्स है।
हमारे भीतर जो ऊर्जा है, जीवन की शक्ति है, जब यह शक्ति दूसरे की तलाश में निकल जाती है, तो काम बन जाती है। यह बड़े मजे की बात है, थोड़ी दुरूह भी। हमें ख्याल में नहीं आता है कि जब एक आदमी धन का दीवाना होता है, तो धन की दीवानगी उसके लिए वैसे ही कामवासना होती है जैसे कोई किसी स्त्री का दीवाना हो। वह रुपये को हाथ में रख कर वैसे ही
देखता है, जैसे कोई सुंदर चेहरे को देखे। तिजोरी को वह वैसे ही प्रेम
से खोलता है, जैसे कोई अपनी प्रेयसी को बिठाए। रात सपनों में प्रेयसी नहीं आती, तिजोरी आती है। यह धन जो है, इसके लिए सेक्स ऑब्जेक्ट है। यह धन साथ मैथुन-रत है। इसलिए जो आदमी धन का दीवाना होता है, वह किसी को प्रेम नहीं कर सकता। धन पर्याप्त है। इसलिए धन का दीवाना पत्नी को प्रेम नहीं कर सकता, बच्चों को प्रेम नहीं कर सकता। सभी प्रेम बड़े ईर्ष्यालु हैं। अगर धन से प्रेम हो गया तो धन दूसरे से प्रेम न होने देगा। प्रेम जेलस है। धन ने अगर पकड़ लिया तो फिर नहीं होने देगा।
फैराडे, एक वैज्ञानिक को कोई पूछता था कि तुमने विवाह क्यों नहीं किया? उसने कहा कि जिस दिन विज्ञान से विवाह कर लिया, उस दिन सौतेली पत्नी घर में लाने की हिम्मत फिर मैंने न जुटाई।
अक्सर, वैज्ञानिक हों, चित्रकार हों, कवि हों, संगीतज्ञ हों, पत्नी से बचते हैं। नहीं बचते तो पछताते हैं। पछताना पड़ेगा, क्योंकि दो पत्नियां! मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा उससे पूछ रहा था कि पिताजी कानून ने दो विवाह पर रोक क्यों लगा रखी है? तो नसरुद्दीन ने कहा, जो अपनी रक्षा खुद नहीं कर सकते, कानून को उनकी रक्षा करनी पड़ती है। जो अपनी रक्षा खुद नहीं कर सकते, कानून को उनकी रक्षा करनी पड़ती है। एक ही पत्नी काफी है। मगर आदमी कमजोर है, दो, चार, दस इकट्ठी कर ले सकता है। तो कानून को उसकी रक्षा करनी पड़ती है कि एैसी भूल मत करना।
अक्सर, जिनको किसी खोज में लीन होना है, वे विवाह से बच जाते हैं। उसका
और कोई कारण नहीं है, क्योंकि वह खोज ही उनके लिए सेक्स ऑब्जेक्ट है। जो

संगीत का दीवाना है, उसके लिए संगीत प्रेयसी है। जो काव्य का दीवाना है, कविता उसकी प्रेयसी है। अब दूसरी पत्नी कठिनाई खड़ी कर देगी। और पत्नियां इसे भलीभांति जानती हैं। कभी-कभी ऐसी भूल-चूक हो जाती है कि कोई कवि शादी कर लेता है, तो पत्नी के बरदाश्त के बाहर होता है कि वह कविता लिखे बैठ कर, उसके सामने। पत्नी मौजूद हो और पति कविता लिखे, तो पत्नी छीन कर फेंक देगी उसकी कविता। वैज्ञानिकों के हाथ से उनके उपकरण छीन लिए हैं। दार्शनिकों के हाथ से उनके शास्त्र छीन लिए हैं। हमें हैरानी लगती है कि आखिर यह पत्नी को क्या हो रहा है! अगर सुकारात अपनी किताब पढ़ रहा है, तो यह झेनथिप्पे उसे किताब पढ़ने क्यों नहीं देती!
हमें लगता है कि पागल औरत है। पागल नहीं है वह। जाने अनजाने वह समझ गई
है कि किताब ज्यादा महत्वपूर्ण है सुकरात के लिए पत्नी की बजाय। जब पत्नी मौजूद है, पति अखबार पैढ़ रहा है तो बात साफ है कि वहां महत्वपूर्ण कौन है! कौन महत्वपूर्ण है यह बात साफ है। तो अगर पत्नी अखबार को छीन कर फाड़ कर फेंक देती है, तो पत्नी की अंतःप्रज्ञा उसको ठीक-ठीक दिशा दे रही है। वह ठीक समझ रही है।
जो व्यक्ति जिसमें लीन हो जाता है, वही उसके लिए काम-विषय हो जाता है। लीनता, काम-विषय का लक्षण है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आपकी लीनता स्त्री और पुरुष के प्रति ही हो। आपकी लीनता किसी भी चीज के प्रति हो जाए, तो जो संबंध है वह काम का हो जाता है। लोभ काम की यात्रा पर निकल जाता है। फिर चाहे धन, चाहे यश, चाहे पुण्य, इससे कोई फर्क नहीं पडता।
लोभ का एक लक्षण है, अपने से बाहर जाना। दूसरे की खोज। दूसरे के बिना जीना मुश्किल। दूसरा स्वयं से ज्यादा महत्वपूर्ण है। दूसरे की महिमा ज्यादा, स्वयं की महिमा गौण। और जिसकी स्वयं की महिमा गौण है वह कहीं भी भटके, भिखारी ही रहेगा। इसलिए लोभी सदा भिखारी है, सम्राट हो जाए तो भी। उसका भिक्षा-पात्र खाली ही रहता है। और फिर लोभ से पैदा होती हैं सारी संततियां--क्रोध की, मोह की। इसलिए लोभ को पाप का मूल कहा है।
मित्र ने पूछा है कि ज्यादा धन कमा कर ज्यादा दान?
धन से लोभ का संबंध नहीं है। दान से भी लोभ का संबंध नहीं है। ज्यादा- ज्यादा से संबंध है। ज्यादा धन कमाने वाला ज्यादा में अटका हुआ है। कल यह ज्यादा दान भी कर सकता, तब भी ज्यादा में ही अटका होगा।
दान अच्छा है, लेकिन प्रायश्चित की तरह। और उसका कोई विधायक मूल्य नहीं है। जैसे माफी मांगना अच्छा है, लेकिन इसका मतलब नहीं कि एैसे उपाय करना चाहिए, जिससे माफी मांगनी पड़े। कि पहले गाली देनी चाहिए, फिर माफी मांग लेनी चाहिए। क्योंकि माफी मांगना बहुत अच्छा है। माफी मांगना अच्छा है, प्रायश्चित की तरह। माफी कोई पुण्य नहीं है। माफी केवल पाप का प्रायश्चित है। दान कोई पुण्य नहीं है, केवल जो इकट्टा किया था धन, उसका प्रायश्चित है। दान की कोई विधायकता नहीं है, कोई पॉजिटिविटी नहीं है दान की। इसलिए जो लोग कहते हैं, खूब दान करो, अगर उसका मतलब यह है कि पहले खूब धन इकट्ठा करो, फिर दान करो तो यह तो गणित के साथ बहुत तरकीब होगी। पहले खूब पाप करो, फिर पुण्य करो।
एक पादरी स्कूल के बच्चों से पूछ रहा था। उसने बहुत समझाया था उनको कि मुक्ति के लिए क्या आवश्यकता है--सालवेशन के लिए, छुटकारे के लिए। समझाया था कि जीसस की प्रार्थना, पूजा, भगवान का स्मरण यह सब जरूरी है, जिसको मुक्त होना हो। फिर उसने सब समझाने के बाद पूछा कि मुक्त होने के लिए सबसे ज्यादा जरूरी चीज क्या है? एक छोटे से बच्चे ने हाथ उठाया, हाथ हिलाया। वह पादरी बहुत खुश हुआ। उसने पूछा, क्या है सबसे जरूरी चीज? उसने कहा, पाप करना।
जब तक पाप न करो, छूटना किससे है? छुटकारे का क्या अर्थ है? छुटकारे का लिए पाप करना पहली जरूरत है। दान के लिए पहले धन इकट्ठा करना। लेकिन यह जाल समझने जैसा है। जो आदमी ज्यादा धन इकट्ठा कर रहा है, वह दान कैसे कर पाएगा? जितना ज्यादा पर उसका जोर होगा, उतना ही छोड़ना मुश्किल होगा। क्योंकि ज्यादा को पकड़ने की आदत हो जाएगी। हां, वह दान कर सकता है, अगर ये दान इनवेस्टमेंट हो। अगर उसको यह पक्का भरोसा हो जाए कि जितना मैं देता

हूं, उससे ज्यादा मुझे मिलेगा, तो वह दान कर सकता है। उसे पक्का हो जाए कि यहां देता हूं, स्वर्ग में मिलेगा।
आजकल लोग दान करने में उतने तत्पर नहीं दिखाई पड़ते, उसका कारण, स्वर्ग संदिग्ध हो गया है। और कोई कारण नहीं। उतना भरोसा नहीं रहा साफ-साफ कि है भी। अगर पुराने लोग दानी थे तो आप यह मत समझना कि आपसे कम लोभी थे। स्वर्ग सुनिश्चित था। उसमें कोई शक की बात ही न थी। यहां देना और वहां लेना। नगद था, उसमें कहीं कोई उधारी का मामला न था। अब सब गड़बड़ है। यहां हाथ से जाता हुआ नगद मालूम पड़ता है, वहा स्वर्ग का मिलता हुआ नगद नहीं है।
जिन्होंने दान किए हैं पुराने लोगों ने, लोभ के कारण ही किए हैं, लोभ
के विपरीत नहीं। लोभ के विपरीत दान बड़ी और बात है। लोभ के कारण दान बड़ी और बात है। क्या फर्क होगा दोनों में? एक फर्क होगा। ज्यादा मौजूद नहीं होगा दान में। अगर यह लगता है कि ज्यादा दान करूं, तो क्यों लगता है, ताकि ज्यादा पा लूं? यह ज्यादा की दौड़ क्या है? यही दौड़ कल थी कि ज्यादा धन इकट्ठा करूं, अब यही दौड़ है कि ज्यादा दान करूं। क्यों? तुम ज्यादा के बिना क्यों नहीं हो सकते हो? यह ज्यादा--यह बुखार ज्यादा का आवश्यक नहीं है। और जब कोई व्यक्ति ज्यादा से मुक्त हो जाता है तो शांत हो जाता। तब लेभ शांत हो जाता है।
तो जिन्होंने वस्तुतः दान किया है, उन्होंने कुछ पाने के लिए दान नहीं किया है। वह सिर्फ प्रायश्चित है। जो व्यर्थ का इकट्ठा कर लिया था वह वापस लौटा दिया है। उससे आगे कोई पुण्य मिलने वाला नहीं है, पीछे के किए पाप का निपटारा है। वह सिर्फ हिसाब साफ कर लेना है, और कुछ भी नहीं।
मित्र ने पूछा हैः "पाने योग्य चीज को अधिकतर मात्रा में पाने की चेष्टा में भी क्या लोभ है?"
असल में पाने योग्य क्या है? जो पाने योग्य है, वह भीतर पहले से ही मिला हुआ है। उसका कोई लोभ नहीं किया जा सकता। और जो भी हम पाने योग्य मानते हैं, वह पाने योग्य नहीं होता। लोभ पहले आ जाता है, इसलिए पाने योग्य मालूम पड़ता है।
इसे थोडा ठीक से समझ लें।
हम कहते हैं, जो पाने योग्य है, उसके लोभ में क्या हर्ज है! लेकिन पाने योग्य वह होता ही इसलिए है कि लोभ ने उसे पकड़ लिया है। नहीं तो पाने योग्य नहीं होता। जो चीज आपको पाने योग्य लगती है, आपके पड़ोसी को पाने योग्य नहीं लगती। पड़ोसी का लोभ कहीं और है, आपका लोभ कहीं और है, यही फर्क है। कोई चीज अपने आप में पाने योग्य नहीं है। जिस दिन आपका लोभ उस चीज से जुड़ जाता है, वह पाने योग्य दिखाई पड़ने लगती है। जब तक लोभ नहीं जुड़ा था, पाने योग्य नहीं थी। पाने योग्य का मतलब ही यह है कि लोभ जुड़ गया। तब तो एक वीसियस-सर्किल पैदा हो जाता है। लोभ पहले जुड़ गया, इसलिए चीज पाने योग्य मालूम पड़ती है। और फिर हम कहते हैं, जो पाने योग्य है, उसके लोभ में हर्ज क्या! यह लोभ जो दूसरा है, धोखा दे रहा है। इसके पहले ही लोभ आ गया।
ऐसा समझें तो आसान हो जाएगा। हम कहते हैं, सुंदर व्यक्ति पाने योग्य मालूम पड़ता है। लेकिन सुंदर ही क्यों मालूम पड़ता है? आप जब कहते हैं, फलां व्यक्ति सुंदर है तो आप सोचते है, सौंदर्य कोई गुण है जो वहां व्यक्ति में मौजूद है। लेकिन मनसविद कहते हैं, जिसको आप चाहते हैं, पाना चाहते हैं, वह आपको सुंदर दिखाई पड़ता है। यह तो हमारे अनुभव की बात है। क्योंकि जो आज हमें सुंदर दिखाई पड़ता है, जरूरी नहीं कि कल भी सुंदर दिखाई पड़े। जो हमें सुंदर दिखाई पड़ता है, हमारे मन की तरकीब हैं, हम कहते हैं, वह सुंदर है इसलिए हम पाना चाहते हैं। असलियत और है। हम पाना चाहते हैं, इसलिए वह सुंदर दिखाई पड़ता है। हमारी चाह पहले है। और जहां हमारी चाह जुड़ जाती है, वहीं सौंदर्य दिखाई पड़ने लगता है। जहां हमारा लोभ जुड़ जाता है, वहीं पाने योग्य मालूम पड़ने लगता है।
पाने योग्य क्या है? पाने योग्य केवल वहीं है, जो मिला ही हुआ है। जिसे
पाने की कोई जरूरत ही नहीं है। और जिसे भी पाने की जरूरत है, वह पाने योग्य नहीं है। यह कंट्राडिक्टरी मालूम पड़े, विरोधी मालूम पड़े। जो पाने योग्य मालूम पड़ता है वह पाने योग्य है ही नहीं, क्योंकि वह पराया है। उसे पाना पड़ेगा। आ

ैर जिसे भी हम पा लेंगे, उसे छोड़ना पड़ेगा। संसार का इतना ही अर्थ है। कितना ही पाओ, छोड़ना पड़ेगा। सिर्फ एक चीज मुझसे नहीं छीनी जा सकती, वह मेरा होना है। उसे मैंने कभी पाया नहीं, वह मुझे मिला ही हुआ है, आलरेड़ी गिवेन। जब भी मैंने जाना, वह मुझे मिला हुआ है। उसे मैंने कभी पाया नहीं। बाकी आपने जो भी चीजें पा ली हैं, वह सब छिन जाएंगी।
जो पाया जाता है, वह छिन जाता है, क्योंकि वह हमारा नहीं है। इसलिए तो पाना पड़ता है। एक दिन छिन जाता है। जो हमारा नहीं है वह हमारा नहीं हो सकता। जो मेरा है, उसे मैंने कभी पाया ही नहीं। वह मैं ही हूं।
इसलिए धर्म की दृष्टि में पाने योग्य सिर्फ एक बात है, और वह है स्वयं
का स्वरूप। उसको हम आत्मा कहें, परमात्मा कहें, मोक्ष कहें--यह शब्दों का भेद है। बाकी कोई भी चीज पाने योग्य नहीं है।
लोभ दिखाता है, यह पाने योग्य है, यह पाने योग्य है, यह पाने योग्य है।
लोभ दिखा देता है, वासना दौड़ पड़ती है। सफलता मिल जाती है, मोह बन जाता है।
असफलता मिल जाती है, क्रोध बन जाता है। इसलिए लोभ अधर्म का मूल है।
अब सूत्र।
"सूर्योदय के पहले और सूर्यास्त के बाद श्रेयार्थी को सभी प्रकार के भोजन, पान आदि की मन से भी इच्छा नहीं करनी चाहिए।"
इस संबंध मे थोड़ा विचारणीय है। क्योंकि महावीर को मानने वालों ने इस सूत्र को बुरी तरह विकृत कर दिया। जैनों की धारणा केवल इतनी ही रह गई कि रात्रि में भोजन करने से हिंसा होती है, इसलिए नहीं करना चाहिए। यह बड़ा गौण हिस्सा है। यह मूल हिस्सा नहीं है। और अगर यही सच है तो रात्रि में भोजन करने में कोई अड़चन नहीं होनी चाहिए। क्योंकि महावीर के वक्त में न बिजली थी, न प्रकाश था, न कुछ था। आज भी गांव के देहात में लोग अंधेरे में रात भोजन करते हैं। अगर इसीलिए महावीर ने कहा था कि रात्रि भोजन करने में कभी कोई कीड़ा है, करकट है, छोटा पतिंगा है किड़ा, कोई भोजन में गिर जाए, गिर जाता है। दिन में गिर जाता है तो रात में तो बहुत आसान है। और अंधेरे में भोजन, या छोटे-मोटे दीये के प्रकाश में भोजन--अगर महावीर ने इसलिए कहा था, जैसा कि जैन साधु समझते रहते हैं कि रात्रि में भोजन करने से हिंसा होती है, अगर महावीर ने इसलिए कहा था, तो अब इस सूत्र की कोई सार्थकता नहीं है। अब तो बिजली का प्रकाश है जो दिन से भी ज्यादा हो सकता है। अब तो कोई इसमें अड़चन नहीं है। अगर यही कारण है, तब तो यह परिस्थितिगत बात थी और अब इसका कोई मूल्य नहीं रह जाता है। लेकिन, यही कारण नहीं है और इसका मूल्य कायम रहेगा।
इसके मूल्य को हम समझें।
सूर्योदय के साथ ही जीवन फैलता है। सुबह होती है, सोए हुए पक्षी जग जाते हैं, फूल खिलने लगते हैं, पक्षी गीत गाने लगते हैं, आकाश में उड़ान शुरू हो जाती है। सारा जीवन फैलने लगता है। सूर्योदय का अर्थ है, सिर्फ सूरज का निकलना नहीं, जीवन का जागना जीवन का फैलना। सूर्यास्त का अर्थ है सिकुड़ना, विश्राम में लीन हो जाना।
दिन जागरण है, रात्रि निद्रा है। दिन फैलाव है, रात्रि विश्राम है। दिन श्रम है, रात्रि श्रम से वापस लौट जाना है। सूर्योदय की इस घटना को समझ लें तो ख्याल में आएगा कि रात्रि-भोजन के लिए महावीर का निषेध क्यों है? क्योंकि भोजन है जीवन का फैलाव। तो सूर्योदय के साथ तो भोजन की सार्थकता है। शक्ति की जरूरत है। लेकिन सूर्यास्त के बाद भोजन की जरा भी आवश्यकता नहीं है। सूर्यास्त के बाद किया गया भोजन बाधा बनेगा, सिकुड़ाव में, विश्राम में। क्योंकि भोजन भी एक श्रम है।
आप भोजन ले लेते हैं, तो आप सोचते हैं, काम समाप्त हो गया। गले के नीचे भोजन गया तो आप समझे कि काम समाप्त हो गया। गले तक को काम शुरू ही नहीं होता, गले के नीचे ही काम शुरू होता है। शरीर श्रम में लीन होता है। भोजन देने का अर्थ है, शरीर को भीतरी श्रम में लगा देना। भोजन देने का अर्थ है कि अब शरीर का रोयां-रोयां इसको पचाने में लग जाएगा।
तो अगर आपकी निद्रा क्षीण हो गई है, अगर रात विश्राम नहीं मिलता, नींद नहीं मालूम पड़ती, स्वप्न ही स्वप्न मालूम पड़ते हैं, करवट ही करवट बदलनी

पड़ती है, उसमें से अस्सी प्रतिशत कारण तो शरीर को दिया गया काम है जो रात में नहीं दिया जाना चाहिए। तो एक तो भोजन देने का अर्थ है, शरीर को श्रम देना। लेकिन सूरज जब उगता है तो आक्सीजन की, प्राणवायु की मात्रा बढ़ती है। प्राणवायु जरूरी है श्रम को करने के लिए। जब रात्रि आती है, सूर्य डूब जाता है तो प्राण वायु का औसत गिर जाता है हवा में। जीवन को अब कोई जरूरत नहीं है। कार्बन-डाइआक्साइड का, कार्बन द्वि औषद की मात्रा बढ़ जाती है जो विश्राम के लिए जरूरी है। जान कर आप हैरान होंगे कि आक्सीजन जरूरी है भोजन पचाने के लिए। कार्बन द्वि औषध के साथ भोजन मुश्किल से पचेगा। मनोवैज्ञानिक अब कहते हैं कि हमारे अधिकतर दुख स्वप्नों का कारण हमारे पेट में पड़ा हुआ भोजन है। हमारी निद्रा की जो अस्त-व्यस्तता है, अराजकता है, उसका कारण पेट में पड़ा हुआ भोजन है। आपके सपने अधिक मात्रा में आपके भोजन से पैदा हुए हैं। आपका पेट परेशान है। काम में लीन है। दिन भर चुक गया। काम का समय बीत गया और अब भी आपका पेट काम में लीन है। बाकी हम तो अदभुत लोग हैं। हमारा असली भोजन तो रात में होता है, बाकी तो दिन भर हम काम चला लेते हैं। जो असली भोजन है, बड़ा भोजन डिनर, वह हम रात में लेते हैं। उससे ज्यादा दुष्टता शरीर के साथ दूसरी नहीं हो सकती।
इसलिए अगर महावीर ने रात्रि भोजन को हिंसा कहा है तो मैं कहता हूं, कीड़े-मकोड़ों के मरने के कारण नहीं, अपने साथ हिंसा के कारण आत्म-हिंसा है। आप अपने शरीर के साथ दुर्व्यवहार कर रहे हैं। एक--अवैज्ञानिक है। भोजन की जरूरत है सुबह, सूर्य के उगने के साथ। जीवन की आवश्यकता है, शक्ति की आवश्यकता है। श्रम होगा, शक्ति चाहिए। विश्राम होगा शक्ति नहीं चाहिए। पेट सांझ होते-होते, होते-होते मुक्त हो जाए भोजन से, तो रात्रि शांत होगी, मौन होगी, गहरी होगी। निद्रा एक सुख होगी और सुबह आप ताजे उठेंगे। रात्रि भर भी आपके पेट को श्रम करना पड़े तो सुपह आप थके मांदे उठेंगे।
इसके और भी गहरे कारण हैं। आपने ख्याल किया होगा, जैसे ही पेट में भोजन पड़ जाता है, वैसे ही आपका मस्तिष्क ढ़ीला हो जाता है। इसलिए भोजन के बाद नींद सताने लगती है। लगता है लेट जाओ। लेट जाने का मतलब यह है कि कुछ मत करो अब। क्यों? क्योंकि सारी ऊर्जा शरीर की पेट को पचाने के लिए दौड जाती है। मस्तिष्क बहुत दूर है पेट से। जैसे ही पेट में भोजन पड़ता है, मस्तिष्क की सारी ऊर्जा पेट में पचाने को आ जाती है। ये वैज्ञानिक तथ्य हैं। इसलिए आंख झपकने लगती है और नींद मालूम होने लगती है। इसलिए उपवासे आदमी को रात में नींद नहीं आती। दिन भर उपवास किया हो तो रात में नींद नहीं आती। क्योंकि सारी ऊर्जा मस्तिष्क की तरफ दौड़ती रहती है तो नींद नहीं आ पाती। इसलिए, जैसे ही आप पेट भर लेते हैं तत्काल नींद मालूम होने लगती है। यह भरे पेट में नींद इसलिए मालूम होती है कि मस्तिष्क को जो ऊर्जा दी गई थी, वह पेट ने वापस ले ली।
पेट जड़ है। पेट पहली जरूरत है। मस्तिष्क विलास है, लक्.जरी है। जब पेट
के पास ज्यादा ऊर्जा होती है तब वह मस्तिष्क को दे देता है। नहीं तो पेट में ही ऊर्जा घूमती रहती है।
महावीर ने कहा है, दिन है श्रम, रात्रि है विश्राम, ध्यान भी है विश्राम। इसलिए पूरी रात्रि ध्यान बन सकती है, अगर थोड़ा सा शरीर के साथ समझ का उपयोग किया जाए। अगर रात्रि पेट में भोजन पड़ा है तो रात्रि ध्यान नहीं बन सकती, निद्रा ही रह जाएगी। निद्रा भी उखड़ी-उखड़ी, गहरी नहीं।
आदमी साठ साल जीए तो बीस साल सोता है। बीस साल बड़ा लंबा वक्त है। और हम सारे लोग यह कहते सुने पाए जाते हैं, कब करें ध्यान? समय नहीं है। महावीर कहते हैं, यह बीस साल ध्यान में बदले जा सकते हैं। यह जो रात्रि की निद्रा है, जब आप कुछ भी नहीं कर सकते, तब ध्यान किया जा सकता है।
ध्यान श्रम नहीं है, ध्यान विश्राम है। इसलिए ध्यान का नींद से बड़ा गहरा संबंध है। और नींद ध्यान में रूपांतरित हो जाती है। लेकिन नींद, ध्यान में तभी रूपांतरित हो सकती है, जब पेट ऊर्जा न मांग रहा हो। जब पेट मांग न कर रहा हो, कि शक्ति मुझे चाहिए पचाने के लिए। जब पेट शांत हो, पेट की कोई मांग न हो, ऊर्जा मस्तिष्क में हो। इस उर्जा को ध्यान में बदला जा सकता है। अगर इसको ध्यान में बदला जाए तो नींद को तोड़ने वाली हो जाएगी जो

कि आम उपवास करने वाले की होती है। अगर यह ध्यान में बदल जाए, यह ऊर्जा तो नींद को बाधा नहीं देगी। नींद अपने तल पर चलती रहेगी, और एक नया आयाम, एक नया डाइमेंशन ऊर्जा का शुरू हो जाएगा, ध्यान।
कृष्ण ने कहा है, कि योगी रात सो कर भी सोता नहीं। महावीर ने भी कहा है, शरीर ही सोता है, चेतना नहीं सोती। यह एक भीतरी कीमिया है। अब इस कीमिया के तीन हिस्से हुए--अगर ऊर्जा पेट में जाए तो मस्तिष्क में जाती नहीं, पहली बात। अगर ऊर्जा मस्तिष्क में जाए और ध्यान न बनाई जाए तो नींद असंभव हो जाएगी। इसलिए तीसरी बात, ऊर्जा पेट में न जाए, मस्तिष्क में जाए और मस्तिष्क में ध्यान की यात्रा पर निकल जाए और तो मस्तिष्क सो सकेगा और ऊर्जा ध्यान बन जाएगी। इसलिए योगी रात में सोता नहीं।
इसका यह मतलब नहीं है कि योगी का शरीर नहीं सोता, शरीर भलीभांति सोता है। आपसे ज्यादा अच्छी तरह सोता है। शायद योगी ही इस अर्थ में ठीक से सोता है। लेकिन फिर भी सोता नहीं, भीतर कोई जागता रहता है। वह जो ऊर्जा पेट के काम नहीं आ रही है, वह जो ऊर्जा मस्तिष्क के काम नहीं आ रही है, वही ऊर्जा बूंद-बूंद ध्यान में टपकती रहती है। और भीतर एक ज्योति जागरण की जगनी शुरू हो जाती है। रात्रि से ज्यादा सम्यक अवसर ध्यान के लिए दूसरा नहीं है। इसलिए महावीर ने कहा है कि रात्रि-भोजन नहीं।
जैन साधुओं को सुन कर बातें बहुत बचकानी लगती हैं। उनकी बातें सुनकर ऐसा लगता है, कि ये ऑब्सेस्ड हैं, इनका ऐसा दिमाग खराब है। रात्रि-भोजन नहीं। और रात्रि-भोजन नहीं, इसको ऐसा बना लिया है कि जैसे इसके बिना मोक्ष न हो सकेगा। तो बात बड़ी टुच्ची मालूम पड़ती है। कहां मोक्ष, कहां रात्रि- भोजन से जोड़ रहे हो। ऐसा लगता है कि रात्रि-भोजन छोड़ दिया तो मुक्ति हो गई। इतना सस्ता! कि रात्रि-भोजन छोड़ दिया तो मुक्ति हो गई?
न, इसमें बीच के सूत्र खो गए हैं, जिनकी वजह से अड़चन है। बीच की सीढ़ियां खो गई हैं। सीढ़ी है--रात्रि सबसे ज्यादा सम्यक अवसर है ध्यान के लिए, अनेक कारणों से। पहलाः समस्त अस्तित्व विश्राम में चला जाता है, सूर्य के डूबते ही अस्तित्व विश्राम में चला जाता है। मगर हम उलटे लोग हैं। हमने सब कुछ उलटा कर रखा है। सूर्य के डूबते ही अस्तित्व विश्राम में चला जाता है, हमें भी विश्राम में जाना चाहिए, हमें सूरज के साथ यात्रा करनी चाहिए। शरीर भी विश्राम में जाना चाहिए, मन भी विश्राम में जाना चाहिए। मन के विश्राम का नाम ध्यान है। शरीर के विश्राम का नाम निद्रा है। आपका मन अगर विश्राम में नहीं जाता है तो आप ध्यान में नहीं जा सकते। लेकिन जिनका शरीर ही विश्राम में नहीं जाता, उनका मन कैसे विश्राम में जा सकेगा।
इसलिए महावीर ने कहा, रात्रि-भोजन बिल्कुल नहीं। इसका रात्रि से संबंध नहीं हैं, इसका आपसे संबंध है, ध्यान से संबंध है।
अब मैं जैनों को देखता हूं, रात्रि-भोजन बिल्कुल नहीं, इसलिए शाम को
वह ठूंस-ठूंस कर खा लेते हैं। देखते जाते हैं कि सूरज तो नहीं डूब रहा और ज्यादा खाते जाते हैं।
एक घर में मैं ठहरा हुआ था। जो मेरे अतिथेय थे, मेजमान थे, वे मेरे साथ खाना खाने बैठे। कमरे के भीतर अंधेरा उतरने लगा। उन्होंने जल्दी से अपनी थाली ली और कहा कि मैं बाहर जाकर भोजन करता हूं। मैंने पूछा, क्या हुआ? उन्होंने कहा, बाहर अभी जरा रोशनी है, दिन है। कमरे से वे बाहर चले गए, वहां उन्होंने जल्दी-जल्दी भोजन कर लिया।
बड़े मजे की बात है, कभी-कभी हम सूत्रों का पालन करने में सूत्रों का जो मूल है, उसकी हत्या कर देते हैं। जिस आदमी ने जल्दी-जल्दी भोजन किया है, उसकी रात बड़ी बचैन गुजरेगी। क्योंकि जल्दी-जल्दी भोजन का मतलब है कि कचरे की तरह पेट में भोजन डाल दिया गया, बिना चबाए। पेट को ज्यादा अड़चन होगी इसे पचाने में। इससे तो बेहतर था कि अंधेरे में बैठ कर ठीक से चबा लिया होता, क्योंकि पेट के पास दांत नहीं हैं। दांत का काम मुंह मे ही हो सकता है। फिर पेट में नहीं होगा। और फिर पेट को इसे पचाने में अथक कष्ट झेलना पड़ेगा, रात्रि और मुश्किल हो जाएगी।

लेकिन समझ हाथ में न हो, सूत्र हो, तो ऐसे ही अंधापन पैदा होता है। फिर चूंकि रात भर भोजन नहीं करना है, इसलिए खूब कर लेना है! रात पानी नहीं पीना है, इसलिए सूरज डूबते-डूबते खूब पानी पी लेना है! यह हत्या हो गई मूल सूत्र की। लेकिन यह होगी, क्योंकि हमारा कुल ख्याल इतना है कि रात्रि-भोजन छूट गया तो सब कुछ मिल गया। उसके पीछें के पूरे विज्ञान का कोई बोध नहीं है। रात्रि-भोजन जिसे छोड़ना हो, उसे पूरी जीवनचर्या बदलनी पड़ेगी। इतना आसान नहीं है रात्रि-भोजन छोड़ देना। रात्रि-भोजन तो कोई भी छोड़ सकता है, लेकिन पूरी जीवनचर्या बदलनी पड़ेगी।
महावीर ने तो साधक के लिए एक बार भोजन को कहा है। क्योंकि एक बार भोजन लिया गया हो तो उसके पचने में छह और आठ घंटे लगते हैं। इसलिए दोपहर में अगर ग्यारह बजे भोजन ले लिया तो ही रात्रि-भोजन से बचा जा सकता है, नहीं तो नहीं बचा जा सकता। इसका मतलब यह हुआ कि ग्यारह बजे जो भोजन लिया है, वह सूरज के डूबते-डूबते पच जाएगा। पेट में नहीं रह जाएगा, पचने की कोई क्रिया जारी नहीं रहेगी। अब यह साधक रात में बिना भोजन के सो सकता है। लेकिन अगर सिर्फ इतनी ही मान्यता है, तो रात में नींद मुश्किल हो जाएगी। और जब नींद मुश्किल होगी, तो भोजन के बाबत ही चिंतन चलेगा। जो उपवास करता है रात भर भोजन करता है। भोजन का मजा लेना हो तो उपवास करना चाहिए। फिर एैसा रस भोजन में आता है, जैसे कभी आया ही नहीं। ऐसी-ऐसी चीजें याद आती हैं, जो कई जमाने हो गए, भूल गईं और बड़ा मन ताजा हो जाता है। अभी व्रत चलते हैं तो कई लोगों का मन भोजन के प्रति बड़ा ताजा हो जाएगा। आठ-दस दिन के बाद जब व्रत छूटेंगे, तब वह जेलखाने से छूटे हुए कैदियों के भांति अपने चौकों में प्रवेश कर जाएंगे। योजनाएं अभी से तैयार हो रही हैं उनके मन में कि क्या-क्या करना है।
महावीर आदमी को भोजन से छुड़ाना चाहते हैं। जैनों को जितना भोजन से बंधा मैं देखता हूं, किसी और को नहीं देखता--चौबीस घंटे भोजन! सूत्र की हत्या हो जाती है, समझ की कमी से।
भोजन महत्वपूर्ण नहीं है, न रात्रि महत्वपूर्ण है। शरीर की ऊर्जा का संतुलन, शरीर की ऊर्जा का रूपांतरण, वह अल्केमी, कीमिया महत्वपूर्ण है। महावीर निश्चित ही मनुष्य के शरीर में गहरे उतरे। कम लोग इतने गहरे गए हैं। उन्होंने ठीक जड़ पकड़ ली, कहां से जड़ें शुरू होती हैं। शरीर का काम शुरू होता है भोजन से, और शरीर चाहता है भोजन के पास रुके रहो, क्योंकि शरीर का काम भोजन से पूरा हो जाता है। उसकी और कोई जरूरत नहीं है। भोजन से जो ऊपर न उठ सके वह शरीर से भी ऊपर न उठ सकेगा। शरीर, यानी भोजन। आपका शरीर है क्या? भोजन का संग्रह है। आपने जो भोजन किया उसका, आपकी मां ने, आपके पिता ने जो भोजन किया, उसका, उनके माता-पिता ने जो भोजन किया उसका, आप भोजन का लंबा सार निचोड़ हैं, आपका शरीर जो है। इसलिए भोजन के प्रति इतना आकर्षण स्वाभाविक हैं, क्योंकि वह हमारे शरीर का मूल आधार है। उससे ही शरीर चल रहा है। अब सवाल यह है कि हमको शरीर को ही अगर चलाते रहना है तो बस भोजन करते रहना है, और भोजन निकालते रहना है, बस यह काम करते रहना है।
यूनान में लोग अपने भोजन की टेबल पर, जैसे आप सींकें रखते है दांत साफ करने के लिए, ऐसा पक्षियों के पंख रखते थे। भोजन कर लिया, फिर गले में पंख फिराया, वॉमिट कर दी, फिर भोजन कर लिया। तो मेहमान को अगर आपने दो-चार दफा उलटी न करवाई तो आपने ठीक स्वागत नहीं किया। तो मेहमान के लिए एक बड़ा पंखा पक्षी का रखते थे। और दो आदमी पास खड़े रहते थे जो जल्दी जब उसका भोजन, वह कहे, बस अब नहीं, तो जल्दी से वे बर्तन ले आएंगे, पंखा चला देंगे उसके गले में और वॉमिट क रवा देंगे। नीरो ने, सम्राट नीरो ने दो डाक्टर रख छोड़े थे जो दिन में उसे आठ दफा उलिटयां करवाते थे ताकि वह और भोजन कर सके।
मगर आप क्या कर रहे हैं? आप न पंखा चला रहे हैं गले में, न आप ने डाक्टर
रख छोड़े हैं, लेकिन आप गलती में हैं। आप भी इतना ही कर रहे हैं कि डालो निकालो, डालो निकालो। आप सिर्फ एक यंत्र हैं, जिसमें भोजन डाला जाता है और निकाला जाता है। एक सर्कल है, जब निकल जाए तो फिर डाल लो, जब डल जाए तो निकलने की प्रतीक्षा करो।

आप जिंदगी भर भोजन डालने और निकालने का एक क्रम हैं। यही है जीवन! अगर
इस ऊर्जा में से कुछ ऊर्जा मुक्त नहीं होती और ऊपर नहीं जाती, तो आपको शरीर के अतिरिक्त किसी चीज का कभी अनुभव नहीं होगा। इसलिए महावीर भोजन के शत्रु नहीं हैं, भोजन के दुश्मन नहीं हैं, जैसा उनके साधु हो गए हैं। महावीर--केवल भोजन ही जीवन नहीं है, भोजन के पार जीवन का विस्तार है-- इसके उदघाटक हैं। रात्रि भोजन नहीं, महावीर का बहुत आग्रह है। यह आग्रह इस बात की सूचना है कि यह मामला सिर्फ भोजन का नहीं है, यह कोई गहरी, भीतरी क्रांति का मामला है।
"सूर्योदय के पहले और सूर्यास्त के बाद श्रेयार्थी को सभी प्रकार के भोजन-पान आदि की मन से भी इच्छा नहीं करनी चाहिए।"
यह भी जोड़ा है साथ, "मन से इच्छा नहीं करनी चाहिए।" आपने किया या नहीं किया यह उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना मन से इच्छा नहीं करनी चाहिए। तो मैं तो कहूंगा कि अगर कर लेने से मन की इच्छा मिटती हो तो कर लेना बेहतर। अगर न करने से मन की इच्छा बढ़ती हो तो खतरनाक है। अगर थोड़ा सा भोजन पेट में डालने से रात भर भोजन की, मन की वासना क्षीण हो जाती है तो बेहतर बजाय उपवासे रहने के और रात भर मन भोजन के आस-पास घूमने के। वह ज्यादा खतरनाक है।
महावीर कहते हैं कि रात्रि-भोजन तो करना नहीं है, और रात्रि मन में वासना भी न उठे भोजन की। यह कैसे होगा? यह हमें मुश्किल मालूम पड़ता है। भोजन न करें, यह कोई बड़ी कठिन बात नहीं है, कोई भी कर सकता है। थोड़ा जिद्दी स्वभाव हो तो और आसान मामला है। इसलिए अकसर जिद्दी बच्चे, अभी पर्युषण चलता है, तो जो बच्चे जिद्दी हैं वे भी उपवास कर लेंगे। उनके मां-बाप समझते है कि बच्चा बड़ा धार्मिक है। कुल कारण इतना है कि बच्चा उपद्रवी है और पीछे सताएगा। उसका मतलब यह है कि बच्चा, बच्चा नहीं है, जिद्दी है, अहंकारी है। और देखता है कि बड़े कर रहे हैं उपवास, तो हम भी कर के दिखा देते हैं। और जितना लोग समझाते हैं कि मत करो बेटे, तुम अभी छोटे हो, बड़े होकर करना, उतना उसका अहंकार मजबूत होता है कि अच्छा! छोटे है! करके दिखा देते हैं। वह करके दिखा देगा।
यह बच्चा आज नहीं कल उपद्रवी सिद्ध होने वाला है। जरूरी नहीं है कि साधु हो जाए उपद्रवी न हो। अधिक साधु तो उपद्रवी होते ही हैं। उपद्रव का मतलब ही इतना है कि यह अहंकार को रस मिलना शुरू हो गया।
आप भी थोड़े अहंकारी हों, तो बराबर भोजन छोड़ सकते हैं। भोजन में क्या अड़चन है? लेकिन मन की वासना कैसे छूटेगी! वह जो रात मन दौड़ेगा भोजन की तरफ, उसका क्या करिएगा? उसको कैसे रोकिएगा? उसको रोका नहीं जा सकता। मन दौड़ेगा ही। उसे जब तक आप मन की ऊर्जा को नई दिशा में प्रवाहित न कर दें, तब तक वह उन्हीं दिशाओं में दौड़ेगा जिसकी उसे आदत है। पेट कहेगा, भूख लगी है, तो मन पेट की तरफ दौड़ेगा। गला कहेगा, प्यास लगी है तो मन गले की तरफ दौड़ेगा। मन का काम ही यह है कि वह शरीर में कहां क्या हो रहा है, इससे आपको सूचित रखे। एक ही हालत है कि मन किसी इतनी बड़ी चीज में नियोजित हो जाए कि उसे पता
ही न चले कि पेट को भूख लगी है कि गले को प्यास लगी है। उसका नाम ही ध्यान है। तो उस दिशा में नियोजित हो जाए। इतना लीन हो जाए किसी और आयाम में कि शरीर भूल ही जाए। जब शरीर भूल जाए तो फिर प्यास नहीं लगती, फिर भूख नहीं लगती है।
भूख लगी है आपको। घर में आग लग गई, फिर भूख नहीं लगती। फिर पता ही नहीं चलता कि भूख लगी है। अभी बिल्कुल सुस्त होकर बैठते थे कि कदम नहीं उठाए उठता है और घर में आग लग गई है, आप ऐसे दौड़ रहें है जैसे गलती हो गई कि आपको ओलंपिक क्यों न भेजा! सारी ताकद लगा दी है आपने। मिल्खा सिंह अब आपसे जीत नहीं सकता दौड़ में। क्यों? ध्यान नियोजित हो गया। एकाग्र हो गया, मकान में आग लग गई, शरीर से हट गया। पूरे शरीर से हट गया। ध्यान का नियोजन बड़ी बात है।
मैंने सुना है मिल्खा सिंह के संबंध में। एक रात उसके घर में चोर घुसे। वह विश्व विजेता दौड़ाक। उसके घर में चोर घुसे। मिल्खा सिंंह जोश

में आ गया, चोरों के पीछे भागा। पुलिस स्टेशन पहुंच गया। जाकर इंस्पेक्टर को कहा कि चोर कहां हैं? मैं उनके ठीक पीछे था।
चोर तो वहां कोई थे नहीं। इंस्पेक्टर ने कहाः कहां के चोर? आप अकेले दौड़े चले आ रहे हैं।
मिल्खा सिंह ने कहाः गलती हो गई, आई मस्ट हैव ओवर टेकन देम। रास्ते में मैं भूल गया कि चोरों का पीछा कर रहा हूं, मैं समझा दौड़ चल रही है। आपका मस्तिष्क जहां नियोजित हो जाए, फिर सब भूल जाता है। चित्त एकाग्र हो जाए कहीं भी तो शेष सब विस्मृत हो जाता है। कयोंकि स्मरण के लिए चित्त का संस्पर्श जरूरी है। पैर में दर्द हो रहा है, तो चित्त पैर तक जाए तो ही पता चलता है। पेट में भूख लगी है, चित्त पेट तक जाए तो ही पता चलता है। पेट को कभी पता नहीं चलता है भूख लगने का। पता तो चित्त को चलता है लेकिन चित्त पेट तक जाए तो ही पता चलता है। अगर चित्त कहीं और चला जाए तो पेट तक नहीं जा सकता। घर में आग लगी है तो चित्त वहां चला गया। एक धारा में चित्त बह जाए तो शेष सारा जगत अनुपस्थित हो जाता है।
काशी के नरेश का आपरेशन हुआ पेट का, तो उसने कहा, मैं कोई दवा नहीं लूंगा। कोई जिंदगी भर दवा नहीं ली थी। नहीं लेने का ख्याल था कि शरीर में कुछ विजातीय रासायनिक द्रव्य नहीं डाल लें। लेकिन बिना दवा आपरेशन... आपरेशन होगा कैसे? बेहोश तो करना पड़ेगा। उसने कहा था कि नहीं, कोई जरूरत नहीं, बस मुझे गीता पढ़ने दी जाए। मैं गीता पढ़ता रहूंगा, तुम पेट का आपरेशन कर डालना।
डाक्टर बड़े चिंतित थे कि यह असंभव मामला दिखता है; गीता पढ़ने में इतना एकाग्र चित्त हो पाएगा? लेकिन कोई उपाय न था। मौत दोनों हालात में होने वाली थी। अगर नहीं आपरेशन करते हैं, तो सम्राट मरेगा। अगर करते हैं तो एक संभावना भी है शायद... इसलिए आपरेशन किया गया। और काशी नरेश गीता पढ़ते रहे और उनका पेट काटा जाता रहा। सी दिया गया, सब ठीक हो गया। यह पहला आपरेशन था, बड़ा आपरेशन था; पहला आपरेशन था, जो बिना किसी अनस्थेसिया के, बिना किसी बेहोशी की दवा के किया गया। डाक्टर तो चकित हो गए। उन्होंने कहा, यह तो चमत्कार है।
लेकिन नरेश ने कहा, कोई चमत्कार नहीं है। क्योंकि पेट तक मेरा जाना जरूरी है, तभी तो मुझे पता चले कि वहां दर्द हो रहा है। लेकिन मैं गीता की तरफ जा रहा हूं, तो फिर वहां नहीं जा सकता।
ध्यान की तरफ जाए बिना रात्रि-भोजन से बचने का कोई अर्थ नहीं है।
उपवास का भी कोई अर्थ नहीं है। आप समझते हैं, उपवास और अनशन में यही फर्क है। अनशन का मतलब है, भूखे मर रहे हैं रात, सोच रहे है। अनशन उपवास नहीं है। उपवास शब्द का अर्थ होता है, आत्मा के निकट होना। उपवास--आत्मा के पास होना। आत्मा के पास होने का अर्थ ही ध्यान है।
तो जो ध्यान नहीं कर सकता, वह उपवास नहीं कर सकता। इसलिए मैं नहीं कहता कि उपवास की फिकर करो। पहले ध्यान की फिक्र करो। ध्यान जिसे आता है उसका अनशन उपवास बन जाता है। जिसे ध्यान नहीं आता, उसका उपवास सिर्फ भूख हड़ताल है--अपने ही खिलाफ। उससे कोई आनंद उत्पन्न होने वाला नहीं है। इसलिए महावीर ने इतना जोर दिया है।
क्या करें? कैसे मन ध्यान बन जाए? कहां मन को ले जाएं? तो मन के धीरे- धीरे अभ्यास करने पड़ते हैं हटाने के। मन को धीरे-धीरे शरीर से हटाने का अभ्यास करना पड़ता है। कभी ऐसा थोड़ा सा प्रयोग करें तो ख्याल में आना शुरू हो जाएगा।
खड़े हैं, आंख बंद कर लें। बाएं पैर में मन ले जाएं, बाएं पैर के अंगूठे
तक मन को जाने दें।
दाएं पैर को बिल्कुल भूल जाएं। सारी चेतना बाएं पैर में घूमने लगे।
यह कठिन नहीं है। बाएं पैर में चेतना घूमने लगेगी। फिर हटा लें बाएं पैर से। फिर दाएं पैर में ले जाएं, बाएं पैर को बिल्कुल भूल जाएं। दाएं पैर में चेतना को घूमने दें। इसे हर अंग पर बदलें, तो आपको फौरन एक बात पता चल जाएगी की चेतना भी एक प्रवाह हे आपके भीतर, और जहां आप ले जाना चाहते हैं

वहां जा सकता है, और जहां से आप हटाना चाहते हैं वहां से हट सकता है। अभी आपने इसका कभी अभ्यास नहीं किया है, इसलिए ख्याल में नहीं है।
इसलिए शरीर जहां चाहता है, आपकी चेतना वहां चली जाती है। आप जहां चाहते हैं, वहां नहीं जाती। क्योंकि आपने उसका कोई अभ्यास नहीं किया। अभी भूख लगती है तो चेतना तत्काल पेट में चली जाती है। वह आपसे आज्ञा नहीं लेती कि मै पेट की तरफ जाऊं। वह चली जाती है। आप कुछ कर नहीं पाते। क्योंकि आपने कभी यह अब तक सोचा ही नहीं कि चेतना का प्रवाह, मेरी इंटेशन, मेरी अभीप्सा पर निर्भर है। इसका थोड़ा प्रयोग करें।
रात बिस्तर पर पड़े हैं, सारी चेतना को पैर के अंगूठे में ले जाएं। सब तरफ से भूल जाएं, सिर्फ अंगूठे रह जाएं। ले जाएं, भीतर... भीतर... भीतर... अंगूठे में ठहर जाएं जाकर। जैसे आपकी आत्मा अंगूठे मे ठहरी गई। बहुत लाभ होगा, नींद तत्काल आ जाएगी। क्योंकि मस्तिष्क से अंगूठा बहुत दूर है। जब चेतना सारी वहां पहुंच जाती है, मस्तिष्क खाली हो जाए, तो आप गहरी नींद में गिर जाएंगे।
चेतना को थोड़ा हटाना सीखें। आंख बंद कर लें। कहीं भी एक बिंदु पर चेतना को स्थिर करने की कोशिश करें, आप पाएंगे, जिस बिंदु पर चेतना को ले जाएंगे, वहीं प्रकाश पैदा हो जाएगा। आंख बंद कर लें, सोचें कि सारी चेतना हृदय पर आ गई, इंटेंशनल, अभिप्राय से सारी चेतना को हृदय पर ले आए, हृदय की धड़कन ही केंद्र बन गई। आप अचानक पाएंगे, हृदय के पास धीमा सा प्रकाश होना शुरू हो गया।
चेतना को बदलने के ये प्रयोग करते रहें। कभी भी कर सकते हैं, इसमें कोई अड़चन नहीं है। कुर्सी पर खाली बैठे हैं, ट्रेन में, बस में, कार में बिल्कुल कर सकते हैं। कहीं कोई अलग समय निकालने की जरूरत नहीं है। धीरे- धीरे आपको लगेगा, आपकी मास्टरी हो गई। यह मास्टरी वैसी है जैसे की कोई कार की ड्राइविंग सीखता है। ऐसे ही चेतना की ड्राइविंग सीखनी पड़ती है।
एक आदमी साइकिल चलाना सीखता है। आप भी साइकिल चलाना जानते हैं, लेकिन
अब तक कोई बता नहीं सका कि साइकिल कैसे चलाई जाती है। अभी तक तो नहीं बता सकता कोई। चलाकर बता सकते हैं आप, लेकिन कैसे चलाई जाती है, क्या है ट्रिक, क्या है सीक्रेट? सीक्रेट सूक्ष्म है। अभ्यास से आ जाता है, लेकिन ख्याल में नहीं है।
साइकिल चलाना एक बड़ी दुर्लभ घटना है, क्योंकि पूरे समय ग्रेविटेशन आपको गिराने की कोशिश कर रहा है। जमीन आपको पटकने की कोशिश कर रही है। दो चक्के पर सीधे आप खड़े हैं, लेकिन प्रतिपल आप गति इतनी रख रहे हैं कि आपको इसके पहले कि इस जीमन पर ग्रेविटेशन गिराए, आप आगे हट गए। इसके पहले कि वहां का गुरुत्वाकर्षण आपको पटके, आप फिर आगे हट गए। गति और गुरुत्वाकर्षण के बीच में आप एक संतुलन बनाए हुए हैं। इसके पहले कि बाएं तरफ का गुरुत्वाकर्षण आपको गिराए, आप दाएं झुक गए। इसके पहले दाएं गिरें, बाएं झुक गए। एक गहन संतुलन साइकिल पर चल रहा है।
पहली दफे आप साइकिल क्यों नहीं चला पाते? बिठा दिया आपको, और धक्का दे दिया, चला लें! क्योंकि दुबारा भी कुछ ज्यादा नहीं करेंगे आप, अभी भी कर सकते हैं यही। लेकिन अभी भय है, बस। और पता नहीं कि क्या होगा। वह भय के कारण आप गिर जाते हैं। दो चार दफा गिरकर दो चार दफा धक्के खा कर अक्ल आ जाती है। चलाने लगते हैं।
चेतना एक भीतरी नियंत्रण है, एक संतुलन है। अपने शरीर में चेतना को गतिमान करना सीखें। एक तीन महीने निरंतर अभ्यास से आप समर्थ हो जाएंगे, जहां चेतना को ले जाना चाहें। अगर फिर आपके बाएं हाथ में दर्द हो रहा है, आप चेतना को दाएं हाथ में ले जाएं, दर्द विलीन हो जाएगा। आपके पैर में कांटा गड़ गया है, आप चेतना को पैर से हटा लें, सोख लें भीतर, कांटा विलीन हो जाएगा। जिस दिन आपको यह समझ आ जाए उसी दिन अनशन उपवास बन सकता है, उसके पहले नहीं। उसके पहले भूखे मरते रहें, उससे कुछ होनेवाला नहीं है। कुछ होने वाला नहीं है खुद को सताने में कुछ मजा आए तो आए, कोई जुलूस यात्रा वगैरह आपकी निकाल दे तो बात अलग। नासमझ मिल जाते हैं, यात्रा निकालने वाले

भी। उसका कारण है, ये सब म्युचुअल मामले हैं। कल वे ही नासमझी करेंगे तब आप उनकी यात्रा में सम्मिलित हो जाना।
आदमी इसीलिए यात्राओं में सम्मिलित हो जाता है कि कल अपनी निकली तो कोई सम्मिलीत न होगा।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपनी पत्नी से कह रहा है कि नहीं, आज मैं जाऊंगा ही नहीं। पत्नी ने कहाः क्या मामला है, कहां जाने की बात हैं? मुल्ला नसरुद्दीन के मित्र की पत्नी मर गई है। तो नसरुद्दीन कहता है, आज मैं नहीं जाऊंगा। पत्नी कहती है, क्या आप पागल हो गए हैं? जाना ही पड़ेगा। नसरुद्दीन ने कहाः वह तीन दफे मौका दे चुका मुझे, तीन पत्नीयां मर चुकीं, मैने उसे अब तक एक भी अवसर नहीं दिया। ऐसे बड़ी हीनता मालूम पड़ती है, कि चले हर बार। अब तक अपने ने कोई मौका ही नहीं दिया। और वह है कि दिए चला जा रहा है।"
म्युचुअल, पारस्परिक है सब लेन-देन। यहां सब लेन-देन का हिसाब है। यहां सारा खेल उस पर टिका हुआ है। तो नासमझ आपको मिल जाएंगे, आपके जुलूस में जाने को। क्योंकि वह भी आशा लगाए बैठे हैं कि कभी न कभी आप भी उनके जुलूस में आएंगे।
शायद इसमें कुछ रस आ जाए तो बात अलग, लेकिन आपका अनशन, अनशन ही रहेगा, उपवास नहीं बन सकता। उपवास तो एक भीतरी विज्ञान है। इस विज्ञान का पहला सूत्र है, चेतना को शरीर के अंगों मे प्रवाहित करने की क्षमता, सचेतन, स्वेच्छा से। जब यह क्षमता आ जाती है तो फिर चेतना को शरीर के बाहर ले जाने की दूसरी प्रक्रिया है कि शरीर के, चेतना के बाहर ले जाना। जब शरीर के बाहर चेतना जाने लगती है तभी भूख, प्यास, दुख, पीड़ा का कोई पता नहीं चलता।
तो महावीर ने कहा है, इच्छा भी नहीं करनी चाहिए। "हिंसा, असत्य चोरी, मैथुन, परिग्रह और रात्रि भोजन से जो जीव विरत रहता है, वह निराश्रव, निर्दोष हो जाता है।"
निराश्रव महावीर का अपना शब्द है, और बड़ा कीमती है। आश्रव, महावीर कहते हैं उन द्वारों को, जिनसे हमारे भीतर बाहर से चीजें आती हैं। आश्रव यानी आना। निराश्रव, मतलब बाहर से हमारे भीतर अब कुछ भी नहीं आता। अब हम अपने में आप्तकाम, अब हम अपने में पूरे हैं। अब कोई मांग न रही बाहर से। अब सारा संसार भी इस क्षण खो जाए, बिल्कुल खो जाए, तो ऐसा ही लगेगा, एक स्वप्न समाप्त हुआ। इससे कोई अंतर नहीं पड़ेगा। इससे कोई भेद नहीं पड़ेगा। निराश्रव अर्थ है कि बाहर से आने का जो भी यात्रा-पथ था, वह समाप्त हो गया। अब किसी यात्री को हम भीतर नहीं बुलाते। अब हमारे भीतर कोई भी नहीं आता। न धन, न प्रेम, न घृणा, न क्रोध, अब कुछ भी हम भीतर नहीं आने देते। न मित्र, न शत्रु, अब कोई हमारे भीतर प्रवेश नहीं करता। अब हम अपने में पूरे हैं। लेकिन, हम तो आश्रव में ही जाते हैं। हम पूरे वक्त बाहर से हमें कुछ चाहिए। उत्तेजना चाहिए पूरे वक्त बाहर से। ऐसा जैसे बाहर के सहारे ही हम जीते हैं भीतर भी।
एक आदमी आ जाता है और आपसे कह देता है, बड़े सुंदर हैं। चित्त प्रफुल्लित हो जाता है, फूल खिल जाते हैं, पक्षी उड़ने लगते हैं भीतर। इसका रास्ता आप देख रहे थे कि कोई आकर कहे कि बड़े सुंदर हैं। लोगों की आंखो में आप खोजते रहते हैं कि लोग आपको सुंदर कह रहे हैं कि नहीं। अगर कोई आपकी तरफ ध्यान नहीं देता है, चित्त बड़ा उदास हो जाता है।
मैं एक यूनिवर्सिटी में था। वहां कुछ लड़कियां मुझे आकर शिकायत करती हैं कि किसी ने कंकड़ मार दिया, किसी ने धक्का मार दिया। मैंने उनसे कहा, मारने भी दो! अगर कोई धक्का न मारे और कोई कंकड़ न मारे, तो भी मुसीबत! तो भी चित्त उदास होता है। जिस लड़की को कोई कंकड़ नहीं मारता यूनिवर्सिटी में, उसका कष्ट आपको पता है? वह कष्ट, जिसको कंकड़ मारे जाते हैं उससे बहुत ज्यादा है। सच तो यह है कि जो लड़की आकर मुझसे शिकायत की है कि फलां लड़के ने कंकड़ मारा, इसने कंकड़ मारा, उस प्रोफेसर तक ने मुझे धक्का दे दिया, वह असल में इसके कहने में रस भी ले रही है। उस रस का उसे पता नहीं है। भीतर उसे मजा भी आ रहा है।

इसलिए जब कोई आकर बताता है कि रास्ते में भीड़ बड़ी धक्का मारने लगी, तो उसकी आंखों में देखना, एक चमक है। अगर भीड़ धक्का न मारती, कोई देखता ही नहीं कि आप थे भी, कि आप थीं भी। तो उदासी चित्त को पकड़ लेती है। कोई ध्यान नहीं दे रहा है।
हम पूरे समय बाहर से जी रहे हैं, बाहर कौन क्या कर रहा है। यह हमारा आश्रव चित्त है। इसमें हम सिर्फ बाहर के सहारे ही हमारा अस्तित्व है। सब सहारे खींच लो तो हम ऐसे गिर पड़ेंगे जैसे कि खेत में खड़ा हुआ झूठा पुतला गिर जाए। उसकी सब चीजें अलग कर लो। नास्तिक यही कहता है कि तुम्हारे भीतर कुछ है ही नहीं। जो बाहर से आया है, वही है। तुम भीतर कुछ भी नहीं हो, बाहर के जोड़ हो।
चार्वाक ने यही कहा है, यही उसका निवेदन है कि तुम बाहर ही के जोड़ हो। तुम्हारे शरीर में जो खून दौड़ रहा है वह बाहर से आया है। तुम्हारा जो अणु, तुम्हारा जो सेल बन गया है वह बाहर से आई है, तुम्हारी हड्डी-मांस-मज्जा सब बाहर से आई है। तुम जो भी वह सब बाहर से आया हुआ है। भीतर तुम कुछ भी नहीं हो, भीतर होने जैसी कोई बात ही नहीं है। देअर इ.ज नो इनरनेस, सब कुछ बाहर से आया हुआ। भीतर झूठा शब्द है। इसलिए चार्वाक कहता है, बाहर की सब चीजें अलग कर लो, तो भीतर कुछ नहीं बचता। हालत वैसी हो जाती है, जैसे प्याज के छिलके निकालते जाओ, आखिर में कुछ भी हाथ नहीं आता। प्याज हाथ में नहीं आती। प्याज छिलकों का जोड़ थी।
चार्वाक कहता हैः तुम भी सिर्फ एक जोड़ हो बाहर के, सब हटा लो और तुम खो जाओगे, तुम्हारी आत्मा वगैरह कुछ भी नहीं है, सिर्फ एक जोड़ है, एक कंपाउंड। महावीर इसके ही विपरीत हैं। वे कहते हैं, तुम भीतर भी कुछ हो, तुम्हारा भीतरी होना भी तत्व है। लेकिन इस भीतरी तत्व को तुम जानोगे कैसे? तुम तभी जान पाओगे जब तुम बाहर से सब लेना बंद कर दो। शरीर तो बाहर से लेगा ही। इसलिए महावीर कहते हैं, शरीर का कोई भीतरीपन नहीं है। शरीर का सब कुछ बाहरी है। मन भी बाहर से ही लेता है, इसलिए मन का भी कोई भीतरीपन नहीं है। इसलिए महावीर कहते हैं, शरीर से ऊपर उठो, चेतना को हटा लो शरीर से पूरा। मन को जो-जो बाहर से मिलता है--विचार, क्रोध, लोभ, मोह--जो बाहर से प्रभावित करते हैं मन को आंदोलित करते हैं, मन को भी छोड़ दो। वहां से भी चेतना को हटा लो। तुम हटाए जाओ चेतना को उस समय तक जब तक कि तुम्हें कुछ भी दिखाई पड़े कि यह बाहरी है। उसे तोड़ते चले जाओ। इसको महावीर ने भेद-विज्ञान कहा है--दि साइंस ऑफ डिसक्रिमिनेशन। तुम अपने को तोड़ते चले जाओ उससे, जो भी पराया मालूम पड़ता है, बाहर से आया हुआ मालूम पड़ता है। हट जाओ उससे। एक दिन ऐसा आएगा कि बाहर से आया हुआ कुछ भी न बचेगा, तुम अनाश्रव हो जाओगे। तुम्हारे भीतर कुछ भी बाहर से आया न होगा। उसी दिन अगर तुम बचते हो तो समझना कि आत्मा है। अगर उस दिन नहीं बचते तो समझना कि कोई आत्मा नहीं है। आदमी के भीतर अगर आत्मा है, तो उसे जानने का एक ही उपाय है कि हमें बाहर से जो भी मिला है, उसका त्याग कर दें; चेतना से त्याग कर दें, चेतना को हटा लें, दूर कर लें। जिस दिन मैं भीतर ही भीतर रह जाऊं और मै कह सकूं, यह मेरी मां से नहीं आया, मेरे पिता से नहीं आया, समाज से नहीं आया, शिक्षा से नहीं आया; यह किसी ने मुझे नहीं दिया। यह मेरा भीतरीपन है, यह मेरा अंतस है, उसी दिन समझना कि मैंने आत्मा पा ली।
अनाश्रव मार्ग है हटा देने का, जो बाहर से आया। हमे जोड़ हैं, बाहर के
और भीतर के। चार्वाक या नास्तिक कहते हैं कि हम सिर्फ बाहर के जोड़ हैं। महावीर कहते हैं, हम बाहर और भीतर दोनों के जोड़ हैं। जो बाहर से आया हुआ है, उसके संग्रह का नाम शरीर है, और जो बाहर से नहीं आया हुआ है उसका नाम आत्मा है। लेकिन इस आत्मा को खोजना पड़े क्योंकि हम बाहर में ही जी रहे हैं। हमें कोई पता नहीं है। हम कहते हैं, सुनते हैं, पढ़ते हैं आत्मा है। और यह शब्द कोरा आकाश में खो जाता है धुएं की तरह। इसका कोई बहुत अर्थ नहीं है। इसका अर्थ तो केवल उसी को हो सकता है जिसने अपने भीतर बाहर का सब छोड़ दिया चेतना से, हटा ली चेतना सब तरफ से, और उस बिंदु पर पहुंच कर खड़ा हो गया कि कह सके कि यह बाहर से आया हुआ नहीं है।

बुद्ध घर लौटे बारह वर्ष के बाद, तो पिता ने कहा कि माफ कर दे सकता हूं तुम्हें अभी भी। लौट आओ।
बुद्ध ने कहा कि आप थोड़ा गौर से मुझे देखें! मैं वही नहीं हूं जो आपके
घर से गया था। जो आपके घर से गया था, वह केवल काया थी, बाहर का था। अब मैं उसे जान कर लौटा हूं जो भीतर का है, जो काया नहीं है। अब मैं और ही हूं। लेकिन पिता क्रोध में थे, जैसा कि अकसर पिता होते हैं। पिता, और पुत्र क्रोध में न हो, यह जरा असंभावना है।
असंभावना इसलिए है कि पिता की आकांक्षाएं पुत्र पर टिकी रहती हैं, और
इस दुनिया में कौन किसकी आकांक्षा पूरी कर सकता है। अपनी ही आकांक्षा पूरी कोई नहीं कर पाता, दूसरे की कोई कैसे करेगा? पिता की सब आकांक्षाएं पुत्र पर टिकी रहती हैं, वह कोई पूरी नहीं होती। सभी पिता क्रोध में होते हैं। पिता होने का मतलब क्रोध में होना है। बचना मुश्किल है।
और जो भी पुत्र हुआ, उसे कुपुत्र होने की तैयारी रखनी ही चाहिए। कोई उपाय नहीं है। बुद्ध जैसा पुत्र भी पिता को लगता है, कुपुत्र!
बुद्ध के पिता ने कहा कि हमारे घर में कभी कोई भिक्षापात्र लेकर नहीं घूमा है। छोड़ो यह भिक्षापात्र, तुम सम्राट के बेटे हो। यह सारा राज्य तुम्हारा है। मत करो नष्ट मेरे वंश को। यह क्या लगा रखा है, हटाओ यह सब! बुद्ध ने कहाः आप मुझे पहचान नहीं पा रहे हैं। आप जरा क्रोध को कम करें, आंख को धुएं से मुक्त करें, देखें तो, कौन सामने खड़ा है। स्वभावतः पिता और नाराज हो गए होंगे। पिता ने कहा कि मैं तुम्हें नहीं पहचानता! मेरी हड्डी-मांस-मज्जा तू है। मेरा खून तेरी नसों में बह रहा है और मैं तुझे नहीं पहचानता?
बुद्ध ने कहाः जो हड्डी-मांस-मज्जा है, अगर मैं वही हूं तो आप मुझे भलीभांति पहचानते हैं। लेकिन अब मैं जान कर लौटा हूं कि वह मैं नहीं हूं। और मैं आपसे कहता हूं कि मैं आपके द्वारा पैदा हुआ जरूर, लेकिन आपसे पैदा नहीं हुआ हूं। आप एक रास्ते से ज्यादा नहीं थे जिससे मैं गुजरा। जो भी मुझमें दिखाई पड़ता है वह आपका है। लेकिन मेरे भीतर वह भी जो आपको दिखाई नहीं पड़ता, मुझे दिखाई पड़ता है। वह आपका नहीं है।
इस बिंदु का नाम आत्मा है। लेकिन यह अनाश्रव हुए बिना, इसका कोई अनुभव नहीं है।
इसलिए महावीर कहते हैं, जो अनाश्रव हो जाता है वह निर्दोष हो जाता है।
सब दोष बाहर से आए हुए हैं। निर्दोषता भीतरी घटना है। सब दोष शरीर के संग के कारण हैं। यह महावीर निरंतर कहते हैं कि अगर हम एक नील-मणि को पानी में डाल दें, तो सारा पानी नीला हो जाता है। होता नहीं है, दिखाई पड़ने लगता है।
नीला हो नहीं जाता। मणि को बाहर खींच लें, पानी का रंग खो जाता है। मणि को भीतर डाल दें, पानी फिर नीला हो जाता है। संग-दोष। इसको महावीर कहते हैं कि सिर्फ रंग साथ के कारण पानी नीला दिखाई पड़ने लगता है।
आत्मा पर कोई वस्तुतः दोष लगते नहीं। आत्मा कभी दोषी होती नहीं। आत्मा का होना निर्दोष है, वह इनोसेंस है ही, निर्दोषता है। लेकिन शरीर के संग साथ शरीर का रंग उस पर पड़ जाता है। शरीर की वजह से रंग उसको घेर लेते हैं। शरीर की वजह से लगता है, मेरी सीमा है। शरीर की वजह से लगता है, मैं बिमार हुआ। शरीर की वजह से लगता है, भूख लगी है। शरीर की वजह से लगता है, सिर में दर्द हो रहा है। शरीर की वजह से सब कुछ पकड़ लेता है।
आत्मा, जैसे-जैसे शरीर से अपने को अलग जानती है, वैसे-वैसे निर्दोषता
का अनुभव करने लगती है। सब संग दोष है। न शरीर दोषी है, न आत्मा दोषी है।
दोनों के संग साथ में एक
दूसरे पर छाया पड़ती है और दोष हो जाता है।

आज इतना ही।

महावीर-वाणी, भाग 1
छब्बीसवां प्रवचन

विनय शिष्य का लक्षण है (विनय-सूत्र)

आणा-निद्देसकरे, गुरुणमुववायकारए।
इंगिया-ऽगारसंपन्ने, से विणीए त्ति वुच्चई।।
अह पन्नरसहिं ठाणेहिं, सुविणीए त्ति वुच्चई।
नीयावत्ती अचवले, अमाई अकुऊहले।।
अप्पं च अहिक्खिवई, पबन्धं च न कुव्वई।
मेत्तिज्जमाणो भयई, सुयं लद्धुं न मज्जई।।
नय पावपरिक्खेवी, न य मित्तेसु कुप्पई।
अप्पियस्साऽवि मित्तस्स, रहे कल्लाण भासई।।
कलहडमरवज्जिए, बुद्धे अभिजाइए।
हरिमं पडिसंलीणे, सुविणीए त्ति वुच्चई।।

जो मनुष्य गुरु की आज्ञा पालता हो, उनके पास रहता हो, गुरु के इंगितों
को ठीक-ठीक समझता हो तथा कार्य-विशेष में गुरु की शारीरिक अथवा मौखिक मुद्राओं को ठीक-ठीक समझ लेता हो, वह मनुष्य विनय संपन्न कहलता है।
निन्मलिखित पंद्रह लक्षणों से मनुष्य सुविनीत कहलाता है--उद्धत न हो, नम्र हो। चपल न हो, स्थिर हो। मायावी न हो, सरल हो। कुतूहली न हो, गंभीर हो। किसी का तिरस्कार न करता हो। क्रोध को अधिक समय तक न टिकने देता हो। मित्रों के प्रति पूरा सदभाव रखता हो। शास्त्रों से ज्ञान पाकर गर्व न करता हो। किसी के दोषों का भंडाफोड़ न करता हो। मित्रों पर क्रोधित न होता हो। अप्रिय मित्र की भी पीठ-पीछे भलाई ही गाता हो। किसी प्रकार का झगड़ा- फसाद न करता हो। बुद्धिमान हो। अभिजात अर्थात कुलीन हो। आंख की शर्म रखने वाला एवं स्थिरवृत्ति हो।

पहले एक प्रश्न।
एक मित्र ने पूछा हैः "कल के सूत्र में कहे गए श्रेयाथीं का क्या अर्थ है? क्या श्रेयार्थी और साधक एक ही हैं?"

श्रेयार्थी शब्द बहुत अर्थपूर्ण है। इस देश ने दो तरह के लोग माने हैं। एक को कहा है, प्रेयार्थी--जो प्रिय की तलाश में है और दूसरे को कहा है, श्रेयार्थी--जो श्रेय की तलाश में हैं।
दो ही तरह के लोग हैं जगत में। वे, जो प्रिय की खोज करते हैं। जो प्रीतिकार है, वही उनके जीवन का लक्ष्य है। लेकिन अनंत-अनंत काल तक भी प्रीतिकर की खोज की जाए तो प्रीतिकर मिलता नहीं है। जब मिल जाता है तो अप्रीतिकर सिद्ध होता है। जब तक नहीं मिलता है तब तक प्रीति की संभावना बनी रहती है। मिलते ही जो प्रीतिकर मालूम होता था, वह विलीन हो जाता है, तिरोहित हो जाता है। लगता है प्रीतिकर, चलते हैं तब भी आशा बनी रहती है। पा लेते हैं तब आशा खंडित हो जाती है, डिसइल्यूजनमेंट के अतिरिक्त, विभ्रम, सब भ्रमों के टूट जाने के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं लगता।
प्रेयार्थी, इंद्रियों की मान कर चलता है। जो इंद्रियों को प्रीतिकर है, उसको खोजने निकल पड़ता है। श्रेयार्थी की खोज बिल्कुल अलग है। वह यह नहीं कहता कि जो प्रीतिकर है उसे खोजूंगा। वह कहता है, जो श्रेयस्कर है, जो ठीक है, जो सत्य है, जो शिव है उसे खोजूंगा। चाहे वह अप्रीतिकर ही क्यों न आज मालूम पड़े।
यह बड़े मजे की बात है और जीवन की गहनतम पहेलियों में से एक कि जो प्रीतिकर को खोजने निकलता है वह अप्रीतिकर को उपलब्ध होता है। जो सुख को खोजने निकलता है, वह
दुख में उतर जाता है। जो स्वर्ग की आकांक्षा रखता है, वह नरक का द्वार खोल लेता है। यह हमारा निरंतर सभी का अनुभव है। दूसरी घटना भी इतना ही अनिवार्यरूपेण घटती है।

श्रेयार्थी हम से कहते हैं, जो प्रीतिकर को खोजने नहीं निकलता, जो यह सोचता नहीं कि यह प्रीतिकर है या अप्रीतिकर है, सुखद है या दुखद है। जो सोचता है यह ठीक है, उचित है, सत्य है, श्रेय है, शिव है, इसलिए खोजने निकलता है। श्रेयार्थी की खोज पहले अप्रीतिकर होती है। श्रेयार्थी के पहले कदम दुख में पड़ते हैं। उन्हीं का नाम तप है।
तप का अर्थ हैः श्रेय की खोज में जो प्रथम ही दुख का मिलन होता है, होगा ही। क्योंकि इंद्रियां इनकार करेंगी। इंद्रियां कहेंगी कि यह प्रीतिकर नहीं है। छोड़ो इसे। अगर फिर भी आपने श्रेयस्कर को पकड़ना चाहा तो इंद्रियां दुख उत्पन्न करेंगी। वे कहेंगी, यह दुखद है, छोड़ो इसे। सुखद कहीं और है। इंद्रियों के द्वारा खड़ा किया गया उत्पात ही तप बन जाता है। तप का अर्थ है कि इंद्रियां अपने मार्ग से नहीं हटना चाहतीं, और अगर आप किसी नए मार्ग को खोजते हैं जो इंद्रियों के लिए प्रीतिकर नहीं है, तो इंद्रियां बगावत करेंगी। वह बगावत दुख है। इसलिए श्रेय की खोज में दुख मिलेगा पहले, लेकिन जैसे-जैसे खोज बढ़ती है दुख क्षीण होता चला जाता है। दुख क्षीण होता है, इसका अर्थ है कि इंद्रियां धीरे-धीरे इस नये मार्ग
पर चेतना का अनुगमन करने लगती हैं। दुख खो जाता है। और जिस दिन इंद्रियां चेतना का पूरा अनुगमन करती हैं, उसी दिन सुख का अनुभव होता है। श्रेयार्थी की खोज में पहले दुख है और पीछे आनंद। प्रेयार्थी की खोज में पहले सुख का आभास है, और पीछे दुख। इंद्रियों की जो मानकर चलता है, वह पहले सुख पाता हुआ मालूम पड़ता है, पीछे दुख में उतर जाता है। इंद्रियों की मालकियत करके जो चलता है वह पहले दुख मालूम पड़ता है, पीछे आनंद में बदल जाता है।
श्रेयार्थी का अर्थ है, जिसने जीवन के इस रहस्य को समझ लिया कि जो खोजो वह नहीं मिलता। जिसे खोजने निकलो, वह हाथ से खो जाता है। जिसे पकड़ना चाहो, वह छूट जाता है। अगर सुख खोजते हो तो सुख नहीं मिलेगा, इतना निश्चित है। लेकिन अगर कोई व्यक्ति दुख के लिए राजी हो जाए, और दुख के लिए स्वयं को तत्पर कर ले, और दुख के प्रति वह जो सहज विरोध है मन का, वह छोड़ दे, तो सुख मिल जाता है।
ऐसा क्यों होता होगा? ऐसा होने का कारण क्या होगा? होना तो यही चाहिए नियमानुसार कि हम जो खोजें, वही मिल जाए। होना तो यही चाहिए कि जो हम न खोजें वह न मिले। ऐसा क्यों है, इसे हम थोड़ा समझ लें।
इंद्रियां अपना रस रखती है। आंख सुख पाती है कुछ देखने में। अगर रूप दिखाई पड़े तो आंख आनंदित होती है। लेकिन अगर वही रूप निरंतर दिखाई पड़ने लगे, तो आनंद क्रमशः खोता चला जाता है। क्योंकि जो चीज निरंतर उपलब्ध होती है, वह देखने योग्य नहीं रह जाती। दर्शनीय तो वही है जो कभी-कभी, आकस्मिक, मुश्किल से दिखाई पड़ती हो।
आप जाते हैं काश्मीर और डल झील सुखद मालूम पड़ती है। लेकिन वह जो आपकी नौका खे रहा है, उसे डल झील दिखाई ही नहीं पड़ती, और कई बार उसे हैरानी भी होती है कि लोग कैसे पागल हैं, इतने दूर-दूर से इस डल झील को देखने आते हैं। इंद्रियां नवीन आघात में सुख पाती हैं। आघात जब सुनिश्चित, पुराना पड़ जाता है तो उबाने वाला हो जाता है। आज जो भोजन आपने किया है, वह सुखद है। कल भी वही, परसों भी वही, दुखद हो जाएगा। इंद्रियों के लिए नये में सुख है। इसलिए इंद्रियों के सभी सुख, दुख बन जाएंगे। क्योंकि जितना आप चाहेंगे... लगता है किसी से आपका प्रेम है तो लगता है, चौबीस घंटे उसके पास बैठे रहें। भूल कर बैठना मत। क्योंकि अगर चौबीस घंटे उसके पास बैठे रहे तो आज नहीं कल यह उबाने वाला हो जाने वाला है। और आज नहीं कल ऐसा होगा, कैसे छुटकारा हो? ये वही इंद्रियां हैं जो कहती थीं, पास रहो, ये ही इंद्रियां कहेंगी, भाग जाओ, दूर निकल जाओ। क्योंकि जो पुराना पड़ जाता है, इंद्रियों का उसमें रस नहीं है। पुराने के साथ ऊब पैदा हो जाती है। इसलिए इंद्रियां जिसे प्रीतिकर कहती हैं कल उसी को अप्रीतिकर कहने लगती हैं।
इंद्रियों की तलाश में प्रीति से प्रारंभ होता है, अप्रीति पर अंत होता है। यह इंद्रियों का स्वभाव हुआ। इससे ठीक विपरीत स्थिति श्रेयार्थी की है। श्रेयार्थी जो परिवर्तनशील है उसकी खोज नहीं कर रहा है

जो नया है उसकी खोज नहीं कर रहा है। श्रेयार्थी तो उसकी खोज कर रहा है जो शाश्वत है। जो सदा है।
प्रेयार्थी नये की खोज कर रहा है, नया सेनसेशन, नई संवेदना, नया सुख।
वह नये की तलाश में लगा है। श्रेयार्थी उसकी खोज कर रहा है, नये की, न पुराने की; क्योंकि श्रेयार्थी जानता है कि जो नया है अभी, क्षण भर बाद पुराना हो जाएगा। जो भी नया है, वह पुराना होगा ही। जिसको हम आज पुराना कह रहे हैं, कल वह भी नया था। सब नया पुराना हो जाता है। नये में सुख था, पुराने में दुख हो जाता है। नये के कारण ही सुख था, तो पुराने के कारण दुख हो जाता है।
श्रेयार्थी उसकी खोज कर रहा है जो सदा है, शाश्वत है, नित्य है। वह नया
और पुराना नहीं है, बस है। उसकी तलाश है। इंद्रियां उसकी तलराश में कोई रस नहीं लेतीं। इंद्रियों को नये का सुख है। इसलिए जब कोई श्रेय की खोज में निकलता है तो इंद्रियां मार्ग में बाधा बन जाती है। वह कहती हैं, कहां व्यर्थ की खोज पर जा रहे हो? सुख वहां नहीं है। सुख नये में है। श्रेयार्थी, इंद्रियों की इस आवाज पर ध्यान नहीं देता। खोज में लगा रहता है जो सत्य है उसकी। प्रारंभ में दुख मालूम पड़ता है। धीरे-धीरे इंद्रियां बगावत छोड़ देती हैं। जिस दिन इंद्रियों की बगावत छूट जाती है, उसी दिन शाश्वत से झलक, संबंध जुड़ना शुरू हो जाता है। इंद्रियां जिस दिन बीच से हट जाती हैं, उसी दिन जो सदा है, उससे हमारा पहला संबंध होता है। वह संबंध, बुद्ध ने कहा है, सदा ही सुखदायी है, महासुखदायी है। क्योंकि वह कभी पुराना नहीं पड़ता क्योंकि वह कभी नया नहीं था। वह है सनातन। श्रेयार्थी का अर्थ है सत्य की, शाश्वत की तलाश। साधक ही उसका अर्थ है।
प्रेयार्थी हम सब हैं। और अगर हम कभी श्रेय की खोज में भी जाते हैं तो प्रिय के लिए ही। अगर हम कभी सत्य को भी खोजते हैं तो इसलिए कि स्वर्ग मिल जाए। अगर हम कभी ध्यान करने भी बैठते हैं तो इसीलिए कि सुख मिल जाए। जो व्यक्ति सुख के लिए ही सत्य भी खोज रहा है वह अभी श्रेयार्थी नहीं है। वह अभी प्रेयार्थी है। अगर परमात्मा का दर्शन भी कोई इसीलिए खोज रहा है कि आंखों की तृप्ति हो जाएगी तो वह श्रेयार्थी नहीं है, प्रयार्थी है। और प्रेयार्थी दुख पाएगा, परमात्मा भी मिल जाए तो भी दुख पाएगा। मोक्ष भी मिल जाए तो भी दुख पाएगा। क्या मिलता है, इससे संबंध नहीं है।
प्रेयार्थी का जो ढंग है जीवन को देखने का, वह दुख में उतारने वाला है। श्रेयार्थी का जो ढंग है जीवन को देखने का, वह आनंद में उतारने वाला है। सुख को खोजेंगे, दुख पाएंगे। सुख की खोज वाला मन ही दुख का निर्माता है। जितनी करेंगे अपेक्षा, उतनी पीड़ा में उतर जाएंगे। अपेक्षा ही पीड़ा का मार्ग है। नहीं करेंगे अपेक्षा, नहीं बांधेंगे आशा, उसकी ही तलाश करेंगे, जो है।
यह तलाश कठोर है, आर्डुअस है, दुर्गम है। क्योंकि हम वह नहीं जानना चाहते जो है। हम वह जानना चाहते है जो हमारी इंद्रियां कहती हैं, होना चाहिए। इसलिए हम सत्य के ऊपर इंद्रियों का एक मोह आवरण डाले रहते हैं। हम यह नहीं जानना चाहते, क्या है, हम जानना चाहते हैं वही, जो होना चाहिए। अगर मैं किसी व्यक्ति को भी देखता हूं तो मैं उसको नहीं देखता जो वह है। मैं वही देखता हूं, जो वह होना चाहिए। इसी से झंझट खड़ी होती है। आप मुझे मिलते हैं, आपको मैं नहीं देखता। मैं आप में उस सौंदर्य को देख लेता हूं जो मेरी इंद्रिया चाहती हैं कि हो। वह सत्य नहीं है। आपकी आंखों में मै वह काव्य देख लेता हूं जो वहां नहीं है, लेकिन मेरी मनोवासना देखना चाहती है कि हो। कल वह काव्य तिरोहित हो जाएगा, परिचय से टूट जाएगा, जानकारी से, पहचान से, आंखें साधारण आंखें हो जाएंगी और तब मैं पछताऊंगा कि धोखा हो गया। लेकिन किसी ने मुझे धोखा दिया नहीं है, यह धोखा मैंने खाया है। मैंने वह देखना नहीं चाहा जो था। मैंने वह देख लिया जो होना चाहिए। मैंने अपना सपना आप में देख लिया। अब यह सपना टूटेगा। सपने टूटने के लिए ही होते हैं। और जब वास्तविकता उघड़ कर सामने आएगी तो लगेगा कि मैं किसी धोखे में डाल दिया गया। और तब हमारी इंद्रियां कहती हैं, धोखा दूसरे ने दिया। जहां काव्य

नहीं था, वहां काव्य दिखलाया, जहां सौंदर्य नहीं था वहां सौंदर्य दिखलाया। दूसरा आपको धोखा नहीं दे रहा है।
इस जगत में सब धोखे अपने हैं। हम धोखा खाना चाहते हैं। हम धोखा निर्मित करते हैं। हम दूसरे के ऊपर धोखे को खड़ा करके धोखा लेते हहैं। फिर धोखे टूट जाते हैं, और तब दुख है।
श्रेयार्थी का अर्थ हैः जो है वही मैं जानूंगा। कुछ भी जोडूंगा नहीं।
यह जो है, दैट विच इ.ज, उसको उघाड़ लूंगा, खोल लूंगा। उसको नग्न देख लूंगा, जैसा है। फिर कोई दुख होने वाला नहीं है। क्योंकि सत्य सदा वैसा ही रहेगा।
सपने बदल जाते हैं, सत्य सदा वैसा है।
किसी में आप मित्र देखते हैं, किसी में शत्रु देखते हैं। वे सब आपके सपने हैं। किसी में सौंदर्य, किसी में कुरूपता, वे सब आपके सपने हैं। जो है, उसे जो देखने लगता है, उसके लिए इस जगत में फिर कोई दुख नहीं है।
क्योंकि जो है, वह कभी भी बदलता नहीं है।
अब हम सूत्र को लें।
इस सूत्र में उतरने के पहले कुछ बुनियादी बातें समझ लेनी जरूरी हैं।
पहली बातः गुरु की धारणा मौलिक रूप से भारतीय है। दुनिया में शिक्षक हुए हैं, गुरु नहीं। शिक्षक साधारण सी बात है, गुरु बड़ी असाधारण घटना है। शिक्षक और गुरु का शाब्दिक अर्थ एक है, लेकिन अनुभूतिगत अर्थ बिल्कुल भिन्न है। शिक्षक से हम वह सीखते हैं, जो वह जानता है। गुरु से हम वह सीखते हैं जो वह है। शिक्षक से हम जानकारी लेते हैं, गुरु से जीवन। शिक्षक से हमारा संबंध बौद्धिक है, गुरु से आत्मगत। शिक्षक से हमारा संबंध आंशिक है, गुरु से पूर्ण।
गुरु की धारणा मौलिक रूप से पूर्वीय है। पूर्वीय ही नहीं, भारतीय है। गुरु जैसा शब्द दुनिया की किसी भाषा में नहीं है। शिक्षक, टीचर, मास्टर ये शब्द हैं--अध्यापक। लेकिन गुरु जैसा कोई भी शब्द नहीं है। गुरु के साथ हमारे अभिप्राय ही भिन्न हैं।
पहली बातः शिक्षक से हमारा संबंध व्यावसायिक है, एक व्यवसाय का संबंध है। गुरु से हमारा संबंध व्यवसायिक नहीं है। आप किसी के पास कुछ सीखने जाते हैं। ठीक है, लेन-देन की बात है। आप उससे कुछ उसे भेंट कर देते हैं, बात समाप्त हो जाती है--यह व्यवसाय है। एक शिक्षक से आप कुछ सीखते हैं सीखने के बदले में उसे कुछ दे देते हैं, बात समाप्त हो सकती है। गुरु से जो हम सीखते हैं उसके बदले में कुछ भी नहीं दिया जा सकता। कोई उपाय देने का नहीं है। क्योंकि जो गुरु देता है उसका कोई मूल्य नहीं है। जो गुरु देता है, उसे चुकाने का कोई उपाय नहीं है। उसे वापस करने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि शिक्षक देता है सूचनाएं, जानकारियां, इनफर्मेशन। गुरु देता है अनुभव। यह बड़े मजे की बात है कि शिक्षक जो जानकारी देता हैं, जरुरी नहीं कि वह जानकारी उसका अनुभव हो, आवश्यक नहीं। जो शिक्षक आपको नीति शास्त्र पढ़ाता है और बताता है कि शुभ क्या है, अशुभ क्या है? नीति क्या है, अनीति क्या है? जरूरी नहीं कि वह शुभ का आचरण करता हो। वह सिर्फ शिक्षक है, वह सूचना करता है। गुरु जो कहता है, वह सूचन नहीं है, वह उसके जीवन का आविर्भाव है।
तो हम बुद्ध को, महावीर को, कृष्ण को गुरु कहते हैं। गुरु का अर्थ यह
है कि वे जो कह रहे हैं, उन्होंने जीया है, जाना ही नहीं। जानने वाले तो बहुत गुरु हैं। वे गांव-गांव में हैं। यूनिवर्सिटीज उनसे भरी हुई पड़ी हैं। वे शिक्षक हैं, गुरु नहीं। जो कुछ जाना गया है, वह उन्होंने संगृहीत किया है, वे आपको दे रहे हैं। वे केवल माध्यम हैं। उनसे पास अपना कोई उत्स, अपना कोई स्रोत नहीं है। वे उधार हैं। वे जो भी दे रहे हैं उन्होंने कहीं से पाया है। उन्हें किसी और ने दिया है वे बीच के सेतु हैं जिनसे जानकारियां यात्राएं करती हैं। एक पीढ़ी मरती है तो जो भी वह पीढ़ी जानती है, दूसरी पीढ़ी को दे जाती है। इस देने के क्रम में शिक्षक बीच का काम करता है, बीच की कड़ी का काम करता है। अगर बीच में शिक्षक न हो तो पुरानी पीढ़ी नई पीढ़ी को सिखा नहीं सकती कि उसने क्या जाना। पुराना पीढ़ी ने जो भी अनुभव

किया है, जो भी जाना है, जो भी उघाड़ा है, जो भी ज्ञान आर्जित किया है वह शिक्षक नई पीढ़ी को सौंपने का काम करता है।
गुरु, जो पुरानी पीढ़ी ने जाना है उसको सौंपने का काम नहीं करता, जो स्वयं उसने अनुभव किया है। और यह जो स्वयं अनुभव किया है, इसे सौंपने का सूचन की तरह कोई उपाय नहीं है। इसे तो जीवन की विधि के रूपांतरण से ही दिया जा सकता है। एक शिक्षक के पास से हम ज्ञानी होकर लौटते हैं, ज्यादा जान कर लौटते हैं, लर्नेड होकर लौटते हैं। एक गुरु के पास हम रूपांतरित होकर लौटते हैं। पुराना आदमी मर जाता है, नये का जन्म होता है। गुरु के पास जब हम जाते हैं तब हम वही नहीं लौट सकते, अगर हम गुरु के पास गए हों। गुरु के पास जाना कठिन मामला है। लेकिन, अगर हम गुरु के पास गए हों तो, जो जाता है, वह फिर कभी वापस नहीं लौटता। दूसरा आदमी वापस लौटता है।
शिक्षक के पास जब हम जाते हैं--और जाना बहुत आसान है--तो हम वही लौटते हैं जो हम गए थे। थोड़े से और समृद्ध होकर लौटते हैं थोड़ा सा और ज्यादा जानकर लौटते हैं। हम जो थे, उसी में शिक्षक जोड़ देता है--एडीशन। हम जो थे उसी में थोड़े रंग-रूप लगा देता है, वस्त्र ओढ़ा देता है। हम जो ते उसमें और शिक्षक के द्वार जो हम निर्मित होते हैं, दोनों के बीच में कोई डिसंकटीन्यूटी, कोई गैप, कोई खाली जगह नहीं होती।
गुरु के पास जब हम जाते है तो जो हम थे, वह और आदमी था और जो हम लौटते हैं वह और आदमी है। गुरु हममें जोड़ता नहीं, हमें मिटाता है और नया निर्मित करता है। गुरु हमको ही संवारता नहीं, हमें मारता है और जिलाता है। गुरु के पास जाने के बाद हमारे अतीत में और हमारे भविष्य में एक गैप, एक अंतराल हो जाता है। लौट के आप देखेंगे तो अपनी कथा ऐसी लगेगी, किसी और की कहानी है। अगर गुरु के पास गए। अगर शिक्षक के पास गए तो अपनी कथा अपनी ही कथा है। बीच में कोई खाली जगह नहीं है जहां चीजें टूट गई हों, जहां आपका पुराना रूप बिखर गया हो और नये का जन्म हुआ हो।
इसलिए हमने इस मुल्क में एक शब्द खोजा था, वह है द्विज। द्विज का अर्थ हैः ट्वाइस बॉर्न, दुबारा जन्मा हुआ वही आदमी है, जिसे गुरु मिल गया। नहीं तो दुबारा जन्मा हुआ आदमी नहीं है। एक जन्म तो मां-बाप देते हैं, वह शरीर का जन्म है। एक जन्म गुरु के निकट घटित होता है, वह आत्मा का जन्म है। जब वह जन्म घटित होता है तो आदमी द्विज होता है। उसके पहले आदमी एक जन्मा है, उसके बाद दोहरा जन्म हो जाता है, ट्वाइस बॉर्न हो जाता है।
गुरु के लिए हमने जैसी श्रद्धा की धारणा बनाई है, ऐसा पश्चिम के लोग
जब सुनते हैं तो भरोसा नहीं कर पाते कि ऐसी श्रद्धा की क्या जरूरत है। जब किसी व्यक्ति से सीखना है तो सीखा जा सकता है। ऐसा उसके चरणों में सिर रखकर मिट जाने की क्या जरूरत है। और उनका कहना भी ठीक है, सीखना ही है तो चरणों में सिर रखने की कोई भी जरूरत नहीं है अगर सीखना ही है तो सिर और सिर का संबंध होगा, चरणों और सिर के संबंध की क्या जरूरत है?
लेकिन, हमारी गुरु की धारणा कुछ और है। यह सिर्फ सीखना नहीं है, यह सिर्फ बौद्धिक आदान-प्रदान नहीं है। यह संवाद बुद्धि का नहीं है, दो सिरो का नहीं है। क्योंकि जो गहन अनुभव हैं, बुद्धि तो उनको अभिव्यक्त भी नहीं कर पाती। जो गहन अनुभव हैं, उनका संबंध तो ह्नदय से हो पाता है। बुद्धि से नहीं हो पाता। जो क्षुद्र बातें हैं, वे कही जा सकती हैं शब्दों में। जो विराट से संबंधित हैं, गहन से, ऊंचाइयों से, अनंत गहराइयों से, वे कही नहीं जा सकती शब्दों में, लेकिन प्रेम में अभिव्यक्त की जा सकती हैं। तो गुरु और शिष्य के बीच जो संबंध है वह गहन प्रेम का है। शिक्षक आौर विद्यार्थी के बीच जो संबंध है वह लेन-देन का है, व्यावसायिक है, बौद्धिक है। गुरु और शिष्य के बीच का जो संबंध है, वह हार्दिक है।
ध्यान रहे, जब बुद्धि लेती है, देती है, तो यह समतल पर घटित होता है। जब ह्नदय लेता-देता है ता यह समतल पर घटित नहीं होता। ह्नदय को तो लेना हो तो उसे पात्र की तरह खुला हुआ नीचे हो जाना पड़ता है। जैसे पानी-नीचे की तरफ बहता है। तो जब ह्नदय को लेना हो... । वर्षा हो रही हो तो पात्र को नीचे रख देना पड़ता है, पानी उसमें भर जाए। पात्र को उस धारा के नीचे होना चाहिए

जहां से लेना है, अगर ह्नदय का लेन-देन है। बुद्धि का लेन-देन समतल पर होता है।
इसलिए पश्चिम में शिक्षक और विद्यार्थी के बीच कोई रिस्पेक्ट, कोई समादर की बात नहीं है। और अगर कोई समादर है तो औपचारिक है, और अगर कोई समादर है तो कक्षा के भीतर है, बाहर तो कोई सवाल नहीं है। शिक्षक और विद्यार्थी का संबंध एक खंड संबंध है। पूरब में गुरु और शिष्य का संबंध एक अखंड संबंध है, समग्र।
यह जो ह्नदय का लेन-देन है, इसमें शिष्य को पूरी तरह झुक जाना जरूरी है। शिष्य का अर्थ ही है जो झुक गया। ह्नदय के पात्र को जिसने चरणशें में रख दिया। इसलिए इस लेन-देन में श्रद्धा अनिवार्य अंग हो गई। श्रद्धा का केवल इतना ही अर्थ है कि जिससे हम ले रहे हैं, उससे हम पूरा लेने को राजी हैं। उसमें हम कोई जांच-पड़ताल न करेंगे। इसका यह मतलब नहीं है कि जांच-पड़ताल की मनाही है। इसका केवल इतना मतलब है कि खूब जांच-पड़ताल कर लेना, जितनी जांच-पड़ताल करनी हो कर लेना, लेकिन जांच-पड़ताल जब पूरी हो और गुरु के करीब पहुंच जाओ, और चुन लो कि यह रहा गुरु, तो फिर जांच-पड़ताल बंद कर देना और पात्र को नीचे रख लेना। और अब सब द्वार खुले छोड़ देना, ताकि गुरु सब मार्गों से प्रविष्ट हो जाए।
जांच-पड़ताल की मनाही नहीं है, लेकिन उसकी सीमा है। खोज लेना पहले, गुरु की खोज कर लेना जितनी बन सके। लेकिन जब खोज पूरी हो जाए और लगे कि यह आदमी रहा, तो फिर खोज बंद कर देना। फिर खोल देना अपने ह्नदय को।
शिष्य, इसलिए अलग शब्द है, उसका अर्थ विद्यार्थी नहीं है। शिष्य विद्यार्थी नहीं है, विद्या नहीं सीख रहा है। शिष्य जीवन सीख रहा है और जीवन के सीखने का मार्ग शिष्य के लिए विनय है।
यह सूत्र विनय-सूत्र है। इसमें महावीर ने कहा है, जो मनुष्य गुरु की आज्ञा पालता हो, उनके पास रहता हो, गुरु के इंगितों को ठीक-ठीक से समझता हो, तथा कार्य-विशेष में गुरु की शारीरिक अथा मौखिक मुद्राओं को ठीक-ठीक समझ लेता हो, वह मनुष्य विनय-सम्पन्न कहलाता है।
विनय, शिष्य का लक्षण है, ह्युमिलिटी, हम्बलनेस, झुका हुआ होना, समर्पित भाग। इस शब्दों को हम एक-एक समझ लें।
"जो गुरु की आज्ञा पालता हो।"
गुरु कहे, बैठ जाओ तो बैठ जाए, कहे खड़े हो जाओ तो खड़ा हो जाए। इसका अर्थ आज्ञापालन नहीं है। आज्ञापालन का अर्थ तो है, जहां आपकी बुद्धि इंकार करती है, वहां पालन।
सुना है मैंने, बायजीद अपने गुरु के पास गया, तो गुरु ने पूछा, कि निश्चित ही तुम आ गए हो मेरे पास? तो वस्त्र उतार दो, नग्न हो जाओ, जूता हाथ में ले लो, अपने सिर पर मारो और पूरे गांव का एक चक्कर लगाओ।
और भी लोग वहां मौजूद थे। उसमें से एक आदमी के बरदाश्त के बाहर हुआ। उसने कहा, यह क्या मामला है, कोई अध्यात्म सीखने आया है कि पागल होने? लेकिन बायजीद ने वस्त्र उतारने शुरू कर दिए। उस आदमी ने बायजीद को कहा, ठहरो भी, पागल तो नहीं हो? और बायजीद के गुरु को कहा, यह आप क्या करवा रहे है? यह जरा ज्यादा है, थोड़ा ज्यादा हो गया। फिर बायजीद की गांव में प्रतिष्ठा है। क्यों उसकी प्रतिष्ठा धूल में मिलाते हैं?
लेकिन बायजीद नग्न हो गया। उसने हाथ में जूता उठा लिया। वह गांव के चक्कर पर निकल गया। वह अपने को जूता मारता जा रहा है। गांव में भीड़ इकट्ठी हो गई है। क्या पागल हो गया हो गया है बायजीद! लोग हंस रहे हैं, लोग मजाक उड़ा रहे हैं। किसी की समझ में नहीं आ रहा, क्या हो गया? वह पूरे गांव में चक्कर लगाकर अपनी सारी प्रतिष्ठा को धूल में मिला कर, मिट्टी होकर वापस लौट आया।
गुरु ने उसे छाती से लगा लिया और गुरु ने कहा, बायजीद अब तुझे कोई भी आज्ञा न दुंगा। पहचान हो गई। अब काम की बात शुरू हो सकती है।
आज्ञा का अर्थ है जो एब्सर्ड मालूम पड़े, जिसमें कोई संगति न मालूम पड़े, आप मत सोचना, आपने आज्ञा मानी। आपने अपनी बुद्धि को माना। अगर मैं आपसे कहूं, कि दो और दो चार होते हैं, यह मेरी आज्ञा है, और आप कहें, बिल्कुल

ठीक, मानते हैं आपकी आज्ञा, दो और दो चार होते हैं। आप मुझे नहीं मान रहे हैं, आप अपनी बुद्धि को मान रहे हैं। दो और दो पांच होते हैं और आप कहें कि हां, दो और दो पांच होते हैं, तो आज्ञा।
बाइबिल में घटना है। एक पिता को आज्ञा हुई कि वह जाकर अपने बेटे को फलां-फलां वृक्ष के नीचे काट कर और बलिदान कर दे। उसने अपने बेटे को उठाया, फरसा लिया और जंगल कि तरफ चल पड़ा। सोरेन कीर्कगार्ड ने इस घटना पर बड़े महत्वपूर्ण काम किए हैं, बड़े गहरे काम किए हैं। यह बात बिल्कुल फिजूल है, क्योंकि सोरेन कीर्कगार्ड कहता है उस पिता को, यह तो सोचना ही चाहिए था, कहीं यह आज्ञा मजाक तो नहीं है। वह तो सोचना ही चाहिए था कि यह आज्ञा अनैतिक कृत्य है कि पिता बेटे की हत्या कर दे! कुछ तो विचारना था! लेकिन उसने कुछ भी न विचारा। फरसा उठाया और बेटे को लेकर चल पड़ा।
यह हमें भी लगेगी, जरूरत से ज्यादा बात है। और यह तो अंधापन है, और यह
तो गूढ़ता है। लेकिन कीर्कगार्ड भी कहता है कि यह सारा परीक्षण पहले कर लेना चाहिए। लेकिन एक बार परीक्षण पूरा हो गया हो तो फिर छोड़ देना चाहिए सारी बात। अगर परीक्षण सदा ही जारी रखना है तो गुरु और शिष्य का संबंध कभी भी निर्मित नहीं हो सकता। महत्त्वपूर्ण वह संबंध निर्मित होना है।
वक्त पर खबर आ गई कि हत्या नहीं करना है फरसा उठ गया था और गला काटने
के करीब था। लेकिन यह गाण बात है। वापस लौट आया है पिता अपने बेटे को लेकर, लेकिन अपनी तरफ से हत्या करने की आखिरी सीमा तक पहुंच गया था। फरसा उठ गया था और गला काटने के करीब था।
यह घटना तो सूचक है। शायद ही कोई गुरु आपको कहे कि जाकर बेटे की हत्या
कर आएं। लेकिन, घटना में मूल्य सिर्फ इतना है कि अगर ऐसा भी हो, तो आज्ञापालन ही शिष्य का लक्षर है। क्योंकि आज्ञा को इतना मूल्यवान--पहले ही सूत्र के हिस्से में आज्ञा को इतना मूल्यवान महावीर क्यों कह रहे हैं? आपकी बुद्धि जो-जो समझ सकती है इस जगत में, वह जैसे-जैसे आप भीतर प्रवेश करेंगे, उसकी समझ क्षीण होने लगेगी कि वहां काम नहीं पड़ेगी। और अगर आप यही भरोसा मान कर चलते हैं कि मैं अपनी बुद्धि से ही चलूंगा तो बाहर की दुनिया तो ठीक, भीतर की
दुनिया में प्रवेश नहीं हो सकेगा। भीतर तो घड़ी-घड़ी ऐसे मौके आएंगे जब गुरु कहेगा कि करो। और तब आपकी बुद्धि बिल्कुल इनकार करेगी कि मत करो। क्योंकि अगर ध्यान की थोड़ी-सी गहराई बढ़ेगी तो लगेगा कि मौत घट जाएगी। अब आपका कोई अनुभव नहीं है। जब भी ध्यान गहरा होगा तो मौत का अनुभव होगा। ऐसा लगेगा, मरे।
गुरु कहेगा, मरो, बढ़ो, मरोगे ही न! मर जाना। तब आपकी बुद्धि कहेगी, अभी
यह क्या हो रहा है, अब आगे कदम नहीं बढ़ाया जाता।
बेटे की हत्या करना भी इतना कठिन नहीं है, अगर खुद के मरने की भीतर घड़ी आए, तब। बेटा फिर भी दूर है और बेटे की हत्या करने वाले बाप मिल जाएंगे। ऐसे तो सभी बाप थोड़ी बहुत हत्या करते हैं लेकिन वह अलग बात है। बाप की हत्या करने बाले बेटे मिल जाएंगे। एक सीमा पर सभी बेटे बाप से छुटकारा चाहते हैं, लेकिन वह अलग बात है।
लेकिन, आदमी जब अपने की ही हत्या पर उतरने की स्थिति आ जाती है, और जब ध्यान में ऐसी घड़ी आती है कि शरीर छूट तो नहीं जाएगा! सांस बंद तो नहीं हो जाएगी! तब आपकी बुद्धि कोई भी उपयोग की नहीं, क्योंकि आपका कोई अनुभव काम नहीं पड़ेगा। वहां गुरु कहता है कि ठीक है, हो जाने दो बंद सांस। उस वक्त क्या करिएगा? अगर आज्ञा मानने की आदत न बन गई हो। अगर गुरु के साथ असंगत में भी उतरने की तैयारी न हो गई हो, तो आप वापस आएंगे, आप भाग जाएंगे। उस वक्त तो मृत्यु को एक किनारे रख कर वह गुरु जो कहता है, वह ठीक है।
और बड़े मजे की बात है, आप मरेंगे नहीं, बल्कि इस ध्यान में जो मृत्यु घटेगी, इससे ही आप पहली दफा जीवन का स्वाद, जीवन का अनुभव कर पाएंगे। लेकिन उसके लिए आपकी बुद्धि तो कोई भी सहारा नहीं दे सकती। बुद्धि तो वही सहारा दे सकती है जो जानती हो। यह आपने कभी जाना नहीं है। यह तो मामला ठीक ऐसा ही है कि बेटा हाथ बाप का पकड़ लेता है और फिर फिकर छोड़ देता है कि ठीक, बाप साथ है, उसकी चिंता नहीं है कुछ। अब जंगल में शेर भी चारों तरफ भटक रहे हों तो

बेटा गुनगुनाता हुआ, गीत गाता, बाप का हात पकड़ कर चलता है। बाप के हाथ में हाथ है, बात खत्म हो गई। अगर बाप उससे कह दे कि यह सामने जो शेर आ रहा है, इससे गले मिल लो, तो बेटा मिल लेगा।
आज्ञा का अर्थ हैः असंगत घटनाएं घटेंगी साधना में, जिनके लिए बुद्धि कोई तर्क नहीं खोज पाती। तब कठिनाइयां शुरू होती हैं, संदेह पकड़ना ारू होता है। तब लगता है कि भाग जाओ इस आदमी से, बच जाओ इस आदमी से। तब बुद्धि बहुत-बहुत उपाय करेगी कि यह आदमी गलत है, इसलिए इसकी यह बात मानना भी उचित नहीं है। छोड़ दो।
इसलिए महावीर कहते हैं, जो मनुष्य गुरु की आज्ञा पालन करता हो, उसके पास रहता हो।
पास रहना बड़ी कीमती बात थी। पास रहना एक आंतरिक घटना है। शारीरिक रूप
से पास रहना, रहने का उपयोग है लेकिन आत्मिक रूप से, मानसिक रूप से पास रहने का बहुत उपयोग है। यह जो जीवन की आत्यंतिक कला है, इसे सीखना हो तो गुरु के इतने पास होना चाहिए, जितने हम अपने भी पास नहीं। जैसे कोई आपकी छाती में छुरा भोंक दे तो गुरु का स्मरण पहले आए, बाद में अपना, कि मैं मर रहा हूं। यह अर्थ हुआ पास रहने का।
पास रहेन का मतलब है, एक आंतरिक निकटता सामीप्य। हम अपने से भी ज्यादा पास है, अपने से भी ज्यादा भरोसा, अपने से भी ज्यादा स्मरण। यह जो घटना है पास होने की, निकट होने की, यह शारीरिक तल पर भी बड़ी मूल्यवान है। इसलिए गुरु के पास शारीरिक रूप से रहने का भी बड़ी अर्थ है। अधिकतम गुरु, अगर हम उपनिषद के गुरुओं में लौट जाएं, या महावीर--महावीर के साथ दस हजार साधु- साध्वियों का समूह चलता था। महावीर के पास होना ही मूल्य था उसका।
क्या अर्थ है इस पास होने का?
इस पास होने का एक ही अर्थ है कि मेरे मैं की जो आवाज है, वह धीरे-धीरे
कम हो जाए। हम जब भी बोलते हैं तो मैं हमारा केंद्र होता है। गुरु के पास रहने का अर्थ है, मैं केंद्र न रह जाए, गुरु केंद्र हो जाए। महावीर के पास दस हजार साधु-साध्वी हैं। उनका अपना होना कोई भी नहीं है। महावीर का होना ही सब कुछ है।
बुद्ध एक गांव के बाहर ठहरे हैं। हजारो भिक्षु-भिक्षुणियां उनके पास है। गांव का सम्राट मिलने आया है। पास आकर उसे शक होने लगा। आम्र-कुंज है, उसके बाहर आकर उसने अपनी वजीरों को कहा कि मुझे शक होता है, इसमें कुछ धोखा तो नहीं है? क्योंकि तुम कहते थे कि हजारों लोग वहां ठहरे हैं, लेकिन आवाज जरा भी नहीं हो रही है। जहां हजारों लोग ठहरें हों और तुम कहते हो, बस यह जो आम की कतार है, इसके पीछे के ही वन में वे लोग ठहरे है। जरा भी आवाज नहीं है, मुझे शक होता है। उसने अपनी तलवार बाहर खींच ली। उसने कहा इसमे कोई शडयंत्र तो नहीं? उसके वजीरों ने कहाः आप निश्चिंत रहो, वहां सिर्फ एक ही आदमी बोलता है, बाकी सब चुप हैं। वह बुद्ध के सिवाय वहां कोई बोलता ही नहीं। और जंगल में शांति है, क्योंकि बुद्ध नहीं बोल रहे होंगे, और तो वहां कोई बोलता ही नहीं।
मगर वह जो सम्राट था, उसका नाम था, आजातशत्रु। नाम भी हम बड़े मजेदार देते हैं, जिसका कोई शत्रु पैदा न हुआ हो। हालांकि शांति में भी उसे शत्रु दिखाई पड़ता है, सन्नाटे में भी। लेकिन वह तलवार निकाले ही गया। जब उसने देख लिया हजारों भिक्षु बैठे हैं चुपचाप बुद्ध एक वृक्ष की छाया में बैठे हैं, तब उसने तलवार भीतर की। तब उसने बुद्ध से पहला प्रश्न यही पूछा, इतनी चुप्पी, इतना मौन क्यों है? इतने लोग हैं, कोई बात-चीत नहीं, कोई चर्चा नहीं, दिन-रात ऐसे बीत जाते है?
बुद्ध ने कहाः ये लोग मेरे पास होने के लिए यहां है। अगर ये बोलते रहें तो ये अपने ही पास होंगे। ये अपने को मिटाने को यहां आए हैं। ये यहां हैं ही नहीं। बस इस जंगल में जैसे मैं ही हूं और ये सब मिटे हुए शून्य हैं। ये अपने को मिटा रहे हैं। जिस दिन ये पूरे बिखरे जाएंगे उस दिन ही ये मुझे पूरा समझ पाएंगे। और जो मैं इनसे कहना चाहता हूं, वह इनके मौन में ही कहा जा सकता है। और अगर मैं शब्द का भी उपयोग करता हूं, तो वह यही समझाने के लिए कि वे कैसे मौन हो जाएं। शब्द का उपयोग करता हूं, मौन में ले जाने के लिए,

फिर मौन का उपयोग करूंगा सत्य में ले जाने के लिए। शब्द से कोई सत्य में ले जाने का उपाय नहीं है। शब्द से, मौन में ले जाया जा सकता है।
बस शब्द की इतनी ही सार्थकता है कि आपकी समझ में आ जाए कि चुप हो जाना है। फिर सत्य में ले जाया जा सकता है। सामीप्य का यह अर्थ है।
सारिपुत्त बुद्ध का खास शिष्य था। जब वह स्वयं बुद्ध हो गया तो बुद्ध
ने उससे कहा, कि अब सारिपुत्र तू जा और मेरे संदेश को लोगों तक पहुंचा।
सारिपुत्र उठा, नमस्कार करके चलने लगा।
आनंद बुद्ध का दूसरा प्रमुख शिष्य था। उसे अब तक ज्ञान नहीं हुआ था।
उसने बुद्ध से कहाः इस भांति मुझे कभी दूर मत भेज देना। मेरी प्रार्थना, इतना ख्याल रखना, कभी मुझे ऐसी आज्ञा मत देना कि दूर चला जाऊं। मैं तो समीप ही रहना चाहता हूं।
बुद्ध ने कहाः तू समीप नहीं है, इसलिए समीप रहना चाहता है। सारिपुत्त उठा और चल पड़ा। वह कहीं भी रहे, वह मेरे ही समीप रहेगा। बीच का फासला अब कोई फासला नहीं है।
सारिपुत्र चल पड़ा। वह गांव-गांव जगह-जगह संदेश देता रहा। लेकिन रोज सुबह जैसे उठ कर वह बुद्ध के चरणों में सिर रखता था। जिस दिा में बुद्ध होते, रोज सुबह उठ कर उनके चरणों में सिर रखता। उसके शिष्य उससे पूछते, सारिपुत्त अब तो तुम भी स्वयं बुद्ध हो गए, अब तुम किसके चरणों में सिर रखते हो? अब क्या है जरूरत? सारिपुत्र कहता, जिनके कारण मैं मिट सका जिनके कारण मैं समाप्त हुआ, जिनके कारण मैं शून्य हुआ। फिर उसके शिष्य कहते, लेकिन बुद्ध तो बहुत दूर हैं, सैकड़ों मील दूर हैं, यहां से तुम्हारे चरणों में किए गए प्रणाम कैसे पहुंचेगे? तो सारिपुत्त कहता, अगर वे दूर होते तो मैं उन्हें छोड़ कर ही न आता। छोड़ कर आ सका इसी भरोसे कि अब कहीं भी रहूं, वे मेरे पास हैं।
एक संबंध है बाहर का जो शरीर से होता है। शरीर कितने ही निकट आ जाए तो
भी दूरी बनी रहती है। शरीर के साथ कोई निकटता हो ही नहीं पाती। कितने ही निकट ले जाओ, आलिंगन कर लो किसी का, फिर भी बीच में फासला बना ही रहता है। दो शरीर कभी भी एक शरीर नहीं, नहीं हो सकते। शरीर का होना ही पार्थक्य है। फिर एक और आंतरिक सामीप्य है। सारिपुत्र उसी की बात कर रहा है। वह कह रहा है, अब फासले टूट गए, अब कोई स्पेस, कोई जगह बोच में नहीं है। अब मै नहीं हूं बुद्ध ही हैं, या कहूं कि मैं हूं, बुद्ध नहीं है, एक ही बात है।
इससे भी ज्यादा मजेदार घटना तो तब घटी, कहते हैं, महाकाश्यप अपने ही पैर छू लेता था। लोगों का बहुत अजीब लगता होगा। महाकश्यप बुद्ध का दूसरा शिष्य था और शायद उनके सारे शिष्यों में अदभुत था। महाकाश्यप अपने ही पैर छू लेता था और लोगों ने उससे कहा, यह तुम क्या करते हो? वह कहता है कि बुद्ध के चरण छू रहा हूं। लोग कहते हैं, ये पैर तुम्हारे हैं। महाकाश्यप कहता कि अब उनसे इतनी निकटता हो गई कि वह भीतर ही हैं, पैर उनके ही हैं। महाकाश्यप कहता, मैं किसी के भी पैर छूऊं, बुद्ध के ही पैर हैं। इतनी समीपता भी बन सकती है। इस सामीप्य में ही संवाद है। इसलिए महावीर कहते हैं, उनके पास रहता हो, उनके निकट होता हो।
इस निकटता में भौतिक निकटता ही अंतर्निहित नहीं है, आंतरिक सामीप्य
भी है, वही है वस्तुतः अंत में।
"गुरु के इंगितों को ठीक-ठीक समझता हो।"
हम तो गुरु के शब्द को भी ठीक से नहीं समझ पाते, इंगित तो बड़ी और बात है। इंगित का अर्थ है, इशारा, जो कह नहीं गया है, फिर भी दिया गया है। शायद इतना बारीक है कि कहने में टूट जाएगा, इसलिए कहा नहीं गया है। सिर्फ दिया गया है। शायद इतना सूक्ष्म है कि शब्द उसके सौंदर्य को नष्ट कर देंगे। स्थूल बना देंगे। इसलिए सिर्फ इशारा दिया गया है।
जो गुरु है, वह धीरे-धीरे शब्दों का सहारा छोड़ता जाता है। जैसे-जैसे शिष्य विनीत होता है, जैसे-जैसे शिष्य झुकता है, वैसे-वैसे गुरु शब्दों का सहारा छोड़ता जाता है। इंगित महत्वपूर्ण हो जाते हैं, इशारे महत्वपूर्ण हो जाते हैं। शब्द भी सहारे है, लेकिन बहुत स्थूल, बहुत ऊपरी।

बुद्ध कैसे चलते हैं, महावीर कैसे बैठते हैं, महावीर कैसे उठते हैं, महावीर कैसे सोते हैं इन सब में उनके इंगित हैं। बुद्ध कैसे हाथ उठाते हैं, कैसे आंख उठाते हैं, कैसे आंखें उनकी झपती हैं, उस सबमें उनके इंगित हैं। धीरे-धीरे जो उनके पास है, उनके शरीर की भाषा को समझने लगता है। महारी भी शरीर की भाषा तो होती है, हमें भी पता नहीं होता। हमारे शरीर की भी भाषा होती है, और अब तो पश्चिम में एक साइंस ही किनेटिक्स निर्मित हो रही है, जो शरीर की भाषा पर निर्भर है, बाहक्ष लैंग्वेज।
और हम सब शरीर से भी बोलते रहते हैं। कभी आपने ख्याल न किया होगा, बच्चे शरीर की भाषा को बिल्कुल ठीक से समझते हैं। फिर धीरे-धीरे शब्द सीखने लगते हैं और शरीर की भाषा भूल जाते हैं। इसलिए बच्चों के साथ मां- बाप को कभी-कभी बड़ा स्ट्रेंज, बड़ा विचित्र अनुभव होता है कि मां मुस्कुरा रही है चेहरे से लेकिन बच्चा समझता है कि वह क्रोध में है। मां कर रही है, थपका रही है खिलौने ले आऊंगी बाजार से, और बड़ी प्रसन्नता दिखा रही है जैसे कि बच्चे से बड़ा प्रेम हो, लेकिन बच्चे समझ लेते है कि यह सब धोखा है। क्योंकि वह जो कह रही है, उसके हाथ की थपकी से पता नहीं चलता। बच्चे पहले तो बाड़ी लैंग्वेज सीखते हैं, शरीर की भाषा सीखते हैं। बच्चे जानते हैं कि मां जब उन्हें दूध पिला रही है, तो उसके स्तन का इशारा भी बच्चे समझते हैं कि इस वक्त वह प्रसन्न है, नाखुश है, पिलाना चाहती है, नहीं पिलाना चाहती, हट जाना चाहती है कि पास आना चाहती है। वह सब समझते हैं। क्योंकि पहली भाषा उनकी शरीर की भाषा है। वह मां को देख कर समझते हैं। अभी वह बोल नहीं सकते, न मां क्या
बोलती है, उसे समझ सकते हैं। लेकिन मां की गेस्चर, उसकी मुद्राएं उनके ख्याल में आने लगती हैं। और इसलिए बच्चों को धोखा देना बहुत मुश्किल है। जब तक कि बच्चे थोड़े बड़े न होने लगें। छोटे बच्चों को धोंखा नहीं दिया जा सकता।
फिर धीरे-धीरे भाषा आरोपित हो जाती है और हम शरीर की भाषा भूल जाते हैं। और तब बड़ी मजेदार घटनाएं घटती हैं। अकसर आपको ख्याल में नहीं है। कभी किसी फिल्म में आपको ख्याल में आया हो तो आया हो। कभी फिल्म में ऐसा हो जाता है कि भाषा और भाव-भंगिमा का संबंध टूट जाता है।
एक नाटक में ऐसा हुआ कि एक आदमी को गोली मारी जानी थी, लेकिन गोली का घोड़ा अटक गया। मारने वाले ने बहुत घोड़ा खींचा, लेकिन जैसे उसने घोड़ा खींचा जिसको मरना था, वह धड़ाम से गिरकर मर गया। जब वह मर चुका और चिल्ला चुका कि हाय, मै मरा! बाद में घोड़ा छूटा और गोली चली। संबंध टूट गया, कृत्य में और भाषा में।
आपको पता नहीं, आपके कृत्य और भाषा में संबंध नही होता। आपके होंठ मुस्कराते हैं। आपकी आंख कुछ और कहती है। आप हाथ से हाथ मिलाते हैं, आपके हाथ के भीतर की ऊर्जा पीछे हटती है; हाथ आगे बढ़ा है, ऊर्जा पीछे हट रही हे, आप मिलाना नहीं चाहते। हाथ मिलाना नहीं चाहते तो भीतर की ऊर्जा पीछे हट रही है। और आप मिला रहे हैं हाथ। लेकिन अगर दूसरा आदमी भाषा समझता हो शरीर की तो फौरन पहचान जाएगा। कि हाथ मिलाया गया और ऊर्जा नहीं मिली। ऊर्जा भीतर खींच ली।
लेकिन हम सभी भाषा भूल गए हैं। इसलिए कोई पता नहीं चलता है। एक आदमी
को गले मिलाते हैं और पीछे हट रहे हैं। आपको खुद पता चल जायगा। जरा ख्याल करना अपने कृत्यों में कि जो आप कर रहे हैं, अगर वह नहीं करना चाहते हैं तो भीतर उससे विपरीत हो रहा है। उसी वक्त हो रहा है। वह तो कोई शरीर की भाषा नहीं जानता। भूल गए हैं हम सब। शायद भूल जाना जरूरी है, नहीं तो दुनिया में दोस्ती बनाना, प्रेम करना बहुत मुश्किल हो जाए। अगर हमारे शरीर की भाषा सीधी-सीधी समझ में आ जाए तो बड़ा मुश्किल हो जाए। इसलिए हम सब पर्त बना लिए हैं। उन शब्दों की पर्त में हम जीते हैं।
जब हम किसी आदमी से कहते हैं, मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, तो बस वह इतना ही सुनता है। न हमारे ओंठ की तरफ देखता कि जब ये शब्द कहे गए, तो ओठों ने भी कुछ कहा? असली कंटेंट ओंठों में है, शब्दों में नहीं। जब ये शब्द कहे गए तब आंखों ने कुछ कहा? असली विषय-वस्तु आंखों में है, शब्दों में नहीं।

जब ये शब्द कहे गए तब इस पूरे आदमी के रोएं-रोएं में पुलक क्या थी? आनंद क्या था? ये कहने से प्राण इसके आनंदित हुए? कि मजबुरी में इसने कह कर कर्तव्य निभाया!
लेकिन शायद खतरनाक है। जैसा हमारी सभ्यता है, समाज है, धोखे का एक लंबा आडंबर। इसलिए हम बच्चों को जल्दी ही ठोंक-पीट कर उनकी जो समझ है उनके ऊपर आरोपण करके, उनकी वास्तविक समझ को भुला देते हैं।
गुरु के पास रह कर फिर शब्दों की भाषा भूलनी पड़ती है। फिर शरीर की भाषा सीखनी पड़ती है। क्योंकि जो गहन है, वह शरीर से कहा जा सकता है। वह जो गहन है वह भाव-भंगिमा से कहा जा सकता है। इसलिए एक पूरा शास्त्र मुद्राओं का, गेस्चर्स का निर्मित हुआ। अब पश्चिम में उसकी पुनः खोज हो रही है। जिसको वह शरीर की भाषा कहते हैं वह हमने मुद्राओं में काफी गहराई तक खोजी है।
आपने बुद्ध की मूर्तियां देखी होंगी विभिन्न मुद्राओं में। अगर आप किसी एक खास मुद्रा में बैठ जाएं तो आप हैरान होंगे कि आपके भीतर भाव परिवर्तन हो जाता है। आपकी मुद्रा भीतर भाव परिवर्तन ले आती है। आपका भाव परिवर्तन हो तो मुद्रा परिवर्तित हो जाती है। जैसे बुद्ध पद्मासन में बैठते हैं, हाथ पर हाथ रख कर, या महावीर बैठते हैं पद्मासन में। सिर्फ वैसे ही आप बैठ जाएं, तो आप तत्काल पाएंगे कि जो आपके मन की धारा चल रही थी वह उसमें विघ्न पड़ गया। बुद्ध ने अनेक मुद्राएं, अभय, करुणा, बहुत सी मुद्राओं की बात की है। अगर उस मुद्रा में आप खड़े हो जाएं तो आप तत्काल भीतर पाएंगे कि भाव में अंतर पड़ गया। अगर आप क्रोध की मुद्रा में खड़े हो जाएं तो भीतर क्रोध का आवेश आना शुरू हो जाता है।
शरीर और भीतर जोड़ है। गुरु के भीतर सारे धोखे मिट गए हैं। उसके भीतर भाव होता है, उसके शरीर तक वह जाता है।
इसलिए महावीर कहते हैं, शिष्य को, गुरु के इंगितों को ठीक-ठीक समझता हो। क्या गुरु कह रहा है, इसे ठीक-ठीक समझता हो, शरीर से भी।
रिंझाई अपने गुरु के पास था। चौबीस घंटे रुकने के बाद उसने कहा, आप कुछ सिखाएंगे नहीं? गुरु ने कहा, चौबीस घंटे मैने कुछ और किया ही नहीं सिवाय सिखाने के तो रिंझाई ने कहा, एक शब्द आप बोले नहीं! या तो मै बहरा हूं जो मुझे सुनाई नहीं पड़ा! लेकिन अभी आप बोल रहे हैं, मैं ठीक से सुन रहा हूं। आप एक शब्द नहीं बोले।
गुरु ने कहा, मेरा सब कुछ होना बोलना ही है। तुम जब सुबह मेरे लिए चाय लेकर आए थे, तब मैंने कैसे तुमसे हाथ से चाय ग्रहण की थी, और मेरी आंखों में कैसे अनुग्रह का भाव था! वह तुमने नहीं देखा। काश, तुम वह देख लेते! तो जो नहीं कहा जा सकता, वह मैंने कह दिया था। जब सुबह आकर तुमने मेरे चरणों में सिर रखा था और नमस्कार किया था तो मैंने किस भांति तुम्हारे सिर पर हाथ रख दिया था। काश, तुम वह समझ लेते तो बहुत कुछ समझ में आ गया होता।
शास्त्र नहीं कह सकते, जो एक इशारा कह सकता है।
महावीर कहते हैंः "जो गुरु के इंगितों को समझता हो, कार्य विशेष में गुरु की शारीरिक अथवा मौखिक मुद्राओं को ठीक-ठीक समझ लेता हो, वह मनुष्य विनय संपन्न कहलाता है।"
तो हमारी तो बड़ी कठिनाई हो जाएगी। हम तो महावीर चिल्ला-चिल्ल कर, डंका बजा-बजा कर कहें कि ऐसा करो, तो भी समझ में नहीं आता। समझ में भी आता है तो हमारी समझ में वही आता है जो हम समझना चाहते हैं। वह क्या कहना चाहते हैं इससे कोई लेना-देना नहीं हैं। हम अपने पर इस बुरी तरह आरूढ़ हैं, हम अपने आपको इस तरह पकड़े हुए हैं कि जो हम समझते हैं, वह हमारी व्याख्या होती है, इंटरप्रिटेशन होता है। क्या महावीर कहते हैं, वह हम नहीं समझते। हम क्या समझना चाहते हैं, हम क्या समझ सकते हैं, हमारी समझ हम उनके ऊपर आरोपित करके जो व्याख्या कर लेते हैं। फिर हम उसके अनुसार चलते हैं और हम सोचते हैं कि हम महावीर के अनुसार चल रहे हैं। हम अपने ही अनुसार चलते रहते हैं।
कभी आपने ख्याल किया, मैं यहां बोल रहा हूं, मैं एक ही बात बोल रहा हूं; लेकिन यहां जितने लोग हैं, उतनी बातें समझी जा रही हैं। यहां हर आदमी अपने

भीतर इंतजाम कर रहा है, समझ रहा है, अपनी बुद्धि को जोड़ रहा है, अर्थ निकाल रहा है।
अभी मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि हम इतने चालाक हैं कि जो हमारे मतलब का होता है, हम उसे जल्दी से समझ लेते हैं। जो हमारे मतलब का नहीं होता, हम उसको बाई पास कर जाते हैं। उस पर हम ध्यान ही नहीं देते। जिससे हमारा लाभ होता हो उसे हम तत्काल पकड़ लेते हैं। जिसमें हमें जरा भी हानि दिखाई पड़ती हो, हम उसको सुनते ही नहीं। हम उसे गुजार जाते हैं। ऐसा नहीं कि हम सुनकर उसे गुजार जाते, हम सुनते ही नहीं। हम उस पर ध्यान ही नहीं देते। हम अपने ध्यान को एक छलांग लगा देते हैं, हम आगे बढ़ जाते हैं।
जब मैं आपसे बोल रहा हूं तो उसमें से पांच प्रतिशत भी सुन लें तो बहुत कठिन है। उसमें से पांच प्रतिशत भी आप वैसा सुन लें जैसा बोला गया है, बहुत कठिन है। आप अपने को मिलाते चले जाते हैं, इसलिए अंत में जो आप अर्थ निकालते हैं, ध्यान रखना, वह आपका ही है। उसका मुझ से कुछ लेना-देना नहीं। महावीर कहते हैं कि जो शारीरिक, मौखिक मुद्राओं तक को ठीक-ठीक समझ लेता हो, वह मनुष्य विनय-संपन्न कहलाता है। वह आदमी विनीत है, वह आदमी हम्बल है। क्या मतलब हुआ विनीत का? विनीत का मतलब हुआ कि आप बीच-बीच में न आते हों, आप अपने को घुमा-घुमा कर बीच में न ले आते हों। जो कहा जा रहा हो, उसको ही समझ लेते हों अपने को बीच में लाए बिना, तो आप शिष्य हैं। विद्यार्थी को मनाही नहीं है, वह अपने को बीच में लाए, मजे से लाए। शिष्य को मनाही है, क्योंकि विद्यार्थी केवल सूचनाएं ग्रहण कर रहा है। अपने लाभ के लिए। जो उसके लाभ का हो ग्रहण कर ले, जो उसके लाभ का न हो छोड़ दे। इसलिए शिक्षक और विद्यार्थी के बीच संबंध लाभ-हानि का है। जो मेरे काम का नहीं है वह मै छोड़ दूंगा जो मेरे काम का है वह चुन लूंगा यह उचित ही है। लेकिन शिष्य और गुरु के बीच संबंध लाभ-हानि का नहीं है। यह गुरु को पीने आया है। इसमें यह अगर अपने को बीच-बीच में डालता है तो जो भी यह निष्कर्ष लेगा वह इसके अपने होंगे। गुरु से कोई संबंध न हो पाएगा।
इसलिए कई बार ऐसा होता है कि गुरु के पास लोग वर्षों रहते हैं और फिर
भी गुरु को बिना छुए लौट जाते हैं। वर्षों रहा जा सकता है। वर्ष बड़े छोटे हैं, जन्मों रहा जा सकता है। वे अपने को ही सुनते रहते हैं।
विनय का यह तो बहुत गहरा अर्थ हुआ। विनय का अर्थ हुआ, अपने को सब भांति छोड़ देना। असल में विद्यार्थी होना हो तो अज्ञान शर्त नहीं है। शिष्य होना हो तो अज्ञानी होना शर्त है। अपने सारे ज्ञान को तिलांजलि दे देना, खाली स्लेट की तरह, खाली कागज की तरह खड़े हो जाना, ताकि गुरु जो लिखे वही दिखाई पड़े। आपका लिखा हुआ पहले से तैयार हो कागज पर, और फिर गुरु और लिख दे तो सब उपद्रव ही हो जाएगा और जो अर्थ निकलेंगे वे अनर्थ सिद्ध होंगे।
यह अनर्थ घट रहा है, यह हर आदमी पर घट रहा है। हर आदमी एक भीड़ है। उसमें
न मालूम कितने विचार हैं। और जब एक विचार उस भीड़ में घुसता है तो वह भीड़ तत्काल उस विचार को बदलने में लग जाती है, अपने अनुकूल करने में लग जाती है। जब तक वह विचार अनुकूल न हो जाए, तब तक आपका पुराना मन बेचैनी अनुभव करता है। जब वह अनुकूल हो जाए, तब आप निश्चिंत हो जाते हैं।
गुरु के पास आप जब जाते हैं तब गुरु जो विचार देता है, उसको आपके पूर्व विचारों के अनुकूल नहीं बनाना है, बल्कि इस विचार के अनुकूल सारे पूर्व विचारों को बनाना है, तब विनय है, चाहे सब टूटता हो, चाहे सब जाता हो।
आपके पास है भी क्या। हम बड़े मजेदार लोग हैं, जिसको बचाते रहते हैं, कभी यह सोचते नहीं हैं, है भी क्या! मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, मेरा विचार तो ऐसा है। मैं उनसे पूछता हूं, अगर यह विचार तुम्हें कहीं ले गया हो तो मजे से पकड़े रहो, मेरे पास आओ ही मत। नहीं, वे कहते हैं, कहीं ले तो नहीं गया। तो फिर इस मेरे विचार को कृपा करके छोड़ दो। जो विचार तुम्हें कहीं नहीं ले गया है, उसी को लेकर अगर तुम मेरे पास भी आते हो और मै तुमसे जो कहता हूं, उसी विचार से उसकी भी जांच करते हो तो मेरा विचार भी तुम्हें कहीं नहीं ले जाएगा। तुम निर्णायक बने रहोगे। लोग सुनते ही नहीं।
मार्क ट्वैन ने एक मजाक की है, बड़ा संपादक था, बड़ा लेखक था और एक हंसोड़ आदमी था। और कभी-कभी हंसने वाले लोग गहरी बातें कह जाते हैं जो कि रोने

वाले लाख रोएं तो नहीं कह पाते। उदास लोगों से सत्यों का जन्म नहीं होता। उदास लोगों से बीमारियां पैदा होती हैं। मार्क ट्वैन ने कहा है, कि जब कोई किताब मेरे पास आलोचना के लिए, क्रिटिसिज्म के लिए भेजता है, तो मै पहले किताब पढ़ता नहीं, पहले आलोचना लिखता हूं। क्योंकि किताब पढ़ने से आदमी अगर प्रभावित हो जाए तो पक्षपात हो जाता है। पहले आलोचना लिख देता हूं, फिर मजे से किताब पढ़ता हूं। उसने सलाह दी कि आलोचक को कभी भी आलोचना करने के पहले किताब नहीं पढ़नी चाहिए क्योंकि उससे आलोचक का मन अगर प्रभावित हो जाए तो पक्षपात हो जाता है।
सुना है मैंने, मुल्ला नसरुद्दीन बुढ़ापे में मजिस्ट्रेट हो गया, जे पी। पहला ही आदमी आया। मिल गया होगा। किसी स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर, उसको जे पी होना। पहला ही आदमी आया, पहला ही मुकदमा था। एक पक्ष बोल पाया था कि उसने जजमेंट लिखना शुरू किया। कोर्ट के क्लर्क ने कहा, महानुभाव, यह आप क्या कर रहे हैं। अभी आपने दूसरे पक्ष को तो सुना ही नहीं।
नसरुद्दीन ने कहाः अभी मेरा मन साफ है और अगर मै दोनों को सुन लूं तो
सब कनफ्यूजन हो जाएगा, जब तक मन साफ है, मुझे निर्णय लिख लेने दो, फिर पीछे दूसरे को भी सुन लेंगे। फिर कुछ गड़बड़ होने वोली नहीं है। हम सब ऐसे ही क्नफ्यूजन में हैं, और हम किसी की भी नहीं सुनता चाहते हैं कि कहीं कनफ्यूज न हो जाएं। हम अपने को ही सुने चले जाते हैं। जब हम दूसरे को भी सुन रहे हैं तब हम पर्दे की ओट से सुनते हैं छांटते रहते हैं, क्या छोड़ देना है, क्या बचा लेना है? फिर जो बचता है, वह आपका ही चुनाव है। लोग अपने विचार को पकड़ कर चलते हों, तो गुरु से उनका कोई संबंध नहीं हो सकता। वे लाख गुरुओं के पास भटकें वे अपने इर्द-गिर्द ही परिक्रमा करते रहते हैं। वे अपने घर को कभी नहीं छोड़ पाते, उसके आस-पास ही घूमते रहते हैं।
इसलिए महावीर ने कहा है, कहता हूं उसे विनय संपन्न, जो गुरु की मुद्राओं तक को वैसा ही समझ लेता हो, जैसी वे हैं। फिर पंद्रह लक्षण महावीर ने गिनाए। निम्नलिखित पंद्रह लक्षणों से मनुष्य सुविनीत कहलाता है। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण हैं--
"उद्धत न हो, एग्रेसिव न हो, आक्रमक न हो।" क्योंकि जो आक्रमक है चित्त
से वह ग्रहण न कर पाएगा। रिसेप्टिव हो, ग्राहक हो, उद्धत न हो।
अलग-अलग बात... स्थितियां हैं। जब आप उद्धत होते हैं तब आप दूसरे पर आक्रमण कर रहे हैं। लोग आते हैं, उनके प्रश्न ऐसे होते हैं, जैसे वे प्रश्न न लाकर, एक छुरा लेकर आए हों। प्रश्न पूछने के लिए नहीं होते, हमला करने के लिए होते हैं। प्रश्न कुछ समझने के लिए नहीं होते हैं। कुछ समझाने के लिए होते हैं तो अगर शिष्य गुरु को समझाने आया हो, तो कुछ भी होने वाला नहीं है। यह तो नदी जो है, नाव के ऊपर हो गई, अगर शिष्य गुरु को समझाने आया हो। हालांकि ऐसे शिष्य खोजना मुश्किल है जो गुरु को समझाने न आते हों। तरकीब से समझाने आते हैं और फिर भी यह मन में माने चले जाते हैं कि हम शिष्य हैं। महावीर कहते हैंः "उद्धत न हो, नम्र हो। आक्रमक न हो, ग्राहक हो, कुछ लेने आया हो। चपल न हो, स्थिर हो।" क्योंकि जितनी चपलता हो, उतना ही ग्रहण करना मुश्किल हो जाता है। चपल आदमी का चित्त वैसे होता है जैसे फूटी बाल्टी हो। ग्राहक भी हो तो किसी काम की नहीं, पानी भरा हुआ दिखाई पड़ेगा जब तक पानी में डूबी रहे। ऊपर निकालो पानी सब गिर जाता है। चपल चित्त छेद वाला चित्त है। जब वह गुरु के पास भी बैठा हुआ है तब तक वह हजार जगह हो आया। बैठे हैं वहां न मालूम कहां-कहां का चक्कर काट आए। तो जितनी देर वह कहीं और रहा उतनी देर गुरु ने जो कहा, वह तो सुनाई भी नहीं पड़ेगा।
"स्थिर हो, मायावी न हो, सरल हो", ... किसी तरह का धोखा देने की इच्छा में
न हो।
हम सब होते हैं। गुरु के पास जब कोई जाता है तो वह बताता है कि मैं बिल्कुल ईमानदार हूं, सच्चा हूं। नहीं, वह जो हो उसे बता देना चाहिए।
क्योंकि गुरु को धोखा देने से वह अपने को ही धोखा देगा। यह तो ऐसा हुआ, जैसे किसी डाक्टर के पास कोई जाए। हो कैंसर और बताए कि कुछ नहीं, जरा फोड़ा- फुंसी है। तो फोड़ा-फुंसी का इलाज हो जाएगा।

डाक्टर को हम धोखा नहीं देते बीमारी बता देते हैं वही जो है। तो ही डाक्टर किसी उपयोग का हो पाता है। गुरु तो चिकित्सक है। उसके पास जाकर तो सब खोल देना जरूरी है, तो ही निदान हो सकता है। लेकिन हम उसके साथ भी वही धोखा चलाए जाते हैं जो हम दुनिया भर में चला रहे हैं। उसके साथ भी हम वह दिखाए चले जाते हैं जो हम नहीं हैं, तो बदलाहट कभी भी संभव नहीं होगी। गुरु के पास तो पूर्ण नग्न--जो हम हैं सब उघाड़ कर रख देने का है। उसमें कुछ भी छिपाने का नहीं है। यह अछिपाव का अर्थ ही सरलता है।
"कुतूहलता न हो, गंभीर हो।"
जिज्ञासा गंभीर बात है, कुतूहल नहीं है, क्युरिआसिटी नहीं है। इंक्वायरी और क्युरिआसिटी में फर्क है। बच्चे कुतूहली होते हैं, कुतूहली का आप मतलब समझते हैं? कुछ करना नहीं है पूछ कर, पूछने के लिए पूछना है। आ गया ख्याल कि ऐसा क्यों है पूछ लिया। इससे क्या उत्तर मिलेगा, उससे जीवन में कोई अंतर करना, यह सवाल नहीं है। इसलिए बच्चों के बड़े मजेदार सवाल होते है। एक सवाल उन्होंने पूछा उसका आप उत्तर भी नहीं दे पाए कि दूसरा सवाल पूछ लिया। आप जब उत्तर दे रहे हैं, तब उन्हें कोई रस नहीं है, उनका मतलब पूछने से था।
मेरे पास लोग आते हैं। मै बहुत चकित हुआ। वह एक सवाल--कहते हैं कि बड़ा महत्वपूर्ण सवाल है, आपसे पूछना है। वे पूछ लेते हैं। उन्होंने सवाल पूछा लिया। मैं उनसे पूछता हूं, पत्नी आपकी ठीक, बच्चे आपके ठीक? वे कहते हैं, बिल्कुल ठीक हैं। वे सवाल ही भूल गए इतने में। वे घंटे भर जमाने भर की बातें करके बड़े खुश वापस लौट जाते हैं। मैं सोचता हूं सवाल का क्या हुआ जो बड़ा महत्त्वपूर्ण था, जो मैने इतने से पूछने से कि बच्चे कैसे हैं, समाप्त हो गया। फिर उन्होंने पूछा ही नहीं।
कुतूहल था, आ गए थे पूछने, ईश्वर है या नहीं? मगर इससे कोई मतलब न था, इससे कोई संबंध न था। शायद यह पूछना भी एक रस दिखलाना था कि मैं ईश्वर में उत्सुक हूं। यह भी अहंकार को तृप्ति देता है कि मैं कोई साधारण आदमी नहीं हूं, ईश्वर की खोज कर रहा हूं।
मार्पा अपने गुरु के पास गया, नारोपा के पास। तो तिब्बत में रिवाज था
कि पहले गुरु की सात परिक्रमाएं की जाएं, फिर सात बार उसके चरण छूए जाएं, सिर रखा जाए, फिर साष्टांग लेट कर प्रणाम किया जाए, फिर प्रश्न निवेदन किया जाए। लेकिन मार्पा सीधा पहुंचा, जाकर गुरु की गर्दन पकड़ ली और कहा कि यह सवाल है। नारोपा ने कहा कि मार्पा, कुछ तो शिष्टता बरत, यह भी कोई ढंग है? परिक्रमा कर, दंडवत कर, विधि से बैठ, प्रतीक्षा कर। जब मैं तुझसे पूछूं कि पूछ, तब पूछ।
लेकिन मार्पा ने कहाः जीवन है अल्प। और कोई भरोसा नहीं कि सात परिक्रमाएं पूरी हो पाएं! और अगर मैं बीच में मर जाऊं तो नारोपा, जिम्मेवारी तुम्हारी कि मेरी?
तो नारोपा ने कहा कि छोड़ परिक्रमा, पूछ। परिक्रमा पीछे कर लेना।
नारोपा ने कहा है कि मार्पा जैसा शिष्य फिर नहीं आया। यह कोई कुतूहल न था, यह तो जीवन का सवाल था। यह कोई कुतूहल नहीं था। यह ऐसे ही पूछने नहीं चला आया था। जिंदगी दांव पर थी। जब जिंदगी दांव पर होती है, तब जिज्ञासा होती है। और जब ऐसी खुजलाहट होती है दिमाग की, तब कुतूहल होता है।
"किसी का तिरस्कार न करे।"
इसलिए नहीं कि तिरस्कार योग्य लोग नहीं हैं जगत में, काफी हैं। जरूरत
से ज्यादा हैं। बल्कि इसलिए कि तिरस्कार करने वाला अपनी ही आत्महत्या में लग जाता है। जब आप किसी का तिरस्कार करते हैं तो वह तिरस्कार योग्य था या नहीं, लेकिन आप नीचे गिरते हैं। जब आप तिरस्कार करते हैं किसी का, तो आपकी ऊर्जा ऊंचाइयां छोड़ देती है और नीचाइयों पर उतर आती है। यह बहुत मजे की बात है कि तिरस्कार जब आप किसी का करते हैं तो आपको उसी के तल पर भीतर उतर आना पड़ता है।
इसलिए बुद्धिमानों ने कहा है, मित्र कोई भी चुन लेना, लेकिन शत्रु सोच-समझ कर चुनना। क्योंकि आदमी को शत्रु के तल पर उतर आना पड़ता है। इसलिए अगर दो लोग जिंदगी भर लड़ते रहें, तो आप आखिर में पाएंगे कि उनके गुण एक

जैसे हो जाते हैं। क्योंकि जिससे लड़ना पड़ता है, उसके तल पर होना पड़ता है, नीचे उतरना पड़ता है।
इसलिए महावीर कहेंगे, अगर प्रशंसा बन सके तो करना, क्योंकि प्रशंसा में ऊपर जाना पड़ता है, निंदा में नीचे आना पड़ता है। यह सवाल नहीं है कि दूसरा आदमी निंदा योग्य था या प्रशंसा योग्य था, यह सवाल नहीं है। सवाल यह है कि जब आप प्रशंसा करते हैं तो आप ऊपर उठते हैं और जब आप निंदा करते हैं, तो आप नीचे गिरते हैं। वह आदमी कैसा था, यह तो निर्णय करना भी आसान नहीं है।
इसलिए महावीर कहते हैं, कि किसी का तिरस्कार न रखता हो, क्रोध को अधिक समय तक न टिकने देता हो।
यह नहीं कहते कि अक्रोधी हो, क्योंकि शिष्य से यह जरा ज्यादा अपेक्षा
हो जाएगी। इतना ही कहते हैं, क्रोध को ज्यादा न टिकने देता हो। क्रोध क्षण भर को आता हो, तब तक जाग जाता हो और क्रोध को विसर्जित कर देता हो। धीरे- धीरे क्रोध नहीं आएगा, लेकिन वह दूर की बात है। यात्रा के पहले चरण में क्रोध को अधिक न टिकने दे, इतना ही काफी है।
आपको पता है, आप क्रोध को कितना टिकने देते है? कुछ लोग हैं, उनके बापदादे लड़े थे, अभी तक क्रोध टिका है। अभी तक वे लड़ रहे हैं, क्योंकि वह दुश्मनी बापदादों से चली आ रही है। आज आपको क्रोध हो जाए, आप जिंदगी भर उसको टिकने देते हैं। वह बैठा रहता है भीतर। कब मौका मिल जाए, आप बदला ले लें।
क्रोध अगर एक क्षण में उठने वाली घटना है और खो जाने वाली तो पानी का
एक बुलबुला है। बहुत चिंता की जरूरत नहीं है। एक लिहाज से अच्छा है। इसलिए वे लोग अच्छे होते हैं जो क्रोध कर लेते हैं और भूल जाते हैं, बजाय उन लोगों के जो क्रोध को दबाए चले जाते हैं। ये लोग खतरनाक हैं। ये आज नहीं कल कोई उपद्रव करेंगे। इनकी केटली का ढक्कन भी बंद है और नीचे आग भी जल रही हैं। विस्फोट होगा। ये किसी की जान लेंगे। उससे कम में ये मानने वाले नहीं हैं। केटली अच्छी है जिसका ढक्कन खुला है। भाप ज्यादा हो जाती है, ढक्कन थोड़ा उछल जाता है, भाप बाहर निकल जाती है, केटली अपनी जगह हो जाती है।
हर आदमी एक उबलती हुई केटली है, जिंदगी की आग नीचे जल रही है। ढक्कन थोड़ा ढीला रखना अच्छा है। बिल्कुल चुस्त मत कर लेना, जैसा संयमी लोग कर लेते हैं। फिर वे जान लेऊ हो जाते हैं। खुद तो मरेंगे, दो चार को आसपास मार डालेंगे।
महावीर कहते हैं, जिसका ढक्कन थोड़ा ढीला हो। भाप ज्यादा होती हो, छलांग लगा कर बाहर निकल जाती हो, ढक्कन वापस अपनी जगह हो जाता हो।
क्रोध बिल्कुल न हो, यह शिष्य से अपेक्षा नहीं की जा सकती, यह तो आखिरी बात है। लेकिन क्षण भर टिकता हो, बस इतना भी काफी है। असल में क्रोध इतनी बीमारी नहीं है जितना टिका हुआ क्रोध बीमारी है क्योंकि टिका हुआ क्रोध भीतर एक स्थाई धुआं हो जाता है। कुछ लोग ऐसे हैं जो क्रोधित नहीं होते, उनको होने की जरूरत नहीं है। वे क्रोधित रहते ही हैं। उनको होने वगैरह की आवश्यकता नहीं है, वे हमेशा तैयार ही हैं। वे तलाश कर रहे हैं कि कहां खूंटी मिल जाए, और हम अपने को टांग दें। तो खूंटी न मिले तो भी वे कहीं खिड़की, दरवाजे पर कहीं न कहीं टांगेंगे, निर्मित कर लेंगे खूंटी।
क्रोध निकल जाता हो, क्षण भर आता हो तो बेहतर है। वैसा आदमी भीतर क्रोध की पर्त निर्मित नहीं करता। यह बड़ी महत्वपूर्ण बात है, महावीर के मुंह से यह बात कि क्रोध को अधिक समय तक न टिकने देता हो। बड़ी महत्वपूर्ण बात है।
"मित्रों के प्रति सदभाव रखता हो।"
यह बड़ी हैरानी की बात है। हम कहेंगे कि मित्रों के प्रति सदभाव होता
ही है। बिल्कुल झूठ है। मित्रों के प्रति सदभाव रखना बड़ी कठिन बात है। क्योंकि मित्र का मतलब, जिसको हम जानते हैं, जिसको हम भलीभांति पहचानते हैं। जिसको नहीं पहचानते उसके प्रति सदभाव आसान है। जिसको जानते हैं, उसके प्रति सदभाव बड़ा मुश्किल है। मित्रों के प्रति सदभाव बड़ा मुश्किल है।

मार्क ट्वेन ने कहा है कि हे परमात्मा! शत्रुओं से मैं निपट लूंगा, मित्रों से तू मुझे बचाना।
मित्र बड़ी अदभुत चीज है। जिसे हम जानते हैं, जिसका सब कुछ हमें पता है, उसके प्रति कैसे सदभाव रखें?
अज्ञान में सदभाव आसान है, ज्ञान में मुश्किल हो जाता है। इसलिए जितना हमारे कोई निकट होता है उतना ही दूर भी हो जाता है। और हम मित्रों के संबंध में भी इधर-उधर जो बातें करते रहते हैं, वे बताते हैं कि सदभाव कितना है। पीठ पीछे हम क्या कहते रहते हैं, उससे पता चलता है, सदभाव कितना है। महावीर कहते हैं, मित्रों के प्रति सदभाव रखता हो, पूरा सदभाव रखता हो। "शास्त्रों से ज्ञान पाकर गर्व न करता हो।"
क्योंकि शास्त्रों से ज्ञान का कोई मूल्य नहीं है। इसलिए गर्व व्यर्थ है। और शास्त्रों के ज्ञान से गर्व पैदा होता है, इसलिए विशेष रूप से यह सूचन किया है, क्योंकि शास्त्रों से जब ज्ञान मिल जाता है तो लगता है मैंने जान लिया, बिना जाने। अभी जानना बहुत दूर है। अभी किताब में पढ़ा कि पानी प्यास बुझाता है, अभी पानी नहीं मिला। अभी किताब में पढ़ा कि मिठाई बड़ी मीठी होती है, अभी स्वाद नहीं मिला। अभी किताब में पढ़ा कि सूरज उगता है और प्रकाश ही प्रकाश होता है, जिंदगी अभी अंधेरे में है।
तो किताब को पढ़ कर जो गर्व न करता हो। लेकिन किताब को पढ़ कर गर्व आ ही जाता है, लगता है, जाना। इसलिए शास्त्रीय आदमी हो और अहंकारी न हो, बड़ा मुश्किल है। शास्त्र अहंकार के लिए बोझिल है। इसलिए पंडित की चाल देखें, पंडित की आंख देखें, उनकी भाव-भंगिमा जरा पहचानें, तो वे जमीन पर नहीं चलते। वे चल नहीं सकते। जमीन और उनके बीच बड़ा फासला होता है। इसलिए दो पंडितों को पास बिठा दें, तो जो घटना दो कुत्तों के बीच घट जाती है, वही घट जाती है।
क्या हो जाता है? एकदम कुत्तों के गले में खराश आ जाती है। एकदम भौंकना शुरू कर देते हैं। जब तक एक हार न जाए, तब तक दूसरे को शांति नहीं मिलती।
मैंने तो सुना है कि पंडित मर कर कुत्ते बिल्लियां हो जाते हैं। वे पुरानी आदतवश भौंकते चले जाते हैं।
क्या हो जाता होगा? शास्त्र इतना भौंकता क्यों है? शास्त्र नहीं भौंकता। शास्त्र से अहंकार पोषित हो जाता है। लगता है, मैं जानता हूं, और जब ऐसा लगता है कि मैं जानता हूं तो फिर कोई और जान सकता है, यह मानने का मन नहीं होता। फिर कोई और भी जानता है जो मुझसे भिन्न जानता है, तो शत्रुता निर्मित हो जाती है। फिर सिद्ध करना जरूरी हो जाता है कि मैं ठीक हूं। पंडित सत्य की खोज में नहीं होता, मैं ठीक हूं, इसकी खोज में होता है। महावीर कहते हैंः "शास्त्रों को पाकर गर्व न करता हो, किसी के दोषों
का भंडाफोड़ न करता हो।"
कोई प्रयोजन नहीं है। किसी के दोष पता भी चल जाएं तो उनकी चर्चा का क्या अर्थ है? आपकी चर्चा से उसके दोष न मिट जाएंगे। हो सकता है, बढ़ जाएं। अगर आप सच में ही चाहते हैं कि उसके दोष मिट जाएं तो इन दोषों की सारे जगत में चर्चा करते रहने से कोई मतलब नहीं। लेकिन, एक मामले में हम बड़े सृजनात्मक लोग हैं। किसी का जरा सा दोष दिख जाए तो हमारे पास मैग्निफाइड ग्लास है, हम उसको फिर इतना बड़ा करके देखते हैं कि सारा ब्रह्मांड का विस्तार छोटा मालूम पड़ने लगता है।
सुना है मैंने, मुल्ला ने एक दिन अपनी पत्नी को फोन किया। फोन करना पड़ा, क्योंकि ऐसी घटना हाथ में लग गई थी। बताया कि पड़ोसी अहमद के मित्र रहमान की पत्नी को लेकर भाग गया। दोनों के बच्चे सड़कों पर भीख मांग रहे हैं। और बहुत सी बातें बताईं। पत्नी भी रस से भर गई। क्योंकि पत्नियों को वियतनाम में क्या हो रहा है, इससे मतलब नहीं, पड़ोसी की पत्नी कहां भाग गई, यह बड़ा महत्वपूर्ण है।
पत्नी ने कहा कि जरा मुल्ला विस्तार से बताओ। मुल्ला ने कहाः विस्तार में मत ले जाओ मुझे, जितना मैंने सुना है उससे तीन गुना तुम्हें बता ही चुका हूं। अब और विस्तार में मुझे मत ले जाओ।

जब किसी का दोष हमें दिखाई पड़ जाए, तब हम तत्काल उसे बड़ा कर लेते हैं। इसमें भीतरी एक रस है। जब दूसरे का दोष बहुत बड़ा हो जाता है तो अपने दोष बहुत छोटे दिखाई पड़ते हैं। और अपने दोष छोटे दिखाई पड़ते हैं तब बड़ी राहत मिलती है कि हम क्या, हमारा पाप भी क्या?
दुनिया में यही एक घट रहा है चारों तरफ? तो हम बड़े पुण्यात्मा मालूम पड़ते हैं। इसलिए दूसरे के दोष बड़ा कर लेने में अपने दोष छोटा कर लेने की तरकीब है। खुद के दोष छोटा करना बुरा नहीं है, लेकिन दूसरे के बड़े करके छोटा करने का ख्याल करना पागलपन है। खुद के दोष छोटे करना अलग बात है। लेकिन दो तरकीबें हैं, या तो खुद के दोष छोटे करो, तब छोटे होते है, या फिर पड़ोसियों के बड़े कर लो, तब भी छोटे दिखाई पड़ने लगते हैं। यह आसान है पड़ोसियों के बड़े करना। इसमें कुछ भी नहीं करना पड़ता है।
महावीर कहते हैः "भंडाफोड़ न करता हो, मित्रों पर क्रोधित न होता हो।" शत्रुओं पर हमारा इतना क्रोध नहीं होता जितना मित्रों पर होता है। इसलिए मित्र की सफलता कोई भी बर्दाश्त नहीं कर पाता। यह बड़ा मजाक है आदमी का मन। मित्र जब तकलीफ में होता है तब हमें सहानुभूति बताने में बड़ा मजा आता है। लेकिन मित्र अगर तकलीफ में न हो सफल होता चला जाए, तब हमें बड़ी पीड़ा होती है। जो आदमी अपने मित्र की सफलता में सुख न पाता हो, जानना कि मित्रता है ही नहीं। लेकिन हमें बड़ा मजा आता है। अगर कोई दुखी है तो हम संवेदना प्रकट करने पहुंच जाते हैं। संवेदना मे बड़ा मजा आता है। कोई दुखी है, हम दुखी नहीं है। कभी आपने देखा है? जब आप संवेदना प्रकट करने जाते हैं तो भीतर एक हलका सा रस मिलता है।
किसी के मकान में आग लग जाए तो आपकी आंख से आंसू गिरने लगते हैं। और किसी का मकान आकाश छूने लगे, तब आपके पैरों में नाच नहीं आता। तो जरूर इसमें कुछ खतरा है। क्योंकि अगर सच में ही किसी के मकान में आग लगने से ह्नदय रोता है तो उसका मकान गगनचुंबी हो जाए, उस दिन पैर नाचने चाहिए। लेकिन गगनचुंबी मकान देख कर पैर नाचते नहीं। आग लग जाए तो आंखे रोती हैं। निश्चित ही उस रोने के पीछे भी रस है। इसलिए लोग ट्रैजिडि, दुखांत नाटक और फिल्मों को देख कर इतना मजा पाते हैं, नहीं तो दुख को देखने में इतना मजा क्या है!
दुख को देख कर एक राहत मिलती है कि हम इतने दुखी नहीं है। अपना मकान अभी कायम है, कोई आग नहीं लगी है। दूसरे को सुखी देख कर जब हम सुखी होते हैं तब समझना कि मित्रता है। मित्रता सूक्ष्म बात है।
महावीर कहते हैंः "मित्रो पर क्रोधित न होता हो।"
यह भी ध्यान रखना कि शत्रुओं पर तो क्रोधित होने का कोई अर्थ नहीं होता, आप क्रोधित हैं। मित्रों पर क्रोधित होने का अर्थ होता है, क्योंकि रोज-रोज होना पड़ता है।
"मित्रों पर क्रोधित न होता हो, अप्रिय मित्र की भी पीठ-पीछे भलाई ही गाता हो।"
क्यों आखिर? यह तो झूठ मालूम होगा न। आप कहेंगे, बिल्कुल सरासर झूठ की शिक्षा महावीर दे रहे हैं। अप्रिय मित्र की भी पीठ पीछे भलाई गाता हो, पीछे भले की ही बात करता हो। नहीं, झूठ के लिए नहीं कह रहे हैं। कोई आदमी इतना बुरा नहीं है कि बिल्कुल बुरा हो। कोई आदमी इतना भला नहीं है कि बिल्कुल भला हो। इसलिए चुनाव है। जब आप किसी आदमी की बुराई की चर्चा करते हैं तो इसका यह मतलब नहीं कि उस आदमी में भलाई है ही नहीं। आपने बुराई चुन ली। जब आप किसी आदमी की भलाई की चर्चा करते हैं तब भी यह मतलब नहीं होता है कि उसमें बुराई है ही नहीं। आपने भलाई चुन ली।
महावीर कहते हैं कि ऐसा बुरा आदमी खोजना कठिन है, जिसमें कोई भलाई न हो। क्योंकि बुराइयों के टिकने के लिए भी भलाइयों की जरूरत है। तो तुम चुनाव करना भलाई की चर्चा का। क्यों आखिर?
क्योंकि भलाई की जितनी चर्चा की जाए, उतनी खुद के भीतर भलाई की जड़ें गहरी बैठने लगती हैं। बुराई की जितनी चर्चा की जाए, बुराई की जड़ें गहरी बैठनी लगती हैं। हम जिसकी चर्चा करते हैं, अंततः हम वही हो जाते हैं। लेकिन हम सब बुराई की चर्चा कर रहे हैं। अगर हम अखबार उठा कर देखें तो पता

ही नहीं चलता कि दुनिया में कहीं कोई भलाई भी हो रही होगी। सब तरफ बुराई हो रही है। सब तरफ चोरी हो रही है, सब तरफ हिंसा हो रही है। अखबार देख कर लगता है कि शायद अपने से छोटा पापी जगत में कोई भी नहीं है। यह सब क्या हो रहा चारों तरफ? और चेहरे पर एक रौनक आ जाती है। यह सारी बुराई आप संचित कर रहे हैं, अपने भीतर। यह सारी बुराई आपके भीतर प्रवेश कर रही है।
अगर हमें एक अच्छी दुनिया बनानी हो और अच्छे आदमी का जन्म देना हो तो हमें भलाई संचित करनी चाहिए, भलाई की फिकर करनी चाहिए। और जब हम बुराई की चर्चा करते हैं तब हमें पता नहीं कि वह बुराई का संस्कार हम पर निर्मित होता चला जाता है। यह आदमी चोर है, वह आदमी चोर है, सारी दुनिया चोर है। जिस दिन आप चोरी करने जाते हैं भीतर आपको कुछ ऐसा नहीं लगता कि आप कुछ नया करने जा रहे हैं। सभी यही कर रहे हैं। चोरी की जड़ मजबूत होती है।
जब आप कहते हैं, फलां आदमी अच्छा है, ... जब आप चुनते हैं अच्छा तो आपके भीतर अच्छे की मूल्यवत्ता निर्मित होती है। और जब बुराई करने जाते हैं तो आपको लगता है, आप क्या कर रहे हैं! दुनिया में ऐसा कोई भी नहीं कर रहा है। तो महावीर कहते हैंः "अप्रिय मित्र की भी पीठ पीछे भलाई ही गाता हो।"
हम तो प्रिय मित्र की भी पीठ पीछे बुराई ही गाते हैं।
"किसी प्रकार का झगड़ा-फसाद न करता हो।"
झगड़ा-फसाद की एक वृत्ति होती है। कुछ लोग फसादी होते हैं। फसादी का मतलब यह कि आप ऐसा कोई कारण ही नहीं दे सकते उन्हें, जिसमें से वह झगड़ा न निकाल लें। वह झगड़ा निकाल ही लेंगे। झगड़ा निकालने की एक कला है, एक कुशलता है। कुछ लोग उसमें इतने कुशल हो जाते हैं कि वे किसी भी चीज में से झगड़ा निकाल लेते हैं।
मैं अपने एक मित्र को जानता हूं। उनके पिता बड़े अदभुत थे। ऐसे कुशल थे जिसका कोई हिसाब नहीं। अगर उनका बेटा नहा-धोकर, साफ-सुधरे कपड़े पहन कर दुकान पर आ जाए तो वह ग्राहकों को इकट्ठा कर लेते थे, कि देखो इनको, बाप मर गया कमा-कमा कर, ये मौज उड़ा रहे हैं। हमने कभी साबुन न देखी, आप देवी देवताओं को लजा रहे हैं। देखें।
तो मैंने उनके बेटे को कहा कि तू एक दिन बिना ही नहाए पहूंच जा, गंदे
ही कपड़े पहन कर पहुंच जा! क्यों उनको बार-बार कष्ट देता है। वह पहुंच गया। पिता ने फिर भीड़ इकट्ठी कर ली और कहा, देखो, जब मैं मर जाऊं तब इस हालत में घूमना। अभी मैं जिंदा हूं, अभी नहाओ धोओ, अभी ठीक से रहो।
फिर बहुत प्रयोग किए हमने, सब तरह के प्रयोग किए, लेकिन पिता को... उनकी कुशलता अपरिसीम थी। कुछ भी करो, उसमें से फसाद निकाला जा सकता है।
महावीर कहते हैंः "झगड़ा-फसाद न करता हो।"
नहीं तो सीख न पाएगा, जीवन को बदल न पाएगा। ऊर्जा नष्ट हो जाती है, इन मूढ़ताओं में। अपनी ही शक्ति नष्ट होती है, किसी और की नहीं। लेकिन व्यर्थ हो जाती है।
"बुद्धिमान हो।"
बुद्धिमानी का अर्थ ही है कि झगड़ा-फसाद न करता हो, जीवन-ऊर्जा का विध्वंसक उपयोग न करता हो, सृजनात्मक, क्रिएटिव उपयोग करता हो।
"अभिजात हो।"
अभिजात कीमती शब्द है। अरिस्टोक्रेटिक हो। बड़ा अजीब लगेगा, समाजवाद
की दुनिया है, वहां अरिस्टोक्रेसी कैसी? अभिजात्य। लेकिन महावीर के अर्थ में कुलीनता और अभिजात्य का अर्थ है, क्षुद्रता पर ध्यान न देता हो, शालीन हो। क्षुद्रताओं को नजर से बाहर कर देता हो, श्रेष्ठता पर ही ध्यान रखता हो। व्यर्थ को चुनता न हो और दूसरे में श्रेष्ठ होना चाहिए। इसकी तलाश करता हो।
अकुलीन का अर्थ होता है, जो पहले से मान कर बैठा है लोग बुरे हैं। कुलीन का अर्थ है, जो पहले से मान कर बैठा है कि लोग भले हैं। मूलतः कभी-कभी भले हो जाते हैं, यह बात और है।
कुलीन आदमी, अभिजात्य चित्त वाला व्यक्ति, दो दिनों के बीच में एक रात
को देखता है। अकुलीन व्यक्ति दो रातों के बीच में एक दिन को देखता है।
कुलीन व्यक्ति फूलों को गिनता हैं, कांटों को नहीं। और मानता है कि जहां

फूल होते हैं वहां थोड़े कांटे भी होते हैं। और उनसे कुछ हर्जा नहीं होता, कांटे भी फूल की रक्षा ही करते हैं।
अकुलीन चित्त कांटो की गिनती करता है, और जब सब कांटो को गिन लेता है
तो वह कहता है, एक दो फूल से होता भी क्या है। जहां इतने कांटे हैं, वहां एक दो फूल धोखा है।
कुलीन, अकुलीनता चुनाव का नाम है, आप क्या चुनते हैं? श्रेष्ठ का दर्शन आभिजात्य है, अश्रेष्ठ का दर्शन शूद्रता है।
"अभिजात हो, आंख की शर्म रखने वाला स्थिर वृत्ति हो।"
मैंने सुना है कि अकबर के तीन पदाधिकारियों ने राज्य को धोखा दिया। राज्य के खजाने को धोखा दिया। पहले पदाधिकारी को बुला कर अकबर ने कहाः तुमसे ऐसी आशा न थी! कहते हैं, उस आदमी ने उसी दिन सांझ जाकर आत्महत्या कर ली।
दूसरे आदमी को साल भर की सजा दी। तीसरे आदमी को पंद्रह वर्ष के लिए जेलखाने में डाला और सड़क पर नग्न करवा कर कोड़े लगवाए। मंत्री बड़े चिंतित हुए। जुर्म एक था, सजाएं बहुत भिन्न हो गईं।
अकबर से पूछा मंत्रियों नेः यह कुछ समझ में नहीं आता, यह न्याययुक्त नहीं मालूम होता। तीनों का जुर्म एक था। एक को आपने सिर्फ इतना कहा, तुमसे इतनी आशा न थी!
अकबर ने कहाः वह आंख की शर्म वाला आदमी था। इतना बहुत था। इतना भी जरूरत से ज्यादा था। सांझ उसने आत्महत्या कर ली।
दूसरे को आपने साल भर की सजा दी!
अकबर ने कहाः वह थोड़ी मोटी चमड़ी का है।
और तीसरे को नग्न करके कोड़े लगवाए, और जेल में डलवाया!
अकबर ने कहाः कि जाकर तीसरे से मिलो, तुम्हें समझ में आ जाएगा।
एक मंत्री भेजा गया जेलखाने में, जिसके कोड़े के निशान भी अभी नहीं मिटे थे, वह वहां बड़े मजे में था, और उसने कहा कि पंद्रह ही
वर्ष की तो बात है, और जितना मैंने खजाने से मार दिया, उतना पंद्रह वर्ष नौकरी करके भी तो नहीं मिल सकता था। और पंद्रह ही वर्ष की तो बात है फिर बाहर आ जाऊंगा। और इतना मार दिया है कि पीढ़ी दर पीढ़ी बच्चे मजा करें। कोई ऐसी चिंता की बात नहीं। फिर यहां भी ऐसी क्या तकलीफ!
मंत्रियों ने कहाः बड़े पागल हो, सड़क पर कोड़े खाए।
उस आदमी ने कहाः बदनामी भी हो तो नाम तो होता ही है। कौन जानता था हमको पहले। आज सारी दिल्ली में अपनी चर्चा है।

आज इतना ही।
पांच मिनट रुकें, कीर्तन करें।

महावीर-वाणी, भाग 1
सत्ताईसवां प्रवचन

मनुष्यत्वः बढ़ते हुए होश की धारा (चतुरंगीय-सूत्र)

चत्तारि परमंगणि, टुल्लहाणीह जंतुणो।
माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमम्मि य वीरियं।।
कम्माणं तु पहाणए, आणुपुव्वी क्याई उ।
जीवा सोहिमणुप्पत्ता, आययन्त्रि मणुस्सयं।।
माणुसत्तम्मि आयाओ, जो धम्मं सोच सद्दहे।
तवस्सी वीरियं लद्धुं, संबुडे निद्धुणे रयं।।

संसार में जीवों को इन चार श्रेष्ठ अंगों का प्राप्त होना बड़ा दुर्लभ है--मनुष्यत्व, धर्म-श्रवण, श्रद्धा और संयम के लिए पुरुषार्थ।
संसार में परिभ्रमण करते-करते जब कभी बहुत काल में पाप कर्मों का वेग क्षीण होता है और उसके फलस्वरूप अंतरात्मा क्रमशः शुद्धि को प्राप्त करता है, तब कहीं मनुष्य का जन्म मिलता है।
यथार्थ में मनुष्य जन्म उसे ही प्राप्त हुआ जो सद्धर्म का श्रवण कर
उस पर श्रद्धा लाता है और तदनुसार पुरुषार्थ कर आस्त्रव रहित हो अंतरात्मा पर से समस्त कर्म-रज को झाड़कर फेंक देता है।

पहले एक दो प्रश्न।
एक मित्र ने पूछा हैः "कहीं आपने कहा था, कोई भी बात, आपका चिंतन और बुद्धि से तालमेल न बैठ सके तो नहीं मानना, छोड़ देना। बात चाहे कृष्ण की हो या किसी की भी हो, या मेरी हो।"
आपकी बहुत सी बातें प्रीतिकर, श्रेष्ठतर मालूम होती हैं। उनसे जीवन में परिवर्तन करने का यथाशक्ति प्रयत्न भी करता हूं, लेकिन शिष्य-भाव संपूर्णतया ग्रहण करने की मेरी क्षमता नहीं है।
मै आपकी सूचनाओं से फायदा उठा रहा हूं। अगर मेरी कुछ प्रगति हुई तो किसी दिन कोई प्रार्थना लेकर, अगर शिष्य-भाव से रहित मैं आपके समक्ष उपस्थित हो जाऊं तो आप मेरी सहायता करेंगे या नहीं?
सतयुग में कृष्ण ने कहा था, "मामेकं शरणं ब्रज," सब छोड़ कर मेरी शरण में आ जा, इस युग में ऐसा कोई कहे तो कहां तक कार्यक्षम और उचित होगा?

इस संबंध में दो चार बातें समझ लेनी साधकों के लिए उपयोगी हैं।
पहली बात तो यह, अब भी मैं यही कहता हूं कि जो बात आपकी बुद्धि को उचित मालूम पड़े आपके विवेक से तालमेल खाए, उसे ही स्वीकार करना। जो न तालमेल खाए उसे छोड़ देना, फेंक देना। गुरु की तलाश में भी यह बात लागू है, लेकिन तलाश के बाद यह बात लागू नहीं है। सब तरह से विवेक की कोशिश करना, सब तरह से बुद्धि का उपयोग करना, सोचना-समझना। लेकिन जब कोई गुरु विवेकपूर्ण रूप से तालमेल खा जाए और आपकी बुद्धि कहने लगे कि मिल गई वह जगह, जहां सब छोड़ा जा सकता है, फिर वहां रुकना मत। फिर छोड़ देना। लेकिन अगर कोई यह सोचता हो कि एक बार किसी के प्रति शिष्य-भाव लेने पर फिर इंच-इंच अपनी बुद्धि को बीच में लाना ही है, तो उसकी कोई भी गति न हो पाएगी। उसकी हालत वैसी हो जाएगी जैसे छोटे बच्चे आम की गोई को जमीन में गाड़ देते हैं, फिर घड़ी-घड़ी जाकर देखते हैं कि अभी तक अंकुर फूटा या नहीं। खोदते हैं, निकालते हैं। उनकी गोई में कभी भी अंकुर फूटेगा नहीं। फिर जब गोई को गाड़ दिया, तो फिर थोड़ा धैर्य और प्रतीक्षा रखनी होगी। फिर बार-बार उखाड़ कर देखने से कोई भी गति और कोई अंकुरण नहीं होगा।
तो कृष्ण ने भी जब कहा है, "मामेकं शरणं ब्रज," तो उसका मतलब यह नहीं है
कि तू बिना सोचे-समझे किसी के भी चरणों में सिर रख देना। सब सोच-समझ, सारी बुद्धि का उपयोग कर लेना। लेकिन जब तेरी बुद्धि और तेरा विवेक कहे कि ठीक आ गई वह जगह, जहां सिर झुकाया जा सकता है, तो फिर सिर झुका देना।

इन दोनों बातों में कोई विरोध नहीं है। इन दोनों में विरोध दिखाई पड़ता है, विरोध नहीं है। और अर्जुन ने भी ऐसे ही सिर नहीं झुका दिया, नहीं तो यह सारी गीता पैदा नहीं होती। उसने कृष्ण की सब तरह परीक्षा कर ली, सब तरह, चिंतन, मनन, प्रश्न, जिज्ञासा कर ली। सब तरह के प्रश्न पूछ डाले, जो भी पूछा जा सकता था, पूछ लिया। तभी वह उनके चरणों में झुका है। लेकिन अगर कोई कहे कि यह जारी ही रखनी है खोज, तो फिर जिज्ञासा तक ही बात रुकी रहेगी और यात्रा कभी शुरू न होगी।
यात्रा शुरू करने का अर्थ ही यह है कि जिज्ञासा पूरी हूई। अब हम कोई निर्णय लेते हैं और यात्रा शुरू करते है। नहीं तो यात्रा कभी भी नहीं हो सकती।
तो, एक तो दार्शनिक का जगत है, वहां आप जीवन भर जिज्ञासा जारी रख सकते हैं। धार्मिक का जगत भिन्न है, वहां जिज्ञासा की जगह है, लेकिन प्राथमिक। और जब जिज्ञासा पूरी हो जाती है तो यात्रा शुरू होती है। दार्शनिक कभी यात्रा पर नहीं निकलता, सोचता ही रहता है।
धार्मिक भी सोचता है, लेकिन यात्रा पर निकलने के लिए ही सोचता है। और अगर यात्रा पर एक-एक कदम करके सोचते ही चले जाना है तो यात्रा कभी भी नहीं हो पाएगी। निर्णय के पहले चिंतन, निर्णय के बाद समर्पण।
इन मित्रों ने पूछा है कि "गुरु-पद की आपकी परिभाषा बड़ी अदभुत और हृदयंगम प्रतीत हुई, लेकिन शिष्य-भाव संपूर्णतया ग्रहण करने की मेरी क्षमता नहीं है।"
संपूर्णतया, किस बात को ग्रहण करने की क्षमता किसमें है? आदमी का मन
तो बंटा हुआ है, इसलिए हम सिर्फ एक स्वर को मान कर जीते हैं। संपूर्ण स्वर तो हमारे भीतर अभी पैदा नहीं हो सकता। वह तो होगा ही तब, जब हमारे भीतर सारे मन के खंड बिखर जाएं, अलग हो जाएं और एक चेतना का जन्म हो। वह चेतना अभी वहां है नहीं, इसलिए आप संपूर्णतया कोई भी निर्णय नहीं ले सकते। आप जो भी निर्णय लेते हैं, वह प्रतिशत निर्णय होता है। आप तय करते हैं, इस स्त्री से विवाह करता हूं, यह संपूर्णतया है? सौ प्रतिशत है? सत्तर प्रतिशत होगा, साठ प्रतिशत होगा, नब्बे प्रतिशत होगा। लेकिन दस प्रतिशत हिस्सा अभी भी कहता है कि मत करो, पता नहीं, क्या स्थिति बने।
आप जब भी कोई निर्णय लेते हैं, तभी आपका पूरा मन तो साथ नहीं हो सकता क्योंकि पूरा मन जैसी कोई चीज ही आपके पास नहीं है। आपका मन बंटा हुआ ही होगा। मन सदा ही बंटा हुआ है। मन खंड-खंड है। इसलिए बुद्धिमान आदमी इसकी प्रतीक्षा नहीं करता कि जब मेरा संपूर्ण मन राजी होगा तब मैं कुछ करूंगा। हां, बुद्धिमान आदमी इतनी जरूर फिकर करता है कि जिस संबंध में मेरा मन अधिक प्रतिशत राजी है, वह मैं करूंगा। मगर मैंने इधर अनुभव किया कि अनेक लोग यह सोच कर कि अभी पूरा मन तैयार नहीं है, अल्पमतीय मन के साथ निर्णय कर लेते हैं। निर्णय करना ही पड़ेगा, बिना निर्णय के रहना असंभव है। एक बात तय है, आप निर्णय करेंगे ही चाहे निषेध, चाहे विधेय।
एक आदमी मेरे पास आया और उन्होंने कहा कि मेरा साठ-सत्तर प्रतिशत मन
तो संन्यास का है, लेकिन तीस-चालीस प्रतिशत मन संन्यास का नहीं है। तो अभी मैं रुकता हूं, जब मेरा मन पूरा हो जाएगा तब मैं निर्णय करूंगा। मैंने उनसे कहाः निर्णय तो तुम कर ही रहे हो, रुकने का कर रहे हो। और रुकने के बाबत तीस-चालीस प्रतिशत मन है और लेने के बाबत साठ-सत्तर प्रतिशत मन है। तो तुम निर्णय अल्पमत के पक्ष में ले रहे हो। हालांकि उनका यही ख्याल था कि मैं अभी निर्णय लेने से रुक रहा हूं। आप निर्णय लेने से तो रुक ही नहीं सकते। निर्णय तो लेना ही पड़ेगा। उसमें कोई स्वतंत्रता नहीं है। हां, आप इस तरफ या उस तरफ निर्णय ले सकते हैं।
जब एक आदमी निर्णय लेता है कि अभी मै संन्यास नहीं ले रहा हूं तो वह सोचता है मैंने निर्णय अभी नहीं लिया है। निर्णय तो ले लिया। यह न लेना, निर्णय है। और न लेने के लिए तीस-चालीस प्रतिशत मन था और लेने के लिए साठ-सत्तर प्रतिशत मन था। इस निर्णय को मैं बुद्धिमानीपूर्ण नहीं कहूंगा। फिर एक और मजे की बात है कि जिसके पक्ष में आप निर्णय लेते हैं उसकी शक्ति बढ़ने लगती है। क्योंकि निर्णय समर्थन है। अगर आप तीस प्रतिशत मन के

पक्ष में निर्णय लेते हैं कि अभी संन्यास नहीं लूंगा तो यह निर्णय तीस प्रतिशत को कल साठ प्रतिशत कर देगा। और जो आज साठ प्रतिशत मालूम पड़ रहा था वह कल तीस प्रतिशत हो जाएगा। तो ध्यान रखना, जब संन्यास लेने का सत्तर प्रतिशत मन हो रहा था, तब आपने नहीं लिया, तो जब तीस प्रतिशत ही मन रह जाएगा, तब आप कैसे लेंगे। और एक बात तय है कि सौ प्रतिशत मन आपके पास है नहीं। अगर होता तब तो निर्णय लेने की कोई जरूरत भी नहीं।
सौ प्रतिशत मन का मतलब है कि एक स्वर आपके भीतर पैदा हो गया है। वह तो अंतिम घड़ी में पैदा होता है, जब समाधि को कोई उपलब्ध होता है। समाधि के पहले आदमी के पास सौ प्रतिशत निर्णय नहीं होता। छोटी बात हो या बड़ी, आज सिनेमा देखना है या नहीं, इसमें भी, और परमात्मा के निकट जाना है या नहीं, इसमें भी, आपके पास हमेशा बंटा हुआ मन होता है।
दूसरी बातः निर्णय आपको लेना ही पड़ेगा। इन मित्र ने कहा है, संपूर्णतया शिष्य-भाव ग्रहण करने की मेरी क्षमता नहीं है, लेकिन संपूर्णतया शिष्य-भाव से बचने की क्षमता है? अगर संपूर्णतया का ही मामला है तो संपूर्णतया शिष्य-भाव से बचने की क्षमता है? वह भी नहीं है। क्योंकि वह कहते हैं, किसी दिन मैं आपके पास आऊं प्रार्थना लेकर, कोई प्रश्न लेकर, तो आप मेरी सहायता करेंगे?
दूसरे से सहायता मांगने की बात ही बताती है कि संपूर्ण भाव से शिष्य
से बचना भी आसान नहीं है, संभव नहीं है। पर निर्णय आप ले ही रहे हैं। यह निर्णय शिष्यत्व के पक्ष में न लेकर शिष्यत्व के विपरीत ले रहे हैं; क्यों? क्योंकि शिष्यत्व के पक्ष में अहंकार को रस नहीं है। अहंकार को कठिनाई है। शिष्यत्व के विपरीत अहंकार को रस है।
उन मित्र से मैं कहना चाहूंगा, और सभी से, आप शिष्य-भाव से आएं, मित्र-भाव से आएं, गुरु-भाव से आएं, मैं आपकी सहायता करूंगा ही, लेकिन आप उस सहायता को ले नहीं पाएंगे। एक बर्तन नदी से कहे कि मैं ढक्कन बंद तेरे भीतर आऊं तो पानी तू देगी या नहीं? तो नदी कहेगी, पानी मैं दे ही रही हूं, तुम ढक्कन बंद करके आओ या खुला करके आओ।
लेकिन नदी का देना ही काफी नहीं है, पात्र को लेना भी पड़ेगा। शिष्यत्व
का मतलब कुल इतना ही है कि पात्र लेने को आया है। उतनी तैयारी है सीखने की। और तो कोई अर्थ नहीं है शिष्यत्व का।
भाषा बड़ी दिक्कत में डाल देती है। भाषा में ऐसा लगता है, ठीक सवाल है। अगर मैं बिना शिष्य-भाव लिए आपके पास आऊं, बिना शिष्य-भाव लिए आपके पास आ कैसे सकते हैं? पास आने का मतलब ही शिष्य-भाव होगा। फिजिकली, शरीर से पास आ जाएंगे, लेकिन अंतस से पास नहीं आ पाएंगे। और बिना शिष्य-भाव लिए आने का अर्थ है कि सीखने की तैयारी मेरी नहीं है, फिर भी आप मुझे सिखाएंगे या नहीं? मैं खुला नहीं रहूंगा, फिर भी आप मेरे ऊपर वर्षा करेंगे या नहीं? वर्षा क्या करेगी? पात्र अगर बंद हो, उलटा हो! बुद्ध ने कहा है, कुछ पात्र वर्षा में भी खाली रह जाते हैं, क्योंकि वे उलटे जमीन पर रखे होते हैं। वर्षा क्या करेगी? झीलें भर जाएंगी, छोटा-सा पात्र खाली रह जाएगा। शायद पात्र यही सोचेगा कि वर्षा पक्षपातपूर्ण है, मुझे नहीं भर रही है। लेकिन उलटे पात्र को भरना वर्षा के भी सामर्थ्य के बाहर है।
आज तक कोई गुरु उलटे पात्र में कुछ भी नहीं डाल सका है। वह संभव नहीं है। वह नियम के बाहर है। उलटे पात्र का मतलब ही यह है कि आपकी तैयारी पूरी है कि न डालने देंगे।
आपकी इच्छा के विपरीत कुछ भी नहीं डाला जा सकता है, और उचित भी है कि आपकी इच्छा के विपरीत कुछ भी न डाला जा सके, अन्यथा आपकी स्वतंत्रता नष्ट हो जाएगी। अगर आपकी इच्छा के विपरीत कुछ डाला जा सके तो आदमी फिर गुलाम होगा। आपकी स्वेच्छा आपको खोलती है। आपकी विनम्रता आपके पात्र को सीधा रखती है। आपका शिष्य-भाव, आपकी सीखने की आकांक्षा, आपके ग्रहण भाव को बढ़ाती है।
सहायता तो मैं करूंगा ही, लेकिन सहायता होगी कि नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। सहायता पहुंचेगी या नहीं पहुंचेगी, यह नहीं कहा जा सकता। सूरज तो निकलेगा ही, लेकिन आपकी आंखे बंद होगी तो सूरज आपकी आंखों को खोल नहीं

सकता। आंखें खुली होंगी तो प्रकाश मिल जाएगा, आंखें बंद होंगी तो प्रकाश बंद रह जाएगा।
इन मित्र को अगर हम ऐसा कहें तो ठीक होगा। वह सूरज से कहे कि अगर मै बंद आंखे तुम्हारे पास आऊं तो मुझे प्रकाश दोगे कि नहीं? सूरज कहेगा, प्रकाश तो दिया ही जा रहा है, मेरा होना ही प्रकाश का देना है। उस संबंध में कोई शर्त नहीं है। लेकिन अगर तुम्हारी आंखें बंद होंगी तो प्रकाश तुम तक पहुंचेगा नहीं। प्रकाश आंख के द्वार पर आकर रुक जाएगा। सहायता बाहर पड़ी रह जाएगी। वह भीतर तक कैसे पहुंचेगी? भीतर तक पहुंचने की जो ग्रहणशीलता है, उसी का नाम शिष्यत्व है।
उन मित्र ने पूछा है कि कृष्ण ने कहा था कभीः "मामेकं शरणं ब्रजं।" आज कोई कहेगा तो कार्यक्षम होगा कि नहीं?
जिन्हें सीखने की अभीप्सा है, उन्हें सदा ही कार्यक्षम होगा, और जिन्हें सीखने की क्षमता नहीं है, उन्हें कभी कार्यक्षम नहीं होगा। उस दिन भी कृष्ण अर्जुन से कह सके, दुर्योधन से कहने का कोई उपाय नहीं था। उस दिन भी।
सतयुग और कलियुग युग नहीं हैं, आपकी मर्जी का नाम है। आप अभी सतयुग में हो सकते हैं, दुर्योधन तब भी कलियुग में था। व्यक्ति की अपनी वृत्तियों के नाम हैं।
अगर सीखने की क्षमता है तो कृष्ण का वाक्य आज भी अर्थपूर्ण है। नहीं
है क्षमता तो उस दिन भी अर्थपूर्ण नहीं था। सीखने की क्षमता बड़ी कठिन बात है। सीखने का हमारा मन नहीं होता। अहंकार को बड़ी चोट लगती है।
कल एक मित्र दो विदेशी मित्रों को साथ लेकर मेरे पास आ गए थे, पति पत्नी थे दोनों। और दोनों ईसाई धर्म के प्रचारक हैं। आते ही उन मित्रों ने कहा कि आई बिलीव इन दि ट्रू गॉड। मेरा सच्चे ईश्वर में विश्वास है। मैने उनसे पूछा कि कोई झूठा ईश्वर भी होता है? ईश्वर में विश्वास है, इतना ही कहना काफी है, सच्चा और क्यों? हर वाक्य के साथ वे बोलते थे, आई बिलीव इन दिस, वाक्य ही शुरू होता था, आई बिलीव इन दिस, मेरा इसमें विश्वास है। मैंने उनसे पूछा कि जब आदमी जानता है तो विश्वास की भाषा नहीं बोलता। कोई नहीं कहता कि सूरज में मेरा विश्वास है। अंधे कह सकते हैं।
अज्ञान विश्वास की भाषा बोलता है। विश्वास की भाषा आस्था की भाषा नहीं है। आस्था बोली नहीं जाती, आस्था की सुंगध होती है जो बोला जाता है, उसमें से आस्था झलकती है। आस्था को सीधा नहीं बोलना पड़ता।
तो मैंने उनसे कहा कि हर वाक्य में यह कहना कि मेरा विश्वास है, बताता
है कि भीतर गहरा अविश्वास है। इसमें से किसी भी चीज का आपको कोई पता नहीं है। फिर वे चौंक गए। तब उन्होंने अपने दरवाजे बंद कर लिए। फिर उन्होंने मुझे सुनना बंद कर दिया। खतरा है। फिर वे जोर-जोर से बोलने लगे, ताकि मैं जो बोल रहा हूं, वह उन्हें सुनाई ही न पड़े। मैं बोलता था, तब भी वे बोल रहे हैं। फिर वे अनर्गल बोलने लगे। क्योंकि जब द्वार कोई बंद कर लेता है तो संगतियां खो जाती हैं। फिर तो बड़ी मजेदार बातें हुईं। वे कहने लगे, ईश्वर प्रेम है। मैंने उनसे पूछा, फिर घृणा कौन है? तो वे कहने लगे, शैतान है। मैंने पूछा, शैतान को किसने बनाया? उन्होंने कहा, ईश्वर ने। तो फिर मैंने कहा, सच्चा पापी कौन है? शैतान घृणा बनाता है, ईश्वर शैतान को बनाता है। फिर असली, कल्पित, असली उपद्रवी, कौन है। फिर तो ईश्वर ही फंसेगा। और अगर ईश्वर ही शैतान को बनाता है तो तुम कौन हो शैतान के खिलाफ जाने वाले? और जा कैसे पाओगे? मगर नहीं, फिर तो उन्होंने सुनना-समझना बिल्कुल बंद कर दिया। उन्होंने होश ही खो दिया।
हम अपने मन को बिल्कुल बंद कर ले सकते हैं। और जिन लोगों को वहम हो जाता है कि वे जानते हैं--वहम। उनके मन बंद हो जाते हैं।
शिष्य-भाव का अर्थ है, अज्ञानी के भाव से आना। शिष्य-भाव का अर्थ है, मैं नहीं जानता हूं और इसलिए सीखने आ रहा हूं। मित्र-भाव का अर्थ है कि हम भी जानते हैं, तुम भी जानते हो, थोड़ा लेन-देन होगा। गुरु-भाव का अर्थ है, तुम नहीं जानते हो, मैं जानता हूं, मैं सिखाने आ रहा हूं।

अहंकार को बड़ी कठिनाई होती है सीखने में। सीखना बड़ा अप्रीतिकर मालूम पड़ता है। इसलिए कृष्ण का वचन ऐसा लगेगा कि इस युग के लिए नहीं है। लेकिन युग की क्यों चिंता करते हैं? असल में मेरे लिए नहीं, ऐसा लगता होगा। इसलिए युग की बात उठती है। मेरे लिए नहीं। लेकिन, अगर मेरे लिए नहीं है तो फिर मुझे दूसरे से सीखने की बात ही छोड़ देनी चाहिए।
दो ही उपाय हैं, सीखना हो तो शिष्य-भाव से ही सीखा जा सकता है। न सीखना
हो तो फिर सीखने की बात ही छोड़ देनी चाहिए। दो में से कोई एक विकल्प है, या तो मैं सीखूंगा ही नहीं, ठीक है, अपने अज्ञान से राजी हूं। अपने अज्ञान से राजी रहूंगा। कोशिश करता रहूंगा अपनी, कुछ हो जाएगा तो हो जाएगा, नहीं होगा, तो नहीं होगा लेकिन दूसरे के पास सीखने नहीं जाऊंगा। यह भी आनेस्ट है, यह भी बात ईमानदारी की है। या जब दूसरे के पास सीखने जाऊंगा तो फिर सीखने का पूरा भाव लेकर जाऊंगा। यह भी बात ईमानदारी की है। लेकिन, हमारे युग की कोई खूबी है कलियुग की, तो वह है बेईमानी। बेईमानी का मतलब यह है कि हम दोनों नाव पर पैर रखेंगे। मुझे एक मित्र बार-बार पत्र लिखते हैं कि मुझे आपसे संन्यास लेना है, लेकिन आपको मैं गुरु नहीं बना सकता।
तो फिर मुझसे संन्यास क्यों लेना है? गुरु बनाने में क्या तकलीफ आ रही है? और अगर तकलीफ आ रही है तो संन्यास लेना क्यों? खुद को ही संन्यास दे देना चाहिए। किसी से क्यों लेना? कौन रोकेगा तुम्हें? दे दो अपने को संन्यास। लेकिन तब भीतर का खालीपन भी दिखाई पड़ता है, अज्ञान भी दिखाई पड़ता है, तो उसके भरने के लिए किसी से सीखना भी है, और यह भी स्वीकार नहीं करना है कि किसी से सीखा है।
कोई हर्जा नहीं है। स्वीकृति का कोई गुरु को मोह नहीं होता कि आप स्वीकार करें कि उससे सीखा है। लेकिन स्वीकृति की जिसकी तैयारी नहीं है वह सीख ही नहीं पाता। अड़चन वहां है। इसलिए कृष्णमूर्ति का आकर्षण बहुत कीमती हो गया, क्योंकि हमारी बेईमानी के बड़े अनुकूल हैं। कृष्णमूर्ति के आकर्षण का कुल कारण इतना है कि हमारी बेईमानी के अनुकूल हैं। कृष्णमूर्ति कहते हैं, मैं तुम्हारा गुरु नहीं, मैं तुम्हें सिखाता नहीं। यह भी कहते हैं कि मैं जो बोल रहा हूं, वह कोई शिक्षा नहीं है, संवाद है। तुम सुनने वाले, मैं बोलने वाला, ऐसा नहीं है, एक संवाद है हम दोनों का। तो कृष्णमूर्ति को लोग चालीस साल से सुन रहे हैं। उनकी खोपड़ी में कृष्णमूर्ति के शब्द भर गए हैं। वे बिल्कुल ग्रामोफोन रिकार्ड हो गए हैं। वे वही दोहराते हैं, जो कृष्णमूर्ति कहते हैं। सीखे चले जा रहे हैं उनसे, फिर भी यह नहीं कहते कि हमने कुछ सीखा है। एक देवी उनसे बहुत कुछ सीख कर बोलती रहती हैं। बहुत मजेदार घटना घटी है। उन देवी को कृष्णमूर्ति के ही मानने वाले लोग यूरोप-अमरीका ले गए। उनके ही मानने वाले लोगों ने उनकी छोटी गोष्ठियां रखीं। वे लोग बड़े हैरान हुए, क्योंकि वह देवी बिल्कुल ग्रामोफोन रिकार्ड हैं। वह वही बोल रही हैं जो कृष्णमूर्ति बोलते हैं। लेकिन कोई कितना ही ग्रामोफोन रिकार्ड हो जाए, कार्बनकापी हो होता है। ओरिजिनल तो हो नहीं सकता, कोई उपाय नहीं है।
तो जिन मित्रों ने सुना, उन्होंने कहा कि आप ठीक कृष्णमूर्ति की ही बात कह रही हैं, आप उनका ही प्रचार कर रही हैं, तो उनको बड़ा दुख हुआ। उन्होंने कहा, मैं उनका प्रचार नहीं कर रही हूं, यह तो मेरा अनुभव है। उन मित्रों ने कहा, इसमें एक शब्द आपका नहीं है, यह आपका अनुभव कैसा! चुकता उधार है।
तो उन देवी ने बड़ी कुशलता की। वह कृष्णमूर्ति के पास गईर्ं। उन देवी
ने ही मुझे सब बताया है। कृष्णमूर्ति के पास गईं और कृष्णमूर्ति से उन्होंने कहा कि आप कहिए, लोग कहते हैं कि जो भी मैं बोल रही हूं वह मैं आपसे सीख कर बोल रही हूं। और मैं तो अपने भीतरी अनुभव से बोल रही हूं। तो आप मुझे बताइए कि मैं आपकी बात बोल रही हूं कि अपने भीतरी अनुभव से बोल रही हूं? तो कृष्णमूर्ति जैसा विनम्र आदमी क्या कहेगा? कृष्णमूर्ति ने कहा कि बिल्कुल ठीक है। अगर तुम्हें लगता है, तुम्हारे अनुभव से बोल रही हो तो बिल्कुल ठीक है।

यह सर्टिफिकेट हो गया। अब वह देवी कहती फिरती हैं कि कृष्णमूर्ति ने खुद कहा है कि तुम अपने अनुभव से बोल रही हो।
तुम्हारे अनुभव के लिए भी कृष्णमूर्ति के सर्टिफिकेट की जरूरत है, तभी वह प्रामाणिक होता है। शब्द कृष्णमूर्ति के, प्रमाण-पत्र, कृष्णमूर्ति का, और इतनी विनम्रता भी नहीं कहने की कि मैंने तुमसे कुछ सीखा है। यह है हमारी बेईमानी।
लेकिन मैं आपसे कहता हूं कि चालीस साल नहीं पचास साल कृष्णमूर्ति को कोई सुनता रहे, जो शिष्य-भाव से सुनने नहीं गया है वह कुछ भी सीख नहीं पाएगा। शब्द सीख लेगा। उसके अंतस में कोई क्रांति घटित नहीं होगी। क्योंकि जिसके अंतस में अभी इतनी विनम्रता भी नहीं है कि जिससे सीखा हो उसके चरणों में सिर रख सके, चरणों में सिर रखने की बात दूर है, जो इतना कह सके कि मैंने किसी से सीखा है। इतना भी जिसका विनम्र भाव नहीं है, उसके भीतर कोई क्रांति नहीं हो सकती। उसके चारों तरफ पत्थर की दीवाल खड़ी है अहंकार की। भीतर तक कोई किरण पहूंच नहीं सकती। हां, शब्द हो सकते हैं जो दीवार पर टंक जाएंगे, खुद जाएंगे पत्थर पर, लेकिन उनसे कोई हृदय रूपांतरित नहीं होता।
यह बड़े मजे की बात है, यह तो उचित है कि गुरु कहे कि मैं तुम्हारा गुरु नहीं। यह उचित नहीं है कि शिष्य कहे, मैं तुम्हारा शिष्य नहीं। क्यों? क्योंकि इन दोनों के बीच औचित्य का एक ही कारण है। अगर गुरु कहे, मै तुम्हारा गुरु हूं तो यह भी अहंकार की भाषा है। और शिष्य अगर कहे कि मै तुम्हारा शिष्य नहीं तो यह भी अहंकार की भाषा है।
गहरा तालमेल तो वहां खड़ा होता है, जहां गुरु कहता है, मैं कैसा गुरु!
और जहां शिष्य कहता है, मैं शिष्य हूं। वहां मिलन होता है। लेकिन हम हैं बेईमान। जब गुरु कहता है, मैं तुम्हारा गुरु नहीं, तब वह इतना ही कह रहा है कि मेरा अहंकार तुम्हारे ऊपर रखने की कोई भी जरूरत नहीं है। हम बड़े प्रसन्न होते हैं। तब हम कहते हैं, बिल्कुल ठीक, जब तुम ही गुरु नहीं हो, तो हम कैसे शिष्य! बात ही खत्म हो गई।
हम या तो ऐसे गुरु को मानते हैं जो चिल्ला कर हमारी छाती पर खड़े होकर कहे कि मैं तुम्हारा गुरु हूं। या तो हम उसको मानते हैं--वैसा गुरु व्यर्थ है, जो आपसे चिल्लाकर कहता है कि मैं तुम्हारा गुरु हूं। जिसको अभी यह भाव भी नहीं मिटा कि जो दूसरे को सिखाने में भी अपने अहंकार का पोषण कर रहा हो, वह गुरु होने के योग्य नहीं है। इसलिए जो गुरु कहे, मैं तुम्हारा गुरु हूं वह गुरु होने के योग्य नहीं है। जो गुरु कहे, मैं तुम्हारा गुरु नहीं वह गुरु होने के योग्य है।
लेकिन जो शिष्य कहे, मैं शिष्य नहीं हूं, वह शिष्य होने के योग्य नहीं
रह जाता। जो शिष्य है पूरे भाव से, पूरे भाव का मतलब, जितना मेरी सामर्थ्य है, उतना। पूरे का मतलब, संपूर्ण नहीं; पूरे का मतलब, जितनी मेरी सामर्थ्य है। मेरे अत्याधिक मन से मैं समर्पित हूं।
ऐसा शिष्य और ऐसा गुरु... गुरु जो इनकार करता हो गुरुत्व से, शिष्य जो स्वीकार करता हो शिष्यत्व को, इन दोनों के बीच सामीप्य घटित होता है। वह जो निकटता कल महावीर ने कही, वह ऐसे समय घटित होती है। और तब है मिलन, जब सूरज जबरदस्ती किरणें फेंकने को उत्सुक नहीं, चुपचाप फेंकता रहता है। और जब आंखें, जबरदस्ती आंखे बंद करके सूरज को भीतर ले जाने की पागल चेष्टा नहीं करतीं, चुपचाप खुली रहती हैं। आंखें कहती हैं, हम पी लेंगे प्रकाश को, और सूरज को पता ही नहीं कि वह प्रकाश दे रहा है, तब मिलन घटित होता है। अगर सूरज कहे कि मैं प्रकाश दे रहा हूं, तो आक्रमण हो जाता है। और शिष्य अगर कहे कि मैं प्रकाश लूंगा नहीं, तुम दे देना, तो सुरक्षा शुरु हो जाती है। सुरक्षित शिष्य तक कुछ भी नहीं पहुंचाया जा सकता। दिया जा सकता है, पहुंचेगा नहीं।
एक बात समझ लेनी चाहिए, जो मुझे पता नहीं है, उसे जानने के दो ही उपाय हैं, या तो मैं खुद कोशिश करता रहूं, वह भी आसान नहींं है, अति कठिन है वह भी। या फिर मैं किसी का सहारा ले लूं। वह भी आसान नहीं है, अति कठिन है वह भी।

अपने ही पैरों जो चलने की तैयारी हो, तो फिर संकल्प की साधनाएं हैं, समर्पण की नहीं। तब कितना ही अज्ञान में भटकना पड़े, तब सहायता से बचना है, सहायता की खोज में नहीं जाना है। क्योंकि सहायता की खोज में जाने का मतलब ही है, समर्पण की शुरुआत हो गई। तब कहीं से सहायता मिलती हो तो द्वार बंद कर लेना है। कहना है कि मर जाऊंगा, सड़ जाऊंगा, अपने ही भीतर; लेकिन कहीं कोई सहायता लेने नहीं जाऊंगा।
इसे हिम्मत से पूरा करना, यह बड़ा कठिन मामला है। अति कठिन है। कभी-कभी
यह होता है, कभी-कभी यह हो जाता है। लेकिन अति कठिन है, दुरुह है। या फिर सहायता लेनी है तो फिर समर्पण का भाव होना चाहिए, फिर संकल्प छोड़ देना चाहिए। जो संकल्प और समर्पण दोनों की नाव पर खड़ा होता है, वह बुरी तरह डूबेगा। और हम सब दोनों नाव पर खड़े हैं। इसलिए कहीं पहूंचते नहीं, सिर्फ घसिटते हैं। क्योंकि दोनों नावों के यात्रा-पथ अलग हैं और दोनों नावों की साधना पद्धतियां अलग हैं; और दोनों नावों की पूरी भाव-दशा अलग है। इसे ख्याल रखें।
अब सूत्र।
महावीर ने कहा हैः "संसार में जीवों को इन चार श्रेष्ठ अंगों का प्राप्त होना बड़ा दुर्लभ है--मनुष्यत्व, धर्म-श्रवण, श्रद्धा और संयम के लिए पुरुषार्थ।"
मनुष्यत्व का अर्थ केवल मनुष्य हो जाना नहीं है। ऐसे तो वह अर्थ भी अभिप्रेत है। मनुष्य की चेतना तक पहुंचना भी एक लंबी, बड़ी लंबी यात्रा है। वैज्ञानिक कहते हैं, विकास है, और पहला प्राणी समुद्र में पैदा हुआ है और मनुष्य तक आया। मछली से मनुष्य तक बड़ी लंबी यात्रा है, करोड़ों वर्ष लगे हैं। डार्विन के बाद भारतीय धर्मों की गरिमा बहुत निखर जाती है। डार्विन के पहले ऐसा लगता था कि यह बात काल्पनिक है कि आदमी तक पहुंचने में लाखों- लाखों वर्ष लगते हैं। क्योंकि पश्चिम में ईसाइयत ने एक ख्याल दिया जो कि बुनियादी रूप से अवैज्ञानिक है। वह था, विकास विरोधी दृष्टिकोण, कि परमात्मा ने सब चीजें बनाईर्ं, बना दी। आदमी बना
दिया, घोड़े बना दिए, जानवर बना दिए। एक छह दिन में सारा काम पूरा हो गया और सातवें दिन हॉली-डे। परमात्मा ने विश्राम किया। छह दिन में सारी सृष्टि बना दी। यह बचकाना ख्याल है। और सब चीजें बना दीं। तो फिर विकास का कोई सवाल नहीं रहा, आदमी बन गया। विकास का कोई सवाल न रहा, आदमी जैसा बना दिया।
भारतीय धर्म इस लिहाज से बहुत गहरे और वैज्ञानिक हैं। डार्विन के बहुत पहले भारत जानता रहा है कि चीजें निर्मित नहीं हुई। विकसित, हर चीज विकसित हो रही है। आदमी
आदमी की तरह पैदा नहीं हुआ। आदमी पशुओं में, पौधों में से विकसित होकर आया है। लेकिन भारत की धारणा थी कि आत्मा विकसित हो रही है, चेतना विकसित हो रही है। डार्विन ने पहली दफा पश्चिम में ईसाइयत को धक्का दे दिया और कहा कि विकास है। सृजन नहीं हुआ, विकास हुआ है। तो क्रिएशन की बात गलत है, एवोल्यूशन की बात सही है। सृष्टि कभी बनी नहीं, सृष्टि निरंतर बन रही है। सृष्टि एक क्रम है बनने का। यह कोई पूरा नहीं हो गया है, इतिहास समाप्त नहीं हो गया। कहानी का अंतिम अध्याय लिख नहीं दिया गया, लिखा जाने को है। हम मध्य में है। और पीछे बहुत कुछ हुआ है और आगे शायद उससे भी अनंतगुना, बहुत कुछ होगा।
लेकिन डार्विन था वौज्ञानिक, इसलिए उसके लिए चेतना का तो कोई सवाल नहीं था। उसने मनुष्य के शरीर के अध्ययन से तय किया कि यह शरीर भी विकसित हुआ है। यह शरीर भी धीरे-धीरे क्रम में लाखों साल के यहां तक पहुंचा है। तो डार्विन ने आदमी के शरीर का सारा विश्लेषण किया और पशुओं के शरीर का अध्ययन किया और तय किया कि पशु और आदमी के शरीर में क्रमिक संबंध है। बड़ा दुखद लगा लोगों को, कम मे कम पश्चिम में ईसाइयत को तो बहुत पीड़ा लगी; क्योंकि ईसाइयत सोचती थी कि ईश्वर ने आदमी को बनाया। और डार्विन ने कहा कि यह आदमी जो है, बंदर का विकास है। कहां ईश्वर था पिता और कहां बंदर सिद्ध हुआ पिता! बहुत दुखद था।

लेकिन, तथ्य तथ्य हैं और दुखद भी, हमारी दृष्टि पर निर्भर है। अगर ठीक
से हम समझें तो पहली बात ज्यादा दुखद है कि ईश्वर से पैदा हुआ आदमी, और यह हालत है आदमी की! यह ज्यादा दुखद है। क्योंकि ईश्वर से आदमी पैदा हुआ तो यह पतन है। अगर बंदर से आदमी पैदा हुआ तो यह बात दुखद नहीं है सुखद है, क्योंकि आदमी थोड़ा विकसित हुआ। पिता से नीचे गिर जाना अपमानजनक है, पिता से आगे जाना प्रीतिकर है। यह दृष्टिकोण पर निर्भर है।
लेकिन डार्विन ने शरीर के बाबत सिद्ध कर दिया है कि शरीर क्रमशः विकसित हो रहा है। और आज भी आदमी के शरीर में पशुओं के सारे लक्षण मौजूद हैं। आज भी आप चलते हैं तो आपके बाएं पैर के साथ दायां हाथ हिलता है, हिलने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन कभी आप चारो हाथ पैर से चलते थे, उसका लक्षण है। कोई जरूरत नहीं है, आप दोनों हाथ रोक कर चल सकते है, दोनों हाथ काट दिए जाएं तो भी चल सकते हैं। चलने में दोनों हाथों से कोई लेना देना नहीं है। लेकिन जब बायां पैर चलता है तो दायां हाथ आगे जाता है, जैसा कि कुत्ते का जाता है, बंदर का जाता है, बैल का जाता है। वह चार से चलता है, आप दो से चलते है; लेकिन आप चार से कभी चलते रहे हैं, इसकी खबर देता है। वह दो हाथों की बुनियादी आदत अब भी अपने पैर के साथ चलने की है।
आदमी के सारे अंग पशुओं से मेल खाते हैं, थोड़े बहुत हेर-फेर हुए हैं, लेकिन वह हेर-फेर उन्हीं के ऊपर हुए; बहुत फर्क नहीं हुआ। जब आप क्रोध में आते हैं तो अभी भी दांत पीसते हैं। कोई जरूरत नहीं है। जब आप क्रोध में आते हैं तो आपके नाखून नोचने, फाड़ने को उत्सुक हो जाते हैं। आपकी मुट्ठियां बंध जाती हैं। वह लक्षण है कि कभी आप नाखून और दांत से हमला करते रहे हैं। अब भी वही है, अब भी कोई फर्क नहीं पड़ा है। अब जिस बात की जरूरत नहीं रह गई है, लेकिन वह भी काम करती है।
जब क्रोध आता है... पश्चिम का एक बहुत विचारशील आदमी था अलेक्जेंडर। उसने कहा है, क्रोध जब आता है तो अपनी टेबल के नीचे दोनों हाथ बांध कर, अगर जोर से मुट्ठी बांध कर पांच बार खोली जाए तो क्रोध विलीन हो जाए। करके आप देखना, वह सही कहता है।
क्या होगा, जब आप जोर से मुट्ठी बांधेंगे और पांच बार खोलेंगे टेबल के नीचे। आप अचानक पाएंगे, कि अब सामने के आदमी पर क्रोध करने की कोई जरूरत नहीं, वह विलीन हो गया। क्योंकि शरीर की आदत पूरी हो गई। क्रोध पैदा होता है, एड्रीनल, और दूसरे रस शरीर में छूटते हैं, वह हाथ के फैलाव और सिकोड़ से विकसित हो जाते हैं बाहर निकल जाते हैं। आप हलके हो जाते हैं। आपको पता है, आज भी आपके पेट में कोई जरा गुदगुदा दे तो हंसी छूटती है। और कहीं क्यों नहीं छूटती? गले में छूटती है, पेट में छूटती है। और कहीं क्यों नहीं छूटती?
डार्विन ने बताया है कि पशुओं के वे हिस्से, जिनको पकड़ कर हमला किया जाता है, संवेदनशील होने चाहिए, नहीं तो पशु मर जाएगा। आज आपके पेट पर कोई हमला नहीं कर रहा है, लेकिन छूने से आप सजग हो जाते हैं क्योंकि वह खतरनाक जगह है। कभी आप वहीं पकड़ कर, या पकड़े जाकर हमला किए जाते थे। वहीं हिंसा होती थी। जहां से आपके प्राण लिए जा सकते हैं, मुंह से पकड़ कर, वे हिस्से संवेदनशील हैं। इसलिए आपको गुदगुदी छूटती है। गुदगुदी का मतलब है कि बहुत सेंसिटिव है जगह। जरा सा स्पर्श, और बेचैनी शुरू हो जाती है।
शरीर के अध्ययन से सिध्द हुआ है कि आदमी पशुओं के साथ जुड़ी हुई एक कड़ी है। शरीर के लिहाज से। लेकिन डार्विन ने आधा काम पूरा कर दिया। और पश्चिम में डार्विन के बाद ही महावीर, बुद्ध और कृष्ण को समझा जा सकता था। उसके पहले नहीं। जब शरीर भी विकसित होता है तो महावीर की बात सार्थक मालूम पड़ती है कि यह चेतना जो भीतर है, यह भी विकसित हुई है। यह भी अचानक पैदा नहीं हो गई है। यह कोई एक्सीडेंट नहीं है, एक लंबा विस्तार है। यह भी विकसित हुई है। इसका भी विकास हुआ है पशुओं से, पौधों से हम आदमी तक आए। इसका मतलब हुआ कि दोहरे विकास चल रहे हैं। शरीर विकसित हो रहा है, चेतना विकसित हो रही है; दोनों विकसित होते जा रहे हैं।

मनुष्य अब तक इस पृथ्वी पर सबसे ज्यादा विकसित प्राणी है। उसके पास सर्वाधिक चेतना है और सबसे ज्यादा संयोजित शरीर है। इसलिए महावीर कहते हैं, मनुष्य होना दुर्लभ है।
आप शिकायत भी तो नहीं कर सकते, अगर आप कीड़े-मकोड़े होते तो किससे कहने जाते कि मैं मनुष्य क्यों नहीं हूं! और आपके पास क्या उपाय है कि अगर आप कीड़े-मकोड़े होते तो मनुष्य हो सकते। यह मनुष्य होना इतनी बड़ी घटना है, लेकिन हमारे ख्याल में नहीं आती क्योंकि हम हैं।
काफ्का ने एक कहानी लिखी है कि एक आदमी--एक पादरी रात सोया। और सपने में उसे ऐसा लगा कि वह एक कीड़ा हो गया। लेकिन सपना इतना गहन था कि उसे ऐसा भी नहीं लगा कि सपना देख रहा है, लगा कि वह जाग गया है, वस्तुतः कीड़ा हो गया। तब उसे घबड़ाहट छूटी। तब उसे पता चला कि अब क्या होगा? अपने हाथों की तरफ देखा, वहां हाथ नहीं, कीड़े की टांगे हैं। अपने शरीर की तरफ देखा, वहां आदमी का शरीर नहीं, कीड़े की देह है। भीतर तो चेतना आदमी की है, चारों तरफ कीड़े की देह है। तब वह पछताने लगा कि अब क्या होगा। आदमी की भाषा अब समझ में नहीं आती, क्योंकि कान कीड़े के हैं। चारों तरफ का जगत अब बिल्कुल बेबूझ हो गया, क्योंकि आंखें कीड़े की हैं और भीतर होश रह गया थोड़ा सा कि मैं आदमी हूं। तब उसे पहली दफा पता चला कि मैंने कितना गंवा दिया। आदमी रह कर मैं क्या-क्या जान सकता था, अब कभी भी न जान सकूंगा। अब कोई उपाय न रहा। अब वह तड़पता है, चीखता है, चिल्लाता है, लेकिन कोई नहीं सुनता। उसकी पत्नी पड़ोस से गुजर रही है, उसका पिता पास से गुजर रहा है, लेकिन उस कीड़े की कौन सुनता है। उसकी भाषा उनकी समझ में नहीं आती। वे क्या कह रहे हैं, क्या सुन रहे हैं, उसकी समझ में नहीं आता। उसका संताप हम समझ सकते हैं। थोड़ी कल्पना करेंगे, अपने को ऐसी जगह रखेंगे तो उसका संताप हम समझ सकते हैं। इसलिए महावीर ने कहा है, प्राणियों के प्रति दया। उनका संताप समझो। उनके पास भी तुम्हारी जैसी चेतना है, लेकिन शरीर बहुत अविकसित है। उनकी पीड़ा समझो। एक चींटी को ऐसे ही पैर दबा कर मत निकल जाओ। तुम्हारे ही जैसी चेतना है वहां। शरीर भर अलग है। तुम जैसा ही विकसित हो सके, ऐसा ही जीवन है वहां, लेकिन उपकरण नहीं है। चारों तरफ, शरीर क्या है, उपकरण है।
इसलिए जीव दया पर महावीर का इतना जोर है। वह सिर्फ अहिंसा के कारण नहीं। उसके कारण बहुत गहरे आध्यात्मिक हैं। वह जो तुम्हारे पास चलता हुआ किड़ा है, वह तुम ही हो। कभी तुम भी वही थे। कभी तुम भी वैसे ही सरक रहे थे, एक छिपकली की तरह, एक चींटी की तरह, एक बिच्छू की तरह तुम्हारा जीवन था। आज तुम भूल गए हो, तुम आगे निकल आए हो। लेकिन जो आगे निकल जाए और पीछे वालों को भूल जाए, उस आदमी के भीतर कोई करुणा, कोई प्रेम, कोई मनुष्यत्व नहीं है। महावीर कहते हैं, यह जो दया है--पीछे की तरफ--यह अपने ही प्रति है। कल तुम भी ऐसी ही हालत में थे। और किसी ने तुम्हें पैर के नीचे दबा दिया होता तो तुम इनकार भी नहीं कर सकते थे। तुम यह भी नहीं कह सकते थे कि मेरे साथ क्या किया जा रहा है!
मनुष्यत्व, हमें लगेगा मुक्त मिला हुआ है, इसमें भी क्या बात है दुर्लभ होने की। मनुष्यत्व मुक्त मिला हुआ है, क्या बात है इसमें दुर्लभ होने की? क्योंकि हम मनुष्य हैं और हमें किसी दूसरी स्थिति का कोई स्मरण नहीं रह गया। महावीर ने जिनसे यह कहा था, उनको महावीर साधना करवाते थे और उनसे पिछले स्मरण याद करवाते थे। और जब किसी आदमी को याद आ जाता था, कि मैं हाथी था, घोड़ा था, गधा था, वृक्ष रहा कभी, तब उसे पता चलता था कि मनुष्यत्व दुर्लभ है। तब उसे पता चलता था कि घोड़ा रहकर, गधा रह कर, बिच्छू रह कर, वृक्ष रह कर मैंने कितनी कामना की थी कि कभी मनुष्य हो जाऊं, तो मुक्त हो जांऊ इस सब उपद्रव से। और आज मैं मनुष्य हो गया हूं तो कुछ भी नहीं कर रहा हूं।
अतीत हमारा विस्मृत हो जाता है। उसके कारण हैं। उसका बड़ा कारण तो यह
है कि अगर एक आदमी पशु रहा है पिछले जन्म में, तो पशु की स्मृतियों को समझने में मनुष्य का मस्तिष्क असमर्थ हो जाता है इसलिए विस्मरण हो जाता है। पशु का जगत, अनुभव, भाषा सब भिन्न है, आदमी से उसका कोई तालमेल नहीं हो पाता; इसलिए सब भूल जाता है। इसलिए जितने लोगों को भी याद आता है पिछले

जन्मों का, वह कोई नहीं कहते, हम जानवर थे, पशु थे। वे यही बताते हैं कि हम स्त्री थे, पुरुष थे। उसका कारण है कि स्त्री पुरूष ही अगर पिछले जन्म में रहे हो तो स्मरण आसान है। अगर पशु-पक्षी रहे तो स्मरण अति कठिन है। क्योंकि भाषा बिल्कुल ही बदल जाती है। जगत ही बदल जाते हैं, आयाम बदल जाता है। उससे कोई संबंध नहीं रह जाता। अगर याद भी आ जाए तो ऐसा नहीं लगेगा कि यह मेरी याददाश्त आ रही है, लगेगा कि कोई दुःस्वप्न चल रहा है।
महावीर कहते हैं, मनुष्य होना दुर्लभ है। दुर्लभ दिखाई पड़ता है। इसे अगर हम थोड़े वैज्ञानिक ढंग से भी देखें तो समझ में आ जाए।
हमारा सूर्य है, यह एक परिवार है, सौर परिवार। पृथ्वी एक छोटा सा उपग्रह है। सूरज हमारी पृथ्वी से साठ हजार गुना बड़ा है। लेकिन हमारा सूरज बहुत बचकाना है। सूरज है, मिडिआकर! उससे करोड़-करोड़ गुने बड़े सूरज हैं। अब तक विज्ञान ने जितने सूरजों की जांच की है, वह है तीन अरब; तीन अरब सूरज हैं। तीन अरब सूर्यों के परिवार हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि अंदाजन, कम से कम इतना तो होना चाहिए, पचास हजार पृथ्वियों पर जीवन होना चाहिए। तीन अरब सूर्यों के विस्तार में कम से कम पचास हजार उपग्रह होंगे जिनमें जीवन होना चाहिए। यह कम से कम है, इससे ज्यादा हो सकता है। यह कम से कम प्रोबेबिलिटी है। जैसे कि मैं एक सिक्के को सौ बार फेंकू तो प्रोबेबिलिटी है कि पचास बार वह सीधा गिरे, पचास बार उलटा गिरे, अंदाजन। न गिरे पचास बार, हम इतना तो कह सकते हैं कि कम से कम पांच बार तो सीधा गिरेगा, पिचानबे बार उलटा गिर जाए। अगर इतना भी हम मान लें, तो कम से कम पचास हजार पृथ्वियों पर जीवन होना चाहिए, अरबों-खरबों पृथ्वियां हैं। इन पचास हजार पृथ्वियों पर, सिर्फ एक पृथ्वी पर, हमारी पृथ्वी पर मनुष्य के होने की संभावना प्रकट हुई है। इतना बड़ा विस्तार है तीन अरब सूर्यों का। और तीन अरब सूर्य हमारी जानकारी के कारण। यह अंत नहीं है। हम जहां तक जान पाते हैं, जहां तक हमारे यंत्र पहुंच पाते हैं। अब तो विज्ञान कहता है, हम कभी सीमा को न जान पाएंगे, क्योंकि सीमा आगे ही हटती चली जाती है। वे सपने छूट गए कि किसी दिन हम पूरा जान लेंगे। अब विज्ञान कहता है, नहीं जान पाएंगे। जितना जानते हैं उतना पता चलता है कि आगे और आगे और है। इतने विराट विश्व में जिसकी हम कल्पना और धारणा भी नहीं कर सकते, सिर्फ इस पृथ्वी पर मनुष्य है।
पचार हजार पृथ्वियों पर जीवन है, लेकिन मनुष्य की कहीं कोई संभावना नहीं मालूम पड़ती। इस पृथ्वी पर मनुष्य है, और यह मनुष्य भी केवल कुछ दस लाख वर्षों से है। इसके पहले पृथ्वी पर मनुष्य नहीं था। जानवर थे, पक्षी थे, पौधे थे; मनुष्य नहीं था।
इन दस लाख वर्षों में मनुष्य हुआ है। और मनुष्य भी कितना है? अगर हम पशु-पक्षियों, कीड़े-मकोड़ों की संख्या का अंदाज करें तो तीन साढ़े तीन अरब मनुष्य कुछ भी नहीं है। एक घर में इतने मच्छर मिल जाएं। अगर शुद्ध भारतीय घर हो तो जरूर मिल जाएं।
असंभव लगता है आदमी का होना। आदमी की घटना असंभव घटना है। अगर आदमी न
हो तो हम सोच भी नहीं सकते कि आदमी हो सकता है। क्योंकि जहां तीन अरब सूर्य हैं और करोड़ों अरबों पृथ्वियां है और कहीं भी मनुष्य का कोई निशान नहीं है, कोई उसके चरण-चिन्ह नहीं हैं। अगर इस पृथ्वी पर मनुष्य न हो तो क्या कोई कितना ही बड़ा कल्पनाशील मस्तिष्क सोच सकता है कि मनुष्य हो सकता है? कोई भी उपाय नहीं है। कोई उपाय नहीं है। मनुष्य दुर्लभ है, सिर्फ उसका होना दुर्लभ है। लेकिन महावीर का मनुष्य शब्द से उतना ही अर्थ नहीं है। मनुष्य होकर भी बहुत कम लोग मनुष्यत्व को उपलब्ध हो पाते हैं। वह और भी दुर्लभ है।
मनुष्य हम पैदा होते हैं शक्ल-सूरत से। मनुष्यता भीतरी घटना है, शक्ल सूरत से उसका बहुत लेना-देना नहीं है। आप शक्ल-सूरत से मनुष्य हो सकते हैं और भीतर हैवान हो सकते हैं, भीतर शैतान हो सकते हैं। भीतर होने का कुछ भी उपाय है। शक्ल-सूरत कुछ निश्चित नहीं करती, केवल संभावना बताती है।
जब एक आदमी मनुष्य की तरह पैदा होता है तो अध्यात्मिक अर्थों में इतना ही मतलब होता है कि वह अगर चाहे तो मनुष्यत्व को पा सकता है। लेकिन यह

मिला हुआ नहीं है, सिर्फ संभावना है, बीज है। आदमी पैदा हुआ है, वह चाहे तो व्यर्थ खो सकता है, बिना मनुष्य बने। मनुष्य बन भी सकता है।
किस बात से वह मनुष्य बनेगा? आखिर पशु और मनुष्य में फर्क क्या है? पौधे और मनुष्य में फर्क क्या है? पत्थर और मनुष्य में फर्क क्या है? चैतन्य का फर्क है, और तो कोई फर्क नहीं है। चैतन्य का फर्क है, कांशसनेस का फर्क है। आदमी के पास सर्वाधिक चैतन्य है, अगर हम पशुओं से तौलें तो। अगर हम पशुओं को छोड़ दें और आदमी का चैतन्य तौलें तो कभी चौबीस घंटे में क्षण भर को भी चेतन हो जाता हो तो मुश्किल है। बेहोश ही चलता है। मनुष्य को पशुओं से तौलें तो चेतन मालूम पड़ता है। अगर मनुष्य को उसकी संभावना से तौलें, बुद्ध से, महावीर से तौलें, तो बेहोश मालूम पड़ता है। तुलनात्मक है। मनुष्य उसी अर्थ में मनुष्य हो जाता है जिस अर्थ में चेतना बढ़ जाती है। इसलिए हमने मनुष्य कहा है। मनुष्य का अर्थ है, जितना मन निखर जाता है, उतना। आदमी सब पैदा होते है, मनुष्य बनना पड़ता है। इसलिए आदमी और मनुष्य का एक ही अर्थ नहीं है। आदमी का तो इतना ही मतलब है कि हमारा जातिसूचक नाम है, आदम के बेटे--आदमी।
यह शब्द बड़ा अच्छा है। इसका भी मूल्य है। भाषाशास्त्री कहते हैं कि अदम, अहम का रूपांतरण है, और बच्चा जब जो पहली आवाजें करता है--आह, अह, अहम-- इस तरह की आवाजें करता है। उन आवाजों से अहम बना है, मैं। और उन्हीं आवाजों से अदम बना है, आदमी।
बच्चे की पहली आवाज आदमी का नाम बन गई है, अदम। लड़का बोलता है, आह, लड़की बोलती है, ईह; इसलिए ईव। पहली लड़की जब पैदा होती है तो वह नहीं बोलती, आह।
लड़का बोलता, आह, आह। लड़की बोलती, ईह। इसलिए भाषाशास्त्री, हिब्रू भाषाशास्त्री कहते हैं, ईह की आवाज के कारण ईव, आह की आवाज के कारण अदम।
आदमी और औरत।
आदमी जातिवाचक नाम है, मनुष्य नहीं। मनुष्य चेतनासूचक नाम है।
अंग्रेजी का "मैन" संस्कृत के मनु का ही रूपांतरण है। हम कहते है, मनु के बेटे, नहीं अदम के बेटे। अदम के बेटे सभी हैं, लेकिन मनु का बेटा वह बनता है, जो अपने भीतर मनस्वी हो जाता है। जिसका मन जाग्रत हो जाता है, उसको हम मनुष्य कहते हैं।
महावीर ने कहा है, ऐसे तो अदम होना भी बहुत मुश्किल, मनुष्य होना और भी दुर्लभ है। कितनी चेतना है आपके भीतर, उसी मात्रा में आप मनुष्य हैं। कितना होश से जीते हैं, उसी मात्रा में मनुष्य हैं। क्यों? क्योंकि जितने होश से जीते हैं, उतने शरीर से टूटते जाते हैं और आत्मा से जुड़ते जाते हैं। और जितनी बेहोशी से जीते हैं उतने शरीर से जुड़ते जाते हैं और आत्म से टूटते जाते हैं। होश सेतु है, आत्मा तक जाने का। मन द्वार है आत्मा तक जाने का। जितने मनस्वी होते हैं, उतनी आत्मा की तरफ हट जाते हैं। जितने बेहोश होते हैं, उतने शरीर की तरफ हट जाते है। इसलिए महावीर ने कहा है, जो-जो कृत्य बेहोशी में किए जाते हैं, वे पाप हैं। क्योंकि जिन-जिन कृत्यों से आदमी शरीर हो जाता है, वे पाप हैं। और जिन-जिन कृत्यों से आदमी आत्मा हो जाती है, वे पुण्य हैं।
कभी आपने देखा है, पाप को बिना बेहोशी के करना मुश्किल है। अगर आपको चोरी करनी है तो बेहोशी चाहिए। किसी की हत्या करनी है तो बेहोशी चाहिए। बड़ी बातें हैं, क्रोध करना है तो बेहोशी चाहिए। होश आ जाए तो हंसी आ जाएगी कि क्या मूढ़ता कर रहे हैं। लेकिन बेहोशी हो तो चलेगा।
इसलिए कुछ लोगों को जब ठीक से पाप करना होता है तो शराब पी लेते हैं।
शराब पीकर मजे से पाप कर सकते हैं। होश कम हो जाता है, बिल्कुल कम हो जाता है। होश जितना कम हो जाता है उतना हम शरीर हो जाते हैं--पदार्थवत, पशुवत। होश जितना ज्यादा हो जाता है उतना हम मनुष्य हो जाते हैं--आत्मवत। मनुष्यत्व का अर्थ है--बढ़ते हुए होश की धारा। जो भी करें वह होशपूर्वक करें। महावीर ने कहा है, विवेक से चलें, विवेक से बैठें, विवेक से उठें, विवेक से खाएं, होश रखें, एक क्षण भी बेहोशी में न जाएं, एक क्षण भी ऐसा मौका न मिले कि शरीर मालिक हो जाए, चेतना ही मालिक रहे। यह मालकियत जिन

अर्थों में निधारीत हा जाए, उसी अर्थ में आप मनुष्य है, अन्यथा आप आदमी हैं।
आदमी-मनुष्य के इस भेद को बढ़ाते जाना क्रमशः आत्मा के निकट पहुंचना है। इस भेद को बढ़ाने में ये तीन बातें काम करेंगी जो और भी दुर्लभ हैं। मनुष्य होना मुश्किल, मनुष्यत्व पाना और भी मुश्किल। धर्म-श्रवण, इसको क्यों इतना मुश्किल कहा है?
सब तरफ धर्म-सभाएं चल रही हैं, गांव-गांव धर्मगुरु हैं! न खोजो तो भी मिल जाते हैं, न जाओ उनके पास तो आपके घर आ जाते हैं। धर्म गुरुओं की कोई कमी है? कोई तकलीफ है? शास्त्रों की कोई अड़चन है? सब तरफ सब मौजूद है। इसलिए महावीर कहते हैं, धर्म-श्रवण दुर्लभ! मालूम नहीं पड़ता। कितने चर्च, कितने गुरुद्वारे, मंदिर, मस्जिद, तीन हजार धर्म हैं पृथ्वी पर। और महावीर कहते हैं, धर्म-श्रवण दुर्लभ है! अकेले कैथोलिक पादरियों की संख्या दस लाख है। हिंदू संन्यासी एक लाख हैं! जैनियों के मुनि इतने हो गए हैं कि गृहस्थ खिलाने में उनको असुविधा अनुभव कर रहै हैं। थाईलैंड में चार करोड़ की आबादी है, बीस लाख भिक्षु हैं। सरकार नियम बना रही है कि अब बिना लाइसेंस के कोई संन्यास न ले सकेगा। क्योंकि इतने लोगों को पालेंगे कैसे? और महावीर कहते हैं, धर्म-श्रवण दुर्लभ!
शास्त्र ही शास्त्र हैं, बाइबिलें हैं, कुरानें हैं, धम्मपद हैं, महावीर के सूत्र हैं, गीता है, वेद हैं, धर्म ही धर्म, शास्त्र ही शास्त्र, गुरु ही गुरु। इतना सब शिक्षण है। हर आदमी धार्मिक है। और महावीर का दिमाग खराब मालूम पडता है। फिर धर्म-श्रवण दुर्लभ है! उसका कारण है। क्योंकि न तो शास्त्रों से मिलता है धर्म, न उपदेशकों से मिलता है धर्म। कभी-कभी अरबों-खरबों मनुष्य में एक आदमी धर्म के उपलब्द होता है। अरबों-खरबों आदमियों में कभी-कभी एक आदमी मनुष्यत्व को उपलब्ध होता है। अरबों-खरबों मनुष्य में कभी एक आदमी धर्म को उपलब्ध होता है। और जो धर्म को उपलब्ध हुआ है उस सुनना ही धर्म-श्रवण है। कभी कोई महावीर कभी कोई बुद्ध।
बुद्ध मर रहे हैं, तो आनंद छाती पीट कर रो रहा है। बुद्ध कहते हैं, तू रोता क्यों है? आनंद कहता है कि रोता इसलिए हूं कि आपको सुन कर भी मैं न सुन पाया। आप मौजूद थे, फिर भी आपको न देख पाया। और अब आप खो जाएंगें, और अब कितने कल्प लगेंगे कि दुबारा किसी बुद्ध का दर्शन हो। रो रहा हूं इसलिए कि अब यात्रा बड़ी मुश्किल हो जाने वाली है। अब किसी बुद्ध पुरुष का दर्शन हों, इसके लिए कल्पों-कल्पों तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।
बुद्ध का जन्म हुआ, तो हिमालय से एक वृद्ध संन्यासी भागा हुआ बुद्ध के गांव आया। नब्बे वर्ष उसकी उम्र थी। सम्राट के द्वार पर पहुंचा। बुद्ध के पिता से उसने कहा कि बेटा तुम्हारे घर मैं पैदा हुआ है, उसके मैं दर्शन करने आया हूं। पिता हैरान हो गए। अभी दो-चार दिन की ही उम्र थी उस बेटे की, और वृद्ध संन्यासी प्रतिभावान तेजस्वी, अपूर्व सौंदर्य से, गरिमा से भरा हुआ। बुद्ध के पिता उस संन्यासी के चरणों में गिर पड़े। उन्होंने सोचा, जरूर सौभाग्य है मेरा कि ऐसा महापुरुष मेरे बेटे का दर्शन करने आया, आर्शीर्वाद देने आया। कुछ अनुठा बेटा पैदा हुआ है।
शुद्धोधन अपने बेटे को लेकर, सिद्धार्थ को लेकर, बुद्ध को लेकर संन्यासी के चरणों में जाने लगे रखने, तो संन्यासी ने कहा, रुको। मैं उसको चरणों में पड़ने आया हूं। और वह नब्बे वर्ष का वृद्ध, महिमावान संन्यासी उस छोटे से दो दिन के बच्चे के चरणों में गिर पड़ा। और छाती पीट कर रोने लगा। बुद्ध जब मर रहे थे तो आनंद छाती पीट कर रो रहा था, एक दूसरा संन्यासी।
और बुद्ध जब पैदा हुए तो एक और संन्यासी छाती पीट कर रो रहा था।
बुद्ध के पिता बहुत घबड़ा गए। उन्होंने कहाः यह आप क्या अपशकुन कर रहे हैं? यह रोने का वक्त है? आर्शिवाद दें। आप क्यो रोते हैं? क्या यह बेटा बचेगा नहीं? आप क्यों रोते हैं? क्या कुछ अशुभ हआ है?
उस संन्यासी ने कहाः इसलिए नहीं रोता हूं, इसलिए रोता हूं कि मेरी मौत करीब है, और यह लडका बुद्ध होगा। मै चूक जाऊंगा। और यह कल्पों-कल्पों में कभी कोई बुद्ध होता है। मैं रो रहा हूं क्योंकि मैं चूका। मेरी मौत करीब

है, और कुछ पक्का नहीं है कि जब यह बुद्ध होगा तब मैं दुबारा जन्म ले सकूं।
इसलिए रो रहा हूं।
धर्म श्रवण का अर्थ है, जिसने जाना हो, उससे सुनना। इसलिए महावीर कहते हैं, दुर्लभ है। जिसने सुना हो, उससे सुनना तो बिल्कुल दुर्लभ नहीं है।
जिसने जाना हो, उससे सुनना दुर्लभ है।
मगर यह दुर्लभता अनेक आयामी है। एक तो महावीर का होना दुष्कर, बुद्ध
का होना दुष्कर, कृष्ण का होना दुष्कर। फिर वे हों भी, वे बोल भी रहे हों तो आपका सुनना दुष्कर। इसलिए कहा कि श्रवण दुष्कर है, क्योंकि महावीर खड़े हो जाएं तो भी आप सुनेंगे, यह जरूरी नही है। जरूरी तो यही है कि आप नहीं सुनेंगे।
क्यों नहीं सुनेंगे? क्योंकि महावीर को सुनना अपने को मिटाने की तैयारी है। वह किसी की भी तैयारी नहीं है। महावीर दुश्मन से मालूम होंगे। महावीर की गैर-मौजूदगी में नहीं मालुम होते, महावीर मौजूद होंगे तो दुश्मन से मालूम होंगे। महावीर का साधु दुश्मन नहीं मालूम होगा। वह साधु आपका गुलाम है। वह साधु आपसे इशारे मांग कर चलता है, आपकी सलाह से जीता है। आप पर निर्भर है। उससे आपको कोई तकलीक नहीं है। वह तो आपकी सामाजिक व्यवस्था का एक हिस्सा है, और एक लिहाज से अच्छा है, लूब्रिकेटिंग है। कार में थोड़ा सा लूब्रिकेशन डालना पड़ता है, उससे चक्के ठीक चलते हैं। आपके संसार में भी आपके साधु लूब्रिकेशन का काम करते हैं। उससे संसार अच्छा चलता है।
दिन भर दुकान पर उपद्रव किए, पाप किए, बेईमानी की, झूठ बोले, सांझ को साधु के चरणों में जाकर बैठ गए, धर्म-श्रवण किया। उससे मन ऐसा हुआ कि छोड़ो भी, हम भी कोई बुरे आदमी नही हैं। कल की फिर तैयारी होगी। यह लूब्रिकेटिंग है। यह आपको भी वहम देते हैं की आप भी संसारी नही हैं, थोड़े तो धार्मिक हैं। वह थोड़ा धार्मिक होना चक्कों को, पाहियों को तेल डाल देता है और ठीक से चला देता है।
संसार ठीक से चलता है साधुओं की वजह से। क्योंकि साधु आपको समझाए रखते हैं कि कोई बात नहीं, अगर महाव्रत नहीं सधते तो अणुव्रत साधो। अगर बड़ी चोरी नहीं छूटती तो छोटी-छोटी चोरी छोड़ते रहो। तरकीबें बताते रहते हैं कि संसार में भी रहे आओ और तेल भी डालते रहो कि चक्के ठीक से चलते रहें। तुम्हें भ्रम भी बना रहे कि तुम भी धार्मिक हो, और धार्मिक होना भी न पड़े। मंदिर है, पुरोहित है, साधु है, ये काम कर रहे हैं। वे आपके संसार के एजेंट हैं। वे आपको संसार में आपको मोक्ष का भ्रम दिलवाते रहते हैं। लेकिन महावीर या बुद्ध दुश्मन मालूम पड़ते हैं, शत्रू मालूम पड़ते हैं, क्योंकि वे जो भी कहते हैं वह आपकी आधारशिलाएं गिराने वाली बाते हैं। वे जो भी कहते हैं उससे आपका मकान गिरेगा, जलेगा, आप मिटेंगे। आप मिटेंगे तो ही उन्हें श्रवण कर पाएंगे। नहीं तो उनको श्रवण भी नहीं कर पाएंगे। इसलिए महावीर कहते हैं, धर्म-श्रवण अति दुर्लभ है। आप सुनने को राजी नहीं हैं। जीसस बार-बार कहते हैं बाइबिल में, जिनके पास कान हैं, वे सुन लें। सबके पास कान थे। जिनसे वे बात कर रहे थे। क्योंकि बहरे तो अपने आप ही नहीं आए होंगे। जिनसे भी वे बात कर रहे होंगे उन सबके पास कान थे। लेकिन ऐसा मालूम पड़ता है बाइबिल को पढ़ कर कि वे बहरों के बीच बोलते रहे, क्योंकि वे हमेशा कहते हैं कि जिनके पास कान हों, वे सुन लें। जिनके पास आंख हो वे देख लें। यह मामला अजीब है। क्या अंधों के अस्पताल में चले गए थे? कि बहरों के अस्पताल में बोल रहे थे? क्या कर रहे थे वे?
हमारे ही बीच बोल रहे थे, लेकिन हम अंधे और बहरे हैं। आंखें हमारी धोखा हैं, कान हमारे सुनते नहीं। और जब जीसस बोलते हैं तब हम कान-आंख बिल्कुल बंद कर लेते हैं, क्योंकि यह आदमी खतरनाक है। इसकी बात भीतर जाएगी तो दो ही उपाय हैं, यह बचेगा और तुम्हें मिटना पड़ेगा। अपने को हम सब बचाना चाहते हैं।
सेंटपाल ने कहा है, नाउ आई एम नॉट। जीसस लिव्ज इन मी। नाउ ही इ.ज, एण्ड
आई एम नॉट। अब मैं नहीं हूं, अब जीसस मुझमें जीता है, अब जीसस ही हैं, में

नहीं हूं। जो महावीर को सुनेगा, उसे एक दिन अनुभव करना पड़ेगा कि अब में नहीं हूं। तो ही सुनेगा।
श्रावक का यही अर्थ हैः जो खुद मिटने को राजी है और गुरु को अपने भीतर प्रगट हो जाने के लिए द्वार खोलता है। जो अपने को हटा लेता है, जो अपने को मिटा लेता है, शून्य हो जाता है, एक ग्रहणशीलता, जस्ट ए रिसेप्टिविटी, और आने देता है।
बड़ी मजेदार घटना है। एक बड़ा चोर था, महावीर जिस गांव में ठहरे। उस चोर
ने अपने बेटे से कहा, तू और सब कुछ करना, लेकिन इस महावीर से बचना। इसकी बात सुनने मत जाना।
चोर ईमानदार था। आप जैसा होशियार नहीं था, नहीं तो कहता, सुनना, और सुनना भी मत। चोर ने कहा, सुनना ही मत। यह बात समझ की है, अपने काम की नहीं, अपने धंधे से मेल नहीं खाती। और यह आदमी खतरनाक है। इसकी सुन ली तो सदा का चला आया धंधा नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगा। बड़ी मुश्किल से हम जमा पाए तू खराब मत कर देना। और तेरे लक्षण अच्छे नहीं मालूम पड़ते। तू उधर जाना ही मत, उस रास्ते ही मत निकलना।
बाप की बात बेटे ने मानी। उस जमानों में तो बाप की बात मानते थे। बेटे
ने उस रास्ते जाना छोड़ दिया, जहां महावीर बोला करते थे। जहां से गुजरते थे, वहां दूर से देख लेता कि महावीर आ रहे हैं तो वह भाग खड़ा होता, आज्ञाकारी बेटा... ।
एक दिन भूल हो गई। वह अपनी धुन में चला जा रहा था और महावीर बोल रहे थे,
एक रास्ते के किनारे। उसे एक वाक्य सुनाई पड़ गया। वह भागा। उसने कहा कि यह बड़ी मुश्किल हो गई। लेकिन, चूंकि वह बचना चाह रहा था, जो बचना चाहता है उसका आकर्षण भी हो जाता है। चूंकि वह सुनना चाहता ही नहीं था, अपने कानों को बंद ही रखने की चेष्टा में लगा था, और कान पर अनजाने में एक वचन पड़ गया। उस वचन ने उसकी सारी जिंदगी बदल दी। उस वचन ने, उसकी सारी जिंदगी को अस्त-व्यस्त कर दिया। फिर वह वही नहीं रह सका, जो था।
क्या हुआ होगा, एक वचन को सुन कर? महावीर का एक वचन भी चिंगारी है, अगर भीतर पहुंच जाए। और चिंगारी छोटी भी काफी है। बारूद तो हमारे भीतर सदा मौजूद है। विस्फोट हो सकता है। वह आत्मा मौजूद है जिसमें विस्फोट हो जाए, एक चिंगारी। लेकिन महावीर को कोई बिल्कुल सारी बातें सुनता रहे तो भी जरूरी नहीं कि चिंगारी पहुंचे।
हम तरकीबें बांध लेते हैं, उनसे हम चीजों को बाहर ही रख देते हैं। उनको हम भीतर नहीं जाने देते। सबसे अच्छी तरकीब यह है कि रोज सुनते रहो महावीर को, अपने आप बहरे हो जाओगे। जिस बात को लोग रोज सुनते हैं, उसे सुनना बंद कर देते हैं।
इसलिए धर्म-श्रवण बड़ी अच्छी चीज है। उससे धर्म से बचने में रास्ता मिलता है। रोज धर्म-सभा में चले जाओ। वहां सोए रहो। अकसर लोग सोते ही हें धर्म सभा में, और कुछ करते नहीं। जिनको नींद नहीं आती, वे तक सोते हैं। जिनको अनिद्रा की बीमारी है, डाक्टर उनको सलाह देते हैं, धर्म-सभा में चले जाओ। जिनको सर्दी जुकाम हो गया है, वे और कहीं नहीं जाते, सीधे धर्म-सभा में जाकर खांसते-खंखारते रहते हैं। मुझे ऐसा लगता है, धर्म-सभा में जिनको खांसी जुकाम है वही जगे रहते हैं। या उनकी खांसी वगैरह से कोई आसपास जग जाए, बात अलग, नहीं तो गहरी नींद रहती है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक धर्म-सभा में बोल रहा था। एक आदमी उठ कर जाने लगा
तो उसने कहा कि प्यारे, बैठ जाओ। मेरे बोलने में तुम्हारे जाने से अड़चन पड़ती है, ऐसा नहीं, जो सो गए हैं, उनकी नींद न तोड़ देना। शांति से बैठ जाओ। सोए हुए लोगों पर दया करो।
धर्म-सभा में हम क्यों सो जाते हैं? सुनते-सुनते कान पक गए हैं वही बातें। हम हजार दफे सुन चुके हैं। अब सुनने योग्य कुछ नहीं बचा। यह सबसे आसान तरकीब है धर्म से बचने की। बेईमान कानों ने तरकीब निकाल ली है, बेईमान आंखों ने तरकीबें निकाल ली हैं।
अगर महावीर सामने भी आपके आकर खड़े हो जाएं तो आपको महावीर नहीं दिखाई पड़ेंगे, दिखाई पड़ेगा कि एक नंगा आदमी खड़ा है। यह आपकी आंखों की तरकीब है।

बड़े मजे की बात है, महावीर सामने हों तो भी नंगा आदमी दिखेगा, महावीर नहीं दिखेंगे। आप जो देखना चाहते हैं, वही दिखता है, जो है वह नहीं। इसलिए महावीर को लोगों ने गांवों से खदेड़ा, भगाया। यहां मत रखो, यह आदमी नंगा है। नंगे आदमी को गांव में घुसने देना खतरनाक है। कुछ न दिखाई पड़ा उनको महावीर की नग्नता दिखाई पड़ी। महावीर में बहुत कुछ था और महावीर बिल्कुल नग्न खड़े थे, कपड़े की भी ओट न थी। देखना चाहते तो उनके बिल्कुल भीतर देख लेते लेकिन सिर्फ उनकी चमड़ी और उनकी नग्नता दिखाई पड़ी।
हम जो देखना चाहते हैं वह देखते हैं, जो सुनना चाहते हैं वह सुनते हैं। इसलिए महावीर कहते हैं, धर्म-श्रवण दुर्लभ है। फिर श्रद्धा और भी दुर्लभ है। जो सुना है उस पर श्रद्धा। जो सुना है, मन हजार तर्क उठाता है। वह कहता है, यह ठीक है, यह गलत है। और बड़ा मजा यह है कि हम कभी नहीं यह पूछते कि कौन कह रहा है गलत है? कौन कह रहा है ठीक? यह मन जो हमसे कह रहा है, यह हमें कहा ले गया? किस चीज तक इसने हमें पहुंचाया? किसकी हम बात मान रहे हैं? इस मन ने हमें कौन सी शांति दी, कौन सा आनंद दिया, कौन सा सत्य? इस मन ने हमें कुछ भी न दिया, मगर यह हमारे सलाहकार हैं, ये हमारे कांस्टेंट, परमानेंट काउंसलर हैं। वे अंदर बैठे हुए हैं, वे कह रहे हैं, यह गलत है। हम सारी दुनिया पर शक कर लेते हैं, अपने मन पर कभी शक नहीं करते। श्रद्धा का मतलब है, जिसने अपने मन पर शक किया। हम सारी दुनिया पर संदेह कर लेते हैं। महावीर हों तो उन पर संदेह करेंगे, कि पता नहीं ठीक कह रहे हैं, कि गलत कह रहे हैं, कि पता नहीं क्या मतलब है, कि पता नहीं रात में घर ठहराएं ओैर एकाध चादर लेकर नदारद हो जाए! नंगे आदमी का क्या भरोसा, पता नहीं क्या प्रयोजन है? हमें... और हमारा जो मन है, उसके हम सदा, उस पर श्रद्धा रखते हैं, यह बड़े मजे की बात है। हमारे मन पर हमें कभी अश्रद्धा नहीं आती। उसको हम मान कर चलते हैं।
क्या है उसमें मानने जैसा? क्या है अनुभव पूरे जीवन का, और अनेक जन्मों का क्या है अनुभव? मन ने क्या दिया है? लेकिन वह हमारा है। यह वहम सुख देता है और हम सोचते हैं, हम अपनी मान कर चल रहे हैं। अपनी मानकर हम मरुस्थल में पहुंच जाएं, भटक जाएं, खो जाएं तो भी राहत रहती है कि अपनी ही तो मान कर तो चल रहे हैं। दूसरे की मान कर मोक्ष भी पहुंच जाएं तो मन में एक पीड़ा बनी रहती है कि अरे, दूसरे के पीछे चल रहे हैं। वह अहंकार को कष्टपूर्ण है।
इसलिए महावीर कहते है, और भी दुर्लभ, श्रद्धा। श्रद्धा का अर्थ है, जब धर्म का वचन सुना जाए तो अपने मन को हटा कर, उसके प्रति स्वीकृति लाकर जीवन को बदलना। उस पर आस्था, क्योंकि आस्था न हो तो बदलाहट का कोई उपाय ही नहीं है। जो सुना है, जो समझा है, जिसे भीतर जाने दिया है, तो भीतर मन बैठा है, वह हजार तरकीबें उठाएगा। कि इसमें यह भूल है, इसमें यह चूक है, यह ऐसा क्यों है, वह वैसा क्यों है? उन्होंने कल ऐसा कहा, आज ऐसा कहा, हजार सवाल मन उठाएगा। इन सवालों को ध्यानपूर्वक देख कर कि इन सवालों से कोई हल नहीं होता, इनको हटा कर महावीर या बुद्ध जैसे व्यक्ति के आकाश का दर्शन श्रद्धा है।
श्रद्धा भी दुर्लभ, और फिर साधना के लिए पुरुषार्थ तो और भी दुर्लभ। फिर यह जो सुना, जिस पर श्रद्धा ले आए इसके अनुसार जीवन को बदलना और भी दुर्लभ। इसलिए महावीर कहते हैं, ये चार चीजें दुर्लभ है--मनुष्यत्व, धर्म-श्रवण, श्रद्धा, पुरुषार्थ। क्योंकि श्रद्धा अगर नपुंसक हो, मान कर बैठी रहेगी, ठीक है, बिल्कुल ठीक है। और हम जैसे चल रहे हैं, वैसे ही चलते रहेंगे। तो उस नपुंसक श्रद्धा का कोई भी अर्थ नहीं है। हम बड़े होशियार हैं, हमारी होशियारी का कोई हिसाब नहीं है। हम इतने होशियार हैं कि अपने ही को धोखा दे जाते हैं। दूसरे को धोखा देने वाले को हम होशियार कहते हैं। हम इतने होशियार हैं, अपने को धोखा दे जाते हैं। हम कहते हैं, मानते तो बिल्कुल हैं आपकी बात। और कभी न कभी करेंगे, लेकिन अभी नहीं।
हम कहते हैं, मोक्ष तो जाना है, लेकिन अभी नहीं। निर्वाण चासिहए, लेकिन जरा ठहरें, जरा रुकें।

आचरण तो अभी होगा आशा सदा कल पर छोड़ी जा सकती है। आचरण अभी होगा, अभी
के अतिरिक्त हमारे पास कोई भी समय नहीं है; यही क्षण, अगले क्षण का कोई भरोसा नहीं है।
जो अगले क्षण पर छोड़ता है वह मौत पर छोड़ रहा है। जो इस क्षण कर लेता है
वह जीवन का उपयोग कर रहा है।
इसलिए महावीर कहते है, पुरुषार्थ, जो ठीक लगे उसे कर लेने की क्षमता, साहस, छलांग। क्योंकि इस करने का मतलब यह है, हम खतरे में उतर रहे हैं। पता नहीं क्या होगा?
लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, संन्यास तो ले लें, संन्यास में तो चले जाएं, लेकिन फिर क्या होगा? मैं उनसे कहता हूं, जाओ और देखो! क्योंकि अगर हिम्मतवर हो और कुछ न हो तो वापस लौट जाना। डर क्या है? फिर वे कहते हैं, वापस लौट जाना? उसमें भी डर लगता है, कि लोग क्या कहेंगे? अभी भी लोग क्या कहेंगे कि संन्यास लिया? और अगर कुछ न हुआ, वापस लौटे तो लोग क्या कहेंगे? लोग कौन हैं ये? इन लोगों ने क्या दिया, इन लोगों से क्या संबंध है?
नहीं, लोग बहाना हैं, अपने को बचाने की तरकीबें हैं, एक्सक्यूजे.ज हैं। लोगों के नाम से हम अपने को बचा लेते हैं और सोचते हैं कि आज नहीं कल, कल नहीं परसों, कभी न कभी, टालते चले जाते हैं।
क्रोध अभी कर लेते हैं, ध्यान कल करेंगे। चोरी अभी कर लेते हैं, संन्यास कभी भी लिया जात सकता है।
यह जो वृत्ति है, इसे महावीर कहते है--पुरुषार्थ की कमी।
हम बुरे हैं, पुरुषार्थ के कारण नहीं, इसे ख्याल कर लें। हम बुरे हैं पुरुषार्थ की कमी के कारण। हम अगर चोर हैं तो इसलिए नहीं कि हम हिम्मतवर है, हम इसलिए चोर हैं कि हम अचोर होने लायक पुरुषार्थ नहीं जुटा पाते। हम अगर झूठ बोलते हैं तो इसलिए नहीं कि हम होशियार हैं। हम झूठ बोलते हैं इसलिए कि सत्य बोलने में बड़े पुरुषार्थ की, बड़ी सामर्थ्य की, बड़ी शक्ति की जरूरत है। अगर हम अधार्मिक है तो शक्ति के कारण नहीं, कमजोरी के कारण क्योंकि धर्म को पालन करना बड़ी शक्ति की आवश्यकता है। और अधर्म में बहे जाने में कोई शक्ती की जरूरत नहीं।
अधर्म है उतार की तरह, आपको लुढ़का दिया जाए, आप लुढ़कते चले जाएंगे पत्थर की तरह। धर्म है पहाड़ की तरह, यात्रा करनी पड़ती है। एक-एक इंच कठिनाई है और एक-एक इंच सामान कम करना पड़ता है क्योंकि बोझ पहाड़ पर नहीं ले जाया जा सकता। आखिर में तो अपने तक को छोड़ देना पड़ता है, तभी कोई शिखर पर पहुंचता है।

आज इतना ही।